

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय



कबीर-ग्रंथावली

डॉ. पारसनाथ तिवारी



R

029

POE:3

109630

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या

R
०८९
१०६:३

आगत संख्या 109630

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है । इस तिथि सहित ३० वे दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए । अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा ।

(3)

कबीर-ग्रन्थावली

R081/106, A6A 3



109630

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

कबीर-ग्रन्थावली

• 109630



डॉ० पारसनाथ तिवारी

भू० पू० रीडर, हिन्दी विभाग एवं
निदेशक, पत्राचार पाठ्यक्रम संस्थान
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

राका प्रकाशन, इलाहाबाद

© डॉ० पारसनाथ तिवारी

पुनर्मुद्रित संस्करण, १९८९

मूल्य— विद्यार्थी संस्करण—रुपए पैंतीस मात्र
पुस्तकालय संस्करण—रुपए पचास मात्र

न्यू ऑफसेट, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित एवं राकेश तिवारी, राका प्रकाशन ४०ए, मोती
लाल नेहरू रोड, इलाहाबाद—211 002 द्वारा प्रकाशित ।

प्रथम संस्करण की प्रस्तावना

साधना तथा साहित्य के क्षेत्र में कबीर का स्थान दिनप्रतिदिन महत्वपूर्ण होता जा रहा है, किन्तु अभी तक उनकी वाणियों का कोई ऐसा पाठ हमारे सामने नहीं आ सका था जिसे निरापद रूप से प्रामाणिक माना जा सके। कबीर का अध्ययन करने वाले सभी विद्वानों को यह अभाव बहुत समय से खटकता रहा है, क्योंकि कृतियों का प्रामाणिक पाठ स्थिर किए बिना हम उनके किसी भी पहलू पर वैज्ञानिक रूप से विचार नहीं कर सकते और न तो किसी सर्वमान्य निर्णय तक पहुँच हो पाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इसी अभाव की पूर्ति का प्रयत्न किया गया है।

कुल मिलाकर जितनी रचनाएँ कबीरकृत कही गई हैं, विभिन्न दृष्टियों से उनकी परीक्षा करना और जो रचनाएँ वास्तविक रूप से कबीरकृत जान पड़ें उनमें भी कितना अंश किस रूप में उनका माना जा सकता है, यह देखना था। इन रचनाओं की जितनी भी प्रतियाँ हस्तलिखित अथवा मुद्रित रूप में प्राप्त हुईं और जो भी सहायक सामग्री टीका-टिप्पणी आदि के रूप में प्राप्त हो सकी उन सबका उपयोग करते हुए कबीर की वाणी का स्वरूप-निर्धारण मेरा अभीष्ट था।

यह कार्य कितना श्रमसाध्य था, इसकी कल्पना इसी से की जा सकती है कि विभिन्न हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियों में कबीर के नाम से कुल मिलाकर हमें लगभग सोलह सौ पद, सड़ें चार हजार साखियाँ और एक सौ चौतीस रमैनियाँ मिली हैं। पद, साखी तथा रमैनियों के अतिरिक्त भी सौ रचनाएँ (भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के रूप में) ऐसी और प्राप्त होती हैं जिन्हें कबीरकृत कहा जाता है। अब तक की खोजों से पिछले प्रकार की रचनाओं की संख्या इतनी ही ज्ञात हो सकी है, किन्तु आगे ज्यों-ज्यों खोज की जायगी, इनकी संख्या में वृद्धि की ही सम्भावना अधिक है। कबीरपंथियों का तो विश्वास है कि सद्गुरु की वाणी अनन्त है, अतः इसका पार पाना कठिन है। उसकी संख्या का अनुमान वनस्पति-समुदाय के पत्तों और गंगा के बालुका-कणों से लगाया जा सकता है—

जेते पत्र बनसपत्ती, ओ गंगा की रैन।

पंडित बिचारा क्या कहै, कबीर कहीं मुख बेन ॥

—बीजक, साखी २६१

इतना ही नहीं, वास्तविक कठिनाई का पता तब चलता है जब विभिन्न प्रतियों का पाठ-मिलान किया जाता है। प्रस्तुत संपादन में जिन प्रतियों का विस्तृत पाठ-मिलान किया गया है उनमें से पद सात प्रतियों में, साखियाँ नौ में और रमैनियाँ पाँच प्रतियों में मिलती हैं (एक परिवार की विभिन्न प्रतियों की गिनती एक ही प्रति के रूप में की गई है)। कितना अंश कितनी प्रतियों में समान रूप से मिलता है, इसका पता नीचे के विवरण से मिल जायगा—

पदों का विवरण—

६	प्रतियों में	समान रूप से	१	पद
५	„	„	१७	„
४	„	„	६८	„
३	„	„	१५५	„
२	„	„	३३६	„
अलग-अलग प्रतियों में			६६६	„
कुल मिलाकर			१५७६	पद

रमैनियों का विवरण—

४	प्रतियों में	समान रूप से	१	चौं २०
३	„	„	२०	रमैनी
२	„	„	२८	„
अलग-अलग प्रतियों में			८९	„
कुल मिलाकर			१३४	रमैनियाँ

साखियों का विवरण—

६	प्रतियों में	समान रूप से	१	साखी
८	„	„	१६	साखियाँ
७	„	„	६६	„
६	„	„	२५६	„
५	„	„	३४४	„
४	„	„	४३६	„
३	„	„	१०१०	„
२	„	„	८३६	„

अलग-अलग प्रतियों में

१४२४ साखियाँ

कुल मिला कर

४३६५ साखियाँ

इनका क्रम जो विभिन्न प्रतियों में विभिन्न था वह तो था ही ।

वह अंश जो समस्त प्रतियों में समान रूप से मिलता हो, सुगमता से मान्य कहा जा सकता है । किन्तु यहाँ हम देखते हैं कि पद ऐसा एक भी नहीं है जो उपर्युक्त सातों प्रतियों में समान रूप से मिलता हो । साखी केवल एक है जो समस्त नवों प्रतियों में मिलती है और रमैनी छहों प्रतियों ने समान रूप से एक भी नहीं मिलती—केवल एक रमैनी चार प्रतियों में पाई जाती है । इसके विपरीत पृथक्-पृथक् प्रतियों में स्वतन्त्र रूप से प्राप्त रचनाओं की संख्या ही सब से अधिक मिलती है । मैं नहीं जानता कि संसार के और किस कवि या लेखक की रचनाओं की समस्त प्रतियों में समान रूप से प्राप्त और पुनः उनमें पृथक्-पृथक् सामूहिक अथवा स्वतन्त्र रूप से प्राप्त छंदों की संख्या में इस कोटि की विषमता होगी जितनी कबीर के सम्बन्ध में दिखाई पड़ती है ।

प्रश्न यह है कि इन विषम परिस्थितियों के अन्तर्गत उपर्युक्त रचना-समूह में से कबीर की प्रामाणिक कृति किस प्रकार पृथक् की जाय ?

गंतव्य स्थान तक पहुँचने के लिए हमारे सामने एक ही निरुपद मार्ग था, वह यह कि विभिन्न प्रतियों का पाठ-सम्बन्ध स्थिर किया जाय और तदनन्तर केवल उन्हीं वाणियों को प्रामाणिक स्वीकृत किया जाय जो किन्हीं भी दो या अधिक ऐसी प्रतियों में मिलती हैं जिनमें किसी प्रकार का संकीर्ण-सम्बन्ध नहीं है—अर्थात् जिनमें पाठ-सम्बन्धी ऐसी विकृतियाँ (जानबूझकर अथवा अनजान में की हुई) समान रूप नहीं पाई जातीं जिनका अविर्भाव कवि के मूलपाठ के अनन्तर का सिद्ध होता हो—और इसी आधार पर उन वाणियों का पाठ भी निर्धारित किया जाय । जो वाणियाँ केवल ऐसी प्रतियों में प्राप्त होती हैं जो परस्पर संकीर्ण-सम्बन्ध से संबद्ध हैं, उनकी प्रामाणिकता में सन्देह होना स्वाभाविक है, क्योंकि जैसा हम कबीर की उपर्युक्त तथाकथित सौ रचनाओं के सम्बन्ध में देखते हैं, उनकी शेष वाणियों में भी प्रक्षेप हुए होंगे—यह बताने के लिए किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है । इसका यह तात्पर्य नहीं कि इन संकीर्ण-सम्बन्ध वाले प्रति-समूहों में पृथक् रूप से पाए जाने वाले सभी छंद प्रक्षिप्त हैं । सम्भव है कि कुछ न कुछ प्रतिशत इनमें भी प्रामाणिक छंदों का हो; किन्तु उस विशाल मिश्रित राशि में से उस छोटे प्रतिशत को अलग करने का कोई साधन हमारे पास नहीं है ।

प्रस्तुत प्रयास में उपर्युक्त साधनों का ही अवलंबन लिया गया है। अत्यन्त सतर्कता से निर्धारित समस्त 'निश्चेष्ट' और 'सचेष्ट' पाठ-विकृतियों की सहायता से विभिन्न प्रतियों का पाठ-सम्बन्ध निर्धारित किया गया है और तदनन्तर केवल उन्हीं अंशों को कबीर-वाणी के रूप में संकलित किया गया है जो किन्हीं दो या अधिक ऐसी प्रतियों में मिलती हैं जो परस्पर किसी भी प्रकार के संकीर्ण-सम्बन्ध से संबद्ध नहीं हैं और उन्हीं का ठीक-ठीक पाठ-निर्धारण भी इसी सिद्धांत पर किया गया है। किसी रचना की विभिन्न प्रतियों का अवलम्ब लेकर काल के स्थूल आवरण को भेद कर उसके मूल रूप तक पहुँचने का यही एक मात्र अमोघ साधन है।

संतोष का विषय है कि इस प्रकार भी जो वाणी हमें प्राप्त हुई है वह आकार में कम नहीं है। दो सौ पद (या शब्द), बीस रमैनियाँ, एक चौतीसी रमैनी तथा सात सौ चौवालीस साखियाँ प्रामाणिक रूप से कबीर की सिद्ध होती हैं। वास्तविक कबीर के अध्ययन के लिए यदि हम किसी छोटी सी छोटी संख्या के सम्बन्ध में भी यह कह सकते हैं कि वह प्रामाणिक है तो उतना भी पर्याप्त होता। किन्तु जब उनकी रचनाओं की इतनी बड़ी संख्या निश्चित रूप से प्रामाणिक मानी जाने योग्य मिल रही है तो हमें और भी अधिक प्रसन्नता होनी चाहिए।

प्रस्तुत प्रबंध में दो खंड हैं। प्रथम खंड में, जो प्रस्तुत पुस्तक में 'भूमिका' के रूप में दिया गया है, सर्वप्रथम नाना संस्थाओं तथा व्यक्तिगत संग्रहों में सुरक्षित हस्तलिखित प्रतियों तथा विभिन्न रूपांतरों में प्राप्त मुद्रित ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके द्वारा प्रस्तुत सामग्री का विश्लेषण कर कबीर की तथाकथित रचनाओं से प्रमुख आधारभूत प्रतियों को पृथक् किया गया है तथा टीका-टिप्पणी आदि के रूप में उपलब्ध सहायक सामग्री का भी निर्देश किया गया है जिससे पाठ-निर्णय में वास्तविक सहायता मिलती है। इसके पश्चात् संपादन के हेतु प्रमुख रूप से चुनी हुई प्रतियों का विस्तृत विवरण देते हुए पाठ-विकृतियों के आधार पर उनका पारस्परिक संकीर्ण-संबंध स्थिर किया गया है और उनकी समस्त विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए कबीर-वाणी की पाठ-परंपरा भी निर्धारित की गयी है। आगे संकीर्ण-संबंध के ही सिद्धांतों के आधार पर कबीर की प्रामाणिक रचनाओं की संख्या निर्दिष्ट कर उन सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है जिनका प्रयोग वाणी के पाठ-निर्धारण में हुआ है। साथ ही कई प्रतियों में मिलने वाले एक पद के पाठ-निर्धारण का विवेचन भी दिया गया है जिससे प्रस्तुत संपादन में प्रयुक्त सिद्धांतों की स्पष्टता का कुछ

स्पष्टीकरण हो सके। एक पृथक् अध्याय में रचनाओं के क्रम के संबंध में विभिन्न प्रतियों के साक्ष्यों को विवेचना करते हुए प्रस्तुत निबंध में अपनाये जाने योग्य क्रम का निर्धारण किया गया है। अंतिम अध्याय में कुछ ऐसे स्थलों का निर्देश किया गया है जहाँ पर पाठ-निर्णय के उपर्युक्त सिद्धांतों द्वारा पाठ-समस्या का समाधान न होते देख विशिष्ट संशोधनों का प्रस्ताव किया गया है।

द्वितीय खंड में मैंने उन पदों (अथवा शब्दों), रमैयियों और साक्षियों को संकलित कर उनका पाठ-निर्धारण किया है जो उपर्युक्त सिद्धांतों के आधार पर निश्चित रूप से प्रामाणिक सिद्ध हुए हैं।

किसी भी निबंध के संबंध में यह बताना आवश्यक होता है कि उसका कितना अंश मौलिक है। कहने को आवश्यकता नहीं कि अथ से इति तक इस निबंध का समस्त अंश मौलिक है। कवीर-वाणी के पाठ-निर्धारण का यह प्रथम वैज्ञानिक प्रयास है।

यह संपूर्ण कार्य मैंने डॉ० माता प्रसाद गुप्त के निर्देशन में किया है और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से (जो संयोगवश मेरे निर्देशक डॉ० गुप्त के साथ इस निबंध के परीक्षक भी नियुक्त थे) समय-समय पर अनेक उपयोगी सुझाव मिलते रहे जिनका यथास्थान समावेश करने से इस प्रबंध की उपयोगिता में निश्चय ही वृद्धि हो गयी है। वास्तव में यह विषय इतना जटिल था कि सामग्री तथा उपयोगी साहित्य के रहते हुए भी उचित निर्देशन के अभाव में मेरा सीमित ज्ञान कहाँ बहकर लगता, उसकी मैं आज कल्पना भी नहीं कर सकता। उक्त गुरुजनों की कृपा पाकर मैं अपने को सचमुच ही बहुत गौरवान्वित और सौभाग्यशाली समझ रहा हूँ।

अद्वेय श्री परशुराम चतुर्वेदी (बलिया) तथा श्री नरोत्तमदास स्वामी (बीकानेर) से अनेक विवादग्रस्त स्थलों के अर्थ आदि की समस्याएँ सुलझाने में विशेष रूप से सहायता मिलती रही, अतः उक्त महानुभावों का मैं हृदय से आभारी हूँ। आज यह स्मरण करने में मुझे बड़ा सुख हो रहा है कि किस प्रकार तनिक सी भी कठिनाई उपस्थित होने पर मैं उक्त दोनों सज्जनों में से किसी एक को पत्र द्वारा सूचित करता और उसके समाधान के लिए मुझे कभी भी अधिक समय तक प्रतीक्षा न करनी पड़ती।

उन सभी लेखकों के प्रति मैं आभारी हूँ जिनकी पुस्तकों का उपयोग प्रस्तुत ग्रंथ में किया गया है, किंतु 'इंडियन टेक्स्टुअल क्रिटिसिज्म' के लेखक डॉ० एस० एम० कत्रे, 'प्रोलेगोमेना' के लेखक डॉ० बी० एस० सुकथाकर, 'संत

कबीर' के टीकाकार डॉ० रामकुमार वर्मा, 'कबीर-साखी-सुधा' के लेखक प्रो० रामचंद्र श्रीवास्तव तथा बीजक के टीकाकार श्री विचारदास शास्त्री का विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ जिनकी उक्त पुस्तकों से पर्याप्त सहायता मिलती रही।

संपादन-सामग्री जिन सूत्रों से प्राप्त हुई है उनके प्रति भी मैं आभारी हूँ। हस्तलिखित प्रतियों के संबंध में हमें सबसे अधिक सहायता मोतीझंगरी (जयपुर) के श्री दादू-महाविद्यालय के प्रधानाचार्य स्वामी मंगलदास जी से प्राप्त हुई। प्रतियों के अतिरिक्त वहाँ के वातावरण में मुझे अपूर्व शांति मिली और जितने क्षण उक्त विद्यालय में बीते उन्हें मैं अपने जीवन के श्रेष्ठतम क्षणों में गिनता हूँ। आभार-प्रदर्शन उन महात्मा की सादगी को छू तक नहीं जायगा। जयपुर के पुरोहित रामगोपाल शर्मा ने अपने स्व० पिता पुरोहित हरिनारायण शर्मा के संग्रह की प्रतियों को देखने की सुविधा प्रदान की, अतः मैं उनका भी आभारी हूँ। बीकानेर के श्री अगरचंद नाहटा तथा हिंदी विद्यापीठ, आगरा के श्री उदयशंकर शास्त्री ने अपने-अपने संग्रह की प्रतियों के अतिरिक्त अमूल्य सम्मतियाँ भी प्रदान कीं जिनसे प्रस्तुत पुस्तक की सामग्रियों में अधिक विस्तार तथा परिष्कार आ सका, अतः मैं उक्त सज्जनों का विशेष रूप से आभारी हूँ। नागरी-प्रचारिणी-सभा, वाराणसी तथा हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के प्रबंधकों का आभारी हूँ जिन्होंने उक्त संस्थाओं में सुरक्षित कबीर-संबंधी हस्तलिखित प्रतियों का वहाँ बैठकर उपयोग करने की आज्ञा प्रदान की। इंडिया ऑफिस लायब्रेरी के अध्यक्ष का विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने वहाँ की दो प्रतियाँ मेरे कार्य के निमित्त प्रयाग-विश्व-विद्यालय के माध्यम से मेरे पास भेज दी थीं।

दुर्लभ मुद्रित ग्रंथों को प्राप्त करने में सीयाबाग, बड़ौदा के श्री मोतीदास 'चेतन्य' से तथा जौनपुर जिले की बड़ैया गद्दी के आचार्य प्रकाशपति साहब और साधु दयालदास साहब से समय-समय पर बड़ी सहायता मिलती रही जिसके लिए मैं उक्त सज्जनों का कृतज्ञ हूँ।

हिंदी-विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष श्रद्धेय डॉ० धीरेंद्र वर्मा तथा प्राध्यापक डॉ० उदयनारायण तिवारी के उपकारों को मैं जीवन भर नहीं भुला सकता जिन्होंने समय-समय पर मेरे लिए कार्य दे कर मेरी आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने में सहायता प्रदान की। अपने उक्त गुरुजनों की अनुकंपा का आभार मैं किन शब्दों में प्रकट करूँ ?

शोध प्रबंध (थीसिस) के रूप में इसे अक्टूबर सन् १९५६ में परीक्षणार्थ प्रस्तुत किया गया था और अगले वर्ष इस पर प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फ़िल०

की उपाधि प्रदान की गयी। हिंदी परिषद् में तभी से यह प्रकाशनायं पड़ी है, किंतु पहले कागज के अभाव तथा बाद में मेरी कुछ निजी उलझनों के कारण इसकी छपाई में अत्यधिक विलंब लगा। फिर भी टाइप आदि की व्यवस्था में इसके मुद्रक श्री राधे मोहन अग्रवाल ने कुछ उठा न रखा इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रूफ-संशोधन में बहुत सावधानी बर्तने पर भी कुछ अशुद्धियाँ रह गयी हैं, जिनकी सूची पृथक् दी जा रही है। उसकी सहायता से पाठक कृपया अपनी प्रति सुधार लें।

प्रस्तुत पुस्तक द्वारा कबीर की वाणी का सच्चा स्वरूप समझने में और फिर उसके द्वारा उन महात्मा का सच्चा व्यक्तित्व समझने में यदि थोड़ी भी सहायता मिल सकेगी तो मैं अपने परिश्रम को बहुत कुछ सफल समझूंगा।

प्रयाग

५ अक्टूबर, १९६१ ई०

—पारस नाथ तिवारी

जब गुन कौं गाहक मिलै, तब गुन लाख बिकाइ ।
जब गुन कौं गाहक नहीं, तब कौड़ी बदलै जाइ ॥

विषय-सूची

प्रथम खण्ड : भूमिका

§ १ : प्राप्य सामग्री

[पृ० १-३५]

१. हस्तलिखित प्रतियाँ :

श्री दादू महाविद्यालय, जयपुर की प्रतियाँ—	पृष्ठ
दादूपंथी प्रतियाँ : पंचवाणी, सबंगी, गुरगंज ...	१-७
नामा निरंजनीपंथी पोथियाँ ...	७-८
स्व० पुरोहित हरिनारायण के संग्रह की प्रतियाँ ...	८
श्री कबीर-मंदिर, मोतीझूंगरी की प्रतियाँ ...	८-११
नागरी-प्रचारिणी-सभा, वाराणसी की प्रतियाँ ...	११-१८
हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की प्रतियाँ ...	१८
श्री उदयशंकर शास्त्री के संग्रह की प्रतियाँ ...	१८-२१
इंडिया ऑफिस लायब्रेरी की प्रतियाँ ...	२१
पंजाब विश्वविद्यालय के संग्रहालय की प्रतियाँ ...	२२
श्री अग्रचन्द नाहटा की प्रतियाँ ...	२२
खोज रिपोर्टों में उल्लिखित प्रतियाँ ...	२२-२५
अन्य फुटकल उल्लेख ...	२५-२७

२. मुद्रित प्रतियाँ

बीजक की प्रतियाँ ...	२७-३१
श्री गुरुग्रन्थसाहब की प्रतियाँ ...	३१
ना० प्र० स० द्वारा प्रकाशित संस्करण ...	३१
शब्दावली की प्रतियाँ ...	३१-३२
साखी-ग्रन्थ ...	३२-३३
फुटकल संकलन ...	३३
परवर्ती रचनाएँ ...	३३-३५

§ २ : प्राप्त सामग्री का विश्लेषण

[पृ० ३५-५५]

वर्ग १ : कबीर के नाम पर प्रचलित अन्य संप्रदायों के ग्रन्थ

विचारमाल, रतन जोग, काफिरबोध, जैनधर्मबोध, अष्टांग जोग,

नामदेवकौ भगडौ, अजब उपदेस, नामसाला, नसीहतनामा,
चेतावनी, मोनगीता ... ३६-३६

वर्ग २ : कबीर के नाम पर कबीरपंथ की परवर्ती रचनाएँ

१. गोष्ठी-साहित्य : कबीर-गोरख की गोष्ठी, कबीर-शंकराचार्य
गोष्ठी, कबीर-दत्तात्रेय गोष्ठी, कबीर-देवदूत गोष्ठी, कबीर-
जोगजीत गोष्ठी, कबीर-सर्वाजीत गोष्ठी, कबीर-वशिष्ठ गोष्ठी,
कबीर-हुतुमान गोष्ठी आदि ... ३६-४०

२. सृष्टि-प्रक्रिया तथा कबीर के जीवन से संबद्ध पौराणिक शैली
के ग्रन्थ : अनुराग-सागर, ज्ञानसागर, अंबुसागर, स्वसंवेदबोध,
निरंजनबोध, सर्वज्ञसागर, ज्ञानस्थितिबोध, सुक्रितध्यान, कूर्मा-
वली, भवतारन बोध ... ४०-४३

३. पंथ के वाह्याचार से संबद्ध ग्रन्थ : सुमिरन बोध, सुमिरन-
साठिका, चौका सरोदय, एकोतरा सुमिरन, इकतार की रमैनी,
आरती, अठपहरा, चौका पर की रमैनी, अमरमूल, स्वांसाभेद,
ठकसार, विवेकसागर, धर्मबोध ... ४३

४. नाम-माहात्म्य संबंधी ग्रन्थ : ज्ञानबोध, कबीरभेद, मुक्तिबोध,
कबीरबानी, नाममाहात्म्य, ब्रह्मनिरूपण, हंसमुक्तावली, मूल
बानी, मूलज्ञान ... ४३

५. योगसाधन संबंधी ग्रन्थ : कायापाँजी, मूलपाँजी, पंचमुद्रा,
इवासगुंजार, संतोषबोध, कबीरसुरतियोग, सुरतिशब्दसंवाद,
स्वरपाँजी ... ४३-४४

६. नीति-ग्रंथ : ज्ञानगूदड़ी, ज्ञानस्तोत्र, तीसाजंत्र, मनुष्यविचार,
उग्रज्ञानमूलक सिद्धांत या दशमात्रा, अखरावत, अक्षरखंडकी
रमैनी, अलिफनामा ... ४४-४५

७. अन्य ग्रंथ : मुहम्मदबोध, सुल्तानबोध, गरुडबोध, अमरसिंह-
बोध, वीरसिंहबोध, जगजीवनबोध, भूपालबोध, कमालबोध,
गुरुमाहात्म्य, ज्ञानप्रकाश या धर्मदासबोध, अर्जनामा, कबीर
अष्टक, पुकार, सतनाम या सतकबीर बंदीछोर, मंत्र, जंजीरा,
उग्रगीता, गुरुगीता, यज्ञसमाधि, वशिष्ठबोध या ज्ञान संबोधन
ग्रंथ, निर्णयसार, कबीरपरिचय, तिरजा की साखी, रामसार
या रामसागर, आत्मबोध तथा रेखते और भूलने, ज्ञानतिलक,

रामरक्षा, ग्रन्थवत्तीसी (या कबीरवत्तीसी, ज्ञानवत्तीसी, सार-
वत्तीसी) जनम बोध (या जनमपत्रिका की रमैनी, जनमपत्रिका
प्रकाश की रमैनी), राममंत्र, सबदभोग, ब्रह्म निरूपण ... ४५-५०

वर्ग ३ : प्रमुख आधारभूत सामग्री—विभिन्न परंपराएँ

१. दादूपंथी शाखा, २. निरंजनपंथी शाखा, ३. गुरुग्रंथ साहब की शाखा, ४. बीजक की शाखा, ५. स्फुट पदों की शाखा, ६. साखी प्रतियों की शाखा, ७. प्राचीन संकलनों की शाखा, ८. मौखिक परंपरा	...	...	५०-५४
अन्य सहायक सामग्री	...	...	५४-५५

§३ : आधार-प्रतियों का विस्तृत विवरण [पृ० ५५-१४६]

दा० प्रतियों का विवरण : आकार-प्रकार, दा० प्रतियों की सामान्य विशेषताएँ—राजस्थानी प्रभाव, पंजाबी प्रभाव, फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियाँ, नागरी लिपिजनित विकृतियाँ, पुनरावृत्तियाँ ... ५५-६५

नि० प्रति का विवरण : आकार-प्रकार, क्रम, अन्य विशेषताएँ : राजस्थानी प्रभाव, पंजाबी प्रभाव, फ़ारसी लिपिजनित विकृतियाँ, नागरीजनित विकृतियाँ, पुनरावृत्तियाँ ... ६५-७१

गु० का विवरण : परिचय, प्रकाशित संस्करण, कबीर-वाणी का आकार-प्रकार, फ़ारसी लिपिजनित विकृतियाँ : (क) उर्दू 'काफ़', 'गाफ़' के सादृश्य से उत्पन्न विकृतियाँ, (ख) उर्दू ज़वर, ज़ेर पेश की अव्यवस्था के कारण उत्पन्न विकृतियाँ, (ग) उर्दू 'ये' की अव्यवस्था के कारण उत्पन्न विकृतियाँ, (घ) अन्य वर्णों के साम्य के कारण उत्पन्न विकृतियाँ; नागरी लिपिजनित विकृतियाँ, राजस्थानी प्रभाव के कारण आयी हुई विकृतियाँ, पंजाबी प्रभाव के कारण आयी हुई विकृतियाँ, पुनरावृत्तियाँ तथा पुनरावृत्तियाँ, मिश्रित पद, स्थानान्तरित पंक्तियाँ, अन्य विशेषताएँ ... ७१-८६

बी०, बीफ० तथा बीभ० प्रतियों का विवरण : बी० प्रति का संक्षिप्त परिचय, बीफ० का परिचय, बीभ० का परिचय—आकार-

प्रकार, अन्य बीजकों से क्रम आदि का अन्तर, बीभ० की प्राचीनता, बीजक का प्राचीनतम संकलन भी कबीर के वाद का, संत-संप्रदायों में प्रचलित अनुश्रुतियाँ, भगवान साहब : बीजक के मूल संकलयिता, बीजक में पूर्वी प्रयोगों (विहारी) का बाहुल्य, भगवानसाहब का निम्बार्क संप्रदाय से संबंध, 'विप्रमत्तोसी' की स्थिति, अनुरागसागर की साक्षी, भगवान साहब का समय तथा बीजक के संकलन की प्राचीनता, बीजक के प्राचीनतम संकलन का आकार-प्रकार,

बी०, बीक० तथा बीभ० की सामान्य विशेषताएँ : उर्दू मूल की विकृतियाँ, नागरी लिपिजनित विकृतियाँ, पुनरावृत्तियाँ, साखियों में छन्दभिन्नता, ... ५६-१०६

शक० प्रति का विवरण : संक्षिप्त परिचय, आकार-प्रकार, रचनाओं का क्रम, रचयिताओं का विश्लेषण, फ़ारसी लिपिजनित विकृतियाँ, नागरी लिपिजनित विकृतियाँ, पंजाबी प्रभाव, पुनरावृत्तियाँ, सांप्रदायिक प्रभाव, ध्रुवक के क्रम में परिवर्तन ... १०६-११२

शबे० प्रति का विवरण : परिचय, आकार-प्रकार तथा क्रम, पाठ-संबंधी विशेषताएँ, सांप्रदायिक प्रभाव, नागरी लिपिजनित विकृतियाँ, फ़ारसीलिपिजनित विकृतियाँ, पंजाबी प्रभाव, परवर्ती प्रक्षेप, पुनरावृत्तियाँ, कुछ अन्य विशेषताएँ—पदों में साखियाँ, मिश्रित पंक्तियाँ ... ११२-१२२

सा० प्रति का विवरण : आकार तथा लिपिकाल, पाठ संबंधी विशेषताएँ—राजस्थानी प्रभाव, फ़ारसी लिपिजनित विकृतियाँ नागरी लिपिजनित विकृतियाँ, पुनरावृत्तियाँ ... १२३-१२६

सावे० प्रति का विवरण : परिचय, आकार, पुनरावृत्तियाँ, फ़ारसी लिपिजनित विकृतियाँ नागरी लिपिजनित विकृतियाँ, राजस्थानी प्रभाव, सांप्रदायिक प्रभाव ... १२६-१३४

सासी० प्रति का विवरण : परिचय तथा आकार, पुनरावृत्तियाँ, नागरी लिपिजनित विकृतियाँ, फ़ारसी लिपिजनित विकृतियाँ, राजस्थानी प्रभाव, सांप्रदायिक प्रभाव, छंदभिन्नता, परवर्ती प्रक्षेप ... १३४-१४२

स० प्रति का विवरण : परिचय, लिपिकाल, अकार, पाठ संबंधी
विशेषताएँ ... १४२-१४४

गुण० प्रति का विवरण : परिचय, लिपि-काल, आकार, छंद,
संकलित कवियों तथा संतों के नाम, विशेषताएँ—राजस्थानी-
प्रभाव, फ़ारसी लिपिजनित विकृतियाँ, नागरी लिपिजनित
विकृतियाँ, पुनरावृत्तियाँ ... १४५-१४६

§४ : प्रतियों का संकीर्ण-संबंध [पृ० १४७-२१३]

१. दा० तथा नि० का संबंध : फ़ारसी लिपिजनित विकृतियों का
साम्य नागरी लिपिजनित विकृतियों का साम्य, राज-
स्थानीप्रभाव-साम्य, पंजाबी प्रभाव-साम्य, पुनरावृत्तियों में
साम्य, दा३ या दा४ तथा नि० का विशेष नैकट्य, दा५
तथा नि० का नैकट्य, अन्य समुच्चयों के साक्ष्य ... १४७-१५६

२. दा० तथा गु० का संबंध : पुनरावृत्ति-साम्य ... १५६-५७

३. नि० तथा गु० का संबंध : फ़ारसी लिपिजनित विकृति-साम्य,
अन्य समुच्चयों के साक्ष्य ... १५७-५८

४. दा०, नि० तथा गुण० का संबंध : फ़ारसी लिपिजनित विकृति-
साम्य, नागरी लिपिजनित विकृति-साम्य, पंजाबी प्रभाव-
साम्य ... १५८-१६१

५. दा० नि० तथा गुण० का संबंध : फ़ारसी लिपिजनित विकृति-
साम्य, नागरीजनित विकृति-साम्य, राजस्थानी प्रभाव-साम्य १६१-६३

६. दा० नि० स० गुण० " : फ़ारसी जनित विकृति-साम्य,
राजस्थानी प्रभाव-साम्य ... १६३

७ दा० नि० सा० स० गुण० " : नागरीजनित विकृति-साम्य ... १६३-६४

८. दा० स० गुण० " : नागरीजनित विकृति-साम्य ... १६४

९. नि० गु० सा० सासी० " : पुनरावृत्ति-साम्य ... १६४-१६५

१०. नि० गु० सा० " : फ़ारसी लिपिजनित विकृति-साम्य १६५

११. नि० तथा सा० " : फ़ारसी लिपिजनित विकृति-
साम्य, पुनरावृत्ति-साम्य ... १६५-१६७

१२. नि० सा० सासी० का संबंध : फ़ारसी लिपिजनित विकृति-साम्य,
राजस्थानी प्रभाव-साम्य, पुनरावृत्तिसाम्य, ... १६७-१६८
१३. सा० तथा सासी० का० : फ़ारसी लिपिजनित विकृति-साम्य
नागरी लिपिजनित विकृति-साम्य, पदच्छेद सम्बन्धी विकृति-
साम्य, अन्य विकृति-साम्य, छंद-भिन्नता का साम्य,
पुनरावृत्ति-साम्य, अन्य समुच्चयों के साक्ष्य ... १६६-१७५
१४. साबे० तथा सासी० का० : पुनरावृत्ति-साम्य, प्रक्षेप-साम्य,
अन्य साक्ष्य ... १७५-७७
१५. सा० तथा साबे० का० : पुनरावृत्ति-साम्य, अन्य समुच्चयों
के साक्ष्य ... १७७-७९
१६. नि० साबे० का सम्बन्ध : पुनरावृत्ति-साम्य, फ़ारसी लिपि-
जनित विकृति-साम्य ... १७९-८०
१७. सा० साबे० सासी० का सम्बन्ध : उर्दू विकृतियों का साम्य,
नागरीजनित विकृति-साम्य, पुनरावृत्ति-साम्य, प्रक्षेप-साम्य ... १८०-८६
१८. साबे० सासी० गुण० का सम्बन्ध : पुनरावृत्ति-साम्य ... १८६
१९. दा० सा० साबे० सासी० का सम्बन्ध : प्रक्षेप-साम्य ... १८६-८७
२०. बी० सा०, बी० साबे० तथा बी० सा० साबे० का सम्बन्ध :
प्रक्षेप-साम्य, पुनरावृत्ति-साम्य, फ़ारसी लिपिजनित विकृति-
साम्य, अन्य साम्य ... १८७-८३
२१. नि० सा० साबे० का सम्बन्ध : नागरी लिपिजनित विकृति-साम्य,
फ़ारसी लिपिजनित साम्य, राजस्थानी प्रभाव-साम्य, पंजाबी
प्रभाव-साम्य, पुनरावृत्ति-साम्य ... १८३-१८७
२२. दा० नि० सा० सासी० का सम्बन्ध : पुनरावृत्ति-साम्य, राज-
स्थानी, पंजाबी प्रभाव का साम्य, प्रक्षेप-साम्य ... १८७-८८
२३. बी० साबे० कां सम्बन्ध : नागरी लिपिजनित विकृति-साम्य,
पुनरुक्ति-साम्य, प्रक्षेप-साम्य ... १८८-२०२
२४. शक० तथा शबे० का सम्बन्ध : पुनरुक्ति-साम्य, पुनरावृत्ति-
साम्य, प्रक्षेप साम्य ... २०३-२०७
२५. नि० तथा शक० का सम्बन्ध : प्रक्षेप-साम्य ... २०७-०९

संदिग्ध संकीर्ण-संबंध के समुच्चय :

(क) दा० नि० बी० का समुच्चय : पुनरावृत्ति साम्य (?)	... २०६-१०
(ख) दा० नि० गु० " : राजस्थानी प्रभाव साम्य (?)	... २१०-११
(ग) दा० नि० गु० स० " : पुनरावृत्ति साम्य (?)	... २११
(घ) दा० नि० स० शवे० " : पुनरावृत्ति साम्य (?)	... २११-१२
(ङ) नि० शवे० " : संदिग्ध पदों का साम्य	... २१२
कबीर-बाराणी की पाठ-परम्परा का कोष्ठक	... २१३

§५ : पाठ-निर्णय और प्रस्तुत संकलन [पृ० २१४-२६०]

प्रामाणिक रूप से मान्य रचनाओं का निर्देश : समुच्चयों के अनुसार—

पद तथा रमैनियाँ	...	... २१४-२१६
साखियाँ	...	... २१६-२२२

सिद्धान्त :

१. समस्त प्रतियों के सम्मिलित साक्ष्य की दृष्टि से	...	... २२२
२. संकीर्ण-सम्बन्ध के सिद्धान्त की दृष्टि से	...	... २२२-२४
३. प्रतियों के दश-काल की दृष्टि से	...	... २२४-२५
४. लिपि-भ्रम की दृष्टि से	...	... २२५-२६
५. पुनरुक्ति-दोष की दृष्टि से	...	... २२६-३४
६. प्रसंग की दृष्टि से	...	... २३४-४०
७. शब्दों के क्लिष्टतर रूप की दृष्टि से	...	... २४०-४३
८. अर्थ की द्रुवोघता की दृष्टि से	...	... २४४-४५
९. भाषा की दृष्टि से	...	... २४५-४७
१०. व्याकरण की दृष्टि से	...	... २४७-४६
११. प्रयोग-वैषम्य की दृष्टि से	...	... २४६
१२. प्रतिपादित सिद्धान्त अथवा कवि-समय की दृष्टि से	...	... २४६-५०
१३. सांप्रदायिक संशोधनों की दृष्टि से	...	... २५०-५३
१४. तुक की दृष्टि से	...	... २५३-५५
१५. प्रतियों की पाठ-स्थिति की दृष्टि से	...	... २५५-५७
पाठ-निर्धारण का एक उदाहरण	...	... २५७-६०

§६ : बानियों का क्रम

[पृ० २६०-७४]

पदों का क्रम	...	...	२६०-६५
रमैतियों का क्रम	...	...	२६५-७२
साखियों का क्रम	...	...	२७२-७४

§७ : असाधारण संशोधन

[पृ० २७४-२८१]

संशोधन : कारण तथा सिद्धांत	...	२७४-७५
१. सुर तैतीसों कोटिक आए मुनिवर सहस्र अठासी	...	२७५
२. कहै कबीर संसा नहीं भुगुति मुकुति गति पाइ रे	...	२७५
३. पठए न जाउं अनवा नहि आऊं सहज रहूं दुनियाई हो	...	२७५
४. मन आहर कहं बाद न कीजै	...	२७६
५. चिरकुट फारि चुहाड़ा लै गयो तनी तागरी छूटी	...	२७७
६. आयौ चोर तुरंगहि लै गयो मोहड़ी राखत मुगध फिरै	...	२७८
७. तरवर एक पींड बिनु ठाढ़ा बिनु फूनां फल लागे	...	२७९
८. मैं कातों हजारी क सूत चरखुला जिनि जरै	...	२७९
९. हरि के खारे बरे पकाए जिनि जाने तिन खाए	...	२८०
१०. तलि करि पत्ता ऊपरि करि मूल	...	२८०
११. राजस्थानी सी प्रत्ययांत क्रियाओं का-ई अथवा	...	२८०-८१
-है प्रत्ययांत रूपों में परिवर्तन	...	२८०-८१

द्वितीय खंड : कबीर-वाणी का निर्धारित पाठ

पद	[पृ० ३—११७]
१. सतगुरुमहिमा	३-५
२. प्रेम	५-१२
३. नाउं महिमा	१२-१७
४. साधु महिमा	१७-२२
५. करुनां बीनती	२२-२७
६. परचा	२८-३३
७. सूरान	३३-३४
८. उपदेश चितावनीं	३५-५८
९. काल	५८-६१

१०.	(भगति) सजेवनि	...	...	६२
११.	अनभई अथवा भेदबांनों	...	...	६३-६६
१२.	निरंजन राम	...	...	८६-८२
१३.	माया	...	...	८३-८७
१४.	निंदक साकत	...	...	८७-८८
१५.	भेख आडंबर	...	...	८८-१०२
१६.	भरमबिधूसन	...	...	१०३-११७

रमैनी

[पृ० ११७-१३५]

१.	रमैनी	...	...	११७-१२६
२.	चौंतीसी रमैनी	...	...	१२६-१३५

साखी

[पृ० १३५-२४२]

१.	सतगुरुमहिमा कौ अंग	...	...	१३५-४०
२.	प्रेमबिरह	...	...	१४०-४८
३.	सुभिरन भजन महिमा	...	...	१४६-४२
४.	साधु महिमा	...	...	१५२-५६
५.	गुरसिखहेरा	...	...	१५६-६०
६.	दीनता बीनती	...	...	१६१-६२
७.	पिउ पहिचानिबे	...	...	१६२-६४
८.	संअथाई	...	...	१६४-६६
९.	परचा	...	...	१६६-७२
१०.	सूखिम मारग	...	...	१७२-७४
११.	पतिव्रता	...	...	१७४-७७
१२.	रस	...	...	१७७-७८
१३.	बेलि	...	...	१७८-७९
१४.	सूरातन	...	...	१७९-८४
१५.	उपदेस चितावनीं	...	...	१८५-८७
१६.	काल	...	...	१८८-२०३
१७.	सजेवनि	...	...	२०३-२०४
१८.	पारिख अपारिख	...	...	२०४-२०६
१९.	जीवनमृत	...	...	२०६-२०८

२०.	निरपखमधि	...	...	२०८-१०
२१.	सांच चांणक	...	...	२१०-१५
२२.	निगुणां नर	...	...	२१५-१७
२३.	निदा	...	...	२१७-१८
२४.	सगति	...	...	२१८-२१
२५.	भेख आडंबर	...	...	२२१-२४
२६.	भरम बिघ्नसन	...	...	२२४-२६
२७.	सारग्राही	...	...	२२६-२७
२८.	बिचार	...	...	२२७-२८
२९.	मन	...	...	२२८-३१
३०.	बिखै बिकार	...	...	२३१-३५
३१.	माया की अंग	...	...	२३५-३८
३२.	बेसास	...	...	२३८-४१
३३.	करनीं कथनों	...	...	२४१-४२
३४.	सहज	...	...	२४२

परिशिष्ट

[पृ० २४३-३०६]

(क) अनुक्रमणिका	...	२४३-२७७
(ख) विवृति-सूची	...	२७८-२८९
(ग) सहायक-साहित्य	...	२९३-३०६

संकेत-विवृति

- उप० = उपदेश (कबीर की वाणी का प्रकरण-विशेष)
- व० = कहरा (छंद विशेष)
- क्र० सं० = क्रम-संख्या
- गु० = श्रीगुरुग्रन्थसाहब (सिक्खों का धर्मग्रन्थ, प्रस्तुत प्रबंध में सर्वहिंदु सिक्ख मिशन द्वारा प्रकाशित संस्करण—सन् १९३७ ई०)
- गुण० = गुणगंजनामा (संतसाहित्य का एक संग्रह-ग्रन्थ जिसका संकलन जगन्नाथदास दादूपंथी ने किया था। प्रस्तुत पुस्तक में संवत् १८५३ की लिखी पोथी जो दादू महाविद्यालय, जयपुर में है।)
- ग्रंथा० या 'ग्रंथावली' = कबीर-ग्रंथावली (बाबू श्यामसुन्दरदास द्वारा संपादित तथा नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित, सं० १९८५ वि०)
- चिता० = चितावनी (प्रकरण विशेष)
- चिता० उप० = चितावनी उपदेश (प्रकरण)
- तुल० = तुलनीय अथवा तुलना कीजिए
- दा० = दादूपंथी (प्रति अथवा शाखा विशेष)
- दे० = देखिए
- ना० प्र० सं० = नागरी-प्रचारिणी-सभा, वाराणसी
- नि० = निरंजनी-सम्प्रदाय की (प्रति-विशेष)
- पु० = पुल्लिंग
- पुन० = पुनरुक्ति अथवा पुनरावृत्ति
- पृ० = पृष्ठ (संख्या)
- फ़ा० = फ़ारसी (भाषा)
- ब० = बसन्त (छंद विशेष)
- बी० = बीजक (ग्रन्थ या प्रति विशेष)
- बी० क० = बीजक का कहरा
- बीक० = बीजक फतुहा, जिला पटना परम्परा का प्रस्तुत पुस्तक में सं० १९५० वि० की लिखी हुई पोथी जो श्री उदयशंकर शास्त्री के संग्रह में है।)
- बी० ब० = बीजक का बसंत

बीभ० = बीजक भगवान साहब अथवा भगताही शाखा का (मानसर गद्दी,
जिला छपरा के आचार्य महन्त मेथीगुसाई द्वारा प्रकाशित,
सन् १९३७ ई०)

बी०र० = बीजक की रमैती

बी०सा० = बीजक की साखी

र० = रमैती (छंद-विशेष)

र०सा० = रमैती के अन्त की साखी

राज० = राजस्थानी (भाषा)

राज०प्र० = राजस्थानी भाषा का प्रभाव

राधा० = राधास्वामी मत या संप्रदाय

लि०का० = लिपि-काल

विप्र० = विप्रमतीसी (रचना-विशेष)

शक० = कबीर साहब की शब्दावली, कबीरचौरा की (प्रस्तुत प्रबंध में
कबीरचौरा के साधु अमृतदास द्वारा प्रकाशित चौथा संस्करण,
सं० २००७)

शबे० = कबीर साहब की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित
(प्रस्तुत पुस्तक में सन् १९४६ ई० का संस्करण)

सं० = संवत् अथवा संस्कृत (प्रसंगानुसार)

स० = सबंगी (संत-साहित्य का एक अप्रकाशित संग्रह-ग्रन्थ जिसका
संकलन दादूपंथी संत रज्जब जी ने किया था। प्रस्तुत पुस्तक
में सं० १८३० के लगभग की लिखी हुई हस्तलिखित प्रति
जो दादू-विद्यालय, जयपुर में है।)

सभा = काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा, वाराणसी

सा० = साखी (छंद) अथवा साखियों की प्रति विशेष, जो कबीर-मंदिर,
मोती डूंगरी, जयपुर में है और सं० १८८१ वि० की लिखी हुई है।

साबे० = साखी ग्रन्थ, बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित (प्रस्तुत पुस्तक में
सन् १९२६ ई० का संस्करण)।

सासी० = सतगुरु कबीर साहब का साखी-ग्रन्थ : सीयाबाग, बड़ौदा से
प्रकाशित, सन् १९३५ ई०।

खी० = खीलिग

हि० = हिन्दी (भाषा)

भूमिका

भूमिका



§ १ : प्राप्य सामग्री

कबीर-वाणी की प्रतियाँ दो रूपों में मिलती हैं : हस्तलिखित और मुद्रित । नीचे इसी क्रम से इनका संक्षिप्त विवरण दिया जायगा ।

१. हस्तलिखित प्रतियाँ

मुझे कबीर की वाणियों के निम्नलिखित हस्तलेख विभिन्न स्थानों पर देखने को मिले हैं ।

श्री दादू-महाविद्यालय, जयपुर की प्रतियाँ

मोतीझूंगरी (जयपुर) के दादू-महाविद्यालय में पंद्रह प्रतियाँ ऐसी हैं जिनमें कबीर की वाणियाँ मिलती हैं । इनमें मुख्यतया दो प्रकार की सामग्रियाँ हैं । तेरह प्रतियाँ तो ऐसी हैं जो दादूपंथी संतों द्वारा लिपिबद्ध हुई हैं और दो ऐसी हैं जिनका संग्रह निरंजनीपंथ में हुआ था और वे निरंजनीपंथ के साधुओं द्वारा लिखी गयी हैं ।

दादूपंथी प्रतियाँ—दादूपंथ में पाँच महात्माओं की वाणियाँ एक ही ग्रन्थ में सुरक्षित रखने की परंपरा बहुत दिनों से चली आ रही है । ऐसे संकलन को पंचवाणी कहा जाता है । ग्रन्थ में सर्वप्रथम स्थान उक्त संप्रदाय के संस्थापक दादू की वाणियों को दिया जाता है, दूसरा स्थान कबीर की वाणियों को और तीसरा, चौथा तथा पाँचवाँ स्थान क्रमशः नामदेव, रैदास तथा हरदास^१ को । पंचवाणी को दादूपंथी लोग बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते हैं और अब भी वहाँ इसकी आरती उतारी जाती है । राजस्थान में पंचवाणी-प्रतियों की भरमार है । ऊपर जिन तेरह प्रतियों की चर्चा हुई है वे प्रायः पंचवाणी-परंपरा की ही हैं । आगे इनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है ।

१. यह हरदास निरंजनी संप्रदाय के हरिदास से भिन्न है ।

२. महाराष्ट्र में भी 'संत-पंचायतन' की मान्यता है जिसके अंतर्गत क्रमशः ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, समर्थ रामदास तथा तुकाराम की गणना होती है ।

पहली प्रति साढ़े छः सौ पत्रों की है और आकर्षक रेशमी जिल्द में पुस्तकाकार बँधी है। पुष्पिका के अनुसार दादूपंथी बाबा बनवारीदास की शिष्य-परंपरा में विष्णुदास के शिष्य मोतीराम के द्वारा सं० १८३१ वि० में राजस्थान के दादरी नामक स्थान में लिपिबद्ध हुई।

दूसरी प्रति, जो लगभग सवा फुट लंबी और छः इंच चौड़ी है, ६६५ पृष्ठों की है। इसमें पंचवाणी के अतिरिक्त १३ ग्रन्थ और हैं जिनमें राघवदासकृत 'भक्तमाल' और रज्जव की 'सर्वंगी' (दोनों अप्रकाशित) भी हैं जो संत-साहित्य में बहुत महत्वपूर्ण हैं। 'सर्वंगी' में कबीर की भी बानी मिलती है। इस पोथी में लिपि-काल नहीं दिया है, किन्तु अनुमान से यह सम्भवतः विक्रम की १६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में किसी समय (सं० १८३० के लगभग) लिखी गयी होगी।

तीसरी प्रति, जो अब बहुत जीर्ण हो गयी है, आकार में कुछ छोटी (६ इंच X ५ इंच) और सं० १७६८ वि० की लिखी हुई है। यह प्रति आरम्भ व अंत में कुछ खंडित हो गयी है और लगभग १००० पत्रों की है। इसमें अन्य प्रतियों की तरह पंचवाणी का क्रम नहीं मिलता। पहले सुन्दरदास के सबैयों से आरम्भ कर फिर क्रमशः दादू की साखियाँ, प्रागदास की साखियाँ, कबीर की साखियाँ, फिर दादू के पद, कबीर के पद, कबीर की रमैणी चंदैणी और तत्पश्चात् नामदेव तथा तिलोचन की परचइयाँ मिलती हैं। अंत में 'सुखदेव का लीलाग्रन्थ', और सुन्दरदास की 'विवेकचितावणी' दी हुई हैं। इसे लक्ष्मीदास के शिष्य जगन्नाथदास (कथाचित् 'गुणगंजनामा' के संकलनकर्ता?) ने डीडवाने में लिखी थी। आगे इन प्रतियों का विस्तृत विवरण दिया जायगा।

चौथा ग्रन्थ भी, जो सं० १८५४ वि० में लिखा जाकर तैयार हुआ, ५६४ पत्रों का बड़े आकार का (१ फुट २ इंच X ६ इंच) संग्रह-ग्रन्थ है। ग्रन्थ आदि से अंत तक एक ही व्यक्ति द्वारा अत्यन्त सुन्दर नागराक्षरों में लिखा हुआ है। बीच के चार पत्रों पर आकर्षक रंगों के बेलबूटे बनाये हुए हैं और कुछ पृष्ठों के बाद कमल-पुष्प पर बैठे हुए ब्रह्मा जी के दो छोटे-छोटे चित्र मिलते हैं। पोथी की लिखाई और बँधई की कला दादूपंथियों की विशिष्टता की परिचायक है। दादू की वाणी के पश्चात् जो पुष्पिका^३ दी हुई है उससे ज्ञात होता है कि पोथी का उतना अंश नैराणा (राजस्थान) के दादूद्वारा में लिखा जाकर सं० १८५३ वि० की आश्विन कृष्ण अमावस्या शुक्रवार को समाप्त हुआ। पुष्पिका में

३. "समत ॥ १८५३ ॥ शुभ स्थान नराणां दादूद्वारा मध्ये वर्ष मासे आसोज कृष्ण पक्षे तिथौ अमावस्या सुभारे शुक्र दिने संपूर्ण भवति और म जो आ दादू दयाल जो ॥

लिपिकर्ता तथा काल आदि का विवरण इस प्रकार दिया गया है—

“मिती कागुण बदीर संवत् ॥ १८५४ ॥ का पुस्तक संपूर्ण भवते द्वार सुकरवार । लिपतं स्यान्
याचरया चकस मध्ये महंत मनसाराम जी कै असयलि । स्वामी गरीबदास जी की गादी ॥
महंत श्री जागूदास जी को शिष्य दासान्यदास पानाजाद गुलाम भगवानदास पुस्तक
लिप्यी ॥”

इसमें कबीर की बाणी पोथी के पाना (= पत्रा या पन्ना) १३१ से २१६ तक आती है जिसमें ८१० साखियाँ, ३८४ पद तथा ४ रमैणियाँ हैं । प्रति-पृष्ठ ३३ पंक्तियाँ और प्रतिपंक्ति १८ अक्षर आये हैं । संकलन की दृष्टि से पोथी के पाँच खंड किये जा सकते हैं—१. पंचबाणी, २. दादूपंथी संतों की बाणियाँ, ३. अन्य संत-महात्माओं की फुटकल बाणियाँ, ४. नाथ-योगियों की बाणियाँ, तथा ५. दादूपंथियों की फुटकल रचनाएँ ।

पाँचवाँ ग्रन्थ आकार में ७ इंच X ५ इंच है । बीच की नत्थी तक पत्र-संख्या २८५ डाली हुई है जिससे ज्ञात होता है कि इसमें कुल ५७० पत्रे हैं । इसमें कबीर की बाणी पाना १४८-२३७ पर्यंत है और उसमें उनको ८६० साखियाँ, ३८६ पद तथा ७ रमैणियाँ आयी हैं । पुष्पिका में साखियों की संख्या ६०० दी हुई है, जो गलत है और पूर्णता की दृष्टि से दो हुई ज्ञात होती है । जहाँ कबीर की बाणी आयी है वहाँ प्रतिपृष्ठ २७ पंक्तियाँ और प्रतिपंक्ति २४ अक्षर आये हैं । पोथी में पंचबाणी के अतिरिक्त दादूकृत ‘कायावेली’ पर टीका, चतुरदासकृत भागवत एकादशस्कंधभाषा, सुन्दरदासकृत ‘ज्ञानसमुद्र’, सर्वेये और अष्टक, राघव-दासकृत ‘भक्तमाल सटीक’ (चतुरदास कृत टीका सहित), रज्जव के कवित्त, भीखजनदास कृत ‘भोखवावनी’ नामक ग्रन्थ भी मिलते हैं । इसे दादूपंथी साधु गोविन्ददास ने सं० १८८० वि० के फाल्गुन मास में संपूर्ण किया था ।

छठा, जिसे दादूपंथी बाबा वेणीदास ने सं० १८४७ वि० में कार्तिक कृष्णा चतुर्थी, सोमवार को राजस्थान के अलेवा नामक स्थान में समाप्त किया, ५४० पत्रों का संग्रहग्रन्थ है और आकार में १ फुट X ४ ॥ इंच है । इसमें पंचबाणी के पश्चात् क्रमशः रज्जव की ‘सर्वेगी’, गरीबदास (दादू के पुत्रशिष्य) तथा बखना की बाणियाँ, बनवारीदास तथा टीला के पद, सुन्दरदासकृत ‘ज्ञानसमुद्र’ और ‘अष्टक’ तथा कान्हा जी की बाणी और हैं । वेणीदास ने पुष्पिका में अपनी गुरुपरंपरा दी है, जिससे दादूपंथियों की एक शाखा के काल-क्रम पर प्रकाश पड़ता है । अंत में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दादू के कई शिष्यों के नाम-ग्राम दिये हुए हैं जिससे दादूपंथ के इतिहास-निर्माण में सहायता मिल सकती है । इस ग्रन्थ में कबीर की बाणी पाना १११ से १८६ तक आती है और इसमें भी अन्य पंच-

वाणी-प्रतियों की भाँति कबीर की ८१० साखियाँ, ३८६ पद तथा ७ रमैणियाँ मिलती हैं।

सातवाँ भी एक संग्रहग्रन्थ है जिसमें कुल ५१२ पत्रे हैं और जो आकार में ऊपर वाले ग्रन्थ के समान ही है। पुष्पिका के अंत में लिखा है, “पोथी लिखी तीनै मिलि करि जसराम, सोभाराम, रामधन।” जिससे ज्ञात होता है कि पोथी तीन विभिन्न व्यक्तियों द्वारा लिपिबद्ध हुई और लेखन की तीन विभिन्न शैलियाँ स्पष्ट दिखाई भी पड़ती हैं। जसराम ने भी अपनी गुरुपरंपरा दी है जो वेणीदास की उपर्युक्त तालिकासे कुछ भिन्न है। पोथी सं० १८४५ वि० में अम्बाला शहर में लिख कर तैयार हुई। इसमें पंचवाणी में आयी हुई वाणी के अतिरिक्त कबीर के नाम से दो ग्रन्थ (१-बलक के पातसाह की रमैणी, २-कबीर-गोरख-गोष्ठी) और मिलते हैं; किन्तु वास्तव में यह ग्रन्थ कबीरकृत नहीं। आगे इनकी प्रामाणिकता के संबंध में किंचित् विस्तार से विचार किया जायगा। कबीर की वाणियों के अतिरिक्त इसमें कई दादूपंथियों की वाणियों के साथ पृथ्वोनाथ (नाथयोगी)-कृत ‘भगतिवैकुण्ठजोग’, ‘नांवमहात्म’ और ‘गृहवैराग’ नामक ग्रन्थ तथा अनाथदासकृत ‘श्री विचारमाल’ (जिसे खोज-रिपोर्टों में भ्रम से कबीरकृत माना गया है) और सूरदास के कुछ फुटकल पद भी मिलते हैं।

आठवाँ ग्रन्थ भी पंचवाणी-परंपरा का है जिसे दादूपंथी बाबा रामधन ने नागौर (राजस्थान) में सं० १८४१ वि० में लिखा था। इसमें कबीर की वाणी पाना ११८ से १६५ तक आयी है जिसमें ८१० साखियाँ, ३८४ पद और ७ रमैणियाँ हैं। इस ग्रन्थ में रज्जव की ‘सर्वंगी,’ भी मिलती है जिसमें कबीर की भी वाणियाँ हैं।

नवाँ ग्रन्थ खुले पत्रों का है जिसे बोहर (राजस्थान) के साधु कानड़दास ने सं० १८८० वि० में “लिख करि श्रीपाल कांजी सुखदेव जी पुजारी जी नैं चढ़ाई अपनी भावना करिकै।” यह ग्रन्थ भी पंचवाणी-परंपरा का है, किन्तु इसमें केवल कबीर, नामदेव, रैदास और हरदास की वाणियाँ हो हैं, दादू की वाणी नहीं है। ज्ञात होता है, खुली पोथी होने के कारण दादू वाला अंश कहीं स्थानांतरित हो गया है। इसमें कबीर की ६१७ साखियाँ (३५ पत्रों में), ४०७ पद (५६ पत्रों में) तथा ८ रमैणियाँ (१२ पत्रों में) हैं। अन्य पंचवाणी-प्रतियों की अपेक्षा इसमें कबीर के साखी-पदों की संख्या कुछ अधिक हो गयी है, क्योंकि जैसे-जैसे समय बीतता गया वैसे ही वैसे प्रक्षेपों के कारण उसमें वृद्धि होती गयी।

दसवीं प्रति में पुष्पिका के अंत में लिखा है, “लिख करि श्रीपाल कांजी सुखदेव जी पुजारी जी नैं चढ़ाई अपनी भावना करिकै।” यह ग्रन्थ भी पंचवाणी-परंपरा का है, किन्तु इसमें केवल

कबीर की ही वाणी है। इसमें 'कबीर-ग्रन्थावली' (ना० प्र० सं०) की 'क' प्रति के समान ८१० साखियाँ, ४०१ पद तथा ८ रमैणियाँ हैं। पुष्पिका से ज्ञात होता है कि यह प्रति बाबा भगवानदास जी के पठनार्थ किसी दादूपंथी ने सं० १८६६ वि० में लिखी थी।

ग्यारहवीं, ६८ पत्रों की खुली पोथी है जिसमें दादू व कबीर, नामदेव तथा हरदास की कुछ चुनी हुई वाणियाँ ही टीका सहित दी हुई हैं। इसमें कबीर की ३१ साखियाँ और १२५ पद सटीक मिलते हैं। रैदास की वाणी इसमें नहीं आयी है, किन्तु नाम 'पंचवाणी' ही दिया हुआ है। इसमें लिपि-काल नहीं दिया है, किन्तु अनुमान से १६वीं शताब्दी वि० की ज्ञात होती है।

बारहवीं प्रति, जिसमें कबीर की वाणी मिलती है, रज्जव द्वारा संग्रहीत 'सर्वंगी' नामक एक संकलन-ग्रन्थ है। ऊपर दादू-विद्यालय की जिन पोथियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है उनमें क्रमशः दूसरी, छठी और आठवीं पोथियों में यह 'सर्वंगी' मिलती है। ना० प्र० सभा की भी एक पोथी में 'सर्वंगी' है। इसमें अन्य संतों के अतिरिक्त कबीर की भी वाणी संकलित है।

तेरहवीं प्रति 'गुणगंजनामा' की है। यह भी 'सर्वंगी' की तरह संकलन-ग्रन्थ है जिसका चयन दादूपंथी जगन्नाथदास ने किया था। इसमें लगभग साठ कवियों तथा संतों के दोहे अंगों के अनुसार संग्रहीत हुए हैं जिनमें कबीर की भी साखियाँ पर्याप्त संख्या में मिलती हैं। यह पोथी किसी दादूपंथी द्वारा सं० १८५३ वि० में लिखी गयी थी।

निरंजनीपंथी पोथियाँ—दादू-महाविद्यालय में दो पोथियाँ निरंजनीपंथ की भी हैं। इनमें से पहली सं० १८६१ वि० की लिखी है और दादूपंथी ग्रन्थों के समान ६६६ पत्रों का मोटा संग्रह-ग्रन्थ है। पुष्पिका में कबीर की वाणियों का योग इस प्रकार दिया हुआ है : साखी १३७७, रमैणी १३, रेखता ७ तथा पद ६६२। इसके अतिरिक्त 'जन्मबोध पत्रिका की रमैनी', 'ग्रंथवतीसी', 'राममंत्र' तथा 'प्रचर्यचिन्तामनि' नामक अन्य ग्रन्थ भी कबीर के नाम से मिलते हैं। आगे इस प्रति का विस्तृत विवरण दिया गया है।

दूसरी पोथी ५३६ पत्रों की है और आकार में ऊपर वाली पोथी से कुछ छोटी (६ इंच X ८ इंच) है। इसमें क्रमशः हरिदास, सेवादास, कबीर तथा तुरसीदास निरंजनी की वाणियाँ मिलती हैं। हरिदास की वाणी के पश्चात् १५२ पाना पर जो पुष्पिका दी हुई है उससे ज्ञात होता है कि प्रति निरंजनी साधु मोहनदास द्वारा संपादित (राजस्थान) नामक स्थान में सं० १८२६ वि० की वैशाख

शुक्ला सप्तमी शुक्रवार को लिख कर पूरी की गयी। इसमें कबीर की वाणी पाना ४०६ से ५१८ तक आयी है, जिसका पाठ ऊपर वाली पोथी में आयी हुई वाणी से अवरशः मिलता है।

स्व० पुरोहित हरिनारायण के संग्रह की प्रतियाँ

स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा (तहवीलदारों का रास्ता, जयपुर सिटी) के यहाँ हिन्दी की प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का बड़ा अच्छा संग्रह है। उनके संग्रह में दो पोथियाँ ऐसी हैं जिनमें कबीर की वाणियाँ मिलती हैं। दोनों ही ग्रन्थ दाहूपंथियों द्वारा लिखे गये हैं और पंचवाणी-परम्परा के ज्ञात होते हैं। इनकी रूपरेखा संक्षेप में निम्नलिखित है।

पहला ग्रन्थ, जो अब अत्यन्त जीर्ण हो गया है, सं० १७१५ वि० का लिखा है। इसकी पुष्पिका में कबीर के क्रमशः ४०० पदों, ७ रमैणियों तथा ८०० साखियों का निर्देश है। इसी पुस्तक में आगे चल कर 'अगाध बोध' नामक एक अन्य रचना भी कबीर के नाम पर आयी है। यह पोथी पुरोहित जी के वस्ता नं० ७ में मिलती है। हमें कबीर की जितनी प्रतियाँ मिली हैं उनमें यह लिपिकाल की दृष्टि से सर्वाधिक प्राचीन है।

दूसरा ग्रन्थ, जो उक्त संग्रह के वस्ता नं० २ में है, ३३० पत्रों का है और सं० १७४१ वि० का लिखा हुआ है। आगे इन दोनों ग्रन्थों का विवरण विस्तार से मिलेगा, अतः यहाँ संक्षेप में निर्देश मात्र कर दिया गया।

श्री कबीर-मंदिर, मोतीझूंगरी की प्रतियाँ

जयपुर में मोतीझूंगरी महल के नीचे पहाड़ी से लगा हुआ एक छोटा सा कबीर-मंदिर है, जिसमें कबीर और कबीरपंथ के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ रक्खे हुए हैं। वहाँ कबीर के नाम पर जो कुछ मिला है उसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

पहला ग्रन्थ, जिसमें ५७४ पत्रे हैं, सं० १८८१ वि० का कबीरपंथी साधु भगौतीदास का लिखा हुआ है। इसमें पहले कबीर की साखियाँ हैं, जिनकी संख्या पोथी में २८८८ दी हुई है और जो १०८ अंगों में विभाजित हैं। इसके अतिरिक्त २६ रचनाएँ ऐसी और मिलती हैं जिन्हें पोथी में कबीरकृत माना गया है किन्तु वास्तव में यह रचनाएँ न तो कबीर की हैं और न उनके जीवनकाल की ही। आगे इनके कबीरकृत होने के संबंध में विस्तार से विचार किया गया है, अतः यहाँ केवल तालिका दी जाती है, जो इस प्रकार है—

१. ज्ञानसागर—पाना १४३ से २२४ तक।

२. विवेकसागर—पाना २२४ से २३५ तक।

३. रतनजोग—पाना २३५ से २४४ तक।

४. षटशास्त्र की मूल—२४४ से २४५ तक।

५. कबीर स्वरोदय—पाना २७५ से २५२ तक ।
७. जन्मपत्रिका की रमैनी—२५७ से २७० तक ।
९. कबीरहनुमानगोस्ती—पत्रसंख्या नहीं ।
११. कबीरजोगाजीत—३३ दोहे ।
१३. गुरगीता—साखी चौपाई छंद ११९९ ।
१५. हंसमुक्तावली या कबीरधर्मदाससंवाद ।
१७. अछरोटी ग्रंथ—सोरठा चौपाई में ।
१९. आगम व्योहार—चौपाई दोहा ।
२१. अष्टांग जोग—७९ दोहे ।
२३. अक्षर खंड की रमैना—४६ समै में ।
२५. धामधेनु ।
२७. प्राणसंज्ञा—३३ दोहे ।
२९. सुखनिधान—रमैना-समै में कबीर धर्मदास का संवाद (कुल ११२ समै) ।
६. ज्ञान तिलक—पाना-२५२ से २५७ तक ।
८. ग्रन्थ कूरम्भावली—२७० से २८८ तक
१०. कबीरगोरखगोस्ती—४१ दोहों में ।
१२. कबीरगोरखगोस्ती—दूसरी, ७९ दोहे
१४. रेखता ग्रंथ—२७० रेखते ।
१६. कबीर सतग्रंथ ।
१८. आत्मबोध—४३ साखियाँ ।
२०. रमैनी सीढ़ीमूल आदि ।
२२. सारवतीसी—३३ रमैनी ।
२४. अजपा गायत्री—१८ साखी ।
२६. कबीरकमालगोस्ती—३३ दोहा ।
२८. बारानासा—५१ छंद ।

दूसरा ग्रन्थ भो मोतीहूँगरी स्थान के कबीरपंथी साधु भगौतीदास का लिखा हुआ है और आकार में ५ इंच X ८ इंच है । बीच की नत्थी तक पत्र सं० २७५ डाली गयी है, जिससे पूरा ग्रन्थ २७५ X २ = ५५० पत्रों का ज्ञात होता है । लि० का० सं० १८७७ वि० है । इसमें भो पहले २६५ पाना तक कबीर की साखियाँ (अंग १०८, संख्या २८७६) देकर आगे क्रमशः 'उग्रगीता', 'सुखनिधान', 'ज्ञान-सागर' तथा 'हंसमुक्तावली' नामक ग्रन्थ लिखे गये हैं, जिनमें से पिछले तीन ग्रन्थ - पहली पोथी में भो आ चुके हैं । पुष्पिका इस प्रकार है—

“इति श्री...ग्रंथ संपूर्ण सत सही । सतगुरु कबीर कौ वाखंवार हंडोत । दो० स्वामी शंकरदास जी सोमित परम सुजान । पुस्तक लिखि पूरन कियो तेहि अग्र्या परवान ॥ २ ॥...पुस्तक लिख्यो जयपुर मोतीहूँगरी मधे संमत ॥ १८७७ ॥ मागसीर यदि ॥ १२ ॥ सनीसरचार ॥”

तीसरा गुटका (६ इंच X ४ इंच) सं० १८६६ वि० का लिखा हुआ है । इसमें कुल ७८० पत्र हैं और निम्नलिखित चौदह ग्रन्थ हैं—१. कबीर साहेब का साखीग्रन्थ (अंग १०८, साखी २८६४; पाना १—२१५ तक), २. त्रिधावेदांत, ३. भागवतएकादशस्कंधभाषा (चतुरदासकृत), ४. भक्तिविवेक, ५. मोह-मरद की कथा, (जगन्नाथदास कृत), ६. विवेकसागर, ७. रेखता, ८. विचार-माल, ९. संतोषसुरत, १०. नाममंजरी, ११. गुरुमहिमा, १२. मंगल, १३. सुमिरणमंत्र, १४. सवइए छीतर जी के । पुष्पिका से ज्ञात होता है कि यह गुटका रामपुर अथवा रामगंज (जयपुर) में कबीरपंथी साधु पूरणदास के द्वारा राघोदास के पठनार्थ लिखा जाकर सं० १८६६ वि० में वैशाख सुदी १२, मंगल-वार को संपूर्ण हुआ ।

चौथा गुटका केवल ७० पत्रों का है । इसके अंत में यद्यपि “फूटकर अंग साखी पनरे सम्पूर्ण” लिखा हुआ है, किन्तु इसमें १४ अंग ही मिलते हैं जिनमें कुल ३८८ साखियाँ हैं । लिपिका खूब तूटती है ।

पाँचवी प्रति, जो १५० पत्रों की है, अत्यन्त अष्ट नागरी लिपि में लिखी हुई है। इसमें निम्नलिखित ग्रन्थ आये हैं—१. गरुडबोध, २. हनुमानगोष्ठी, ३. ज्ञान-प्रकाश, ४. मुहम्मदबोध, ५. आरती, ६. पंचभूतमात्रा, ७. भूलने (४५), ८. चौजुगोलीला, ९. अगाधमंगल, १०. पद (चाँचर, बसंत, होरी, काफी, गौड़ी, धनासरी, बिहागरा, बधावा, बनरो, डोरडो, रेखता), ११. गुरुप्रणाली, १२. शब्द प्रभाती, १३. षट्शास्त्र को मत, १४. शब्द (मारफत, धमार, होरी), १५. अर्जनामा। इसे सं० १८७३ वि० में लालदास ने लिखा और कबीरपंथी साधु संकरदास ने लिखाया था। इसके सारे पदों की मैंने प्रतिलिपि कर ली थी; किन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि इसमें संगृहीत सारी रचनाएँ परवर्ती हैं और अन्य किसी शाखा में नहीं मिलतीं। भाषा भी अत्यन्त आधुनिक है।

छठी पोथी भी, जो ५८८ पत्रों की है, आधुनिक शैली की है जिसमें कबीर के नाम से प्रचलित अनेक साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं। इनमें से कई ग्रन्थों के नाम दूसरी पोथियों तथा खोज-रिपोर्टों में भी मिलते हैं, किन्तु कई नाम नये भी हैं। नीचे उनकी क्रमबद्ध सूची दी जा रही है—

१. सिकन्दर की परचई, २. अमरमूल, ३. अगाधरमैनी, ४. सेऊ सम्मन की परचई (अनन्तदासकृत), ५. कबीरगोरखगोष्ठी, ६. अरजनामा, ७. भेदसार, ८. विज्ञानसार, ९. ग्यानप्रकाश, १०. जंबूसहर की कथा, ११. ब्रह्म-जग्यास, १२. षट्शास्त्र को मत, १३. हेतुपदेश (= हितोपदेश), १४. कबीर की परचई (अनन्तदासकृत), १५. अमृतधारा, १६. अष्टांगजोग, १७. प्रीथी-खंड की रमैनी, १८. गोरख की वृक्षनि, १९. कबीरअष्टक, २०. शब्दपरण्या, २१. बैत, २२. पंचीकरण, २३. भूलना (११३ भूलने), २४. भोत्यारण, २५. अधरडोरी, २६. मूलग्यान, २७. नसीयतनामा, २८. मूल की सीढ़ी, २९. काफरबोध, ३०. भागवत एकादस भाषा (चतुरदासकृत), ३१. सबदियाँ (सिद्धों की), ३२. बतिसलछनजोग (गोरखकृत), ३३. कंवलबिचार, ३४. सीढ़ी कणहार की रमैनी, ३५. ततबोध, ३६. तोवग्रन्थ, ३७. काफरबोध, ३८. ब्रह्मग्यान, ३९. चौदह इंद्री का विचार, ४०. वसिष्ठ की गोष्ठी, ४१. अरजनामा।

इसे भी मोतीझंगरी के साधु भगवानदास ने लिखा है। पुष्पिका में लिपिकाल “समत चतुरदस पंचमो साल दौय को जानि” (अर्थात् सं० १६०२ वि०) दिया हुआ है।

सातवाँ, सं० १५६६ वि० का लिखा हुआ १८३ पत्रों का एक छोटा सा

गुटका है जिसमें 'सुखनिधान', 'विवेकसागर' तथा 'अष्टावक्रगीता' नामक तीन ग्रन्थ दिये हुए हैं। यह तीनों ग्रन्थ अन्य पोथियों में भी आ चुके हैं।

आठवाँ ग्रन्थ ६११ पत्रों का है और सं० १६०२ वि० का लिखा हुआ है। इसमें कबीर का बीजक (२०६ पत्रों में) मिलता है। इस बीजक का आरम्भ "अन्तर जोति शब्द एकनारी।" इत्यादि से हुआ है। पुष्पिका में तिथि आदि का ब्यौरा इस प्रकार है—

समत चतुरदस पंचमो साल दोय को जान। तिथि तेरस गुरुवार सुभ कृष्ण पणि सावन मानि ॥
जैपुर मोतीहूँगरी संतन पूज्य सुयान। तहां बैठि गुटको लिप्यौ भगवानदास हित मानि ॥
मंगल भगत बीजक लिप्यौ बाकी रही अधूरि। गुटको संमथ साव को भगवन कीन्हो पूरि ॥
इससे ज्ञात होता है कि यह बीजक किन्हीं संमथदासके पठनार्थ सं० २६०२ वि० में जयपुर के मोतीहूँगरी नामक स्थान में सावन वदी तेरस, गुरुवार को पूरा किया गया। इसका आरम्भिक भाग मंगलदास ने और शेष भगवानदास ने लिखा। बीजक का क्रम इस प्रकार है—रमैनी ८४, साखी ३१६, शब्द ११३, कहरा, वसंत, वेली, बिरहुली, हिंडोला, चांचरि, चौतीस, विप्रमतीसी। इसका क्रम तथा पाठ भगताही शाखा के बीजक से मिलता है। बीजक के पश्चात् इस पुस्तक में 'अमृतधारा', 'त्रिधावेदांत', 'विचारमाल', 'गोरख कबीर की गोष्ठी', 'बारहमासा' तथा 'भूलना' नामक अन्य ग्रन्थ मिलते हैं।

नवाँ पंचवाणी-परम्परा का एक छोटा सा गुटका है, जिसमें लगभग ७ इंच लम्बे तथा ५ इंच चौड़े १६४ खुले पत्रे हैं। इसमें साखियों की संख्या ८१०, पदों की ४०४ और रमैणियों की ७ दी हुई हैं। गुटका आदि से अन्त तक सुन्दर नागरी अक्षरों में एक ही व्यक्ति द्वारा लिखा गया है, किन्तु अन्तिम पृष्ठ के अभाव से लिपिकाल आदि की जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी।

नागरी-प्रचारिणी-सभा, वाराणसी की प्रतियाँ

सभा के संग्रह में कबीर की वाणी निम्नलिखित पोथियों में मिलती है—

पहली पोथी वही है जिसके आधार पर सभा ने 'कबीर-ग्रन्थावली' का प्रकाशन कराया है। ग्रन्थावली में इसे क प्रति कहा गया है और मुख्य रूप से इसे ही आदर्श माना गया है। यह प्रति आधुनिक वेष्ठन में बड़े यत्न से संग्रहालय की क्र० सं० १०८ पर सुरक्षित रक्खी हुई है। इसमें कुल ७२ पत्रे हैं जो लगभग ११ इंच लम्बे और ६ इंच चौड़े हैं। प्रति अपनी लम्बाई में सुस्पष्ट लिखी हुई है। इसमें प्रतिपृष्ठ १५ पंक्तियाँ और प्रतिपंक्ति लगभग ४६ अक्षर आये हैं। इसमें कबीर की ८१० साखियाँ, ४०२ पद तथा ७ रमैणियाँ आयी हैं। इसकी पुष्पिका में सं० ११६१ वि० का उल्लेख हुआ है, किन्तु उसके तारखानों

को इसकी पुष्पिका पर सन्देह हो गया है। मेरा तो अनुमान है कि उक्त पुष्पिका में उल्लिखित संवत् कदाचित् शक संवत् है जो विक्रमीय संवत् १६६६ के लगभग पड़ता है। यह तिथि अन्य दृष्टियों से भी असंभव नहीं ज्ञात होती। “बांच (=चे) बिचा (रै) जासू श्री रांम रांम छ (=छै ?)” अर्थात् जो बांचे-बिचारे उससे मेरा राम राम है—इस अंश में आयी हुई राजस्थानी क्रिया ‘छै’ (=हिं० ‘है’) से यह भी संकेत मिलता है कि प्रति का, अथवा कम से कम पुष्पिका का, लेखक कोई राजस्थानी ही था। तिथि के भगड़े को छोड़ कर इसकी शेष विशेषताएँ पंचवाणी-परिवार की अन्य प्रतियों के समान ही हैं। कबीर-मन्दिर, मोतीझूंगरी की नवीं प्रति (जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है) के समान इसकी भी केवल इतनी ही विशेषता है कि इसमें पंचवाणी के शेष चार संतों की रचनाएँ नहीं मिलतीं, केवल कबीर की ही मिलती हैं। किन्तु परम्परा पंचवाणी-प्रतियों की ही है और पाठ शब्दशः पंचवाणी वाले पाठ से मिलता है।

दूसरी पोथी क्र० सं० १०६ की है जिसमें ६० खुले लम्बे पत्रे हैं। इसमें पहले के २१ पत्रों में कबीर की ६२१ साखियाँ तथा शेष ३६ में उनके ४०४ पद और ८ रमैनियाँ (‘ग्रन्थावली’ को भी लेकर) हैं। इसमें १३१ साखियाँ तथा ५ पद ऐसे हैं जो ऊपरवाली प्रति में नहीं मिलते। आरम्भ और अन्त के पृष्ठों पर बीच में परकाल से फूल काढ़े हुए हैं। यह पोथी भी किसी दाडूपंथी द्वारा सं० १८८१ वि० में लिखी गयी, क्योंकि पुष्पिका में लिखा हुआ है “इति श्री कबीर जी को कृत बाणी संपूर्ण। समत १८८१ का दाडू रांम।” सभा द्वारा प्रकाशित ‘कबीर-ग्रन्थावली’ की यह ख प्रति ज्ञात होती है।

तीसरी पोथी, जो संग्रहालय की क्र० सं० १४०७ पर मिलती है, ४६१ पत्रों की है और आकार में ३ इंच × ११ इंच है। यह पोथी पुस्तकबन्ध आकार में अपनी चौड़ाई में लिखी हुई है। इसमें पहले पंचवाणी आती है और तत्पश्चात् ‘सर्वगी’ तथा अन्य दाडूपंथी रचनाएँ मिलती हैं। कबीर की वाणी पाना ६८ से १६२ तक आती है और उसमें ८१२ साखियाँ, ३८४ पद और ७ रमैनियाँ मिलती हैं। पुष्पिका में बताया गया है कि यह पोथी रामगढ़ में सुन्दरदास के स्थान पर दाडूपंथी साधु ज्ञानदास द्वारा सं० १८७२ वि० में पूस सुदी ११ वृहस्पतिवार को पूरी की गयी।

चौथी पोथी में संग्रहालय की क्र० सं० १४०६ पड़ी है। पुस्तकबन्ध आकार (६ इंच × १२ इंच) का यह एक दाडूपंथी संग्रहग्रन्थ है, जिसमें कुल ३८३ पत्रे हैं। कागद मट्टैला है जिससे पुरानापन उपकृत है। इसमें भी पहले ‘पंचवाणी’

का संकलन है जिसमें कबीर की रचनाएँ पाना १०८ से १३४ पर्यंत हैं और इसके अन्तर्गत उनकी ८१० साखियाँ, ३८६ पद और ७ रमैनियाँ मिलती हैं। पंचवाणी के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में गरीबदास, साधुदास, बखना, जनगोपाल, सुन्दरदास, खेमदास आदि दाडूपंथी संतों की वाणिधाँ भी मिलती हैं। इसमें अनाथदासकृत 'विचारमाला' भी मिलता है, जो अन्यत्र कबीर के नाम से प्रचलित किया गया है। पोथी की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि इसे गोपालदास दाडूपंथी के शिष्य मनसाराम ने उदयपुर के दीवान जगतसिंह की हवेली में सन्त सहजराम पहाड़ीवाला के पास रह कर सं० १७९७ वि० की वैशाख बदी सप्तमी, मंगलवार को लिख कर समाप्त किया।

पाँचवीं पोथी भी, जो संग्रहालय की १७०८ संख्या पर मिलती है, दाडूपंथी बाबा जगन्नाथदास के शिष्य खुसालीराम के द्वारा सं० १८३६ वि० की लिखी हुई है। इसका आकार ११ इंच X ६ इंच है और पुस्तक के रूप में बँधी हुई है। लिखावट चौड़ाई में है और शुद्ध है। इसकी ४६४ पत्रों की सामग्री निम्नलिखित चार भागों में विभाजित की जा सकती है : प्रथम भाग में 'पंचवाणी' (पाना १—२२६) मिलती है, द्वितीय भाग में सर्वगी (पाना २२६—४२७), तृतीय भाग में नाथ-योगियों की रचनाएँ और चतुर्थ भाग में रज्जव, खेमदास, ग्यानी, तुरसी (निरंजनी), काजी कादन तथा अन्य संतों की फुटकल रचनाएँ मिलती हैं। लेखक ने इसका संक्षिप्त उल्लेख पुष्पिका में इस प्रकार किया है—

पाँची वाणी पुनि सरबंग। जोगेसरी कवित ये नंग।

धरमकथा पुनि साखी लहिए। बीस सहस सब्द ए कहिए ॥

पंच मास लिख्यत लिख्या, पुनि षष्ट दिन एक।

सबद बिलासी संत हैं, राणीलै४ सु अनेक ॥

इसमें कबीर की वाणी दो स्थलों पर मिलती है—एक तो पंचवाणी-प्रकरण में, जिसमें ८१० साखियाँ, ३८४ पद तथा ७ रमैनियाँ हैं और दूसरे सर्वगी-प्रकरण में, जिसमें उनके चुने हुए पदों, रमैनियों और साखियों का संकलन है।

छठा ग्रन्थ संख्या १४०९ पर है। यह जोगिया रंग के खदर में बँधा हुआ ७९१ पत्रों (= १५८२ पृष्ठों) का एक विशाल संग्रहग्रन्थ है। यह ११ इंच लम्बा और ६ इंच चौड़ा है और पुस्तकाकार बँधा हुआ है। लिखावट चौड़ाई में है। अक्षर बड़े ही शुद्ध और आकर्षक हैं। समस्त पोथी की सामग्री स्थूल रूप से निम्नलिखित छः भागों में विभाजित की जा सकती है—१. पंचवाणी (कबीर की

८८४ साखियाँ, ३८७ पद तथा ७ रमैनियाँ; पाना १—२१८ तक); २. गरीबदास के ग्रन्थ ('अनभैप्रमोध', साखी, चौबोला, कवित्त, पद; पाना २१८—२२६); ३. महात्माओं के फुटकल पद, जिसमें रामानन्द, सुखानन्द आदि ५६ सतों के पद हैं (पाना २२६ से २६४ तक); ४. जोगेसरी बानी; जिसमें गोरख से लेकर पृथ्वीनाथ तक समस्त नाथ-योगियों की वाणियाँ हैं, (पाना २६४ से ३२८ तक); ५. दादूपंथियों की रचनाएँ (जनगोपाल, पूर्णदास, दूजगदास, जगजीवनदास, जैमल, मोहनदास आदि की रचनाएँ; पाना ३२८ से ६११ तक); ६. रज्जव की सर्वगी (६११ से ७६० तक)। पुष्पिका इस प्रकार है—

इति श्री सरव संत विरचंत सतगुर प्रसादे च प्रोक्तं भक्तिजोगो नाम तत्त्वसार मतः॥
 चौ० रामदास सिप लेपत होई। पुस्तक लिख्यो बनाइ कै सोई॥
 भक्ति भंडार पुस्तक यह कहिये। पत्र आठ सै यामें लहिये॥५॥
 सत्रह सै इकहज्या सही। संवत पूस सुधि सो लही।
 त्रिसपतिवार पंचमी होई। ता दिन यो सम्पूरण सोई॥९॥
 नग्र मढ़ोठी नाम जु होई। साधू जी को अस्थल सोई॥
 बांचे पड़ै सुनै जो कोई। राम राम बंचिज्यो सच कोई॥१०॥

संवत् १७७१ पूस सुधि पंचमी॥

सातवाँ, जो संग्रहालय की सं० १३२६-१३६६ पर है, गुलाबी कपड़े के पुटों में बँधा हुआ एक गुटका है, जो आकार में ६ इंच X ३ इंच है। इसमें पहले दादू की ८ साखियाँ देकर फिर कबीर की साखियाँ और तत्पश्चात् उनके पद लिखे हुए हैं। पुष्पिका में यद्यपि कबीर की साखियों की संख्या ६१८ और पदों की संख्या ५०८ दी हुई है, किन्तु इनकी वास्तविक संख्याएँ क्रमशः ६१५ और ४०४ हैं। इस ग्रन्थ को बाबा धीरमदास दादूपंथी के शिष्य किशोरदास ने सं० १८८५ वि० में लिख कर समाप्त किया था।

आठवीं पोथी, जिसके लिए संग्रहालय की कोई संख्या नहीं डाली गयी है, सं० १८२७ वि० की लिखी हुई है। इसमें भी पहले पंचवाणी है, फिर क्रमशः कुछ दादूपंथियों की रचनाएँ तथा नाथ-योगियों की सबदियाँ हैं। पोथी में कुल ३३२ पत्रे हैं। लिपिकर्ता रामदास है, जो रतनदास दादूपंथी का शिष्य था।

क्र० सं० १३६२ पर एक छोटी सी (३ इंच X २ इंच) गुटिका है, जिसमें दादू, कबीर तथा सुन्दरदास जी की चुनी चुनी रचनाएँ लिखी हुई हैं। अन्त में जनगोपालकृत 'दादूजन्मलीलापरची' है। इसमें कबीर की केवल कुछ साखियाँ मिलती हैं। यह प्रति भी दादूपंथ की पंचवाणी-परम्परा की ही है। लिपिकाल का उल्लेख नहीं है।

इसी प्रकार क्र० सं० ७४४ पर भी एक खंडित दादूपंथी प्रति है, जिसमें कबीर की केवल 'चितावणी अंग' की साखियाँ लिखी हैं, जिसमें यत्र-तत्र अर्थ भी दिये

हुए हैं। इसके अतिरिक्त रज्जव और हरदास की भी कुछ फुटकल साखियाँ हैं। लिपिकाल इसका भी ज्ञात नहीं है।

ग्यारहवाँ, जिस पर सभा की ८७३ संख्या डाली हुई है, ७१७ पत्रों का निरंजनी-सम्प्रदाय का विशाल संग्रह-ग्रन्थ है। यह ६ इंच चौड़ा और ११ इंच लम्बा है और चौड़ाई में सुस्पष्ट देवनागरी में लिखा हुआ है। इसमें कबीर के अतिरिक्त अन्य अनेक संतों तथा नाथ-योगियों की रचनाएँ और पीपा, हरिदास, सेवादास आदि अनेक संतों की परचडियाँ मिलती हैं। इस ग्रन्थ में कबीर की १३७७ साखियाँ चौसठ अंगों में विभक्त मिलती हैं। साखियों के अतिरिक्त उनकी १३ रमैनियाँ, ६५४ पद तथा ७ रेखते मिलते हैं। इस प्रति की एक और विशेषता यह है कि इसमें कबीर के ११६ पदों की टीका भी मिलती है।^५

दो खंडित प्रतियाँ क्र० सं० २५४६-१४६६ तथा १५०० पर मिलती हैं जो बीजक की ज्ञात होती हैं। पहली केवल ६ पत्रों की है जिसमें आरम्भ में ११ संख्या पड़ी है और अंत में २०। आरम्भिक साखी है—

आगे सीढ़ी सांकरी पोछे.....चूर।

परदा तर की सुंदरी रही धका से दूर ॥७८॥

अंतिम है—वाकी माड़ी जगत में सो न परी पहचान ॥ १६० ॥

दूसरी केवल १२ पत्रों की है जिसमें ११ से १४६ तक की साखियाँ मात्र हैं। पत्रे कहीं-कहीं स्याही की गोंद से चिपक गये हैं। सभी साखियाँ बीजक की हैं। दोनों प्रतियाँ कैथी लिपि में लिखी हुई हैं और दोनों ही वर्षातिप के प्रभाव से नष्ट-प्राय हो चली हैं।

चौदहवीं पोथी, जो क्र० सं० ७०६ पर है, आधुनिक ढंग की एक कापी है जिसमें आदि-अंत के कुछ पत्रे नहीं हैं। आरम्भ के नौ पत्रों में कबीर के केवल १० फुटकल भजन मिलते हैं। आगे चरनदास, गोविन्ददास आदि के भजन दिये हुए हैं। लिपि कैथी है, किन्तु लिखने का समय अज्ञात है।

इसी प्रकार एक और खंडित पोथी “बालाप्रसाद पटवारी की” क्र० सं० ६६० पर मिलती है जिसमें २३ से १४० संख्यक पत्रे हैं। इसमें ७३ से १२५ पत्रों तक में कबीर की वाणी मिलती है। प्रति भट्टी कैथी लिपि में लिखी है और अत्याधुनिक है।

सोलहवीं प्रति, जो क्र० सं० ८२६ पर है, आधुनिक है और सं० १६१८ वि०

५. कबीर के अतिरिक्त नामदेव, रैदास, पीपा तथा जगजीवन के भी कुछ पदों की टीकाएँ इसमें मिलती हैं।

की लिखी हुई है। अंत के कुछ पत्रे खंडित हो गये हैं। लिपि सुस्पष्ट देवनागरी है। इसमें 'गरुडबोध' और 'भवतारन' के पश्चात् कबीर की शब्दावली दी हुई है। इसकी प्रतिलिपि हमारे पास है। इसके केवल थोड़े से ही पद अन्यत्र मिलते हैं, शेष सब आधुनिक प्रक्षेप हैं। 'भवतारन' के पश्चात् की पुष्पिका में लिखा है कि इसे संतोषदास कबीरपंथी ने लखनऊ शहर में मखमूलगंज नामक मुहल्ले में छितवापुर नाका के पास बैठकर लिखा था।

क्र० सं० ८२७ तथा ९१६ पर 'अखरावती' की दो प्रतियाँ मिलती हैं। इनमें से पहली ३२ पत्रों की है और "संवत् १९४३ मीती फागुण क्रीश्न पक्ष ८ अष्टम्यां बुधवासरे के तइयार भइल"। दूसरी प्रति में 'अखरावती' के अतिरिक्त 'सुखसागर द्वादश स्कंध चौबीसवाँ अध्याय' (गद्य में), भीखासाहब की कुछ रचनाएँ तथा कबीर, पलटू आदि के कुछ भूलने (कबीर के छः भूलने) भी हैं। यह भी सं० १९४३ वि० की लिखी हुई है। दोनों में 'अखरावती' का पाठ बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित 'अखरावती' से मिलता है।

उन्नीसवीं पोथी, जो सभा की क्र० सं० १५ पर है, १६७ पत्रों की है। इसमें पहले के २९ पत्रों में कबीर की साखियाँ दी हुई हैं, फिर क्रमशः विवेकसागर, रमैनी, फुटकल पद, उग्रगीता, कहरा, वसंत, होरी, मंगल, आरती, मुहम्मदबोध, रामानन्दगोष्ठी, गोरखगोष्ठी आदि रचनाएँ भी उनके नाम पर मिलती हैं।

क्र० सं० ७६९ पर एक खंडित गुटका मिलता है जिसमें पहले पत्र पर ४ संख्या दी हुई है और अंतिम पर १८६। इसमें पहले रामचरण की रचनाएँ हैं, और फिर कबीर के नाम से 'रामसागर' (पाना ४६ से ५९ तक) तथा 'ज्ञानबतीसी' (५९ से ६४ तक) नामक ग्रन्थ मिलते हैं। इनके पश्चात् कुछ अन्य संतों की फुटकल रचनाएँ मिलती हैं।

संख्या ३५२ पर कबीर के नाम से 'रामसागर' की एक प्रति और मिलती है जिसमें लिपिकाल नहीं दिया हुआ है।

बाइसवीं पोथी में, जो क्रमसंख्या ९१५ पर है, कबीर के नाम से 'निरभैयान' नामक ग्रन्थ मिलता है। यह पोथी गोरखपुर सरकार के धुरियापुर परगने में गोपालपुर तालुके के हनुमान घाट पर महन्त गरीबदास द्वारा सं० १८९३ वि० में लिखी गयी।

क्र० सं० ८३९ पर 'अनुराग-सागर' की एक खंडित प्रति है जो कैथी में लिखी है और जिसे 'सरस्वती'-सम्पादक पं० देवीदत्त शुक्ल ने सभा को दी थी।

चौबीसवीं पोथी में, जो क्र० सं० २६४९-१५९१ पर है, 'तत्त्व-स्वरोदय'

नामक रचना है। प्रति अपूर्ण है और इसमें केवल ६ पत्रे रह गये हैं।

क्र० सं० ६१६ पर ३८ पत्रों की एक कैंथी प्रति मिलती है जिसका लि० का० सं० १८१२ वि० दिया है। इसमें कबीर के नाम से 'सुखसागर' (६ पत्रों में) और 'संतोषबोध' (१० पत्रों में) नामक रचनाएँ मिलती हैं।

क्र० सं० ६२४ पर महाभ्रष्ट लिपि में लिखी हुई ६६ पत्रों की एक बही-जैसी पोथी मिलती है जिसमें कबीर के नाम से 'ज्ञानप्रगास या धर्मदासबोध' नामक ग्रन्थ मिलता है।

इनके अतिरिक्त सभा के संग्रह में जगन्नाथदास के 'गुणगंजनामा' की भी एक प्रति मिलती है जिसमें, जैसा ऊपर अन्यत्र भी बताया जा चुका है, अन्य संतों तथा कवियों के साथ कबीर को भी साखियाँ संगृहीत हैं। यह जिस पोथी में है उसमें अनाथदासकृत 'विचारमाला' और जगजीवनदासकृत 'दृष्टांत की साखियाँ' भी मिलती हैं। यह प्रति नैराणा के दादूद्वारा में लालदास के पौत्र-शिष्य दयाराम दादूपंथी द्वारा सं० १८४७ वि० में लिखी गयी थी। प्रस्तुत प्रति में आयी हुई कबीर की बाणियों का पाठ दादू-विद्यालय वाली प्रति से अक्षरशः मिलता है।

कबीर की रचनाओं की कुछ प्रतियाँ स्व० मयाशंकर याज्ञिक के संग्रह (इस समय ना० प्र० सभा में सुरक्षित) में भी मिलती हैं। नीचे उनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है—

'ग्रन्थ बीजक साखी' में, जो संग्रहालय की क्र० सं० ११८-२४ पर है, कुल ११७ खुले पत्रे हैं जो बड़े यत्न के साथ एक में नत्थी कर दिये गये हैं। प्रति शुद्ध नागराक्षरों लिखी है। पुष्पिका के अनुसार इसमें कबीर की २७४० साखियाँ मिलती हैं जो १०६ अंगों में विभाजित हैं। इसे हरियाना के साधु किशोरदास के शिष्य हीरादास ने सं० १६२३ वि० में लिपिबद्ध किया था।

क्र० सं० ३६३-२४ तथा ३४७-५५ पर कबीर की दो छोटी-छोटी प्रतियाँ मिलती हैं। पहली में केवल ५ लम्बे-लम्बे खुले पत्रे हैं जिनमें कबीर के १० पद राग होरी के मिलते हैं। यह दसों पद और उनके पाठ वेलवेडियर प्रेस की 'शब्दावली' में मिलते हैं। दूसरी ८६ पत्रों की एक आधुनिक ढंग की कापी है जिसमें अनेक संतों के भजन लिखे हुए हैं। कबीर के भी थोड़े से भजन तथा रेखते मिलते हैं जिनमें से अधिकांश उक्त 'शब्दावली' में मिल जाते हैं। लिपिकाल किसी में भी नहीं दिया है।

याज्ञिक-संग्रह की ५५६-५५ संख्यक पोथी (लि० का० सं० १८२० वि०) में, जो फ़ारसी लिपि में है और जिसमें हितहरिवंश तथा हरिदास की रचनाएँ हैं,

कबीर के नाम से भी एक पद मिलता है, किन्तु यह अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता ।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की प्रतियाँ

सम्मेलन के संग्रहालय में केवल तीन प्रतियाँ ऐसी हैं जिनमें कबीर की वाणियाँ मिलती हैं । एक बड़ा गुटका पंचवाणी-परम्परा का ज्ञात होता है, किन्तु दोमक लग जाने से उसका अधिकांश भाग नष्टप्राय हो गया है । जितना अंश शेष है उसका मिलान करने पर कोई विशिष्टता नहीं जान पड़ती । पुष्पिका के अभाव में लिपिकर्ता तथा काल आदि का व्यौरा नहीं ज्ञात हो सकता, किन्तु लेख सुन्दर हैं और किसी राजस्थानी का ही ज्ञात होता है ।

दूसरा ग्रन्थ, जो चमड़े को जिल्द से बँधा है, बीजक का है । इसमें बुरहानपुर के साधु पूर्णदास साहेब की त्रिज्या टीका भी है । यह टीका सन् १८६२ ई० में लखनऊ के गंगाप्रसाद वर्मा ब्रदर्स प्रेस द्वारा और १९०५ ई० में इलाहाबाद से बालगोविन्द मिस्त्री द्वारा प्रकाशित हो चुकी है । अतः टीका की दृष्टि से इस प्रति का कोई विशेष महत्व नहीं रह जाता । इसके अतिरिक्त प्रति को लिखावट भी अत्याधुनिक और भ्रष्ट है ।

तीसरी प्रति 'ज्ञानतिलक' की है, जो खंडित है ।

श्री उदयशंकर शास्त्री के संग्रह की प्रतियाँ

वाराणसी के श्री उदय शंकर शास्त्री (आजकल हिंदी विद्यापीठ, आगरा में साहित्य-सहायक) ने बड़े परिश्रम और व्यय से संत-साहित्य का एक निजी संग्रह बना लिया है जिसमें कबीर-संबंधी कुछ ऐसी ह० लि० प्रतियाँ तथा प्रकाशित पुस्तकें मिलती हैं जो अन्यत्र आसानी से उपलब्ध नहीं हो सकतीं । शास्त्री जी के संग्रह में प्रमुखता बीजक की प्रतियों की है, क्योंकि उन्होंने स्वयं बीजक के पाठ की खोज की है और बाराबंकी से प्रकाशित बीजक के सम्पादन में पर्याप्त सहायता भी की है । शास्त्री जी के संग्रह में बीजक की निम्नलिखित प्रतियाँ हैं—

पहली प्रति, जो आकार में ५ इंच × ३ इंच है, बुरहानपुर के साधु मंगलदास के द्वारा सं० १९४२ शके १८०७ की ज्येष्ठ शुक्ला ३ को लिख कर समाप्त की गयी है । इसमें कबीर की बानी का क्रम इस प्रकार है : रमैनी ८४ (पाना १ से ५१ तक) शब्द ११५ (पाना ५१ से १२० तक), ज्ञान-चौंतीसा १, विप्रमतीसी १, कहरा १२, बसंत १२, चाँचर २, बेलि १, बिरहुली २, हिंडोला ३, साखी ३५४, और तत्पश्चात् फल बीजक ६ साखी । इसके आरम्भ में 'अंतर जोति सब्द एक नारी' वाली रमैनी मिलती है ।

दूसरी प्रति, जिसमें लिपिकाल नहीं दिया है, आकार में कुछ छोटी है और

एक किनारे पर जली हुई है। यह पहली प्रति से शब्दशः मिलती है। केवल साखियों की संख्या में एक का अन्तर है—अर्थात् इसमें ३५३ साखियाँ मिलती हैं। पहली प्रति के समान इसमें भी अन्त में 'फल बीजक' की नौ साखियाँ मिलती हैं।

तीसरी प्रति भी, जो सं० १६१२ वि० की ज्येष्ठ कृष्णा ५ की लिखी हुई है ऊपर की प्रतियों से मिलती है। केवल साखियों की संख्या में कुछ अन्तर है। इसका आरम्भ भी 'अंतर जोति' इत्यादि से होता है।

उक्त तीनों प्रतियों का क्रम और पाठ स्थूल रूप से रामनाराण लाल द्वारा प्रकाशित पं० श्री विचारदास शास्त्री (वर्तमान हुजूर प्रकाशमणि नाम साहब) के अथवा बाराबंकी से प्रकाशित बीजक के संस्करणों से मिलते हैं। चारों प्रतियाँ नागरी में हैं।

चौथी प्रति ८४ लम्बे पत्रों की (१३ इंच × ३ इंच) एक पुस्तकाकार प्रति है जिसकी लिखावट लम्बाई में है। इसमें वाणियों की संख्या तथा क्रम इस प्रकार हैं : रमैनी ८४, शब्द ११३, कहरा १२, विप्रमतीसो १, हिंडोलना ३, वसंत १२, चाँचर १, चाँतोसी १, बेल १, विरहुली १, साखी ३८४। इसके पश्चात् 'लिष्यते साखी नवीन' लिख कर ३२५ साखियाँ और दी गयी हैं। इसे भोखमदास ने सं० १६५० वि० के आश्विन मास में विश्वनाथपुरी (काशी) के चेतन-वट में लिख कर पूरा किया।

पाँचवीं प्रति, जो सजीवनदास द्वारा "सं० १३१७ साल फसली ता० २५ माघ दीन मंगर संक्रा के बखत तैयार" हुई आकार में ऊपर की प्रति से छोटी (५ इंच × ३ इंच) है, किन्तु पाठ शब्दशः वही प्रस्तुत करती है। अन्तर केवल इतना है कि इसमें ३८४ के स्थान पर ३८५ साखियाँ हैं और अंत की जोड़ी हुई नवीन साखियाँ नहीं हैं।

छठी प्रति सं० १६१० वि० की लिखी हुई पोथी में है। इसमें पहले 'अगाधमंगल' और 'अरजनामा' नामक दो फुटकल ग्रन्थ भी बीजक के आरम्भ में दिये हुए हैं। इसको सभी विशेषताएँ ऊपर वाली प्रति से मिलती हैं। अन्तर केवल इतना है कि इसमें ३८४ साखियों के स्थान पर ३२५ साखियाँ ही मिलती हैं। यह बिदूदपुर के मेहरवानदास कबीरपंथी के लिए तैयार हुई थी और शास्त्री जी को वहीं से मिली भी थी।

ऊपर की तीनों प्रतियाँ सभी बातों में फतुहा (जिला पटना) से प्रकाशित बीजक के संस्करण से मिलती हैं।

सातवीं प्रति (लि० का० सं० १६१८) में कबीर की वाणियों का क्रम

निम्नलिखित है : रमैनी ८४, शब्द ११२, साखी २६७, कहरा १२, बसंत १२, बेइलि १, बिरहुली १, चांचरि १, हिडोला ३, चांतीसी १, विप्रमतीसी १। इसे द्वारिका भगत ने तिरहुत में मौजूदा मायल के हरगोविन्द गोसाँई के स्थान पर लिखा। ऊपर जो क्रम में अन्तर दिया हुआ है उसके अतिरिक्त शब्द, साखी, कहरा, बसंत आदि के क्रम (तथा कहीं-कहीं पाठ भी) अन्य बीजकों से भिन्न हैं।

आठवीं प्रति भी, जो आकार में बहुत छोटी (३ इंच × २ इंच) है, ऊपर की प्रति से बिल्कुल मिलती है। इसमें अंत के कुछ पत्रे नहीं हैं जिससे लिपिकाल आदि का पता नहीं चलता, किन्तु देखने से यह भी आधुनिक लगती है।

ऊपर की दोनों प्रतियों से मिलती-जुलती एक प्रति और है जिसके सभी व्योरे भगताही शाखा के उपयुक्त बीजकों से मिलते हैं। केवल इतना अन्तर है कि इसमें २६७ साखियों के बजाय २४८ साखियाँ ही हैं। लिपिकाल नहीं दिया है।

ऊपर की तीनों प्रतियों में रमैनी का आरम्भ 'अंतरजोति सव्द एक नारी' से ही होता है, किन्तु, जैसा पहले संकेत किया गया है, अन्य बीजकों से इसमें कई विशेषताएँ अधिक हैं। भगताही शाखा की मानसर गद्दी के आचार्य मेथी गोसाँई साहब द्वारा प्रकाशित 'बीजक' का संस्करण इन प्रतियों से बिल्कुल मिलता है।

'बीजक' की उपयुक्त प्रतियों के अतिरिक्त शास्त्री जी के संग्रह में कबीर की वाणियों के तीन ग्रन्थ और हैं जिनकी संक्षिप्त रूपरेखा निम्नलिखित है—

एक संग्रह-ग्रन्थ है (६ इंच × ३ इंच) जो सं० १८८६ से ८६ वि० तक लिखा गया था। पहले इसमें 'नामदेव की परिचई' और 'वैराग्य प्रकरण' नामक दो फुटकल ग्रन्थों के पश्चात् कबीर की २७५५ साखियाँ १०८ अंगों में दी हुई हैं। साखियों के पश्चात् बसंत राग के अंतर्गत १७ पद, होरी में २२ और रेखता में १७ पद और दिये हैं। कबीर की इन रचनाओं के पश्चात् इस पोथी में 'भगवद्-गीता' (अपूर्ण) और 'अनुभव हुलास' नामक ग्रन्थ और मिलते हैं। इसे सुखरामदास कबीरपंथी ने बिदरपुर गुरुद्वारा में बैठ कर सं० १८८६ वि० में लिखा था।

दूसरी प्रति में भी कबीर की साखियाँ मिलती हैं। इसमें अंगों की संख्या तो १०८ ही है किन्तु साखियों की संख्या बढ़ कर २८६१ हो गयी है। साखियों के अतिरिक्त कबीर के कुछ फुटकल पद भी बिहंगड़ा, परज आदि रागों के अन्तर्गत दिये हुए हैं। अंत में 'जजीरा' (कबीरपंथी मंत्र) 'गुरमहिमा', 'विचार-माल' आदि फुटकल ग्रन्थ तथा 'चौका की रमैनी' आदि नित्य क्रिया संबंधी रचनाएँ भी मिलती हैं। इसे पंजाब के डेरावसी (?) शहर के दादपुरा मुहल्ला

७८९
७०६:३

में छत्रधारीदास ने प्रागदास के मकान में बैठ कर लिखा और सं० १६२८वि० में समाप्त किया।

तीसरा ग्रन्थ (५२४ पत्रों का) सं० १८६० वि० का लिखा हुआ है। इसमें भी कबीर की वाणी मिलती है, किन्तु उसमें व्यतिक्रम बहुत है। बीच-बीच में अन्य ग्रन्थ अथवा रचनाएँ आ जाने के कारण उसका कोई निश्चित रूप नहीं मिलता। नीचे की सूची से यह बात स्पष्ट हो जायगी। पोथी में रचनाओं का क्रम इस प्रकार है—

(क) सुखनिधान—पाना १ से ४८ तक, (ख) मंगल और छपै—पाना ५३ से ५५ तक, (ग) कबीर की १११ साखियाँ अर्थ सहित—पाना ४६ से ५३ तक, (ङ) फुटकल साखियाँ, (च) कबीर के पद ६६ से ८१ तक, (छ) पुनः साखियाँ, गुरुदेव को अंग—८१ से १०० तक, (ज) अरजनामा—पाना १०२ तक, (झ) विवेकसागर—११४ तक, (ञ) पुनः फुटकल पद—पाना १२२ तक, इत्यादि।

इंडिया-ऑफिस-लायब्रेरी की प्रतियाँ लंदन की इंडिया-ऑफिस-लायब्रेरी में कबीर की वाणियों की दो प्रतियाँ हैं जिन्हें वहाँ के अधिकारियों ने मेरे कार्य के लिए विवेकविद्यालय को कुछ समय के लिए उधार भेज दिया था।

पहली, बीजक की एक खंडित प्रति है, जो कैथी लिपि में लिखी हुई है। इसमें पहले साखियाँ आती हैं फिर क्रमशः शब्द, जानचींतीसा, विप्रमतीसी और रमैनी आदि आती हैं। अन्त के कुछ पत्रे नहीं हैं जिससे लिपिकाल का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। किन्तु स्याही, कागज, आदि से प्रति अत्यधुनिक लगती है।

दूसरी पोथी, जो पूर्ण है और सुन्दर देवनागरी में लिखी हुई है, निरंजनीपंथ की है। इसमें कुल ५७१ पत्रे हैं जो लम्बाई में ७ इंच और चौड़ाई में ४ इंच हैं। बीच के दो-चार पत्रों में नत्थी के पास, कदाचित् समुन्दर पार पहुँचने के पूर्व ही, कुछ भाग दीमक खा गये हैं, किन्तु उससे अक्षरों को कोई क्षति नहीं पहुँची है। पोथी के आरम्भ में इंडिया-ऑफिस-लायब्रेरी की मुहर लगी है जिस पर ५ फरवरी १९०६ की तारीख पड़ी है। इससे ज्ञात होता है कि यह पोथी उक्त तारीख के आस-पास किसी समय वहाँ पहुँची होगी। पुस्तकालय की संख्या 'हिन्दी-ए-११' है। कबीर की वाणी इसमें आरम्भ के ३४६ पत्रों में मिलती है जिसका क्रम निम्नलिखित है—

पंजाब विश्वविद्यालय के संग्रहालय की प्रतियाँ

पंजाब-यूनिवर्सिटी-लायब्रेरी में दो पोथियाँ ऐसी हैं जिनमें कबीर की रचनाएँ मिलती हैं। क्र० सं० २१६ पर 'ज्ञानतिलक' नामक ग्रन्थ कबीर के नाम से मिलता है। इसकी चर्चा ऊपर भी आ चुकी है। दूसरी पोथी 'अनभै संग्रह' नाम से १६६० संख्या पर मिलती है। इसमें क्रमशः दादू, कबीर, नामदेव, रैदास और हरदास (पंचवाणी) तथा सुन्दरदास की रचनाएँ लिखी हैं। कबीर की साखियों की संख्या ८८६ दी हुई है। लिपिकाल नहीं दिया है, किन्तु पोथी प्राचीन है। इन प्रतियों की सूचना मुझे अपने निदेशक डॉ० माता प्रसाद गुप्त से मिली थी, जिन्होंने अपने खोज-कार्य के सिलसिले में इन्हें वहाँ पर देखा था। 'ज्ञानतिलक' हमें जयपुर में मिल चुका है, अतः उसकी परीक्षा के लिए अन्य प्रति की विशेष आवश्यकता नहीं है। दूसरी प्रति के विवरण से स्पष्ट है कि यह पंचवाणी-परम्परा की ही कोई प्रति है जिसकी कई प्रतियाँ हमें विभिन्न स्थानों पर मिल चुकी हैं। अतः इसमें भी कोई विशेषता नहीं रह जाती।

श्री अग्रचन्द नाहटा की प्रतियाँ

बीकानेर के श्री अग्रचन्द नाहटा ने कबीरवाणी की दो प्रतियाँ भेजी थीं, किन्तु दोनों खंडित हैं। पहली प्रति जो अब अत्यन्त जीरा हो गयी है, केवल ११ पत्रों की है। मूल लेखक के हाथ से डाली हुई पृष्ठ-संख्याएँ अब उड़ गयी हैं, उनके स्थान पर नयी संख्याएँ डाली हुई हैं। आरम्भ में 'रामगिरी' राग के पूर्व ६० संख्या पड़ी है, जिससे ज्ञात होता है कि इसके पूर्व के ६० पद लुप्त हो चुके हैं। किन्तु अभी ६० पद शेष हैं जिनमें से सभी 'कबीर-ग्रंथावली' (ना० प्र० सं०) में मिल जाते हैं। पोथी के पत्रे एक फुट लम्बे और ४ इंच चौड़े हैं। प्रतिपृष्ठ १४ पंक्तियाँ और प्रतिपंक्ति लगभग ५० अक्षर आये हैं। इसकी सारी विशेषताएँ दादूपंथी प्रतियों के समान हैं। केवल दो बातें विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं, जो निम्नलिखित हैं—

१. इसमें 'ऐ' के स्थान पर 'अइ', 'औ' के स्थान पर 'अउ' तथा 'या' के स्थान पर 'इआ' मिलते हैं; जैसे 'देहूँ' का 'दइहूँ', 'तौ' का 'तउ', 'मया' का 'मइआ' इत्यादि।

२. कहीं-कहीं 'ए' और 'ओ' की मात्राएँ बँगला लिपि के समान मिलती हैं; जैसे 'मेरो' के लिए 'एमरा'।

प्रति प्राचीन अवश्य है किन्तु लिपिकाल कहीं से भी ज्ञात नहीं होता है।

दूसरी प्रति में केवल दो पत्रे हैं जो किसी बड़ी प्रति के अंश माने जा सकते हैं।

खोज-रिपोर्टों में उल्लिखित प्रतियाँ

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की पहली खोज-रिपोर्ट सन् १९०१ ई० में बाबू श्यामसुन्दर दास की अध्यक्षता में प्रकाशित हुई। आगे चल कर यह रिपोर्ट त्रैवार्षिक हो गयी और वह भी केवल १९२५ ई० तक प्रकाशित हो पायी, फिर इसका प्रकाशन बन्द कर दिया गया। किन्तु खोज का कार्य अब भी चल रहा है और उनकी त्रैवार्षिक रिपोर्टें हस्तलिखित रूप में सुरक्षित हैं। मैंने सन् १९४६ तक की ६० लि० रिपोर्टों का उपयोग किया है। सन् १९०१ से लेकर १९४६ तक की रिपोर्टों के अनुसार कबीर के निम्नलिखित १४० ग्रन्थ ज्ञात होते हैं—

[नीचे की संख्याओं में पहली रिपोर्ट के वर्ष को सूचित करती है और दूसरी उसकी क्र० सं० को।]

१. अक्षरखंड की रमैनी—१-१४३ सी।
२. अक्षरभेद की रमैनी—१-१४३ बी।
३. अक्षरावत—२३-११८ ए, २६-२१४ ए, २९-१७९ ए, बी, सी, ३२-१०३ बी, सी, ४१-२१, ४७-१।
४. अगाधबोध—३५-४९ बी।
५. अगाधमंगल—१-१४३ ए।
६. अजब उपदेश—३२-१०३ ए।
७. अठपहरा—६-१७७ टी।
८. अनुरागसागर—६-११० के।
९. अमरमूल—६-१७७ जे।
१-१४३ एफ, २३-११८ बी।
१०. अरजनामा—१-१४३ जी।
११. अलिफनामा (१)—१-१४३ डी।
१२. अलिफनामा (२)—१-१४३ ई।
१३. अवधू की बारहखड़ी—३५-४९ ए।
१४. अष्टपदी रमैनी—३५-४९ डी।
१५. अष्टांग जोग—३५-४९ सी।
१६. आरती—१-१४३ एज।
१७. इकतार की रमैनी—३५-४९ एन।
१८. उग्रगीता—६-१७७ एच, २३-११८ पी, क्यू, २६-२१४ ई ४१-४७७ ख।
१९. उग्रज्ञान मूल सिद्धान्त दस मात्रा—६-१७७ एल।
२०. उपदेस चितावनी—३२-१०३ सी २।
२१. एकोतरा सुमिरन—११८ सी।
२२. कबीर अष्टक—१-१४३ डब्ल्यू।
२३. कबीर धर्मदास गोष्ठी—६-१७७ आई।
२४. कबीर शंकराचार्य गोष्ठी—४१-२१ ड।
२५. कबीर के बचन—२९-१७९ टी (भूलने)।
२६. कबीर गोरख गोष्ठी—१-१४३ यू, पी, २९-१७७ आई।
२७. कबीर जी के पद—२-५२, २-१८४, २९-१७९ एन, ३२-१०३ एन।
२८. कबीर देवदूत गोष्ठी—२३-११८ एच, ४७-२।
२९. कबीर निरंजन गोष्ठी—४७-३२ख।
३०. कबीर परिचय की साखी—६-११७ ओ।
३१. कबीर वर्त्तासी—२२-५१ए।
३२. कबीर भेद—३५-४९ पी।
३३. कबीर मंगल—५-४९ क्यू।
३४. कबीर सागर—४७-३२ क।
३५. कबीर की चेतावनी—३२-१०३ जी, एच, ४७-३२ व।
३६. कबीर सुरति जोग—२९-१७९ एस।
३७. कबीर सरोदय—३२-१०३ सी।
३८. करमखंड की रमैनी—१-१४३ एक्स, २९-१७९ ओ।
३९. कायापाँजी—१७-१२ बी।
४०. कुजाला कथा—४७-१।
४१. कर्मावली—२३-११८ के।
४२. खंडित ग्रन्थ (रेखता)—३८-७७ ए, बी, २९-१७९ यू, ४७-३।
४३. गढ़बोध—२३-११८ ई, ४१-१७७ च।
४४. गुह महिमा—३५-४९ एल।
४५. चौचर—३५-४९ सी।
४६. चौका रमैनी—१-१४३ एन।
४७. चौतीसा—१-१४३ ओ।
४८. छप्पै—१-१४३ एस।
४९. जंजीरा—३२-१०३ जे।
५०. जन्म पत्रिका रमैनी—३५-४९ ओ।
५१. जनम बोध—१-१४७ एल।
५२. ज्ञान गुदड़ी—१-१४३ आर, ३२-१०३ एफ।
५३. ज्ञानचौतीसी—१-१४३ क्यू, २०-७७ बी।

४४. ज्ञान तिलक—३२-१०३ एल,
४९-४।
४५. ज्ञानप्रगास या धर्मदास बोध—
४९-२१६ (दि० बोध सागर—वेंकटेश्वर प्रेस)।
४६. ज्ञान वृत्तीसी—३२-१०३ ए।
४७. ज्ञान संबोध—९-१४३ अर,
२३-१५८ एफ।
४८. ज्ञान सागर—९-१४३ एस,
४४-३२ ग (लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस से
प्रकाशित)।
४९. ज्ञानस्तोत्र—६-१७७ सी।
५०. ज्ञानस्थिति ग्रन्थ—२९-१७९ एल, एस।
५१. ज्ञान सरोदय—९-१४३ टी, २६-२१४ बी
५२. झूलना—२९-१७९ जे, के।
५३. तत्वसरोदय—३२-१०३ बी।
५४. तिरजा की साखी—२३-१९८ ओ।
५५. तीसा जन्त्र—९-१४३ के।
५६. दत्तात्रेय की गोष्ठी—२९-१७९ जी।
५७. दोहे—२-४४, ३२-१०३ आई।
५८. द्वादश शब्द—२३-१९८ डी (१२ पद)।
५९. नौपदी रमैनी—३५-४९ अर।
६०. नसीहतनामा—३२-१०३ अर।
६१. नामदेव की लीला—४१-२१ ल।
६२. नाम महात्मस की साखी—९-१४३ ए।
६३. नाम माला—४९-कबीर।
६४. नाम माहात्म्य—२९-१४३ बी।
६५. निर्णयसार—४७-कबीर।
६६. निर्भय ज्ञान—६-१७७ अर।
९-१४३ ओ।
६७. पंचमुद्रा—३५-४९ एस।
६८. पिय पहिचानिवे को अंग—९-१४३ सी २।
६९. पुकार—९-४३ डी।
७०. ब्रह्म निरूपण—६-१७७ एस।
७१. बलख की पैज—९-१४३ आई।
७२. वसंत—३५-४९ एक्स।
७३. वानी—६-१७७ ए, बी, ९-१४३ एस,
३२-१०३ एन
७४. बार ग्रंथ—३५-४९ ई।
७५. बारहमासी—९-१४३ जे, ३२-१०३,
डी०, ई०, ४७-६।
७६. बावनी रमैनी—३५-४९ एफ।
७७. बिरहुली—३५-४९ जे।
७८. बीजक—९-१४३ एल, २०-७४ ए।
२३-१९८ आई, जे २९-१७९ डी०, ४७-७।
७९. बीजक चिंतावली—३५-४९ एच।
१०. बंझल—३५-४९ जी।
११. भवतारण ग्रन्थ—४१-२१ ग, ४७-८
१२. भक्ति को अंग—९-१४३ के।
१३. मंगल शब्द—९-१४३ वाई।
१४. मंत्र—३२-१०३ क्यू।
१५. मखीना खंड चर्चातीसी—९-१४३ एन।
१६. मनुष्य विचार—२३-१९८ एल।
१७. मुहम्मद बोध—९-१४३ जेड, ४१-२१ ज
१८. मूलज्ञान—४४-३२ च, ४७-९।
१९. मूलवानी—४४-३२ छ।
१००. यज्ञ समाधि—२३-१९८ अर।
१०१. रमैनी—६-१७७ ई, २-१२५,
२३-१९८ एन, २९-१७९ ओ।
१०२. रागोड़ा ग्रन्थ—२२-५१ बी।
१०३. रामरक्षा—६-१७७ एस,
३२-१०३ एस।
१०४. रामसार—१-१०८।
१०५. रेखता—२९-१७७ पी, ९-१४३ पी,
६-१७७ हो।
१०६. वशिष्ठ बोध—४४-३२ ड।
१०७. विचारमाला—१७-९२ ए
(वस्तुतः अनाथदास कृत)।
१०८. विप्रमतीसी—३५-४९ आई।
१०९. शब्द—३५-४९ टी (बीजक के शब्द)।
११०. शब्द अलहतुक—९-१४३ ई २।
१११. शब्द कहरा—३२-१०३ यू।
११२. शब्द काफी और फगुवा—९-१४३ जी।
११३. शब्द प्रथम मंगलादि ३२-१०३
(बीजक का मंगल)।
११४. शब्द रमैनी—३२-१०३ एक्स।
११५. शब्द राक्षसी—३२-१०३ डब्ल्यू।
११६. शब्द राग गौरी और भैरी।
९-१४३ एफ० २।
११७. शब्द वंशावली—६-११७ जी २।
११८. शब्दावली—६-१७७ पी०, क्यू।
११९. षट्दर्शन सार—३५-४९ बी।
१२०. संतों की गाली—२६-२१४ डी।
(राग गाली के ५ पद)।
१२१. संतोषबोध—४१-२१ चे।
१२२. सतनाम या सतकवीर—९-१४३ क्यू।
१२३. सतकवीर वंदी क्षौर—६-१७७ एफ।
१२४. सतसंग को अंग—९-१४३ आई २।
१२५. सतपदी रमैनी—३५-४९ डी, यू।
१२६. सांस गुजार—१४३ जे, २९-१७९ बी।
१२७. साखी—१-३५, २-५३, ६-१७७ ओ,

- ११-४३ वी, २२-५१ जा, ३२-४३ओ,
आर्द्ध, षष्ठ, ४१-१७० ही ।
१२८. साध को अंग—१-१४३ एच २ ।
१२९. साध भेद—४७-कबीर ।
१३०. साधु साहाय्य—२९-१७९ क्यू
(कई अंगों की साखियाँ) ।
१३१. सुकृत ध्यान—४७-३२ ज ।
१३२. सुख निधान—४१-२१ ज ।
१३३. सुखसागर—४१-२१ ज ।
१३४. सुमिरन साठिका—२३-१९८न ।
१३५. सुरति सन्द संवाद—२९-१७९ ।
आर २-७४ सी
१३६. सोहल कला (तिथि)—३५-४९ डब्लू ।
१३७. सरोदय—४१-२१
१३८. हंस सुक्तावली—६-१७७ एन ।
१-१७३ पी ३५-४९ यन
१३९. हनुमत घोष—४७-३२ क ।
१४०. हिडोला या रेखता—६-१७७ ही

इनमें से अधिकांश रचनाएँ हमें अन्यत्र भी मिल चुकी हैं। कई कारणों से खोज-रिपोर्टों की यह संख्या बहुत बड़ी हो गयी है। अनेक परवर्ती रचनाएँ, जो निश्चित रूप से अन्य संतों की कृतियाँ हैं, कबीर के नाम से सम्मिलित कर लेने के अतिरिक्त हमें कुछ नाम स्वतन्त्र ग्रन्थों के रूप में ऐसे भी मिलते हैं जिनकी वास्तव में कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होनी चाहिए। उदाहरण के लिए सन् १६०६-११ की रिपोर्ट में १४३ संख्या के ई २, एफ २, जी २ पर क्रमशः 'शब्द अलहतुक', 'शब्द राग गौड़ी' और 'राग भैरो' तथा 'शब्द राग काफी' और 'राग फगुवा' नामक ग्रन्थों का उल्लेख है और इसी में संख्या के, सी २, एच २ तथा आई २ पर क्रमशः 'भक्ति को अंग', 'पिय पहिचानवे को अंग' 'साधु को अंग' और 'सतसंग को अंग' शीर्षक ग्रन्थों के नाम दिये गये हैं। वास्तव में पहले वर्ग में रचनाओं के नाम कबीर के पदों की विभिन्न रागों के नाम हैं, और दूसरे वर्ग में साखियों के विभिन्न अंगों के। इन्हें क्रमशः 'पद' और 'साखी' शीर्षक के अंतर्गत सरलता से दिखाया जा सकता है। सन् १६३२-३४ की रिपोर्ट में १०३ यू, वी, डब्लू, एक्स पर क्रमशः 'शब्द कहुरा', 'शब्द प्रथम मंगलादि', 'शब्द राछरो', 'शब्द रमैनी' नाम से दिये हुए स्वतन्त्र ग्रन्थों के नाम सैनपुरा के बालाप्रसाद की एक प्रति में मिलने वाले पदों की विभिन्न रागों के नाम हैं। कहीं-कहीं एक ही ग्रन्थ का नाम भूल से दो या अधिक बार दे दिया गया है। 'कबीर सरोदय', 'ज्ञान-सरोदय', 'तत्वसरोदय' और 'सरोदय' वास्तव में एक ही ग्रन्थ के विभिन्न नाम हैं। इसी प्रकार 'चौंतीसा', 'ज्ञान-चौंतीसी' अथवा 'कबीर-चौंतीसी' तथा 'कबीर-वतीसी' और 'ज्ञान-वतीसी' में कोई अंतर नहीं। सारांश यह कि रिपोर्टों में अधिक से अधिक संख्या बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है। कारण जो भी हो, किन्तु इस अव्यवस्था से खोज-रिपोर्टों की सूची अत्यधिक भ्रामक हो गयी है।

अन्य फुटकल उल्लेख

श्री अग्ररचन्द नाहटा ने 'संतवारी' (वर्ष २, अंक ११) के 'राजस्थान में संत-साहित्य की खोज की आवश्यकता' शीर्षक निबंध में श्री नरोत्तमदास जी

(अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, डूंगर कालेज, बीकानेर) के संग्रह की तीन-चार प्रतियों का उल्लेख किया है जिनमें संत-साहित्य मिलता है। उन्होंने एक बड़े गुटके का संक्षिप्त परिचय भी दिया है जो ६०६ पत्रों का है और साधु सुखरामदास द्वारा संवत् १६५६ वि० में लिखा गया था। परिचय देखने से ज्ञात होता है कि यह निरंजनीपंथ का संग्रह-ग्रन्थ है। इसमें पहले गोरखनाथ की सबदियाँ देकर हरिदास तथा अन्य निरंजिनियों की वाणियाँ लिखी गयी हैं, तत्पश्चात् कबीर स हिव की वाणी मिलती है जिसमें ७० अंग की साखियाँ, १५ रमैणियाँ, ६ भूलने तथा ६०२ पद हैं। कबीर के अतिरिक्त नामदेव, रैदास, पीपा तथा तुरसीदास निरंजनी की वाणियाँ भी मिलती हैं, तत्पश्चात् गोरख, चरपट, भरथरी आदि चौत्तीस नाथ-योगियों की रचनाएँ मिलती हैं। अंतिम अंश में रामानन्द आदि १२० संतों के २६२ पद तथा 'हरिदास की परिचई' आदि कुछ फुटकल ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। ऊपर दादू-विद्यालय तथा ना० प्र० सभा की प्रतियों के प्रसंग में इस प्रकार के कई निरंजनी गुटकों का विवरण दिया गया है।

श्री परशुराम चतुर्वेदी ने 'कबीर साहित्य की परख' (भारती भंडार, प्रयाग सं० २०११) के परिशिष्ट में निरंजनी-संप्रदाय के पाँच और दादूपंथी पंचवाणी के तीन गुटकों का उल्लेख किया है जिनका विवरण देखने से ज्ञात होता है कि इनकी सारी विशेषताएँ लगभग वही हैं जो ऊपर उल्लिखित दादूपंथी तथा निरंजनी गुटकों की हैं।

सरस्वती-भंडार, जोधपुर द्वारा प्रकाशित सूचीपत्र में भी कबीरवाणी की कुछ ऐसी प्रतियों का उल्लेख है जिनमें उनके साखी-पदों का संग्रह है। किन्तु कोई असाधारण सामग्री वहाँ भी नहीं है।

कबीर पर कार्य करने वाले कुछ अन्य लेखकों ने भी अपने ग्रन्थों में कबीर की रचनाओं का उल्लेख किया है। श्री रामदास गौड़ ने 'हिन्दुत्व' नामक अपने ग्रन्थ में कबीरदास के ७३ ग्रन्थ गिनाये हैं। उक्त तालिका का आधार ना० प्र० सभा से प्रकाशित खोज-रिपोर्ट ही ज्ञात होती है, क्योंकि उनकी सूची के सभी नाम रिपोर्टों में मिल जाते हैं।

श्री वेस्टकट साहब ने 'कबीर एंड दी कबीरपंथ' नामक ग्रन्थ में कबीरपंथ के ८४ ग्रन्थों का उल्लेख किया है जिनमें भ्रम से कई ऐसे ग्रन्थों के नाम भी आ गये हैं जो अत्यन्त ही आधुनिक हैं।

प्रोफ़ेसर एच० एच० विलसन ने अपने 'रिलिजन ऑफ़ दी हिंदूज' (पृ० ७३-७७) नामक ग्रन्थ में कबीर साहब के निम्नलिखित ग्रन्थों के नाम गिनाये हैं—

१. आनन्दराम सागर, २. बलक की रमैनी, ३. चौंचर, ४. हिंडोला, ५. झूलना, ६. कबीरपाँजी, ७. कहरा, ८. शब्दावली ।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'कबीर-वचनावली' (पृ० २६-२८) में कबीर चौंरा के 'त्रास ग्रन्थों' के रूप में २१ रचनाओं का विवरण दिया है जिनके नाम निम्नलिखित हैं—१. सुखनिधान, २. गोरखनाथ की गोष्ठी, ३. कबीरपाँजी, ४. बलख की रमैनी, ५. आनन्द राम, ६. रामानंद की गोष्ठी, ७. शब्दावली, ८. मंगल, ९. वंसत, १०. होली, ११. रेखता, १२. झूलना, १३. कहरा, १४. हिंडोला १५. वारहमासा, १६. चौंचर, १७. चौंतीसा, १८. अलिफनामा, १९. रमैनी, २०. साखी, २१. बीजक ।

डा० के ने (कबीर एन्ड हिज फालवर्स, पृ० १६५) और फिर उन्हीं के आधार पर डा० बड़वाल ने (दि निगुण स्कूल ऑफ हिंदी पोइट्री, पृ० ३०७) लिखा है कि गरीबदास के 'ग्रन्थ साहिब' में कबीर की ७००० साखियाँ संकलित हैं—यद्यपि उन्होंने इस ग्रन्थ को देखा नहीं था, यह दोनों विद्वानों के उल्लेखों से प्रकट है । उक्त ग्रन्थ सन् १९२४ ई० में आर्य सुधारक प्रेस, बड़ौदा से मुद्रित होकर श्री स्वामी अजरानंद गरीबदासो 'रमताराम' द्वारा प्रकाशित हो चुका था । मुझे यह ग्रन्थ बड़ैया गद्दी (जि० जौनपुर) के दयालदास कबीरपंथी से देखने को मिला था । ग्रन्थ बड़ा अवश्य है, किन्तु कबीर की केवल ४२५ साखियाँ (१८ अंगों में) ही ग्रन्थ के अंतिम २० पृष्ठों में मिलती हैं, जिनमें से सभी सीयाबाग, बड़ौदा से प्रकाशित साखी-ग्रन्थ में मिल जाती हैं ।

२. मुद्रित प्रतियाँ

बीजक की प्रतियाँ

जहाँ तक पता है, कबीर की वाणियों में सर्वप्रथम 'बीजक' ही छपा गया । इसका सबसे पहला संस्करण "विश्वनाथ सिंह जू देव बांधवेश स्वर्गवासी कृत पाखंडखंडिनी टीका सहित बनारस लाइट प्रेस में गोपीनाथ पाठक ने छपा ।" यह संस्करण लीथों में है और सं० १९२४ वि० (सन् १८६८ ई०) में छपा । इस बीजक में साखी वाला प्रकरण नहीं है । यह संस्करण अब उपलब्ध नहीं है । इसकी एक प्रति श्री उदयशंकर शास्त्री के संग्रह में है । इसके पश्चात् बीजक के अनेक सटीक तथा अटीक संस्करण निकले जिनकी सूची नीचे दी जा रही है—

२. बीजक कबीरदास—रीवाँ-नरेश श्री विश्वनाथ सिंह जी की टीका और छन्द

द्वितीय के प्रकाशक : नवलकिशोर

प्रेस, लखनऊ । इसके छठी बार के रिप्रिंट पर सं० १६२६ वि० (१८७२ ई०) की तिथि मुद्रित है ।

३. बीजक कबीर साहब—रीवाँ नरेश विश्वनाथ सिंह जू देव की पाखंड-खंडिनी टीका सहित; प्रकाशक : वंकटेश्वर प्रेस, बंबई सं० १६६१ वि० ।
४. बीजक ऑफ़ कबीर—पादरी प्रेमचन्द द्वारा संपादित तथा उन्हीं के द्वारा मैल्कियड स्ट्रीट, कलकत्ता से प्रकाशित, सन् १८६० ई० । इसकी कोई प्रति हमें देखने को नहीं मिली ।
५. बीजक श्री कबीर साहब—बुरहानपुर, नागभिरा स्थान वाले पूर्णदास की त्रिज्या टीका सहित; प्रकाशक : गंगा प्रसाद वर्मा ब्रदर्स प्रेस, लखनऊ, सितम्बर, १८६२ ई० ।
६. बीजक श्री कबीर साहब का—पूर्णदास की त्रिज्या सहित जिसे कटरा, इलाहाबाद के मिस्त्री बालगोविन्द ने अपने प्रबन्ध से प्रकाशित किया; मुद्रक : इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, सन् १६०५ ई० ।
७. बीजक श्री कबीर साहब का—पूर्णदास की त्रिज्या सहित; प्रकाशक : वंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सन् १६२१ ई० ।
८. बीजक ऑफ़ कबीर—सम्पादक पादरी अहमद शाह; प्रकाशक : बैप्टिस्ट मिशन, कानपुर, सन् १६११ ई० । महर्षि शिवव्रत लाल की उर्दू टीका (सं० १६७१ वि०) इसी पाठ पर आधारित है ।
९. बीजक ऑफ़ कबीर—सन् १६११ के हिन्दी पाठ पर अंग्रेजी अनुवाद, जिसे अनुवादक (अहमदशाह) ने हमीरपुर, उ० प्र० से सन् १६१७ में प्रकाशित किया । इसमें मूल पाठ नहीं है ।
१०. संत कबीर का बीजक (३ भाग)—महर्षि शिवव्रत लाल एम० ए० की टीका सहित; प्रकाशक : नन्दू सिंह, सेक्रेटरी, राधास्वामी धाम, गोपीगंज, वाराणसी, सन् १६१४ ई० ।
११. कबीर साहब का बीजक मूल—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १६२६ ई० ।
१२. कबीर साहब का बीजक—विचारदास की टीका सहित, जिसे गोंडा जिला-निवासी श्री नागेश्वर बख्श सिंह जी, ताल्लुकदार ने सत्यनाम प्रेस, मैदागिन, बनारस में मुद्रित करा कर अमूल्य वितरित किया (सं० १६८३ वि०) । इसकी एक प्रति हमें इलाहाबाद के गुदड़ी-बाज़ार में मिल गयी थी ।
१३. बीजक—सम्पादक तथा टीकाकार श्री विचारदास शास्त्री; प्रकाशक : राम

नारायण लाल, कटरा, इलाहाबाद, सन् १९२८ । विचारदास द्वारा सम्पादित बीजक का पाठ कबीरचौरा में सुरक्षित पाँच प्रतियों पर आधारित है ।

१४. बीजक—सम्पादक : साधु लखनदास (कबीरचौरा); प्रकाशक : महावीर प्रसाद, नेशनल प्रेस, बनारस कैंट ।

१५. बीजक मूल (शब्द-शतक सहित)—“जिसे भक्त जितलाल मुन्शी ने प्रकाशित किया और जो सत सुधाकर प्रेस में मुद्रित हुआ ।” मिलने का पता : श्री साधुशरणदास जी, मुहल्ला दरजी टोला, पो० मुरादपुर, पटना ।

१६. बीजक—हनुमानदासकृत शिबुबोधिनी टीका सहित (३ भाग), सन् १९२६ ई० । मिलने के पते : १. शिवधर दास जी, मु० पो० फतुहा, कबीर साहब के संगत, जिला पटना; २. साधु शरणदास जी, पो० मुरादपुर, दरजी टोला, पटना ।

१७. संस्कृत बीजक ग्रन्थ—स्वामी हनुमानदासकृत स्वानुभूति संस्कृत व्याख्या सहित; प्रकाशक : कबीर प्रेस, सीयावाग, बड़ौदा सन् १९३६ ई० । इसका संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण दो भागों में ‘बीजक-सुरहस्य’ नाम से लम्बी भूमिका के साथ वहीं से सन् १९५० ई० में प्रकाशित हुआ है ।

१८. मूल बीजक—स्वामी हनुमानदास जी द्वारा सम्पादित तथा महन्त श्री हरि-नन्दन जी, फतुहा, पटना द्वारा प्रकाशित, सन् १९५० ई० ।

१९. कबीर साहब नुं बीजक (२ भाग)—प्रकाशक : प्राणलाल प्रभाशंकर बख्शी, हनुमान पोल, बैजवाड़ा, बड़ौदा, सन् १९३३ ई० ।

२०. कबीर साहब नुं बीजक, श्री पूरनसाहब नी त्रिज्या सहित—प्रकाशक : मणिलाल तुलसीदास मेहता, रावपुर कोठी, बड़ौदा, सन् १९३७ ई० ।

२१. मूल बीजक : गोसाईं श्री भगवान साहब का पाठ—भगताही शाखा का बीजक, प्रकाशक : महन्त मेयी गोसाईं साहब, आचार्य, मानसर गद्दी पो० दाऊदपुर, जिला छपरा (सारन); मुद्रक : कबीर-प्रेस, सीया-वाग, बड़ौदा, सन् १९३७ ई० ।

२२. मूल बीजक : भगवान गोस्वामी साहब का पाठ, भगताही की गुरुप्रणाली सहित; संशोधक तथा प्रकाशक : पं० रामखेलावन गोस्वामी, आयु-वेदाचार्य, सन् १९३८ ई० । मिलने का पता : अधिकारी जीयुत

गोस्वामी, घनौती बड़ा मठ, पो० भाटा पोखर, जि० सारन, बिहार ।

२३. कबीर बीजक : पं० महाराज राघवदासकृत भाषा-टीका सहित—प्रकाशक :
वैजनाथ प्रसाद, बुकसेलर, राजा दरवाजा, बनारस सिटी (सन्
१९३६ ई०) ।

२४. बीजक मूल—संशोधक तथा प्रकाशक : महाराज राघवदास जी, कबीरमठ,
काशी, सन् १९४६ ई० ।

२५. बीजक मूल : पं० राघवदास जी विरचित सर्वांगपदप्रकाशिक टीका सहित
प्रकाशक : वही, सन् १९४८ ई० ।

२६. बीजक मूल (गुटकाकार)—प्रकाशक : स्वसंवेद कार्यालय, सोयाबाग
बड़ौदा, सन् १९४१ ई० ।

२७. बीजक मूल—प्रकाशक : भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस ।

२८. कबीर साहब का बीजक—सम्पादक : हंसदास शास्त्री, महावीर प्रसाद
(श्री उदय शंकर शास्त्री का भी सहयोग इसमें प्राप्त था); प्रकाशक :
कबीर-ग्रन्थ-प्रकाशन-समिति, मुकाम-पोस्ट हरक, जिला बाराबंकी,
सं० २००७ वि० ।

२९. बीजक कबीर साहब—प्रकाशक : सरस्वती-विलास प्रेस, नरसिंहपुर (म०
प्र०) सन् १३०७ ई० ।

३०. कबीर साहब का बीजक मूल—आगरा से रंग-विरंगी जिल्द में अश्ववारी
काग़ज़ पर छपा हुआ, जो आजकल मेलों में बहुत दिखाई देता है ।

३१. इनके अतिरिक्त एक बीजक मिहींदास की टीका के साथ पहले कभी प्रका-
शित हुआ था, किन्तु कहीं मेरे देखने में नहीं आया । श्री परशुराम
चतुर्वेदी ने 'कबीर साहित्य की परख' (पृ० ५९) में कबीरचौरा
से प्रकाशित एक मिहींदासकृत टीका (सं० १९७२ वि०) का उल्लेख
किया है । संभव है, यह वही ग्रन्थ हो ।

३२. रीवाँ-नरेश विश्वनाथ सिंह संपादित एक अन्य बीजक का उल्लेख वेस्टकट
साहब ने भी 'कबीर एंड दि कबीरपंथ' (पृ० ४८) में किया है ।
उक्त लेखक के अनुसार इसका प्रकाशन गया से हुआ था और इसमें
टीका का अंश नहीं था ।

सम्भव है, उक्त ३२ संस्करणों के अतिरिक्त बीजक के अन्य संस्करण भी
कहीं से छपे हों जो मेरे देखने में न आ सके हो, क्योंकि आजकल मेले वाले दूकान-
दार अथवा कबीरपंथी गद्दियों के महंथ व्यापार की दृष्टि से भी बीजक छाप-छाप

कर बेच रहे हैं। उनका ठीक-ठीक लेखा-जोखा कौन लगा सकता है ?

श्री गुरुग्रन्थ साहब की प्रतियाँ

सिक्खों के धर्मग्रन्थ 'श्री गुरुग्रन्थ साहब' में भी कबीर की वाणी मिलती है। इसके पाँच मुद्रित संस्करण मेरे देखने में आये हैं। पाँचों संस्करण 'गुरुग्रन्थ साहब' की मूल प्रति (लि० का० सं० १६६१ वि०) पर आधारित हैं जो आजकल करतारपुर में सुरक्षित बतायी जाती है। पाँचों के नाम-धाम ये हैं :

१. आदि श्री गुरुग्रन्थ साहेब जी (गुरुमुखी संस्करण)—प्रकाशक : भाई मोहन सिंह वैद्य, तरन तारन, अमृतसर।
२. आदि श्री गुरुग्रन्थ साहब जी (नागरी संस्करण)—प्रकाशक : बही, सन् १९२७ ई०।
३. श्री गुरुग्रन्थ साहब (गुरुमुखी)—प्रकाशक : भाई गुरुदियाल सिंह, अमृतसर।
४. श्री गुरु ग्रन्थ साहब (नागरी संस्करण)—प्रकाशक : सर्व-हिन्द-सिक्ख-मिशन, अमृतसर, सन् १९३७ ई०।
५. श्री गुरुग्रन्थ साहब (गुरुमुखी)—प्रकाशक : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर।

गुरुग्रन्थ साहब के मुद्रित संस्करण भी आसानी से नहीं मिलते।

'गुरुग्रन्थ साहब' के पाठ को ही ले कर बाबा किशनदास उदासी निरंजनी ने सन् १८७६ ई० में निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से 'कबीर-पदसंग्रह' नाम से और आगे चल कर प्रयाग-विश्वविद्यालय के डॉ० राम कुमार वर्मा ने सन् १९४३ ई० में साहित्य-भवन लि०, इलाहाबाद से 'संत कबीर' नाम से भूमिका, शब्द-कोश तथा टीका-टिप्पणियों के साथ प्रकाशित करवाया। 'कबीर-पदसंग्रह' अब नहीं मिलता। इसकी एक फटी-पुरानी प्रति अहियापुर, इलाहाबाद के भारती-भवन पुस्तकालय में पड़ी है।

ना० प्र० सं० द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

१. कबीर-ग्रन्थावली—सम्पादक : बाबू श्याम सुन्दर दास, सन् १९२८ ई०।
२. कबीर-वचनावली—सम्पादक : अयोध्यासिंह उपाध्याय, यहूबेलवेडियर प्रेस की 'शब्दावली' पर अधिक आधारित है; नवाँ संस्करण, सं० २००३ वि०।

शब्दावली की प्रतियाँ

कबीर की शब्दावली (पदसंग्रह) के निम्नलिखित छपे संस्करण मिले हैं।
कबीर-चौरा से सम्बन्धित संस्करण—

१. कबीर साहेब की शब्दावली—संपादक : बड़े बिशुनदास, कबीरचौरा, काशी।

२. कबीर साहेब की बड़ी और छोटी शब्दावली—साधु लखनदास, कबीर-चौरा ।
३. सत्यकबीर-शब्दावली अर्थात् कबीर-भजनावली—प्रकाशक : साधु अमृतदास, कबीरचौरा स्थान, बनारस, सन् १९५० ई० । अन्य प्राप्ति स्थान : साधु अमृतदास, घी कांटा, कबीर मंदिर, अहमदाबाद ।

अन्य संस्करण—

४. कबीर साहेब की शब्दावली (४ भाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई० से ।
५. कबीर (४ भाग)—आचार्य श्री क्षिति मोहन सेन द्वारा सम्पादित ।
६. ग्रन्थ शब्दावली—रा० रा० श्री गोविन्दराम दुर्लभराम, ज्ञानसागर प्रेस, बम्बई ।
७. सत्य कबीर की शब्दावली (२ भाग)—सम्पादक : महर्षि शिवव्रत लाल, 'संत' पत्रिका, जिल्द १, नं० ५, ६; राधास्वामी धाम, गोपीगंज, वाराणसी ।

साखी-ग्रन्थ

१. सत्य कबीर की साखी—सम्पादक : स्वामी युगलानन्द कबीरपंथी; प्रकाशक : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सन् १९०८ ई० (इसके परशिष्ट में 'कबीर-परिचय की साखी, भी दी हुई हैं ।) ।
२. कबीर साहेब का साखी-संग्रह (२ भाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित : सन् १९२६ ई० ।
३. सत कबीर की साखी—सम्पादक : महर्षि शिवव्रत लाल, 'संत' पत्रिका, जिल्द १ नं० १, २, ३; पता, वही ।
४. सत कबीर की साखी—सम्पादक श्री हुजूर साहेब, राधास्वामी धाम, स्वामी बाग, आगरा ।
५. सद्गुरु कबीर साहेब का साखी-ग्रन्थ—महन्त श्री विचारदास शास्त्री (वर्तमान पं० श्री हुजूर प्रकाशमणिनाम साहेब) कृत विरल टीका-सहित, प्रकाशक : महन्त श्री बालकदास जी, कबीर-धर्म-वर्धक-कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा ।
६. सद्गुरु कबीर साहेब का सटीक साखी-ग्रन्थ—टीकाकार : महराज राघवदास जी, लहरतारा धाम; प्रकाशक : बाबू बैजनाथ प्रसाद, बुकसेलर, राजा दरदाजा, वाराणसी । इसका पाठ सीयाबाग से प्रकाशित 'साखी-ग्रन्थ' से मिलता है ।

७. कबीर-साखी-सुधा—टीकाकार : प्रोफ़ेसर रामचन्द्र श्रीवास्तव 'सुधांशु';

प्रकाशक : श्रीराम मेहरा, आगरा । इसमें 'कबीर-ग्रन्थावली' का पाठ स्वीकृत हुआ है ।

८. इनके अतिरिक्त २५०० साखियों के एक अन्य संस्करण का उल्लेख वेस्टकट ने किया है । उक्त लेखक के अनुसार यह एडवोकेट प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुआ था, किन्तु प्रकाशन-समय की सूचना लेखक ने नहीं दी है ।

फुटकल संकलन

१. उपदेश-रत्नावली—बीजक की २२५ साखियों का पतला संग्रह, जिसे 'भारत-बन्धु' के सम्पादक श्री तोताराम वर्मा, वकील, हाईकोर्ट ने संग्रहीत किया और मोतीलाल कापीनवीस ने लिखा तथा भारत-बन्धु-यंत्रालय, अलीगढ़-से लीथो में छप कर सं० १८८२ वि० में प्रकाशित हुआ । इसकी एक प्रति ना० प्र० सभा में है ।
 २. कबीर-पदावली—डॉ० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
 ३. कबीर—नरोत्तमदास स्वामी, हिन्दीभवन, लाहौर, सं० १९९७ वि० ।
 ४. शब्द-विलास—प्रकाशक : गुल्शरणपति साहेब, आचार्य गद्दी बड़ैया, पो० अभिया बाया सुरियावाँ, वाराणसी ।
 ५. कबीर-भजनावली—प्रकाशक : वैजनाथ प्रसाद, बुकसेलर, वाराणसी ।
 ६. कबीर-भजनावली—पटना के एक अज्ञात प्रेस से प्रकाशित ।
 ७. कबीर-संगीत-रत्नमाला—भल्ला साहब, वरदा प्रेस, बम्बई १९६३ वि० ।
 ८. महात्मा कबीर—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी, सूरि ब्रदर्स, लाहौर, सं० १९९३ ।
 ९. वन् हंड्रेड पोएम्स ऑफ़ कबीर—रवीन्द्रनाथ टैगोर, मैकमिलन एंड को, १९२३ ई० ।
 १०. कबीर (परशिष्ट के १०० पद)—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक : ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९४२ ई० ।
 ११. संत-काव्य—श्री परगुराम चतुर्वेदी, किताब महल, प्रयाग, सं० २००९ वि० ।
- उपर्युक्त पुस्तकों में कबीर की वाणियों के संकलनमात्र हैं ।

परवर्ती रचनाएँ

श्री वेंकटेश्वर प्रेस तथा लक्ष्मी वेंकटेश्वर, बम्बई और कुछ कबीरपंथी प्रकाशकों की ओर से कई ऐसे ग्रन्थ प्रकाशित किये गये हैं जो वास्तव में कबीर के तो नहीं हैं किन्तु उनमें यत्र-तत्र कबीर का नाम आ जाने से अथवा कबीर-पंथियों की सम्प्रदाय-गत श्रद्धा के कारण पंथ के प्रधान प्रेरक कबीर के ही माने

कबीर-ग्रंथावली

जाते हैं। ऐसे ग्रन्थों की संख्या बहुत बड़ी है। जो हमें मिल सके हैं उनकी सूची नीचे दी जा रही है।

कबीर-सागर—जिल्द १ में (१) ज्ञानसागर, जिल्द २ में (२) अनुरागसागर, जिल्द ३ में (३) अम्बुसागर, (४) सर्वज्ञसागर, (५) विवेकसागर। बोधसागर—जिल्द ४ में (६) ज्ञानप्रकाश, (७) अमरसिंहबोध, (८) वीरसिंहबोध।

बोधसागर—जिल्द ४ में (६) ज्ञानप्रकाश, (७) अमरसिंहबोध, (८) वीरसिंहबोध; जिल्द ५ में (९) हनुमानबोध, (१०) लक्ष्मणबोध, (११) गरुड़बोध, (१२) भूपालबोध; जिल्द ६ में (१३) मुहम्मदबोध, (१४) काफिरबोध, (१५) सुल्तानबोध; जिल्द ७ में (१६) निरंजनबोध, (१७) चौकासरोदय, (१८) अमरमूल, (१९) कर्मबोध, (२०) ज्ञानबोध, (२१) भवतारणबोध, (२२) मुक्तिबोध, (२३) कबीरबानी, (२४) अलिफनामा; जिल्द ८ में (२५) ज्ञानस्थिति-बोध, (२६) कायापाँजी, (२७) पंचमुद्रा, (२८) संतोषबोध, (२९) उग्रगीता; जिल्द ९ में (३०) आत्मबोध, (३१) जैनधर्मबोध, (३२) स्वसंवेदबोध, (३३) धर्मबोध; जिल्द १० में (३४) कमालबोध, (३५) सुमिरणबोध, (३६) स्वासागुंजार, (३७) आगमनिगम-बोध; जिल्द ११ में (३८) कबीरचरित्र बोध, (३९) गुरुमाहात्म्य, (४०) जीवधर्मबोध; इनके अतिरिक्त, (४१) 'कबीरपंथी वालोपदेश' नामक पुस्तक में 'ककहरा' (बीजक की 'ज्ञान चौंतीसी'), विप्रमतीसी, कहुरा आदि भी छपे हैं; (४२) मीनगीता (लक्ष्मी वेंकटेश्वर)।

उक्त ग्रन्थों में से 'अनुराग-सागर', 'कायापाँजी', 'सुमिरणबोध' ('सुमिरण-स्वरपाँजी' के नाम से) स्वसंवेद कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा से भी प्रकाशित हो चुके हैं। सीयाबाग से 'श्री गुरु-महिमा' और 'तीसा-जन्त्र' नाम की दो रचनाएँ तथा कई अन्य छोटी-छोटी रचनाएँ भी प्रकाशित हुई हैं।

सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर के स्वामी श्री नन्हेलाल मुरलीधर ने निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं—

(१) अंबुसागर—तुल० कबीर-सागर, वेंकटेश्वर प्रेस, जि० २, (२) अनंता-नंद की गोष्ठी, (३) अनुरागसागर, १९३० ई०, (४) अमरमूल, १९२९ ई०, (५) कबीरकृष्णगीता, (६) कबीरनिरंजनगोष्ठी, १९२८ ई०, (७) कबीरभजनावली, (८) धर्मदासबोध या ज्ञानप्रकाश—तुल० वेंक० प्रेस, बोध-सागर, जि० ४, (९) निर्भयज्ञान—तुल० कबीरचौरा संस्करण, (१०) बीजक सुखनिधान, (११) वीरसिंहबोध—तुल० वेंक० प्रेस, (१२) भवतारण, १९०७

ई०—तुल० 'बोधसागर' जि० ४, (१३) भोपालबोध, (१४) मुक्तिमाला, (१५) संतोषबोध, (१६) हनुमानबोध, (१७) ज्ञान-उपदेश, (१८) ज्ञान-सागर—तुल० बेंक० प्रेस, कबीर-सागर ।

पाँचवें तथा सातवें को छोड़कर शेष सब में रचयिता अथवा संग्रहकर्ता के रूप में धर्मदास का ही नाम दिया हुआ है ।

कबीरचौरा से 'निर्भय ज्ञान', 'भेदसार', 'आदि टकसार', 'गोरखगोष्ठी', 'रामानंदगोष्ठी', 'कबीरसर्वाजीतगोष्ठी' आदि फुटकल ग्रन्थ भी छापे गये हैं ।

ऊपर जिन रचनाओं के नाम आये हैं, उनमें से अधिकांश का उल्लेख सभा की खोज-रिपोर्ट में भी कबीर की रचनाओं के रूप में हुआ है । जिसकी चर्चा पीछे हो चुकी है ।

§२. प्राप्त सामग्री का विश्लेषण

इसके पूर्व हमने कबीर के नाम से प्रचलित साहित्य का परिचय दिया । उक्त सूची में जितनी रचनाएँ मिलती हैं उन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । कुछ ग्रन्थ तो ऐसे हैं जो न कबीर के हैं, न कबीरपंथ के; किन्तु कबीर के नाम पर चल रहे हैं । कुछ ऐसे हैं जिनकी रचना कबीर के पश्चात् उनके पंथ के संत-महात्माओं द्वारा हुई ज्ञात होती है । उनमें भाषा तथा भाव स्पष्ट रूप से न कबीर के हैं और न उनके जीवन-काल के ही, केवल कहीं-कहीं कथन की पुष्टि के लिए प्रमाण-वाक्य की तरह कबीर की साखियों अथवा पदों का दृष्टान्त दिया गया है । इनके अतिरिक्त जो रचनाएँ मिलती हैं, उन्हीं में कबीर की कृतियाँ हैं, यद्यपि सम्पूर्ण रूप से किसी भी एक ग्रन्थ को कबीर का नहीं कहा जा सकता; क्योंकि कोई भी ग्रन्थ ऐसा नहीं है जिसमें स्पष्ट रूप से अशुद्ध अथवा प्रक्षिप्त पाठ न मिलते हों । जो भी हो, इसी तीसरे वर्ग की रचनाओं को ही प्रस्तुत पुस्तक में अध्ययन का मुख्य विषय बनाया गया है । नीचे उक्त तीनों वर्गों की रचनाओं का विश्लेषण विवेकानन्द प्रभु, K. L. Singh Collection, Haridwar

वर्ग १ : कबीर के नाम पर प्रचलित अन्य संप्रदायों के ग्रन्थ

इस वर्ग की रचनाओं में विचारमाल, रतनजोग, काफिरबोध, जैन-धर्म-बोध, अष्टांग जोग, नामदेव कौ भगड़ी, अजब उपदेस, नाममाला, नसीहतनामा, चेतावनी, मीनगीता नामक ग्रन्थ लिये जा सकते हैं—

१. विचारमाल—खोज-रिपोर्ट सन् १९१७-१९ की संख्या ६२ ए पर यह कबीरकृत बताया गया है। हमें यह ग्रन्थ अन्यत्र भी कई स्थलों पर मिला है। 'विचारमाल' की एक प्रतिलिपि दादू-महाविद्यालय की एक पोथी में है, जिसका विवरण उक्त विद्यालय की नवीं प्रति के रूप में पहले ही दिया गया है। विद्यालय की सूची में भी भ्रम से इसे भगवानदास निरंजनी की रचनाओं में सम्मिलित कर लिया गया है। पुरोहित जी के संग्रह में भी 'विचारमाल' की एक प्रति है, जिसकी चर्चा उन्होंने 'सुन्दर-ग्रंथावली' में पृ० १०४ पर की है। मयाशंकर याज्ञिक के संग्रह में इसकी कई प्रतियाँ हैं। संख्या ६२६-५३ पर वहाँ इसकी एक लीथो प्रति भी है। आवरण पृष्ठ न होने से पता नहीं चलता कि यह कब और कहाँ छपी थी। इन सभी प्रतियों के पाठ रिपोर्ट वाली प्रति से मिलते हैं। वस्तुतः इसके रचयिता अनाथदास हैं, जिसका संकेत रचना के अन्तर्गत कई दोहों में मिलता है।^१ अंत के एक सोरठे में इसका रचनाकाल सं० १७२६ वि० दिया हुआ है, जब कि कबीर वर्तमान ही नहीं थे। अतः यह रचना किसी भी प्रकार से कबीर की नहीं मानी जा सकती। वर्ण्य विषयों की दृष्टि से यह कबीरपंथी रचना भी नहीं हो सकती। वास्तव में सभा की ओर से खोज करने वाले कर्मचारी को 'विचारमाल' की जो प्रति मिली थी उसके अंत में कबीर का एक 'कहरा' लिखा हुआ था। कदाचित् यही देख कर निश्चय कर लिया गया कि सम्पूर्ण रचना कबीर की ही है।

२. काफिरबोध—वेंकटेश्वर प्रेस के 'कबीर-सागर' में इसे कबीर की रचना माना गया है, किंतु वस्तुतः यह योगी रतननाथकृत है। 'काफिरबोध'

१. तात मात भ्राता सुहृद, इष्टदेव नृप प्राण।

अनाथ सुगुरु सब ते अधिक, दान ज्ञान विज्ञान॥—१-५।

अनाथ श्रवन बहुते कियौ, कहौ जु बहुत प्रकार।

अब सु विचार विचार पुनि, कर्ण न परे विचार॥—७-३६।

हौं अनाथ केतक सुमति, वरणाँ माल विचार।

राम मया सतगुरु दया, साधु संग निरधार॥—७-३८।

२. सत्रह सै कुन्वीस, सबत साधवमास शुभ।

मौ मति जितक हुतीस, तेतक वरणि प्रगट करी॥—८-४१।

संत-साहित्य की कुछ पोथियों में बाबा गोरखनाथ के नाम से भी मिलता है, किन्तु यह न तो कबीरकृत है और न गोरखनाथकृत। उसमें रचयिता के रूप में स्पष्ट ही रतननाथ का नाम आता है; यथा—

बैठी रहौ भामा होवा । कुफ वले अपनी रावा ।

इतना सवाल रतन हाजी ने कहाँ ।—कबीर-सागर, जिल्द ६, पृ० २६ ॥

किंतु प्रकाशित संस्करण में रचना के अंत में “कहै कबीर पीर को जानी, काफिरबोध संपूरन वानी ।” भी मिलता है जो स्पष्ट ही किसी कबीरपंथी द्वारा बाद में जोड़ा हुआ जान पड़ता है ।

३. रतनजोग अथवा अष्टांगजोग—यह भी किसी नाथपंथी की रचना प्रतीत होती है, न कि कबीर अथवा कबीरपंथी की । ‘रतनजोग अष्टांग’ नाम की एक रचना ओरिएंटल कॉलेज, लाहौर की पत्रिका (मई, १९३५ ई०) में छपी गयी थी और उसमें यह सिद्ध किया गया है कि यह रचना रतननाथ की नहीं प्रत्युत अठारहवीं शताब्दी के किसी नाथ-योगी की है ।

४. जैनधर्म-बोध—यह वेकटेश्वर प्रेस के ‘कबीर-सागर’ की नवीं जिल्द में छपा है, और कहीं से भी कबीरपंथी ग्रन्थ नहीं ज्ञात होता । आदिमध्यावसानेषु जैनी धर्म-ग्रन्थ लगता है । इसमें आरंभ के ही एक दोहे में घोषणा कर दी गयी है कि—

जगत अनादि निधन अहै, तासु न कबहूँ नास ।

बीज ते रचना सकल हो, यह जग स्वयंप्रकास ॥

याको कर्ता नाहिं कोइ, यह जग आपै आप ।

कर्म प्रेरि करवाव सब, कर्महिं रचना थाप ॥

कर्म जनित भोगें फल सारे । आत्म सब के न्यारे न्यारे ॥

उत्पत्ति-कथा में यह बताया गया है कि पहले दिन-रात, चन्द्र-सूर्य, राव-रंक का विभाजन नहीं था । कल्पवृक्ष की आभा सर्वत्र विद्यमान थी, सर्वत्र आनंद ही आनंद था । फिर जब चौथा काल लगा तब रात-दिन अलग हो गये, कल्प वृक्ष लुप्त हो गया और उसके स्थान पर ईश्वर का पेड़ हो गया । ईश्वर की खेती से ही इक्ष्वाकु कुल सर्वप्रथम चला, फिर गुण-दोष के अनुसार क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—ये तीन वर्ण हुए । तदनंतर पंचम काल में जब बड़ा अनाचार फैला तब तीर्थंकर देव पृथ्वी पर आये । ऋषभनाथ आदि-तीर्थंकर हुए । उनके पुत्र राजा भरत ने दयावंत लोगों को छांट कर एक चौथा वर्ण ब्राह्मण नाम से चलाया । तब से चार वर्णों की छाप चली, किन्तु पंचम काल में ब्राह्मण प्रबल हो गये

और जैन-विरुद्ध कार्य करने लगे। वेद बना कर उसमें ब्राह्मणों की प्रशंसा की। अश्वमेध, नरमेध, गोमेध (?) आदि यज्ञ चलाये। किन्तु उक्त रचना के अनुसार चौथा काल जब फिर आयेगा तो ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा कम हो जायगी। इसके बाद इसमें चौबीस तीर्थंकरों, बारह चक्रवर्तियों, नौ नारायणों, नौ प्रतिनारायणों, तिरसठ सलाका पुरुषों, अष्टकर्म विधान, नाना प्रकृतियों, गोत्र-कर्म, अन्तराय-कर्म, सागर-प्रमाण, जैन यति के अट्ठाईस मूल गुणों, उसकी बाईस परीक्षाओं, स्वर्ग-नर्क तथा प्रलय इत्यादि का जैनागमों के अनुसार वर्णन है। कहीं भी कबीर अथवा कबीरपंथ का नामोल्लेख तक नहीं किया गया है, केवल आरम्भ में “चार पुरुष और बयालिस वंश की दया” मनायी गयी है। ज्ञात होता है कि ब्राह्मण-विरोधी तथा अहिंसा-परक ग्रन्थ होने के कारण ही इसे कबीरपंथी ग्रन्थों में समा-विष्ट कर लिया गया।

५. नामदेव को भगड़ो—इसमें संत नामदेव की कथा दी हुई है। सभा की खोज-रिपोर्ट (सन् १९४१-४३-२१ ख) के अनुसार इसकी कोई प्रति नौनेरा, भरतपुर के दीपचन्द्र जी के यहाँ मिली थी, जिसका अंतिम अंश है—

पातसाह तब पकड़े पाय। बकसौ नामदेव तुम्हारी गाय ॥

नामदेव पातसाह भगड़ौ पड़ौ। हित कर दास कबीर कह्यौ ॥

यही अंतिम पंक्ति, जो संभवतः बाद की जोड़ी हुई है, इस रचना को कबीरकृत कहलाने की जिम्मेदार हुई।

६. अजब उपदेस—सन् १९३२-३४ की खोज-रिपोर्ट में इसका उल्लेख कबीर की रचना के रूप में हुआ है, किन्तु कबीर का नाम इसमें कहीं भी नहीं मिलता।

७. नाममाला—यह कोश के ढंग की रचना है जिसमें आध्यात्मिक प्रतीकों के विभिन्न अर्थ दिये हुए हैं। यह दादूपंथ अथवा निरंजनीपंथ के किसी संत की रचना ज्ञात होती है, और संभवतः कबीरपंथी संग्रह-ग्रन्थ में लिखी होने के कारण ही कबीर की मान ली गयी है।

८. नसीहतनामा—सन् १९३२-३४ की १०३ आर संख्यक रिपोर्ट के अनुसार इसमें काफिर की व्याख्या है, किन्तु कबीर का नाम कहीं नहीं मिलता है। इसका अंतिम अंश है—

ए मोमन हजरत कहै, हरीदास का प्यार।

एही तालिब अलह के, एही अलह के यार ॥

९. चेतावनी—सन् १९३२-३४ की १०३ एच संख्यक रिपोर्ट में इसका उल्लेख है, किन्तु यह स्पष्ट ही हरिसिंहराम की रचना प्रतीत होती है। केवल अंतिम

पंक्ति में “सुनि सौ वात की एक वात, कबीरा सुमिर त्रिभुवन तात ।” आ जाने के कारण इसे कबीरकृत मान लिया गया है ।

१०. मीनगीता—प्रकाशक (लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस) द्वारा यह 'कवीर साहव-कृत' बताया गया है, किन्तु उसमें एक भी पंक्ति ऐसी नहीं है जिससे वह कवीर की अथवा किसी कवीरपंथी की रचना ज्ञात हो। अर्जुन ने कृष्ण से मछली की उत्पत्ति के बारे में पूछा। कृष्ण ने बताया कि एक बार मनु ने जब बड़ी तपस्या की तो इन्द्र ने डर कर यम को भेजा। यम ने ब्राह्मण का रूप धारण कर मनु से महामांस-भोजन पाने की इच्छा प्रकट की। मनु ने एक महीने की मुहलत लेकर चौरासी लाख जीवों का रुधिर मँगा कर स्फटिक की कोठरी में बंद कर दिया। जब एक महीने के बाद यम आये और कोठरी खोली गयी तो नाना खानियों के मीन दिखलाई पड़े। हाथी से रोहू, गिरगिट से सिंघी, उल्लू से टेंगरा, चील से चल्हवा—अर्थात् “चौरासी लख जीव हैं ते तो मीन हैं खान। नहिं मानो तो देख लो गीता है परमान।” यम ने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया और यह वचन दिया कि जो मछली खायेंगे उन्हें नर्क होगा और जो न खायेंगे उन्हें हरिभक्ति मिलेगी।

वर्ग : २ कबीर के नाम पर कबीरपंथ की परवर्ती रचनाएँ

दूसरे वर्ग में जो रचनाएँ आती हैं उनकी संख्या बहुत बड़ी है। इनमें से कुछ तो प्राचीन हैं, किन्तु अधिकांश बिलकुल आधुनिक हैं। प्रायः ऐसा होता है कि विभिन्न सम्प्रदायों तथा परम्पराओं की सामयिक आवश्यकता के अनुसार लोग ग्रन्थ-रचना करते जाते हैं और उसे प्रभावशाली बनाने के लिए रचयिता के रूप में परम्परा के आदि प्रवर्तक का नाम दे दिया करते हैं। कर्मकांड और धर्म के बाह्याचार में ऐसा करना बहुत आवश्यक हो जाता है, अन्यथा लोग उसका सम्मान ही न करें। तुलसीदास को भी 'मानस' में वेद की दुहाई देनी पड़ी थी। इसी प्रकार कबीरपंथ में भी हुआ। ज्यों-ज्यों परिस्थितियाँ बदलती गयीं, संप्रदाय की आवश्यकताएँ भी बढ़ती गयीं, और उसका संगठन दृढ़ करने के लिए आचार अथवा धर्म-संबंधी अनेक रचनाएँ भी तैयार करनी पड़ीं। उन्हें सम्मान-योग्य बनाने के लिए सभी के आदि-अंत में कबीर साहब का नाम दे दिया गया। कुछ ग्रन्थों में तो स्वयं कबीर का ही माहात्य अंकित है।

१. गोष्ठी-साहित्य
कबीर-गोरख-गोष्ठी, कबीर-शंकराचार्य-गोष्ठी, कबीर-दत्तात्रेय-गोष्ठी

३. 'कवीर गोरख गुप्ति' तथा 'कवीर साहब और सर्वाजीत की गोष्ठी' कबीरचौरा के महारथ लखनदास द्वारा क्रमशः सन् १९८३ तथा १९८७ वि० में प्रकाशित हो चुके हैं।

कबीर-देवदूत-गोष्ठी, कबीर-जोगाजीत-गोष्ठी, कबीर-सर्वाजीत (शास्त्रज्ञ पंडित) गोष्ठी^३, कबीर-वशिष्ठ-गोष्ठी, कबीर-हनुमान-गोष्ठी आदि ग्रन्थों में यह दिखाया गया है कि किस प्रकार कबीर ने अपने प्रतिपक्षियों को (जिनके नाम विभिन्न ग्रन्थों में आये हैं) शास्त्रार्थ में हराया और उनके ज्ञान को थोथा सिद्ध करते हुए उन्हें अपना शिष्य बनाया। वास्तव में हारने वाले लोग ऐसे संप्रदायों के प्रतीक हैं जिनसे कबीरपंथ को कालांतर में मोर्चा लेना पड़ा। इन ग्रन्थों की भाषा बहुत ही तीक्ष्ण और प्रभावशालिनी है। किसी को शास्त्रार्थ में किस प्रकार नीचे गिराना चाहिए, इन ग्रन्थों में इसे पूर्ण रूप से दिखाया गया है। कबीरपंथ को गोरखपंथी जोगियों से सर्वाधिक टक्कर लेनी पड़ी थी, अतः गोरखनाथ की कई गोष्ठियाँ प्रचलित हैं। वानगी के लिए कबीर और गोरखनाथ की एक छोटी सी गोष्ठी का कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

प्रश्न गोरखनाथ : सिद्धा कौनै दीनां डंड कमंडल, किन दीनों मृगछाला ।

कौनै तुमको हरिनाम सुनाया, किन दीनों जपमाला ॥

उत्तर कबीर : ब्रह्मां दीनां डंड कमंडल, शिव दीनों मृगछाला ।

गुरु हमारे हरि नाम सुनाया, विष्णु दीनों जपमाला ॥

प्रश्न गोरखनाथ : अंडाण मंडाण चारि खुरी दो कान ।

जानैं तौ जान नहीं भोली माला आगे आन ॥

उत्तर कबीर : अंडान धरती मंडान आकास, चार खूंट चार खुरी चन्द सूर दो कान ॥

नहीं आनों भोली नहीं आनों माला, मोहि गुरु रामानंद जी की आन ।

सोंगी भोली और चरपटी । फिर बोलै तो मारौं कनपटी ॥

—संवत् १८४५ की एक ह० लि० पोथी से ।

इस प्रकार का वाद-विवाद प्रायः अब भी अखाड़ों में चल पड़ता है। किसी ने 'रैदास-रामायण' में रैदास की महिमा गायी तो सीयबाग, बड़ौदा से "मिथ्या-प्रलाप-मर्दन अर्थात् रैदास-रामायण का मुंह तोड़ उत्तर" छापना पड़ा। 'धर्मदास-गोष्ठी' और 'कबीर-कमाल गोष्ठी' में क्रमशः धर्मदास और कमाल को शिष्य बनाने और उनको उपदेश देने का वर्णन है। 'कबीर-रामानंद-गोष्ठी' में कबीर के प्रति रामानंद के उपदेश हैं। साधारण कबीरपंथी जनता पर ऐसे ग्रन्थों का बहुत प्रभाव है।

२. सृष्टि-प्रक्रिया तथा कबीर के जीवन से संबद्ध पौराणिक शैली के ग्रन्थ कई ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें पौराणिक शैली में कबीरपंथी सृष्टि-प्रक्रिया का और

कबीर के जन्म तथा जीवन-लीलाओं का अतिरंजित चित्रण मिलता है। अनुराग-सागर, ज्ञान-सागर, अम्बुसागर, स्वसंवेद-बोध, निरंजन-बोध, सर्वज्ञ-सागर, ज्ञान-स्थिति-बोध तथा सुकृति-ध्यान आदि ऐसे ही ग्रन्थ हैं। जिस प्रकार हिन्दुओं के अठारह पुराणों में कुछ हेर-फेर के साथ सृष्टि की उत्पत्ति, माया, ब्रह्म, जगत् तथा इस प्रपंच से मुक्ति के वर्णन मिलते हैं उसी प्रकार इन ग्रन्थों में भी समझना चाहिए। 'कूर्मावली' में धर्मराय (निरंजन) और कूर्म की लड़ाई तथा कूर्म से सृष्टि-जाल छीने जाने का वर्णन है।

पहले आकाश-पाताल, कूर्म-वाराह-शेष, गौरी-गणेश, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, शास्त्र-वेद-पुराण आदि कुछ नहीं थे, केवल एक सत्यपुरुष था और सृष्टि का सब प्रपंच उसी में समाया हुआ था—जैसे बट-वृक्ष में छंह। फिर पुरुष ने अपनी इच्छा से अट्ठासी सहस्र द्वीपों की रचना की और अपने अंश के रूप में कर्म, ज्ञान, विवेक, काल, निरंजन आदि सोलह पुत्रों को जन्म दिया। सारी रचना शब्द के द्वारा हुई। शब्द ही से उसने लोक-द्वीप बनाये और शब्द ही से पुत्रों को आकार दिया। फिर धर्मराय अथवा निरंजन ने सत्तर युग और तपस्या कर सत्यपुरुष से मानस-सरोवर और शून्य-देश प्राप्त कर लिया। अंत में सृष्टि रचने की आज्ञा मिली। किन्तु निरंजन को सृष्टि-रचना का साज मालूम ही नहीं था। सृष्टि-जाल प्राप्त करने के लिए उसने अपने बड़े भाई कूर्म का पेट काट डाला। जब निरंजन ने सृष्टि-रचना के लिए खेत, बीज आदि देने की प्रार्थना की तो सत्यपुरुष ने आद्या नामक अष्टांगी कुमारी को जन्म दिया और सृष्टि-रचना के लिए निरंजन के पास भेजा। निरंजन ने आद्या से ब्रह्मा, विष्णु, महेश नामक तीन पुत्रों को जन्म देकर स्वयं गुप्तवास किया। तीनों लड़के जब सयाने हुए तो उन्होंने समुद्र का मंथन कर चौदह रत्न प्राप्त किये। ब्रह्मा को वेद मिला जिसे निरंजन ने अपने श्वास से बना कर समुद्र में छिपा दिया था। वेद पढ़ कर ब्रह्मा को निराकार का ज्ञान हो गया, जो गुप्त था। उसने आद्या से अपने उस पिता का पता पूछा। आद्या ने निरंजन का भेद नहीं बताया, किन्तु बहुत हठ करने पर ब्रह्मा को ऊपर की ओर और विष्णु को नीचे की ओर भेजा। विष्णु तो लौट आया किन्तु ब्रह्मा न लौटा, तो आद्या को बड़ी चिन्ता हुई और उसने गायत्री की सृष्टि की और उसे ब्रह्मा को मनाने के लिए भेजा। ब्रह्मा उस पर मुग्ध हो गया और उसके साथ भोग किया। फिर सावित्री हुई और झूठी साखी दिलाने के लिए उससे भी संभोग किया। जब तीनों माता के पास आ गये तो उसने निरंजन का ध्यान कर सब जान लिया और तीनों को शापभ्रष्ट

कर दिया। विष्णु और शिव के ऊपर प्रसन्न होकर माता ने वरदान दिये जिससे द्वापर में विष्णु का कृष्णावतार हुआ और शंकर को चार युगों तक का अमरत्व प्राप्त हुआ। फिर आद्या ने पुत्रों की सहायता से चार खान सृष्टि और चौदह लाख (?) योनियों की रचना की। ऊष्मज में दो तत्व, अंबुज में तीन, पिंडज में चार और मनुष्य में पाँच तत्व दिये। ब्रह्मा ने अपनी रचना से जीवों को बहुत भटकाया। वेद, स्मृति, शास्त्र-पुराण बनाकर उसने यावत् जीवों को उलझा दिया। उसने अड़सठ तीर्थ, बारह राशि, सत्ताईस नक्षत्र, सात वार, पन्द्रह तिथि, देव-देवल आदि प्रपंचों की सृष्टि की, जिसमें प्राणी भटका खाते रहते हैं। इस प्रकार दुख भोगते-भोगते जब सारे संसार में हाहाकर मचा तब सत्यपुरुष ने कबीर को अपने अंश के रूप में उनके रक्षार्थ भेजा। सत्ययुग में सत्यसुकृत नाम से अवतार लेकर धोंधल राजा और मथुरा की खेमसरी मालिन को उपदेश दिया। त्रेता में मुनींद्र नाम से आकर लंका के विचित्र भाट, विचित्र वनिता और मन्दोदरी को पान-परवाना देकर सत्यलोक का दर्शन कराया तथा रावण को उसकी मूर्खता पर राम के द्वारा मारे जाने का श्राप दिया। इसके पश्चात् अवधपुर के मधुकर विप्र को उपदेश दिया। द्वापर में कृष्णामय नाम से उनका अवतार हुआ। गिरिनार की रानी इन्द्रमती को और काशी के श्वपच सुदर्शन को उपदेश दिया जिसके मोजन करने पर युधिष्ठिर का घंटा बजा था। यह श्वपच और उसकी स्त्री कई जन्म से कबीर के भक्त थे, और यही आगे चल कर कलियुग में नीरू-नीमा हुए जिन्हें लहरतारा में कबीर कमल-पुष्प पर मिले और जिनके यहाँ कबीर का लालन-पालन हुआ। कबीर स्वयं सत्यपुरुष हैं और जीवों को निरंजन के जाल से बचाने के लिए आये थे। यहाँ आकर उन्होंने धर्मदास को चौका-आरती कर दीक्षित किया और अपने अंश से चार गुरुओं (बंके जी, सहते जी, चतुर्भुजदास जी और धर्मदास जी) को मुख्य कड़िहार (=कर्णधार, मुक्तिदाता) थापा और धर्मदास से बयालिस वंश की स्थापना की जो अपने-अपने समय में जीवों का उद्धार करेंगे। मृत्यु-लोक में आने के पूर्व ही काल-निरंजन ने कबीर से यह वरदान ले लिया था कि साथ ही साथ उसका कर्म-व्यापार भी न रुकने पायेगा और वह कबीर के नाम पर नाना पंथ चला कर जीवों को ठगता रहेगा। फलतः कबीर के नाम से ही काल-निरंजन द्वारा बारह अन्य पंथ भी चलाये गये। धर्मदास के पुत्र नारायणदास ने जब पिता से विमुख हो अलग पंथ चला लिया तो कबीर की कृपा से उन्हें चूड़ामणि नाम के द्वितीय पुत्र हुए, जिसे उनकी गद्दी चली। अब तक जो प्राणी इस वंश के किसी

भी अधिकारी से पान-परवाना पा जाते हैं उन्हें काल-निरंजन कुछ नहीं बोलता और वे यमजाल से मुक्त होकर साहब के सत्यलोक में विहार करते हैं। कुछ हेर-फेर के साथ यही संक्षेप में इन ग्रन्थों का वर्ण्य विषय है।

ग्रन्थ भवतारणबोध—में कबीर के चारों अवतारों, उनके क्रिया-कलापों तथा धार्मिक उपदेशों का साम्प्रदायिक वर्णन है। यह ग्रन्थ धर्मदास के नाम से सरस्वती-विलास प्रेस, नरसिंह पुर (मध्य प्रदेश) से सन् १९०८ ई० में प्रकाशित भी हो चुका है।

३. पंथ के बाह्याचार से संबद्ध ग्रन्थ

सुमिरन-बोध, सुमिरण-साठिका, चौका-सरोदय, एकोतरा सुमिरण, इकतार की रमैनी, आरती, अठपहरा, चौका पर की रमैनी, अमरमूल, स्वासाभेद, टकसार आदि ग्रन्थों में कबीरपन्थी कृत्यों का अथवा भिन्न-भिन्न अवसरों पर चौका-आरती संजाने तथा पान-परवाना देने आदि का विवरण है। इसके अतिरिक्त विभिन्न अवसरों पर गायी जाने वाली रमैनियाँ तथा मंत्र भी इनमें दिये हुए हैं।

विवेक-सागर तथा धर्मबोध में गृहस्थ और बैरागी की रहनी का व्यौरा है।

४. नाम-महात्म्य संबंधी ग्रन्थ

ज्ञान-बोध, कबीर-भेद, मुक्तिबोध, कबीरबानी (वेंकटेश्वर प्रेस, जिल्द ८), नाम-महात्म्य, ब्रह्म-निरूपण, हंस-मुक्तावली, मूलबानी, मूल-ज्ञान में नाम-महात्म्य और कबीर का नाम-यश गाने से मुक्तिलाभ का वर्णन है।

५. योग-साधन संबंधी ग्रन्थ

कायापांजी, मूलपांजी, पंचमुद्रा, श्वासगुंजार, संतोषबोध, कबीर-सुरति-योग, सुरति-शब्द-संवाद में कबीरपंथी साधन-साधनिका का वर्णन है। 'कायापांजी' तथा 'मूलपांजी' में बताया गया है कि त्रिकुटी के आगे सुमेर है जिसकी बाँईं ओर धर्मराय का स्थान है और दाहिनी ओर सुरति-द्वार है। सुमेर के आगे सुरति-कौवल है जिसके एक योजन आगे अक्षय वृक्ष है। उसका वर्ण श्वेत है और उसमें मोतियों की झालर लगी है। यही कबीर का स्थान है—

तहां उमगे जोति लाल अरु हीरा । ताहां बैठे हमहि कबीरा ॥

अंत में इस उपदेश को गुप्त रखने का आदेश दिया गया है जिसका पालन करने के लिए धर्मदास वचनबद्ध होते हैं।

आप सरोखा राखिहों समरथ दुहाई । प्रगट न भाखिहों ।

धर्मदास किरिया करै, छुअै खसम के पांव ।

साहिब तुमसूं बीछरूं, तो मूल बस्त बाहर जाव ॥

इन पंक्तियों के रहते हुए उक्त रचनाओं को कबीर की प्रामाणिक रचनाओं में सम्मिलित करना असंगत लगता है ।

‘संतोष-बोध’ ज्ञान-सागर प्रेस, बम्बई से और ‘सुरति-शब्द-संवाद’ जिला जौनपुर की बड़ैया गद्दी से छप चुके हैं । दोनों की भाषा अत्यन्त आधुनिक है ।

स्वरपाँजी—में धर्मदास के प्रति कबीर का उपदेश है जिसके द्वारा इडा, पिंगला, सुषुम्ना का रहस्य बताते हुए जल, थल, आकाश, अग्नि तथा वायु के गुण, परिमाण और इष्ट देवताओं का वर्णन किया गया है । अंत में मूल शब्द की उपासना करने का आदेश दिया गया है—

सुरति सरूपी मकरी, तार सरूपी सांस ।

मन पवना कर एकता, अरध तें चढ़ै अकास ॥

अहो धरमदास जीव लै उठो जीव लै बैठो, जीव आज्ञा लै सोवो ।

जीवां जीव करो मिलावा, तबै अगम गुरु पावो ॥

इसमें प्रतिपादित विचार कबीर के सिद्धान्तों से मेल अवश्य खाते हैं, किन्तु रचना की अंतिम पंक्तियाँ कुछ संदेहास्पद हैं । इनका पाठ है—

कबीर साहिब दया करि दीनी । धर्मदास सरधा सुनि लोनी ॥

सुरपांजी परसिद्ध गोसांई जीवन सुक्त सो कही ॥

इससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि उक्त रचना कबीर के अतिरिक्त किसी अन्य संत की (संभवतः प्रसिद्ध गोसांई की?) है, जो कबीर से प्रभावित था । रचना के अंत में केवल एक साखी ऐसी है जो वास्तव में कबीर की है । उसका पाठ है—

वाणी मेरी पलटिया, या तन याही देस ।

खारी सूं सीठी भई, सतगुरु के उपदेस ॥

संभवतः इसी को देख कर खोज-रिपोर्ट में इसे कबीरकृत मान लिया गया ।

स्वरोदय में नासिका के श्वास-संचालन के अधार पर भविष्य जानने का वर्णन है । इसमें भी कबीर और धर्मदास का संवाद है । यह कई स्थानों से मुद्रित भी हो चुका है ।

६. नीति-ग्रन्थ

ज्ञान-गूदड़ी, ज्ञानस्तोत्र, तीसाजन्त्र, मनुष्य-विचार, उग्रज्ञान-मूल-सिद्धान्त या दशमात्रा कबीरपंथ के परवर्ती नीति-ग्रन्थ हैं, जिनमें कहीं-कहीं कबीर की भी दो-एक साखियाँ मिल जाती हैं । इनमें से कुछ तो अत्यन्त आधुनिक हैं ।

अक्षरावत, अक्षरखंड की रमैनी तथा अलिफनामा में देवनागरी तथा फ़ारसी अक्षरों पर नीति कही गयी है।

७. अन्य ग्रन्थ

मुहम्मदबोध, सुल्तानबोध, गरुड़बोध, अमरसिंहबोध, वीरसिंहबोध, जगजीवन-बोध, भूपालबोध, कमालबोध, गुरु-माहात्म्य में विभिन्न व्यक्तियों के प्रति कबीर के द्वारा ज्ञानोपदेश दिये जाने का वर्णन है। 'मुहम्मदबोध' में इस्लाम के प्रवर्तक मुहम्मद साहब को उपदेश दिलाया गया है, 'सुल्तान बोध' में बलख के बादशाह इब्राहिम अथम को, 'गरुड़बोध' में विष्णु के वाहन गरुड़ को, 'अमरबोध' में लंका के राजा अमरसिंह को, 'वीरसिंहबोध' में बनारस के राजा वीरसिंह को और 'जगजीवनबोध' में राजा जगजीवन को, 'भूपालबोध' में जलन्धर के राजा भूपाल को, 'कमालबोध' में दिल्ली के सिकन्दर शाह तथा अहमदाबाद के दरिया इरां को तथा 'गुरु-माहात्म्य' में श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा रायमोहन को उपदेश देकर कबीरपंथ की दीक्षा देने का वर्णन है। उक्त सभी कबीर के जीवन-काल के कई वर्ष पश्चात् की रचनाएँ ज्ञात होती हैं। 'ज्ञान-प्रकाश' या 'धर्मदासबोध' में धर्मदास के शिष्य बनने का आख्यान वर्णित है। ये सभी ग्रन्थ वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हो चुके हैं। सभी एक ही शैली में दोहा-चौपाई में लिखे गये हैं, जिनमें यत्र-तत्र ही कबीर की साखियाँ मिलती हैं।

अर्जनामा, कबीर अष्टक, पुकार, सतनाम या सतकबीर बन्दी छोर में कबीरपंथी संतों द्वारा कबीर की ही स्तुति या उनका माहात्म्य वर्णित है।

मन्त्र, जंजीरा में साँप, विच्छा आदि के विष उतारने के कबीरपंथी मन्त्र हैं।

उग्रगीता अथवा गुरुगीता की रचना श्रीमद्भगवद्गीता के अनुकरण पर हुई ज्ञात होती है। इसमें भी अठारह अध्याय हैं जिनमें सृष्टि-उत्पत्ति, वर्णव्यवस्था, गुरु-शिष्य-महिमा, भक्तियोग आदि विषयों की कबीरपंथी व्याख्या है। 'गुरुगीता' 'स्वसंवेद पत्रिका' में श्री सुकृतदास बरारी की टीका के साथ छप चुकी है।

यज्ञ-समाधि में कबीर-धर्मदास के संवाद रूप में कृष्ण-चरित्र का निर्गुण वर्णन है। वशिष्ठबोध या ज्ञान-सम्बोधन-ग्रन्थ में वशिष्ठ और राम के संवाद में सतसंगति की महिमा बतायी गयी है।

निर्णयसार, जो सन् १८४७-४८ की रिपोर्ट में उल्लिखित है, कबीरपंथी साधु पूरणदासकृत है। यह ग्रन्थ बंसूदास जी की टीका के साथ स्वसंवेद-कार्यालय, सीयावाग, बड़ौदा द्वारा प्रकाशित हो चुका है। रिपोर्ट में इसे भूल से कबीर के ग्रन्थों में सम्मिलित किया गया है।

कबीर-परिचय, या तिरजा की साखी में ८३३ साखियाँ मिलती हैं, और, यद्यपि अधिकांश में कबीर का नाम है, किन्तु ये कबीर की रचनाएँ नहीं ज्ञात होतीं। इसमें परा, पश्यंती, मध्यमा, बैखरी (बाणी के चार प्रकार), नाम-रूप, देहात्मवाद, वाम-मार्ग, सगुण-निर्गुण, माया-सम्प्रदाय आदि का दार्शनिक विवेचन है और कहीं-कहीं बड़ी अश्लील भाषा का प्रयोग हुआ है जो कबीर जैसे महात्मा के लिए अत्यन्त अशोभनीय लगता है। ज्ञात होता है कि उनकी रचना बीसवीं शताब्दी के किसी कबीरपंथी साधु ने की है। यह ग्रन्थ वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित युगलानंद की 'सतकबीर की साखी' और रामरहस्यदास की 'पंचग्रन्थी' में छप चुका है।

रामसार या रामसागर, जो सन् १९०१ की खोज-रिपोर्ट में कबीर के नाम से दिया हुआ है, ज्ञानी जी का अथवा किसी अन्य कबीरपंथी का ज्ञात होता है। बाबा राघवदासकृत 'भक्तमाल'^४ (अप्रकाशित) में ज्ञानी को कबीर का शिष्य बताया गया है और आगे से उनका पृथक् वर्णन करते हुए कहा गया है कि उन्होंने पश्चिम दिशा में कबीर का प्रचार किया। 'रामसार' ग्रन्थ में बताया गया है कि नीमसार (नैमिषारण्य) तीर्थ में सब ऋषि स्नान कर यह विचार कर रहे थे कि बिना दात-पुण्य अथवा तप-साधन के संसार से उद्धार कैसे हो सकता है, उसी समय नारद जी वहाँ पधारे और उन्होंने राम नाम की महिमा बतायी ('श्री सत्यनारायण-व्रत-कथा' से तुलनीय)। इसकी अंतिम पंक्तियाँ, जो रिपोर्ट में उद्धृत हैं, इस प्रकार हैं—

श्री गुरु रामानंद प्रताप । हरि जी प्रगटे अंत आपु ॥

कहत कबीर अभेद अगाध । ज्ञानी बिरला समझै साध ॥

पूर्ण ज्ञान का है निज सार । जीव सीव की बाणी निरधार ॥

सीखै सुनै बिचारै कोई । ताकूं मोख परमपद होई ॥

रामसार मन राखो धीर । ज्ञानी का गुरु कहै कबीर ॥

बटक बीज की मांझ में, देखि भया मन धीर ।

जन ज्ञानी का संसा मिटा, सतगुरु मिले कबीर ॥

४. ज्युं नाराइन नव निर्मए, त्यूं कबीर किये सिष नव ।

प्रथम दास कमाल, दुती है दास कमाली ।

पदमनाम पुनि त्रितिय, चतुर्थय राम कृपाली ॥

पंचम षष्ठम नीर खीर, सप्तम पुनि ग्यानी ।

अष्टम है धरमदास, नवम हरदास प्रमानी ॥१०७॥

—राघवदास कृत अप्रकाशित 'भक्तमाल' से ।

ज्ञानी जी की कुछ सबदियाँ संत-साहित्य के हस्तलिखित गुटकों में मिलती हैं^५ और उनमें ऊपर उद्धृत साखी भी है। बहुत सम्भव है कि यह पूरी रचना ज्ञानी जी की ही हो।

ग्रन्थ आत्मबोध (वेंकटेश्वर प्रेस, नवीं जिल्द) के रेखते तथा अन्य रेखते और भूलने जो हस्तलिखित प्रतियों में पाये जाते हैं, किन्हीं मनोहरदास के ज्ञात होते हैं, क्योंकि यद्यपि कबीर का नाम प्रायः प्रत्येक रेखता या भूलता में आया है, किन्तु यत्र-तत्र मनोहरदास का नाम भी आ जाता है; उदाहरणतया—

मनोहरदास नहीं एक रंग रहत है, करै किरकंट ज्यों रंग केता ।

गहै बैराग अरु चढ़ै आकास को, गिरै धरनि फिर नांहि चेता ॥

—आत्मबोध, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ० १३१७।

हाथ के मांहि तो सुमिरनी फिरत है, जीभहू फिरत है मुख मांहों ।

दास मनोहर तो चहुँ दिसि फिरत है, मन अरु पवन की गमन नांहों ॥

—वही, पृ० १३१६।

कबीर-मंदिर, मोतीझूंगरी की प्रति में भी इसी प्रकार मनोहरदास का नाम कई भूलनों में मिलता है। उसी प्रति में ६६, ६७, ६८—७३, ८५, ११० संख्यक भूलनों में बली का नाम और १०३ से १०६ तक में धरमदास का तथा ७४, ९० में सत्तराम का नाम भी मिलता है। वेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित 'शब्दावली' में भी कुछ भूलने मिलते हैं, जिनके चौथे और छठे भूलने में दया (-राम या -दास) का नाम रचयिता के रूप में मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि उक्त रेखतों और भूलनों के मूल रचयिता मनोहरदास थे और बाद में अन्य कबीरपंथी भी अपनी रचनाएँ उनमें जोड़ते गये। अन्यथा रेखते उच्च-कोटि की आध्यात्मिक रचनाएँ हैं जिनकी भाषा भी बड़ी प्रभावशालिनी है, किन्तु वह कबीर की कदापि नहीं कही जा सकती। उसमें गंगा तरणी (वेंकटेश्वर प्रेस, पृ० १३०५), 'चौथा तरणी' (पृ० १३०७ व १३२४) कूंडियां, कंधियां (पृ० १३२३), 'बाझड़ी धेनु' (पृ० १३११) आदि कुछ प्रयोग ऐसे मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उनका रचयिता या तो राजस्थानी प्रदेश का था या उसकी प्रतियाँ ही राजस्थान में लिखी गयीं।

ज्ञान-तिलक, जो पंजाब-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय तथा अन्य संग्रहों में है, प्राचीन रचना है, किन्तु उसके रचयिता कबीर नहीं ज्ञात होते। इसकी प्रति-

५. दे० संतवाणी, वर्ष ३ अंक ३ में 'संत ज्ञानी और उनकी सबदियाँ' शीर्षक लेख।

लिपि स्वामी मंगलदास जी ने एक निरंजनीपंथी पोथी से कराकर मेरे लिए भेजा था। इसमें पहले 'आदि जुगाद पवन अरु पानी, ब्रह्मा विस्तु महादेव जानी।' से प्रारम्भ होने वाली एक रमैनी है जिसकी पूरक साखी का पाठ है : "रामानंद के बदन पर सदकै करू सरीर। अबकी बेर उबारिहौ मैं कमधज दास कबीर ॥" किन्तु इसके बाद छन्द बदल गया है और इसमें 'गोरखबानी' के समान सबदियाँ मिलने लगती हैं। इन सबदियों में कबीर-रामानंद का संवाद है—'गुरु जी' का संबोधन कर कबीर कुछ आध्यात्मिक-साधना सम्बन्धी प्रश्न पूछते हैं और रामानंद 'सुनो कबीर जी' कह कर उत्तर देते हैं। बीच में केवल तीन सबदियाँ ऐसी हैं जो अन्यत्र कबीर की साखियों के रूप में मिलती हैं। किसी-किसी पोथी में यह रचना रामानंद के नाम से भी मिलती है। किन्तु इसके वास्तविक रचयिता न तो रामानंद हैं और न कबीर, प्रत्युत दोनों महात्माओं के जीवन-काल के पश्चात् का कोई संत ज्ञात होता है। यह गोष्ठी-ग्रन्थों की कोटि का एक ग्रन्थ है।

रामरक्षा दुर्गा के कवच-स्तोत्र की तरह का एक छोटा सा ग्रन्थ है जिसमें शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों की रक्षा के लिए भिन्न-भिन्न देवताओं का आह्वान किया गया है, यथा—'रोम की रक्षा रोम रिप करै। चाम की रक्षा राम जी करै। माल की रक्षा महादेव करै। हाड़ की रक्षा राजा धुज करै।' इत्यादि। अन्त में 'चौकी फिरती रहै बलि बावन वीर की। सत्य राम रक्षा करै भनै दास कबीर' लिख कर कबीर की छाप दे दी गयी है। ठीक इसी से मिलता-जुलता एक 'रामरक्षास्तोत्र' रामानंद के नाम से और दूसरा गोरखनाथ के नाम से भी प्रचलित है। रामानंद के नाम से मिलने वाले स्तोत्र में निरंजन-निराकार की दुहाई दी गयी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह रचनाएँ गोरखनाथ, रामानंद और कबीर से बहुत बाद की हैं।

ग्रन्थ बत्तीसी, कबीर-बत्तीसी, ज्ञान-बत्तीसी, सार-बत्तीसी एक ही रचना के विभिन्न नाम हैं। इसमें दो पद मिलते हैं। कुल मिला कर बत्तीस अक्षरों में कड़ियाँ या द्विपदियाँ होने के कारण ही कदाचित् इसका ऐसा नामकरण किया गया है। 'बत्तीसी' में कबीर ने अवधू को संबोधन कर योग, शास्त्र आदि को व्यर्थ बताते हुए राम-नाम की महिमा इस प्रकार बतायी है—

सहस बात की एक बात है, आदि र अंत बिचारी।

भज रमतीत राम भै पारा, कहा पुरुष कहा नारी ॥

६. अनहद गरजै नीकर भरै उपजै ब्रह्म निधान। ताका जल कोई हंसा अंचवै.....।
आकासै उद्ध मुख कुंआ पाताले पनिहार। ताका जल कोई हंसा अंचवै आपू सुरति बिचार।
धन गरजै हीरा निपजै बड़ा परै टकसार। जहां कबीर से पाख कोई अनभी उतरै पार ॥

किन्तु 'वत्तीसी' के दोनों पद अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलते। अतः इन्हें कबीर-कृत मानने में कठिनाई है।

जन्मबोध, जन्मपत्रिका की रमैनी अथवा जन्मपत्रिका प्रकाश की रमैनी सब एक ही ग्रन्थ के विभिन्न नाम हैं। इसमें पाँच साखियों की रमैनियाँ हैं जिनमें कुल मिला कर ३७० पंक्तियाँ हैं। कबीर ने अपने मुख से पुरुष-पिता और शक्ति-माता से अपनी उत्पत्ति बता कर सगुण और निर्गुण दो साधन-धाराओं का विवेचन किया है और निर्गुण-साधना को श्रेयस्कर बताया है। नानक के नाम से भी एक 'जनमसाखी' नामक ग्रन्थ मिलता है, जिसमें उनके जन्म का रहस्योद्घाटन उन्हीं के मुख से कराया गया है। इस प्रकार का साहित्य प्राचीन-अर्वाचीन सभी धर्मों में पाया जाता है। बौद्ध-धर्म के जातकों में बुद्ध की और ईसाई-धर्म के गास्पेल्स में पीटर, जेम्स, टॉमस आदि देवदूतों की आत्मकथाएँ उनके सिद्धान्तों के विवेचन सहित वर्णित हैं। 'अगाधबोध ग्रंथ' भी, जिसमें केवल एक पद है और जिसमें निर्गुण ज्ञान की प्रशंसा है, इसी कोटि में रक्खा जा सकता है।

राम मंत्र में बीस रमैनियाँ तथा दो साखियाँ हैं। इसमें भी राम-नाम की महिमा गायी गयी है। इसकी अंतिम पंक्ति है—'रामानंद कबीर की मैं बलिहारी जाऊँ।' जिससे स्पष्ट है कि यह रचना रामानंद और कबीर के अतिरिक्त किसी तीसरे व्यक्ति की है जिसने उक्त दोनों महापुरुषों की वन्दना की है।

सबदभोग-ग्रन्थ में, जो निरंजनी पंथ की पोथियों में मिलता है, 'प्राण पुरुष के भोग' लगाने की रमैनी है। ऊपर चौका-विधान सम्बन्धी कई प्रतियों का उल्लेख हुआ है। यह रचना भी उसी कोटि में रक्खी जा सकती है।

ब्रह्म-निरूपण में संस्कृत श्लोकों में अद्वैत-सिद्धान्त का निरूपण है। 'मसि-कागद' न छूने वाले कबीर के नाम से इस रचना का सम्बन्ध जोड़ना नितान्त हास्यास्पद है।

ऊपर जिन ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है उनकी कोई सीमित संख्या नहीं है। पंथ की जितनी ही पोथियाँ देखी जायेंगी उतनी ही इनकी संख्या में भी वृद्धि होती जायगी। किन्तु ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि उक्त सभी रचनाएँ कबीर के जीवन-काल के पश्चात् पंथ के अन्य संतों द्वारा रची-गयीं। विवेच्य विषयों के अतिरिक्त इन ग्रन्थों की भाषा भी अत्यन्त अर्वाचीन है। यहाँ तक कि कुछ में यत्र-तत्र गद्य का भी समावेश हुआ है। इनमें से जो पुरानी से पुरानी रचनाएँ हैं, वे भी सत्रहीं शताब्दी के पूर्व की नहीं हो सकतीं। इनसे अथवा इस प्रकार के अन्य अर्वाचीन ग्रन्थों से कबीर की रचनाओं के

सम्पादन में किसी भी प्रकार की सहायता नहीं मिल सकती। इनसे पंथ के आचार-विचार और दार्शनिक अथवा सृष्टि-प्रक्रिया आदि के सिद्धान्तों का क्रमिक विकास समझा जा सकता है, जिसका प्रस्तुत अध्ययन से कोई सम्बन्ध नहीं। इनके अतिरिक्त जो प्रातियाँ शेष रह जाती हैं उन्हीं के आधार पर कबीर की प्रामाणिक वाणी का पता लगाया जा सकता है, अतः उन्हीं प्रतियों को अध्ययन का प्रमुख विषय बनाया गया है।

सामग्रियों का मिलान करने पर ज्ञात होता है कि विभिन्न प्रतियों के पाठ तथा क्रम आदि में कुछ ऐसी समानताएँ तथा विषमताएँ मिलती हैं जो स्वतः उन्हें विभिन्न वर्गों अथवा समुदायों में विभाजित कर देती हैं। अध्ययन की सुविधा और परिश्रम के बचाव की दृष्टि से इन प्रतियों को स्थूल रूप से विभिन्न वर्गों में रक्खा जाय। जिससे किसी भी विशेष प्रकार की प्रतियों की स्थूल विशेषताएँ विभाजित कर लिया गया है। विभाजन करते समय इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि उन्हें यथासंभव अधिक में अधिक वर्गों में हमारे सामने आने से वंचित न रह जायँ और उनका पारस्परिक मूल्य आँका जा सके।

वर्ग ३ : प्रमुख आधारभूत सामग्री : विभिन्न परंपराएँ

१. दा० अथवा दादूपंथी शाखा—ऊपर हमने देखा कि राजस्थान के दादू-पंथ में कबीर की वाणियाँ मिलती हैं, जिनमें पंचवाणी-परम्परा की प्रतियों का आधिक्य है। इन सभी प्रतियों के पाठ स्थूल रूप से एक ही प्रकार के हैं, किन्तु क्रम आदि में अन्तर अवश्य मिलता है। इनमें आये हुए पाठ का मिलान करने के लिए उक्त प्रतियों में से केवल पाँच प्रतियाँ चुनी गयी हैं, क्योंकि सभी का मिलान करने से प्रायः पिष्टपेषण के अतिरिक्त कुछ न रह जाता। कबीर के प्रसंग में पंचवाणी-प्रतियों का रूपान्तर केवल दादूपंथ में ही मिलता है अतः इस वर्ग की प्रतियों का संकेताक्षर दा० (दादूपंथी शाखा) रखा गया है। मिलान की हुई पाँच प्रतियों में प्रथम तीन दादू-विद्यालय की हैं और शेष दो पुरोहित जी के संग्रह की। विद्यालय की प्रथम दो प्रतियाँ सभा द्वारा प्रकाशित 'कबीर-ग्रन्थावली' से अत्यधिक मिलती हैं। तीसरी प्रति, जैसा कि आगे विदित होगा, साखी तथा पदों की संख्या, क्रम और पाठ में कुछ भिन्न पड़ती है और तिथि में भी अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन है; अतः पाठ-मिलान के लिए उसे भी चुना गया है। पुरोहित जी की प्रतियाँ प्राचीनता की दृष्टि से सम्मिलित की गयी हैं।

२. नि० या निरंजनीपंथी शाखा—राजस्थान के निरंजनीपंथ में भी जो रचनाएँ मिलती हैं, अधिकांश रूप से दादूपंथी रूपान्तर के ही समान हैं, किन्तु

कुछ स्वतंत्र विशेषताएँ ऐसी भी मिलती हैं जो दा० प्रतियों में नहीं हैं। इस शाखा की जितनी प्रतियाँ मिलती हैं, सब का पाठ शब्दशः समान है। केवल दो-एक पदों का अंतर मिलता है, जो इतने बड़े आकार की दृष्टि से नगण्य है। इस शाखा की प्रतियों के लिए नि० (= निरंजनपंथी) संकेताक्षर रखा गया है और इसके प्रतिनिधि रूप में दादू-विद्यालय की प्रति का मिलान किया गया है। पाठ-पाठान्तर भी उसी से लिये गये हैं।

३. गु० या 'गुरु ग्रंथ साहब' की शाखा—'गुरु ग्रंथ साहब' के विभिन्न संस्करणों में पाठ-भेद प्रायः नहीं मिलता। प्रस्तुत प्रबंध में सर्व-हिन्द-सिक्ख-मिशन द्वारा संस्करण का उपयोग हुआ है और विवेचना तथा पाठ-मिलान में उसके लिए गु० (= गुरु ग्रंथ साहब) का संकेत दिया गया है।

४. बी० या 'बीजक' की शाखा—पाठ की दृष्टि से 'बीजक' के तीन मुख्य रूपांतर माने जा सकते हैं: एक सामान्य बीजक की परम्परा, जिसके अन्तर्गत शास्त्री जी के संग्रह की प्रथम तीन प्रतियाँ तथा अधिकांश प्रकाशित 'बीजक' आते हैं, दूसरी फतुहा वाली परम्परा जिसके अन्तर्गत शास्त्री जी के संग्रह की चौथी, पाँचवीं तथा छठी प्रतियाँ और स्वामी हनुमानदास जी द्वारा संपादित 'बीजक' के प्रकाशित संस्करण आते हैं और तीसरी भगताही शाखा वाली परम्परा, जिसके अन्तर्गत शास्त्री जी के संग्रह की सातवीं, आठवीं तथा नवीं प्रतियाँ, कबीर-मंदिर, मोती झूँगरी की आठवीं प्रति और मानसर मठ के मेथी भगत तथा धनौती मठ के राम खेलावन गोस्वामी द्वारा प्रकाशित संस्करण आते हैं। विस्तृत मिलान के लिए तीनों के प्रतिनिधि स्वरूप प्रथम दो के लिए शास्त्री जी के संग्रह की क्रमशः पहली तथा पाँचवीं प्रतियाँ और तीसरी परम्परा के लिए मेथी गोसाँई द्वारा प्रकाशित संस्करण लिया गया है। भगताही शाखा के धनौती मठ की ओर से श्री राम खेलावन गोसाँई द्वारा संपादित एक अन्य 'बीजक' मेथी भगत के उक्त संस्करण के एक वर्ष बाद निकला, किन्तु इसमें सम्पादक की ओर से अत्यधिक संशोधन किये गये हैं। इसके विपरीत मानसर गद्दी का बीजक देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें मूल प्रति के पाठ में लेश-मात्र भी संशोधन-परिवर्धन नहीं किया गया है। इसीलिए भगताही शाखा के प्रतिनिधि-रूप में धनौती मठ का 'बीजक' न ले कर मानसर गद्दी वाला 'बीजक' ही लिया गया है। तीनों शाखाओं के लिए क्रमशः बी० (= बीजक, सामान्य), बीफ० (= बीजक, फतुहा परम्परा का) तथा बीभ० (= बीजक, भगताही शाखा का) के संकेत चुने गये हैं।

५. स्फुट पदों की शाखा—फुटकल पदों के संग्रहों के लिए कबीरचोरा और

बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित शब्दावलियाँ ली गयी हैं और उनके लिए क्रमशः शक० (=शब्दावली, कबीरचौरा की) और शबे० (=शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस की) के संकेत दिये गये हैं। जैसा पहले कहा गया है, कबीरचौरा से 'शब्दावली' के तीन संस्करण निकले हैं; किन्तु तीनों में विशेष अन्तर नहीं है। अतः साधु अमृतदास का संस्करण ही प्रतिनिधि रूप में स्वीकार किया गया है और शेष छोड़ दिये गये हैं। बेलवेडियर प्रेस के चार विभिन्न भागों के लिए संकेत में क्रमशः शबे० (१) (=शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, प्रथम भाग), शबे० (२) (=शब्दावली बेलवेडियर प्रेस, द्वितीय भाग) आदि दिये गये हैं।

६. साखी-प्रतियों की शाखा—निम्नलिखित प्रतियाँ ऐसी हैं जिनमें कबीर की केवल साखियाँ मिलती हैं।

साखियों के लिए सर्वप्रथम प्रति, जिसका मिलान किया गया है, कबीर-मंदिर, मोतीझंगरी की पहली प्रति है। यह बम्बई से प्रकाशित 'सत्य कबीर की साखी' नामक ग्रन्थ से मिलती है अतः सुविधा के लिए इस प्रति में आयी हुई साखियों का स्थल-निर्देश बम्बई के उक्त संस्करण के अनुसार ही किया गया है। इसके लिए संकेत सा० (=साखी-प्रति) दिया गया है।

स्वतंत्र साखी-प्रतियों की अधिक से अधिक छान-बीन हो सके, इस मन्तव्य से बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित 'कबीर साहब का साखी संग्रह' तथा कबीर-धर्म-वर्धक-कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा से प्रकाशित 'सतगुरु कबीर साहब का साखी-ग्रन्थ' का भी पाठ-मिलान किया गया है और उनके लिए क्रमशः साबे० (साखी-ग्रन्थ, बेलवेडियर प्रेस का) तथा सासी० (=साखी-ग्रन्थ, सीयाबाग का) के संकेत दिये गये हैं।

७. प्राचीन संकलनों की शाखा—कबीर की कृतियों के दो प्राचीन हस्तलिखित संकलन मिलते हैं : पहला रज्जव का सर्वगी नामक ग्रन्थ और दूसरा जगन्नाथ का गुणगंजनामा। पहले में कबीर की साखी, पद तथा रमैनी—तीनों का संकलन मिलता है और दूसरे में केवल साखियों का संकलन मिलता है। 'सर्वगी' के पाठ-मिलान के लिए दादू-विद्यालय की प्रति ली गयी है जिसमें लिपिकाल नहीं है और 'गुणगंजनामा' के लिए भी उक्त विद्यालय की ही प्रति ली गयी है जिसकी पुष्पिका में लिपिकाल सं० १८५३ वि० दिया हुआ है। पहली प्रति का संकेत स० (=सर्वगी) और दूसरी गुण० (=गुणगंजनामा) निश्चित किया गया है।

डॉ० मोहन सिंह ने अपने 'गोरखनाथ एंड दि मेडिईवल मिस्टिसिज्म'

अंग्रेजी ग्रन्थ (पृ० ८६) में सबद-संलोक नामक एक संकलन-ग्रन्थ की चर्चा की है जिसमें गोरखनाथ से लेकर गरीबदास तक की रचनाओं का संग्रह है और जिसे किसी सिन्धी ने सं० १६०० वि० से लगभग प्रस्तुत किया था। उक्त लेखक के अनुसार यह ग्रन्थ गुरुमुखी अक्षरों में लाहौर से सन् १६०१ ई० में प्रकाशित भी हो चुका है; किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी उसकी कोई प्रति अथवा यह संस्करण प्राप्त नहीं हो सका।

८. मौखिक परम्परा—कबीर की साखियाँ और पद गेय होने के कारण साधारण जनता में अत्यधिक प्रचलित हैं। इस परम्परा में कबीर की रचनाओं का क्या स्वरूप रहा, इसका भी अनुमान लगाने का प्रयास किया गया है। इसके लिए आचार्य क्षिति मोहन सेन की 'कबीर' नामक पुस्तक का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त अपनी निजी खोज के सिलसिले में साधु-संतों के सत्संग में कबीर के नाम से नयी रचनाएँ जहाँ कहीं भी मिलती गयीं संग्रहीत की गयी हैं, किन्तु अन्ततोगत्वा उनसे पाठसंपादन में विशेष सहायता नहीं मिल सकी।

इस प्रकार कबीर के नाम से प्रचलित प्रतियों की बड़ी संख्या में से पाँच प्रतियाँ दादूपंथी शाखा की, एक प्रति निरंजनी शाखा की, एक गुरुग्रन्थ की, दो बीजक की, दो शब्दावलियों की, तीन साखियों की, एक 'सर्वगो' की, एक 'गुणगंजनामा' की और एक आचार्य सेन की (आंशिक रूप में) अर्थात् ६ शाखाओं की कुल सत्रह प्रतियाँ ही ऐसी हैं जिनका विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन किया गया है और इन्हीं के आधार पर प्रस्तुत ग्रन्थ में कबीर की वाणियों का यथासम्भव प्राचीनतम तथा प्रामाणिकतम पाठ निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया है। ये प्रतियाँ कबीर के नाम पर उपलब्ध प्रतियों के विपुल समुदाय का पूर्ण प्रतिनिधित्व कर देती हैं, अर्थात् कबीर की वाणी का पाठ जिन विभिन्न रूपों से होकर गुजरा है, उनके सम्बन्ध में जितना उक्त प्रतियाँ बता देती हैं उसके बाहर जानने को प्रायः कुछ नहीं (अथवा बहुत कम) रह जाता है। उदाहरण के लिए दा० परिवार की पाँच प्रतियाँ अलग कर लेने पर विद्यालय की शेष पंचवाणी प्रतियाँ, सम्मेलन की एक प्रति, पंजाब-विश्वविद्यालय की एक प्रति और सभा की दस पंचवाणी-प्रतियाँ, जिनके परिचय पहले दिये गये हैं, मिलाने की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि इनमें से कुछ दा१, दा२ के समान, कुछ दा३, दा४ के समान और कुछ दा५ के समान ही पाठ प्रस्तुत करती हैं। निरंजनीपंथ की सारी प्रतियाँ प्रायः एक ही पाठ प्रस्तुत करती हैं, अतः एक प्रति का पाठ ग्रहण कर लेने पर इस शाखा की शेष ४ प्रतियों का जो दादु-विद्यालय, ना० प्र० सभा

और इंडिया ऑफिस लायब्रेरी तथा नरोत्तमदास जी के संग्रहों में हैं, शब्दशः मिलान कर पाँच गुना अतिरिक्त समय लगाना व्यर्थ था। यही बात 'साखी', 'बीजक' और 'शब्दावली' की फुटकल प्रतियों के संबंध में भी लागू होती है।

एक ही पाठ की अनेक प्रतियाँ मिलने से केवल इतना निश्चित रूप से प्रमाणित हो जाता है कि उस पाठ की एक विशिष्ट परम्परा प्रचलित हो गयी थी जिसे एक विशिष्ट वर्ग के लोग प्रामाणिक मानते आ रहे हैं। किन्तु, वास्तव में, किसी भी एक शाखा का पाठ समग्र रूप से प्रामाणिक नहीं; क्योंकि कोई भी शाखा ऐसी नहीं है जिसमें अशुद्ध अथवा प्रक्षिप्त पाठ न मिलते हों। इतना अवश्य है कि ये सब एक ही मूल से उद्भूत वृक्ष की विभिन्न शाखाएँ और टहनियाँ हैं। हम इन्हीं को पकड़ कर जड़ तक पहुँच सकते हैं। जड़ हमारी आँखों से ओभल है, किन्तु किसी एक टहनी को पकड़ कर उसे ही मूल मान लेना नितांत भ्रम होगा। पहले कभी एक प्रासाद बना था, उसके अधिवासियों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उसे बाँट लिया और फिर अपने-अपने हिस्से को बढ़ाया-घटाया; किसी-किसी ने गिरा कर उसे एकदम नये सिरे से बना लिया। आज उस भवन की रूपरेखा बिगड़ गयी है, किन्तु उसकी ईंटें अभी मौजूद हैं। उन्हें एकत्र कर उनको परखना है, और उनकी मौलिक काट-छाँट के अनुसार, जहाँ तक सम्भव हो सके, उन्हें अपने मौलिक स्थान तक पहुँचाना है और हो सके तो मूल भवन का पुनर्निर्माण करना है; क्योंकि आज हम उसे पुनः प्राप्त करने के लिए आतुर हैं। इस ग्रन्थ में कबीर की वाणी के पाठ का इसी प्रकार पुनर्निर्माण किया गया है। यह किन युक्तियों के आधार पर किया गया है, इसकी जानकारी आगे की विवेचना से प्राप्त होगी।

अन्य सहायक सामग्री—पाठ-निर्धारण में प्रतिलिपिकारों अथवा संपादकों की मनोवृत्तियों का अध्ययन करने में प्राचीन टीका-टिप्पणियाँ भी उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इन टीकाओं से जटिल स्थलों का अर्थ समझने में भी सहायता मिलती है, अतः कबीर की रचनाओं की प्राचीन टीकाओं की भी (जो उपलब्ध हो सकीं) पूरी सहायता ली गयी है। इस प्रकार की मुख्य टीकाएँ निम्नलिखित हैं—

पहली १२१ पदों की एक अप्रकाशित टीका है, जिसका परिचय ऊपर दादू-विद्यालय की निरंजिनी-सम्प्रदाय की पहली पोथी और सभा की आठवीं पोथी के विवरणों में प्रस्तुत किया गया है। मेरे पास इसकी जो प्रतिलिपि है वह दादू-विद्यालय की प्रति से उतारी गयी है। किन्तु सभा की प्रति का भी मिलान कर लिया गया है और उसके पाठों से भी इसका पुनर्निर्माण किया गया है।

प्राचीन टीकाओं में मुझे यह सर्वोत्तम समझ पड़ी, और इसीलिए कबीर के पदों का अर्थ समझने में इसका स्वभावतः सब से अधिक उपयोग भी हुआ है। संयोग-वश यह सब से अधिक प्राचीन भी है।

दूसरी टीका साधु पूरणदास की है जो इंडियन प्रेस, इलाहाबाद से छपी है।

तीसरी रीवाँ नरेश की 'पाखंड-खंडिनी-टीका' है।

चौथी विचारदास की 'बीजक'-टीका है।

इन टीकाओं के अतिरिक्त इतःपूर्व कबीर पर जितनी भी टीकाओं तथा विवेचनाओं का पता लग सका है, सब का यथोचित उपयोग किया गया है। इनमें क्रमशः डॉ० राम कुमार वर्मा की 'संत कबीर' की टीका, नरोत्तमदास स्वामी की टीका (जिसका कुछ अंश 'संतवाणी' में प्रकाशित हुआ है), श्री राम चन्द्र 'सुधांशु' की 'साखी-सुधा' तथा 'संतकाव्य' में श्री परशुराम चतुर्वेदी की टिप्पणियाँ और बाराबंकी से प्रकाशित बीजक-कोष की सामग्री अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

कबीर की कुछ रचनाएँ ऐसी हैं जो अन्य संतों अथवा कवियों के नाम से भी मिलती हैं। ऐसा पंक्तियों की खोज के लिए संत-साहित्य की अनेक हस्तलिखित पोथियाँ और अन्य प्रकाशित ग्रन्थ भी देखने पड़े हैं। उनका उल्लेख निर्धारित पाठ में यथास्थान किया गया है।

§३. आधार-प्रतियों का विस्तृत विवरण

नीचे उन प्रतियों का विवरण किंचित् विस्तार के साथ दिया जा रहा है जिन्हें विस्तृत पाठ-मिलान के लिए चुना गया है।

दा० प्रतियों का विवरण

दा१ प्रति—यह प्रति, जैसा पहले निर्देश किया गया है, जयपुर नगर में मोती-हंगरी मुहल्ले के श्री दाहू-विद्यालय में है। विद्यालय की क्र० सं० कुछ नहीं पड़ी

है। कुल पत्र-संख्या ६५०; प्रति पृष्ठ लगभग ५१ पंक्तियाँ और प्रति पंक्ति लगभग २६ अक्षर। कागज सफ़ेद, पुराना, चिकना। पुस्तकाकार सुन्दर रेशमी जिल्द में बँधी हुई। स्पष्ट और आकर्षक देवनागरी में आदि से अन्त तक एक ही व्यक्ति द्वारा लिपिबद्ध; लिपिकाल पुष्पिका के अनुसार सं० १८३१ वि०। पोथी के आरम्भ में 'ततकारा का ब्यौरा' लिख कर विस्तृत सूची-पत्र दिया हुआ है। इसमें कबीर के अतिरिक्त अन्य संतों की रचनाएँ भी संगृहीत हैं। लगभग ४४,००० अनुष्टुप-प्रमाण का यह ग्रन्थ बाबावनवारीदास की शिष्य-परम्परा के मोतीराम दादूपंथी द्वारा सं० १५३१ वि० में लिखा गया। पुस्तक के अंत में बाँयें पृष्ठ पर पोथी बेचने के अवसर की गवाही-साखी है जिससे ज्ञात होता है कि सं० १६१३ वि० में पं० श्री निश्चलदास ('वृत्ति-प्रभाकर' के रचयिता प्रसिद्ध दादूपंथी विद्वान्) ने इसे हंसदास नामक किसी साधु से चौवालिस रूपयों में खरीदा था।

कबीर की वाणी का जो रूपान्तर इसमें है, स्थूल रूप से सभा द्वारा प्रकाशित 'कबीर-ग्रन्थावली' की प्रति से मिलता है। अन्य पाठांतरों के अतिरिक्त साखी तथा पदों की संख्या में 'क' प्रति से केवल निम्नलिखित अन्तर हैं—

१—'क' प्रति का १५ वाँ अंग दा१ में नहीं है, उसकी सब साखियाँ इसके १४ वें अंग अर्थात् 'सुखिम मारग' में ही मिल जाती हैं।

२—'क' प्रति की साखी २०-२०, ३१-३ तथा ४५-२५ दा१ में नहीं मिलती।

३—'क' प्रति की साखी ५४-७ के पूर्व दा१ में एक साखी और मिलती है : "आपनपौ न सराहिए" इत्यादि।

४—दा१ में 'क' प्रति के पद १०५, १४८, १८६, २०१, २०८, २३६, २३७, २४८, २३६, २५२, २८७, २६६, ३३६, ३७२, ३७३, ३७६, ३८८, ३६५—अर्थात् कुल १८ पद नहीं हैं।

इस प्रकार दा१ में साखियों की संख्या ८०७ है जब कि 'क' प्रति की संख्या ८०६ है। पदों की संख्या दा१ में ३८५ है और 'क' प्रति में ४०३; रमैनियों की संख्या में कोई अंतर नहीं। दा१ की पुष्पिका में साखियों की तथा पदों की संख्याएँ क्रमशः ८११ तथा ३८४ दी हुई हैं, जो अशुद्ध हैं। वाणी का क्रम 'क' प्रति से बिल्कुल मिलता है।

अन्य विशेषताएँ—यह विशेषताएँ प्रायः उसके प्रतिलिपिकार की प्रवृत्तियों से संबंधित हैं, जो निम्नलिखित हैं—

१—साखियों अथवा पदों की संख्या लिखने में अनेक स्थलों पर भ्रम हो गया है। उदाहरण के लिए 'जीवन मृतक अंग' में ११ वीं साखी पर भूल से १२ संख्या डाल दी गयी है, जिसे आगे चलकर १४ दो बार लिखकर सुधारा गया है। संख्याओं के बड़े योग में भी अंगुष्ठियाँ हैं जिन्हें सुधारने का प्रयत्न किया गया है—कहीं हस्ताल लगा कर और कहीं स्याही से ही।

२—कुछ साखियाँ (उदाहरणतया ग्रन्था०साखी १२-११, १३-१६, २०-५ आदि) ऐसी हैं जो लेखक के ही द्वारा पोथी के हाशिये में लिखी मिलती हैं । इसी प्रकार के संशोधन पदों में भी यत्र-तत्र मिलते हैं । किन्तु पाठ में संशोधन प्रायः नहीं मिलते जिससे स्पष्ट है कि इसका मिलान एक से अधिक प्रतियों से नहीं हुआ है ।

दार प्रति—यह प्रति भी जयपुर के उक्त महाविद्यालय में है और आकार में लगभग सवा फुट लम्बी और ६ इंच चौड़ी है। इसमें कुल ६९५ पत्रे हैं जिनमें प्रति पृष्ठ लगभग ४२ पंक्तियाँ और प्रति पंक्ति ३० अक्षर आये हैं। इसमें पुष्पिका नहीं है। अन्त के कुछ पत्रे अभी सादे पड़े हैं जिससे अनुमान होता है कि कदाचित् कुछ और लिखने को शेष रह गया था, जो किसी कारणवश न लिखा जा सका। कागज मटमैला और पुराना है। अनुमान से यह प्रति सं० १८३० वि० के लगभग की लिखी हुई ज्ञात होती है। पोथी एक ही व्यक्ति द्वारा नागरी में लिखी हुई है। इसमें भी कबीर की वाणी के साथ अन्य अनेक संतों की रचनाएँ मिलती हैं।

कन्नोर की वाराणों के अन्त में यद्यपि “रमैणी ७ राग १५ पद ३८४ साखी ८१०” दिया हुआ है, किन्तु मिलान करने पर ज्ञात होता है कि साखियों की संख्या में पर्याप्त अन्तर है और पुष्पिका में दी हुई संख्या अशुद्ध है। इसके साखी-प्रकरण में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं जो ग्रन्थावली (ना० प्र० स०) की तुलना से अधिक स्पष्ट हो जावेंगी—

१—इसमें ग्रन्था० 'क' प्रति की साखी १-३४, १-३५, २-३, २-१५, २-१६, ३-३६, ३-४४, ३-४५, १२-२३, १२-३५, १६-१४, ३२-३, ३२-४, ३६-१२, ४१-१२, ५४-६, ५५-७, ५५-८ तथा ५६-१—अर्थात् कुल १६ साखियाँ नहीं मिलतीं ।

२—ग्रन्था० 'ख' प्रति की अधिकांश साखियाँ इसमें मिल जाती हैं, किन्तु कुछ साखियाँ ऐसी भी हैं जो नहीं मिलती। 'ख' प्रति की न मिलने वाली साखियाँ हैं : १४७१, In १९६८-६९ के Gurukul Kangri Collection, १३-७६, ८०, ८३, ८५,

१३-२७, २८, ३५, १४-३, ४, १६-२, २५, २६, १७-१४, १५, १६, १७-२१, २४, २८, २०-५, ६, ३२-२३, ४, ५, २४-८, ३२-२, ५, ६, ३४-३, ३५-१५, २०, ३६-५, ३८-१, ३९-५, ४१-१, ४३-१५, १६, ४६-८, २८-३१, ४०-४६, ५३-१०, ५६-३, ५८-७—प्रर्थात् कुल ५० साखियाँ नहीं मिलतीं, शेष ८० मिलती हैं।

३—सोलह साखियाँ दार में ऐसी हैं जो न 'क' प्रति में मिलती हैं और न 'ख' में।

४—ग्रंथा० के ४० वें अंग को 'सार सबद' नाम दिया गया है और इसके पूर्व 'सुसबद' नामक एक नया अंग जोड़ा हुआ है जिसकी ६ साखियाँ ऊपर ४०-वें अंग में दी हुई हैं। इस प्रकार दार में ७६० 'क' प्रति की, ८० 'ख' की और १६ निजी साखियाँ मिला कर कुल ८८६ साखियाँ मिलती हैं। कहीं-कहीं क्रम में उलट-फेर है, किन्तु वह नाममात्र का है। साखी ३१-६ को प्रथम पंक्ति तथा २४-१३ का द्वितीय चरण लिखने से छूट गये हैं।

दा३ प्रति—यह प्रति भी उक्त विद्यालय में है। अन्य प्रतियों की अपेक्षा यह आकार में में कुछ छोटी है और लगभग ७ इंच लम्बी तथा ५½ इंच चौड़ी है। इसमें प्रति पृष्ठ १८ पंक्तियाँ और प्रति पंक्ति लगभग २४ अक्षर आये हैं। इसकी स्याही असाधारण रूप से चमकीली है। पूर्वार्द्ध तक पत्र-संख्या डाली हुई है जिससे पूरी पोथी ४१६ पत्रों की ज्ञात होती है, किन्तु आरम्भ तथा अंत के कुछ पत्रे खंडित हैं। कागज मटमैला है और इतना जीरा हो गया है कि मुड़ने पर टूट जाता है। पुष्पिका में लिपिकाल सं० १७६८ वि० दिया हुआ है। गुटके के ऊपर "डीडवाने की चैनसुखदास की भोजी, सं० १७६८ को आषाढ़ वदि ११ सं० १६७६ वि०" लिख कर किसी ने इसका सूचीपत्र भी बना दिया है। इस पोथी में भी कबीर के अतिरिक्त कुछ दादूपंथियों की रचनाएँ लिखी हैं। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति....संपूर्ण। संवत् १७६८। का मिति सांवरण वदि। १४। वार मंगलवार स्वामी प्रागदास जी। माधो दास जी। लिषमी दास जी। तत्र सिष जगन्नाथ दास शहर डीडपुर मधे। पोथी लिषतं जगन्नाथदास स्वामी प्रागदास जी के असतलि (=स्थल) लिखतं जगन्नाथदास दादूपंथी।"

यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि इसके लेखक और 'गुणागंजनामा' के संकलयिता जगन्नाथदास एक ही व्यक्ति हैं अथवा भिन्न-भिन्न।

इस प्रति में जो कबीर की वाणी मिलती है उसके संबंध में कुछ विशेष ज्ञातव्य बातें हैं। पहली विशेषता यह है कि इसमें पंचवाणी-परम्परा का कोई अवलम्बन नहीं ज्ञात होता। इसमें पहले सुन्दरदास की रचनाएँ देकर तब दादू

और प्रागदास की रचनाएँ आती हैं, तत्पश्चात् कबीर की । अन्य प्रतियों की तुलना में साखी-पदों की संख्या में कुछ अन्तर तो है ही, क्रम में अत्यधिक अंतर मिलता है ।

इसमें 'ग्रन्थावली' के १८ वें, १९ वें अंग नहीं हैं किन्तु उनमें आयी हुई साखियाँ अन्यत्र मिलती हैं । इस प्रकार 'ग्रन्थावली' के ५६ अंगों के स्थान पर दा३ में केवल ५७ अंग मिलते हैं ।

इसमें ग्रन्थावली के ६, १६, ४२, ४८, ६४, ६६, ६९, ७८, ९२, ९८, १०१, १०३, ११४, १२२, १२६, १३५, १३८, १४८, १५२, १६०, १६१, १६७, १८०, १८१, १८२, १८६, १९४, १९६, १९९, २०१, २०६, २०८, २०९, २१२, २१७, २२२, २२५, २२७, २२९, २३१, २३७, २३८, २३९, २४१, २५१, २५२, २५६, २६०, २६६, २७४, २७९, २८५, २८७, २९५, २९९, ३०४, ३३१, ३३३, ३३६, ३४७, ३५७, ३५९, ३६०, ३६१, ३७३, ३७६, ३९२, ३९५, ३९७, ३९८, ४००—अर्थात् ७१ पद नहीं हैं, शेष ३३२ मिलते हैं । इसके अतिरिक्त ११ पद नये मिलते हैं जो 'ग्रन्थावली' में नहीं हैं । इस प्रकार पदों की संख्या ३४३ होती है । पोथी में यह संख्या ४०० दी हुई है जो अशुद्ध है ।

रमैणियों के क्रम में भी, जैसा सूची से ज्ञात होगा, अन्य प्रतियों से अन्तर है । 'बावनी रमैनी' जो दा१ तथा दा२ में नहीं मिलती, किन्तु 'ग्रन्थावली' की 'ख' प्रति में मिलती है, इसमें भी है ।

दा३ में तीन पद (ग्रन्थावली पद ३६, ५९ तथा १३४) ऐसे हैं जो दो बार आये हैं । इससे ज्ञात होता है कि इसके अथवा इसकी आधारभूत प्रति के लिपिकर्ता के सामने एक से अधिक आदर्श थे । प्रति में कहीं-कहीं कोई-कोई पंक्ति (उदाहरणस्वरूप ग्रन्थावली साखी ५-४४-१ अथवा बड़ी अष्टादश ८-१३ तथा १४-१) लिखने से छूट गयी है । हाशिये के संशोधन प्रायः नहीं के बराबर हैं ।

दा४ प्रति—यह पोथी स्वर्गीय पुरोहित हरि नारायण जी के संग्रह में बस्ता नं० ७ की क्र० सं० ४८५-८३९ पर है । यह लगभग ८ इंच लम्बी और इतनी ही चौड़ी है । पत्र-संख्या ५८२, प्रति पृष्ठ २२ पंक्तियाँ और प्रति-पंक्ति २६ अक्षर । कागज मटमैला और अत्यन्त ही जीर्ण । बीच के कुछ पत्रे नत्थी से अलग हो गये हैं, किन्तु प्रति अभी खंडित नहीं है और बड़ी सावधानी से सुरक्षित है । यह भी एक बड़ा संग्रह-ग्रन्थ है जिसमें कबीर के अतिरिक्त अन्य कई संतों की वाणियाँ आयी हैं । इसकी उपविभागीय संग्रहण, Haridwar

परचई संपूरण समाप्तः ॥ श्री श्री श्री ॥ सं १७१५ वर्षे साके १५८० महा मांगलीक फाल्गुन मासे सुक्ल पक्षे त्रयोदश्यामा १३ तिथी गुरु वासरे डिडपुर मध्ये स्वामी पिरागदास जी शिष्य स्वामी माधोदास जी तत्शिष्य विन्द्रावनेनालेखि आत्मार्या ॥ शुभम्भवत् ॥ श्री रामो जयति ॥”

पोथी की यह पुष्पिका मूल लेखक की लिखी हुई नहीं ज्ञात होती। इसकी स्याही, लेखनी, लेखन-शैली, सभी स्पष्ट रूप से भिन्न हो गयी हैं। किन्तु जो लिपिकाल इसमें दिया हुआ है वह असम्भव नहीं ज्ञात होता।

इस प्रति में कबीर की जितनी वाणी है, दा३ से अक्षरशः मिलती है। इसका मिलान साखी-प्रकरण के ‘विरह अंग’ तक और पदों में राग गौड़ी तक किया गया है और जब दा३ से इसकी एकरूपता सिद्ध हो गयी तो पाठ-मिलान बंद कर दिया गया। एकरूपता का अनुमान एक बात से और भी दृढ़ हो गया कि जहाँ दा३ में लिखना छूट गया है वहाँ दा४ में भी वैसा ही हुआ है और पुनरावृत्तियाँ भी ज्यों की त्यों दोनों में मिलती हैं। दोनों प्रतियाँ डोडवाने में प्रागदास के अंभि में तैयार हुई, इसलिए दोनों का अभिन्न होना स्वाभाविक भी है।

दा५ प्रति—यह पोथी भी उक्त पुरोहित जी के संग्रह में बस्ता नं० ३, क्रम-संख्या २३६-२३७ में है। इसमें कुल ३३० पत्रे हैं जो लगभग ८ इंच चौड़े और ६ इंच लम्बे हैं। प्रति पुस्तकाकार बँधी है और प्राचीन है। लिपिकाल सं० १७४१ वि० दिया हुआ है। यह पीले रंग की जिल्द में बँधी हुई है जिसे कदाचित् पुरोहित जी ने बाद में पोथी की सुरक्षा के निमित्त बनवाया था। यह भी एक संग्रह-ग्रन्थ है जिसमें कबीर के अतिरिक्त अन्य संतों की भी वाणियाँ संग्रहीत हैं।

पोथी के पाना २६० पर लिपिकाल के रूप में सं० १७४१ वि० का उल्लेख है। पोथी के अन्त में पुष्पिका नहीं है जिससे अन्य ब्योरे ठीक-ठीक नहीं ज्ञात हो सके।

इसमें ‘ग्रन्थावली’ की साखियों के १८, १९, २२, ३२, ४०, ४२, ४९ तथा ५७, अर्थात् ८ अंगों के नाम नहीं मिलते। उन्नीसवाँ ‘साह का अंग’ नया है। इस प्रकार इसमें अंगों की संख्या ५२ होती है। साखियों की संख्या में भी इसी प्रकार के कुछ अन्तर हैं। इसमें ‘ग्रन्थावली’ की ‘क’ प्रति की ८०९ साखियों में से ६३८ साखियाँ मिलती हैं, शेष १७१ नहीं। ‘ख’ प्रति की ५६ साखियाँ मिलती हैं और ८ साखियाँ अतिरिक्त मिलती हैं। इस प्रकार साखियों की कुल संख्या ७०२ होती है।

पदों में ‘ग्रन्थावली’ ‘क’ प्रति के पद १४८ तथा १७९ नहीं मिलते, किन्तु २२ पद अधिक मिलते हैं। इस प्रकार पदों की संख्या ४२३ होती है। इसमें नियों

३७-१ : चित धरि एक बमेक (= हिन्दी 'विवेक'); १-२-१ : बलिहारी गुरु आपणी (= आपकी); पद ६२ : कीता, उसदा ।

दा३ तथा दा५ में ऊपर उल्लिखित उदाहरणों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रयोग भी मिल जाते हैं जिनसे उन पर पंजाबी-प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है ; उदाहरणतया साखी २६-१८-२ का पाठ सभी दा० प्रतियों में "भाग तिन्हीं का हे सखी" है; किन्तु दा३ में उसका पाठ है : भाग तहंदा हे सखी" । 'दा' प्रत्यय स्पष्ट रूप से पंजाबी का है ।

दा५ में रामकली पद ८७ : मियाद मेरै तूही मिलनां नहीं बिछोहा ।

कूंजड़ियां कुरलाइयां सारस कुरली ताल वै ।

एक बिछोहा भी मरण तिसदा कूंरा हवाल वै ।

(ग) फ़ारसी-लिपि-जनित विकृतियाँ—(१) 'ग्रन्थ बावनी' पंक्ति ३ का दा० प्रतियों में पाठ है : "तुरक मुरीकत जानिए, हिंदू वेद पुराण ।" नि० तथा गु० में 'मुरीकत' के स्थान पर 'तरीकत' पाठ मिलता है । हिन्दुओं के वेद-पुराण की तुलना में तुर्कों का 'तरीकत' ही सार्थक है, 'मुरीकत' नहीं । अतः 'मुरीकत' पाठ विकृत ज्ञात होता है । लिपिजनित संभावनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि नागरी या नागरी से विकसित अन्य लिपियों में 'तरीकत' से 'मुरीकत' होना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं, क्योंकि नागरी के 'त' और 'म' में बहुत अन्तर होता है । केवल फ़ारसी लिपि से इस विकृत का समाधान हो सकता है ।

२—'बावनी' में ही आगे की साखी में दूसरी पंक्ति का पाठ दा० में है— "नाहीं देखि न भाजिए प्रेम सयानप एह ।" नि०, गु० ('बावनअखरी' पंक्ति १६) तथा बी० ('ज्ञानचींतीसा' पंक्ति २२) में 'प्रेम' के स्थान पर 'परम' पाठ मिलता है । दा० में यह विकृति भी उर्दू मूल के कारण ही ज्ञात होती है ।

३—'दुपदो रमैनी' की ७२ वीं पंक्ति में "बाजै संख सबद धुनि बेनां, तन मन चित हरि गोविंद लीनां ।" का 'बेना' शब्द वस्तुतः उर्दू मूल 'बीना' (= एक बाजा) का विकृत रूप ज्ञात होता है । तुक की दृष्टि से भी 'लीनां' की संगति में 'बीनां' पाठ ही संगत लगता है ।

४—दा० गौड़ी ४८ ३ का पाठ है : "जामैं मरै न संकुट आवै" । गु० गउड़ी ७०-५ में 'संकुट' के स्थान पर 'संकटि' (= संकट में) पाठ मिलता है जो सुसंगत है । दा० में यह विकृति उर्दू के ज़बर, ज़ेर, पेश की अव्यवस्था के कारण आयी ज्ञात होती है ।

५—इसी प्रकार दा० बिलावल १ (ग्रन्था० पद ३६२) की प्रथम पंक्ति के

द्वितीय चरण का पाठ है : “गुरु गमि भेद सहर का पावै ।” इसमें ‘सहर’ शब्द निरर्थक है और ‘सु हरि’ का विकृत रूप ज्ञात होता है । तुलनीय गु० गौड़ी ७७-१ : गुरु गमि भेदु सु हरि का पावउ । यह विकृति भी फ़ारसी-लिपि के ही कारण हुई जान पड़ती है ।

६—दा० केदारौ ८-४ (ग्रन्था० पद ३०७-४) का पाठ है : ‘आंन न भावै नींद न आवै..... ।” शवे० (१) विरह-प्रेम ४ में ‘आंन’ के स्थान पर ‘अन्न’ पाठ मिलता है जो सार्थक और प्रसंगसम्मत है । ‘अन्न’ का ‘आंन’ होना उर्दू में ही संभव है ।

इस प्रकार की विकृति के अनेक उदाहरण मिलते हैं । आगे इसकी चर्चा पग-पग पर मिलेगी और अन्य प्रतियों के साथ दा० के भी उदाहरण अनेक मिलेंगे । नीचे केवल दा० प्रतियों में मिलने वाली कुछ ऐसी विकृतियों का स्थल-निर्देश किया जा रहा है जो फ़ारसी-लिपि-जनित ज्ञात होती हैं ।

७—दा० गौड़ी ३१-४ : भगति [तुल० नि० गौड़ी ३१-४ : भगत]

८—दा२ आसावरी ५६-६ (ग्रन्था० २५७-६) हाजिरां सूर [तुल० गु० तिलंग : हाजिर हज़ूर]

९—दा० साखी ३७-१०-१ : मंदिल [तुल० गु० ११३-१ : मादलु]

१०—दा० १३-१६-२ : गलका [तुल० दा३, नि० सा० साखी २९-५-२ : गटका]

कई विकृतियाँ ऐसी मिलती हैं (जैसे : इव, निजरि, रिन) जो अन्यथा प्रांतीय प्रभाव के कारण भी मानी जा सकती हैं, अतः सन्देहास्पद होने के कारण उन्हें यहाँ नहीं सम्मिलित किया गया ।

(घ) नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—नागरी लिपि के कारण मिलने वाली विकृतियों की संख्या उर्दू की तुलना में बहुत कम है । प्राप्त उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

१—दा० गोड़ी ७८-१ का पाठ है : “बिनती एक रांम सुनि थोरी । अब न बचाइ राखि पति मोरी ॥” नि० गोड़ी ८१ में ‘बचाइ’—जो यहाँ निरर्थक है—के स्थान पर ‘नचाइ’ पाठ मिलता है जो प्रसंगसम्मत लगता है । जान पड़ता है, नागरी के ‘न’ और ‘ब’ की समानता के कारण ही दा० के पाठ में यह विकृति हुई है ।

२—दा० गोड़ी ८८-५ में दा३ का पाठ है : “कहै कबीर सुनि सुनि उपदेसा ।” अन्य प्रतियों में “सुर मुनि उपदेसा” पाठ मिलता है । कैथी में ‘न’

और 'र' एक-से होते हैं, इसी के कारण दा३ में यह विकृत पाठ आया हुआ ज्ञात होता है ।

३, ४—इसी प्रकार दा० आसावरी २५-१ (ग्रंथावली २२६-१) का पाठ दा३ में "मैं सासने पिथ गीहनि आई" है जब कि अन्य प्रतियों में 'सासने' के स्थान पर 'सासरे' पाठ मिलता है जो सार्थक और प्रसंगसम्मत है । इसी प्रकार दा० बिलावल ४-८ (ग्रंथा० ३६५-८) : तीन बेर पतियानां लीन्हां । 'पतियानां' यहाँ निरर्थक है; तुलना अन्य पाठ : 'पतियारा' ।

(ङ) पुनरावृत्तियाँ—दा० में कुछ पंक्तियाँ ऐसी हैं जो एक से अधिक स्थलों पर मिलती हैं । कहीं-कहीं ये पंक्तियाँ ज्यों की त्यों दुहरायी हुई हैं और कहीं कुछ शब्दांतर के साथ मिलती हैं । उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१—दा० साखी १-७ : सतगुरु सांचा सूरिवां, सबद जु बाहा एक ।

लागत ही भैं मिलि गया, पड़्या कलेजै छेक ॥

यही साखी शब्दशः इसी प्रकार आगे दा० ४०-४ पर भी मिल जाती है ।

२—तुल० दा० १२-१२ तथा ४६-१६—

कबीर कहा गरिबियाँ; काल गहे कर केस ।

न जाणौ कहां मारिसी, कै घर कै परदेस ॥ ६

३—तुल० दा० १३-२० : मैमंता मन मारि रे; नांन्हां करि करि पोसि ।

तब सुख पावै सुंदरी, ब्रह्म भलकै सीसि ॥

तथा ५२-४ : इस मन को मैदा करौ, नांन्हां करि करि पोसि ।

तब सुख पावै सुंदरी, ब्रह्म भलकै सीसि ॥

[अंतर केवल प्रथम चरण के पाठ में है ।]

कुछ साखियाँ ऐसी भी हैं, जिनकी केवल एक पंक्ति में समानता मिलती है; उदाहरणतया—

तुल० दा० ४-४ : भल उठी भोली जली, खपरा फूटिम फूटि ।

जोगी था सो रमि गया, आसन रही बिभूति ॥

तथा दा० ४१-७ : मन मारचा ममता मुई, अहं गई सब छूटि ।

जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूति ॥

इसी प्रकार—तुल० दा० ५-५ तथा ५-६; ४०-६ तथा ४०-७ ।

पदों में भी कुछ पंक्तियों की पुनरावृत्ति मिलती है, किन्तु उनकी आवृत्ति में विशेष अस्वाभाविकता नहीं खटकती; उदाहरणतया—

१—तुल० दा० गौड़ी २-१ : बहुत दिनन र्थें मैं प्रीतम पाए । भाग बड़े घर बैठे आए ।
तथा दा० गौड़ी ३-३ : बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाए । भाग बड़े घर बैठे आए ।

२—तुल० दा० गौड़ी ६२-१० : कहै कबीर भिसति छिटकाई दोजग ही मन मानां ।
तथा आसावरी ५४-१० : कहै कबीर भिसति छिटकाई दोजग ही मन मानां ।

३—तुल० दा० आसावरी ४०-३, ४ (ग्रंथा० २४१-३, ४) —

जौ जारै तो होइ भसम तन रहत कृम द्वै जाई ।

कांचै कुंभ उदक भरि राख्यौ ताकी कौन बड़ाई ॥

तथा केदारौ १६-३, ४ (ग्रंथा० ३११) —

जे जारै तौ होइ भसम तन रहित किरम जल खाई ।

सूकर स्वान काग कौ भखिन तामै कहा भलाई ॥

रमैनियों के उदाहरण—

१—तुल० दा० सतपदी १-२-१ : सत रज तम र्थें कीन्हों माया ।

आपण मंभै आप छिपाया ॥

तथा बड़ी अष्टपदी १-२-१ : सत रज तम र्थें कीन्हों माया ।

चारि खानि बिस्तारि उपाया ॥

२—तुल० दा० सतपदी ४-४ : जिन जान्या ते निरमल अंग ।

नहीं जान्या ते भए भुजंगा ॥

तथा बारहपदी ५-५ : जिन चीन्हां ते निरमल अंग ।

जे अचीन्ह ते भए पतंगा ॥

३—इसी प्रकार तुल० सतपदी ७-४ तथा बड़ी अष्टपदी ८-१५; (४) सतपदी साखी ७ तथा बड़ी अष्टपदी ८; (५) बड़ी अष्टपदी ५-१ तथा ७-४; (६) बड़ी अष्टपदी ५-११, तथा दुपदी २-२६-१; (७) बड़ी अष्टपदी ५-१४ तथा दुपदी २-१४; (८) बड़ी अष्टपदी ५-१५-१ तथा दुपदी २-४८-१ तथा वही ५६-१ ।

नि० प्रति का विवरण

यह प्रति जयपुर के दादू-महाविद्यालय में है और कुछ समय के लिए हमें अध्ययन-कार्य के हेतु उधार मिल गयी थी । यह भी लगभग १३ इंच लम्बी और ७ इंच चौड़ी ३६६ पत्रों को मोटी पोथी है । इसमें प्रति पृष्ठ ३६ पंक्तियाँ और प्रति पंक्ति २६ अक्षर आये हैं । कबीर की वाणी इसके १६४ वें पत्रे से आरम्भ होकर २७० पत्रे तक मिलती है । सम्पूर्ण पुस्तक एक ही व्यक्ति द्वारा लिखी हुई है—केवल कहीं-कहीं कलम बदल जाने से अक्षर कुछ मोटे-पतले हो गये हैं । पुष्पिका इस प्रकार है—

इति श्री सरव पुस्तक संपूरण ॥ पुस्तक की बाकी आर्या सवा सैंतीस हजार ॥ ३७००० ॥
 निरगुण सरगुण सोधि के लिखा वस्तु तत्सार ॥ समत ॥ १-६१ ॥ की भित्ती फागुण मास
 कृष्ण पक्षे तिथ्यो नाम एकादशी ॥ ११ ॥ बार संगलवार के दिन लिपतं च ग्राम टेहरी मध्ये
 लिपतं च साध हरिरामदास स्वामी श्री श्री १०८ अमरदास जी को पोता शिष बाबा जो
 श्री श्री १०८ दरसनदास जी को शिष हरिरामदास ॥”

इससे ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ संवत् १८६१ में अमरदास निरंजनी के
 प्रपौत्र शिष्य साधु हरिरामदास द्वारा टेहरी ग्राम में लिखा गया। इसमें कबीर के
 अतिरिक्त सेवादास, हरिदास, तुरसीदास आदि निरंजनी संतों, नाथ-योगियों तथा
 रामानंद आदि अन्य संतों की वाणियाँ मिलती हैं। इस ग्रंथ में कबीर, नामदेव
 तथा गोरखनाथ के सटीक पद भी दिये गये हैं।

नि० प्रति में साखी, पद, रमैनी के अतिरिक्त कबीर के सात रेखते भी आते
 हैं। नि० में आने वाले आधे से अधिक साखी-पद दा० प्रतियों में मिलते हैं, किन्तु
 क्रम और संख्या में यह उनसे नितान्त भिन्न हैं। ‘ग्रन्थावली’ की ‘क’ प्रति की
 ८०६ साखियों में से ८४ साखियाँ नि० में नहीं मिलती^१, शेष ७२५ साखियाँ मिल
 जाती हैं। ‘ख’ प्रति की अतिरिक्त साखियों में से, जो मुद्रित संस्करण में नीचे
 दी गयी हैं, ६२ साखियाँ मिलती हैं। इसके अतिरिक्त ५६६ साखियाँ नि० प्रति
 में ऐसी मिलती हैं जो न ‘क’ प्रति में हैं और न ‘ख’ में। इस प्रकार नि० में कुल
 मिला कर ७२५ + ६१ + ५६६ अर्थात् १३५२ साखियाँ हैं। पुष्पिका में दी हुई
 १३७६ संख्या अगुद्ध ज्ञात होती है।

पोथी में कबीर के पदों की संख्या ६६२ दी गयी है, किन्तु वास्तव में वह
 ६६१ ही है। ‘ग्रन्थावली’ की ‘क’ प्रति के ४०३ पदों में केवल २ (पद १४८
 तथा ३६२) नि० में नहीं मिलते, शेष सब मिल जाते हैं। इनके अतिरिक्त
 २६० पद नि० में और हैं।

रमैनियों के लिए भी पुष्पिका में १३ संख्या दी हुई है, किन्तु वास्तविक
 संख्या १२ ही है; शीर्षक क्रमशः इस प्रकार हैं : १. सकल गहगरा, २. सतपदी,
 ३. बड़ी अष्टपदी, ४. दुपदी, ५. लहुरी अष्टपदी, ६. बारहपदी, ७. चौपदी,
 ८. बावनी, ९. दुपदी दूसरी, १०. अगाधबोध, ११. श्रीपा जोग, १२. सबद-
 भोग जोग। पहले आठ के नाम दा० में भी मिलते हैं, किन्तु शेष चार न दा०

१. ग्रंथा० १-१८, २२, ३४, २-४, १६, ३१५, ६१, ४१, ४५, ५-२, ६, ६-५, ११, ३, ६, १३, १५,
 ६, १२-४, १२, १४, १८, २१, २४, ३०, ४१, ४२, ४७, ६१, १३, ३, २०, २७, १४-२, १६-१०, २८-३१,
 १७-१२ २२, २०-१२, ३२, १३, १४४. २४-२४, २५-६, २६-६, २७-१, २८-११, २९-१०, १२, १६, २१
 ३०-१०, २२-१, ३, ४, ३३-१, ३४, ३, १०, ३५-७, ३८-१२, ४१-२, ४२-३, ४५-११, ३६, ४६-५, १२,
 १५, २०, २३, २६, ३२, ४७-६, ७, ४८-४, ५२-५, ५४-३, ४, ५, ७, ९, ५५-७, ८, ५६-१, ६, ७, ५९-२३
 कुल ८४ साखियाँ ‘क’ प्रति की ऐसी हैं जो नि० में नहीं मिलती।

में मिलते हैं और न किसी अन्य शाखा में ।

निरंजनीपंथ की जितनी पोथियाँ मिली हैं सब के पाठ-प्रायः समान हैं । विद्यालय की दूसरी प्रति पहली से अक्षरशः मिलती है, केवल सभा की प्रति में दो एक अन्तर हैं, जो नगण्य हैं । सभा की प्रति में राग बिहंगड़ी का इक्कीसवाँ पद ठीक उस स्थान पर नहीं मिलता, कुछ आगे चल कर पत्रा १७६ की २४ वीं संख्या पर मिलता है । इसके अतिरिक्त उसमें ऊपर की नि० प्रति के सात पद नहीं हैं, शेष सब विशेषताएँ वही हैं ।

अन्य विशेषताएँ

नि० द्वाराकवीर की वाणी का जो पाठ प्रस्तुत होता है उसकी अन्य विशेषताएँ दा० के समान ही हैं । इसमें भी राजस्थानी तथा पंजाबी के प्रभाव और लिपि-संबंधी विकृतियाँ तथा पुनरावृत्तियाँ मिलती हैं । नीचे क्रमशः इनके उदाहरण दिये जा रहे हैं ।

राजस्थानी-प्रभाव—दा० के प्रसंग में राजस्थानी प्रभाव के जितने उदाहरण दिये गये हैं, वे सब प्रायः नि० में भी मिलते हैं । नीचे कुछ ऐसे प्रयोगों का स्थल-निर्देश किया जा रहा है जो नि० में स्वतंत्र रूप से मिलते हैं—

- १—नि० १६-६३-२ : एक दिहाड़े सोइवौ [तुल० दा० २-११-२ : एक दिनां है सोवनां, तथा गु० १२८-२ : एक दिन सोवन होइगो] ।
- २—नि० ५-६-२ : यह तन जासी छूट [तुल० दा० २-२५-२ : यह तन जैहै छूट, तथा गु० ४१-२ : प्राण जाहिगे छूट) ।
- ३—नि० ७-२४-२ : इक दिन राम पधारिसी [तुल० सासी० १४-३६-२ : आयेंगे] ।
- ४—नि० ५१-२४-२ : इस फल को सोई भलै, जीवतड़ा मरि जाइ [तुल० सासी० ४२-२०-२ : जो जीवत मरि जाइ] ।
- ५—नि० ४०-१८-२ : क्यूं हमहीं तरां वसेख ['तरां' राजस्थानी प्रत्यय = हिं० का. को] ।
- ६—नि० ५०-१७-२ : मारणहारा जाणिसी [तुल० दा० ४४-११५-२ : बाहन-हारा जानिहै] ।
- ७—नि० १-३६-१ : जो दोसै सो बिनससी [तुल० सा० १-६५ : बिनसिहै] ।
- ८—नि० २१-१४-१ : पर नारी के राखणैं, अवगुण छै गुण नांहि [तुल० दा० २०-५ : श्रीगुन है गुन नांहि; राज० 'छै' = हिन्दी 'है'] ।

कबीर-वाणी की जितनी प्रतियाँ मिलती हैं, राजस्थानी-प्रभाव नि० में सब से अधिक है।

पंजाबी-प्रभाव—नि० में पंजाबी के वे सभी उदाहरण मिलते हैं जो ऊपर दा० प्रतियों के विवरण में दिये गये हैं। उनके अतिरिक्त भी एकाध स्थल ऐसे मिलते हैं जिनमें पंजाबी-प्रभाव परिलक्षित होता है; यथा—

१—नि० साखी७-२४-१ : विचार बमेक [तुल० सासी० १४-३६ : विवेक]।

२—नि० गौड़ी १३६ में सभी पंक्तियों के अंत में 'बे' शब्द मिलता है। यह पद बी० शब्द ६१ तथा शबे० (१) चिता० उप० ३८ के रूप में भी मिलता है। बी० में 'बे' के स्थान पर कुछ नहीं मिलता, शबे० में 'हो' मिलता है जो कबीर की भाषा के लिए अधिक स्वाभाविक है। नि० प्रति का 'बे' पाठ स्पष्ट रूप से पंजाबी-प्रभाव के कारण आया हुआ ज्ञात होता है।

फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियाँ—कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१—नि० ४४-३४-१ का पाठ है : कबीर हरिणी दूबली, इस हरिआरे माल। दा३ ४४-३३, बी० १८, तथा गु० ५३ में 'माल' के स्थान पर 'ताल' पाठ मिलता है और उक्त प्रसंग में दूसरा पाठ ही अधिक उपयुक्त लगता है। नि० में यह पाठ कैसे आया, इसकी संभावनाओं पर विचार करते हुए अनुमान होता है कि यह विकृति कदाचित् फ़ारसी लिपि के कारण हुई है। पहले किसी उर्दू प्रति में 'ताल' पाठ रहा होगा। आगे चल कर उर्दू 'ते' के दोनों नुक्ते उसके शोभे में मिल जाने से किसी प्रतिलिपिकार ने उसे 'माल' पढ़ लिया होगा और फिर वही पाठ चलने लगा।

२—नि० ३३-११ : तांबा फिर कांसी भया, राम जी भया रहीम। मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम॥ दा० ३१-१०, सा० ६३-१४, सासी० ३७-८ में इसकी प्रथम पंक्ति का पाठ है : 'काबा फिर कासी भया, राम जु भया रहीम।' राम-रहीम के प्रसंग में काबा-काशी का अभेद प्रसंग-सम्मत लगता है। 'तांबा' और कांसी के एक होने में कोई विशेष तुक नहीं दिखाई देता, क्योंकि तांबा अगर कांसी हो जाय तो इससे न हिन्दुओं का कुछ बनता-बिगड़ता है और न मुसलमानों का। इसके अतिरिक्त यह प्रश्न भी उठ सकता है कि केवल नि० प्रति में यह पाठ क्यों आ गये? 'काबा' का 'तांबा' होना उर्दू लिपि में ही सम्भव हो सकता है। 'काबा' का 'तांबा' (धातु) हो जाने पर विषमता दूर करने की दृष्टि से 'काशी' का भी 'कांसी' कर लिया गया—ऐसा ज्ञात होता है।

३—नि० १७-३०-२ : कोई इक ओकर मन बसा, दह में पड़ी बहोरि । दा० १३-२४ में 'ओकर' के स्थान पर 'अक्खर' पाठ मिलता है । 'ओकर' पाठ उक्त प्रसंग में निरर्थक ज्ञात होता है और फ़ारसी लिपि में लिखे हुए 'अक्खर' या 'आखर' का विकृत रूप ज्ञात होता है । उर्दू में अलिफ़, काफ़, हे, रे मिलाकर 'अक्खर' या 'आखर' लिखा जाता है । यह ध्यान देने की बात है कि यदि 'हे' के नीचे लगाया हुआ शोशा, जो घसोट में लिखने पर 'वाव' की तरह भी लग सकता है, तनिक भी दाहिने खिसक जाय तो 'आखर' को सरलता से 'ओकर' पढ़ा जा सकता है । नि० की इस पाठ-विकृति का यही समाधान उचित प्रतीत होता है ।

४—नि० २३-१५ : काला मुंह करि करद का, दिल तें दूरि निवारि । सब सूरत सुबिहान की, अहमुख मुला न मारि ॥ सावे० ७७-११ तथा सासी० ७०-३० में 'दूरि' के स्थान पर 'दुई' तथा 'अहमुख' के स्थान पर 'अहमक' पाठ मिलते हैं । नि० में उक्त दोनों विकृतियाँ उर्दू लिपि के माध्यम से ही आयी हुई ज्ञात होती हैं । स्थल-संकोच के कारण कुछ अन्य उदाहरणों का निर्देश मात्र किया जा रहा है, जो निम्नलिखित हैं—

५—नि० ३-२४ : हरि सुमिरत हाजिर खड़ा, लेहु बुझाइ बुझाइ । [तुल० दा० २-३२, सा० ३०-६८, सासी० १३-११३ : हरि सुमिरण हाथीं घड़ा] ।

६—नि० २३-१२, १ : इंडा किन विसमिल किया [तुल० सा० ६०-२० सासी० ७३-२१ : अंडा । किन्तु यह विकृति पश्चिमी उच्चारण के प्रभाव स्वरूप भी मानी जा सकती है] ।

७—नि० गौड़ी १५६-५ : एकहि गाल तवावहिगे [तुल० दा० गौड़ी १५० : एकहि घाल तवावहिगे] ।

८—नि० आसावरी ५२-६ : बांभन ग्यारसि करै चौबीसौ काजी मिहर-सुदाना । [तुल० दा० आसावरी ५८ : काजी महरम जाना, गु० विभास प्रभाती २ : काजी महरम जाना, बी० ६७, बी० ५२ : रोजा मूसलमाना] ।

९. नि० गौड़ी १४८-२ : कौन चित्र ऐसा चित्रणहारा [तुल० दा० गौड़ी १४१ : चतुर] ।

१०—नि० मारू १-२ : पेट भरौ पसुवा ज्यूं सूर्यौ मिनख जनम इन हारखौ । [तुल० गु० मारू १० : मनुख ; किंतु पश्चिमी उच्चारण के प्रभाव से भी संभव ।]

११—नि० बिहंगडौ ६-५, ७ : एरंड रूख करै मलियागर चहुं दिसि फूलै

बासा । पिगो मेर सुमेर उलंघे अंधरा देख तमासा ॥ [तुल० बी० २३ तथा शबे० (२) सतगुरु० २० : फूटै, पंगा] ।

१२—नि० सारंग ७-८ : कहै कबीर सोई गुरु मेरा घर की रार नबेड़ै ।
[तुल० बी० ३-६ : निबेरै] ।

१३—नि० आसावरी ६५-५ : धरणि दुसणि नहि धारी [तुल० 'दसन' = दांत]

१४—नि० ८०-५ : कहै कबीर फिर जूनि न आवै [तुल० स० : जोनि] ।

१५—नि० केदारौ २१-४ : मोहि तोहि आदि अंति बनि आई । जैसे सलता सिंधु समाई ॥ [तुल० शबे० (१) विरह-प्रेम ३४-५ : सलता]

१६—नि० सोरठि ५७-८ : कूरम किला पछाणि कै बिचरै निज दासा ।
[तुल० शबे० (३) साधु० ४-८ : कला] ।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—नि० में नागरी लिपि की विकृतियों के केवल दो उदाहरण मिल सके हैं, जो निम्नलिखित हैं—

१—नि० आसावरी ५१-७ : असमान ग्याँनँ लहंग दरिया तहां गुसल करदा बूद । [तुल० दा० आसावरी ५७-७, गु० तिलंग १-८ : म्याँनँ = मध्य] ।

२—नि० भैरू ४६-७ : घाटी चढ़त बैल इक थाको गयो रांनि छिटकाई ।
[तुल० गु० गौड़ी ४६-८ : गोनि । 'गोनि' या 'गूनि' टाट के उस थैले या खुरजी को कहते हैं जिसमें सौदा भर कर व्यापारी लोग बैल या घोड़े की पीठ पर लाद देते हैं और वह दोनों ओर लटकती रहती है । नि० का 'रांनि' जिसकी व्युत्पत्ति अस्पष्ट है, 'गूनि' का ही विकृत रूप ज्ञात होता है । हिन्दी में 'गूनि' के उकार की मात्रा यदि 'ग' के पूर्वार्द्ध से मिल जाय तो 'गूनि' को 'रांनि' पढ़ लिया जा सकता है । नि० की इस विकृति का कदाचित् यही कारण है ।

पुनरावृतियाँ—नि० में भी दा० के समान कुछ पंक्तियाँ एक से अधिक स्थलों पर मिलती हैं, किंतु उनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है । नीचे उनका निर्देश किया जा रहा है—

१—तुल० नि० १७-३३ तथा ५०-१०३ : काया कजली बन है, मन कुंजर मैंमंत ।

खेवट ग्याँनँ रतन है, कोई समझै साधू संत ॥

२—नि० २०-४४ : कबीर जो दिन आजि है, सो दिन नाहीं कालि ।

खेत कबीरा चुणि गया, पंडित दूढ़े बालि ॥

तुल० नि० ४४-६१ : कबीर जो दिन आजि है, सो दिन नाहीं कालि ।

जेति सकै तो जेतिप, सीज पड़ी है मालि ॥

दोनों की पहली पंक्तियाँ समान हैं ।

३—मूल० नि० २३-१६ : जोरी करि जिवहे करें, कहते हैं ज हलाल ।

साहब लेखा मांगिसी, तब होसी कवन हवाल ।

तथा नि० २३-१६ : गला काटे कालमां भरै, कीया कहै हलाल ।

साहब लेखा मांगिसी, तब होसी कौन हवाल ॥

दा० के प्रसंग में पुनरावृत्तियों के जो उदाहरण दिये गये हैं, उनमें से प्रथम चार को छोड़ कर शेष सब नि० में भी मिल जाते हैं । रमैनियों में जो पुनरावृत्तियाँ दा० में हैं वे नि० में भी शब्दशः उसी प्रकार मिलती हैं ।

गु० का विवरण

‘श्री गुरु ग्रन्थ साहब’, जो सिक्खों का धर्मग्रन्थ है, समूचे संत-साहित्य का एक विशाल संग्रह-ग्रन्थ है । इसकी मूल प्रति का संकलन सिक्खों के पाँचवें गुरु श्री अर्जुन देव ने अपने निरीक्षण में कराया था । सिक्खों के एक साम्प्रदायिक ग्रन्थ ‘सूरज-प्रकाश’ के अनुसार संवत् १६६१ वि० (सन् १६०४ ई०) के भादों महीने में शुक्ल पक्ष की पहली तिथि को ग्रन्थ साहब पूर्ण हुआ और अर्जुन देव ने उस पर ‘मुदावनी’ लिखी । इसकी आधारभूत प्रतियों या मौखिक परंपराओं के संबंध में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं, जिन्हें यहाँ उद्धृत करने से कोई लाभ नहीं होगा ।

‘ग्रन्थ साहब’ का सिक्खों में अत्यधिक सम्मान है । दसवें गुरु गोविन्द सिंह जी जब मरने लगे तो उन्होंने उस की ओर लक्ष्य कर अपने अनुयायियों से कहा था कि “सिक्खो, मेरे बाद अब तुम्हारा कोई शरीरधारी गुरु नहीं होगा, ‘ग्रन्थ साहब’ को ही अपना गुरु समझना । उसकी शिक्षाओं पर चलना और उसके सम्मान की रक्षा करना ।” तब से उसकी एक-एक मात्रा को गुरुमन्त्र समझ कर सिक्ख लोग उसका पठन-पूजन करते हैं । उनका विश्वास है कि ‘ग्रन्थ साहब’ में उनके दसों गुरुओं की वाणियों के साथ उनकी आत्माएँ भी निवास करती हैं । यही कारण है कि पहले ‘ग्रन्थ साहब’ छपा नहीं जाता था और जब छपा गया तो उसकी शुद्धता को पूरी सावधानी रखी गयी ।

‘ग्रन्थ साहब’ के प्रकाशित संस्करण—सब से पहले भाई मोहन सिंह वैद्य ने तरनतारन प्रेस, अमृतसर से गुरुमुखी में ‘आदि श्री गुरुग्रन्थ साहब जी’ का एक संस्करण प्रकाशित किया । आगे चल कर हिन्दी का विशेष प्रचार होते देख उन्होंने गुरुमुखी बीड़ को ज्यों का त्यों नागरी में भी छपवाया । सर्व-हिन्द-सिक्ख-मिशन (अमृतसर) ने भी एक हिन्दी संस्करण सन् १९३७ में प्रकाशित किया ।

इनके अतिरिक्त खालसा प्रेस तथा शिरोमणि गुरुद्वारा, अमृतसर के संस्करण भी हैं। जैसा पहले निर्देश किया गया है, प्रस्तुत पुस्तक में पाठ-मिलान सिक्ख-मिशन संस्करण पर ही आधारित है। इसमें तरनतारन-संस्करण की तरह सभी शब्द सरपट नहीं, प्रत्युत विच्छेद सहित छापे गये हैं। शब्दों का विच्छेद करने में यद्यपि सावधानी बहुत रक्खी गयी है, किन्तु यत्र-तत्र भूलें रह गयी हैं।

धार्मिक भावना के कारण एक बड़ा लाभ यह हुआ है कि 'श्री गुरुग्रंथ साहब' का प्रकाशित संस्करण, जो आज हमारे सामने है, निरापद रूप से सं० १६६१ की मूल प्रति का प्रतिरूप माना जा सकता है। उसकी एक मात्रा में भी अन्तर नहीं आने पाया है। अन्य प्राचीन प्रतियों की भाँति वह किसी सम्पादक या लिपिकर्ता द्वारा न तो शोध गया है और न परिवर्तित-परिवर्धित किया गया है, यहाँ तक कि 'चलड़ीआ', 'मानीअहि', 'स्त्री गुपाल', 'पीओड़ीअ' आदि अनेक, रूप जो आज-कल बड़े अटपटे लगते हैं, ज्यों के त्यों अब भी छापे जाते हैं।

'ग्रंथ साहब' में प्रमुखता सिक्ख-गुरुओं की वारिणियों को दी गयी है, किन्तु साथ ही अन्य संतों की वारिणियाँ भी संकलित हैं। इनमें सर्वप्रमुख स्थान कबीर को दिया गया है। कबीर की जो रचनाएँ 'गुरु ग्रंथ साहब' में मिलती हैं, उनका ब्यौरा ग्रंथ के अनुसार निम्नलिखित है—

पद : १. रागु सिरि	पद संख्या २	२. गउड़ी	पद संख्या ७७
३. आसा	" " ३७	४. गूजरी	" " २
५. सौरठि	" " ११	६. धनासरी	" " ५
७. तिलंग	" " १	८. सूही	" " ५
९. बिलावल	" " १२	१०. गौंड	" " ११
११. रामकली	" " १२	१२. मारु	" " ११
१३. केदारा	" " ६	१४. भैरउ	" " २०
१५. बसंतु	" " ८	१६. सारंग	" " ३
१७. विभास प्रभाती	" " ५	(कुल २२८ पद)	

सलोक (=साखियाँ) कुल २४३।

किन्तु कबीर के प्रकरण में दिये हुए २४३ सलोकों में कुछ ऐसे हैं जिनमें स्पष्ट रूप से दूसरे संतों के नाम मिलते हैं। सलोक सं० २१२, २१३ तथा २४१ में नामदेव का नाम आया है, २२० में नानक का (महला ३ अर्थात् गुरु अमरदास जी का^२) और २४२ में रैदास का नाम आया है। इनके अतिरिक्त

सलोक सं० २०६, २१०, २११, २१४ तथा २२१ में महला ५ का निर्देश है जिससे ज्ञात होता है कि वे गुरु अर्जुन देव द्वारा रचित हैं^३। सलोक २३५ तथा २३६ को भी मैकॉलिफ^४ ने गुरु अर्जुनदेवकृत बताया है। यदि इन १२ सलोकों को पहली संह्या में से निकाल दिया जाय तो 'गुरुग्रंथ साहब' में कबीर के सलोकों की संख्या २३१ ही रह जाती है। पदों में गउड़ी १४ के आरंभ में महला ५ (गुरु अर्जुनदेव) का निर्देश है^५।

पाठ-संबंधी प्रमुख विशेषताएँ

फ़ारसी-लिपि-जनित विकृतियाँ—गु० प्रति में मिलने वाली पाठ-विकृतियों में अधिकांश फ़ारसी-लिपि-जनित हैं जिनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

१—गु० आसा २४ में पहली पंक्ति का पाठ है : तनु रैनो मनु पुनरपि करिहुउ पाचउ तत वराती ।

दा० नि० गौड़ी १-३ तथा शवे० (१) विरह-प्रेम ७-३ में इस पंक्ति का पाठ है : तन रत करि मैं मन रत करिहीं पंचू तत वराती । गु० के पाठ से कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता। डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'रैनो' का तात्पर्य 'सुगन्धित रेगु से सज्जित' मान कर इस पंक्ति का अर्थ किया है : "तन और मन को बारंबार सुगन्धित पराग कणों में परिवर्तित कर मैं पाँचों तत्वों को बराती बनाऊँगे।"^६ यह अर्थ संतोषजनक नहीं लगता, किन्तु 'गुरुग्रंथ साहब' का पाठ अक्षरशः प्रामाणिक मान लेने पर टीकाकार के सामने अन्य कोई विकल्प था भी नहीं। समस्त संभावनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि ऐसी विकृति फ़ारसी लिपि में ही अधिक संभव है। 'मैं मन रत करिहीं' यदि उर्दू में लिखा जायगा तो मीम, ये, जेर, नूँ (=मैं) और मीम नूँ रे, ते, जबर (=मन रत), काफ़, रे, जेर, हे, नूँ, जबर (=करिहीं) अक्षर जोड़े जायेंगे। 'करिहीं' सभी प्रतियों में समान रूप से मिलता है। उर्दू 'मैं' में यदि नीचे 'ये' के दो नुक्ते और जेर न लगाये जायें तो 'मन' हो जायगा और इसी प्रकार 'मन रत' का उर्दू में 'पुनरपि' होता भी असम्भव नहीं। 'रत करि' या 'रत कै' (रे, ते, काफ़, ये) को एक में मिला कर घसीट लिखने से 'रैनो' हुआ ज्ञात होता है, क्योंकि उर्दू घसीट में 'काफ़' के ऊपर की लकीर अलग होकर प्रायः जबर के रूप में हो जाती है, या कम होते-होते बिल्कुल नुक्ता-जैसी रह जाती है। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि 'गुरुग्रंथ साहब' में कबीर की वाणी जिस आदर्श से ली गयी या तो वह या

३. वही, पृ० १३७५-७६। ४. सिक्ख रिलिजन, भाग ५, पृ० ३१५। ५. गुरु ग्रंथ साहब, पृ० ३२६। ६. अतः कबीर, पृ० १३७५-७६।

उसका कोई पूर्वज फ़ारसी लिपि में था जिससे गु० में भी इस विकृति का समावेश हो गया ।

२—गु० आसा १५ में पंक्ति ३, ४, ५ तथा ६ का पाठ है—

मेरी मेरी करते जनमु गइओ । साइर सोखि भुजं बलइओ ॥

सूके सरवरि पालि बंधावै लूणै खेति हथवारि करै ।

आइओ चोर तुरंतह लै गइओ मेरी राखत मुगधु फिरै ॥ २ ॥

चरन सीस कर कंपन लागे नैनी नीरु असार बहै ।

दा० आसावरी ४२ (ग्रंथा० २४३), नि० आसावरी ३७ तथा स० में 'हथ' के स्थान पर 'हठि', 'वारि' के स्थान पर 'बाड़ि', 'तुरंतह' के स्थान पर 'तुरंगम' तथा 'असार' के स्थान पर 'असराल' पाठ मिलते हैं । पहले उर्दू में 'ते' के ऊपर एक पड़ी लकीर खींच कर 'टे' बनाते थे । यदि वह लकीर भूल से छूट जाती थी तो 'ठ' का सरलता से 'थ' हो जाता था । उर्दू 'रे' तथा 'ड़े' में भी कोई विशेष अंतर नहीं रहता । गु० का यह विकृत तथा निरर्थक पाठ (क्योंकि 'हथवारि' का यहाँ कोई प्रसंग-सम्मत अर्थ नहीं ज्ञात होता) मूलतः उर्दू में ही लिखे जाने के कारण आया हुआ ज्ञात होता है । इसी प्रकार गु० के 'तुरंतह' तथा 'असार' भी 'तुरंगम' अथवा 'तुरंगहि' (= 'घोड़ा' या 'घोड़े को') तथा 'असराल' (= निरंतर) के विकृत रूप ज्ञात होते हैं और इन विकृतियों को भी संभावना अधिकांशतः फ़ारसी लिपि के ही कारण ज्ञात होती है । दा० नि० स० द्वारा प्रस्तुत पाठ के अनुसार उक्त पंक्तियों का अर्थ होगा : "सूखे तालाब की तू पाली० बंधाता है और फ़सल कट जाने पर खेत को ज़बर्दस्ती खूँधता है । घोड़ा तो चोर चुरा ले गया और तू, मूर्ख ! उसकी मोहड़ी रखाता फिरता है !!"

यद्यपि प्राप्त पाठांतरों से स्पष्ट सिद्ध नहीं होता, किन्तु मेरा अनुमान है कि ऊपर उद्धृत अंश में 'भुजं बलइओ' पाठ 'भुजंग लइओ' का विकृत रूप है और उर्दू 'गाफ़' को अम से 'बे' पढ़ लेने के कारण हुआ ज्ञात होता है (गाफ़ के ऊपर की लकीरों की अव्यवस्था के अनेक उदाहरण 'पदमावत' की प्रतियों में भी मिलते हैं) ।

३—गु० गउड़ी ५७-१ : कालवृत की हसतनी मन बउरा रे चलतु रचिओ जगदीस । बी० चांचर २ में 'चलतु' के स्थान पर 'चित्र' पाठ मिलता है । यहाँ बी० का पाठ ही मूल प्रति का ज्ञात होता है । गु० की इस

विकृति के कारण उसके टीकाकार के सामने कितनी कठिनाई उपस्थित हुई है इसका अनुमान निम्नलिखित उदाहरण से लगाया जा सकता है। इस पंक्ति पर उ० वर्मा की टीका है: “कच्चे भराव की तरह यह पागल मन ऐसी हस्तिनि है जिसने अपनी गति में (?) ईश्वर की रचना कर डाली है।” फिर मानों इस अर्थ से असन्तुष्ट होकर उन्होंने आगे कोष्ठक में इतना और जोड़ दिया: “अथवा हे पागल मन, कच्चे भराव की तरह यह शरीर की हस्तिनि ऐसी है जिसने अपनी बुद्धि के विकास में स्वयं ईश्वर को सृष्टि कर डाली है।”^५ बीजक के पाठ से यह कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं और इतनी कष्टकल्पना की आवश्यकता नहीं रह जाती। उसके अनुसार इस पंक्ति का सीधा अर्थ होगा: बावरे मन, ईश्वर ने (इस मायिक जगत का) जो चित्र उरेह रक्खा है वह कालवृत्त की हस्तिनी के समान है (जिस पर मुग्ध होकर अनेक कामान्ध हाथी स्वयं फँस जाते हैं)। जंगल में शिकारी लोग गड़ढा खोद कर हथिनी का पुतला खड़ा कर देते हैं। हाथी स्वभाव से ही कामुक होने के कारण गड़ढे में आकर फँस जाते हैं। मायाग्रस्त लोगों का वर्णन करने के लिए कवीर ने इसी रूपक का आश्रय लिया है। गु० की इस विकृति की विभिन्न संभावनाओं पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि संभवतः यह भी फ़ारसी लिपि के कारण ही आयी है। उर्दू में चित्र चे, ते, रे मिला कर लिखा जाता है। ‘ते’ का शोशा अगर कुछ ऊपर उठ जाय और उसके दोनों नुक्ते कुछ और बाँई और को खिसक जायें तो वह मिलावट वाले ‘लाम’ की तरह हो सकता है और ‘रे’ के पेट पर दोनों नुक्तों के आ जाने पर उसकी शक्ल ‘ते’ की सी लग सकती है।

४—गु० आसा १६ को अंतिम पंक्ति में ‘चिरगट फारि चटारा लै गइओ’ पाठ मिलता है। ‘चिरगट’ वस्तुतः अवधी अथवा भोजपुरी ‘चिरकुट’ (= जीर्ण शीर्ण वस्त्र) का विकृत रूप है जो उर्दू में ही सम्भव हो सकता है।

इसी प्रकार के कई अन्य स्थल भी मिलते हैं जिनका निर्देश नीचे तुलनात्मक रूप में किया जा रहा है। किस प्रकार गु० का पाठ विकृत और अन्य पाठ मूल का है, यह लिपि और प्रसंग की संभावनाओं पर ध्यान देने से स्वतः स्पष्ट हो जायगा।

(क) उर्दू ‘काफ़’, ‘गाफ़’ के सादृश्य से उत्पन्न विकृतियाँ—

५—गु० बावनअखरी ११-२ : लिखि अरु मैटे ताहि न माना।

तुल० दा० नि० बावनी ७-२ : लिखि करि भेटै ताहि न माना ।

६—गु० गउड़ी ५४-१, २ : गज नव गज दस गज इकोस पुरीआ एक तनाई ।

साठ सूत नव खंड बहतरि पाटु लगे अधिकारी ॥

तुल० दा० रांमकली ४१-२, ३, नि० रांमकली ४०-२, ३ तथा बी० १५-२, ३ : गज नव गज दस गज उगनीसा (बी० उनइस की) पुरिया एक तनाई ।

सात सूत नव गंड बहतरि पाट लागु अधिकारी ॥

७—गु० वसंत २-४ : हणवंतु जागे धरि लकूर ।

तुल० दा० वसंत ११-४, नि० वसंत १०-६ : हनवंत जागे लै लंगूर ।

८—गु० गउड़ी ८-१ : अंधकार सुखि कबहि न सोईहै ।

तुल० दा० गौड़ी १३१-४, नि० गौड़ी १३-४ : कंधि काल सुख कोई न सोवै ।

९—गु० सोरठि १-३ : राम बिन संसार अंध गहेरा ।

तुल० दा० केदारौ १८-१, नि० केदारौ १६-१ : रांम बिनां संसार धुंध कुहेरा ।

(ख) उर्दू 'ज़बर', 'ज़ेर', 'पेश' की अव्यवस्था के कारण उत्पन्न विकृतियाँ—

१६—गु० बावनअखरी १० : मन समझान्न कारनै कछुअक पड़ीअ गिआन ।

तुल० दा० नि० बावनी ४ : कछु इक पढ़िअ म्यान ।

११—गु० गउड़ी २५-३ : मुचु मुचु गरभ गए कीत बचिआ ।

तुल० दा० गौड़ी १२५-२, नि० गौड़ी १२८-२ (ग्रन्थावली १२५) :

गरभ मुचे मुचि भई कित बांभ ।

[संस्कृत में 'मुच्' धातु का प्रयोग त्याग के अर्थ में होता है । गु० में इस पंक्ति का पाठ विकृत है, क्योंकि उससे अर्थ स्पष्ट नहीं होता । इसके विपरीत दा० नि० स० का पाठ भ्रांति-हीन है, जिसके अनुसार इस पंक्ति का अर्थ होगा : 'वह (जो राम का भक्त नहीं है उसकी माता) गर्भ त्याग कर बांभ क्यों नहीं हो गयी ?' अर्थात् दुष्ट पुत्र पैदा करने की अपेक्षा उसका बांभ रह जाना ही अधिक श्रेयस्कर था ।]

१२—गु० केदारा ६-४ : मरघट लगि सब लोग कुटुंबु मिलि हंसु इकेला जाइ ।

तुल० दा० केदारा १६, नि० केदारा १७, शबे० (२) चितावनी ५ तथा स० : मरहट लीं सब लोग कुटुंबी हंस अकेलौ जाइ । [किंतु यह विकृति पंजाबी उच्चारण के प्रभाव से भी मानी जा सकती है ।]

१३—गु० सलोक २५-२ : भावै घररि मुड़ाइ ।

तुल० दा० २४-११, नि० २३-५ : भावै घुरड़ि मुड़ाइ ।

१४—गु० सलोक १७३-१ : कबीर संसा दूरि करु, कागद देह बिहाइ ।

तुल० दा० १६-२, नि० २४-२०, सा० ४०-३७ साबे०, सासी० १८-८ :
कबीर पढ़िवा दूर कर, पुस्तक देहु बहाइ ।

१५—गु० सलोक १-१ तथा १६०-२ : **सिमरनी** तथा **सिमरे** ।

तुल० सा० ११५-१, सासी० १३-११४ : सुमिरनी; तथा दा० ३-६ : सुमिरे ।

[किंतु गु० में नानक आदि की वाणियों में भी 'सुमिरना' के लिए सर्वत्र 'सिमरना' रूप ही प्रयुक्त हुआ है, अतः इसे पंजाबी उच्चारण का प्रभाव भी माना जा सकता है ।]

१६—गु० सलोक ८१-१ : सात समुंदरिह मसु करउ ।

तुल० दा० ३८-५, सा० ७२-२१ : सात समंद की मसि करौ ।

[इस विकृति का समाधान अन्यथा भी हो सकता है; क्योंकि गु० में अन्य अनेक स्थलों पर स्याही के अर्थ में 'मसु' या 'मंसु' शब्द का ही प्रयोग हुआ है ।]

१७—गु० सलोक ११७-२ : जइहै आटा लोन जिउ, सोनि समान सरीर ।

तुल० दा० १२-४८, नि० २१-५३ : सोन सवांन सरीर ।

(ग) उर्दू 'ये' की अव्यवस्था के कारण उत्पन्न विकृतियाँ—

उर्दू में 'ऐ' की ध्वनि के लिए कविता में प्रायः छोटी 'ये' लिख कर ऊपर ज़बर का चिह्न लगा देते हैं जो भ्रम से कभी-कभी 'ई' पढ़ लिया जाता है । गु० में कुछ ऐसे उदाहरण मिलते हैं जो फ़ारसी लिपि की इस अव्यवस्था के कारण हुए ज्ञात होते हैं ; जैसे—

१८—गु० गउड़ी १०-२ : ना जाना बैकुंठ कहाही । जानु जानु सभ कहहि तहही ॥ तुल० दा० गौड़ी २४-१ चलन चलन सब कोई कहत है । ना जानौ बैकुंठ कहां है ।

१९—गु० भैरउ ६-४ : जब लगु कालि ग्रसी नहि काइआ । तुल० दा० भैरू २४-४ तब लगि काल ग्रसै नहि काया ।

२०—गु० सलोक २३०-२ : पंखी चले दिसावरी बिरखा सुफल फलंत । तुल० दा० ४७-७ : दिसावरै ।

(घ) अन्य वर्णों के साम्य के कारण उत्पन्न विकृतियाँ—

२१. गु० सलोक ८८-२ : उह भूलै उह चीरीअै साकत संगु न हेरि ।

तुल० दा० २५-४-२, सा० ५६-८-२ : वो हालै वो चीरिअै, साखित संग नबेरि । तथा बी० २४२-२ : वो हालै वो चीघरै, बिघना संग निबेरि ।

(उर्दू 'बे' के नीचे वाले-नुक्ते और बड़ी 'हे' के नीचे लगने वाले शोशे के सादृश्य के कारण ।)

२२—गु० सलोक ७०-२ : काइआ हांडी काठ की, ना ओहु चरहै बहोरि ।

तुल० दा० १२-३१-२, नि० १६-३५-२, सा० ३०-५१-२, सासी० १३-

२३-२ : काया हांडी काठ की, नां वां चढ़ै बहोरि ।

(उर्दू 'रे' तथा 'ड़े' में रूप-सादृश्य के कारण)

२३—गु० सलोक १२४-१ : अंबर घनहरु छाइआ, बरखि भरे सर ताल ।

तुल० दा० ३-२-१, सा० १६-२-१ : सासी० १६-२-१ : गरजि भरे सब ताल । (उर्दू 'बे' के नीचे की बिंदी छूट जाने पर 'रे' के समान हो जाने के कारण । अन्यथा 'सर' और 'ताल' समानार्थी होने से पुनरुक्ति-दोष का भय है ।)

२४—गु० गउड़ी २५-३ : मुचु मुचु गरभ गए किन बच्चिआ ।

तुल० दा० गौड़ी १२५-२ तथा नि० गौड़ी १२८-२ : गरभ मुचे मुचि भई किन बांभ ।

२५—गु० आसा ५-२ : लुंजित मुंजित मौनि जटाधर ।

तुल० दा० आसावरी ४७-७ (ग्रंथा २४८), नि० आसावरी ४२-७ : लुंचित मुंडित मोनि जटाधर (सं० लुञ्चन=नोचना) ।

२६- गु० सलोक २२४-१ : काइआ कजली बन भइआ, मनु कुंचरु महमंतु ।

तथा पद गांड ४-६ : बांधि पोटि कुंचरु कउ दीना ।

तुल० नि० १७-३३-१, ५०-१०३, सा० ३१-४२ तथा सासी० २६-७३ : काया कजरी बन है, तामें मन कुंजर महमंत । तथा दा० नि० बिलावल ४ (ग्रन्था० ३३५) : बांधि पोड कुंजर कूं दीन्हां ।

[ऊपर की तीनों विकृतियाँ उर्दू 'जीम' तथा 'चे' के सादृश्य के कारण हुई ज्ञात होती हैं, किन्तु 'कुंचरु' रूप नानक आदि की वाणियों में भी मिलता है, अतः बहुत संभव है कि गु० में तत्कालीन पंजाबी-प्रभाव के कारण कबीर आदि की वाणियों में भी यही रूप प्रचलित हो गया हो ।]

२७—गु० भैरउ ४-३ : मिसमिल तामसु भरमु कदूरी ।

तुल० दा० गौड़ी ६१-४, नि० गौड़ी ६४-४ : विसमिल ।

२८—गु० सलोक १६६-१ : दुनीआ के दोखे मूआ ।

तुल० दा० १२४-६, नि० १६-५४, सासी० १७-८६ : दुनिया के दोखे मुवा ।

२९—गु० मारु ६ का अंतिम सलोक : सूरु सो पहिचानीअ, जु लरै दीन के हेत ।

तुल० दा० ४५-६, नि० ५०-१ : सूर तबही परखिए, लड़े धनी के हेत ।
(धनी = मालिक, संरक्षक) ।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—गु० में भी दा० नि० के समान नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ उर्दू की अपेक्षा बहुत कम मिलती हैं । सब मिला कर केवल दो विकृतियाँ मिली हैं, जो निम्नलिखित हैं—

१—गु० गउड़ी ३६-४ का पाठ है : “सनकादिक नारद मुनि सेखा । तिन भो तन महि मनु नही पेखा ॥ दा० गोड़ी ३३, नि० गोड़ी ३७ तथा स० में इसका पाठ है : धू प्रह्लाद बिभीखन सेखा । तन भीतरि मन उनहुं न पेखा । वी० शब्द ६२ में भो “तनके भीतर मन उनहुं न पेखा ।” पाठ मिलता है । यद्यपि गु० के पाठ से भी अर्थ वही निकलता है जो अन्य प्रतियों के पाठ से, किन्तु केवल गु० में ही ऐसा पाठान्तर मिलने से उसकी स्थिति विचारणीय हो जाती है । कैयी या पुरानी नागरी में ‘र’ प्रायः ‘न’ को तरह ही लिखा जाता था, अंतर केवल यह रहता था कि ‘न’ की बड़ी लकीर का सिरा कुछ अधिक गोल कर दिया जाता था, जबकि ‘र’ का सिरा गोल नहीं किया जाता था । यही कारण है कि नागरी में लिखा हुई प्राचीन पोथियों को प्रतिलिपि करने में ‘न’ तथा ‘र’ की अनेक भूलें मिलती हैं । दा० नि० स० तथा वी० सभी में ‘भीतर’ पाठ रहने से यह संकेत मिलता है कि मूल प्रति में यही पाठ था, किन्तु आगे चल कर उसकी किसी नागरी प्रति को प्रतिलिपि करते समय लिपिकार को ‘तर’ के स्थान पर ‘तन’ का भ्रम हो गया जिससे उसने पूरी पंक्ति का पाठ ही तोड़-मरोड़ कर अपने अनुकूल बना लिया और वही पाठ आगे चल कर गु० में भी समाविष्ट कर लिया गया । यह भो सम्भव है कि स्वतः ‘गुरु ग्रंथ साहब’ के संकलनकर्ता या लिपिकर्ता को ही यह भ्रम हो गया हो ।

२—इसी प्रकार का एक भ्रम अन्यत्र भी मिलता है । गु० आसा ६-३ का पाठ है : “राजा राम ककरिआ बरे पकाए, किने बूझनहारे खाए ।” दा० गोड़ी १२, नि० गोड़ी १३ की यह पहली पंक्ति है जहाँ इसका पाठ है : “हरि के खारे बड़े पकाए जिनि जारे तिनि खाए ।” वस्तुतः ‘जारे’ और ‘बूझनहारे’ दोनों पाठ विकृत हैं, क्योंकि पहले में कोई सार्थकता ही नहीं है और दूसरे से अर्थ तो निकल आता है किन्तु भाषा की अस्वाभाविकता तथा वाक्यरचना का लचरपन खटकता है । अनुमानतः मूल में ‘जिनि जाने तिनि खाए’ पाठ रहा होगा जो प्राचीन नागरी के ‘न’ तथा ‘र’ के भ्रम से ‘सबंगी’ आदि में ‘जारे’ हो गया । गु० के संकलनकर्ता के सामने भी ‘सबंगी’ के समान ही कोई पाठ आया

होगा, जिसका अर्थ ठीक न लगते देख उसने गु० के लिए 'किनै' ब्रह्मनहारै खाए' पाठ रख लिया होगा। उसका 'किनै' शब्द भी कुछ ऐसी ही कहानी की ओर संकेत करता है।

निम्नलिखित स्थल गु० में ऐसे और मिलते हैं जिनकी विकृतियाँ नागरी लिपि के कारण सम्भव हो सकती हैं—

३—गु० सलोक ६७-१ : इबा था पै उबरिओ, गुन की लहरि भवकि ।

तुल० दा० १-२५, नि० १-२०, सा० २-२०, सासी० १-५६ : बूड़े थे परि परि ऊबरे, गुर की लहरि चमकि । (नागरी 'न' और 'र' के सादृश्य से) ।

४—गु० सलोक १५२-२ : तहां कबीरै मट्टु कीआ, खोजत मुनि जन बाट ।

तुल० दा० १०-३, नि० १४-२, सा० २६-३, सासी० ५३-१६ : तहां कबीरै मठ किया (नागरी ट और ठ के सादृश्य से) ।

५—गु० १८२-१ : मारे बहुत पुकारिआ, पीर पुकारै अउर ।

तुल० दा० ४०-८, नि० ४२-४, सा० ७४-४, सासी० १६-३० : सारा बहुत पुकारिया (सारा=शूरवीर; विकृति नागरी 'म' और 'स' के सादृश्य से) ।

राजस्थानी-प्रभाव के कारण आयी हुई विकृतियाँ—गु० में राजस्थानी-प्रभाव के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं। केवल निम्नलिखित स्थल उल्लेखनीय हैं।

गु० 'बावन अखरी' में ७ वीं पंक्ति का पाठ है : "अलह लहंता भेद छै कछु कछु पाइओ भेद ।" डॉ० राम कुमार वर्मा ने 'छै' को छः (संख्या) का बोधक मानकर अर्थ किया है : "अल्लाह को पाने के छः भेद हैं ।"^१ किन्तु 'छै' यहाँ हिंदी 'है' की समानार्थी राजस्थानी क्रिया ज्ञात होती है, जिसके अनुसार उक्त पंक्ति का अर्थ होगा—"अल्लाह को पाने में एक रहस्य है जिसका कुछ कुछ भेद मैंने पा लिया है ।"

'बावन अखरी' में ही आगे चल कर ६८ वीं पंक्ति में 'सूरउ थारउ नाउ' पाठ मिलता है। 'थारा' या 'थारौ' स्पष्ट ही राजस्थानी के सर्वनाम हैं (तुल० हिन्दी 'तुम्हारा') ।

पंजाबी-प्रभाव के कारण आयी हुई विकृतियाँ—"ग्रंथ साहब" यद्यपि पंजाब में एक पंजाबी द्वारा लिखा गया किन्तु उसकी यह बड़ी आश्चर्यजनक विशेषता है कि अन्य प्रदेश के संतों की वाणियों में पंजाबी प्रभाव अधिक नहीं आने पाया है। कबीर, रैदास आदि पूर्वी संतों की वाणियों की राजस्थानी-प्रतियों में जहाँ गुंकार प्रधान शब्दावली तथा अन्य प्रादेशिक रूपों की भरमार है वहाँ 'ग्रन्थ

साहब' में ऐसे स्थल कचित् कदाचित् ही मिलते हैं। इस सम्बन्ध में गुरु अर्जुन देव की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि 'गुरु ग्रन्थ साहब' के संकलनकर्ता, लिपिकर्ता पर अपने देशकाल का कोई प्रभाव पड़ा ही नहीं। मनुष्य कितना ही प्रतिभाशाली क्यों न हो, कहीं न कहीं उसे अपनी स्वभावगत दुर्बलताओं का शिकार होना ही पड़ता है। 'ग्रंथ साहब' में आयी हुई कबीर की वाणी में भी कुछ ऐसे स्थल अवश्य मिलते हैं जिनमें पंजाबी-प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। नीचे उनका उल्लेख किया जा रहा है—

१. गु० 'बावन अखरी' में ४० वीं पंक्ति का पाठ है—

चड़ि सुमेरि हूँढ़ि जब आवा । जिह गड़ु गड़िओ सु गड़ महि पावा ॥

यहाँ 'ढ' के स्थान पर सर्वत्र 'ड़' आया है जो कदाचित् पंजाबी उच्चारण के प्रभाव से ही हुआ है।

२. पंजाबी-प्रभाव ऐसे पदों में अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ता है जो केवल गु० में पाये जाते हैं। इन पदों में पंजाबी के जैसे सटीक प्रयोग मिलते हैं, कबीर-वाणी की अन्य प्रतियों में क्या गु० में भी कबीर के प्रकरण में अन्यत्र नहीं मिलते। उदाहरण के लिए गु० गउड़ी का ५० वाँ पद पूरा-पूरा उद्धृत किया जा सकता है—

पेवकड़े दिन चारि है साहुरड़े जाणा ।

अंधा लोकु न जाणई मूरखु एआणा ॥

कहु डडीआ बाधै धन खड़ी ।

पाहू घरि आए मुकलाऊ आए ॥ १ ॥

आह जि दिसै खूहड़ी कउन लाजु वहारो ।

लाजु घड़ी सिउ तूटि पड़ी उठि चली पनिहारी ॥ २ ॥

साहिवु होइ दइआलु क्रिपा करे अपुना कारजु सवारे ।

ता सोहागणि जाणीअै गुर सबदु बीचारे ॥ ३ ॥

किरत की बांधी सभ फिरै देखहु बीचारी ।

एस नो किआ आखीअै किआ करै विचारी ॥ ४ ॥

भई निरासी उठि चली चित बंधि न घीरा ।

हरि की चरणी लागि रहु भजु सरणि कबीरा ॥ ५ ॥

काशी में रहने वाले कबीर इस प्रकार की भाषा कभी नहीं बोल सकते थे। यह स्पष्ट ही किसी पंजाबी की रचना जान पड़ती है। इसी से मिलता-जुलता

एक अन्य पद महला तीन के अन्तर्गत मिलता है^{१०} जिसकी प्रथम पंक्ति का पाठ है : 'पेईअड़े दिन चारि है हरि हरि लिख पाइआ।' ऊपर उद्धृत पद भी निश्चित रूप से किसी सिक्ख गुरु की रचना जान पड़ती है जो कबीर की रचनाओं में प्रक्षेप रूप में समाविष्ट हो गयी है।

३. गु० मारू ८ में प्रथम पंक्ति का पाठ है : अनभउ किन न देखिआ बैरागीअड़े, विनु भै अनभउ होउ वणाहंबै । आगे की सभी पंक्तियों में इसी प्रकार 'बैरागीअड़े' और 'वणाहंबै' की टेक मिलती है। यह दोनों पंजाबी के विशिष्ट प्रयोग हैं (बैरागीअड़े=हे बैरागी, वणाहंबै=ठीक है) जिनका पंजाबी गीतों में प्रायः ध्रुवक के रूप में उपयोग किया जाता है। यह पद भी गु० के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रति में नहीं मिलता।

४. गु० में अतिरिक्त रूप से मिलने वाले पदों में इसी प्रकार के कुछ अन्य प्रयोग भी मिलते हैं; उदाहरणतया गु० सिरि १ में 'इतनाकु' (=इतना भी), इतु संगति (=इसके साथ), जां (=जो); गउड़ी २७ में चीनत (=चीन्हा); आसा २ में जिन्हा (=जिनके); सोरठि ११ में कीता लबो, तथा फबो आदि ऐसे ही रूप हैं।

(ङ) पुनरुक्तियाँ तथा पुनरावृत्तियाँ—गु० में सात साखियाँ ऐसी हैं जो दो-दो स्थलों पर मिलती हैं और अंतर केवल शब्दिक हैं, उदाहरणतया—

१. गु० का १४ वाँ सलोक जिसका पाठ है—

कबीर हज जह हउ फिरिओ कउतक ठाओ ठाइ ।

इक राम सनेही बाहरा ऊजरु मेरै भांड ॥

१५१ वें सलोक से तुलनीय है जिसका पाठ है—

पाटन ते ऊजरु भला राम भगति जिह ठाइ ।

राम सनेही बाहरा जमपुरु मेरे भांड ॥

२. तुल० सलोक ४२ : कबीर अैसा कोईन जनमिओ अपने घर लावै आगि ।

पांचउ लरिका जारि कै रहै राम लिब लागि ॥

तथा ८३ : कबीर अैसा को नही मंदर देइ जराइ ।

पांचउ लरिके मारि कै रहै राम लिउ लाइ ॥

स्थानाभाव के कारण शेष उदाहरणों का केवल स्थल-निर्देश किया जा रहा है जो इस प्रकार हैं—(३) तुल० सलोक १०६ तथा २२६; (४) सलोक ११२ तथा १५०; (५) सलोक १५७ तथा १६४; (६) सलोक १८७ तथा १६६;

(७) सलोक २३८ तथा राग रामकली के १२ वें पद की अंतिम दो पंक्तियाँ ।
 पदों में भी कहीं-कहीं दो-एक पंक्तियों की और कहीं-कहीं पूरे पद की आवृत्ति मिल जाती है । उदाहरणतया—

१. गु० घनासरी २ की ६ ठी तथा ७ वीं पंक्तियाँ जिनका पाठ है—

कहत कबीर सुनहु रे प्राणी छोड़हु मन के भरमा ।

केवल नाम जपहु रे प्राणी परहु एक की सरना ॥

राग 'विभास प्रभाती' के दूसरे पद की अंतिम दो पंक्तियों से तुलनीय हैं जिनका पाठ है—

कहतु कबीर सुनहु नर नरवै परहु एक की सरना ।

केवल नाम जपहु रे प्राणी तबही निहचै तरना ॥

इसी प्रकार निम्नलिखित स्थल भी तुलनीय हैं—

(२) राग गउड़ी ११-४ तथा गउड़ी १६-१; (३) गउड़ी १२ तथा २२ की अंतिम पंक्तियाँ; (४) सोरठि १० तथा ११ की अंतिम पंक्तियाँ ।

५. गु० में एक पूरा पद ही थोड़े हेर-फेर के साथ दो स्थलों पर मिलता है । दोनों के दो भिन्न स्रोत ज्ञात होते हैं । गउड़ी १० का पाठ इस प्रकार है—

जो जन परमिति परमनु जाना । बातन ही बैकुंठ समाना ॥

ना जाना बैकुंठ कहा ही । जानु जानु सभि कहहि तहाही ॥ १ ॥

कहन कहावन नह पतीअईहै । तउ मनु जानै जाते हउमै जईहै ॥ २ ॥

जब लगु भनि बैकुंठ की आस । तब लगु होइ नही चरन निवास ॥ ३ ॥

कहु कबीर इह कहीअै काहि । साथ संगति बैकुंठे आहि ॥ ४ ॥

यह गु० भैरउ १६ से तुलनीय है जिसका पाठ है—

समु कोई चलन कहत है ऊहां । ना जानउ बैकुंठ है कहां ॥

आप आप का मरसु न जानां । बातन ही बैकुंठ बखानां ॥ १ ॥

जब लगु मन बैकुंठ की आस । तब लगु नाही चरन निवास ॥ २ ॥

खाई कोटु न परल पगारा । ना जानउ बैकुंठ दुआरा ॥ ३ ॥

कहि कमीर अब कहीअै काहि । साथ संगति बैकुंठे आहि ॥ ४ ॥

'ग्रंथ साहब' में संकलित कबीर-वाणी के इतने लघु परिमाण में इतनी अधिक संख्या में पुनरावृत्तियाँ मिल जाने से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि उसके निर्माण में अनेक आदर्शों अथवा स्रोतों की सहायता ली गयी है ।

(च) मिश्रित पद—गु० में कुछ ऐसे पद भी मिलते हैं जो विभिन्न सूत्रों से

मिल कर बने हुए ज्ञात होते हैं। उदाहरण के लिए गु० गउड़ी ३५ उद्धृत किया जा सकता है, जिसका पाठ है—

जिहि सिरि रचि रचि बाधत पाग । सो सिरु चुंच सवारहि काग ॥

इस तन घन को किआ गरबईआ । राम नामु काहे न दिडिआ ॥१॥

कहत कबीर सुनहु मन मेरे । इही हवाल होहिगे तेरे ॥२॥

उक्त पद की प्रथम पंक्ति दा० नि० सोरठि ३४ (ग्रन्था० २६५) में चौथी पंक्ति के रूप में और बी० शब्द ६६ में तीसरी पंक्ति के रूप में मिलती है। शेष चार पंक्तियाँ दा० गौड़ी ६३ में तथा नि० गौड़ी ६७ में मिलती हैं।

इसी प्रकार गु० तिलंग १ की आठ पंक्तियाँ दा० आसावरी ५६ में और शेष दो पंक्तियाँ दा० आसावरी ५७ में (ग्रन्था० २-५७ तथा २-५८) मिलती हैं।

(छ) स्थानांतरित पंक्तियाँ—कहीं-कहीं इस बात के भी उदाहरण मिलते हैं कि अन्य प्रतियों में मिलने वाले पद की विभिन्न पंक्तियाँ गु० के कई पदों में बिखरी हुई मिलती हैं। उदाहरण के लिए दा० गौड़ी ४३ का पद लिया जा सकता है। दा० में इस पद का पाठ, जो नि० और स० में भी ज्यों-का-त्यों मिलता है, इस प्रकार है—

हंम न मरै मरिहै संसारा । हमकुं मित्या जियावनहारा ॥ टेक ॥

अब न मरौ मरनै मन मानां । तेई सुए जिन रांम न जानां ॥

साकत मरै संत जन जीवै । भरि भरि रांम रसाइन पीवै ॥

हरि मरिहै तो हंमहूँ मरिहै । हरि न मरै हंम काहे कौ मरिहै ॥

कहै कबीर मन मनाहि मिलावा । अमर भए सुखसागर पावा ।

इसकी प्रथम पंक्ति गु० गउड़ी १२ में द्वितीय पंक्ति के रूप में मिलती है, वहाँ इसका पाठ है—

मै न मरउ मरिबो संसारा । अब मोहि मिलिओ है जोआवनहारा ।

द्वितीय पंक्ति गु० गउड़ी २० की द्वितीय पंक्ति से मिलती है जिसका पाठ है—

अब कैसे मरउ मरनि मनु मानिआ । मरि मरि जाते जिन रामु न जानिआ ॥

इसकी तीसरी पंक्ति गु० गउड़ी १३-४ में इस प्रकार मिलती है—

साकत मरहि संत सभि जीवहि । राम रसाइनु रसना पीवहि ॥

गु० के किसी-किसी पद की केवल एकाध पंक्ति अन्य प्रतियों में मिल जाती है, शेष का कोई मेल नहीं मिलता। ऐसी उड़ती-पुड़ती पंक्तियाँ गु० में अनेक हैं,

जिममें से कुछ के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. गु० गउड़ी ७ की तीसरी पंक्ति है : जउ तूं ब्राहमणु ब्रहमणी जाइआ ।
तउ आन बाट काहे नही आइआ ॥ जो दा० गौड़ी ४१ की चौथी पंक्ति
के रूप में मिलती है । दा० का यह पद नि० गौड़ी ४५ तथा बी० रमैनी
६२ के रूप में भी मिलता है । पाठ दा० के ही समान है ।
२. गु० के उक्त पद में ही अगली पंक्ति : “तुम कत ब्राहमण हम कत सूद । हम
कत लोहू तुम कत दूध ॥” दा४ गौड़ी ७६-२ में मिलती है । इसी प्रकार
निम्नलिखित स्थल तुलनीय हैं—
३. गु० गउड़ी १२-४ तथा नि० भैरू ४२-२, शवे० (२) चितावनी ३८;
४. गु० गउड़ी ३४ तथा बी० रमैनी ३२ की अंतिम पंक्तियाँ;
५. गु० गउड़ी ४१-१, २ तथा नि० आसावरी ११०-२, ३;
६. गु० आसा १३-२२ तथा दा० नि० आसावरी ५५-५;
७. गु० केदारा ३-३ तथा गौड़ी ७४-१ ।

उपर्युक्त दोनों विशेषताओं तथा उनके उदाहरणों से गु० के आदर्श-बाहुल्य
की बात और भी पुष्ट हो जाती है ।

(ज) अन्य विशेषताएँ—गु० में कुछ विशेषताएँ ऐसी हैं जिन्हें सामान्य
पाठक भी दो-एक पृष्ठ पढ़ लेने के पश्चात् सरलता से समझ सकता है ।

१. पहली विशेषता पदों में पंक्तियों के क्रम से संबंधित है । अन्य प्रतियों के
पदों में मिलने वाली प्रथम एक या दो पंक्तियाँ, जिन्हें टेक या ‘ध्रुवक’ कहा
जाता है, गु० में प्रायः दो पंक्तियों के बाद मिलती हैं; उदाहरणतया गु० गउड़ी
५१ में पंक्तियों का क्रम इस प्रकार है—

जोगी कहहि जोगु भल मीठा अवरु न दूजा भाई ।

रंडित मुंडित एकै सबदी एइ कहहि सिधि पाई ॥

हरि बिनु भरमि भुलाने अंधा ।

जापहि जाउं आपु छुटकावनि ते बाधे बहु फंधा ॥ इत्यादि ।

दा० तथा नि० गौड़ी १३३ में इन पंक्तियों का क्रम है—

हरि बिनु भरमि विगूते गंदा ।

जापे जाउं आपनपौ छुड़ावण ते बीधे बहु फंदा ॥ टेका ॥

जोगी कहै जोग सिधि नीकी और न दूजी भाई ॥ इत्यादि ।

बी० ३८ तथा बीभ० ८४ में भी यह पद मिलता है जिसका क्रम दा० नि०
के समान है । ध्रुवक की पंक्ति इसी प्रकार गु० को छोड़ कर प्रायः सभी प्रतियों

में पदों के आरम्भ में ही आती है। 'ग्रन्थ साहब' में ध्रुवक का ऐसा क्रम कबीर की ही वाणी में नहीं, अपितु सभी संतों तथा सिक्ख-गुरुओं की वाणी में मिलता है। अपवाद केवल कहीं-कहीं मिल जाते हैं। ज्ञात होता है, संतों अथवा गुरुओं के पद सिक्ख लोग इसी क्रम में गाया करते थे और गुरु अर्जुनदेव जी ने भी अपने संकलन में उनकी यह परम्परा अक्षुण्ण रखी।

२. दूसरी विशेषता गुरुमुखी लिपि के कारण है। गुरुमुखी में 'य' नहीं होता, अतः 'ग्रन्थ साहब' में 'य' के लिए सर्वत्र 'इअ' का प्रयोग मिलेगा। उदाहरण-तया—गु० 'माइआ' (=माया), 'लाइआ' (=लाया), 'संधिआ' (=संध्या), 'किआ' (=क्या), 'काइआ' (=काया), 'दइआ' (=दया) 'दइआल' (=दयाल), 'गइआ' (=गया), 'बीआपारी' (=व्यापारी), 'रघुराइआ' (=रघुराया), 'इआं' (=या), 'बिआकरना' (=व्याकरना)। गु० में ऐसे रूपों की भरमार है। पंजाब के अतिरिक्त अन्य प्रदेश वालों को 'गुरु ग्रन्थ साहब' पढ़ते समय उसकी यही विशेषता सर्वप्रथम उनका ध्यान आकर्षित करती है।

३. गुरुमुखी में मिलावट के अक्षर नहीं होते, अतः जहाँ केवल आधे अक्षरों की आवश्यकता होती है वहाँ भी वे पूरे लिखे जाते हैं। 'गुरु ग्रन्थ साहब' में ऐसे रूप भी अनेक मिलते हैं। उदाहरणतया 'वसतु' (=वस्तु), 'मसतकि' (=मस्तकि) 'दिसटि' (=दिष्टि), 'भिसति' (=भिस्ति)।

४. 'गुरु ग्रन्थ साहब' में अनुस्वार का प्रयोग मिलता तो है, किन्तु कहीं-कहीं आवश्यक होते हुए भी उसका प्रयोग नहीं किया गया है; उदाहरणतया—गउड़ी ४-२ : 'नही', गउड़ी ५ की आरम्भिक पंक्तियों में : 'कराही', 'माही', 'नाही', 'जाही', 'रचाही', 'नाही', गउड़ी ५१ में : 'कहहि', 'जापहि', 'जाउ', 'बाध', 'जहते' इत्यादि।

पाठ-निर्णय में इन विशेषताओं को भी ध्यान में रखा गया है।

बी०, बीफ० तथा बीभ० प्रतियों का विवरण

बी० प्रति—यह प्रति बनारस में रामपुर के श्री उदयशंकर शास्त्री (आज-कल हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय में ह० लि० ग्रंथ सहायक) के निजी संग्रह में है। यह लगभग ५ इंच लम्बी और ३ इंच चौड़ी है और अपनी लम्बाई में नागराक्षरों में लिखी हुई है। इसमें प्रति पृष्ठ ७ पंक्तियाँ और प्रति पंक्ति लगभग १८ अक्षर आये हैं। पुष्पिका में लिपिकाल आदि का ब्योरा इस प्रकार है—

१९४२ शके १८०७ दसखत साधु मंगलदास के असथान बुरहानपुर फोपड़ा मठ (?) की छावनी ।”

इसमें कबीर की वाणी निम्नलिखित रूप में मिलती है : रमैनी ८४—पत्रा १ से ५१ तक, शब्द (पद) ११५—पत्रा ५१ से १२० तक, ग्यानचौतीसा १, विप्रमतीसी १, कहुरा १२, वसंत १२, चाँचर २, बेलि २०, बिरहुली १, हिंडोला ३, साखी ३५४ ।

इसमें रमैनों का आरम्भ “अंतर जोति सब्द एक नारी, हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी ।” आदि से होता है । प्रति आरंभ से अंत तक एक ही व्यक्ति द्वारा स्पष्ट अक्षरों में लिखी हुई है । जैसा पहले निर्देश किया गया है, इस प्रति का क्रम तथा पाठ आदि का विस्तार स्थूल रूप से श्री विचारदास शास्त्री अथवा हंसदास शास्त्री और महावीरप्रसाद द्वारा सम्पादित बीजकों से मिलता है ।

बीज० प्रति—यह प्रति भी उक्त शास्त्री जी के ही संग्रह की है, जिसमें लगभग १३ इंच लम्बे और ४ इंच चौड़े ८४ पत्रे पुस्तकाकार नथी किये हुए हैं । लिखावट लम्बाई में और सुन्दर नागरी अक्षरों में है । इसमें प्रति पृष्ठ ६ पंक्तियाँ और प्रति पंक्ति लगभग ५० अक्षर आये हैं । बीजक के अंत में पुष्पिका इस प्रकार दी हुई है—

लिखि के समाप्त निज पाणि भीषमदास रहे विश्वनाथपुरी जब सों ।

चित्र के नक्षत्र आश्विन मास चेतन वट में बीजक लिख्यो तब भी ॥

बीज के दशम अंत शशि जो षोडश उदय तिथि मंगलवार है ।

पंथ है अगम जाहि लिखी मैं निमित्त पाठ बीजक सार है ॥

सोरठा : मंगलवार पुनीत संवत चालिस दश भए । पारण पाव सुनीत पंथ अगम है जाहि में ॥१॥
दो० सोम जाहि षोडशउदय, बीज दशम के अंत । सार ग्रंथ बीजक लिखा नाम सो भीषम संत ॥२॥

इससे ज्ञात होता है कि इसे भीषमदास नामक साधु ने संवत् १६५० में आश्विन शुक्ला प्रतिपदा (?) चित्रा नक्षत्र मंगलवार को काशी में स्वपठनार्थ लिख कर समाप्त किया । इसमें वाणियों का क्रम निम्नलिखित है : १. रमैनी ८४ (पत्रा १ से १७ तक), २. शब्द ११३ (पत्रा १७ से ३६ तक), ३. कहुरा १२ (पत्रा ४० से ४३ तक), ४. विप्रमतीसी १ (पत्रा ४४ पर), ५. हिंडोला ३ (पत्रा ४४ से ४५ तक), ६. वसंत १२ (पत्रा ४५ से ४७ तक), ७. चाँचरि २ (पत्रा ४८ पर), ८. चौतीसी (पत्रा ४९ से ५० तक), ९. बेलि २ (पत्रा ५१ पर), १०. बिरहुली १ (पत्रा ५२ पर) ११. साखी ३५४ (पत्रा ५२); इसके पश्चात् ‘लिखते साखी नवीन’ शीर्षक के अंतर्गत ३२५ साखियाँ अतिरिक्त रूप से मिलती हैं ।

बीज० प्रति—यह प्रति मूल बीजक^{११} के नाम से मानसर गढ़ी के आचार्य महंत

११. प्राप्ति-स्थान : श्री १०८ महंत श्री मेथी गुसाईं साहेब, मुकाम मानसर, पो० दाऊदपुर, जिला छपरा (सारन) तथा कबीर प्रेस, सीबाबाग, बड़ौदा ।

श्री मेथी गोसांई साहब के द्वारा सं० १६६४ (सन् १६३७ ई०) में प्रकाशित हुई है। प्रकाशक ने इसकी प्रस्तावना में निवेदन किया है कि यह बीजक का गोसांई भगवान साहब वाला पाठ है जो इसके पूर्व कहीं भी छपा नहीं था। संत लोग इसकी प्रतिलिपि उतार कर पाठ किया करते थे अतः संत-महात्माओं की सुविधा के लिए उन्होंने 'मूल हस्तलिखित प्रत' के अनुसार छपवा कर इसे प्रकाशित किया है। पाठ का मिलान करने पर ज्ञात होता है कि प्रकाशक का यह वक्तव्य अक्षरशः सत्य है। इसीलिए मुद्रित होते हुए भी मूल हस्तलिखित प्रति के रूप में इसका उपयोग किया गया है।

इस पुतक के मूल भाग में कुल २८६ पृष्ठ हैं। इसके अतिरिक्त आरम्भ में संस्कृत के पाँच श्लोक कबीर की वंदना के रूप में और १२ हिन्दी दोहे मानसर मठ की गुरु-प्रणाली के रूप में दिये हुए हैं। इस प्रणालिका के अनुसार वहाँ की गुरु-परम्परा इस प्रकार है: १. नारायण गोसांई, २. अजगैब गोसांई, ३. गोपी साहब, ४. द्वारिका गोसांई, ५. बालमुकुन्द गोसांई, ६. जगदेव गोसांई, ७. मेथी गोसांई।

इस बीजक में कबीर की वाणियों का क्रम निम्नलिखित है: १. रमैनी ८४—पृष्ठ १ से ७८ तक, २. शब्द ११२—पृ० ७९ से १८९ तक, ३. साखी २६७—पृ० २३४ तक, ४. कहरा १२—पृ० २५० तक, ५. बसंत १२—पृ० २६१ तक, ६. बेईली २—पृ० २६४ तक, ७. बिरहुली १—पृ० २६६ तक, ८. चाँचरि २—पृ० २७० तक, ९. हिडोला ३—पृ० २७४ तक, १०. चौंतीसी १—पृ० २८१ तक, ११. विप्रमतीसी १—पृ० २८५ तक, जमाबचन ५२७—पृ० २८६ पर।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इसमें शब्दों तथा साखियों की संख्या अन्य दोनों रूपांतरों से कम है। बी० में रमैनियों का क्रम बी० के समान है।

हम देखते हैं कि बी० में 'जीव रूप एक अंतर बासा' से प्रारम्भ होने वाली रमैनी पहले है जो अन्य बीजकों में दूसरी रमैनी के रूप में मिलती है तथा अन्य बीजकों की पहली रमैनी इसमें दूसरी के रूप में आती है। रमैनियों के इस स्थानान्तरण के सम्बन्ध में कबीरपंथियों में एक किवदंती प्रचलित है। कहा जाता है कि जगूदास और भगूदास नामक दो भाई कबीर साहब के प्रिय शिष्य थे। अपना अंतिम समय निकट आया देख उन्होंने अपनी वाणियों का संग्रह कर कर उक्त दोनों शिष्यों की माता के पास सुरक्षित रख दिया। परन्तु कबीर साहब के तिरोधान के पश्चात् दोनों भाइयों में ग्रन्थ के लिए जब कलह खड़ा हो गया तो उसका निबटारा करने के लिए माता ने इसकी प्रथम दो रमैनियों के क्रम में

उलट-फेर कर इसके दो संस्करण बना दिये और दोनों को एक-एक देकर उन्हें संतुष्ट किया। आगे कबीरपंथियों में दोनों रूपांतर चलते रहे।

यह ध्यान देने की बात है कि जग्गूदास कबीरपंथ की विद्दपुर शाखा (जिला मुजफ्फरपुर, बिहार) के प्रवर्तक माने जाते हैं और भग्गूदास अथवा भगवान साहब वर्तमान घनौती शाखा (जिला छपरा बिहार) के, जिसकी गद्दी पहले लढ़िया ग्राम (जिला चंपारन, बिहार) में थी। इस प्रकार दोनों शाखाओं की प्रधान गद्दियाँ बिहार प्रांत में ही हैं।

रमैनियों में केवल प्रथम दो के क्रम में अंतर मिलता है, किंतु अन्य छंदों के क्रम में परस्पर बहुत अंतर है। उदाहरण के लिए बीभ० में शब्दों का क्रम यथा बी० १३, ५६, ६०, ५, ६, ६२, ७, ६६, २६, ८२, ४८, ४३, ४१, २५, २४ इत्यादि है और साखियों का यथा बी० २३, २२, २७, २६, २४, २५, २८, ३, ७, २, ४ इत्यादि। इसी प्रकार का अंतर अन्य छंदों के संबंध में भी है।

तीनों के विभिन्न क्रमों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बीभ० का क्रम अन्य दोनों रूपांतरों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक तथा प्रसंगानुकूल है। यह निम्नलिखित विवरण से ज्ञात हो जायगा—

बीभ० के आरंभिक छः शब्दों (= पदों) में माया का वर्णन है, सातवें से बीसवें शब्द तक आध्यात्मिक अनुभवों का वर्णन है—७ वें में सहज ज्ञान का, ८, ९, १० तथा ११ वें में अनहद नाद का, १२, १३ तथा १४ वें में परमतत्व का तथा १५ वें से २० वें तक उल्टवाँसियों में अद्भुत ज्ञान का वर्णन है। बीसवें शब्द के पश्चात् २१ वें से २७ वें शब्द तक हिंदू-मुस्लिम धर्मों की भ्रमात्मक धारणाओं (अवतारवाद तथा बाह्याचार आदि) का खंडन है। आगे के तीन शब्दों में जुलाहों के क्रिया-कलाप का आधार लेकर दिव्य आध्यात्मिक उपदेश दिये गये हैं। ३१ वें से ३६ वें तक उल्टवाँसी या विपर्यय के पद हैं जिनमें से कुछ में माया-मोह की प्रचंडता का वर्णन है और कुछ अन्य में आध्यात्मिक अहेर का। ४१ वें से ५२ वें तक बारह शब्दों में भक्ति की अनुपम मदिरा, उसकी खुमारी, परम पद, अथवा परमतत्व की महिमा और राम नाम की महिमा का वर्णन है। आगे के पाँच पदों में भ्रम का (विशेषतया ब्राह्मणों का, जैसे ऊँची कयनी नीची करनी, छुआछूत, जीवहिंसा, प्रेत-पूजा आदि का) खण्डन है। आगे ६२ वें से ८१ वें तक के बीस पदों में काल का वर्णन है, जिसकी ज्वाला में सारा संसार जल रहा है और जिससे बचने का एक मात्र अस्त्र राम नाम बताया गया है। संख्या ८२ से ९६ तक के शब्दों में परमात्मा अथवा ब्रह्म के

संबंध में प्रचलित लौकिक-वैदिक सारे भ्रमात्मक सिद्धांतों का निराकरण कर संत मत द्वारा उपस्थापित सूक्ष्म निरंजन तत्व का निर्देश किया गया है। इसके पश्चात् १११ वें शब्द तक नश्वर जगत् के पीछे पागल बने रहने वालों के लिए चेतावनी के रूप में उपदेश हैं और अंतिम अर्थात् ११२ वें पद में निर्मायिक ज्ञान का वर्णन है।

बी० अथवा बीफ० में विषय के अनुसार क्रम नहीं मिलता, उनमें अक्षरक्रम की ओर अधिक भुकाव समझ पड़ता है। उनमें आरंभ के बारह पदों में प्रत्येक के आदि में 'संतो' शब्द आता है, १३वें से २१ वें तक प्रत्येक के आदि में 'राम' या 'रामुरा' आता है। इसी प्रकार २२ से २५ पर्यंत 'अवधू', २६ से ३० तक 'भाई रे', ३१ से ३६ तक 'हंसा' अथवा 'है' (हकारादि), ४० से ४८ तक 'पंडित' या 'पांडे' और ४९ से ५३ तक 'बुझ बुझ' आता है। इसी प्रकार की प्रवृत्ति अन्य शब्दों के संबंध में भी परिलक्षित होती है—अपवाद केवल नौ शब्दों के संबंध में ही है।

अक्षरक्रम के साथ बी० अथवा बीफ० में विषयक्रम का भी निर्वाह नहीं मिलता, यह एक ही उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। 'भाई रे' से प्रारंभ होने वाले पाँच पदों में (अर्थात् २७ से ३० तक) पाँच विभिन्न विचारधाराओं का विवेचन मिलता है। छब्बीसवें पद में राम नाम को मूल तत्व और आसन, प्राणायाम, योग, श्रुति-स्मृति, ज्योतिष आदि को पाखंड बताया गया है। अगले पद में ब्रह्म रूपी विलक्षण तत्व का वर्णन है, उसके पश्चात् २८ वें में माया रूपी गाय का, २९ वें में जगत् के प्रपंचों का त्याग कर ब्रह्मानन्द में लीन होने का वर्णन है और ३८ वें में हिंदू-मुसलमानों का ऊपरी मतवैभिन्य निरर्थक बताया गया है—अर्थात् अल्लाह—राम, करीम-केशव, हिंदू-तुर्क, मौलवी-पांडे आदि वस्तुतः एक ही हैं, इनमें कोई भेद-भाव न होना चाहिए।

साखियों के क्रम में भी पारस्परिक भिन्नता मिलती है, किंतु उसके संबंध में दोनों की कोई विशिष्ट प्रवृत्ति स्पष्ट नहीं होती।

बीफ० के क्रम की स्वाभाविकता देखते हुए अनुमान लगाया जा सकता है कि यह रूपांतर अन्य दोनों की अपेक्षा कदाचित् प्राचीनतर भी है। कुछ बातें ऐसी और भी मिलती हैं जिनसे इस निर्णय की पुष्टि होती है। बी० तथा बीफ० में कुछ साखियाँ ऐसी मिलती हैं जिनकी प्रचीनता के संबंध में निम्नलिखित कारणों से संदेह उत्पन्न होता है; उदाहरणतया—

१—बी० साखी ३४६-४८ इस प्रकार हैं—

ब्रह्मा पूछे जननि सों, कर जोरी सीस नवाय ।
 कवन बरन वह पुरुष है, माता कहु समुझाय ॥
 रेल रूप वै है नहीं, अघर घरी नहिं देह ।
 गगन मंदिल के मध्य में, निरखो पुरुष विदेह ॥
 धरे ध्यान गगन के मांहीं, लाए बज्र किवांर ।
 देखि प्रतीमा आपनी, तीनिउं भए निहाल ॥

जिन्होंने 'अनुरागसागर', 'ज्ञानसागर', 'अंबुसागर', 'स्वसंवेदबोध', 'निरंजनबोध', आदि कबीरपंथी ग्रन्थों का अध्ययन किया है, उन्हें ज्ञात होगा कि इन साखियों का सीधा संबंध सृष्टि-प्रक्रिया के वर्णन से है। उसके अनुसार सत्य पुरुष ने सृष्टि-रचना के लिए अपने मानस पुत्र निरंजन को आद्या नामक अष्टांगी कुमारी दी थी जिससे ब्रह्मा, विष्णु, महेश नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुए। पुत्र उत्पन्न कर निरंजन आद्या को अकेली छोड़ मुक्तवास करने लगा। तीनों पुत्र जब सयाने हो गये तो माता से उन्होंने अपने पिता के संबंध में जिज्ञासा प्रकट की। यह साखियाँ उसी प्रसंग की हैं, जिनमें क्रमशः ब्रह्मा की जिज्ञासा, आद्या द्वारा उनका समाधान, और फिर तीनों के द्वारा उनके विलक्षण रूप का दर्शन किया जाना बताया गया है। परवर्ती कबीरपंथ में प्रचलित उक्त सभी सिद्धांत कबीर साहब को भी मान्य थे, ऐसा मानने के लिए हमारे पास कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं है। सृष्टि-रचना के इन कबीरपंथी आख्यानो के निर्माण में वस्तुतः कबीर का उतना प्रभाव भी नहीं जितना बिहार-उड़ीसा आदि में प्रचलित धर्म-संप्रदाय तथा निरंजनी संप्रदाय का है, जिसके विस्तार में जाने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं ज्ञात होती।

ऐसा जान पड़ता है कि उक्त साखियाँ बी० तथा बीफ० में किसी कबीरपंथी द्वारा बाद में प्रक्षिप्त हुईं। बीभ० में यह साखियाँ नहीं मिलती, अतः वह स्पष्ट ही अन्य दोनों रूपांतरों से प्राचीनतर है।

२. बी० तथा बीफ० की साखी १६२ का पाठ ग्यारहवीं रमैनी की समापक साखी से शब्दशः मिलता है। बीभ० में उक्त साखी केवल रमैनी में ही मिलती है, साखी-प्रकरण में नहीं। अतः यह कहा जा सकता है कि बी० तथा बीफ० के साखी-प्रकरण में यह पंक्तियाँ बाद में किसी व्यक्ति द्वारा जोड़ दी गयीं और इस प्रकार उक्त दोनों रूपांतर, जिनमें यह अनावश्यक आवृत्ति मिलती है, बीभ० की अपेक्षा—जो उक्त दोष से मुक्त है—बाद के ज्ञात होते हैं।

३. बी० तथा बीफ० की साखी २७६ की द्वितीय पंक्ति साखी ३२७ में

दुहराई हुई मिलती है; तुलनीय—

सा० २७६ : जहां गाहक तहां हों नहीं, हों तहां गाहक नाहि ।

बिनु बिबेक भटकत फिरै, पकड़ि शब्द की छाहें ॥

तथा सा० ३२७ : गृह तजि के जोगी भये, जोगी के गृह नाहि ।

बिनु बिबेक भटकत फिरै, पकड़ि शब्द की छाहें ॥

बीभ० में यह अनावश्यक पुनरावृत्ति नहीं मिलती क्योंकि उसमें दूसरी साखी आयी ही नहीं है । इससे भी उसकी प्राचीनता सिद्ध होती है ।

४. इसी प्रकार बी० की ३१२ तथा ३१७ संख्यक साखियों की भी पुनरावृत्ति खटकती है और बीभ० में उक्त दोनों ही साखियाँ नहीं मिलतीं ।

५. इसके अतिरिक्त बीभ० का आकार भी अन्य दोनों से छोटा है । इसमें शब्दों की संख्या ११२ है जब कि बीफ० में उनकी संख्या ११३ और बी० में ११५ है । साखियों की संख्या बीभ० में केवल २६७ है (शास्त्री जी के संग्रह की एक प्रति में तो साखियों की संख्या केवल २४८ है), जब कि बी० में उनकी संख्या ३५४ और बीफ० में ३८४ है । यही नहीं, बीफ० की किसी-किसी प्रति में ३२५ साखियाँ अतिरिक्त रूप से जोड़ी हुई भी मिलती हैं ।

किंतु बीजक का प्राचीनतम रूपांतर भी कबीर के जीवनकाल में नहीं, प्रत्युत उनके बहुत समय पश्चात् संकलित हुआ, यह निम्नलिखित तर्कों के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है—

क—बी० शब्द ६० (बीभ० ८८) की अंतिम दो पंक्तियों का पाठ है—

हिंदू कहैं हमहि ले जारब, तुरुक कहैं हमारो पीर ।

दोऊ आय दीन महं भगरैं, ठाढ़े देखाहि हंस कबीर ॥

इन पंक्तियों से बीजक के संबंध में एक नवीन समस्या खड़ी हो जाती है जिसकी ओर अभी तक विद्वानों का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ था । कहानी प्रसिद्ध है कि कबीर साहब की मृत्यु के पश्चात् उनके शव के लिए हिंदू-मुसलमानों में परस्पर विवाद खड़ा हुआ था, किंतु अंत में चादर उठा कर देखने पर शव अदृश्य हो गया था, उनके स्थान पर बच रहे थे केवल फूल जिन्हें आघा-आघा बाँट कर दोनों दल वालों ने उनकी अंत्येष्टि क्रिया की । स्पष्ट है कि इन पंक्तियों का संबंध उक्त प्रसिद्धि से है । अतः यह मानना पड़ेगा कि उक्त पंक्तियाँ कबीर के निधन के पश्चात् प्रचलित कहानी के आधार पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बीजक में जोड़ दी गयी हैं । बीजक के सभी रूपांतरों में इन पंक्तियों के मिलने से यह भी कहा जा सकता है कि मूल बीजक का संकलन कबीर की मृत्यु के पश्चात् ऐसे

समय हुआ जब कि उक्त प्रवाद खूब जोर पकड़ चुका था।

ख, ग—इस संबंध में दो अन्य उल्लेख भी विचारणीय हैं जिनकी ओर श्री परशुराम चतुर्वेदी^{१२} ने भी संकेत किया है। इनमें से एक उल्लेख पीपा के के संबंध में है जो बी० शब्द ८६ (बीभ० ३८) की पंक्ति ६४ १० में इस प्रकार मिलता है—

ब्रह्मा वरुण कुबेर पुरंदर पीपा श्री प्रह्लादा ।

हिरनाकुस नख बोध बिदारे तिनहूँ को काल न राखा ॥

अब तक 'पीपा' नाम से प्रसिद्ध एक ही संत का पता है जिनकी वाणियों में कबीर का नाम अत्यन्त श्रद्धापूर्वक लिया गया है जिससे यह भी ज्ञात होता है कि कबीर साहब कदाचित् उनसे कुछ पहले ही हो चुके थे। पीपा के एक पद की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

जो कलि मांभ कबीर न होते ।

हमसे पतित कहा कहि रहते कौन प्रतोत मन धरते ।

नाना बानी देखि सुनि खवना वही मारग अणसरते ।

भगति प्रताप राख्यबे कारन निज जन आप पठाय ।

नाम कबीर सांच परकास्या तहां पीपै कछु पाया ॥

('संत कबीर' की प्रस्तावना में पृ० ४४ पर डॉ० रामकुमार वर्मा द्वारा उद्धृत)

यदि बीजक में उल्लिखित पीपा वही हैं जिनकी वाणी ऊपर उद्धृत की गयी है तो बीजक की प्राचीनता पर स्वाभाविक रूप से संदेह किया जा सकता है।

इसी प्रकार दूसरा उल्लेख बीजक की ६९ वीं रमैनी की पाँचवीं पंक्ति में 'बंदूक' शब्द के संबंध में है, यथा—

नारद कब बंदूक चलाया । ब्यासदेव कब बंभ बजाया ॥

'बंदूक' पाठ बीजक की सभी प्रतियों में मिलता है। एक विद्वान् का मत है कि 'बंदूक' का पता उत्तरी भारत में कबीर के समय तक नहीं माना जा सकता।^{१३}

घ—इसी प्रसंग में बीजक की उन पंक्तियों की ओर भी निर्देश किया जा सकता है जो अन्यत्र दूसरे संतों की रचनाओं के रूप में भी मिलती हैं, उदाहरणतया—

१२. दे० कबीर-साहित्य की परख, भारती भंडार, पृ० ८२ तथा उसी ग्रंथ की प्रस्तावना, पृ० ४।

१३. दे० हाफिज मुहम्मद खाँ शीरानी का मत (कबीर-साहित्य की परख, पृ० ८२ पर उद्धृत)।

१-बीजक का दसवाँ पद—‘संतो राह दुनौ हम दीठा’ इत्यादि—कुछ शाब्दिक अंतरों के साथ बखना (दादूपंथी) के नाम से भी मिलता है ।^{१४}

२-बीजक की साखी २५२ (बीभ० २३६)—

रही एक की भई अनेक की, बिस्वा बहुत भतारी ।

कहहि कबीर काके संग जरिहै, बहु पुरुषन की नारी ॥

बखना के पद ३२ की पंक्ति १७, १८ से भी तुलनीय है जिनका पाठ है—

एक की नहीं घरां की हई, दीसै बहु भरतारी ।

बखना कहै कौण संगि बलसी, घरा पुरखां की नारी ॥^{१५}

बखना दादू के देहावसान के समय (सं० १६६० वि०) जीवित थे, यह उनके ‘बीछड़ियां राम सनेहो रे’ इत्यादि पद^{१६} से सिद्ध होता है जिसे उन्होंने दादू के वियोग में गाया था ।

३-बी० शब्द १४ (बीभ० १०६)—‘रामुरा संसय गांठि न छूटै’ इत्यादि—की अंतिम चार पंक्तियों को छोड़ कर शेष सभी रैदास के भी एक पद में मिल जाती हैं ।^{१७}

४-बी० शब्द २० (बीभ० ४७)—‘कोई रसिक राम रस पीयहुगे’ इत्यादि संत-साहित्य के ह० लि० ग्रन्थों में स्वामी सुखानंद के नाम से मिलता है ।^{१८}

५-बी० शब्द ७६ (बीभ० ४०)—‘आपुनपौ आपू ही विसरो’ इत्यादि सूरदास (सं० १५३५-१६३८ वि० ?) के नाम से भी मिलता है ।^{१९}

६-बीजक की ‘विप्रमतीसी’ अन्यत्र^{२०} परशुराम की रचना के रूप में मिलती है—उल्लेखनीय अंतर केवल चार पंक्तियों के संबंध में है । खोज-रिपोर्टों से परशुराम नाम के कई रचनाकारों का पता चलता है । ‘रामसागर’—जिसमें ‘विप्रमतीसी’ मिलती है—के रचयिता निम्बार्क-संप्रदाय के आचार्य श्रीभट्ट और हरिव्यास के शिष्य बताये गये हैं^{२१} जो सं० १६६० वि० के लगभग वर्तमान थे ।

७-बीजक के प्रथम ‘कहरा’ (बीभ० के ८ वें) की केवल कुछ को छोड़ कर शेष सभी पक्तियाँ डॉ० माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित ‘महरी बाईसी’,^{२२}

१४. बखना जी की बाणी, संपा० मंगलदास जी स्वामी, जयपुर, दे० पद ६०, पृ० ८९-९० ।

१५. वही, पृ० ७८ । १६. वही, पद १२८, पृ० १४३-४४ । १७. श्री गुरु ग्रंथ साहब, पृ० ९७३ (सर्व हिंदू सिक्ख मिशन संस्क०) तथा निरंजनी संप्रदाय की ह० लि० पोथी (स्थान : ना० प्र० स०, संख्या ८७३, लि० का० सं० १५६ वि०), पत्रा ३४५, पद संख्या १३ । १८. दे० वही, पत्रा ५४४ । १९. सूरसागर, ना० प्र० स०, पद ३६९ (प्र० खंड, पृ० १२२-२३) । २०. दे० परशुराम देव कृत ‘रामसागर’ की ह० लि० प्रति (ना० प्र० स०), पत्रा ४२ तथा ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ४५, अंक ४, माघ १९९७ में डॉ० बड़वाल द्वारा उद्धृत ‘विप्रमतीसी’ । २१. श्री परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संतपरम्परा, पृ० ५१८ तथा निम्बार्क माधुरी, पृ० ६९ । २२. जम्पसी-ग्रंथावली,

जिसके रचयिता मलिक मुहम्मद जायसी समझे जाते हैं, के छंद ४, ६, ७, ८ तथा १५ में विखरी हुई मिल जाती हैं

८-श्री० वसंत १ (बीभ० ३) रज्जबदास द्वारा संकलित 'सर्वगी' २३ में मुकुंद जी के नाम से भी मिलता है।

९-श्री० साखी १६६ (बीभ० १७०) तथा २११ (बीभ० २०२) अन्यत्र २४ संत दादूदयाल (मृ० सं० १६६० वि०) की रचना के रूप में मिलती हैं।

ऊपर जिन पक्तियों की ओर संकेत किया गया उनके संबंध में दो प्रकार के अनुमान लगाये जा सकते हैं : एक तो यह कि वे मूलतया कबीरकृत ही हों और आगे चलकर अन्य कवियों अथवा उनकी रचनाओं के प्रतिलिपिकारों द्वारा अपनी रचनाओं अथवा पोथियों में ग्रहण कर ली गयी हों अथवा यह भी संभव है कि वे मूलतया दूसरों की ही रचनाएँ रही हों और बीजक के मूल संकलनकर्ता द्वारा अथवा उसके परवर्ती लिपिकारों द्वारा कबीर की रचना के रूप में ग्रहण कर ली गयी हों। दोनों पक्ष समान रूप से मान्य कहे जा सकते हैं और इस विवाद का अंतिम निर्णय तब तक नहीं हो सकता जब तक कि उपर्युक्त सभी संतों अथवा कवियों की रचनाओं का प्रामाणिक संपादन नहीं हो जाता। उक्त विवाद के उत्तर पक्ष के आधार पर बखना की रचना बीजक में मिल जाने से डॉ० बड़थवाल ने यह अनुमान लगाया है कि बीजक का संकलन सं० १६६० वि० (दादू की मृत्यु) के पश्चात् हुआ होगा।^{२५} यद्यपि यह तर्क सर्वथा मान्य नहीं कहा जा सकता, किंतु उसे सर्वथा अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। डॉ० बड़थवाल के अनुमान की पुष्टि दादू, सूर, परशुराम आदि की रचनाएँ बीजक में मिल से भी होती है। उक्त संतों का आविर्भाव भी लगभग उसी समय कुछ वर्षों के आगे-पीछे माना जाता है।

संत-संप्रदायों में प्रचलित अनुश्रुतियाँ

महर्षि शिवब्रतलाल ने, कदाचित् जनश्रुति के आधार पर, लिखा है कि भगवान गोसाँई कबीर साहब के भ्रमण-काल में सदा उनके साथ रहा करते थे और उनके भजन आदि लिखते जाते थे। अंत में उन्होंने कबीर साहब के लगभग छः सौ वचन साखियों आदि के रूप में तरतीब देकर अपने लिए उनका एक गुटका भी बना लिया। उक्त लेखक के अनुसार वर्तमान बीजक-ग्रन्थ का मूलधार भगवान

हिंदुस्तानी एकेडेमी, पृ० ७१२-१५, ७१८। २३. श्री दादू महाविद्यालय, जयपुर की ह० लि० प्रति, लि० का० सं० १८४१, पत्रा २६९। २४. दादूदयाल जी की वासी, स्वामी मंगलदास संपादित, दे० कमशः साखी २५-२५ तथा ३४-१२। २५. दि निगुन स्कूल ऑफ हिंदी पोयट्री, बनारस, पृ० २७४।

साहब का यही गुटका था। उन्होंने आगे चल कर यह भी बताया है कि वे बांधवगढ़ गये थे जहाँ धर्मदास ने उनसे यह गुटका ले लेने का प्रयत्न किया था, किंतु भगवान साहब उसे लेकर बिहार प्रांत में चले गये और वहीं किसी स्थान पर कबीरपंथ की भगताही शाखा का प्रवर्तन कर अपने उसी गुटके को पंथ के धर्मग्रन्थ के रूप में मान्यता प्रदान की।

उक्त कथन में यद्यपि भगवान गोसाँई और कबीर साहब के समकालीन होने की बात विश्वसनीय नहीं जान पड़ती, किन्तु बीजक के मूल संकलयिता भगवान साहब ही थे—इस कथन में पर्याप्त सत्यता जान पड़ती है। पीछे हमने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि बीजक का संकलन कदाचित् कबीर के जीवनकाल में नहीं हुआ था और साथ ही यह भी दिखलाने का प्रयास किया है कि इस समय प्रचलित बीजक के सभी रूपांतरों में भगताही शाखा का रूपांतर ही प्राचीनतम सिद्ध होता है। आगे अंतःसाक्ष्य के ही आधार पर कुछ ऐसे प्रमाण उपस्थित किये जा रहे हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उसका संकलन सर्वप्रथम काशी के पूर्व, संभवतः बिहार प्रांत में ही, कहीं हुआ था।

बीजक के सभी रूपांतरों में भाषा की दृष्टि से पूर्वी प्रयोगों के उदाहरण अत्यधिक संख्या में मिलते हैं। लकारांत क्रियाएँ तथा विशेषण, जो पूर्वी भाषाओं में प्रमुख रूप से मिलते हैं, बीजक में भी पर्याप्त रूप से मिलेंगे, उदाहरणतया—

रमैनी—१ : बसावल, रचल; २ : पूछल; ५ : फैल गयल, बांधल, बूड़ गइल; १४ : लागल; १८ : अनबेधल हीरा; २३ : नियरायल आई; २६ : कर्म क बांधल; ४२ : जब हम रहल... रहल सब कोई, हमरे कहल; ४७ : रहल, गयल; ५५ : साजल, देखल; ७४ : भरम क बांधल; मांडल, बंधल; ८२ : परिल।

शब्द—६ : धइल रहल; ३२ : भूलल, कैलिन, मानल; ५०-५१ : मरलि, बांधलि; ६२ : रखलीं, परलीं, रचल, बिछावल, सुतिलिउं, भेटल, छूटल, गहिलीं; ६३ : फूलल, गांयल, निरासल; १०८ : भयल, पूरबल, चलि अइलीं, कइल।

कहरा—११ : निंदले, रहलि, मुअल; बेलि : जागलि, भागलि, गयल बिगोय, दिहल, रहल, इत्यादि।

इन शब्दों का प्रचलन काशी के आसपास के प्रदेशों में भी माना जा सकता है, जहाँ पर कबीर ने अधिकांश जीवन व्यतीत किया था। किंतु बीजक में कुछ प्रयोग ऐसे भी मिलते हैं जिनका प्रचलन काशी से पूर्व बिहार प्रांत में ही मिलता है; उदाहरणतया—कहइत भयल (=कहते हुए हो गया; रमैनी १४ तथा ५०),

‘होखे’ (बीभ० शब्द ५६-१४), ‘जकरा’ (बीभ० कहरा ६), ‘तोहरा को’ (=तुम्हें, बी० शब्द ४६, बीभ० ५८), ‘अछलों’ (=था), तजलों (=तज दिया, बी० १०८ बीभ० ४८), ‘तोहरा’ (बी०.वसंत ११), ‘राउर’, ‘जतइत’, ‘कोदइत’ (बी० कहरा २, बीभ० ८), ‘गहेछुवा’, ‘गिरदान’ आदि ऐसे शब्द हैं जो बलिया के भी पूर्व छपरा आदि के आसपास तक बोले जाते हैं।

विहार प्रांत में सखियाँ परस्पर वार्तालाप में 'गे' (=संबोधन सूचक 'हे' या 'हो') का प्रयोग करती हैं। वीजक के एक 'कहरा' में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में मिलता है; जैसे—नन्दी गे, संसारा गे, हमारा गे, इत्यादि।

इस प्रकार के प्रयोग, जो बीजक में साँस की तरह समाये हुए हैं, इस बात की ओर संकेत करते हैं कि उसका संग्रह ही सर्वप्रथम कदाचित् बिहार प्रांत में किसी स्थान पर तैयार किया गया। बीजक में प्रयुक्त कुछ छंद भी—जैसे, बेलि, बिरहुली, चाँचरि—पूर्वीय लोक-गीतों के जान पड़ते हैं। श्री राहुल सांकृत्यायन ने बतलाया है कि एक लय विशेष में गाये जाने वाले भोजपुरी बिरहे हजारीबाग की ओर 'चाँचर' के नाम से पुकारे जाते हैं।^{२४} 'बिरहुली' भी 'बिरहा' शब्द से ही व्युत्पन्न ज्ञात होता है और बीजक की 'बिरहुली' की शब्द-योजना से ज्ञात होता है कि वह भी पूर्वीय प्रदेशों में प्रचलित लोक-गीतों का ही कोई छंद है। डॉ० सुभद्र भा ने तो कुछ अन्य तर्कों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कबीर का जन्म ही वस्तुतः मिथिला में हुआ था और वहीं उन्होंने अपना आरंभिक जीवन भी व्यतीत किया था।^{२५} किंतु उनके तर्क मान्य नहीं ज्ञात होते।^{२६}

शिवव्रतलाल जो का यह कथन कि बीजक के मूल संकलनकर्ता भगवान साहब थे, कुछ अन्य प्रमाणों के आधार पर भी ठीक जँचता है। प्रसिद्ध है कि भगवान साहब पहले निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित हुए थे और कबीरपंथ के प्रभाव में वे बाद में आये। यह बात भगताही संतों को भी मान्य है जो धर्नाती मठ के 'मूल बीजक' में उद्धृत 'गुरुप्रणाली' के निम्नलिखित दोहे से सिद्ध है—

निमानंद आचार्य के, अतुजार्ई परबीन ।

गोस्वामी भगवान् थे, पथ परदर्शक भीन ॥११॥

कहा जाता है कि भगताही शाखा के अधिकांश संत अब भी निम्बार्क संप्रदाय

२४. दोहाकोश, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, भूमिका, पृ० ६४। २५. जर्नल ऑफ दि यूनियर्सिटी ऑफ बिहार, भाग ३, नवंबर १९४६ में 'संत कबीर की जन्मभूमि' शीर्षक निबंध।

२६. 'समेलन-पत्रिका, भा० ४३ संख्या ४ में 'कबीर की जन्मभूमि मिथिला : एक समाधान'।

के भेषादि धारण करते हैं।^{२०} पीछे हमने देखा कि बीजक की 'विप्रमतीसी' निम्बार्क-संप्रदाय के अनुयायी परशुराम देव कृत 'रामसागर' नामक ग्रन्थ में भी मिलती है। 'विप्रमतीसी' का मूल रचयिता चाहे जो हो, किंतु एक और बीजक में और दूसरी ओर परशुरामकृत 'रामसागर' में एक ही प्रकार की रचना मिल जाने से निम्बार्क-संप्रदाय तथा कबीरपंथ के पारस्परिक आदान-प्रदान का स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है। भगवान साहब को दोनों के बीच की शृंखला मान लेने में कोई कठिनाई नहीं जान पड़ती।

उक्त भगवान साहब के प्रति एक अप्रत्यक्ष संकेत 'अनुराग सागर' नामक एक कबीरपंथी ग्रन्थ में भी मिलता है जहाँ उन्हें 'तिमिर दूत' कहा गया है। इस संबंध में उक्त ग्रन्थ का निम्नलिखित स्थल द्रष्टव्य है जिसमें कबीर साहब धर्मदास से भविष्यवाणी के रूप में कहते हैं—

तिमिर दूत दूजा चलि आवै । जाति अहीरा नफर कहवै ।

बहुतक ग्रंथ तुम्हार चुरैहै । आपन पंथ बिहार चलैहै ॥^{२८}

(पाठां० 'नियार') ।

भगवान साहब के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वे जाति के अहीर थे और मूलतः पिठौराबाद के निवासी थे। पिठौराबाद को डॉ० के ने^{२१} जिला बुंदेलखंड में बताया है, किंतु धनौती बीजक के मंगलाचरण में उसे अलवर राज्य के अंतर्गत बताया गया है। बीजक में 'हता' (=हि० था : बी० साखी १-१, बीभ० १५-१) 'मौरसी' (=हि० बौरगा, बी० सा० ५६-१, बीभ० ३२-१) 'दुहेलड़ा' (=हि० दुहेला, बी० सा० १४८-२, बीभ० १५४-२) तथा 'कधी' (=कभी भी, बी० सा० २०२-१) आदि प्रयोगों से भगवान साहब और बीजक के संबंध पर और भी प्रकाश पड़ता है। 'अनुराग सागर' में उन्हें ग्रन्थ-चोर कहा गया है, किंतु सांप्रदायिक ग्रन्थों में ईर्ष्यावश अपने प्रतिद्वंद्वियों पर इसी प्रकार छींटा उछालने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। हम यह देखते हैं कि कबीरपंथी साहित्य में भगवान साहब की चर्चा जहाँ-जहाँ मिलती है, वहाँ-वहाँ उनका संबंध 'ग्रंथ' से अवश्य जोड़ा गया है। इससे ज्ञात होता है कि कबीर साहब की वारिणियों के मूल ग्रन्थ पर वस्तुतः उन्हीं का अधिकार था। संभवतः इसीलिए वे अन्य कबीरपंथी महंथों की ईर्ष्या के पात्र बने। वास्तव में भगवान साहब ग्रन्थ के

२०. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० २७४।

२८. अनुराग सागर, बेलवेडियर प्रेस, पृ० ११, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ० १२०, सीयाबाग, पृ० ७६।

२१. कबीर एण्ड हिज फ़ॉलोवर्स, पृ० १०५।

अपहरणकर्ता नहीं, प्रत्युत उसके संरक्षक ज्ञात होते हैं; क्योंकि पहले हमने यह देख लिया है कि उनके द्वारा प्रवर्तित भगताही शाखा में मान्य बीजक की परंपरा जितनी प्राचीन ठहरती है उतनी न धर्मदास द्वारा प्रवर्तित छत्तीसगढ़ी शाखा के बीजक की और न मुरतिगोपाल द्वारा प्रवर्तित कबीरचौरा शाखा के ही बीजक की।

भगवान साहब कब हुए थे, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। संत-संप्रदायों में प्रचलित परंपरा के अनुसार वे कबीर साहब के समकालीन माने जाते हैं। डॉ० के का अनुमान है कि भगवान गोसाँई सन् १६०० ई० (सं० १६५७ वि०) के लगभग हुए थे।^{३०} धनोती मठ से प्रकाशित 'मूल बीजक' में वहाँ के गद्दीधारियों की जो परंपरा उद्धृत की गयी है उससे डॉ० के की तालिका में यद्यपि अंतर मिलता है, किंतु दोनों की पीढ़ियों की संख्या लगभग समान है। डॉ० के ने प्रत्येक गद्दीधारी का औसत कार्यकाल २५ वर्ष मान कर भगवान साहब के समय का अनुमान लगाया है। डॉ० के की सूची के अनुसार बनवारी गोसाँई भगवान साहब के पौत्र शिष्य अर्थात् तीसरी पीढ़ी के सिद्ध होते हैं और बीजक की तालिका के अनुसार वे कोकिल गोसाँई के समकालीन अर्थात् पाँचवीं पीढ़ी में पड़ते हैं। एक मंहंथ का कार्यकाल यदि स्थूल रूप से २५ वर्ष का माना जाय तो के साहब की तालिका के अनुसार भगवान साहब सं० १७०० वि० के लगभग और दूसरी तालिका के अनुसार वे सं० १६५० वि० के लगभग वर्तमान सिद्ध होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ० के ने जिस तालिका का आधार लिया था वह यद्यपि भ्रमपूर्ण है, किंतु भगवान साहब के संबंध में उन्होंने जो अनुमान लगाया है वह अन्य तालिका से भी संभव सिद्ध होता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि बीजक के मूल रूपांतर का संकलन भी अनुमानतः सं० १६५० वि० के पश्चात् विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अर्थात् कबीर साहब के देहांत के लगभग सौ वर्ष बाद हुआ होगा। बीजक में मिलने वाले अत्यधिक मैथिली पुट से यह अनुमान लगाना भी असंगत न होगा कि यद्यपि बीजक का मूल गुटका भगवान गोसाँई ने ही तैयार किया होगा, किंतु उसको अंतिम रूप देने में उनके शिष्य धनश्याम आदि का भी हाथ कम न रहा होगा; क्योंकि 'मूल बीजक' की गुरु-प्रणाली में बताया गया है कि भगवान साहब पिठौराबाद में रहते थे—तिरहुत में उनकी गद्दी की स्थापना उनके उक्त शिष्य द्वारा ही हुई।^{३१}

३०. वही, पृ० १०६। ३१. दे० मूलबीजक, धनोती की 'गुरु-प्रणाली', पृ० ४६ पर दोहा ४५-४६—
 प्रथम पिठौराबाद में, गोस्वामी भगवान। धनश्याम ताके भए, शिष्य सु ग्यान निधान ॥
 गुरु से अज्ञा पाइके, तिरहुत देश मकार। नाम खेमसर ग्राम को, कियो हान विस्तार ॥

बीजक के एक लघुतर रूपांतर की चर्चा पहल की जा चुकी है जिसकी एक प्रति श्री उदयशंकर शास्त्री के पास है और जिसमें साखियों की संख्या केवल २४८ है, जब कि अन्य रूपांतरों में उसकी संख्या ३८४ तक पहुँच चुकी है। मेरा अनुमान है कि भगवान साहब द्वारा संकलित मूल बीजक का परिमाण और भी छोटा रहा होगा और उसमें साखियों की संख्या २०० से अधिक न रही होगी। इसी प्रकार शब्दों की संख्या भी ११२ या ११५ न होकर और भी कम—संभवतः १०० के लगभग—रही होगी। बिहार प्रांत की कबीरपंथी गदियों में यदि खोज की जाय तो ऐसी ही किसी प्राचीन बीजक प्रति का मिल जाना असंभव नहीं माना जा सकता।

बी० बीफ० तथा बीभ० की अन्य सामान्य विशेषताएँ

उर्दू मूल की विकृतियाँ—बीजक में कई विकृतियाँ ऐसी मिलती हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि कदाचित् उसका कोई पूर्वज फ़ारसी लिपि में था। इस संबंध में निम्नलिखित उदाहरण विचारणीय हैं—

१. बी० बीफ० तथा बीभ० की ६५ वीं रमैनी में छठी पंक्ति का पाठ है : हरि उतंग तुम जाति पतंगा। जमघर (बीभ० जम के घर) कियहु जीव को संग। दा० नि० दुपदी रमैनी के दूसरे पद की दूसरी पंक्ति में इसका पाठ है : हरि उतंग मैं जाति पतंगा। जंबुक केहरि के ज्यू संग। दा० नि० के पाठ का स्पष्ट अर्थ होगा : परमात्मा बहुत ऊँचा (= श्रेष्ठ, उत्तुंग) है और मैं (जीव) कीड़े-मकोड़ों की जाति का हूँ, अर्थात् अत्यन्त तुच्छ हूँ—जैसे सिंह के साथ गीदड़। बी० के 'जमघर' पाठ से कोई सन्तोषप्रद अर्थ नहीं निकलता। 'जमघर' (= यमपुरी या नर्क) का यहाँ कोई प्रसंग ही नहीं। स्पष्ट ही बीजक का पाठ यहाँ विकृत है। सभी संभावनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि ऐसी विकृति केवल फ़ारसी लिपि में ही हो सकती है। उर्दू 'जम्बुक केहरि' में 'वे' के नीचे का नुक्ता उड़ जाने से 'जम्बुक' को सरलता से 'जमक' या 'जमके' पढ़ा जा सकता है। इसी प्रकार 'ये' के नुक्तों के अभाव में 'काफ़' तथा 'गाफ़' के सादृश्य के कारण उर्दू 'केहरि' का 'घर' (गाफ़, हे, रे,) पढ़ लिया जाना भी असंभव नहीं। बीजक की इस अशुद्धि का यही मूल कारण ज्ञात होता है।

२. बी० शब्द ७६ (बीभ० ६४) की दूसरी पंक्ति का पाठ है : अम्मर मधे दीसै तारा। एक चेता (बीभ० चेते) दूजा जेतवनहारा। दा० नि० गौड़ी १४१ में इस पंक्ति का पाठ है : अम्बर दीसै केता तारा। कौन चतुर (दा० चितर, नि० चत्र) असा चित्रनहारा ॥ और गु० गउड़ी २६ में इसका पाठ

है : ओह जु दीसहि अंबर तारे । किनि ओइ चीते चीतनहारे ॥ बी० का 'चेतवनहारा' पाठ यहाँ भ्रमात्मक है । वस्तुतः इस प्रसंग में 'चित्रनहारा' पाठ ही भ्रांतिहीन जान पड़ता है । गु० का 'चीतनहारा' भी इसी पाठ की पुष्टि करता है । बी० के पाठ में यह विकृति फ़ारसी लिपि की भ्रांतियों के कारण आयी हुई ज्ञात होती है, क्योंकि उर्दू में ('ति' के बाद वाले 'रि' को 'वाव' पढ़ लेने से) 'चित्रनहारा' का 'चितवनहारा' या 'चेतवनहारा' सरलता से हो सकता है । अन्य लिपियों में इसकी संभावना कम है ।

३. बी० शब्द ८७ (बीभ० ३६) की दूसरी पंक्ति का पाठ है : वपु वारी (बीभ० आरि) आनंद मीरगा रुचि रुचि सर मेलै । दा० आसावरी ६, नि० आसावरी ८ तथा स० में इस पंक्ति का पाठ है : वपु बाड़ी अनगु मृग रुचिहीं रुचि मेलै । इस पद में अहेर का रूपक लेकर काया-साधना द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों को विनष्ट करने का साधन बताया गया है । बी० पाठ के अनुसार उक्त पंक्ति के प्रथम चरण का तात्पर्य यह होगा कि शरीर रूपी वन में आनंद रूपी मृग है । पाठान्तर के अनुसार इसका अर्थ होगा : शरीर रूपी जंगल में अनंग (=काम) रूपी मृग है । प्रसंग के अनुसार यहाँ 'आनंद' की अपेक्षा 'अनंग' ही अधिक उपयुक्त लगता है, क्योंकि साधक को जिन विकारों पर विजय प्राप्त करनी होती है उनमें काम ही सब से अधिक दुर्जेय होता है । आनंद की गणना विकारों में वस्तुतः करनी भी नहीं चाहिए । पुनः काम स्वभाव से ही मृग के समान चंचल होता है । आनंद में चंचलता नहीं, प्रत्युत समुद्र की सी गंभीरता रहती है । इस दृष्टि से भी आनंद के लिए मृग का रूपक ठीक नहीं जँचता । सिद्धों तथा संतों की वाणियों में मृग का रूपक मन (जो अनंग अर्थात् अंगहीन होता है) के लिए भी मिलता है । उस दृष्टि से भी दा० नि० स० का पाठ प्रसंगसम्मत है और बी० का पाठ वस्तुतः विकृत है । बी० में यह विकृति कैसे आयी, इसका समाधान केवल एक ही प्रकार से किया जा सकता है, और वह यह कि बी० का कोई पूर्वज अनुमानतः फ़ारसी लिपि में रहा होगा । ('अनंग' में 'गाऊ' की ऊपरी लकीरों के लुप्तप्राय हो जाने पर उसे 'दाल' समझ लेने के भ्रम का उदाहरण) ।

४. बी० शब्द ६२ (बीभ० ६) की पाँचवीं पंक्ति का पाठ है : पार परोसिन करउं कलेवा संगहि बुधि महतारी । शवे० (३) भेद० शब्द १६ में भी उक्त पद मिलता है जिसमें इस पंक्ति का पाठ है : रांध पड़ोसिन कीन्ह कलेवा धरि बुढ़िया महतारी । पद भर में सासु, ननद, जेठ आदि रूपक के उपमेय पक्ष ही गिनाये गये हैं । जिन आध्यात्मिक तत्त्वों या मनोविकारों के लिए इनका

निर्देश हुआ है, उनका उल्लेख नहीं हुआ है अन्यथा विपर्यय का सौन्दर्य नष्ट हो जाता। बी० के 'बुधि' पाठ में यह दोष है, अतः शवे० का पाठ ही यहाँ अधिक उपयुक्त समझा जायगा। 'बुद्धिया' का 'बुधि' हो जाना उर्दू में ही अधिक सम्भव ज्ञात होता है।

५. बी० शब्द १३-१ का पाठ है : राम तेरी माया दुंद मचावै। बीभ० शब्द १ में इसका पाठ है : राम तेरी माया दोदि वजावै। मध्यकालीन साहित्य में 'दुंद' शब्द संस्कृत 'दुंदुभि' (= तगाड़ा) के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है; तुल० पदमावत १८६-२ : बाजे ढोल दुंद औ भेरी; तथा ३४४-१ : चढ़ा असाढ़ गंगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा ॥ प्रस्तुत प्रसंग में भी 'दुंद' का प्रयोग इसी अर्थ में ज्ञात होता है; अतः उसके साथ 'वजावै' पाठ ही अधिक उपयुक्त है; 'मचावै' नहीं। इस प्रकार बीभ० का पाठ स्पष्टतया प्राचीनतर ज्ञात होता है। बी० की पाठविकृति फ़ारसी लिपि के कारण उत्पन्न हुई प्रतीत होती है।

६. बी० साखी १६७ (बीभ० ११२) की पहली पंक्ति है : नौ मन दूध बटोरि के टिपके किया बिनास। नि० २८-१० तथा सा० ५८-५ में 'नौ' के स्थान पर 'सौ' पाठ मिलता है। साखी का भाव यह है कि दूध कितना ही इकट्ठा किया जाय, उसमें खटाई की एक बूँद पड़ जाने के कारण वह फट कर बेकार हो जाता है। 'नौ' की अपेक्षा 'सौ' में परिमाण अधिक होने के कारण कथन की तीव्रता और भी बढ़ जाती है; अतः दूसरा पाठ ही अधिक समीचीन ज्ञात होता है। सा० के 'सौ' के स्थान पर बीजक में 'नौ' हो जाना भी फ़ारसी लिपि के ही कारण ज्ञात होता है, क्योंकि उर्दू में यदि लम्बे 'सीन' में 'वाव', 'जवर' लगाकर 'सौ' लिख दिया जाय तो उसे 'सौ' भी पढ़ा जा सकता है और 'नौ' भी।

७. बी० शब्द ४०-७ (बीभ० ५७-१७) : सांची प्रीति विषय माया सों हरि भगतन की फांसी। तुल० दा० नि० तथा स० (दा० गौड़ी ४०-७) में 'फांसी' के स्थान पर 'हांसी'।

८. बी० शब्द २३ (बीभ० ४६) : याते लोग (बीभ० लवंग) हरफ ना लागे। तुल० शवे० (२) सतगुरु-महिमा २० : यातें लवंगहि फल ना लागै।

बीभ० में फ़ारसी-लिपि-जनित विकृतियाँ और भी अधिक स्पष्ट हो गयी हैं। उनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

१. बीभ० शब्द ६१-४ का पाठ है : काटिकाटि जीव सौतुक देखा। बी० १०५ तथा बीफ० में 'सौतुक' के स्थान पर 'कौतुक' है, जो वास्तव में सार्थक और प्रमाणित लगता है। 'कौतुक' से 'सौतुक' हो जाने का कौतुक केवल उर्दू में ही हो सकता है।

२. बी० साखी १५२-१ का पाठ है : मन मसन्द गई अरहने, मनसा भई सँचान । बी० १४५ तथा बी० में इसका पाठ है : मन मतंग गइयर हने, मनसा भई सचान । दोनों पाठों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि बी० का पाठ कदाचित् भ्रमात्मक और विकृत है । 'मतंग' (=मस्त हाथी) के स्थान पर बी० में 'मसन्द' (=तकिया) बन जाने की संभावना पर विचार करने से अनुमान लगता है कि कदाचित् यह विकृति भी फ़ारसी लिपि के ही कारण हुई है । उर्दू 'मतंग' में यदि 'गाफ़' की दोनों लकीरें छोटी पड़ जायें तो वह 'दाल' के सदृश लगने लगता है और 'ते' तथा 'नु' के नुक्तों में घटवड़ होने से उसे 'मसन्द' भी पढ़ा जा सकता है । बहुत संभव है कि बी० में यह परिवर्तन इसी प्रकार हुआ हो । 'मतंग' (=हाथी; सं० मातंग) तथा 'गइयर'^{३२} (=गैवर; सं० गजेन्द्र) में पुनरुक्ति-दोष नहीं माना जायगा, क्योंकि 'मातंग' शब्द का प्रयोग कालांतर में लक्षणा द्वारा विशेषण रूप में होने लगा—ठीक उसी प्रकार जैसे 'विशाल' शब्द का प्रयोग पहले केवल हाथी के लिए होता था, बाद में भवन आदि के विशेषण रूप में भी होने लगा । ग्रामीण लोग प्रायः 'मतंगा हाथी' (=मस्त हाथी) कहा करते हैं ।

३. बी० साखी १७१-१ : सन कागद छूवीं नहीं, कलम गहीं नहीं हाथ । बी० १८७ में 'सन' के स्थान पर 'मसि' पाठ मिलता है जो स्पष्ट ही शुद्ध और निर्भान्त है । बी० में यह विकृति फ़ारसी लिपि की अव्यवस्था के कारण ही आयी हुई ज्ञात होती है । उर्दू 'मसि' में 'मीम' का शोशा 'सीन' में मिल कर 'स' जैसा बन सकता है और आगे सीन के पेट में 'नु' की भी आति हो सकती है ।

४. बी० शब्द १८ की अंतिम पंक्ति में : आप तरी मोहि तारे । (तुल० बी० शब्द १६ : तरै) ।

५. बी० शब्द ४२-८ : ब्रह्म कोलाल चढ़ाइन भाठी (तुल० बी० शब्द २६-५ : कुलाल) ।

६. बी० साखी २१५-२ : दुरजन सभा कुंभार का (तुल० बी० २२५ : कुंभ) ।

७. बी० कहरा ६-३ : मेली सोस्ति चराचित राखहु (तुल० बी० क० १-२ : सिस्टि) ।

८. बी० विप्रमतीसी दोहा : बहा है बहि जात है, करि गहे चहुं और । (तुल० बी० वही : करि गहि ऐंचहु और) ।

३२. बी० बाराबंकी में 'गइयर' का अर्थ 'गाय के स्वभाव वाला या सीधा' दिया हुआ है, किन्तु यह अर्थ संतोषजनक नहीं ज्ञात होता ।

नागरी लिपि-जनित विकृतियाँ—अन्य प्रतियों की भाँति बीजक में भी ऐसी पाठ-विकृतियों के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं जो नागरी अथवा कैथी लिपि के कारण उसमें आयी हों। केवल दो उदाहरण (और वे भी संदिग्ध) मिलते हैं, जो निम्नलिखित हैं।

१. बी० शब्द ३४ की दूसरी पंक्ति का पाठ है : मुक्ताहल लिए चोंच लभावै । मौन रहैं की हरि जस गावैं ॥ दा० भैरुं २०, नि० भैरुं १६ तथा स० (ग्रन्था० पद ३४४) में यह तीसरी पंक्ति के रूप में मिलती है जहाँ इसके पहले चरण का पाठ है : मुक्ताहल बिन चंच न लावै । इस पद में भक्त की तुलना हंस से की गयी है। 'लभावै' के लिए बीजकों में लम्बा करना (=लम्बाना) अर्थ^{३३} दिया गया है, किन्तु अवधी या भोजपुरी में 'लंबाना' के लिए प्रायः 'लमाउव' धातु का प्रयोग होता है, 'लभाउव' का नहीं। अनुमान यह है कि 'लभावै' कदाचित् नागरी 'लगावै' का विकृत रूप हो।

२. बी० साखी ६ की पहली पंक्ति का पाठ है : इहंई सम्मल करि ले, आगे बिषयी बाट । सा० १०-१५, सासी० १८-१९ में इसका पाठ है : यहाँ बिसाहन करि चलो आगे बिषमी बाट । बीभ० (२५) में भी 'बिषमी' पाठ ही है। बी० का 'बिषयी' पाठ भ्रांतिपूर्ण है और सा० अथवा सासी० के 'बिषमी' पाठ का विकृत रूप ज्ञात होता है। मार्ग का बिषम होना ही अधिक सार्थक है, 'बिषयी मार्ग' निरर्थक है। 'बिषमी' का 'बिषयी' हो जाना अनुमानतः नागरी 'म' तथा 'य' के सादृश्य से संभव हुआ है।

बीभ० में नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट रूप में मिलती हैं। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

१. बीभ० शब्द १२-६ का पाठ है : सजन सहित भाव नहि उहवां सो दहुं एक कि दूजा । बी० ४३-५ में 'सजन' के स्थान पर 'संजम' पाठ मिलता है जो वस्तुतः प्रसंगसम्मत लगता है। 'संजम' का 'सजन' ('न' और 'म' के सादृश्य के कारण) नागरी लिपि में ही सम्भव हो सकता है।

२. बीभ० ३६-५ : चेतत रावल पवन खेडा । तुल० बी० ८७-३ : चेतत रावल पवन खेदा । (नागरी 'द' और 'ढ' के सादृश्य के कारण)

३. बीभ० कहरा ८-२५ : दुई चकरी जनि दरर पसारहु । तुल० बी० कहरा २-१३ में : दरन (कैथी 'न' और 'र' के सादृश्य के कारण) ।

४. बीभ० कहरा ६-३५, ३६ : जिन्हि सम बुक्ति अगुमन के राखिन्ह

घरिन्हि मंछ भरि डेहरि हो । तुल० वी० कहूरा १-१८ : 'सम' के स्थान पर 'सभ' और 'घरिन्हि' के लिए 'घरिन्ह' ।

६. बीभ० चाँचरि २-५ : कालवृत की हासनी; तथा २-७ : भसम करिनि जाके साज । तुल० वी० चाँचरि २-२ : 'हस्तिनी' तथा 'किरिम' ।

पुनरावृत्तियाँ—बीजक में कुछ पंक्तियाँ ऐसी भी हैं जो एक से अधिक स्थलों पर मिलती हैं । नीचे उनका निर्देश किया जा रहा है ।

१. वी० तथा बीभ० की पहली रमैनी और बीफ० की दूसरी रमैनी की समापक साखी का पाठ है—

कहहि कबीर पुकारि के, ई लेऊ ब्योहार ।

राम नाम जाने बिना, भव बूड़ि मुवा संसार ॥

कुछ हेर-फेर के साथ यही साखी ७४ वीं रमैनी में फिर इस प्रकार आती है : भरम क बांधल ई जग, कोई न करै बिचार ।

हरि की भक्ति जाने बिना, भव बूड़ि मुवा संसार ॥

२. तुल० वी० २० ११-५ : वै उत्तंग तुम जाति पतंगा ।

जमघर किएहु जीव को संग ।

तथा० २० ६५-६ : हरि उत्तंग तुम जात पतंगा ।

जमघर कियो जीव को संग ॥

इसी प्रकार तुल० (३) २० सा० ११ तथा सा० १६२, (४) २० सा० १२ तथा ७२, (५) २० १४-१२-१ तथा ५०-१-१, (६) २० १६-४-१ तथा ४३-२-१, (७) २० ३४-४-२ तथा ४३-३-२, (८) २० सा० ५२ तथा ६५, (९) सा० १२६-२ तथा २६१-२, (१०) सा० २८६-२ तथा ३२७-२, (११) सा० ३१२-१ तथा ३१७-१, (१२) वी० शब्द २१-५ (बीभ० ७६-६) तथा वी० ६५-४ (बीभ० ८६-७, ८) । इतनी अधिक पुनरावृत्तियाँ मिलने से दो बातें सिद्ध होती हैं—या तो बीजक के आदर्श अनेक हैं या फिर उसकी प्रतिलिपि-परंपरा में बड़ी अव्यवस्था रही । ऐसा लगता है कि स्मृति के आधार पर अनेक परवर्ती संशोधन-परिवर्धन कालांतर में लगातार होते रहे ।

साखियों में छंद-भिन्नता—संतों की साखियों में दोहा छंद की तरह दो पंक्तियाँ होती हैं और प्रत्येक पंक्ति के दोनों चरणों में क्रमशः १३ तथा ११ मात्राएँ आती हैं । कबीर की भी साखियाँ इसी छंद में हैं (यद्यपि मात्राओं की संख्या में न्यूनाधिक्य भी मिल सकता है), किन्तु बीजक के साखी-प्र-
कुछ ऐसी साखियाँ भी हैं जिनमें मात्राओं की बहुत भिन्नता मिलती है । उदाहरणतया

बी० सा० २६, ६६, १२४, १५०, १८८, २००, २०४, २२०, २३४, २४७, २५२, २५७ २८७, २६३, ३०७, ३१६, ३२२, ३३१ = कुल मिला कर १८ । इनमें से साखी २६, १५०, २०४ तथा २५२ अर्थात् ४ साखियाँ ऐसी हैं जिनमें रमैणियों की तरह चार चरण हैं और प्रत्येक में १६ या १७ मात्राएँ आती हैं, जैसे—

जहां बोल तहां अक्षर आया । जहां अक्षर तहां मनहि दिढ़ाया ॥

बोल अबोल एक होइ जाई । जिन यह लखा सो बिरला होई ॥ (साखी २०४)

साखी ६६, १८८, २५७, २६३, ३०७, ३२२, ३३१ अर्थात् सात साखियाँ ऐसी हैं, जिनमें चार चरण हैं और प्रथम, तृतीय तथा द्वितीय, चतुर्थ चरणों में क्रमशः १६ तथा १२ मात्राएँ हैं, जैसे—

दिल का मरहम कोइ न मिलिया, जो मिलिया सो गरजी ।

कहहि कबीर असमानहि फाटा, क्योंकर सीवै दरजी ॥ ३३१ ॥

शेष ऐसी हैं जिनमें कोई विशिष्ट क्रम नहीं मिलता; उदाहरणतया बी० सा० २०० (बीभ० १८६) —

जो मोहि जाने ताहि में जानौ । (६ + ६ = १२ मात्राएँ)

लोक बेद का कहा न मानौ ॥ (८ + ८ = १६ मात्राएँ)

अथवा बी० सा० २४७ —

सुनिए सब की, निबेरिए अपनी । (८ + १० = १८ मात्राएँ)

सेंदुर का सिंधौरा, भूपनी की भूपनी ॥ (११ + १० = २१ मात्राएँ)

किसी-किसी में चौपाई की भाँति एक अर्द्धाली मिल जाती है; जैसे सा० २८७ —

भूँ भरि घास बसै घट माहीं । सब कोइ बसै सोग की छाहीं ॥

ऊपर उद्धृत सा० २०४ दा० नि० 'ग्रन्थ बावनी' में पाँचवीं तथा ष्ठी पंक्तियों के रूप में मिलती है, और वहीं प्रसंगसम्मत भी है । अनुमानतः किसी संत के मुख से सुन कर बी० की किसी पूर्व-प्रति के हाशिए में यह पंक्तियाँ लिख ली गयी थीं और कालान्तर में प्रतिलिपि करते समय मूल भाग में मिला ली गयीं । ऊपर जिन छन्दों का निर्देश किया गया है उनमें से अधिकांश इसी प्रकार से बीजक में प्रविष्ट हुए ज्ञात होते हैं । हाशिए में अतिरिक्त प्रक्षेप जोड़ने की प्रवृत्ति बहुत पुरानी है । संस्कृत की प्राचीन प्रतियों में भी इस प्रकार के परिवर्धन बहुत मिला करते हैं जिनका निर्देश 'अत्र शोध पत्रम्' द्वारा कर दिया जाता है ।

शक० प्रति का विवरण

यह एक मुद्रित प्रति है जिसे कबीरचौरा स्थान, बाराणसी के साधु अमृतदास

जी ने प्रकाशित किया है। कबीरचौरा से सर्वप्रथम विशुनदास साहब ने एक शब्दावली छपवायी थी, फिर उसी के दो रूपांतर, बड़ी (१६८२ वि०) तथा छोटी शब्दावली के नाम से, साधु लखनदास ने छपवाये। प्रस्तुत ग्रन्थ (मूल भाग २२४ पृ० का) इसी का आधुनिकतम रूपांतर है, जिसके चौथे संस्करण पर गुरु-पूर्णमा सं० २००७ वि० (सन् १९५० ई०) की तिथि अंकित है। प्रकाशक के संक्षिप्त वक्तव्य के पश्चात् इसमें तीन संस्कृत श्लोकों में सद्गुरु कबीर साहब की स्तुति है तत्पश्चात् 'आज' पत्र से उद्धृत 'कबीर का अद्भुत व्यक्तित्व' शीर्षक एक छोटा सा लेख (लेखक श्री विश्वनाथ सिंह, सहायक-सम्पादक) और उसके पश्चात् श्री रामेश्वरानंद द्वारा विरचित काशी कबीरचौरा की गुरु-प्रणाली पहले संस्कृत में फिर हिन्दी में दी हुई है।^{३४}

पुस्तक में कबीर के अतिरिक्त सम्प्रदाय के अन्य संतों की रचनाएँ भी आती हैं, जिसका निर्देश प्रकाशक ने अपने वक्तव्य में ही कर दिया है। कारण यह है कि इसका संकलन एक कबीरपंथी द्वारा कबीरपंथियों के लिए किया गया है। जैसा कि आगे सामग्री के विवरण से प्रकट होगा, पदों का क्रम-विभाजन भी प्रायः पंथ की दिनचर्या आदि की दृष्टि से किया गया है। पुस्तक में निम्नलिखित रचनाएँ आयी हैं—संध्या गौरी (१६ शब्द), संध्या साखी (१० साखियाँ), संध्या आरती (१६ शब्द); इसके पश्चात् धर्मदासकृत 'दयासागर', नामा जी कृत ६ छप्पय और ४ साखियाँ, संत साहब कृत अष्टक (कबीर की स्तुति) तथा रामरहस्य, पूरणदास आदि अन्य कबीरपंथियों द्वारा रचित कुछ फुटकल रचनाएँ दी हुई हैं। तत्पश्चात् मंगल (१६ शब्द), मंगल चौका आरती (१ शब्द), नरियर मोरने का शब्द (१ पद), भोग लगाने तथा आचमन के शब्द (२ पद) देकर पुनः किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कबीर की स्तुति और धर्मदास कृत 'आदि मंगल' और 'अगाध मंगल', 'सिंहासन रमैनी' तथा 'छंद रमैनी' नामक रचनाएँ दी हुई हैं। इसके पश्चात् क्रमशः पंचायतन मंगल (५), भूमर (४), सुहेलो (१), मंगल (१), हंसाल (४), भूमड़ा (२), भंडारा धुन भोग लगाने का शब्द (१), तिनका तोरने का शब्द (१) आते हैं जिनमें से कुछ में स्पष्ट रूप से धर्मदास

३४. १. कबीर साहब (परमाचार्य)—२. सुरतिगोपाल साहब—३. ज्ञान साहब—४. श्याम साहब—५. लाल साहब—६. हरिसुख साहब—७. शीतल साहब—८. सुख साहब—९. हुलास साहब—१०. माचो साहब—११. कोकिल साहब—१२. राम साहब—१३. महा साहब—१४. हरी साहब—१५. शरण साहब—१६. पूरण साहब—१७. निर्मल साहब—१८. रंगी साहब—१९. गुरु साहब—२०. प्रेम साहब—२१. रामविलास साहब (वर्तमान) ! कबीर और रामविलास साहब के चित्र भी हैं।

की छाप है। उत्तरार्द्ध में निम्नलिखित रागों के शब्द मिलते हैं जिनकी संख्याओं का भी निर्देश यहाँ कर दिया जा रहा है—सोहर २, हंसावली ५, गारी १३, बसंत १२, होरी २७, धमार ३, उलारा फाग ३, चैता ३, घाटो २, सायरी शब्द ३६^{३५}, कबीरगोरख संवाद ३, ध्रुपद १ (कबीर कृत नहीं), लावनी २, खेमटा १३, सोरठि ४, पूर्वी १, मांड १, कहरा ४, प्रभाती १३, नाछू ३, उछाह मंगल ६। अंत में छः रेखते, जिनकी भाषा अत्यन्त आधुनिक है और चार पद जतसारी राग के मिलते हैं जिनमें अत्यधिक पूर्वी प्रभाव है।

ऊपर धर्मदास की जिन रचनाओं का उल्लेख हुआ उनके अतिरिक्त भी अनेक पद ऐसे मिलते हैं जिनमें उनका नाम स्पष्ट रूप से आया है। आरती १, ३, ५, १३, १६, मंगल २, १४, सुहेला मंगल, तिनका तोरने का शब्द १, तथा २, होरी ६, १५, २३ चैता १, सायरी १०, २४, प्रभाती ११, १२, उछाह मंगल २, ३, ४, ५, ६ तथा रेखता में भी धर्मदास का नाम मिलता है। अतः इनके भी रचयिता निश्चित रूप से धर्मदास ही हैं। इसी प्रकार गौड़ी ५ में नाभादास की छाप और खेमटा १३ में कमालिन (कबीर की तथाकथित पुत्री या शिष्या) की छाप मिलती है। इस प्रकार सारी पुस्तक का लगभग एक तिहाई अंश दूसरों की रचनाओं से भरा पड़ा है। जो शेष वचता है उसमें भी कई छंद ऐसे हैं जिनमें यद्यपि नाम तो स्पष्ट रूप से किसी का नहीं मिलता, किन्तु उनके रचयिता कबीर नहीं हो सकते। पाठ में संशोधन भी बहुत किये गये हैं जिनका संकेत प्रकाशक ने वक्तव्य में ही कर दिया है। इन परिस्थितियों में पाठ संबंधी विकृतियों का पता लगाना बड़ा कठिन हो जाता है, फिर भी उनके कुछ न कुछ लक्षण आज तक शेष हैं जिनसे इसकी निम्नलिखित विशेषताओं का पता चलता है।

फारसी-लिपि-जनित विकृतियाँ—शक० में निम्नलिखित पाठ-विकृतियाँ ऐसी मिलती हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इसकी भी मूल प्रति, जिसकी प्रतिलिपि-परम्परा में यह प्रति पड़ती है, उर्दू में ही थी। नीचे उनका निर्देश किया जा रहा है—

१. शक० गौरी ८-५ का पाठ है : सूरुा काहे मरन को डरपै, सतियौ न संशय भंड़ि। दा० गौड़ी १२६, नि० गौड़ी १३२, गु० गौड़ी ६८, शवे० (१) चितावनी-उपदेश २२ तथा स० में 'संशय' के स्थान पर 'संचे' पाठ मिलता है और स्पष्ट रूप से यही पाठ प्रसंगसम्मत और सार्थक भी है। यदि 'भंड़ना' का

अथ तोड़ना या नष्ट करना भी लिया जाय तो संशय न भाँड़ना का अर्थ होगा संदेह या दुविधा नष्ट न करना, जो उक्त प्रसंग के विपरीत है। शक० की इस विकृति को संभावनाओं पर विचार करने से अनुमान होता है कि यह भी फ़ारसी लिपि के ही कारण संभव हुई है। उर्दू में 'संचै' सीन, नु, चे और ये मिला कर लिखा जायगा। यदि 'चे' के शोशे और नुक्तों में कुछ खलन आ जाय तो 'संचै' का 'संशय' हो जाना असम्भव नहीं है; क्योंकि इसके अतिरिक्त शेष सब अक्षर दोनों में एक से हैं।

२. शक० गारां १६-५, ६ का पाठ है : सुदर वदन देखि मत भूलो, क्या सावर क्या गोरा। भजन बिना तन काम न अइहै, कोटि सुगंध चहुँ ओरा ॥ शवे० (१) चिता० उप० ७० में इन पंक्तियों का पाठ है : या काया कौ गर्भ न कीजै क्या सावर क्या गोरा रे। बिना भक्ति तन काम न आवै कोटि सुगंध चभोरा रे ॥ 'चहुँ ओरा' और 'चभोरा' दो पाठों में से कोई एक ही प्रामाणिक हो सकता है। शक० के अनुसार दूसरी पंक्ति का अर्थ होगा : भजन के बिना यह शरीर व्यर्थ है, चाहे इसके चारों ओर करोड़ों प्रकार की सुगंधियाँ हों; और शवे० के अनुसार इसका अर्थ होगा : भक्ति बिना यह शरीर व्यर्थ है, चाहे करोड़ों ही प्रकार की सुगंधियों से चभोरी हुई हो (चभोरी=डुबोई हुई, लथपथ)। शक० में भाव का शिथिलता स्पष्ट ही खटकती है, अतः यहाँ शक० का पाठ विकृत ज्ञात होता है। 'चभोरा' का 'चहुँ ओरा' बन जाना उर्दू में ही सम्भव हो सकता है।

३. शक० वसंत २ में सातवीं पंक्ति का पाठ है : पुहुपु पुरानी गयी है सूखे। और दसवीं पंक्ति का पाठ है : दहुं दिसि चितवै मधु कराय। दा० नि० वसंत १२ तथा शवे० (२) चिता० ३१ में 'पुरानी' के स्थान पर 'पुराने' और 'मधु कराय' के स्थान पर दा नि० में 'मधुपराय' और शवे० में 'भुंइ पराय' पाठ मिलते हैं। 'पुहुपु' (पुल्लिग) के साथ 'पुरानी' स्त्री० विशेषण व्याकरण-विरुद्ध है और 'दहुं दिसि चितवै' के साथ शक० का 'मधु कराय' पाठ अर्थ-हीन है। वस्तुतः यहाँ दा० नि० का पाठ ही प्रामाणिक ज्ञात होता है। दोनों विकृतियाँ केवल उर्दू में ही संभव हैं। उर्दू 'मधुपराय' में यदि 'पे' के नीचे के नुक्ते ग्रायब हो जायें तो 'पे' का पेट ऊपर के 'वाव' से मिल कर 'काफ़' की शकल का हो सकता है और इस प्रकार 'मधुपराय' का 'मधु कराय' पाठ हो सकता है। 'पुराने' का 'पुरानी' उर्दू में प्रायः ही हुआ करता है। अन्य लिपियों में यह विकृतियाँ सम्भव नहीं।

४. शक० सायरी ११-११ का पाठ है : मन मारि अगम गढ़ लीन्हा । चितमित पर डेरा कीन्हा । 'चितमित' के स्थान पर नि० सोरठि ६२ में 'जत सत' और शबे० (३) सूरमा ३ में 'चित्रगुप्त' पाठ हैं । 'चितमित' की प्रस्तुत प्रसंग में कोई सार्थकता नहीं ज्ञात होती । शक० की यह विकृति भी उसकी किसी ऐसी प्रतिलिपि-परंपरा की ओर संकेत करती है जिसमें कोई प्रति फ़ारसी लिपि में लिखी रही होगी ।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—ऐसी विकृतियों के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं जिनकी उत्पत्ति नागरी अथवा कैंथी लिपि की अव्यवस्था के कारण हुई हो । पुस्तक भर में केवल एक उदाहरण मिलता है जिसे इस कोटि में रक्खा जा सकता है और वह निम्नलिखित है ।

'सत का बिलोवना बिलोय मोरि माई ।' से प्रारम्भ होने वाली छठी प्रभाती की अंतिम पंक्ति का पाठ शक० में है : कहै कबीर गुंजर बहुरानी । फुटि गई मटकी शब्द समानी ॥ दा० नि० भैरू ३० (ग्रंथावली ३५४) पहले चरण का पाठ है : कहै कबीर गुजरी बौरानी । इस पद में आध्यात्मिक साधना द्वारा परम पद को प्राप्त करने का रूपक जमाये हुए दूध को बिलो कर माखन निकालने से बाँधा गया है । 'गुजरी' का अर्थ ग्वालिन या अहीरिन होता है, जो मूट्ठा मारती है । गुजरी / गुज्जरि / गुज्जर / गुज्जर / गुंजर—इस विकृति का यही क्रम ज्ञात होता है । अंतिम पंक्ति का तात्पर्य यह है कि गुजरी अर्थात् मनसा पागल हो जाती है, क्योंकि मटकी अथात् शरीर फूट कर नष्ट हो गयी और आत्मा परमज्योति में समा गयी । 'बहुरानी' का कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता । ज्ञात होता है कि नागरी 'उ' और 'हु' के सादृश्य से किसी ने 'बउरानी' का 'बहुरानी' पढ़ लिया और 'वही' पाठ शक० में भी आ गया ।

पंजाबी प्रभाव—शक० में आयी हुई वाणी में यत्र-तत्र पंजाबी-प्रभाव भी दृष्टिगत होते हैं जिनके उदाहरण निम्नलिखित हैं—

शक० प्रभाती १ की प्रत्येक पंक्ति के अंत में बे शब्द मिलता है । इस प्रकार की टेक प्रायः पंजाबी गीतों में मिलती है और यह उसी का प्रभाव ज्ञात होता है (तुल० दा५ रामकली २७) । इसी प्रकार गौरी १५ में दीता (=दिया), कीता (=किया) शब्द भी पंजाबी के ही ज्ञात होते हैं ।

इससे सिद्ध होता है कि शक० जिस प्रति पर आधारित है, उसका कोई पूर्वज पंजाब भी पहुँचा था जिसके फलस्वरूप इस स्थिति में पहुँचने के पूर्व उक्त

पंजाबी प्रयोग भी इसमें सम्मिलित हो गये ।

पुनरावृत्तियाँ—शक० में कुछ पंक्तियाँ ऐसी मिलती हैं जो दो या दो से अधिक स्थलों पर अनावश्यक रूप से दुहरायी हुई मिलती हैं । इन पुनरावृत्तियों का नीचे निर्देश किया जा रहा है ।

१. तुल० मंगल ३-११, १२ : मंगल कहीं कबीर संत जन गावहीं ।

गुरु संगति सतलोक सो हंस सिधावहीं ॥

तथा मंगल १५-२५, २६ : यह मंगल सतलोक के हंसा गावहीं ।

कहीं कबीर सतभाव तो लोक सिधावहीं ॥

और मंगल १-१६, २० : परम आनन्द जब होय तो गुरुहिं मनाइए ।

कहीं कबीर सतभाव सो लोक सिधाइए ॥

२. 'चंदन आँगन लिपाइहीं मोतियन चौक पुराऊँ ।' यह एक ही पंक्ति शक० में चार स्थलों पर (मुहेला १-२, २-२ तथा भूमड़ा १-६, २-२) मिलती है ।

३. तुल० सायरी शब्द २०-६, ७, ८, ९ :

लज्जा कहै मैं जम की दासी । एक हाथ मुदगर दूजे हाथे फाँसी ॥

माया कहै मैं अबला बलिया । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर छलिया ॥१॥

तथा प्रभाती ७-२, ३, ४, ५, ६, ७ :

नीद कहै मैं जमकी दासी । एक हाथे मुदगर दूजे हाथ फाँसी ॥

नीद कहै मैं अबला बलिया । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर छलिया ॥

(अंतर केवल 'लज्जा' और 'नीद' का है) ।

इसी प्रकार तुल० शक० गौरी १४-११ तथा ३७-६; सिंहासन रमैनी ३-१२, १३ तथा ६-६, ९; भूमड़ा २-३ तथा सायरी १४-३ ।

अन्य विशेषताएँ

सांप्रदायिक प्रभाव—आरम्भ में दादूपंथ, निरंजनीपंथ, कबीरपंथ, अथवा नानकपंथ आदि संत-सम्प्रदायों में नाम-स्मरण के लिए प्रायः राम नाम की सब से अधिक महत्ता थी । प्रत्येक पंथ का प्रवर्तक महात्मा इसी नाम पर दीवाना था और इसी नाम की महिमा उनकी प्राचीन वाणियों में मिलती है । किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया प्रायः प्रत्येक सम्प्रदाय में पार्थक्य की दृष्टि से उपास्य तत्व का एक विशिष्ट और पृथक् नाम भी चुन लिया गया । इस प्रकार कबीरपंथ में 'सत्यनाम', दादूपंथ में 'सत्तराम', राधास्वामीपंथ में 'राधास्वामी' की उपासना होने लगी । इस दृष्टि से प्राचीन वाणियों का संशोधन भी किया जाने

लगा ! शक० में भी इस प्रकार के संशोधन यत्र-तत्र मिलते हैं । उदाहरण के लिए इसमें गौरी ७ की अंतिम पंक्ति ली जा सकती है, जिसका पाठ है : कहींह कबीर सत्यव्रत साधो नव निधि होइ रहे चेरा । नि० बिहंगडौ १८ में इसका पाठ है : 'कहै कबीर राजा राम भजन सु' नवनिधि होइगी चेरो ।' और शबे० में इसे एक-दम बदल कर 'कहै कबीर सुनो भाई साधो हो रहु सतगुरु चेरो' कर दिया गया है । शक० और शबे० दोनों ही साम्प्रदायिक संकलन हैं : पहला कबीरपंथी और दूसरा राधास्वामीपंथी । शबे० में जो पाठ-परिवर्तन किया गया है वह कुछ खप सकता है, किन्तु शक० का संशोधन 'सत्यव्रत साधो' स्पष्ट ही खटकता है । इसी प्रकार 'राम' के स्थान पर 'नाम', 'हरि' के स्थान पर 'गुरु' आदि के परिवर्तन भी बहुत मिलते हैं । इन संशोधनों के पीछे सांप्रदायिक प्रवृत्ति की पुष्टि ऐसे उदाहरणों से होती है जहाँ दो या दो से अधिक स्वतंत्र शाखाओं में प्रायः एक पाठ और सांप्रदायिक ग्रंथों में उसके स्थान पर दूसरा संशोधित पाठ मिलता है ।

ध्रुव के क्रम में परिवर्तन—शक० की अन्य विशेषता इसकी प्रथम पंक्ति के संबंध में है । इन पंक्तियों के क्रम में ग्रन्थ प्रतियों की तुलना में कुछ अन्तर मिलता है - उदाहरणतया शबे० के 'जन को दीनता जब आवै' से आरम्भ होने वाले पद का पाठ शक० गौरी ४ में 'दीनता जो आवै जन को' है । इस प्रकार का परिवर्तन इसके अधिकांश पदों में मिलता है ।

शबे० प्रति का विवरण

यह वेल्वेडियर प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित है और चार भागों में निकली है । इसमें कबीर के शब्दों का विभाजन विषय के अनुसार विभिन्न ग्रंथों में मिलता है । इसका प्रथम भाग, जो ११२ पृष्ठों का है, सर्वप्रथम सन् १६०८ ई० में छपा था । यह उक्त प्रेस से प्रकाशित संतबानी पुस्तकमाला (कुल ४४ पुस्तकें) की चौथी पुस्तक है । दूसरे, तीसरे तथा चौथे भाग क्रमशः इसके पश्चात् निकले । प्रथम भाग के आरम्भ में कबीर साहब का संक्षिप्त जीवनचरित (४ पृष्ठों में) दिया हुआ है, उसके पश्चात् इसमें उनके २२४ शब्द मुद्रित हैं, जिनका क्रम तथा विभाजन निम्नलिखित है : १. सतगुरु और शब्द महिमा १३ शब्द, २. बिरह और प्रेम ३५ शब्द, ३. चितावनी और उपदेश ६१ शब्द, ४. भेद बानी २६ शब्द, ५. शब्द भूलना, ७ शब्द, ६. होली ६ शब्द, ७. रेखता ३१ शब्द, ८. मिश्रित १२ शब्द—कुल २२४ शब्द ।

दूसरे भाग में ३४२ शब्द हैं जिनका विभाजन निम्नलिखित ढंग से है :

१. उपदेश ३७ शब्द, २. सतगुरु महिमा २५ शब्द, ३. चितावली ४६ शब्द, ४. भेद २८ शब्द, ५. प्रेम ३८ शब्द, ६. होली ३० शब्द, ७. मंगल १५ शब्द, ८. मिश्रित २३ शब्द = कुल २४२ शब्द। अंत में एक 'निरख प्रबोध की रमैनी' दी हुई है जिसमें ६ दोहे आते हैं।

तीसरे भाग में निम्नलिखित क्रम से ११६ शब्द दिये हैं : १. आदि बानी १ शब्द, २. महिमा आदि धाम १२ शब्द, ३. महिमा नाम ८ शब्द, ४. महिमा शब्द ३ शब्द, ५. साधु महिमा ६ शब्द, ६. बिरह प्रेम ६ शब्द, ७. सूरमा ३ शब्द, ८. विनती ३ शब्द, ९. दीनता २ शब्द, १०. भेदबानी १७ शब्द, ११. चैतावनी २१ शब्द, १२. उपदेश ६ शब्द, १३. माया २ शब्द, १४. मिश्रित २३ शब्द = कुल ११६ शब्द।

चौथे भाग में मंगल १२ शब्द, गारी ३ शब्द, झूलना ३, कहरा २, दस-मुकामी रेखता १, जतसार १, बंसत १, होली ४, दादरा २, कुल मिलाकर २० शब्द मिलते हैं। अन्त में एक ककहरा दिया हुआ है जिसमें नागरी के ३४ अक्षरों पर ('क' लेकर 'क्ष' तक) ३४ छंद मिलते हैं। प्रत्येक छंद में पदों के समान चार पंक्तियों के साथ एक दोहा मिलता है।

इस प्रकार शवे० में कुल ६१५ शब्द, एक निरख प्रबोध रमैनी और एक ककहरा मिलते हैं। किसी भी प्रकाशित प्रति में कबीर के इतने शब्द नहीं मिलते और फिर मोटे टाइप में छपे होने के कारण साधुओं और साधारण जनता में इसका बहुत प्रचार है।

पाठ-संबंधी विशेषताएँ

सांप्रदायिक प्रभाव—शवे० की सब से प्रमुख विशेषता यह है कि उसपर सांप्रदायिक प्रभाव अत्यधिक मात्रा में मिलता है। कबीरपंथियों द्वारा प्रकाशित वाणियों में भी इस प्रकार की प्रवृत्ति मिलती है, किन्तु 'शब्दावली' के सम्पादक ने अपना सिद्धांत जितने पक्के ढंग पर निवाहा है उतना किसी ने नहीं। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि बेलवेडियर प्रेस के स्वामी राधास्वामी-संप्रदाय के हैं। उन्होंने कबीर की वाणियों का इतना सुन्दर संकलन छपवा कर जहाँ संत-साहित्य का बड़ा उपकार किया वहीं सांप्रदायिकता के लोभ में उन्होंने इसका महत्व घटा भी दिया। विशेष परिवर्तन ईश्वरपरक नामों में किया गया है, जिसकी चर्चा पीछे शक० के प्रसंग में भी की गयी है। बीजक, शक० अथवा सासी० आदि कबीरपंथी प्रकाशनों में तो कहीं-कहीं 'राम', 'गोविंद', 'हरि' आदि परमात्मपरक शब्दों के दर्शन हो जाते हैं, किन्तु

शबे० में इन नामों के दर्शन भी दुर्लभ हैं। यह नाम अपवाद रूप में केवल ऐसे स्थलों पर आ गये हैं जिनमें उनके प्रति कोई विरोधी विचार प्रकट किया गया है। यह उसकी ऐसी स्थूल विशेषता है कि इसकी पुष्टि में उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। पुस्तक को सरसरी निगाह से देख जाने से कोई भी व्यक्ति (चाहे वह राधास्वामी-संप्रदाय का ही क्यों न हो) उसकी इस विशेषता से अवगत हो सकता है। फिर भी कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

१. शबे० (१) विरह-प्रेम शब्द ७ का पाठ निम्नलिखित है—

दुलहिन गावहु मंगलचार ।

हम घर आए परम पुरुष भरतार ॥

तन रत करि मैं मन रत करिहौं पंच तत्व तब राती ।

गुरु देव मेरे पाहुन आए मैं जोबन में माती ॥ २॥

शरीर सरोवर बेदी करिहौं ब्रह्मा वेद उचारा ।

गुरुदेव संग भांवरि लेइहौं धन धन भाग हमारा ॥

दा० नि० गौड़ी १ तथा गु० आसा २४ में शबे० की द्वितीय पंक्ति के 'परम पुरुष' के स्थान पर 'राजा राम' और चौथी तथा छठी पंक्तियों के 'गुरुदेव' के स्थान पर क्रमशः 'राम देव' और 'राम राय' पाठ मिलते हैं। जैसा आगे हम देखेंगे, दा० नि० तथा गु० में परस्पर किसी प्रकार का संकीर्ण-संबंध नहीं है, क्योंकि पाठ-विकृति का ऐसा एक भी उदाहरण नहीं जो तीनों में समान रूप से मिलता हो। अतः इन तीनों में समान रूप से मिलने वाला पाठ सिद्धांततः ग्राह्य होना चाहिए। इस प्रकार शबे० के संशोधन परवर्ती ज्ञात होते हैं।

२. इसी प्रकार दा० गौड़ी ४०, नि० गौड़ी ४४ तथा बी० शब्द ४० और शक० की कुछ पंक्तियों का पाठ है—

पंडित बाद बदै सो भूठा ।

राम के कहे जगत गति पावै खांड कहे मुख मीठा ।

नर के साथ सुवा हरि बोलै हरि परताप न जाँतें ।

जो कबहुँ उड़ि जाइ जंगल मैं तौ हरि सुरति न आँतें ॥

सांची प्रीति बिषै माया सौं हरि भक्तन सौं हांसी ।

कहै कबीर एक राम भजे बिन बांधे जमपुर जासी ।

शबे० (३) मिश्रित २२ पर भी यह पद मिलता है जिसमें केवल पहला 'राम' यथावत् है (यह अर्थ लेकर कि राम-राम करने से-दुनिया में किसी की

मुक्ति नहीं होती), अन्यथा शेष पंक्तियों का पाठ इस प्रकार है—

नर के पास सुवा आइ बोलै गुरु परताप न जाना ।

जो कबहीं उड़ि जात जंगल में बहुरि सुरति नहि आना ॥

सांची हेतु विप्रय माया से सतगुरु शब्द की हांसी ॥

कहै कबीर गुरु के बेमुख बांधे जमपुर जासी ॥

जैसा हम आगे देखेंगे दा० नि० स० बी० में भी किसी प्रकार का संकीर्ण-संबंध नहीं है, अतः दा० नि० गु० के समान दा० नि० स० बी० में मिलने वाला समान पाठ भी निरापद रूप से प्रामाणिक माना जाना चाहिए और शबे० द्वारा प्रस्तुत पाठ-भेद मान्य नहीं होना चाहिए । वास्तव में यह परिवर्तन साम्प्रदायिक प्रभाव के कारण हुआ ज्ञात होता है, क्योंकि राधास्वामी-संप्रदाय के सिद्धान्तों के अनुसार उनका (कबीर का) दृष्ट 'सत्य-पुरुष' निर्मल चैतन्य देश का धनी था जो ब्रह्म, और पारब्रह्म सब से ऊँचा है । उसी की भक्ति उन्होंने बढ़ाई है और अपनी बानी में उसी परम पुरुष और उसके धुन्यात्मक नाम की महिमा गायी ।^१ इसी सिद्धांत के आधार पर उन्होंने यह निर्णय भी निकाल लिया है कि इसके अतिरिक्त (अर्थात् 'सत्य-पुरुष', 'परम पुरुष' 'नाम' आदि के अतिरिक्त 'राम' 'हरि', 'गोविन्द' आदि पाठ के साथ आने वाले) जो शब्द कबीर साहेब के नाम से प्रसिद्ध हैं, वह पूरे या थोड़े-बहुत क्षेपक हैं ।^{३६} इस कसौटी पर जो पद खरे नहीं उतरे हैं उन्हें, प्रक्षिप्त समझ कर, पुस्तक में सम्मिलित नहीं किया गया है; इस बात की धोषणा प्रत्येक भाग के आरम्भ में ही कर दी गयी है : "जिसमें कबीर साहेब के अति मनोहर पद शोध कर और क्षेपक निकाल कर छापे गये हैं ।" राधास्वामी-संप्रदाय वालों का (जिसमें वेलवेडियर प्रेस के स्वामी भी सम्मिलित हैं) विश्वास है (जैसा कि बीजक के सम्बन्ध में कबीरपंथियों का या 'गुरु ग्रन्थ साहेब' के सम्बन्ध में सिक्खों का है) कि इसकी एक-एक मात्रा परम प्रामाणिक है, इसकी प्रामाणिकता पर अविश्वास करने वाला या इसके पाठ में परिवर्तन करने वाला सीधे नर्क में पड़ेगा । इस विषय में अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह उनकी श्रद्धा का प्रश्न है ।

राधास्वामी-प्रभाव के अतिरिक्त शबे० में परवर्ती कबीरपंथी प्रभाव भी मिलता है । अतिरिक्त रूप से मिलने वाले पदों में ऐसे अनेक हैं जो स्पष्ट रूप से कबीरपंथियों की परवर्ती रचनाएँ ज्ञात होते हैं । उदाहरण

^{३६} शबे० माग१, भूमिका पृष्ठ २ (तुल० शिवप्रत लाल द्वारा संपादित 'बीजक' की भूमिका में 'कबीर साहिब का दृष्ट' शीर्षक निबंध) ।

के लिए प्रथम भाग में 'भेद बानी' के शब्द २२, २३ तथा द्वितीय भाग में 'भेद बानी' शब्द १८ लिये जा सकते हैं, जिनमें नाना लोकों, शून्य-लोकों तथा उनके अधिष्ठाता देवताओं और 'चकरियों' का विस्तृत विवरण दिया हुआ है। किसी-किसी में तो कबीर का नाम भी नहीं मिलता, किन्तु उन्हें मूल वाणी के रूप में स्वीकृत किया गया है। यहाँ ऐसे पदों की चर्चा की जा रही है जो शबे० को छोड़ अन्य किसी भी प्रति में नहीं मिलते।

अन्य विशेषताएँ

पाठ में मनमाना संशोधन करने के कारण शबे० की लिपिजनित विकृतियाँ पकड़ने का अवसर बहुत कम रह जाता है, फिर भी ऐसी विकृतियाँ मिलती अवश्य हैं। इसमें उर्दू की अपेक्षा नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ अधिक मिलती हैं अतः पहले उन्हीं का विवरण दिया जा रहा है।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—(१) शबे० (२) भेद शब्द १५ की चौथी पंक्ति का पाठ है : धनुष बान ले चला पारथी, धनुआ के परच नहीं है रे। दा० नि० तथा सं० (ग्रन्था० पद २१२) में 'परच' के स्थान पर 'पनच' पाठ मिलता है। आशय यहाँ धनुष की प्रत्यंचा से है। सं० 'प्रत्यञ्चा' से हिंदी में 'पनच' होता है, न कि 'परच'। अतः शबे० का पाठ यहाँ विकृत है। कैथी अथवा प्राचीन नागरी लिपि में नकार और रकार में विशेष रूप-वैभिन्य नहीं होता था। इसी भ्रम से किसी प्रतिलिपिकार ने 'पनच' (=प्रत्यंचा) को 'परच' पढ़ लिया और वही अशुद्ध पाठ शबे० में भी आ गया।

२. शबे० (१) विरह-प्रेम ७ में चौथी पंक्ति का पाठ है : गुरुदेव मेरे पाहुन आये मैं जोबन में माती। उक्त पद दा० नि० गौड़ी १ तथा गु० आसा २४ में भी मिलता है। दा० नि० में उक्त पंक्ति का पाठ है : रामदेव मोरे पाहुनैं आए मैं जोबन में माती। 'मैंमाती' (=मदमाती) एक शब्द है, किन्तु शबे० में 'मैं' को 'में' के अर्थ में अलग कर 'माती' पृथक् रखा गया है, जो नागरी में ही स्वाभाविक रूप से हो सकता है।

३. शबे० (१) चिता० उप० शब्द ३८ की तीसरी पंक्ति का पाठ है : घाटे बाढ़े सब जग दुखिया क्या गिरही बैरागी हो। नि० गौड़ी १३६ में 'घाटे बाढ़े' के स्थान पर 'हाटे बाटे' और बी० ६१ में 'बाटे बाटे' पाठ है—अर्थात् शबे० के 'बाढ़े' के स्थान पर नि० तथा बी० में 'बाटे' पाठ आता है। वास्तव में 'हाटे बाटे' या 'घाटे बाटे' (=जो जहाँ है वहीं) एक मुहावरा है (तुल० घाट बाट कहुं अटक होइ नहि सब कोउ देखि निबाहि—सूर) जो नागरी 'ट' और 'ड' के

अम से शवे० में 'घाटे वाड़े' (= घट बढ़ कर) हो गया है ।

४. शवे० (३) साधु-महिमाशब्द १ की प्रथम तथा चतुर्थ पंक्तियों का पाठ है : साधु घर शील संतोष विराजै । आसन अटल अरु छमा अग्र धुज तन तजि अंत न धावै ॥ उक्त पद शक० गौरी ३ में भी मिलता है, और उसमें इन पंक्तियों का पाठ है : शील संतोष विराजै साधु घट । आसन अटल क्षमा धीरज धरु तन तजि अंत न जावै । शवे० का पाठ यहाँ स्पष्ट रूप से विकृत है । शील-संतोष घट (= शरीर) के ही गुण होते हैं, घर के नहीं । इसी प्रकार शवे० के 'आसन अटल अरु छमा अग्र धुज' के अर्थ में भी बड़ी कष्टकल्पना करनी पड़ती है । इसके विपरीत शक० के पाठ से भाव सरलता से स्पष्ट हो जाता है । शवे० की पहली विकृति नागरी 'ट' और 'र' के सादृश्य के कारण और दूसरी 'ट' तथा 'द' के सादृश्य के कारण हुई ज्ञात होती है ।

फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियाँ—शवे० में उर्दू-लिपि-जनित विकृतियाँ बहुत कम हैं । उनके केवल दो उदाहरण मिलते हैं जो निम्नलिखित हैं—

१. शवे० (३) मिश्रित शब्द १४ की तीसरी तथा चौथी पंक्तियों का पाठ है : को काको पुरुष कौन काकी नारी । अकथ कथा जम दुष्ट पसारी । यह पद दा० नि० गु० तथा बी० में भी मिलता है । बी० में 'दुष्ट' के स्थान पर 'दिष्ट' पाठ मिलता है । 'दिष्ट' का 'दुष्ट' बन जाना उर्दू में ही संभव है ।

२. शवे० (३) प्रेम ३७-२ का पाठ है : बरसत बिसद अमी के बादर भीजत है कोइ संत । शक० गौरी १० में 'बिसद' के स्थान पर 'शब्द' पाठ मिलता है, जो प्रसंगोचित लगता है । उर्दू 'सबद' में यदि 'बे' का नुक्ता ज़रा सा और पीछे हो जाय तो 'सबद' को 'बसद' या 'बिसद' आसानी से पढ़ा जा सकता है, क्योंकि 'बे' और 'सीन' के शोशे प्रायः एक से होते हैं ।

पंजाबी-प्रभाव—पंजाबी-प्रभाव के भी कुछ उदाहरण शवे० में मिलते हैं, जो निम्नलिखित हैं—

१. शवे० (१) चिता० उप० ७२-७ : बावरिया ने बावर डारी फंद जाल सब कीता रे । तुल० नि० सोरठि ८०-७ : बावरियाँ बन में फंद रोपै संग में फिरै नचीता ।

२. शवे० (१) चिता० उप० ८५-३ : नाचे कूदे क्या होय भैना ॥

३. शवे० २ चिता० ४२-१ : किसी दा भइया क्या ले जाना । ओहि गया

ओहि गया भंवर निदाना ॥

उक्त पंक्तियों में 'कीता' (=किया), 'भैना' (=बहन), 'किसी दा' (=किसी का), 'ओहि गया' (=वह गया) स्पष्टतया पंजाबी के प्रयोग हैं।

परवर्ती प्रक्षेप—शबे० में कुछ अतिरिक्त पद ऐसे मिलते हैं जिनकी भाषा तथा शब्दावली अत्यन्त आधुनिक है। उदाहरण के लिए इसके प्रथम भाग में चिता० उप० के शब्द ३२ तथा विरह-प्रेम के शब्द २५ की कुछ पंक्तियाँ ली जा सकती हैं—

सुनता नहीं धुन की खबर अनहद का बाजा बाजता ।

रस मंद मंदिर बाजता बाहर सुने तो क्या हुआ ॥

पोथी किताबें बांचता औरों को नित समभावता ।

त्रिकुटी महल खोजे नहीं बक बक मरा तो क्या हुआ ॥

सतरंज चौपड़ गंज था इक नर्द है बदरंग की ।

बाजी न लायी प्रेम की खेला जुआ तो क्या हुआ ॥

जोगी दिगम्बर सेवड़ा कपड़ा रंगे रंग लाल में ।

वाकिफ नहीं उस रंग से कपड़ा रंगे से क्या हुआ ॥ (शब्द ३२)

तथा हमन हैं इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या ।

रहें आजाद या जग से हमन दुनिया से घारी क्या ॥

न पल बिछुड़ें पिया हमसे हम बिछुड़ें पियारे से ।

उन्हीं से नेह लागी है हमन को बेकरारी क्या ॥ इत्यादि ॥ (शब्द २५)

पुनरावृत्तियाँ—शबे० में कुछ नहीं तो सोलह पद ऐसे हैं जो दो बार आते हैं । इनका निर्देश नीचे क्रमशः किया जा रहा है—

१. शबे० (१) सतगुरु-महिमा, शब्द २—

सतगुरु चरन भजस मन मूरख, का जड़ जन्म गंवावस रे ॥ टेक ॥

कर परतीत जपस उर अंतर, निसि दिन ध्यान लगावस रे ॥१॥

द्वादस कोस बसत तेरा साहेब, तहां सुरत ठहरावस रे ॥२॥

त्रिकुटी नदिया अगम पंथ जहं बिना मेंह भर लावस रे ॥३॥

दामिनि दमकत अंमृत बरसत, अजब रंग दरसावस रे ॥४॥

इंगला पिंगला सुखमन से धस, नभ मंदिर उठि धावस रे ॥५॥

लागी रहे सुरत की डोरी, सुन्न में सहर बसावस रे ॥६॥

बंकनाल उर चक्र सोधि के, मूल चक्र फहरावस रे ॥७॥

मकर तार के द्वार निरखि के, तहां पतंग उड़ावस रे ॥८॥

बिन सरहंद अनहद जहां बाजै, कौने सुर जहं गावस रे ॥९॥

कहैं कबीर सतगुरु पूरे से, तब परिचै सो पावस रे ॥१०॥

तुल० वही, भाग ३, भेद० शब्द ७—

सतगुरु सब्द गहो मोरे हंसा, का जड़ जन्म गंवावसु हो ॥टेक॥

त्रिकुटी धार वहै इक संगम, बिना मेघ भरि लावसु हो ॥१॥

लौका लौकै बिजुली तड़पै, अजब रूप दरसावसु हो ।

करहु प्रीति अभिअंतर उर में, कवने सुर लै गावसु हो ।

गगन मंदिल में जोति बरतु है, तहां सुरत ठहरावसु हो ॥२॥

इंगला पिंगला सुखमनि सोधो, गगन पार ठहरावसु हो ।

मकर तार के द्वारे निरखो, ऊपर गढ़ी उठावसु हो ॥३॥

बंकनाल षट खिरकि उलटि गै, भूल चक्र पहिरावसु हो ।

द्वादस कोस बसै मोर साहिब, सूना सहर बसवावसु हो ॥४॥

दूनों सरहद अनहद बाजै, आगे सोहंग दरसावसु हो ।

कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर लोक पहुंचावसु हो ॥५॥

दोनों में केवल क्रम का अंतर मिलता है । वैसे पाठ स्थूल रूप से दोनों का एक ही है ।

२. तुल० शबे० (१) सतगुरु-महिमा, शब्द ६—

साईं दरजी का कोई मरम न पावा ॥टेक॥

पानी की सुई पवन के धागा, अष्ट मास नव सीयत लागा ॥१॥

पांच पेंवद की बनी रे गुदरिया, तामें हीरा लाल लगावा ॥२॥

रतन जतन का मुकुट बनावा, प्रान पुरुष को लै पहिरावा ॥३॥

साहेब कबीर अस दरजी पावा, बड़े भाग गुरु नाम लखावा ॥४॥

तथा (२) मिश्रित, शब्द १३—

हरि दरजी का मरम न पाया, जिन यह चोला अजब बनाया ॥१॥

पानी की सुई पवन के धागा, आठ मास दस सीवत लागा ॥२॥

पांच तत्त के गुदरी बनायी, चांद सुरज दुइ थगली लगाई ॥३॥

जतन जतन करि मुकुट बनाया, ता बिच हीरा लाल जड़ाया ॥४॥

आपहि सीवे आप बनावे, प्रान पुरुष को ले पहिरावे ॥५॥

कहै कबीर सोई जन मेरा, या चोले का करै निबेरा ॥६॥

दूसरे में केवल पाँचवीं पंक्ति अधिक है और अंतिम पंक्ति का पाठ कुछ भिन्न है, शेष पाठ स्थूल रूप से एक ही है ।

इसी प्रकार तुल० शबे० (१) सतगुरु महिमा, शब्द ६ तथा विरह प्रेम, शब्द १५;

शबे० (१) चिता० उप० १७ तथा (२) भेद ८; (१) चिता० उप० ४० तथा (२) उप० २०; (१) चिता० उप० ५६ तथा (२) उप० ३५; (१) चिता० उप० ७६ तथा वही, भेद २५; (१) चिता० उप० ८८ तथा (२) चिता० ३; (२) उप० ६ तथा २६; (२) उप० ६ तथा भेद ४; (२) उप० १८ तथा प्रेम; ३२ (२) उप० ३२ तथा (३) महिमा नाम ५; (२) होली ६ तथा १७; (२) होली २२ तथा (४) होली २; (२) मंगल २ तथा (४) मंगल १०; (२) मिश्रित २ तथा (३) मिश्रित १४।

पूरे-पूरे पदों की इतनी अधिक पुनरावृत्तियाँ मिलने से यह सिद्ध होता है कि शबे० का संकलन कदाचित् एक नहीं बल्कि अनेक प्रतियों के आधार पर किया गया है। पदों को छाँटने में पूर्ण सावधानी न रखने के कारण पहले छपे हुए पद दूसरे भागों में (और कभी-कभी उसी भाग में) दोबारा छप गये हैं। प्रत्येक भाग के आरम्भ में पदों की आरम्भिक पंक्तियाँ अकारादिक्रम से दी गयी हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि शबे० के संपादक ने उक्त सूची के प्रथम अक्षर मिला कर ही पदों को छाँटा है, उनकी पूर्णरूप से तुलना नहीं की। यही कारण है कि प्रथम पंक्ति में थोड़ा भी हेर-फेर रहने पर वही पद पुनः सम्मिलित कर लिये गये हैं।

पदों में अतिरिक्त पंक्तियों की भी पुनरावृत्ति मिलती है। उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. शबे० (१) चिता० उप० शब्द ६४ की छठी पंक्ति भाग २ चिता० १३ की पाँचवीं पंक्ति के रूप में फिर मिलती है। दोनों का एक ही पाठ है।

२. तुल० शबे० (१) चिता० उप० ६६ की पंक्ति ४, ५, ८, ९,—

पेट पकरि के माता रोवे बाहिं पकरि के भाई।

लपट भपटि के तिरिया रोवे हंस अकेला जाई ॥

चार गजी चर गजी मंगाया चढ़ा काठ की घोड़ी।

आरों कोने आग लगाया फूंक दियो जस होरी ॥

तथा उसी में आगे शब्द १३५ की पंक्ति ३, ४, ७, ८—

चार जने मिलि लेन को आये लियो काठ की घोड़ी।

जोय लकड़ियां फूंक असि दीन्हों जस बिन्दावन की होरी ॥

पाटी पकरि वाकी माता रोवे बहियां पकरि संग माई।

लट छिटकाए तिरिया रोवे बिछुरत है मोरी हंस की जोरी ॥

केवल शाब्दिक अंतरों को छोड़ कर दोनों पाठ प्रायः समान ही हैं।

३-४. इसी प्रकार तुल० शबे० (१) भेद २६-६, ७ तथा (३) भेद ४ और

(४) मंगल ४=१५, १६ तथा वही १२-२३, २४ ।

कुछ अन्य विशेषताएँ—शबे० में पदों के साथ-साथ यत्र-तत्र साखियाँ भी मिलती हैं और साखियों के रूप में उनका निर्देश भी मिलता है । उदाहरण के लिए देखिए शबे० (२) भेद २ के पश्चात् की दो साखियाँ । किन्तु कहीं-कहीं उसके पदों में भी कुछ पंक्तियाँ ऐसी मिलती हैं जो अन्यत्र साखियों के रूप में हैं । उनका निर्देश नीचे किया जा रहा है :

१—शबे० (२) प्रेम ७ की आरम्भिक आठ पंक्तियाँ हैं—

जो तू पिय की लाड़िली अपना करि ले री ।

कलह कल्पना मेटि के चरनन चित दे री ॥

पिय को मारग कठिन है खांडे की धारा ।

डिगमिगाय तौ गिर पड़े नहिं उतरै पारा ॥

पिय को मारग सुगम है तेरो चाल अनेड़ा ।

नाच न जानै बावरी कहै आंगन टेढ़ा ।

जो तू नाचै नीकसी तो घूँघट कैसा ।

घूँघट का पट खोल दे मत करै अंदेसा ॥

उक्त चारों द्विपदियाँ अन्यत्र चार साखियाँ हैं । पहली दोनों पंक्तियाँ साबे० १३-१५ तथा सासी० ५३-११ पर साखियों के रूप में मिलती हैं । वहाँ इनका पाठ है—

जो तू पिय की प्यारनी, अपना करि ले री ।

कलह कल्पना मेटि करि, चरनों चित दे री ॥

दूसरी द्विपदी पाँच प्रतियों में साखी के ही रूप में मिलती है, तुल० दा० ४५-२५, नि० ५०-५३, सा० १५-२७, साबे० १२-५, सासी० १२-१२—

भगति दुहेली रांम (सासी० नाम साबे० गुरुन) की, जस खांडे की धार ।

डगमगाइ तौ गिरि पड़े, नहिंतर उतरै पार ॥

तीसरी द्विपदी साबे० १५-५३, सासी० १५-६२ पर मिलती है जिसका पाठ है—

पिय का मारग सुगम है, तेरा चलन अनेड़ ।

नाच न जानै बावरी, कहै आंगना टेढ़ ॥

और अंतिम द्विपदी साबे० १५-५२ तथा सासी० १५-६१ पर मिलती है—

पिय का मारग कठिन है, खांडा हो जैसा ।

नाचन निकसी बापुरी, फिर घूँघट कैसा ॥

इस प्रकार के और भी कई उदाहरण मिलते हैं, जिनका संक्षिप्त निर्देश नीचे किया जा रहा है : २—तुल० शबे० (३) विरह-प्रेम १-६, ७ (पद) तथा दा० २६-१०, सासी० १६-६७ (साखी); ३—तुल० शबे० (३) सूरमा २-६, ७ (पद) तथा साबे० ८-६२, सासी० २४-२० (साखी); ४—तुल० शबे० (३) दीनता २-६, ७ (पद) तथा गु० सलोक २३८ और सासी० ८३-१६ (साखी)।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शबे० का पाठ जिन प्रतियों से लिया गया है उनके लिपिकर्ताओं द्वारा पदों के बीच-बीच में कबीर की साखियाँ भी प्रसंगानुक्रमिक जोड़ी हुई थीं।

इसके अतिरिक्त इस बात के भी उदाहरण मिलते हैं कि विभिन्न पदों की विभिन्न पंक्तियाँ लेकर शबे० में एक नया अतिरिक्त पद खड़ा कर लिया गया है। उदाहरण के लिए तीसरे भाग के भेद-प्रकरण का चौथा शब्द लिया जा सकता है, जिसका पाठ निम्नलिखित है—

बिन गुरु ज्ञान नाम ना पड़ै बिरथा जनम गंवाई हो ॥८॥

जल भरि कुम्भ धरे जल भीतर बाहेर भीतर पानी हो ॥

उलट कुम्भ जल जलहि समझै तब का करिहो ज्ञानी हो ॥१॥

बिनु करताल पखावज बाजे बिनु रसना गुन गाया हो ।

गावनहार के रूप न रेखा सतगुरु अलख लखाया हो ॥२॥

है अथाह थाह सबहिन में दरिया लहर समानी हो ।

जाल डारि का करिहो धीमर मीन कै होइगे पानी हो ॥३॥

पंछी के खोज मीन के मारग ढूँढ़े ना कोई पाया हो ।

कहै कबीर सतगुरु मिलि पूरा भूले को राह बताया हो ॥४॥

इसकी पंक्ति २ तथा ३ दा० गौड़ी ४४ में पंक्ति ४ तथा ५ के रूप में मिलती हैं, पंक्ति ४ तथा ५ दा० नि० स० (ग्रन्था० पद १६५) तथा बी० शब्द २४ में पंक्ति ६, ७ के रूप में मिलती हैं। यही नहीं यह दोनों पंक्तियाँ शबे० में भी अन्यत्र (भाग १, भेद २६) मिलती हैं। अंतिम दो पंक्तियों का भाव भी शबे० के उक्त पद की अन्तिम पंक्तियों से मिलता है। इस प्रकार केवल तीन पंक्तियाँ ऐसी बच जाती हैं जो इसमें नयी हैं और जिनके मिश्रण से यह नया पद बना लिया गया है। इस प्रकार के सम्मिश्रण स्मृति के आधार पर किए हुए ज्ञात होते हैं।

शबे० में ऐसे उदाहरण और भी मिलते हैं जिनकी चर्चा आगे संकीर्ण-सम्बन्ध के प्रकरण में आयेगी।

सा० प्रति का विवरण

यह ग्रन्थ जयपुर के मोतीझंगरी स्थान के कबीर-मंदिर में है। यह एक मोटे संग्रह-ग्रंथ का आरम्भिक अंश-मात्र है। सम्पूर्ण पोथी में २८७ × २ अर्थात् ५७४ पत्र हैं। कबीर की साखियाँ पहले के एक सौ ब्यालिस पत्रों तक मिलती हैं। साखी-ग्रन्थ के पश्चात् ज्ञानसागर, विवेकसागर आदि २६ अन्य कबीरपंथी ग्रन्थ भी मिलते हैं, जिनके सम्बन्ध में पीछे विचार हो चुका है। आकार में यह पोथी लगभग ७ इंच लम्बी और ६ इंच चौड़ी है। इसके प्रत्येक पृष्ठ में २१ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में १६-२० अक्षर आये हैं। पुष्पिका इस प्रकार है—

संवत् संख्या जानि मानि शुभ कीजिये । अष्टादस को साल इक्यासी लीजिये ॥
ज्येष्ठ मास शुभ जानि पक्ष कृष्ण सही । चतुर्दशी तिथि मानि चंद बासुर लही ॥

देश हुंदाहर मंगलकारी । जैपुर नगर तहां सुखकारी ॥

मोतीझंगरी मुक्ता रूप । तहां विराजै संत स्वरूप ॥

तिनको नाम प्रगट करि कहिए । सतगुरु पूरण पूरण लहिए ॥

तत शिष्य केशवदास गोसाईं । जिनके दरश परमपद पाई ॥

तिनको शिष्य भगवतीदासा । निज कर लिखौ ग्रंथ परकासा ॥

सीखैं सुनैं पढ़ैं निज नामा । तेही लहैं परम सुख धामा ॥

जिससे ज्ञात होता है कि मोतीझंगरी के साधु पूरणदास के पौत्र शिष्य साधु भगवतीदास ने इसे संवत् १८८१ वि० में ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी चन्द्रवार को लिख कर समाप्त किया।

पुष्पिका में साखियों की संख्या २,८८८ दी हुई है, किन्तु वास्तव में इसकी संख्या २,८०० से कुछ कम है। यह साखियाँ १०८ अंगों में विभाजित हैं।

यह रूपांतर यत्किंचित् अंतरों के साथ वैकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित 'सत्य कबीर का साखी-ग्रन्थ' नामक पुस्तक से मिलता है अतः सुविधा के लिए साखियों का स्थल-निर्देश उक्त मुद्रित संस्करण के ही अनुसार और पाठ का मिलान हस्तलिखित प्रति से किया गया है।

पाठ संबंधी विशेषताएँ

राजस्थानी प्रभाव—सा० में भी यत्र-तत्र राजस्थानी प्रयोग मिलते हैं, किन्तु उनकी संख्या उतनी अधिक नहीं है जितनी दा० या नि० में है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

१. सा० २०-१-२ : पाछा सूं हरि आवसी सगरी सौंज समेत ॥

(राज० 'आवसी' = हिन्दी 'आयेगे')
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

२. सा० २०-३-२ : कहिबेरी सोभा नहीं, देखे ही परमान ।

(राज० विभक्ति 'री' = हिन्दी 'की')

३. सा० ३६-१७-१ : सब आसन आसा तरां निवरति के को नाहि ।

(राज० विभक्ति 'तरां' = हिन्दी 'का' 'को', 'के लिए')

४. सा० ६९-१-२ : भांड़ा घड़िया मुख दिया, सोई भरगौ जोग ।

(राज० 'घड़िया' = हि० 'गढ़ा')

५. सा० ३०-१९-२ : बीछड़ियां मिलसी नहीं, ज्यों कांचली भुवंग ।

(राज० 'बीछड़ियां' = हिन्दी 'बिछुड़ने पर'; राज० 'मिलसी' = हिन्दी 'मिलेगा')

६. सा० ३३-७६-२ : कूर बड़ाई बूडसी, भारी पड़सी काल ।

७. सा० ३९-११ : अंदेसड़ौ न भाजिसी, संदेसौ कहियां ।

कै हरि आयां भाजिसी, कै हरि पासि गयां ॥

८. सा० ५८-२-२ : धीरे बैठ चपेटिसी, यों ले बूडै ज्ञान ।

९. सा० ९०-३०-२ : साहब लेखा मांगिसी, तब होसी कौन हवाल ।

१०. सा० ९०-१५ : हन्या सोही हजसि, भावै जाति विजांन ।

करि गहि चोटी तानिसी, साहब के दीवांन ॥

फ़ारसी जनित विकृतियाँ—दा० नि० गु० की भाँति सा० में भी फ़ारसी लिपि-संबंधी विकृतियाँ अधिक मिलती हैं। कैथी, नागरी आदि की विकृतियाँ अपेक्षाकृत कम हैं। गुरुमुखी की विकृतियों का एक भी उदाहरण नहीं मिलता। नीचे इन विकृतियों के क्रमशः उदाहरण दिये जा रहे हैं।

फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियाँ—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. सा० ९०-२८-२ का पाठ है : खालिक दर खूनी खड़ा, मार **मुंहो मुंह** खाय ॥
दा० नि० गु० तथा सासी० में 'मुंहो मुंह' के स्थान पर 'मुंहें मुंह' मिलता है, जो वस्तुतः स्वाभाविक प्रतीत होता है। सा० का 'मुंहो मुंह' उर्दू 'ये' की अव्यवस्था के कारण आया हुआ ज्ञात होता है।

२. सा० ३८-५-२ का पाठ है : मान बड़ी मुनिवर गले, मान सबन को खाय । दा० १६-१७ तथा बी० १४० में 'बड़ी' के स्थान पर 'बड़े' पाठ मिलता है। सा० का 'बड़ी' पाठ व्याकरण-विरुद्ध है। 'बड़े' से बिगड़ कर 'बड़ी' हो जाना उर्दू में ही सम्भव हो सकता है।

३. सा० ३०-९३-२ का पाठ है : जासी आटा लोन बिनु, **सूना** हुआ सरीर । दा० १२-४८, नि० २१-५३, गु० ११७, सावे० तथा सासी० १८-५९ में 'सूना' के लिए 'सोना' पाठ है, जिसके अनुसार इसका अर्थ होगा : सोने के

समान तुम्हारी यह काया आटा लोन की भाँति विनष्ट हो जायगी। इसके विपरीत सा० का पाठ अप्रासंगिक लगता है। उर्दू में सीन, वाव, नु और अलिफ़ मिला कर 'सूना' भी पढ़ सकते हैं और 'सोना' भी।

४. सा० ७२-२२-२ : अवरन वरनै बाहरी, करि करि थका उपाय। सा० का 'बाहरी' पाठ विकृत है। यह वास्तव में 'बाहिरे' का विकृत रूप है, नैसा कि न० ४०-६-२ तथा सासी० ८४-१६-२ में है। सा० की यह विकृति भी उर्दू 'ये' की अव्यवस्था के कारण हुई ज्ञात होती है।

अन्य उदाहरण—

५. सा० १-१६-२ : मेरा मारा फिर जिये, तो बहुरि न गहूँ कुबांण। तुल० सासी० २-१७-२ : तौ हाथ न गहूँ कमान।

६. सा० ८४-८-२ : फिरि फिरि भवन जौ चित धरै, तौ बाना बृद्ध लजाय। तुल० सासी० ३४-११६ : बाना बिरद लजाय।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ : नागरी-लिपि-जनित विकृतियों के उदाहरण कम मिलते हैं। जो भी विकृतियाँ मिल सकी हैं उनका निर्देश नीचे किया जा रहा है—

१. सा० २०-२७-२ : सुरति निरति परचा भया, तब खुलि गया सिंघु दुवार। तुल० दा० ५-२२ तथा नि० ८-३७ : खुलि गया सिंघु दुवार।

२. सा० ५६-२७-१ का पाठ है : अगम पंथ को मन गया, सुरति भई अनुबानि। सासी० में 'अनुबानि' के स्थान पर 'अगुबानि' पाठ मिलता है, जो अधिक प्रासंगिक है। हिन्दी 'ग' लिखने में यदि ऊपर की लकीर कुछ मोटी पड़ जाय और पहले की छोटी खड़ी लकीर यदि अस्पष्ट हो जाय तो 'ग' को सरलता से 'न' पढ़ा जा सकता है।

३. सा० ३६-६ का पाठ है : आसा तर्क सवादियां, नै नै गए सुजान। घने पंखेरू मारिया, जाजरि जोरि कमान॥ सासी० ६८-१० में 'आसा तरकस बांधिया' पाठ मिलता है। 'पंखेरू' मारने के प्रसंग में तरकस बाँधना ही स्वाभाविक लगता है। सा० के 'तर्क सवादियां' पाठ से कोई समुचित अर्थ नहीं निकलता। यह विकृति पद-विच्छेद के प्रमाद के कारण ज्ञात होती है, क्योंकि हस्तलिखित प्रतियों में प्रायः सभी शब्द एक में ही मिला कर लिखे जाते थे।

५. सा० १६-२-१ : अमर कुंज उरलाइया, गरजि भरे सब ताल। दा० ३-२, नि० ६-१२ तथा गुण० २०-५ में 'अंबर कुंजां कुरलियां' पाठ मिलता है

और सासी० १६-२ में 'अमर कुंज कुरलाइया' मिलता है। गु० में इसका भिन्न पाठ है। 'अंबर घनहर छाइया; किन्तु 'अंबर' शब्द इसमें भी है। 'कुंज' का अर्थ है कौंच पक्षी। यह साखी 'विरह अंग' की है। दा० नि० तथा गुण० द्वारा प्रस्तुत पाठ के अनुसार इसका अर्थ होगा : कौंच पक्षी आकाश में कुररने लगे (=बोलने लगे) तो गरज के साथ वर्षा हुई और ताल-तलैया भर गये। इस प्रसंग में 'कुरलिया' या 'कुरलाइया' पाठ ही मूल के निकट का प्रतीत होता है, सा० के 'उरलाइया' पाठ का कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता। नागरी में 'कु' और 'उ' में प्रायः भ्रम हुआ करता है। सा० की विकृति कदाचित् इसी भ्रम के कारण हुई है।

सा० में पाठ-विकृतियों के अन्य उदाहरण भी मिलते हैं जो सा० के अतिरिक्त अन्य प्रतियों में भी आने के कारण आगे संकीर्ण-संबंध के प्रकरण में दिये गये हैं। यहाँ केवल ऐसी विकृतियों की चर्चा हुई है जो सा० में स्वतंत्र रूप से मिलती हैं।

पुनरावृत्तियाँ—सा० में सत्रह साखियाँ ऐसी हैं जो दो बार आती हैं। नीचे उनका स्थल-निर्देश किया जा रहा है—

तुल० (१) सा० ७-४ तथा ४०-३; (२) सा० २०-५८ तथा ३४-४३; (३) २०-७१ तथा ६६-१५; (४) २१-१४ तथा ३२-३; (५) २६-२ तथा २६-१०; (६) ६१-२१ तथा ६१-३५; (७) ३०-३७ तथा ३४-२५; (८) ३४-१७ तथा ४३-४३; (९) ५५-३८ तथा १०१-५; (१०) ५७-१५ तथा ६१-१२; (११) २६-२६ तथा ८५-३५; (१२) ६३-३ तथा ६४-६; (१३) ७६-१३ तथा ८८-१ (७८-३६ भी); (१४) ६०-२८ तथा ६०-३०; (१५) ६०-१५ तथा ८७-७; (१६) १०३-२ तथा १०३-४; (१७) ४६-४ तथा ७४-२।

इतनी अधिक पुनरावृत्तियों से सा० प्रति का आदर्श-बाहुल्य सिद्ध होता है।

साबे० प्रति का विवरण

बेलवेडियर प्रेस ने 'शब्दावली' के अतिरिक्त कबीर की साखियों का भी एक संकलन 'कबीर साहब का साखी-संग्रह' नाम से दो भागों में छपाया है। संग्रह का सर्वप्रथम संस्करण कब छपा था, यह ठीक ठीक ज्ञात नहीं, किन्तु उसका संशोधित संस्करण अक्टूबर सन् १९२६ ई० में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत अध्ययन में पाठ-मिलान इसी द्वितीय संस्करण पर आधारित है। आरम्भ में इसके सम्पादक ने एक पृष्ठ में अपना 'निवेदन' छपा है जिससे ज्ञात होता है कि उनके द्वारा प्रकाशित साखी-संग्रह मुख्यतया तीन प्रतियों के आधार पर तैयार किया ग। यहाँ

पहली प्रति लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से छपी है और बाबा युगलानंद कबीर-पंथी द्वारा संपादित है; दूसरी और तीसरी हस्तलिखित प्रतियाँ हैं जो क्रमशः बाँदा के बाबू सरजू प्रसाद, मुवाफ़ीदार और वेस्टकोस्ट के साधू साहबदास से उक्त सम्पादक महोदय को मिली थीं। वस्तुतः इन्हीं दोनों हस्तलिखित प्रतियों से लखनऊ-संस्करण की त्रुटियों का परिहार कर एक नया साखी-संग्रह तैयार कर लिया गया है। प्रतियों का अन्य कोई विवरण प्राप्त नहीं और न उन सिद्धांतों का कोई उल्लेख हुआ है जिनके आधार पर प्रामाणिकता अथवा अप्रामाणिकता में विवेक किया गया है।

इस पुस्तक में कुल २,१२८ साखियाँ हैं जो ८४ अंगों में विभाजित मिलती हैं। भारतीय साहित्य में ८४ संख्या का बड़ा महत्व है^{३०} अंगों की यह संख्या उक्त परम्परा के अनुकूल निर्धारित की हुई ज्ञात होती है।

सम्पादक ने बताया है कि लखनऊ की छपी हुई प्रति और उपर्युक्त हस्तलिखित प्रतियों में अनेक साखियाँ दो-दो, तीन-तीन बार भिन्न-भिन्न अंगों में दी हुई थीं। इनको छाँट कर निकालने में संपादक को बड़ा परिश्रम करना पड़ा। इतना परिश्रम करने पर भी सावे० के पहले संस्करण में बहुत सी पुनरावृत्तियाँ रह गयी थीं। अधिकांश द्वितीय संस्करण में छाँटी गयीं। इतनी काट-छाँट होने पर अभी दस-बीस नहीं, १०० से भी अधिक साखियाँ ऐसी हैं जो सावे० में एक से अधिक स्थलों पर कभी केवल शाब्दिक अंतरों के साथ और कभी ज्यों की त्यों दुहरा उठी है। विस्तार-भय से नीचे इनका स्थल-निर्देश मात्र किया जा रहा है—

तुल० (१) सावे० १-२४ तथा १-१०५; (२) १-२६ तथा ७१-२४; (३) १-१२ तथा १-३०; (४) १-६६ तथा १५-६८; (५) १-७३ तथा ४५-१; (६) १-८० तथा १-६२; (७) १-८५ तथा ८-७०; (८) १-६३ तथा ५७-७; (९) १-१०७ तथा १०८; (१०) १-११७ तथा ८४-५०; (११) २-१४ तथा ५०-२८; (१२) २-१५ तथा ३७-४७; (१३) ४-५ तथा ५६-२४; (१४) १४-५२ तथा ३३-४४ तथा ४०-११ (तीन बार); (१५) १-३६ तथा ५७-१५; (१६) १-८० तथा १-६२; (१७) १-८६ तथा ८-७१; (१८) ६-१२ तथा १५-३३; (१९) ६-२० तथा ८४-२७; (२०) ६-२३ तथा ८४-२८; (२१) ६-२४ तथा ३७-४४; (२२) ६-२५ तथा ८४-२२; (२३) ६-२६ तथा ८४-२३; (२४) ६-२७ तथा

३०. विस्तृत जानकारी के लिए दे० 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में अग्ररत्न नाहटा का 'चौरासी संख्यात्मक-संग्रह' शीर्षक का प्रमाण।
 Gurukul Kangri Collection, Haridwar

८४-२४; (२५) ६-२८ तथा ८४-२५; (२६) ७-२६ तथा ७४-१३; (२७) ७-२७
 तथा ४०-५; (२८) ८-२७ तथा ८-६५; (२९) ८-३६ तथा ८-७४; (३०) ११-६
 तथा १६-३५; (३१) १२-१७ तथा ५०-११; (३२) १२-२० तथा ५०-१२; (३३)
 १३-२६ तथा ५३-४; (३४) १२-२८ तथा १६-५०; (३५) १२-३१ तथा ३४-६०
 (३६) १३-६ तथा ४३-४२; (३७) १३-१८ तथा ८४-३; (३८) १४-६८ तथा
 १६-७७; (३९) १५-१६ तथा ३४-४७; (४०) १५-२० तथा ३६-२०; (४१)
 १५-२१ तथा ३६-१६; (४२) १५-६७ तथा ३५-१७; (४३) १५-४० तथा ३३-
 १०; (४४) १६-२८ तथा ७०-१२; (४५) १७-६ तथा ७०-६; (४६) १७-६ तथा
 ५०-५; (४७) १८-६ तथा ४३-५१; (४८) १८-१० तथा ४६-२५; (४९) १८-११
 तथा ८४-५; (५०) १८-२३ तथा १६-७०; (५१) १८-१४ तथा ७१-१६; (५२)
 १८-२५ तथा ४३-६; (५३) १८-३४ तथा ४५-२३; (५४) १६-७ तथा १६-१८६
 (५५) १६-६ तथा ८४-५४; (५६) १६-१२ तथा ८४-३६; (५७) १६-५७ तथा
 १६-१६६; (५८) १६-६४ तथा ३७-४; (५९) १६-६८ तथा ३७-३; (६०) १६-
 ७३ तथा ७४-६; (६१) १६-७४ तथा ७४-१; (६२) १६-७५ तथा ७४-३; (६३)
 १६-८४ तथा १६-१६६; (६४) १६-८५ तथा १६-१६८; (६५) १६-८६ तथा
 १६-१७३; (६६) १६-८७ तथा १६-१७१; (६७) १६-१६४ तथा ५०-१५; (६८)
 १६-८५ तथा ५४-१; (६९) १६-११३ तथा ८४-३०; (७०) १६-१२१ तथा
 १६-१७६; (७१) १६-१६३ तथा ८४-३०; (७२) १६-१६५ तथा ८४-२६; (७३)
 २२-६ तथा ८४-७१; (७४) २३-३ तथा ८३-११; (७५) २७-४ तथा ५३-११;
 (७६) २३-२ तथा ७१-४४; (७७) ३१-११ तथा; (७८) ३२-३ तथा ८४-७६;
 (७९) २६-८ तथा ४७-३८; (८०) ३३-६ तथा ८४-७६; (८१) ३३-२४ तथा
 ५६-६; (८२) ३३-२५ तथा ५६-१०; (८३) ३३-४२ तथा ३६-५०; (८४) ३३-४३
 तक ८०-३; (८५) ३६-२३ तथा ७२-३८; (८६) ३७-८ तथा ५७-२१; (८७)
 ३७-११ तथा ६४-४; (८८) ३७-१४ तथा ६२-५; (८९) ३७-३८ तथा ६७-२०;
 (९०) ३७-४० तथा ६६; (९१) ३७-४१ तथा ६८-८; (९२) ३७-४८ तथा
 ५६-३; (९३) ३७-४६ तथा ८४-६५; (९४) ३७-५१ तथा ८३-१३; (९५)
 ३७-५२ तथा ८३-८; (९६) ३८-११ तथा ८४-८७; (९७) ४७-३ तथा ४६-२६;
 (९८) ४३-३० तथा ४३-५८; (९९) ४३।६६ तथा ८४-७२; (१००) ४६-२८
 तथा ६५-७; (१०१) ४७-२६ तथा ६६-२; (१०२) ४७-६८ तथा ८२-७; (१०३)
 ४७-३६ तथा ७१-३५; (१०४) ५०-२६ तथा ७४-१०; (१०५) ६०-१ तथा
 ७२-१४; (१०६) ७१-२२ तथा ७४-३ ।

सावे० में पाठ का संशोधन भी यथाशक्ति किया गया है, किन्तु मूल आदर्श की अनेक पाठ-विकृतियाँ अब भी उसमें ज्यों की त्यों वर्तमान हैं और द्वितीय संस्करण तक भी उनका संशोधन नहीं हो सका है। फ़ारसी लिपि के कारण पैदा हुई पाठ-विकृतियों के उदाहरण अन्य प्रतियों की भाँति सावे० में भी यथेष्ट मात्रा में मिलते हैं। नागरी लिपिजनित विकृतियाँ उससे कुछ कम मिलती हैं। नीचे दोनों का विवरण दिया जा रहा है।

फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियाँ—उदाहरण निम्नलिखित हैं :

१. सावे० १४-३६-१ का पाठ है : अंबर कुज्जा करि लिया, गरजि भरे सब ताल। दा० ३-२, नि० ६-१२ तथा गुण० २०-५२ में इसका पाठ है : अंबर कुंजां कुरलियां, सासी० १६-२ में इसका पाठ है : अमर कुंज कुरलाइयां। दा० नि० सासी० तथा गुण० के अनुसार इसका अर्थ होगा : आकाश में क्रांच पक्षी विलाप करने लगे और वर्षा से सब ताल-तलैया भर गये। सावे० की पाद-टिप्पणी में 'कुज्जा' का अर्थ मिट्टी का भाँड़ा (=कुल्हड़, कुज्झा) दिया गया है। सावे० के सम्पादक ने इसका अर्थ कदाचित् यह लगाया है कि आकाश को कुल्हड़ बना लिया और गरज-वरस कर सब ताल भर दिया (जैसे कोई कुल्हड़ से पानी उलेड़कर भर दे!)। सावे० का न तो यह अर्थ ही संतोषजनक ज्ञात होता है और न पाठ ही। इसके विपरीत दा० नि० सासी० तथा गुण० का पाठ सार्थक और प्रामाणिक जान पड़ता है। दा० नि० आदि के 'कुरलियां' से सावे० के 'करि लिया' पाठ की विकृति पर विचार करने से यह अनुमान होता है कि सावे० का पाठ कदाचित् किसी उर्दू प्रति से आया है। उर्दू में ज़वर, ज़ेर, पेश की अव्यवस्था के कारण 'कुरलिया' को 'करि लिया' भी पढ़ा जा सकता है। 'कुंजा' का 'कुज्जा' नागरी-लिपि-जनित प्रमाद के कारण हुआ है।

२. सावे० १६-२६-२ का पाठ है : कबीर गर्वन कीजिए, अस जोवन की आस। दा० १२-८, नि० १६-६, सा० ३०-१८ तथा सासी० १७-२ में 'अस' के स्थान पर 'इस' आता है। 'अस' (=ऐसे) का प्रयोग ऐसे स्थलों पर किया जाता है जहाँ उसके सम्बन्ध में कोई पूर्व विवरण आ चुका हो। यहाँ ऐसे विवरण के अभाव में 'अस' पाठ निरर्थक होगा। वास्तव में यहाँ अन्य प्रतियों का 'इस' पाठ शुद्ध है और सावे० का 'अस' उसी का विकृत रूप ज्ञात होता है। यह परिवर्तन भी उर्दू में ही संभव है।

३. सावे० ४३-४५ का पाठ है : कबीर मन मधुकर भया कीया नर तरु बास। कंवल जो फुला नीर बिनु, कोइ निरखै निज दास॥ दा० ५-६, नि० ८-

६, सा० २०-५ तथा सासी० १४-५३ में 'नर तरु' के स्थान पर 'निरंतर' पाठ मिलता है जो अधिक प्रासंगिक लगता है। सावे० के पाठ का अर्थ यदि यह लिया जाय कि मन रूपी भीरे ने नर रूपी वृक्ष पर वास लिया है, तो भी यह अर्थ संतोष-जनक नहीं होगा; क्योंकि भीरा फूल की ओर आकर्षित होता है, वृक्ष की ओर नहीं। उर्दू 'निरंतर' में यदि दूसरे 'तु' का नुक्ता छूट जाय या 'ते' के नुक्तों से मिल जाय तो इसे सरलता से 'नर तरु' पढ़ा जा सकता है। सावे० की पाठ विकृति का यही कारण ज्ञात होता है।

४. सावे० ८-४१ का पाठ है : कायर भया न छूटिहौ, कछु सूरता समाय। भरम भालका दूरि करि, सुमिरन सील मजाय ॥ दा० ४५-१, नि० ५०-३, सा० ८४-१, सासी० २४-८५, स० ६१-२ तथा गुण० ७८-३ में 'सील' के स्थान पर 'सेल' पाठ मिलता है। यहाँ 'भरम' की उपमा 'भालका' (=गाँसी या भाला) से दी गयी है; अतः 'सुमिरन' के साथ भी किसी अस्त्र का उल्लेख होना चाहिए; क्योंकि एक अस्त्र छोड़ कर दूसरे को ग्रहण करने का आदेश दिया गया है। इस आवश्यकता की पूर्ति 'सेल' पाठ से ही हो सकती है, 'सील' से नहीं। 'सुमिरन' और 'सील' दोनों ही सात्विक गुण हैं और एक से दूसरे की उपमा देने में कोई संगति नहीं। उर्दू में 'सेल' और 'सील' एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं अतः एक के स्थान पर दूसरे का भ्रम हो सकता है।

५. दा० २-१६, नि० ११-४५, सासी० १३-७६ तथा गु० २२३ का पाठ है : केसौ कहि कहि कूकिए, न सोइए असरार। रात दिवस के कूकने, कबहुं क लगे पुकार ॥ सावे० ७४-६ में 'असरार' के स्थान पर इसरार पाठ है। 'असरार' का अर्थ होता है : निरंतर या लगातार। कहीं-कहीं इसका अर्थ 'शौक' भी किया गया है किन्तु सावे० की टिप्पणी में, पता नहीं किस आधार पर, 'इसरार' का अर्थ 'भेद' दिया गया है। 'असरार' शब्द कबीर में अन्यत्र भी 'निरंतर' के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है; तुल० दा० आसावरी ४२-६ तथा नि० आसावरी ३७-६ : सीस चरन कर कंपन लागे नैन नीर असराल बहै। अतः सावे० का 'इसरार' पाठ निश्चित रूप से प्रयोग-विरुद्ध और विकृत है। यह विकृति भी उर्दू मूल के ही कारण ज्ञात होती है।

स्थल-संकोच के कारण नीचे शेष विकृतियों का संक्षिप्त निर्देश-मात्र किया जा रहा है। सावे० की इन विकृतियों को उर्दू मूल के ही कारण आया हुआ समझना चाहिए।

६. सावे० १८-३-१ : गागर ऊपर गागरी, चोले ऊपर द्वार। तुल० सा०

३४-३ तथा सासी० ५६-६ : गागर ऊपर गागरी, चौली ऊपर हार ।

७. सावे० ८३-१५ : नहिं कागद नहिं लेखनी, नहिं अक्षर है सोय । पांचहिं पुस्तक छांड़ि कै, पंडित कहिए सोय ॥ तुल० सा० ४०-३८ तथा सासी० ५८-११ : वांचहिं पुस्तक छांड़ि कै, पंडित कहिए सोय ।

८. सावे० ७-१३-२ : दुर दुर करै तो बाहिरे, तू तू करै तो जाय । तुल० दा० ११-१५ : तो तो करै तो बाहुरों, दुर दुर करै तो जाउं ।

९. सावे० १२-२-१ : भक्ति बीज बिनसै नहीं, आइ पड़ै जो चोल । तुल० सासी० १२-४-१ : 'चोल' के स्थान पर 'भोल' । सावे० की टिप्पणी में 'चोल' का अर्थ 'चोला' या 'योनि' दिया हुआ है—अर्थात् चाहे जैसी ऊँची-नीची योनि में जीव जा पड़े, भक्ति का बीज बिनष्ट नहीं होता । किन्तु यह अर्थ संतोषजनक नहीं लगता । वास्तव में बीज के प्रसंग में 'भोल' पाठ ही अधिक सार्थक है । 'भोल' का अर्थ है आपत्ति या तूफान—अर्थात् कैसा भी तूफान आवे, भक्ति का बीज बिनष्ट नहीं होता, वह अंकुरित होकर ही रहता है । सावे० की यह विकृति भी उर्दू मूल के कारण ही ज्ञात होती है ।

१०. सावे० ४-१-१ : सेवक मुखी कहावई, सेवा में दृढ़ नाहि । तुल० सासी० १०-३ : सेवक मुखै कहावई ।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. सावे० १४-३६-१ का पाठ है : अम्वर कुज्जा करि लिया, गरजि भरे सब ताल । दा० ३-२, नि० ६-१२ तथा गुण० २०-५३ में 'कुज्जा' के स्थान पर 'कुंजा' और सा० १६-२ तथा सासी० १६-२ में 'कुंज' पाठ आते हैं । जैसा पहले बताया गया है, सावे० का यह विकृत पाठ 'कुंजा' या 'कुज्जा' को भूल से 'कुज्जा' पढ़ लेने के कारण आया है ।

२. दा० १६-१२, नि० १६-१४, सा० ३६-३, सासी० ६८-४ तथा गुण० ८३-५ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : आसा जीवै जग मरै, लोक मरे मरि जाहि । किन्तु सावे० ५६-१ में 'मरे मरि' के स्थान पर मरै मन पाठ है जिसका कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता । कैथी या प्राचीन हिन्दी में 'र' और 'न' प्रायः एक-से लिखे जाते थे । 'मरि' के स्थान पर 'मन' कदाचित् इसी कारण से आया है ।

३. सावे० ८-४५-१ का पाठ है : कबीर तोड़ा मान गढ़, पकड़े पाँचों स्वान । नि० ५०-४० तथा सासी० २४-१० में 'स्वान' के स्थान पर 'खान' पाठ है । गढ़ के प्रसंग में 'खान' (=सरदार, सिपहसालार) ही अधिक उपयुक्त प्रतीत

होता है, 'स्वान', (=कुत्ता) नहीं। नागरी में 'खान' का 'स्वान' बड़ी सरलता से हो सकता है।

४. सावे० १४-७३ का पाठ है : यह तन जारि कै मसि करीं, लिखीं गुरु का नांव। करीं लेखनी करन को, लिखि लिखि गुरु पठाव ॥ दा० ३-१२, नि० ६-१४, सा० १६-१५ तथा गुण० १८-२७ में दूसरी पंक्ति का पाठ है : लेखनि करीं करंक की, लिखि लिखि राम पठाव। 'करंक' (=अस्थि) की तुलना में सावे० का 'करम' पाठ स्पष्ट ही निरर्थक और अप्रासंगिक है। हिन्दी में यदि 'क' लिखने में कुछ असावधानी कर दी जाय और उसके उत्तरार्ध का लटकता हुआ अंश यदि ऊपर की पंक्ति में कहीं मिल जाय तो उसे सरलता से 'करम' पढ़ा जा सकता है। सावे० को उक्त पाठ-विकृति का यही मूल कारण ज्ञात होता है।

५. सावे० १८-३ का पाठ है : गागर ऊपर गागरी, चोले ऊपर द्वार। सूली ऊपर सांथरा, जहां बुलावै यार ॥ सावे० के 'चोले ऊपर द्वार' का स्पष्ट अर्थ नहीं समझ पड़ता। यदि इसका तात्पर्य 'चोला' (=शरीर) के ऊपर वाले द्वार अर्थात् ब्रह्मरंध्र से लिया जाय तो भी यह कष्ट-कल्पना ही मानी जायगी। सावे० का पाठ वस्तुतः यहाँ विकृत ज्ञात होता है। सा० ३४-३ तथा सासी० ५६-६ में 'चोले ऊपर द्वार' के स्थान पर 'चोली ऊपर हार' पाठ मिलता है। यार द्वारा बुलाये जाने के प्रसंग में सा० तथा सासी० का पाठ ही अधिक उपयुक्त लगता है, सावे० का नहीं। इस साखी का भाव यह है कि प्रिय का निवास शूली की नोक पर है, वहाँ कोई बिरला ही पहुँच सकता है। वह इतना विकट है जैसे घड़े के ऊपर घड़ा रक्खा हो (घड़ा पर घड़ा रख कर सँभालने में नितान्त तन्मयता अपेक्षित रहती है)। वह इतना नाजुक और गूढ़ है जैसे प्रेयसी की चोली पर का हार हो (बिना अंतरंग भेदी के उसका साक्षात्कार भला कौन कर सकता है?)। 'हार' के स्थान पर 'द्वार' की विकृति नागरी लिपि में ही संभव है।

अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं—

६. सावे० ७१-४७-१ : मेरा मन हंसा रमै, हंसा गमन रहाय। तुल० नि० २७-१८ तथा सासी० ६-१५ : 'गमन' के स्थान पर 'गगन' (नागरी 'ग' तथा 'म' के सादृश्य के कारण)।

७—सावे० ७-११-२ : सेवक मन सों प्यार है, निस दिन चरनन लाग। तुल० सासी० १०-१० : सेवक मन सोंप्या रहै (पद-विच्छेद की भ्रांति के कारण)।

राजस्थानी प्रभाव—सावे० में यद्यपि राजस्थानी प्रयोग कम करने का पूरा प्रयत्न किया गया है, फिर भी वे यत्र-तत्र मिल ही जाते हैं। उदाहरण निम्न-लिखित हैं—

१—सावे० १२-१७ : देखा देखी भगति का, कबहुं न चड़ही रंग ।

विपति पड़े यों छाँड़िसी, ज्यों केंचली भुवंग ॥

२—सावे० १६-१३-२ औसर जासी चाल ।

३—सावे० १६-१६-१ : काल अचानक मारिसी ।

४—सावे० १६-५५ २ : उज्ज्वल होइ न छूटिसी ।

५—सावे० ३३-३७-२ : तब जिव होसी सीव ।

६—सावे० ७३-३७-२ : जब देसी मुख वूरि ।

७—सावे० ७३-३६-२ : उड़ि कै भस्म जो लागिसी ।

८—सावे० ७४-८-२ : साहिब हक्क न राखिसी ।

९—सावे० ७७-६ : हनिया सोई हन्नसी, भावै जगत विजान ।

करि गहि चोटी तानिसी, साहिब के दीवान ॥

१०—सावे० ७७-१०-२ : साहिब लेखा सागिसी । इत्यादि

साम्प्रदायिक प्रभाव—पहले शवे० के प्रसंग में जित-जिन साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों का उल्लेख हुआ है वे सब सावे० में भी उसी मात्रा में मिलती हैं, क्योंकि दोनों पुस्तकें एक ही प्रेस से एक ही सम्पादक द्वारा सम्पादित होकर निकली हैं। फलतः इसमें भी शवे० की भाँति 'राम' के लिए 'नाम', 'हरि' के लिए 'गुरु' और 'राम नाम' के लिए 'सत्यनाम' का प्रयोग सर्वत्र हुआ है।

सावे० में एक 'नाम का अंग' भी दिया हुआ है जो अन्य प्रतियों में नहीं मिलता। उसकी छठी साखी में 'राम' और 'नाम' का भेद इस प्रकार समझाने का प्रयत्न किया गया है—

राम राम सब कोइ करै, नाम न चीन्है कोय ।

नाम चीन्है सतगुर मिलै, नाम कहावै सोय ॥

इसकी पाँचवीं साखी में यह बताया गया है कि संसार में परमात्मा के करोड़ों नाम प्रचलित हैं, लेकिन वे सब व्यर्थ हैं। उसका आदि नाम गुन है, जिसे कोई विरला ही जानता है, और वही सब कुछ है—

कोटि नाम संसार में, तातें मुक्ति न होइ ।

आदि नाम जो गुन जप, बूझै विरला कोइ ॥

आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार ।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि यह साखियाँ कबीरकृत रचनाओं के रूप में सावे० के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रति में नहीं मिलतीं।

सावे० की यह साम्प्रदायिक प्रवृत्ति इतनी स्पष्ट है कि उसके दो-चार उदाहरण किसी भी पृष्ठ में देखे जा सकते हैं। इस संशोधन पर सम्पादक इतना तुल गया है कि खोजने पर भी कहीं 'राम', 'हरि', 'गोविन्द' आदि नामों का दर्शन नहीं हो सकता। अपवाद-स्वरूप केवल दो-एक उदाहरण ऐसे मिल जाते हैं, जो कदाचित् संपादक की दृष्टि से बच गये थे, और अभी ज्यों के त्यों पड़े हैं; उदाहरणतया—

१. सावे० ६७-१० : कंचन केवल हरि भजन, दूजा कांच कथीर। सासी० ८१-१७ में 'हरि भजन' को शोध कर 'गुरु भजन' कर दिया गया है। यहाँ भी ऐसा ही किया जा सकता था।

२. इसी प्रकार सावे० २२-१ में भी 'मेरी चिता हरि करै' के कारण 'हरि' शब्द दिखायी पड़ जाता है। यहाँ भी 'हरि' के स्थान पर 'गुरु' हो सकता था।

३. सावे० १६-१३ में 'राम' शब्द भी अनुचित रूप से निकल गया है। इन उदाहरणों को छोड़ कर 'राम', 'हरि' आदि शब्द ऐसे ही स्थलों पर मिलेंगे जहाँ उनके विरोध में कुछ कहा गया है।

सासी० प्रति का विवरण

यह प्रति 'सद्गुरु कबीर साहब का साखी ग्रन्थ' नाम से कबीर-धर्म-वर्धक, कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा से सन् १९३५ ई० में प्रकाशित हुई है^{३८}। विरल-टीका-टिप्पणीकार के रूप में इस पर विचारदास शास्त्री (वर्तमान हुजूर प्रकाश मणि नाम साहब) का नाम छपा हुआ है। सम्पादक का नाम इसमें नहीं बताया गया है। सीयाबाग से प्रकाशित होने के कारण इसका संक्षिप्त नाम सासी० (साखी-ग्रन्थ, सीयाबाग, बड़ौदा का) निर्धारित किया गया है। इसमें भी सावे० के समान अंगों की संख्या ८४ है, किन्तु उनके नामों में कुछ भिन्नता मिलती है।

अंत में ७४ साखियों का एक 'प्रश्नोत्तर को अंग' अतिरिक्त रूप में दिया हुआ है। कबीर के नाम से जितनी भी साखी-प्रतियाँ या प्रकाशित ग्रन्थ मिलते हैं उनमें सीयाबाग से प्रकाशित प्रस्तुत ग्रन्थ आकार की दृष्टि से सब से बड़ा है।

३८. प्रस्तुत अध्ययन में पाठ-मिलान इसकी द्वितीयावृत्ति पर आधारित है जो सन् १९५० में प्रकाशित हुई थी DC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इसमें प्रश्नोत्तर वाले अंग की ७४ साखियों को भी मिला कर कुल ३,८७२ साखियाँ मिलती हैं। साखियों की इतनी बड़ी संख्या अन्य किसी भी प्रति या पुस्तक में नहीं मिलती। किन्तु इस संस्करण को प्रस्तुत करने में कई आदर्शों की सहायता ली हुई ज्ञात होती है, क्योंकि इसमें पुनरावृत्तियों का इतना बाहुल्य है जितना अन्य किसी भी प्रति या संस्करण में नहीं है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भिन्न क्रम तथा आकार के अनेक आदर्श सामने रहने पर थोड़ी सी भी असावधानी से छंद ज्यों के त्यों पुनः आ जाते हैं, और यदि थोड़ा-बहुत पाठ-भेद उनमें हुआ तो यह सम्भावना और भी अधिक हो जाती है। इसकी पुनरावृत्तियों के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१. कुछ साखियाँ ऐसी हैं जो सासी० में चार बार मिलती हैं।

उदाहरणतया सासी० १५-५१ : यह रस महंगा सो पिये, छांड़ि जीव की बानि ।
माथा सांटे जो मिलै, तौ भी सस्ता जानि ॥

यही साखी आगे २४-१३७ पर इस प्रकार मिलती है—

सिर सांटे का खेल है, छांड़ि बेइ सब बानि ।

सिर सांटे साहिब मिलै, तौहु हानि मत जानि ॥

आगे फिर यही साखी २८-७ तथा ८ पर भी मिल जाती है जिनके पाठ हैं—

हरि रस महंगा पीजिए, छांड़ि जीव की बानि ।

सिर के सांटे हरि मिलै, तब लग सुहंगा जानि ।

तथा : सिर दीए जो पाइए, देत न कीजै कानि ।

सिर के सांटे हरि मिलै, तब लगि सोंहगा जानि ॥

कुछ साखियाँ ऐसी हैं जो इसमें तीन-तीन बार आती हैं, तुल०—

२. सासी० ६-१०१ : साधु साधु सबही बड़े, अपनी अपनी ठौर ।

शब्द बिबेकी पारखी, ते माथे के मौर ॥

सासी० २४-१२६ : साधू सबही सूरमा, अपनी अपनी ठौर ॥

जिन ये पांचों चूरिया, सो माथे का मौर ॥

तथा सासी० ७५-१० : साधू मेरे सब बड़े, अपनी अपनी ठौर ।

शब्द बिबेकी पारखी, सो माथे का मौर ॥

(दूसरी के केवल तीसरे चरण का पाठ कुछ भिन्न है, शेष शब्दावली तीनों में समान है ।)

३. तुल० सासी० २६-११८ : यह मन हरि चरने चला, माया मोह से छूट ।

बेहद माहीं घर किया, काल रहा सिर कूट ॥

४२-१६ : मन की मनसा मिट गई, अहं गई सब छूट ।
गगन मंडल में घर किया, काल रहा सिर कूट ॥
तथा ४३-४ : कबीर तो पियु पै चला, माया मोह से तोरि ।
गगन मंडल आसन किया, काल रहा मुख मोर ॥

(इन साखियों में भी कुछ शाब्दिक अंतर अवश्य मिलते हैं, किन्तु स्थूल रूप से तीनों साखियाँ एक ही हैं ।)

४. इसी प्रकार सासी० ५४-२३ आगे ५४-२५ तथा ८५-४१ पर पुनः मिलती है । ऊपर उल्लिखित साखियाँ ऐसी हैं जो चार बार या तीन बार मिलती हैं । दो-दो बार मिलने वाली साखियों की संख्या बहुत बड़ी है । अतः विस्तार-भय से यहाँ उनका संक्षिप्त स्थल-निर्देश कर दिया जा रहा है । सभी संख्याएँ सासी० के अनुसार हैं जिनमें पहली संख्या अंगों की है और दूसरी साखियों की । निम्नलिखित स्थल तुलनीय हैं—

(५) सासी० १-६ तथा १०-३७; (६) १-१३ तथा ८५-१६; (७) १-२१ तथा ३-२०; (८) १-४२ तथा ३-३०; (९) १-५७ तथा ६६-१; (१०) १-७६ तथा १०-१०; (११) २-१७ तथा २४-१३०; (१२) २-६१ तथा २-८६; (१३) २-६० तथा १५-७१; (१४) २-६२ तथा २२-१३; (१५) ३-१ तथा ३-२; (१६) ३-४४ तथा २७-६५; (१७) ४-११ तथा ४२-४२; (१८) ४-१८ तथा १५-२२; (१९) ४-१६ तथा १८-६१; (२०) ४-३१ तथा १६-३६; (२१) ४-४४ तथा १०-६; (२२) ५-८ तथा ५-२६; (२३) ५-१३ तथा १६-६०; (२४) ५-२० तथा ६-३३; (२५) ५-२० ६-१६; (२६) ५-३४ तथा ६-१२५; (२७) ५-३७ तथा ६-७६; (२८) ६-७६ तथा २६-२७; (२९) ६-१०२ तथा ७५-८; (३०) ६-११० तथा १०-२७; (३१) ६-१२३ तथा ४७-६; (३२) ३-१४३ तथा ६५-१३; (३३) ६-२०१ तथा ११-५; (३४) ७-१५ तथा ७-३१; (३५) ७-३२ तथा १३-१४८; (३६) ७-३४ तथा १२-४६; (३७) ७-४४ तथा ६-८५; (३८) ६-२० तथा २६-१०४; (३९) ६-३५ तथा ११-२७; (४०) ११-१६ तथा ११-१७; (४१) ११-२१ तथा ४२-३१; (४२) ११-२२ तथा ५६-१६; (४३) १२-३४ तथा ६२-४; (४४) १२-३७ तथा १८-७३; (४५) १३-११ तथा २३-१६; (४६) १३-२६ तथा १५-५२; (४७) १३-४१ तथा १६-५२ (४८) १३-५६ तथा २२-३२; (४९) १३-५६ तथा ६८-२; (५०) १३-६२ तथा १४-११२; (५१) १३-६४ तथा ६७-३५; (५२) १४-३ तथा ४२-३८ (५३) १४-१२ तथा १४-१३; (५४) १४-१७ तथा ५६-२४; (५५) १४-२२ तथा १८-५८; (५६) १४-४० तथा १६-८४; (५७) १४-४६ तथा १४-१०८; (५८) १४-४७ तथा १५-

३६; (५६) १४-५५ तथा ३८-४२; (६०) १४-५८ तथा ३८-४०; (६१) १४-७२
 तथा ५३-१७; (६२) १४-७३ तथा ५३-५७; (६३) १४-७६ तथा ५६-११; (६४)
 १४-८७ तथा १४-१२२; (६५) १४-१२७ तथा ५६-१०; (६६) १४-१२६ तथा
 १८-६०; (६७) १४-१३० तथा २४-१०६; (६८) १५-४५ तथा ३३-३०; (६९)
 १५-४६ तथा ३३-३८; (७०) १५-५० तथा ४६-११; (७१) १५-६६ तथा १६-
 २५; (७२) १६-२८ तथा १६-१०३; (७३) १६-२६ तथा १६-३१; (७४) १६-
 ३८ तथा १६-१०६; (७५) १६-४६ तथा १६-८६; (७६) १६-६३ तथा ४१-८;
 (७७) १६-१११ तथा २२-२३; (७८) १७-४ तथा १७-५; (७९) १७-२५ तथा
 ३-६६; (८०) १७-३२ तथा १७-१७६; (८१) १७-३५ तथा ८१-१६; (८२)
 १७-४७ तथा ३४-५; (८३) १७-७५ तथा १७-१७०; (८४) १७-७७ तथा ३२-
 ३०; (८५) १७-१११ तथा ७७-५; (८६) १७-१८६ तथा ४६-३५; (८७) १७-२१
 तथा १८८; (८८) १८-२५ तथा ७७-५; (८९) १८-२६ तथा १६-६६; (९०)
 १६-२८ तथा ८०-१; (९१) १६-४७ तथा ७६-१२; (९२) २०-११ तथा ८०-
 ११; (९३) २०-२८ तथा ७१-१५ तथा; (९४) २१-६ तथा २१-२०; (९५) २२-
 २७ तथा ३८-३५; (९६) २३-३ तथा ८३-११; (९७) २३-६ तथा ३२-७६; (९८)
 ४२-४७ तथा २६-१२२; (९९) २४-६१ तथा २४-६२; (१००) २४-६४ तथा
 २४-६५; (१०१) २४-६८ तथा २४-६६; (१०२) २४-८५ तथा २४-८६; (१०३)
 २७-४ तथा ८३-६; (१०४) २७-१० तथा २७-५३; (१०५) २७-१३ तथा २७-
 ५८; (१०६) २७-५२ तथा ४१-६; (१०७) २८-६ तथा ७४-३२; (१०८) २८-
 १७ तथा ८०-१०; (१०९) २६-३५ तथा ४६-३२; (११०) २६-४३ तथा २६-४४;
 (१११) २६-५० तथा ८५-१५; (११२) २६-८२ तथा ३४-२४; (११३) २६-
 १०६ तथा ४२-५; (११४) २६-११६ तथा ४२-२६; (११५) ३०-२१ तथा ३०-
 ७२; (११६) ३०-३६ तथा ६८-२२; (११७) ३१-२२ तथा ३४-२०; (११८) ३३-
 ५५ तथा ६६-८; (११९) ३२-४८ तथा ३२-४६; (१२०) ३२-७५ तथा ६२-१२;
 (१२१) ३४-१ तथा ३४-२१; (१२२) ३५-२० तथा ३५-२१; (१२३) ३५-२८
 तथा ६२-६; (१२४) ३७-८ तथा ४०-४; (१२५) ३८-१७ तथा ७८-८; (१२६)
 ४०-६ तथा ७६-१३; (१२७) ४१-११ तथा ४१-१४; (१२८) ४१-२० तथा ४१-
 ४८; (१२९) ४२-२२ तथा ५५-२; (१३०) ४२-२४ तथा ४२-२५; (१३१) ४२-
 ३६ तथा ५३-२०; (१३२) ४६-६३ तथा ७३-३८; (१३३) ५२-१ तथा ७१-१०
 (१३४) ५३-३ तथा ५३-५; (१३५) ६७-१० तथा ७१-४; (१३६) ७०-१ तथा
 ८६-२१; (१३७) ७३-३१ तथा ७३-३३; (१३८) ७५-४ तथा ७६-२२; (१३९)
 ७८-५ तथा ७६-४० ।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि कई साखियाँ सासी० में ऐसी हैं जो एक ही अंग में दो बार मिलती हैं। इनमें से कुछ तो अनजाने में दुहरायी हुई प्रतीत होती हैं और कुछ जान-बूझ कर, थोड़े शाब्दिक अंतर के कारण, पास ही पास रखी हुई हैं।

इनके अतिरिक्त एक पंक्ति की पुनरावृत्तियाँ भी सासी० में बहुत मिलती हैं। निम्नलिखित स्थल तुलनीय हैं—

सासी० १२-१४-१ तथा १२-६२-१; २४-१३६-१ तथा ७७-३-१; ७-१२-१ तथा ७-१३-१; १२-४०-१; तथा १२-४१-१; १२-५४-१ तथा ४६-३३-१; १४-६५-१ तथा १४-६६-१; १६-४५-१ तथा १६-८८-१; १६-८७-१ तथा २७-६४-१; १८-३-१ तथा १८-४-१; २४-१२८-१ तथा २४-१२९-१; ३१-३३-१ तथा ३१-३४-१; ३८-३२-१ तथा ५६-१५-१; ५२-१४-१; तथा ५७-५-१, ५६-२६-१; तथा ६७-८-१; ७६-१६-१ तथा ८२-१४-१; ८२-६-१ तथा ८२-७-१ इत्यादि।

पाठ-मिलान से यह ज्ञात हुआ कि सासी० के सम्पादन में वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से प्रकाशित 'सत्य कबीर का साखी ग्रन्थ' तथा बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित 'कबीर साहेब का साखी-संग्रह' का भरपूर उपयोग किया गया है। दोनों की केवल चार-छः साखियाँ ही ऐसी रह जाती हैं जो सासी० में नहीं आ सका हैं, शेष प्रायः सब मिल जाती हैं। इनमें भी सावे० का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है, यह आगे भी सिद्ध होगा। इन पुस्तकों का उपयोग करने में सम्पादक ने सावधानी से काम नहीं लिया है। कई पुनरावृत्तियाँ ऐसी हैं जो सा० या सावे० में पहले से ही रहने के कारण सीधे सासी० में भी आ गयी हैं। यदि सम्पादक ने दोनों ग्रन्थों की सभी साखियों को अकारादि क्रम से सूची बना ली होती तो पुनरावृत्तियाँ पकड़ने में अधिक सुविधा होती और इतनी अधिक संख्या उनकी न बढ़ने पाती। किन्तु ऐसा न कर स्मृति का ही अधिक आधार लिया हुआ ज्ञात होता है।

ग्रन्थ विशेषताएँ—सासी० में भी सावे० के समान इसके सम्पादक द्वारा पाठ का पर्याप्त संशोधन किया गया है। किन्तु पाठ संबंधी विकृतियाँ अब भी उसमें यथेष्ट मात्रा में विद्यमान हैं। नीचे इन विकृतियों का विवरण दिया जा रहा है।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—

१. सासी० १६-५३-१ का पाठ है : सब रग तांती ~~साखी~~ तन, बिरह बजावे नीत। दा० ३-२०, नि० ३-८, सा० १६-३६, सावे० १४-७८ तथा स० ७-७

सब में 'सब रग तांत रबाब तन' पाठ मिलता है । 'रबाब' एक बाजा है जिसके तारों की उपमा शरीर की नसों से दी गयी है । 'खाब' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं । नागरी लिपि में 'खाब' तथा 'रबाब' प्रायः एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं । सासी० में यह विकृति कदाचित् इसी भ्रम से आयी हो, अथवा यह भी संभव है कि सासी० के प्रूफ-संशोधन में ही यह अशुद्धि रह गयी हो ।

२. दा० ५८-१, नि० ६१-१, सा० १०६-६ की दूसरी पंक्ति का पाठ है : जालन आनी लाकड़ी, ऊठी कौपल मेलि ॥ सासी० २७-४२ में 'आनी' के स्थान पर कानी पाठ मिलता है । 'जालन आनी लाकड़ी' का अर्थ स्पष्ट है : जलाने के लिए लायी हुई लकड़ी; किन्तु 'कानी लाकड़ी' निरर्थक ज्ञात होता है । नागरी लेख में कभी-कभी 'अ' और 'क' एक ही आकृति के हो जाते हैं । कदाचित् इसी कारण से सासी० में यह विकृत पाठ आ गया है ।

अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं—

३. सासी० १७-४-२ का पाठ है : हैबर ऊपर छत्र तट, तौ भी देवें गाड़ ॥ सा० ३०-२०, साबे० १६-३१ तथा गु० ३७ में 'छत्र तट' के स्थान पर 'छत्र तर' पाठ मिलता है । 'छत्र तर' पाठ के अनुसार उक्त साखी की दूसरी पंक्ति का अर्थ होगा : जो हाथी के ऊपर और छत्र के नीचे बैठते हैं वे भी, अन्त में, घरती में गाड़े जाते हैं । इसके विपरीत 'छत्र तट' के अनुसार इसका कोई प्रसंगोचित अर्थ नहीं निकलता; अतः यह हिन्दी 'छत्र तर' का ही विकृत रूप ज्ञात होता है; क्योंकि हिन्दी 'र' और 'ट' में प्रायः ही भ्रम हो जाया करता है ।

४. सासी० १७-१८७-२ का पाठ है : जमराना गढ़ भेलसी, बोल गले गोपाल । सासी० का 'बोल गले' पाठ निरर्थक है । इस पंक्ति का पाठ नि० १६-७७-२ से तुलनीय है जिसमें उसके स्थान पर 'बोलग लै गोपाल' पाठ मिलता है । नि० का यह पाठ प्रासंगिक है । कबीर की रचनाओं में 'बोलग' शब्द प्रायः 'शरण' अथवा 'रक्षा-स्थान' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । सासी० में भ्रम से 'बोलग' का 'ग' आगे आने वाले शब्द में मिला दिया गया है और 'ब' के स्थान पर 'व' कर दिया गया है, जिससे यह पाठ विकृत हो गया है ।

५. सासी० ४-२५-१ : डाल जु ढूँढ़े मूल को, मूल डाल के पाहि । तुल० सा० ५-३५-१ तथा साबे० ६-२१-१ : मूल डाल के माहि ।

६. सासी० ७-१३-२ : घोरे बैठि चपेटसी, यों ले बूढ़े ज्ञान । तुल० दा० २७-२, नि० २८-२-२, सा० ५८-२-२, साबे० ५०-३-२ : घोरे (= निकट) ।

७. सासी० ७-१०-१ : अत पानी का हार है, स्वाद संग नहि जाय ।

तुल० सा० १००-४-१ तथा सावे० ७६-४-१ : अन पानी आहार है ।

फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियाँ—कुछ पाठ-विकृतियाँ सासी० में ऐसी मिलती हैं जिनसे ज्ञात होता है कि सासी० का भी कोई पूर्वज उर्दू में था । इन विकृतियों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

१. सासी० ३२-१४ का पाठ है : राम कहा जिन कहि लिया, जरा पहुँची आय । सुंदर लागी द्वार सों, अब कुछ कही न जाय ॥ दा० ४६-२४, नि० ४४-३५, सा० ७८-१७, गु० १३२ तथा गुण० १७७-३१ में उक्त साखी की दूसरी पंक्ति का 'लागी मंदिर द्वार तैं, अब क्या काढ़ा जाय ।' पाठ मिलता है । इस पाठ के अनुसार इसका सीधा अर्थ होगा : जिन्होंने राम का सुमिरन कर लिया, उन्होंने कर लिया । अब तो वृद्धावस्था घर का दरवाजा रोक कर खड़ी हो गयी है, अब क्या काढ़ा जा सकता है ? 'मुंदर' पाठ से अर्थ के लिए कष्ट-कल्पना करनी पड़ती है, अतः यह विकृत ज्ञात होता है । 'मंदिर' के स्थान पर 'मुंदर' हो जाना केवल उर्दू में (जबर जेर, पेश न लगाने के कारण) संभव है ।

३. सासी० ३१-६३ का पाठ है : त्रिया कृतघ्नी पापिनी, तासों प्रीति न जोड़ । पड़िए चढ़िए आखड़ै, लागै मोटी खोड़ ॥ 'पड़िए चढ़िए आखड़ै' निरर्थक है । दा० १६-१४ तथा नि० ११-१६ में उक्त साखी की दूसरी पंक्ति का पाठ है : 'पैड़ी चढ़ि पाछों पड़ै, लागै मोटी खोड़ ।' जो उपयुक्त प्रतीत होता है । यदि उर्दू 'पैड़ी' में 'ये' के नुक्तों में कुछ हेर-फेर हो जाय तो इसे सरलता से 'पड़िए चढ़िए' भी पढ़ा जा सकता है । सासी० की इस विकृति का यही कारण ज्ञात होता है ।

आगे स्थल-संकोच के कारण अन्य विकृतियों का केवल संक्षिप्त निर्देश किया जा रहा है—

४. सासी० २२-५३-२ : मेरे भिस्ति न चाहिए, बांछि पियारे तुज्भ । तुल० दा० ११-७, नि० १५-८, सा० २७-२६, गुण० ५१-४ : भिस्ति न मेरे चाहिए, बांछ पियारे तुज्भ । [बांछ/सं० बांछ = हि० 'बिना' या 'बसौर' । सासी० की विकृति उर्दू 'जीम' और 'चे' के सादृश्य के कारण ।]

५. सासी० ६-२०८-१ : कबीर साधू की दूरमति, ज्यों पानी में लात । तुल० नि० २६-८-१ : हरि जन कै दूरमति इती, ज्यों पानी में सांट ॥

[सांट = छड़ी या लाठी का आघात । डंडे से मार देने पर थोड़ी देर के लिए पानी अलग हो जाता है, किन्तु फिर ज्यों का त्यों मिल जाता है । सासी० की विकृति उर्दू 'स' और 'ल' में रूप-सादृश्य के कारण ।]

सासी० में पाठ-विकृतियों के और भी कई उदाहरण मिलते हैं किन्तु साथ ही अन्य प्रतियों में भी मिलने के कारण उनका उल्लेख अन्यत्र किया गया है ।

राजस्थानी प्रभाव—राजस्थानी प्रभाव सासी० में भी यथेष्ट मात्रा में विद्यमान है, यद्यपि उन्हें हटाने का भरसक प्रयत्न किया गया है । इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

१. सासी० १६-१०१-१ : फट रे हिया फाटे नहीं, साँई तनो वियोग ।
२. सासी० १७-६-१ : कवार केवल हाड़ का, माटी तना बंधान ।
३. सासी० १७-४२-१ ऊजड़ खेड़े टेकरी, घड़ि घड़ि गए कुम्हार ।
४. सासी० ७-४४-१ : दूध दूध सब एक है, दूध आक बी होय ।
५. राजस्थानी को '—सो' प्रत्ययांत क्रियाएँ भी मिलती हैं, जैसे राज० 'मारसी' = हिन्दी 'मारेगा', 'जाइसी' = जायगा, आदि । सासी० में ऐसे प्रयोग बहुत हैं; उदाहरणतया—दे० सासी० ६-२०० : तारसी; १६-१११ : भाजिसी; १७-५४ : मारिसी; १७-६२ : छूटिसी; १७-१८७ : भेलसी; ३१-५१ : बूड़िसी; इत्यादि ।

साम्प्रदायिक प्रभाव—जिन स्थलों पर अन्य शाखाओं में 'हरि', 'राम' आदि परमेश्वरवाची नाम हैं, वहाँ पर सासी० में भी सावे० की भाँति पाठ-भेद मिलता है । 'राम' के लिए अधिकांश स्थलों पर 'नाम', 'राम नाम' के लिए 'सत्यनाम' तथा 'हरि' के लिए 'गुरु' आदि पाठांतर इसमें भी मिलते हैं । अन्तर केवल इतना है कि सासी० में यह परिवर्तन उतनी कठोरता से नहीं निवाहा गया है जितना सावे० में ।

छंद-भिन्नता—साखी छंद प्रायः दोहे के समान होता है, किन्तु सासी० में कई स्थल ऐसे मिलते हैं जिनके छंद साखियों से नितान्त भिन्न हैं । उदाहरण के लिए इसके निम्नलिखित छंद देखे जा सकते हैं—

१. सासी० १८-८२ : सब से हिलिए सब से मिलिए, सब का लीजै नाम ।
हांजी हांजी सब से कहिए, बसिए अपने ठाम ।
२. सासी० ३६-५० : तन को जानै मन की जानै, जानै चित की चोरी ।
वह साहिब से क्या छिपावै, जिनके हाथ में डोरी ॥
३. सासी० ७३-४७ : जो जाको काटे, सो फिर ताहे बाटे ।
कहै कबीर न छूटे, सामा सासी साटे ॥

पहले उदाहरण में १६ तथा ११ मात्राओं पर, दूसरे में १६ तथा १२ पर और तीसरे में १० तथा १२ पर यति है जबकि साखियों में साधारणतया १३ तथा

११ मात्राओं पर यति होती है (यद्यपि कहीं-कहीं कुछ अंतर भी मिलता है) ।

परवर्ती प्रक्षेप—सासी० में साखियों की संख्या अधिक होने के साथ ही साथ प्रक्षेपों की संख्या भी सभी प्रतियों से अधिक है, क्योंकि इसमें बहुत सी साखियाँ अतिरिक्त रूप से मिलती हैं जो उल्लिखित प्रतियों में से अन्य किसी में भी नहीं मिलतीं ।

जितना अधिक से अधिक हो सका है, कबीर के नाम पर ग्रहण कर सासी० को साखियों का बड़ा से बड़ा रूपान्तर बनाने का प्रयत्न किया गया है । सासी० में कबीर के नाम से ऐसी अनेक साखियाँ मिलती हैं, जो अन्यत्र विहारी, रहीम आदि की प्रामाणिक रचनाओं में आती हैं । कुछ साखियाँ ऐसी भी मिलती हैं जो निश्चित रूप से परवर्ती कबीरपंथियों की रचनाएँ ज्ञात होती हैं और जिन्हें सासी० में कबीर की रचनाओं के रूप में ग्रहण किया गया है । एक उदाहरण उल्लेखनीय है । सासी० २०-४० का पाठ है—

भजन भरोसे आपके, मगहर तजा शरीर ।

तेज पुंज परकास में, पहुंचे दास कबीर ॥

अर्थात् आपके (परमात्मा, भगवान, सत्यपुरुष, राम—जो कुछ भी माना जाय) भजन के बल पर कबीरदास ने मगहर में शरीर छोड़ा और (गधा न होकर) ज्योति स्वरूप हो गया । स्पष्ट ही यह रचना न तो कबीर की है और न उनके जीवन-काल की ही ।

स० प्रति का विवरण

स० अर्थात् 'सवंगी' संत-साहित्य का एक उत्कृष्ट कोटि का संकलन-ग्रन्थ है जिसका प्रणयन दादू के शिष्य रज्जब (मृत्युकाल संवत् १७४६^{३९}) ने किया था । हमें इस ग्रन्थ की चार हस्तलिखित प्रतियाँ देखने को मिली हैं—तीन प्रतियाँ दादू-महाविद्यालय जयपुर में और एक ना० प्र० सभा, वाराणसी में । प्रस्तुत अध्ययन में कबीर की वाणियों का पाठ-मिलान जिस प्रति से किया गया है वह दादू-विद्यालय की पहली प्रति है, जिस पर लिपिकाल नहीं दिया हुआ है और जिसके आकार आदि का विवरण ऊपर दा२ प्रति के प्रसंग में दिया हुआ है । यह अनुमान से सं० १८३० वि० के लगभग की लिखी हुई ज्ञात होती है । शेष तीनों प्रतियों के लिपिकाल क्रमशः सं० १८४७, १८४१ तथा १८३६ वि० हैं । 'सवंगी' में कुल मिला कर लगभग ६६ संतों तथा सिद्धों की वाणियाँ मिलती

ह^{४०} जो १४२ अंगों में विभक्त हैं। पुष्पिका के अनुसार सम्पूर्ण पोथी में २,६६१ साखियाँ ८०० पद, १७३ संस्कृत श्लोक, ७३ फ़ारसी बँत तथा कतिपय कवित और अरिल्ल संग्रहीत हैं। इतने बड़े साहित्य का मंथन कर उसे विभिन्न प्रकरणों में सजा कर रज्जव ने सचमुच बड़ा ही स्तुत्य कार्य किया है। 'सर्वंगी' के आमुख में उन्होंने निवेदन किया है कि—

सुरति सुक्ति मधि नीपजै, सबद मुक्त सु अभोग ।

रज्जव माला मोहिनी, गोविंद श्रीवा जोम ॥

आंतीं गिरिवर ग्यान तैं, सबद शिला अहि काज ।

रज्जव जोड़ी राज गुरु, सक्ति समद सिर पाजि ॥

ततवेत्ता तरवर भले, मत मधु आंन्यां छानि ।

सर्वंगी मानूँ सहत, प्रांण पुष्ट रस पांनि ॥

और 'सर्वंगी' के संबंध में रज्जव का उक्त निवेदन अक्षरशः सत्य है।

जैसा कि नाम से विदित होता है, स० प्रति में अंगों के विभाजन को विशेष महत्त्व दिया गया है। दादूपंथ में यह प्रसिद्धि चली आ रही है कि पहले दादू की वाणियों में अंगों का विभाजन नहीं था। रज्जव ने ही अन्य संतों के परामर्श से उसे विभिन्न अंगों में विभक्त कर उसका नाम 'अंगबंदू' रक्खा था। तब से यही रूपान्तर प्रायः सर्वमान्य हो चला। असम्भव नहीं कि कबीर आदि अन्य संतों की वाणियों में भी अंगों का विभाजन रज्जव के ही समय से चला हो।

पाठ-संबंधी विशेषताएँ—स० प्रति में कबीर के १५५ पद, एक रमैनी तथा १८१ साखियाँ मिलती हैं जिनमें केवल ६ साखियाँ ऐसी हैं जो इसमें अतिरिक्त रूप से आई हैं, शेष सभी अन्य प्रतियों में मिल जाती हैं। इसमें लिपि-जनित विकृतियों की प्रायः वे समस्त विशेषताएँ मिलती हैं, जिनका उल्लेख ऊपर दा० प्रतियों के संबंध में किया

४०. रचनाकारों के नाम निम्नलिखित हैं : १. दादू, २. कबीर, ३. कृष्णदास पीढ़ारी, ४. मैहं, ५. हरदास, ६. नापा, ७. नामदेव, ८. काजी महमूद, ९. जन गोपाल, १०. सुरदास, ११. परमानन्ददास, १२. बखना, १३. सुकुन्द मारथी, १४. नानक, १५. अहमद, १६. सम्मन, १७. कणैरीपाव, १८. गोरखनाथ, १९. वाजिद, २०. गो० तुलसीदास, २१. तुरसी-दास निरंजनी, २२. छीतर, २३. रैदास, २४. अग्रदास, २५. पीपा, २६. माधोदास, २७. वांसा, २८. परशुराम, २९. भीखजन, ३०. सोम, ३१. चतुसुंजदास, ३२. जगन्नाथदास, ३३. पृथ्वीनाथ (नाथयोगी), ३४. बेर्णादास, ३५. फरीद, ३६. अमरदास, ३७. खेमदास, ३८. दीपदास, ३९. भीखदास, ४०. गरीबदास, ४१. नरसी मेहता, ४२. अंगद, ४३. हनुमंत सिद्ध, ४४. तिलोचन, ४५. सांवलिया, ४६. बोहितदास, ४७. अनन्त माथुर, ४८. नागर, ४९. नारा-बीकल, ५०. गोविन्ददास, ५१. कृष्णदास, ५२. मांड, ५३. कीलहरदास, ५४. बिहलदास, ५५. वेणीदास, ५६. अमदास, ५७. मांड, ५८. कीलहरदास, ५९. बिहलदास, ६०. हरिहराम माली, ६१. संतदास, ६२. रामानंद, ६३. नंदनास, ६४. फरीद, ६५. जगजीवन दास। इनके अतिरिक्त 'श्रीमद्भागवत', 'नीति-शतक', 'गीता' आदि से संस्कृत के श्लोक भी प्रसंगानुसार आये हैं और यत्र-तत्र फ़ारसी के बँत भी मिलते हैं।

गया है। किन्तु यह पाठ-विकृतियाँ स० के अतिरिक्त अन्य प्रतियों में भी समान रूप से मिलती हैं, अतः इनका निर्देश आगे संकीर्ण-संबंध के प्रकरण में किया गया है। स० में स्वतंत्र रूप से मिलने वाली केवल एक विशेषता है जो निम्नलिखित है—

पुनरावृत्ति—स० के छठे अंग की पहली साखी का पाठ है—

कबीर सोइ अखिर सोई बयण, जन जु जु वाचवंत ।

कोई जन भेलहै केलवण, अहीं रसाईं हूं ॥

यही साखी पुनः ३१-१ पर भी मिलती है। पाठ शब्दशः वही है। संकलन-ग्रन्थों में प्रसंगानुसार इस प्रकार की पुनरावृत्ति हो सकती है, अतः इससे आदर्श-बाहुल्य नहीं सिद्ध किया जा सकता।

गुण० प्रति का विवरण

गुण० अर्थात् 'गुणगंजनामा' भी 'सर्वंगी' के समान ही एक संकलन-ग्रंथ है, जिसे जगन्नाथदास दादूपंथी ने तैयार किया था। जगन्नाथदास भी रज्जव के ही समकालीन थे। जैसा पहले निर्देश किया गया है, हमें 'गुणगंजनामा' की दो प्रतियाँ मिली हैं : एक जयपुर के दादू-महाविद्यालय में और दूसरी ना० प्र० सभा, वाराणसी में। प्रस्तुत अध्ययन में दादू-विद्यालय की ही प्रति का उपयोग किया गया है। इसमें लगभग ५ इंच चौड़े और एक फुट लम्बे चार सौ खुले पन्ने हैं। पोथी अपनी लम्बाई में सुन्दर नागरी अक्षरों में लिखी हुई है। अन्त में इसका लिपिकाल सं० १८५३ वि० दिया हुआ है।

'गुणगंजनामा' में अंगों की संख्या 'सर्वंगी' से अधिक है। इसमें 'नमस्कार-बंदना' से लेकर 'हरिजन अबिहड़' तक कुल १७६ अंग मिलते हैं, किन्तु इसमें पद आदि बड़े छंद न ग्रहण कर केवल साखियाँ या साखियों से मिलते-जुलते ऐसे छंद लिये गये हैं, जो दो या चार पंक्तियों में ही समाप्त हो जाते हैं। गुण० में मिलने वाले छंदों के नाम हैं : साखी, श्लोक (संस्कृत में), सबदी (सिद्धों की), सोरठा, चौपाई, चौमुखी, गूढ़ा (कूट) अरैल, चौबोला तथा गाथा। इसमें निम्नलिखित कवियों की रचनाओं से उद्धरण लिये गये हैं—

१. दादू, २. जगजीवन, ३. कबीर, ४. चैन, ५. रज्जव, ६. जगन्नाथ (संकलयिता), ७. परशुराम, ८. जैमल, ९. दूजन, १०. रामदास, ११. नानक, १२. बाजिद, १३. ज्ञानी, १४. जनगोपाल, १५. माधोदास, १६. रैदास, १७. बखना, १८. अग्रदास, १९. मोहन, २०. भीम, २१. संतोषदास, २२. नामदेव, २४. तुरसी, २४. श्यामदास, २५. ईश्वरदास, २६. सेऊ सम्मन, २७. असरफ, २८. ग्रहमद, २९. जमाल, ३०. मल्ल, ३१. बिहारी, ३२. शंकरदास,

३३. जसवंत, ३४. मूसन, ३५. गरीबदास, ३६. मुहम्मद, ३७. फरीद, ३८. बुरहान, ३९. मधुसूदन, ४०. टोडर, ४१. कासिम, ४२. रांका, ४३. पृथ्वीदास, ४४. कालू, ४५. जोधा, ४६. नरहरि, ४७. खोजी, ४८. व्यास, ४९. कविनाथ, ५०. कूबा, ५१. गो० तुलसीदास, ५२. शंकराचार्य, ५३. गोरखनाथ, ५४. पृथ्वीनाथ, ५५. पीपा, ५६. झंगर, ५७. कमाल, ५८. प्रयागदास, ६०. राघवदास, ६१. लालदास, ६२. चरपट, ६३. कल्यान, ६४. जीता, ६५. नंददास ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवियों की संख्या 'सर्वगी' के समान ही है । पुष्पिका के अनुसार इसमें कुल ५,५८६ साखियाँ संकलित हैं ; किन्तु छंद छोटे होने के कारण इसका आकार अंत में 'सर्वगी' से छोटा ही उतरता है । इसमें कुल मिला कर कबोर को लगभग ४०० साखियाँ मिलती हैं जिनमें ८६ साखियाँ ऐसी हैं जो अन्य प्रतियों में नहीं मिलतीं । गुण० में कई अंग ऐसे भी मिलते हैं जिनमें कबोर की साखियाँ नहीं हैं ।

पाठ-संबंधी विशेषताएँ

इसकी पाठ-संबंधी विशेषताएँ मुख्यतया दा० नि० प्रतियों से मिलती हैं और विकृतियों में फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियाँ हिन्दी विकृतियों से अधिक हैं । नीचे क्रमशः सभी विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है ।

राजस्थानी-प्रभाव—राजस्थान में ही परम्परावद्ध रूप में लिपिवद्ध होने के कारण राजस्थानी-प्रभाव इसमें भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं । दा० नि० के समान इसमें भी कहीं-कहीं पुरो को पुरो साखियाँ राजस्थानी रंग में रंगी हुई हैं । उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित साखियाँ उद्धृत की जा सकती हैं—

१. गुण० १६-६६ : अंदेसड़ौ न भाजिसी, संदेसौ कहियांह ।

कै हरि आयां भाजिसी, कै हरि पास गयांह ॥

२. गुण० १६-६७ : इहि अंग औलू भाजिसी, जदि तदि तुभू मिलियांह ॥

३. इनके अतिरिक्त आंखड़ियां, दुखड़ियां, रतड़ियां, (तीनों गुण० १८-७३ में), करंतड़ा (गुण० १७७-५४) तथा पड़सी (गुण० १२०-६), मिलसी (गुण० ५६-११) आदि राजस्थानी क्रियाओं के प्रयोग भी कम नहीं हैं ।

फ़ारसी-लिपि-जनित विकृतियाँ—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. गुण० १७७-१६७-१ का पाठ है : रोवनहारै भी मुए, मुए चलावन-हार । दा० ४६-३१, नि० ४४-४१, सा० ३०-३५, ७८-३६, सबे० १६-१५६ तथा सासी० १७-६, ३२-३१ सब में उक्त साखी की पहली पंक्ति में 'जलावन-हार' पाठ आता है । यहाँ जगत् की नश्वरता का वर्णन है जिसमें दा० नि०

आदि का पाठ हो अधिक प्रासंगिक है। उसके अनुसार इसका अर्थ होगा : जो विलाप कर रहे थे वे भी मर गये, जो जलाने गये थे वे भी मर गये। 'चलावन-हार' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं उठता। अतः गुण० का पाठ यहाँ विकृत ज्ञात होता है। इस विकृति को संभावनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि इस प्रकार की पाठ-विकृति उर्दू में 'जोम' और 'चे' के सादृश्य के कारण हो सकती है।

२. गुण० ५०-२ : संपट माँहि समाइया। तुल० सा० ६७-२० : संपुट माँहि समाइया (उर्दू में जबर, जेर, पेश की अव्यवस्था के कारण)।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—इस प्रकार की विकृतियों के केवल दो-एक उदाहरण मिलते हैं जो निम्नलिखित हैं—

१. गुण० ८४-३५ का पाठ है : आमन चिता हरि करै, जो तोहि चित न कोइ। नि० ३७-१६, सा० ६६-८, साखे० २२-१, सासी० २०-६ में 'आमन' के स्थान पर 'आपन' और गु० २१६ में 'अपना' पाठ मिलते हैं। 'आमन' स्पष्ट ही विकृत और निरर्थक पाठ है। नागरी में 'प' और 'म' प्रायः एक से लगते हैं और उनमें भ्रम हो जाना असम्भव नहीं। गुण० में यह विकृति इसी भ्रम से आयी ज्ञात होती है।

गुण० में पाठ-विकृतियों के कुछ अन्य उदाहरण भी मिलते हैं किन्तु साथ ही अन्य प्रतियों में भी मिलने के कारण उनकी चर्चा आगे हुई है।

पुनरावृत्तियाँ—'गुणगंजनामा' में दो साखियाँ ऐसी हैं जो दो स्थानों पर मिलती हैं। उसके अठारहवें अंग की ६६ वीं साखी है—

बिरह भुवंगम तनि बसै, मंत्र न लायै कोइ।

रांम बियोगी नां जिवै, जिवै तौ बौरा होइ ॥

यही साखी आगे २६ वें अंग अर्थात् 'बिरह प्रीति प्रभाव' में ६ वीं साखी के रूप में फिर मिलती है। दोनों के पाठों में एक मात्रा का भी अंतर नहीं है।

इसी प्रकार १६वें अंग की ४१वीं साखी आगे चल कर ३५ वें अंग की १७वीं साखी के रूप में पुनः ज्यों की त्यों मिल जाती है। उक्त दोनों साखियों का पाठ है—

ज्यूं मन मेरा तुज्झ सौं, यूं जे तेरा होइ।

ताता लोहा यूं मिलै, संधि न लखई कोइ ॥

संकलन-ग्रन्थों में एक प्रति सामने रहने पर भी प्रसंगानुसार इस प्रकार की कुछ पुनरावृत्तियाँ स्वाभाविक रूप से हो सकती हैं, अतः इतने अल्प उदाहरणों के आधार पर 'गुणगंजनामा' में आदर्श-बहुलता नहीं प्रमाणित की जा सकती।

§४ : प्रतियों का संकीर्ण-संबंध

नीचे ऐसी भूलों या पाठ-विकृतियों के उदाहरण दिये जा रहे हैं, जो किन्हीं दो या दो से अधिक प्रतियों में समान रूप से मिलती हैं, और जिनके आधार पर उन-उन प्रतियों में परस्पर संकीर्ण-सम्बन्ध स्थापित होता है। किसी पाठ की शुद्धाशुद्धि का निर्णय जिन तर्कों के आधार पर किया गया है, उनका भी उल्लेख यथास्थान हुआ है। कबीरवाणी के पाठ में ऐसी विकृतियाँ जिन कारणों से आयी हैं उनकी सम्भावनाओं पर भी विचार किया गया है और उनके संबंध में अपना निर्णय दिया गया है।

दा० तथा नि० का संबंध

दा० तथा नि० प्रतियों के पाठ में अत्यधिक साम्य मिलता है। साखियों में अंगों के नाम, पदों में रागों के नाम तथा उनके अंतर्गत पदों के विभाजन, रमै-नियों के क्रम तथा पाठ स्थूल रूप से प्रायः समान हैं। मुख्य अंतर केवल इतना है कि नि० का आकार दा० से बड़ा है अर्थात् नि० के अनेक पद, साखियाँ तथा रमैनियाँ दा० में नहीं मिलतीं। इसके अतिरिक्त क्रम में अंतर मिलता है। पाठ-भेद भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, किन्तु अन्य प्रतियों की तुलना में उनकी संख्या गौण ही माननी पड़ेगी। विशेषतया निम्नलिखित विकृति-साम्य विचारणीय हैं—

(क) फारसी लिपि-जनित विकृतियों का साम्य—इस वर्ग में दा० तथा नि० में समान रूप से मिलने वाली ऐसी अशुद्धियों का उल्लेख किया गया है, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि उनके मूल रूप (अर्थात् शुद्ध रूप) कभी फारसी लिपि में लिखे थे और जो फारसी लिपि की ही भ्रांतियों के कारण आज इस रूप में दा० तथा नि० में मिलते हैं। निम्नलिखित उदाहरण इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं कि इनके आदर्श कभी उर्दू में थे और मूलतः उर्दू में लिखे

१. हस्तलिखित प्रतियों का लेखन-कार्य प्रायः परम्परागत रूप में चलता है। एक प्रति को देख कर या सुन कर ही दूसरी प्रति उतारी जाती है। इस प्रक्रिया में प्रायः ऐसा हुआ करता है कि पहली प्रति की प्रतिलिपि-संबंधी या अन्य भूलें और प्रशिक्षियाँ दूसरी में भी प्रायः ज्यों की त्यों चली आती हैं और प्रत्येक प्रतिलिपि-पीढ़ी में नई भूलें और प्रशिक्षियाँ बढ़ती चलती हैं। जब कई भूलें या प्रशिक्षियाँ दो या दो से अधिक प्रतियों में उन्हीं-उन्हीं स्थलों पर ज्यों की त्यों मिल जाती हैं और जब इस संदेह के लिए स्थान नहीं रह जाता कि उनमें यह स्वतन्त्र रूप से आयी हुई हैं, तो उन प्रतियों को परस्पर संकीर्ण रूप से सम्बद्ध माना जाता है। प्रतियों के परस्पर संकीर्ण रूप से सम्बद्ध होने का अर्थ यह है कि उनमें मिलने वाला समान पाठ निश्चित रूप से मूलग्रंथ का तब तक स्वीकृत नहीं किया जा सकता जब तक कि उक्त पुष्टि अन्य किसी ऐसी प्रति से न हो जाय जो उनसे पृथक् किसी स्वतन्त्र परम्परा का हो।

जाने के कारण ही उनकी यह दुर्गति हुई है, जो आज हमें नागरी प्रतियों में देखने को मिलती है ।

पदों के उदाहरण—

१. दा० गौड़ी १०५ तथा नि० बिहंगड़ी १४ की पंक्ति ४ तथा ५ का पाठ है : एकनि दीनां पाठ पटंबर एकनि सेज निवारा । एकनि दीनीं गरै (दा३ नि० गलै) गूदरी एकनि सेज, पयारा । गु० आसा १६ में यह पंक्तियाँ आरम्भ में ही मिलती हैं, जहाँ इनका पाठ है : काहू दोन्हें पाठ पटंबर काहू पलघ निवारा । काहू गरी गोदरी नाही काहू खान परारा ॥ दा० तथा नि० की द्वितीय पंक्ति के 'गरै' या 'गलै' पाठ अशुद्ध हैं । अवधी 'गरै' का अर्थ होगा : गले या गरदन में । 'गूदरी' के प्रसंग में गले का कोई प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि गुदरी ओढ़ने-बिछाने के काम में आती है, गले में नहीं लपेटी जाती । यहाँ गु० द्वारा प्रस्तुत किया हुआ 'गरी' (= सड़ी गली या जीर्ण) पाठ ही प्रसंगानुकूल ज्ञात होता है । इस प्रकार की विकृति फ़ारसी के अतिरिक्त अन्य किसी भी लिपि में नहीं हो सकती । उर्दू में 'गरी' तथा 'गरे' दोनों एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं; इसलिए इस पाठ-विकृति की संभावना प्रकट है ।

२. दा० आसावरी ४२ तथा नि० आसा० ३७ की चौथी पंक्ति का पाठ है : सुखे तरवरि पालि बंधावे लुंगे खेत हठि बाड़ि करै । गु० आसा १५ में 'तरवरि' के स्थान पर 'सरवरि' पाठ मिलता है । 'पालि' सरोवर के बाँध या ऊँचे कगार को कहते हैं (तुल० जायसी, पदमावत ६०-१ : खेलत मान-सरोवर गई । जाइ पालि पर ठाढ़ी भई ॥ तथा ६७-५ : टूटि पालि सरवर बहि लागे) । उसके प्रसंग में 'सरवरि' शब्द ही अधिक उपयुक्त है । दा० नि० में संभवतः यह विकृति फ़ारसी लिपि के ('सीन' तथा 'ते' में सादृश्य) कारण आयी है । इस विकृति की संभावना नागरी लिपि में भी है, क्योंकि उसके भी 'स' तथा 'त' में कभी-कभी भ्रम हो जाना असंभव नहीं है ।

३. दा० आसावरी ५७ तथा नि० आसावरी ५१ की आठवीं पंक्ति का पाठ है : करि फिकर दद सालक जसम जहां स तहां मौजूद । दा० नि० का पाठ यहाँ स्पष्ट ही भ्रष्ट हो गया है, क्योंकि इसका कोई प्रसंगोचित अर्थ नहीं निकलता । दादू-विद्यालय में मिली हुई अप्रकाशित टीका (जिसका विवरण अन्यत्र दिया गया है) में इस पंक्ति का अर्थ किया गया है : 'करि फिकर हम चिंता करि दर्दसाल दुख है हमारे । मौजूद तैयार जहाँ तहाँ ।' किन्तु यह अर्थ संतोषजनक नहीं ज्ञात होता । 'जसम' के लिए उक्त टीका में कोई अर्थ ही नहीं मिलता ।

दा० नि० की उक्त पंक्ति गु० तिलंग १ की आठवीं पंक्ति के रूप में मिलती है। गु० में इसका पाठ है : करि फकर दाइम लाइ चसमे जहा तहा मउबूद। यह पाठ अधिक सार्थक और प्रसंगानुकूल प्रतीत होता है (दाइम=सदैव, निरंतर; चसमें=नेत्रों में। उसे सदैव अपनी आँखों में रख कर उसी का चिंतन कर, ऐसा करने पर वह तुम्हें यत्र-तत्र-सर्वत्र विद्यमान मिलेगा।)। 'चसमे' के स्थान पर दा० नि० में 'जसम' पाठ मिलना उर्दू में ही सम्भव हो सकता है, क्योंकि उर्दू में 'जोम' और 'चे' प्रायः एक ही ढंग के होते हैं—अंतर केवल नुक्तों का रहता है। अन्य लिपियों के 'च' और 'ज' में पर्याप्त भिन्नता रहती है अतः उनमें इस प्रकार का भ्रम होना संभव नहीं ज्ञात होता।

साखियों के उदाहरण—

४. दा० १७-४-१ तथा नि० २०-३-१ का पाठ है : स्वामी हुवा सीत का, पैकाकार पचास। सा० २-२३, सावे० २-१६, सासी० ३-४६ तथा ३४-१४ में इसका पाठ है : गुहवा तो सस्ता भया, पैसा केर पचास। वास्तव में मूल पाठ 'सैंत' ज्ञात होता है, क्योंकि अवधी, भोजपुरी में सस्ता या बिना दाम के अर्थ में 'सैंत' शब्द का ही प्रयोग होता है 'सीत' का नहीं (तुल० सावे० ८४-७६, : सैंत मेंत ही देत हीं, गाहक कोई नाहि)। सा० सावे० सासी० में सरल करने की दृष्टि से उसी का समानार्थी रूप 'सस्ता' दिया गया है। उर्दू में 'सैंत' लिखने के समय 'नु' का नुक्ता लगने से यदि रह जाय तो उसे 'सीत' पढ़ा जा सकता है।

५. दा० ३-७-१ का पाठ है : विरहिन ऊठै भी पड़ै, दरसन कारन राम। नि० ६-६ में इसका पाठ है : कबीर विरहिन भी पड़ै, दरसन कारन राम॥ सा० १६-७, सावे० १४-७० तथा सासी० १६-१२ में इस पंक्ति का पाठ है : विरहिन उठि उठि भुइं पड़ै, दरसन कारन राम। स्पष्ट ही यहाँ अंतिम पाठ प्रसंगसम्मत है और शेष दोनों विकृत हैं। राजस्थानी में 'भी' का अर्थ पुनः या प्रतिरिक्त होता है, किन्तु यहाँ उसका कोई प्रसंग नहीं। यहाँ विरहिन की विकलता का वर्णन है। वह उठती है और फिर मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ती है, यही प्रर्थ स्वाभाविक लगता है। 'भुइं' से 'भी' की विकृति पर विचार करने से अनुमान होता है कि फारसी छोड़ अन्य किसी भी लिपि में इस प्रकार की विकृति सम्भव नहीं।

६. दा० २२-१५ तथा नि० २३-२४ का पाठ है : कबीर लज्जा लोक की, मुमिरै नाहीं सांच। जानि बूझि कंचन तजै, काठौ पकड़ै कांच॥ इसकी दूसरी पंक्ति में 'काठौ' शब्द संदिग्ध ज्ञात होता है। सा० ५२-११, सावे० ६७-१५ तथा

सासी० ८१-१३ में 'काठौ' के स्थान पर 'का तू' पाठ मिलता है। इस पाठ से अर्थ में कष्ट-कल्पना नहीं करनी पड़ती, अतः यही मूल पाठ ज्ञात होता है। कबीर की कृतियों में 'काठहि' या 'काठौ' का प्रयोग 'तट' अथवा 'निकटस्थ स्थल' के अर्थ में हुआ है (तुल० दा० १७-१६ : कासी काठें घर करै, पीवै निरमल नीर)। प्रस्तुत साखी में तट आदि का कोई प्रश्न नहीं उठता, अतः 'काठौ' पाठ विकृत ज्ञात होता है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, उर्दू में 'त' तथा 'ट' के लिए एक ही अक्षर का प्रयोग होता है, अतः उनमें भ्रम होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार 'ऊ' और 'औ' की ध्वनियों के लिए भी 'वाव' का ही प्रयोग होता है। 'का तू' से 'काठौ' हो जाने का यही कारण ज्ञात होता है।

रमैतियों के उदाहरण—

७. दा० नि० बड़ी अष्टपदी रमैनी के दूसरे दोहे की ग्यारहवीं पंक्ति का पाठ है : तरिपै बरिसै अखंड धारा। रैन भामिनी भया अंधियारा ॥ बी० रमैनी १६-६ में इसका पाठ है : बरिसै तरिपै अखंडित धारा। रैन भयावनि कछु न अघारा ॥ पूरी रमैनी में सांसारिक उलझनों का रूपक बाँधा गया है। आरम्भ से ही रूपक के उपमेय पक्ष के ही उपकरण गिनाये गये हैं। अतः बीच में 'भामिनी' (=स्त्री) आ जाने से स्वाभाविक शृंखला टूट जाती है। बी० के पाठ में यह दोष नहीं आने पाता। उर्दू में 'भयावनि' लिखते समय 'ये' के नुक्तों में गड़बड़ी हो जाने और 'वाव' तथा 'तु' के आपस में मिल जाने पर 'भयावनि' का 'भामिनी' हो जाना असम्भव नहीं।

८. दा० नि० की बावनी रमैनी में पहली ही पंक्ति का पाठ है : वावन अखिर लोक त्री सब कुछ इनहीं नाहि। गु० गउड़ी ७५ में 'त्री' के स्थान पर 'त्रै' पाठ है। मूल पाठ 'त्रै' रहा होगा 'त्रि' नहीं, क्योंकि प्रसंग से 'लोकत्रय' का ही अर्थ अपेक्षित है। 'त्री' का प्रयोग कबीर में स्त्री के अर्थ में मिलता है। दा० नि० की यह विकृति भी फ़ारसी लिपि के ही कारण माननी पड़ेगी, क्योंकि उर्दू में 'त्री' और 'त्रै' एक ही ढंग से लिखे जाते हैं।

स्थल-संकोच के कारण नीचे के शेष उदाहरणों के संबंध में लिपि-विभ्रम का संक्षिप्त निर्देश मात्र किया जा रहा है। दा० नि० का पाठ इन उदाहरणों में प्रसंगसम्मत नहीं है, यह स्वतः देखा जा सकता है। इसलिए प्रसंग की दृष्टि से इन पाठों के संबंध में कुछ नहीं कहा गया है।

९. दा० १२-८ तथा नि० १६-६ : कबीर कहा गरिबियौ, इस जोवन की आस। केसू फूले दिवस दुइ, खंखर भए पलास ॥ तुल० सा० ३०-१८, सावे०

१६-२६ तथा सासी० १७-२ : 'केशू' के स्थान पर 'टेशू' [उर्दू 'ट' में यदि ऊपर की पड़ी रेखा कुछ दाहिनी ओर हट जाय तो वह 'काफ़' के सदृश लगने लगता है। किंतु यह उदाहरण पूर्णतया निस्सन्दिग्ध नहीं; क्योंकि भाषा-भेद से भी यह परिवर्तन सम्भव है : किशुक > केशू > टेशू]

१०. दा१ २०-६-२ तथा नि० २१-५०-२ : खूँगें बैसि र खाइए, परगट होइ दिवांनि। तुल० सा० ४३-१२, साबे० ७३-१०, सासी० ३१-३६, गु० १७, स० ११२-१७ तथा गुण० ११०-१८ : सब में 'दिवांनि' के स्थान पर 'निदांनि' (निदांनि = अंत में)। नुक्ते के साथ मिल जाने पर 'नु' के शोशे तथा 'दाल' में और 'दाल' तथा 'वाव' के सादृश्य के कारण 'द' तथा 'व' में भ्रम हो जाने से ही कदाचित् यह विकृति संभव हुई है।

११. दा० १६-१७ तथा नि० १६-२ में के अंतिम चरण का पाठ है : मांनि सबनि कीं खाइ। तुल० सा० ३८-५, साबे० ५७-२, सासी० ६७-६, गुण० १५६, बी० १४० : सब में 'मांनि' के स्थान पर 'मान' या 'मानु'। कर्ता 'मान' के स्थान पर अधिकरण 'मानि' अनावश्यक तथा भ्रमात्मक है।

१२. दा० आसावरी ११ तथा नि० आसावरी १० की चौथी पंक्ति का पाठ है : पैली पार के पारधी ताकी धुनहीं पनच नहीं रे। तुल० शबे० (२) भेद १५ : 'धुनहीं' के स्थान पर 'धनुवां' (विकृति उर्दू ज़बर, ज़ेर, पेश की अव्यवस्था के कारण अथवा भाषा-भेद के कारण संभव प्रतीत होती है)।

१३. दा० ५८-४, नि० ६३-४ : ससा सींग की धुनहड़ी, रमै बांभ का पूत। (उपर्युक्त उदाहरण के सदृश)।

१४. पुनः इसी प्रकार दा० ५-२४, नि० ८-१८ : कहै कबीरा संत हो, पड़ि गया निजरि अतूप। तुल० सा० २०-२२, साबे० ४३-२८, सासी० १४-४३ : 'निजरि' के स्थान पर 'नजरि'।

१५. दा० १६-२५, नि० १६-२६ : सांकुल ही तैं सबल है, माया इहि संसार। तुल० सा० ३७-२८, सासी० ३०-४० : सांकल।

१६. दा० तथा नि० १-२२ : संसय खाया सकल जुग, संसा किन्हुं न खद्व। तुल० सा० ७८-८६, साबे० २३-६, सासी० ३२-५७ : सकल जग। अंतिम पाँच विकृतियों के उदाहरण प्रांतीय भाषा-भेद के कारण भी संभव हैं।

(ख) नागरी लिपि-जनित विकृतियों का साम्य—नागरी लिपि-जनित विकृतियों का केवल एक साम्य है जो निम्नलिखित है—

१. दा० ५३-३-१ तथा नि० ५६-५-१ का पाठ है : सो साईं तन मैं

बसै, भरमि न जानैं तासु । तुल० सा० १०३-२ तथा सासी० ४१-१४ : सो साहिब तन में बसै, मरम न जानै तास । 'मरम' (=भेद) पाठ स्पष्ट ही यहाँ प्रासंगिक तथा प्रामाणिक ज्ञात होता है । दा० नि० का पाठ इसी का विकृत रूप ज्ञात होता है । नागरी के 'भ' तथा 'म' में विशेष अन्तर नहीं रहता, इसलिए 'मरम' से 'भरम' हुआ और 'भरम' को कदाचित् व्याकरणोचित बनाने के लिए 'भरमि' कर दिया गया ।

(ग) राजस्थानी-प्रभाव का साम्य—पीछे विभिन्न प्रतियों के विवरण में हमने देखा है कि दा० तथा नि० में से प्रत्येक में राजस्थानी का अत्यधिक प्रभाव मिलता है । उक्त प्रसंग में ऐसे उदाहरण उद्धृत किये गये थे जो केवल दा० या केवल नि० में मिलते हैं । राजस्थानी के ऐसे अनेक प्रयोग हैं जो दा० तथा नि० दोनों में समान रूप से भी मिलते हैं । उनमें से कुछ के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं । स्थल-संकोच के कारण उनका निर्देश-मात्र किया गया है । उनका राजस्थानी-पन स्वतः सिद्ध है । काले अक्षरों में छपे शब्द विशेष रूप से विचारणीय हैं—

१. तुल० दा० ३-६, नि० ६-६ अंदेसड़ा न भाजिसी, संदेसौ कहियां । कै हरि आयां भाजिसी, कै हरि ही पास गयां ॥
२. दा० २६-३, नि० ८-६६ : तन खीनां मन उनमनां, जग रुठड़ा फिरंत ।
३. दा० २०-१३, नि० २१-२० : कबीर भग की प्रीतड़ी, केते गए गडंत । केते अजहूं जाइसी, नरकि हसंत हसंत ॥
४. दा० ५६-२-२, नि० १७-३६-२ : देखत ही दह में पड़ै, दई किसानों दोस ।
५. दा० ५६-१-२, नि० ८-४७-२ : हिलि मिलि ह्वै करि खेलिसुं, कदे बिछोह न होइ ।
६. दा० ३४-७-२, नि० ५-५-२ : पैका पैका जोड़तां, जुड़िसी लाख करोड़ि । (तुल० बी० २०६ : कौड़ी कौड़ी जोरि कै, जौरे लाख करोड़ि) ।
७. दा० २-२१-२, नि० ५-५-२ : ओसां प्यास न भाजिसी, जब लगि धसै न आभ ।
८. दा० ३१-६-२, नि० ३३-६-२ : चरन कमल की मौज मैं, रहिस्युं अंति रु आदि ।
९. दा० ४६-६-२, नि० ४४-६-२ : काल अच्यंता भड़पसी, ज्यूं तीतर कौं बाज ।
१०. दा० १३-२३, नि० १७-२८ : मिरतक कूं घीजौ नहीं, मेरा मन

बी है। बाजै बाव विकार की भी भूवा जीवै ॥ (राज० बी=हि० वही; भी=फिर)।

इनके अतिरिक्त दोनों में 'लह्या', 'प्रगट्या', 'कह्या' आदि रूप, -सी प्रत्ययांत क्रियाएँ तथा एकारान्त शब्दावली का बाहुल्य है, जो राजस्थानी की स्थूल विशेषताएँ हैं। इनके उदाहरण दा० नि० में अग्रणीत हैं। कहीं-कहीं राजस्थानी के ऐसे ठेठ प्रयोग आ गये हैं कि बिना उक्त भाषा का ज्ञान प्राप्त किये उनका अर्थ समझना कठिन हो जाता है।

यह एक विचारणीय बात है कि पदों की तुलना में साखियों में राजस्थानीपन अधिक मिलता है।

(घ) पंजाबी-प्रभाव का साम्य—कुछ विकृतियाँ दा० नि० में ऐसी मिलती हैं जिनसे ज्ञात होता है कि दोनों पर पंजाबी का भी कुछ प्रभाव पड़ा है। दोनों में पंजाबी-विकृतियाँ समान रूप से मिलने के कारण दोनों में संकीर्ण-सम्बन्ध भी सिद्ध होता है। ऐसी विकृतियों के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. दा० १२-११-१ तथा नि० १६-१२-१ : चाम पलेटे हड।

२. दा० १२-६०-२ तथा नि० १६-४३-२ : रूई पलेटी आगि। इसी प्रकार दा० १६-३२ तथा नि० १६-४२ में भी : रूई पलेटी आगि।

३. दा० १७-३-१ तथा नि० २०-२-१ : स्वामीं हूँगां सोहरा, दोढा हूँगां दास। तुल० सा० ४०-३ तथा सासी० ११-१५ : होना।

४. दा० ४३-१०, नि० ४८-१३ : माया मिलै महोवती, कूड़े आखै बँन। कोई घायल बेधा ना मिलै, साईं हंदा सँगा।

(ङ) पुनरावृत्तियों में साम्य—दा० तथा नि० के रमैणी-प्रकरण में कुछ पंक्तियाँ ऐसी हैं, जो दोनों में दो-दो बार मिलती हैं। इस संबंध में निम्नलिखित पंक्तियाँ तुलनीय हैं—

१. सतपदी रमैनी के चौथे दोहे की चौथी पंक्ति है—

जिनि जान्या ते निरमल अंगा। नहों जान्या ते भए भुजंगा ॥

यही पंक्ति पुनः वारहपदी रमैनी के ५वें दोहे की ५वीं पंक्ति के रूप में इस प्रकार मिलती है—

जिनि चीन्हां ते निरमल अंगा। जे अचीन्ह ते भए पतंगा ॥

यह पंक्ति बीजक में केवल एक स्थल पर (अर्थात् चौथी रमैनी में) मिलती है।

२. इसी प्रकार तुल० सतपदी ७-४ : भवसागर अति बार न पारा ।

ता तिरवे का करहु बिचारा ॥

तथा बड़ी अष्टपदी ८-१६ : भवसागर अति बार न पारा ।

ता तिरवे का करहु बिचारा ॥

३. तुल० सतपदी दोहा ७ : भवसागर अथाह जल, तामैं बोहिथ रांम आधार ।

कहै कबीर हंम हरि सरन, तब गोमद खुर विस्तार ॥

तथा बड़ी अष्टपदी ८ : भाव भगति हित बोहिथा, सतगुरु खेचनहार ।

अलप उदिक तब जांगिए, जब गोपद खुर विस्तार ॥

इसी प्रकार निम्नलिखित स्थल भी तुलनीय हैं, जिन्हें स्थल-संकोच के कारण विस्तार से नहीं उद्धृत किया जा रहा है—

(४) सतपदी पंक्ति २ तथा बड़ी अष्टपदी पंक्ति २; (५) बड़ी अष्टपदी ५-१ तथा वही ७-४; (६) बड़ी अष्टपदी ५-११ तथा दुपदी २-२६; (७) बड़ी अष्टपदी ५-१४ तथा दुपदी २-१४; (८) बड़ी अष्टपदी ५-१५ तथा दुपदी २-२५; (९) दुपदी २-४८-१ तथा ५६-१ ।

किसी एक व्यक्ति की रचना में, या उस रचना की मूल प्रति में इतनी अधिक पंक्तियों की पुनरावृत्ति खटकती है। यदि ध्यान से देखा जाय तो ज्ञात होगा कि दो स्थलों पर आयी हुई पंक्तियाँ प्रायः एक ही स्थान पर प्रसंग और प्रयोगसम्मत रहती हैं, दोनों स्थानों पर नहीं। अनुकूल प्रसंग आ पड़ने पर एकाध की पुनरुक्ति की बात दूसरी है। अतः इन्हें एक ही स्थान पर प्रामाणिक मानना ठीक होगा।

इनके अतिरिक्त दा३, दा४ तथा दा५ की कुछ विकृतियाँ दा० की अन्य प्रतियों में न मिल कर नि० में मिलती हैं, जिससे इनका नैकथ्य सिद्ध होता है, उदाहरणतया—दा१ तथा दा२ के पाँचवें अंग में ४३वीं के बाद आने वाली साखी इस प्रकार है—

अनहद बाजै नीभर भरै, उपजै ब्रह्म ग्यांन ।

अबिगत अंतर प्रगटै, लागै प्रेम धियांन ॥

दा३ दा४ में इसकी दूसरी पंक्ति लिखने से रह गयी है और इसके स्थान पर ४५वीं साखी की पहली पंक्ति मिलती है। नि० में यह साखी ८वें अंग की ५६ संख्या पर आती है। उसमें भी ठीक उसी स्थल पर उसी प्रकार की भूल मिलती है।

आगे रमैणी-प्रकरण में भी इसी प्रकार का एक साम्य और मिलता है। दा१

दार बड़ी अष्टपदी के नवें छंद की पंक्ति १२, १३ तथा १४ का पाठ है :
त्रिजुग जोनि जे आहि अचेता । मनखा जनम भयो चित चेता ॥ आत्मां सुरछि
सुरछि जरि जाई । पिछले दुख कहतां न सिराई ॥ सोई त्रास जे जानैं हंसा ।
तौ अजहूं न जीव करै संतोसा ॥ दा३ दा४ में काले अक्षरों में छपी पंक्तियाँ
लिखने से छूट गयी हैं । नि० में भी ठीक ऐसा ही हुआ है ।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि दा४ तथा नि० प्रति-
लिपि की एक ही परम्परा में पड़ती हैं । इस निर्णय की पुष्टि बहिसाक्ष्य से भी
होती है । प्रतियों के विवरण में दा३ तथा दा४ की जो पुष्पिकाएँ दी गयी
हैं उनसे यह ज्ञात होता है कि यह दोनों प्रतियाँ डीडवाने के स्वामी प्रयागदास
(दाढ़ू के शिष्य) के स्थान पर उनके शिष्यों द्वारा लिपिबद्ध हुई थीं । नि० प्रति
हरिरामदास नामक निरंजनी साधु द्वारा लिखी गयी है जो स्वामी अमरदास
का पौत्र शिष्य था । राजस्थान के निरंजनी सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी
हरिदास (उपनाम हरिराय) थे । यह हरिदास भी डीडवाने के ही थे और
प्रयागदास को अपना आध्यात्मिक गुरु मानते थे । इन बातों के लिए लिखित
प्रमाण भी मिलते हैं । स्वामी राघवदास ने अपने 'भक्तमाल' (अप्रकाशित)
के छंद १०६२ तथा १०६६ में हरिदास के सम्बन्ध में जो विवरण दिया है
उसमें निम्नलिखित पंक्तियाँ इस प्रसंग में विचारणीय हैं । छप्पय १०६२ की
अंतिम पंक्तियाँ हैं—

सिर परि करि प्रागदास की, गोरखनाथ को मत लियो ।

जन हरिदास निरंजनी, ठौर ठौर परचौ दियो ॥

ऐसा प्रसिद्ध है कि हरिदास पहले दाढ़ूपंथ में ही थे किन्तु बाद में नाथपंथ
की ओर अधिक रुझान होने के कारण उन्होंने निरंजनीपंथ नाम से अपना एक
अलग संप्रदाय स्थापित कर लिया । छंद १०६६ की (जिसमें निरंजनियों के
निवासस्थान गिनाये गये हैं) अंतिम पंक्ति है—

ध्यानदास म्हारि भए डीडवाणे हरीदास, दास जगजीवन सु भादवैं लुभाए हैं ॥

निरंजनीपंथ से प्रागदास की व्यक्तिगत घनिष्टता के साथ ही साथ उनके
स्थान में सुरक्षित प्रतियों की सन्निकटता भी स्वाभाविक है ।

दा५ तथा नि० में यह पाठ-संबंध और अधिक गहरा प्रतीत होता है, जो
नीचे के उदाहरण से ज्ञात होगा । दा५ गौड़ी ८७ तथा नि० भैरव ४६ के रूप में
जो पद मिलते हैं उनमें पंजाबी के कई प्रयोग हैं । इनके अतिरिक्त दोनों की छठी

तथा सातवीं पंक्तियाँ दा० नि० में ही अन्यत्र साखी के रूप में मिलती हैं; तुल० दा० ३-२ तथा नि० ६-१२—

अंबर कुंजां कुरलियां, गरजि भरे सब ताल ।

जिनपै गोविंद बीछुटे, तिनके कौन हवाल ॥

यह पंक्तियाँ अन्य प्रतियों में भी किंचित् पाठांतर के साथ साखी के ही रूप में मिलती हैं जिससे साखी-रूप में उनकी प्रमाणिकता अशुभण है (तुल० सा० १६-२, सावे० १४-३६, सासी० १६-२, गुण० २०-५२ तथा गु० १२४) । केवल दा५ तथा नि० में पदों के बीच भी इन पंक्तियों का मिलना दोनों के संकीर्ण-संबंध की पुष्टि करता है ।

ऊपर केवल दा० नि० में मिलने वाली विकृतियाँ दी गयी हैं । जो विकृतियाँ दा० नि० के अतिरिक्त अन्य प्रतियों में भी मिलती हैं उनके लिए दा० नि० स०, दा० नि० गुण०, दा० नि० सा०, दा० नि० स० गुण०, दा० नि० सा० स० गुण०, दा० नि० सा० सासी० के प्रकरण देखने चाहिए । दा० नि० संबंधी इन समस्त पाठ-विकृतियों को देखने पर दोनों के संकीर्ण-सम्बन्ध की यथार्थता स्वतः स्पष्ट हो जाती है ।

दा० तथा गु० का संकीर्ण-संबंध

दा० तथा गु० में पाठ-विकृति का साम्य कहीं नहीं मिलता, केवल एक साखी ऐसी मिलती है जो दोनों में दो-दो बार आती है । तुल० दा० १-७—

सतगुर सांचा सूरिवां, सबद जु बाह्या एक ।

लागत ही भै मिटि गया, पड़्या कलेजै छेक ॥

तथा दा० ४०-४ : पाठ अक्षरशः वही ।

यही साखी गु० में भी दो स्थलों पर मिलती है : एक बार १५७ संख्या पर, जिसका पाठ है—

सांचा सतगुर मैं मिलिआ सबदु जु बाहिआ एक ।

लागत ही भुंड मिलि गइआ परिआ कलेजे छेकु ॥

और फिर १६४ पर, जिसका पाठ है—

कबीर सतगुर सूरमे बाहिआ बातु जु एक ।

लागत ही भुइ गिरि परिआ परा करेजे छेकु ॥

गु० में साखियों की केवल प्रथम पंक्तियों में थोड़ा सा अन्तर मिलता है, किन्तु कुल मिला कर पुनरावृत्ति स्पष्ट रूप से सिद्ध है । इसके अतिरिक्त केवल एक संदिग्ध शब्द ऐसा और है जो दा० तथा गु० दोनों में मिलता है । दा० १२-

४६-२ का पाठ है : तब कुल किसका लाजसी, जब ले घरचा मसाणि । इसमें 'लाजसी' का -सी प्रत्ययांत रूप राजस्थानी का है । गु० सलोक १६६ में भी यह शब्द ज्यों का त्यों मिलता है । किन्तु दा० और गु० दोनों ही पश्चिमी प्रतियाँ हैं, इसलिए दोनों में पश्चिमी प्रभाव दिखाई पड़ना नितान्त स्वाभाविक है । असम्भव नहीं कि पश्चिमी अपभ्रंश से यह रूप दोनों पश्चिमी भाषाओं में पहुँच गया हो, और दोनों के इतने बड़े आकार में केवल एक राजस्थानी शब्द समान रूप से मिल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

इस प्रकार हम दा० गु० के राजस्थानी-साम्य को छोड़ सकते हैं, किन्तु दोनों में एक पूरी साखी की पुनरावृत्ति इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करती है कि दा० तथा गु० दोनों संकीर्ण-सम्बन्ध से सम्बद्ध हैं । यह पुनरावृत्ति केवल संयोग-वश भी नहीं मानी जा सकती ।

नि० तथा गु० का संकीर्ण-सम्बन्ध

नि० तथा गु० में भी केवल एक स्थान पर विकृति-साम्य मिलता है । नि० आसावरी ४५ की चौथी पंक्ति का पाठ है : अन झूठा पानी पुनि झूठा, जूठी बैसि पकाया । यह पद गु० वसंत हिंडोल ७ पर भी मिलता है, जिसमें उक्त पंक्ति का पाठ है : अगनि भी झूठी पानी झूठा जूठी बैसि पकाइआ । दा० आसावरी ५०-४ में 'जूठी' शब्द के स्थान पर 'जूठे' पाठ मिलता है । यदि ध्यान से देखा जाय तो यहाँ दा० का पाठ ही अधिक उपयुक्त सिद्ध होगा, नि० तथा गु० का नहीं । इस पद में ब्राह्मणों की छुआछूत का खंडन है । 'जूठी बैठि पकाया' का तात्पर्य यह होगा कि बैठ कर भोजन पकाने वाली भी जूठी है । भोजन केवल स्त्रियाँ ही नहीं पकातीं, पुरुष भी पकाते हैं । फिर यह बात उन कर्मकांडी ब्राह्मणों पर लागू नहीं होगी जो स्त्री का स्पर्श किया हुआ भोजन ग्रहण ही नहीं करते, और कबीर का व्यंग विशेषतया ऐसे ही ब्राह्मणों के संबंध में है । उनका पहला प्रश्न है : कहु पंडित सूचा कवन ठांव । यदि 'जूठी' पाठ ठीक भी मान लिया तो 'बैसि' (=बैठ कर) शब्द यहाँ निष्प्रयोजन हो जायगा, क्योंकि पकाने वाली चाहे बैठ कर पकावे या खड़े-खड़े, इसका यहाँ कोई प्रसंग ही नहीं आना चाहिए । 'जूठै बैठि' पाठ शुद्ध मान लेने से यह सारी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं । इसके अनुसार उक्त पंक्ति का अर्थ होगा : अन्न भी झूठा है, पानी भी झूठा है, और जहाँ बैठ कर पकाते हो वह स्थान भी झूठा है । नि० और गु० में यह विकृति फ़ारसी लिपि के कारण आयी हुई ज्ञात होती है, क्योंकि उसमें 'जूठी' और 'जूठे' एक ही ढंग से लिखे जाते हैं ।

किन्तु केवल एक (और वह भी निबल) साक्ष्य के आधार पर ही नि० गु० को परस्पर सम्बद्ध नहीं मान लिया गया। नि० गु० का संबंध नि० गु० सा० सासी० में मिलने वाली पुनरावृत्ति के आधार पर निर्धारित किया गया है, अतः इस संबंध में नि० गु० सा० सासी० के संकीर्ण-संबंध का प्रकरण भी द्रष्टव्य है।

दा० नि० तथा स० का संकीर्ण-संबंध

दा० नि० स० में जितना अंश मिलता है उसका पाठ स्थूल रूप से एक ही है। विकृतियों के भी अनेक साम्य मिलते हैं जो निम्नलिखित हैं—

(क) फ़ारसी-लिपि-जनित विकृतियों के साम्य—दा० नि० स० तीनों में समान रूप से ऐसी अनेक पाठ-विकृतियाँ मिलती हैं जो फ़ारसी लिपि के प्रमाद से उत्पन्न हुई ज्ञात होती हैं। नीचे क्रमशः उनका उल्लेख किया जा रहा है—

१. दा० गौड़ी ६७, नि० गौड़ी ७० तथा स० ६२-२ में तीसरी पंक्ति का पाठ है : संत मिलैं कछु कहिए कहिए। मिलैं असंत मुष्टि करि रहिए। दा० नि० स० का उक्त पद गु० में गोंड १ के रूप में मिलता है जिसमें इस पंक्ति का पाठ है : संत मिलैं किछु सुनीअै कहीअै। मिलैं असंतु मसटि करि रहीअै ॥ प्रसंग यहाँ चुप होने का है जिसके लिए अवधी, भोजपुरी में 'मस्ट' या 'महट' शब्द ही प्रचलित है, 'मुष्टि' नहीं। 'मुष्टि' शब्द मुष्टिका या मुट्ठी का द्योतक है। इस विकृति का कारण भी स्पष्ट है। उर्दू में जवर, जेर, पेश न लगाये जाने पर (जो प्रायः नहीं लगाये जाते) 'मष्टि' का 'मुष्टि' पढ़ लिया जाना अस्वाभाविक नहीं है। दा० नि० स० की मूल प्रति, जिससे कबीर की वाणी तीनों में आयी, अथवा उसकी परम्परा में उसका कोई पूर्वज फ़ारसी लिपि में लिखा हुआ ज्ञात होता है। बीजक की रमैनी ७० में भी यह पंक्ति मिलती है, किन्तु वहाँ 'मस्टि' के स्थान पर 'मौन' पाठ मिलता है जो 'मसिट' (जो कुछ अपरिमाजित सा लगता है) का परिमाजित रूप ज्ञात होता है।

२. दा० आसावरी २५, नि० आसावरी २४ तथा स० ७६-२६ में पाँचवीं पंक्ति का पाठ है : नानां रंगै भांवरि फेरी गांठ जोरि बाबै पतितई। बी० शब्द ५४ में इस पंक्ति का पाठ है : नाना रूप परी मन भांवरि गांठि जोरि भाई पतिआई। शबे० (१) चिता० उप० १२ में इसका पाठ 'गांठि जोरि भइ पति की आई' मिलता है। विश्वास में डालने या पढ़ने के अर्थ में 'पतियाना' शब्द का प्रयोग होता है, 'पतितई' इस प्रसंग में निरर्थक ज्ञात होता है और 'पतियाई' अथवा 'पतिआई' का ही विकृत रूप जान पड़ता है। इस प्रकार की विकृति उर्दू में ही सम्भव जान पड़ती है, क्योंकि उसमें 'ते' और 'ये' की मिलावटों में विशेष अन्तर

नहीं रहता—शोशे एक ही प्रकार के होते हैं अन्तर केवल नुक्तों का ही होता है ।

३. दा० नि० केदारौ ६ तथा स० ३७-२ की पाँचवीं पंक्ति का पाठ है : तन मन डस्यौ भुजंग भांमिनीं लहरी वार नपारा । शबे० (१) विरह-प्रेम ३ में 'लहरी' के स्थान पर 'लहरै' पाठ मिलता है । स्त्री-रूपी सर्पिणी के डसे जाने पर लहरों का (प्रस्वेद, कँपकपी आदि का) वार-पार नहीं रहता । इस प्रसंग में 'लहर' शब्द का पष्ठ्यंत रूप होना चाहिए । इस दृष्टि से शबे० का 'लहरै' (=लहरों का) पाठ ही प्रामाणिक जान पड़ता है, दा० नि० स० का 'लहरी' नहीं । मूल पाठ वस्तुतः 'लहरइ' प्रतीत होता है जिस कदाचित् उर्दू में रहने के कारण किसी प्रतिलिपिकार ने 'लहरा' पढ़ लिया और वही पाठ दा० नि० स० में चलने लगा ।

४. दा० आसावरी ६, नि० आसावरी ८, तथा स० ६२-१ में चौथी पंक्ति का पाठ है : ध्यान धनक जोग करम ग्यान वान सांधा । 'धनक' शब्द स्पष्ट ही 'धनुक' का विकृत रूप है । वी० शब्द ८७ में 'धनक' के स्थान पर 'धनुष' पाठ ही मिलता है । 'धनुष' या 'धनुक' का 'धनक' होना फ़ारसी लिपि में ही सम्भव हो सकता है । इस विकृति का समाधान अन्यथा पश्चिमी उच्चारण के फलस्वरूप भी किया जा सकता है ।

५. दा० रामकली १४, नि० रामकली १५, तथा स० ७०-१६ में पंक्ति ३ तथा ४ का पाठ है : तरवर एक अनंत मूरति सुरता लेहु पिछाणी । साखा पेड़ फूल फल नाहीं ताकी अमृत बांणी ॥ पहली पंक्ति में 'तरवर' मौजूद रहने से पुनः अगली पंक्ति में 'पेड़' शब्द आ जाने पर पुनरुक्ति स्पष्ट है । गु० रामकली ६-१, २ में इन पंक्तियों का पाठ है : तरवर एक अनंत डार साखा पुहुप पत्र रस भरीआ । इह अमृत की बाड़ी है रे तिनि हरि पूरे करीआ ॥ सम्पूर्ण पद में मानव शरीर के लिए पुष्प-पत्रों से सुसज्जित हरे-भरे वृक्ष का रूपक उपस्थित किया गया है । इस प्रसंग में गु० का 'बाड़ी' पाठ ही निर्दिष्ट अर्थ की पूर्ति करता है । ऐसा ज्ञात होता है कि दा० नि० स० में 'बाड़ी' (=उद्यान) को 'बांणी' (=वचन, बोल) पढ़ लेने के कारण ही सारे पाठ-परिवर्तन करने पड़े हैं । उर्दू में बे, अलिफ़, डे, ये मिलाकर 'बाड़ी' लिखा जाता है । हिन्दी में इसे कोई 'बांणी' भी पढ़ सकता है । अन्य लिपियों में ऐसा भ्रम होने की सम्भावना कम है, क्योंकि अन्य लिपियों के 'ड़' और 'ण' में पर्याप्त भिन्नता होती है ।

६. दा० रामकली १३, नि० रामकली १४, तथा स० ७०-२५ में दूसरी पंक्ति का पाठ है : तरवर एक पेड़ बिनु ठाढ़ा बिनु फूलों फल लागा । इस पाठ में

भी उसी प्रकार का पुनरुक्ति-दोष है। अनुमान है कि मूल प्रति में 'पेड़' के स्थान पर 'पीड़', या 'पींड' (जैसे : कटहर डार पींड सों पाके।—जायसी, पदमावत छंद २०) पाठ था, किन्तु मूल-प्रति फ़ारसी लिपि में लिखी रहने के कारण किसी प्रतिलिपिकार ने भ्रम से उसे 'पेड़' पढ़ लिया, क्योंकि उसमें दोनों शब्द एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं।

७. दा० आसावरी ४२, नि० आसावरी ३७ तथा स० ६४-१ में पाँचवीं पंक्ति का पाठ है : आयौ चोर तुरंगम लै गयौ मोरी राखत मुगध फिरै। गु० आसा १५ में 'मोरी' के स्थान पर 'मेरी' पाठ मिलता है। प्रस्तुत प्रसंग में न तो 'मोरी' उपयुक्त लगता है और न 'मेरी'। जिस पद में यह पंक्ति आयी है उसका मुख्य भाव यह है कि संसारी व्यक्ति अज्ञान में पड़ कर मूल वस्तु अर्थात् भगवद्-भजन, को गँवाकर व्यर्थ माया संग्रह करने के पीछे पागल बने रहते हैं। यहाँ तुरंग के प्रसंग में 'मोरी' के स्थान पर किसी ऐसी गौण वस्तु का नाम रहना चाहिए जिसका घोड़े की अनुपस्थिति में कोई महत्व न हो। 'मोरी' शब्द का प्रयोग अवधी, भोजपुरी में प्रायः छोटे पुल के लिए किया जाता है जिसमें से छोटी-मोटी नालियों का पानी निकला करता है। यहाँ उसका कोई प्रयोजन नहीं समझ पड़ता। ऐसा लगता है कि मूल पाठ यहाँ 'मोहड़ी' (=घोड़े के मुख पर लगाया जाने वाला एक साज) था जो कदाचित् उर्दू में लिखा रहने के कारण भ्रम से 'मोरी' पढ़ लिया गया। गु० में 'मोरी' के स्थान पर 'मेरी' पश्चिमी रूप देने की दृष्टि से किया हुआ ज्ञात होता है।

रमैनियों में विकृति-साम्य नहीं मिलते, क्योंकि स० में दा० नि० की बारह-पदी रमैनी के केवल ६वें छंद की ही रमैनी मिलती है, शेष नहीं मिलतीं।

(ख) नागरी लिपि-जनित विकृति-साम्य—दा० नि० स० में केवल एक विकृति ऐसी मिलती है जो नागरी लिपि के कारण हुई ज्ञात होती है और वह निम्नलिखित है—दा० गौड़ी १२, नि० गौड़ी १३ तथा स० ७०-८ प्रथम पंक्ति का पाठ है : हरि के खारे बरे पकाए जिनि जारे तिन खाए। यहाँ 'जारे' पाठ निरर्थक ज्ञात होता है। दा० नि० स० का उक्त पद गु० में भी आसा ६ पर मिलता है। उसमें इस पंक्ति का पाठ है : राजा राम ककरीआ बरे पकाए किनै बूझनहारे खाए। 'किनै बूझनहारे' स्पष्ट रूप से परवर्ती संशोधन है, किन्तु यह मूल पाठ की ओर संकेत अवश्य करता है। इस पाठान्तर से इतना स्पष्ट हो जाता है कि "परमात्मा के नमकीन बरे वही खायेंगे जिन्होंने उनका रहस्य जान लिया है"—यही उक्त पंक्ति का भाव है। इस प्रकार अर्थ की दृष्टि से दा० नि० स० का पाठ अस्वीकृत कर

गु० का पाठ ग्रहण किया जा सकता है; किन्तु दा० नि० स० का पाठ विकृत है, यह जितने निस्संदिग्ध रूप में कहा जा सकता है, गु० का पाठ अस्वाभाविक है, इसे भी उतनी ही दृढ़ता से कहा जा सकता है। दा० नि० स० की विकृति-संबंधी विभिन्न संभावनाओं पर विचार करने से अनुमान लगता है कि कदाचित् 'जारे' के स्थान पर मूल प्रति में 'जाने' पाठ या जो नागरी या कैथी में लिखे रहने के कारण भ्रम से 'जारे' पढ़ लिया गया और वही विकृत पाठ दा० नि० स० में चला आया। प्राचीन नागरी या कैथी लिपि में 'न' और 'र' लगभग एक ही आकृति के होते थे। ऐसा लगता है कि जिस प्रति से दा० नि० स० के पाठ लिखे गये या तो उसमें या उसके किसी पूर्वज में यह भ्रांति इसी कारण से आ गयी थी और आगे भी परम्पराबद्ध रूप में चलती रही।

(ग) पंजाबी प्रभाव का साम्य—दो उदाहरण पंजाबी-प्रभाव के भी तीनों प्रतियों में समान रूप से मिलते हैं जो निम्नलिखित हैं—

१. दा० गौड़ी ६२, नि० गौड़ी ६५ तथा स० ७६-१ की नवीं पंक्ति का पाठ है : दिल नहिं पाक पाक नहीं चीन्हां उसदा खोज न जानां। नि० तथा स० में 'उसता' मिलता है किन्तु 'उसदा' यः 'उसता' पंजाबी के ठेंठ प्रयोग हैं, जो हिन्दी प्रदेश में कहीं नहीं व्यवहृत होते। उक्त पद गु० में भी विभास प्रभाती राग के अन्तर्गग चौथी संख्या पर मिलता है। उसमें उक्त पंक्ति का पाठ है : तूं नापाक पाकु नही सूझिया तिसका मरमु न जाना। गु० प्रति पंजाब में लिपिबद्ध हुई थी, फिर भी उसमें 'तिसका' पाठ मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि यह दा० नि० स० की निजी विशेषता है।

२. इसी पद की तीसरी तथा चौथी पंक्तियों का पाठ दा० नि० स० में इस प्रकार है : सरजी आनैं देह बिनासै माटी विसमिल कीता। जोति स्वरूपी हाथि न आया कहौ हलाल क्या कीता॥ 'कीता' शब्द भी पंजाबी का है। गु० में यहाँ भी दोनों स्थलों पर 'कीता' के स्थान पर ठेंठ अवधी रूप 'कीआ' मिलता है। इस प्रकार के ठेंठ पंजाबी प्रयोग मिलने का अर्थ यह है कि दा० नि० स० तीनों एक ही प्रतिलिपि-परम्परा की हैं और साथ ही यह भी सिद्ध हो जाता है कि तीनों का कोई पूर्वज पंजाब में लिपिबद्ध हुआ था।

दा० नि० स० के संकीर्ण-संबंध के लिए इन उदाहरणों के अतिरिक्त दा० नि० स० गुण० तथा दा० नि० स० सा० गुण० के प्रकरण भी देखने चाहिए, क्योंकि उनमें अन्य प्रतियों के साथ दा० नि० स० के भी विकृत-साम्य मिलते हैं।

दा० नि० तथा गुण० का संकीर्ण-संबंध

दा० नि० गुण० में निम्नलिखित विकृति-साम्य मिलते हैं—

(क) फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियों का साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. दा० ३६-१, नि० ३६-१ तथा गुण० ५०-२ में पहली पंक्ति का पाठ है : संपटि मांहि समाइया सो साहिब नहि होइ । 'संपटि' 'संपुट' (=मूर्ति रखने का पात्र) का विकृत रूप है । उक्त साखी सा० ६८-२०, सावे० ३६-८ तथा सासी० २४-८ में भी मिलती है जहाँ 'संपटि' के स्थान पर 'संपुटि' पाठ ही मिलता है । यह विकृति उर्दू में पेश का चिह्न न लगाये जाने के कारण आयी हुई ज्ञात होती है ।

२. दा० ४६-१, नि० ४४-२ तथा गुण० १७७-१५७ की दूसरी पंक्ति का पाठ है : खलक चबोंगां काल का, कछु मुख मै कछु गोद । तुल० सा० ७८-१, सावे० १६-४, सासी० ३२-४ में 'चबैना' । यह विकृति उर्दू में ज़बर, ज़ेर, पेश की अव्यवस्था के कारण अथवा पश्चिमी उच्चारण के प्रभावस्वरूप मानी जा सकती है ।

(ख) नागरी लिपि-जनित विकृतियों का साम्य—नागरी विकृतियों के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. दा० ४६-१७, नि० ४४-२२ तथा गुण० १७७-१६८ में पहली पंक्ति का पाठ है : मंदिर मांहि भवूकती, दीवा की सी जोति । सा० ७८-४२, सावे० १६-१५२ तथा सासी० १७-१३७ में इसका पाठ है : मंदिर मांहीं भलकती दीवा की सी जोति । दीपक की ज्योति के टिमटिमाने के अर्थ में 'भलकती' पाठ ही अधिक प्रसंग-सम्मत लगता है, 'भवूकती' नहीं । यह विकृति नागरी अथवा नागरी से निकली हुई किसी लिपि के 'ल' को 'व' पढ़ने के कारण हुई प्रतीत होती है ।

(ग) राजस्थानी-प्रभाव का साम्य—तीनों प्रतियों में कुछ राजस्थानी-प्रयोग भी समान रूप से मिलते हैं जो निम्नलिखित हैं—

१. दा० ३-६, नि० ६-६ तथा गुण० १६-६६ : अंदेसड़ौ न भाजिसी, संदेसौ कहियांह । कै हरि आयां भाजिसी, कै हरिही पास गयांह ॥

२. दा० २६-३, नि० ८-६६ तथा गुण० ७२-२० की दूसरी पंक्ति का पाठ है : तन खीनां मन उनमनां, जग रूठड़ा फिरंत । तुल० सा० ६०-५, सावे० ७-२२, तथा सासी० ११-५ : जगतै रूठि फिरंत ।

इन उदाहरणों के अतिरिक्त दा० नि० गुण० के विकृति-साम्य के लिए दा०

नि० स० गुण० तथा दा० नि० स० सा० गुण० के संकीर्ण-संबंध में उद्धृत उदाहरण भी देखने चाहिए ।

दा० नि० गुण० में संकीर्ण-संबंध स्थापित हो जाने पर दा० नि०, दा० गुण० तथा नि० गुण० का सम्बन्ध स्वतः सिद्ध हो जाता है ।

दा० नि० स० गुण० का संकीर्ण-सम्बन्ध

निम्नलिखित पाठ-विकृतियाँ ऐसी हैं जो दा० नि० स० तथा गुण० चारों में समान रूप से मिलती हैं—

(क) फ़ारसी लिपि-जनित विकृति-साम्य—इस साम्य का केवल एक उदाहरण मिलता है जो निम्नलिखित है—

१. दा० २०-६, नि० २१-५०, स० ११२-११७ तथा गुण० ११०-१८ की दूसरी पंक्ति का पाठ है : खूँगैं बैसिर खाइए, परगट होइ निदान । सा० ४३-१२, सावे० ७३-१०, सासी० ३१-३६, तथा गु० १७ में 'खूँगैं' के स्थान पर 'कोनै' पाठ मिलता है । 'कोनै' की सार्थकता तथा 'खूँगैं' की निरर्थकता स्वतः प्रकट है । ऐसा प्रतीत होता है कि उर्दू में लिखे हुए 'कोनै' के 'काऊ' तथा 'बाव' के बीच में लिखावट की अस्पष्टता के कारण 'हे' की स्थिति भी मान कर प्रतिलिपि करने से 'कोनै' का 'खूँगैं' हो गया । यह भी संभव है कि उसे पश्चिमी उच्चारण के अनुसार परिवर्तित कर लिया गया हो ।

(ख) राजस्थानी-प्रभाव का साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. दा० ४५-२, नि० ५०-१२, सा० ६१-३ तथा गुण० ७८-६ की दूसरी पंक्ति का पाठ है : कबीर मड़ि मैदान मैं, करि इंद्रचां सूं झूझ । तुल० सा० ८५-१, सावे० ८-४२ तथा सासी० २४-८३ : करि इंद्रिनि सों झूझ ।

२. दा० २०-८, नि० २१-१६, सा० ११२-१० तथा गुण० ११०-१० : कांइ गमावै देह, कारिज कोई नां सरै ॥ तुल० सा० ४३-२३, सावे० ७३-४८ तथा सासी० ३१-२७ : कहा गंवावै देह ।

इन उदाहरणों के अतिरिक्त दा० नि० स० तथा गुण० के संकीर्ण-संबंध के लिए दा० नि० सा० स० गुण० में मिलने वाले विकृति-साम्य को भी दृष्टि में रखना चाहिए, क्योंकि उसमें भी दा० नि० स० गुण० का समुच्चय वर्तमान है । निम्नलिखित पाठ-विकृति ऐसी है जो उक्त पाँचों प्रतियों में समान रूप से मिल जाती है । दा० ६-१, नि० ६-२, सा० २१-३, स० ५८-६ तथा गुण० ४८-२१ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : कबीर हरि रस यां पिया, बाकी रहा न थाकि । तुल० सावे० १५-३१ तथा सासी० ११-२० : कबीर हरि रस 'हरि-रस'

पीने के प्रसंग में 'थाकि' शब्द की प्रासंगिकता संदिग्ध है, क्योंकि कोई मद या रस-रसायन भरपूर पी लेने के अर्थ में प्रायः 'छकना' क्रिया का ही प्रयोग मिलता है (तुल० दा० नि० रामकली ३-७ : नीभर भरै अमी रस निकसै तिहि मदि रावल छाका ।) नागरी 'छ' और 'थ' में विशेष अंतर न रहने के कारण कभी-कभी दोनों में भ्रम हो जाया करता है ।

दा० नि० स० गुण० तथा दा० नि० सा० स० गुण० में सामूहिक रूप से संकीर्ण-सम्बन्ध स्थिर हो जाने पर इनके अन्तर्गत आयी हुई विभिन्न प्रतियों में पृथक्-पृथक् सम्बन्ध स्वतः सिद्ध हो जाता है । इनमें से कुछ के विकृति-साम्य का उदाहरण पहले भी दिया जा चुका है । नीचे दा० स० गुण० में आने वाली एक अतिरिक्त विकृति का उदाहरण भी दिया जा रहा है जिससे उक्त प्रतियों का संकीर्ण-संबंध और भी दृढ़तर सिद्ध हो जाता है ।

दा० स० गुण० का संकीर्ण-सम्बन्ध

दा० स० गुण० में निम्नलिखित विकृति-साम्य मिलता है—

१. दा० ३५-६, स० ४६-१, गुण० ८४-३५ का पाठ है : कबीर का तू चितवै, का तेरे चिते होइ । आमन चिता हरि करै, जी तुहि चित न होइ ॥ इसकी द्वितीय पंक्ति में 'आमन' पाठ संदिग्ध है । यह साखी नि० ३७-१६, सा० ६६-८, सावे० २२-१, सासी० २०-६ तथा गु० २१६ में भी मिलती है । 'आमन' के स्थान पर नि० में 'आपन' और गु० में 'अपना' पाठ मिलता है । प्रसंग की दृष्टि से 'आमन' पाठ वस्तुतः अनुपयुक्त लगता है और 'आपन' (=अपना) का ही विकृत रूप ज्ञात होता है जो नागरी लिपि के 'प' तथा 'म' के सादृश्य से संभव हो सकता है ।

नि० गु० सा० सासी० का संकीर्ण-संबंध

(क) पुनरावृत्ति का साम्य—एक साखी ऐसी है जो नि० गु० सा० तथा सासी० सब में दो-दो बार मिलती है ।

तुल० नि० २३-१६ : जोरी करि जबहै करै, कहते हैं ज हलाल ।

साहब लेखा मांगसी, तब होसी कौन हवाल ॥

तथा पुनः नि० २३-१६ : गला काटै कलमा पढ़ै, कीया कहै हलाल ।

साहिब लेखा मांगसी, तब होसी कौन हवाल ॥

इसी प्रकार तुल० गु० १८७ : कबीर जोरी कीए जुलमु है कहता नाउ हलाल ।

दफतरि लेखा मागोअ तब होइगो कउनु हवाल ॥

तथा सलोक १६६ : कबीर जीअ जु मारहि जोरु करि कहते हहि जु हलाल ।

दफतरु दई जब कादिहै होइगा कउनु हवाल ॥

सा० ६०-२८ : जोरी करि जबह करै, मुखसों कहै हलाल ॥
साहब लेखा मांगसी, तब होसी कौन हवाल ॥
तथा ६०-३० : गला काटि कलमा भरै, कीया कहै हलाल ।
साहब लेखा मांगिसी, तब होसी कौन हवाल ॥

इसी प्रकार तुल० सासी० ७३-३१—

जोरि करी जिबहै करै, मुखसों कहै हलाल ।
साहब लेखा मांगिसी, होसी कौन हवाल ॥
तथा ७३-३३ : गला काटि कलमा भरै, कीया कहै हलाल ।
साहब लेखा मांगिसी, तबही कौन हवाल ॥

नि० गु० सा० तथा सासी० के अतिरिक्त यह साखी दा० में भी मिलती है, किन्तु दा० में वह केवल एक स्थल पर ही आती है, उपर्युक्त प्रतियों की भाँति दो-दो बार नहीं। इस प्रकार नि० गु० सा० सासी० में समान रूप से एक अनावश्यक पुनरावृत्ति मिल जाने से चारों में संकीर्ण-संबंध स्पष्ट है।

नि० गु० सा० तथा सासी० में संकीर्ण-सम्बन्ध स्थिर हो जाने पर नि० गु०, नि० सा०, नि० सासी०, गु० सा०, गु० सासी०, सा० सासी०, नि० गु० सा०, नि० गु० सासी०, गु० सा० सासी० आदि का संकीर्ण-संबंध स्वतः सिद्ध हो जाता है। नि० गु० के विकृति-साम्य-संबंधी उदाहरण पहले भी दिये जा चुके हैं, आगे नि० गु० सा० तथा नि० सा० से संबद्ध उदाहरण भी दिये जा रहे हैं।

नि० गु० सा० का विकृति-साम्य

नि० गु० तथा सा० में समान रूप से केवल एक विकृति मिलती है जो निम्न-लिखित है—

दा० १-१० का पाठ है : गूंगा हुआ बावला, बहरा हुआ कान । पाऊं तें पंगुल भया, सतगुर मारा बांन ॥ नि० १-२६ में 'पंगुल' के स्थान पर 'पिंगुल', सा० १-६२ में 'पिंगला' और गु० में 'पिंगल' पाठ मिलते हैं। यह तीनों पाठ विकृत ज्ञात होते हैं। उक्त तीनों विकृतियाँ प्रायः एक ही प्रकार की हैं जो मूल पाठ 'पंगुल' (=सं० पंगु) से फ़ारसी-लिपि-जनित भ्रम के कारण उत्पन्न हो गयी हैं। उर्दू में ज़बर, ज़ेर, पेश न लगाने के कारण ऐसी विकृतियाँ प्रायः हुआ करती हैं।

नि० तथा सा० का संकीर्ण-सम्बन्ध

निम्नलिखित विकृतियाँ ऐसी हैं जो नि० तथा सा० में समान रूप से मिलती हैं—

(क) फ़ारसी-लिपि-जनित विकृति-साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. नि० १६-७५, सा० ११-३६ पाठ है : कवीर सूता क्या करै, उठिकै न रोवै दुख । जाका बासा घोर मैं, सो क्यूँ सोवै सुख ॥ दा० २-१३, सावे० ७४-४, सासी० १३-७३, स० ७७-२२, तथा गु० १२७ में उक्त साखी की दूसरी पंक्ति में 'घोर' के स्थान पर 'गोर' पाठ मिलता है । इस प्रसंग में 'गोर' (= क्रूर) की उपयुक्तता और 'घोर' की अनुपयुक्तता तथा निरर्थकता स्वतः प्रकट है । यह विकृति फ़ारसी लिपि के कारण हुई ज्ञात होती है, क्योंकि 'ग' तथा 'घ' में रूप-सादृश्य केवल उसी में होता है । उसके दोनों वर्णों में अन्तर केवल 'हे' का है जो कभी-कभी नगण्य हो जाता है ।

२. सावे० २२-४ तथा सासी० २०-१२ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : अंडा पालै काछुवी, बिन थन राखे कोख । नि० ३७-२४ तथा सा० ६६-१३ में 'काछुवी' के के स्थान पर काछिवी पाठांतर मिलता है । प्रसंग में नि० तथा सा० द्वारा प्रस्तुत किया हुआ 'काछिवी' पाठ निरर्थक है और 'काछुवी' का ही विकृत रूप ज्ञात होता है । पेश के अभाव में 'काछुवी' को उर्दू में सरलता से 'काछिवी' पढ़ा जा सकता है ।

३. दा० ५-१८, सासी० १४-६७, स० ६६-२ तथा गु० १७७ का पाठ है : भली भई जो भै परा, गई दसा सब भूलि । पाला गलि पानी भया, दुरि मिलिया उस कूलि ॥ नि० ८-१६ तथा सा० २०-२० में 'परा' के स्थान पर मिटा पाठ मिलता है । दा० गु० आदि के अनुसार उक्त साखी का अर्थ होगा : अच्छा हुआ कि सांसारिक विपत्तियाँ मेरे ऊपर पड़ीं । उससे मुझे अपनी स्थिति का ध्यान नहीं रह गया और मैं पाले के समान (पूर्व पक्ष में : त्रिविध ताप से) गल कर पानी हो गया और दुलक कर अपने मूल स्रोत में मिल गया । वस्तुतः यही अर्थ स्वाभाविक भी ज्ञात होता है । यदि यहाँ नि० सा० के अनुसार 'मिटा' पाठ स्वीकार किया जाय तो उक्त साखी के अर्थ में व्यतिक्रम उपस्थित हो जाता है । लिपि-संबंधी संभावनाओं की दृष्टि से इस विकृति का समाधान ठीक-ठीक नहीं किया जा सकता । यह पाठ-विकृति कदाचित् अज्ञानवश नहीं बल्कि जान-बूझ कर की हुई ज्ञात होती है ।

(ख) पुनरावृत्तियों का साम्य—(१) नि० ३२-२१ का पाठ है—

चंदन की कुटकी भेली, नां बबूल बनराव ।

साधन की छपरी भेली, नां साखित का गांव ॥

यह साखी सा० में ६१-२१ पर मिलती है । पाठ में अन्तर केवल यह है कि दीनों पंक्तियाँ परस्पर स्थानांतरित हो गयी हैं । नि० तथा सा० में यही साखी

थोड़े शब्दान्तर के साथ आगे पुनः एक स्थल पर मिलती है; तुल० नि० ३२-२२—

साधन की छपरी भली, नां साखित का गांव ।

ऊंचा मिंदर किस काम का, जहां नहीं हरि नांव ॥

तथा सा० ६१-२५ : चंदन की कुटकी भली, कहा बबूल वनराव ।

साधन की छपरी भली, बुरो असाधु को गांव ॥

नि० में साखी का उत्तरार्द्ध अवश्य भिन्न है किन्तु पूर्वार्द्ध तो उसमें भी पुनरुक्ति-पूर्ण है। यह साखी अन्य प्रतियों में केवल एक ही स्थल पर मिलती है। दा० में यह साखी ३०-१ पर, साबे० में ४७-८० पर तथा सासी० में ६-६३ पर मिलती है जिसके पाठ ऊपर उद्धृत नि० ३२-२१ से मिलते-जुलते हैं।

ऊपर दिये हुए उदाहरण ऐसे हैं जो केवल नि० तथा सा० में मिलते हैं। नि० सा० के संकीर्ण-सम्बन्ध के अन्य उदाहरणों के लिए नि० गु० सा०, नि० गु० सा० सासी०, दा० नि० सा०, दा० नि० सा० सासी० के उदाहरण भी विचारणीय हैं, क्योंकि उनमें अन्य प्रतियों के साथ नि० सा० के साक्ष्य भी वर्तमान हैं।

नि० सा० सासी० का संकीर्ण-संबंध

नि० सा० तथा सासी० में निम्नलिखित विकृति-साम्य मिलते हैं जिनके आधार पर तीनों का परस्पर संकीर्ण-सम्बन्ध सिद्ध होता है—

१. नि० ५८-४, सा० १०२-४ तथा सासी० ५३-२४ का पाठ है : सद पानी पाताल का, काडि कबीरा पीव । वासी पावक पड़ि मुवा, विपै बिलंबा जीव ॥ दा० ५०-५ में 'पावक' के स्थान पर 'पावस' पाठ मिलता है। प्रसंग से ज्ञात होता है कि यहाँ 'पावस' (= वर्षा का जल) ही अधिक उपयुक्त है, 'पावक' (= अग्नि) नहीं। 'पावस' पाठ के अनुसार उक्त साखी का अर्थ होगा : ऐ कबीर, तू पाताल से निकला हुआ ताजा पानी पी, मेह के वासी जल में कुछ नहीं है, उसमें तो विषयासक्त जीव फँस कर सड़े हुए हैं। साधना के पक्ष में इसका अर्थ यह होगा कि अपने अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान में जो मौलिक आनन्द है वह शास्त्रों अथवा पुस्तकों के जूठे ज्ञान में नहीं—वह तो सीमित विचार वाले व्यक्तियों के लिए है। 'पावक' शब्द को प्रामाणिक मान लेने पर दूसरी पंक्ति का उपयुक्त अर्थ ही नहीं निकलेगा, अतः यह पाठ विकृत ज्ञात होता है। ऐसी विकृति नागरी या फ़ारसी दोनों ही लिपियों में संभव है, क्योंकि दोनों में लेखन-प्रमाद से 'क' को 'स' पढ़ा जा सकता है।

२. नि० ४१-६, सा० ७३-४ तथा सासी० १६-४२ की दूसरी पंक्ति का पाठ

है : पख छांडे निरपख रहै (सा० सासी० बिख छांडै निरबिख रहै) सब दिन दूखा जाय । दा० ३६-३ तथा गुण० १५२-६ में 'सब दिन' के स्थान पर 'सबद न' पाठ मिलता है जो प्रसंगोचित है । इस पाठ-भेद के अनुसार उक्त पंक्ति का तात्पर्य होगा कि निष्पक्ष व्यक्ति का शब्द कोई 'दूख' नहीं सकता अर्थात् कोई उसका प्रतिवाद नहीं कर सकता । 'सब दिन दूखा जाय' का अर्थ होगा : सब दिन दुख में ही बीतते हैं, जो वस्तुतः मूल-भाव के विपरीत है । यह पाठ-विकृति फ़ारसी लिपि की जबर, ज़ेर आदि की अव्यवस्था के कारण ज्ञात होती है ।

पुनरावृत्ति-साम्य—एक साखी उक्त तीनों प्रतियों में दो बार मिलती है । नि० २८-८, सा० २८-१० तथा सासी० ३२-७६ का पाठ है—

कबीर पगरा दूरि है, आइ पहुँची सांभ ।

जन जन को मन राखतां, बेस्या रहि गई बांभ ॥

(सा० में पहली पंक्ति का पाठ है : कबिरा पंथ निहारता, आनि परी है सांभ ।)

तुल० नि० ३२-७ तथा सा० ३०-२७ : धामां धूमै दिन गया, चितवत भई ज सांभ ।

रांम भजन हरि भगति बिनु, जननीं जनि गई बांभ ॥

और सासी० २३-६ : कबीर पंथ निहारता, आनि पड़ी है सांभ ।

जन जन को मन राखतां, बेस्या रहि गई बांभ ॥

इन साखियों में थोड़ा सा शाब्दिक अंतर केवल तृतीय चरण के पाठ में मिलता है—शेष शब्दावली सब में प्रायः एक ही है । बीजक में इनसे मिलती-जुलती केवल एक साखी मिलती है जिसका पाठ है—

भाल पड़े दिन आथए, अंतर परि गई सांभ ।

बहुत रसिक के लागते, बेस्या रहि गई बांभ ॥ (बी० सा० ५१)

इन उदाहरणों के अतिरिक्त नि० सा० सासी० के संकीर्ण-सम्बन्ध के लिए दा० नि० सा० सासी०, दा३ नि० सा० सासी० गुण०, नि० सा० साबे० सासी०, नि० गु० सा० सासी० के प्रसंग में उद्धृत उदाहरणों पर भी ध्यान रखना चाहिए ।

नि० सा० सासी० में संकीर्ण-सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर नि० सा०, नि० सासी० तथा सा० सासी० का सम्बन्ध स्वतः सिद्ध हो जाता है । फिर भी उनमें स्वतन्त्र रूप से मिलने वाले विकृति-साम्य का उल्लेख आगे प्रसंगानुसार किया जायगा ।

सा० तथा सासी० का संकीर्ण-संबंध

सा० तथा सासी० में निम्नलिखित विकृति-साम्य मिलते हैं—

(क) फ़ारसी लिपि-जनित विकृति-साम्य—इसके निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य हैं—

१. सा० ७३-४ तथा सासी० १६-४२ का पाठ है : सीतलता तब जानिए, समता रहै समाय । बिख छांडै निरबिख रहै, सब दिन दूखा जाय ॥ यह साखी दा० में ३६-३ पर, नि० में ४१-६ पर और गुण० में १५२-६ पर आती है । इन प्रतियों में उक्त साखी का पाठ है : सीतलता तब जानिए, समता रहै समाय । पख छांडै निरपख रहै, सबद न दूखा जाइ (नि० सब दिन मुख में जाइ) । द्वितीय पंक्ति के पाठान्तर पर ध्यान देने से ज्ञात होगा कि प्रथम चरण के दो पाठ मिलते हैं : एक में 'बिख छांडै निरबिख रहै' और दूसरे में 'पख छांडै निरपख रहै ।' दोनों में से एक ही पाठ मूल प्रति का हो सकता है । पहली पंक्ति में समत्व का प्रसंग आया है, अतः आगे 'बिख' और 'निरबिख' का कोई प्रश्न नहीं उठता । इसके विपरीत दा० नि० और गुण० का पाठ अधिक प्रसा-सम्मत सिद्ध होता है । किसी को मानसिक शीतलता तभी मिलती है, और वह आप्त तभी माना जाता है जब कि वह पक्षपात छोड़ कर निष्पक्ष रहे । सा० सासी० की पाठ-विकृति उर्दू में ही सम्भव ज्ञात होती है । उर्दू के 'पे' और 'बे' में केवल नुक्तों का अन्तर होता है । 'पे' में तीन नुक्ते होते हैं, जो सिमिट कर एक के समान लग सकते हैं, अथवा नुक्ता छूट जाने पर और भी सुगमता से 'प' के स्थान पर 'ब' का अनुमान लगाया जा सकता है ।

२. दा ४-५, नि० ७-७ तथा गुण० २५-२२ का पाठ है : अग्नि जु लागी नीर मैं, कांदों जरिया झारि । उतर दखिन के पंडिता, मुए बिचारि बिचारि ॥ सा० १६क-७ तथा सासी० २७-८ में 'उतर दखिन' के स्थान पर उत्तर दिसि पाठ मिलता है । उर्दू 'दक्खिन' या 'दकन' में यदि 'काफ़' के ऊपर की लकीर अलग हो जाय और 'नु' की बिन्दी शीघ्रता के कारण लगने से रह जाय तो 'काफ़' के पेट से 'नु' का दायरा मिल कर हूबहू 'सोन' की शक्ल का हो जाता है । इस प्रकार उर्दू में 'दकन' से 'दस' या 'दिसि' होना कठिन नहीं है ।

३ दा० ५६-२ तथा गुण० १७६-७ का पाठ है : कबीर सिरजनहार बिनु, मेरा हितू न कोइ । गुन अवगुन बिहडैं नहीं, स्वारथ बंधो लोइ ॥ सा० ७३-५ तथा सासी० ४५-५ में दूसरी पंक्ति के 'बिहडैं' के स्थान पर बेडैं पाठ मिलता है जो विकृत ज्ञात होता है । बनारस के राघवदास जी ने अपने 'सटीक

सासी-ग्रन्थ' (पृ० ५५६) में उक्त साखी की दूसरी पंक्ति का (जिसमें 'वेड़ै' पाठ प्रामाणिक माना गया है) अर्थ दिया है : 'संसारी लोग सब स्वार्थ में बँधाये हैं, गुण अवगुण नहीं समझते । इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने 'वेड़ै' का अर्थ 'समझना' किया है, जो कदाचित् अनुमान से ही किया हुआ ज्ञात होता है । 'विहड़ै' 'वि' उपसर्ग-सहित संस्कृत 'भज्' धातु का अपभ्रंश रूप है, जिसका अर्थ होगा : विभक्त करना या भेद करना । अतः 'स्वार्थ' में बँधे हुए व्यक्ति को गुण-अवगुण में कोई भेद-भाव नहीं जान पड़ता'—यही उक्त साखी की द्वितीय पंक्ति का भाव है । इससे ज्ञात होता है कि सा० तथा सासी० का 'वेड़ै' दा० तथा गुण० के 'विहड़ै' पाठ का विकृत रूप है । यदि 'हे' के नीचे वाले शोशे में 'ये' के दो नुक्तों का भ्रम हो जाय (जो असम्भव नहीं है) तो उर्दू में 'विहड़ै' को सरलता से 'वेड़ै' भी पढ़ा जा सकता है । अन्य लिपियों में ऐसा पाठ-भेद होना असम्भव है ।

४. दा० ३६-२७, नि० ४४-३७ तथा सा० ६७-८ की प्रथम पंक्ति का पाठ है: कबीर हरि सों हेतु करि, कूड़ै चित्त न लाइ । सा० ७८-६२ तथा सासी० ३२-३८ में 'कूड़ै' का पाठान्तर 'कोरै' मिलता है । इस पंक्ति में कबीर का मन्तव्य यह ज्ञात होता है कि अपना मन हरि-स्मरण में लगाना चाहिए, निकृष्ट कोटि के भ्रमेलों में नहीं । इस प्रसंग में 'कूड़ै' शब्द ही अधिक उपयुक्त होगा, 'कोरै' नहीं । ग्रामीण बोली में 'कोरा' का अर्थ या तो 'गोद' होता है (संज्ञा रूप में) या 'ताजा' अथवा 'सादा' (जैसे 'कोरा माल', या 'कोरा कागज'—विशेषण रूप में) किन्तु इन प्रयोगों का यहाँ कोई प्रसंग नहीं । सा० सासी० की इस पाठ-विकृति का उद्गम भी फ़ारसी लिपि के कारण ही माना जा सकता है, क्योंकि उसमें काफ़, वाव, रे, ये मिलाकर उसे 'कूड़ै', 'कोड़ै' या 'कोरै' कुछ भी पढ़ा जा सकता है ।

स्थल-संकोच के कारण नीचे सा० तथा सासी० में मिलने वाली फ़ारसी-लिपि जनित विकृतियों का संक्षिप्त निर्देश मात्र किया जा रहा है—

५. सा० ४१-१३, सासी० ५१-१८ : चतुराई चूल्है पड़ी, जानपनौ चलि जाइ । तुल० नि० २८-४ : जांरिपणौ जलि जाइ । (सा० सासी० की विकृति उर्दू 'जीम' और 'चे' के सादृश्य के कारण)

६. सा० १०४-५, सासी० ५-५६ : पारब्रह्म पड़ौ मोतिया, झड़ी बांधि सिखर । सुगरां सुगरां चुनि लिया, चूकि पड़ी निगुर ॥ तुल० दा० ५२-३ नि० ६०-३, सा० ८६-६ तथा गुण० ६०-६ : 'सुगरां' के स्थान पर 'सगुरां' (विकृति उर्दू जबर, जेर, पेश की अव्यवस्था के कारण)

७. सा० ८१-२-१, सासी० ६६-३-१ : कबीर तहाँ न जाइए, जहाँ जुनाना

भाव । तुल० नि० ४७-७ : जहां जनानां भाव ।

(यह विकृति भी उर्दू जबर, जेर, पेश की अव्यवस्था के कारण)

(ख) नागरी-लिपि-जनित विकृति-साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. सा० ५५-१७ तथा सासी० १३-१५६ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : कवीर माला काठ की, मेली मुगध डुलाय । दा२ २२-६, नि० २५-६, सा० ६४-११ में 'डुलाय' के स्थान पर 'भुलाय' पाठ मिलता है जिसके अनुसार उक्त पंक्ति का सीधा अर्थ होगा : 'मूर्ख ने काठ की माला (गले में) भुला रखी है' । 'डुलाय' पाठ इस प्रसंग में निरर्थक-सा लगता है । राजस्थान में हिंदी की जो प्राचीन पोथियाँ मिलती हैं उनमें 'ड' तथा 'भ' लगभग समान आकृति के होते हैं । उनके सूक्ष्म अंतर से अपरिचित प्रतिलिपिकार को दोनों में भ्रम हुए बिना नहीं रह सकता । सा० सासी० की उक्त विकृति इसी प्रकार उत्पन्न हुई ज्ञात होती है ।

२. सा० ६१-८४-१ तथा सासी० ६-१४१-१ का पाठ है : ऊंडा चित्त अरु सम दसा, साधू गुन गंभीर । तुल० नि० ३१-१८ : ऊंडा चित्त समंद सा, साधु गुनां गंभीर । (सा० सासी० की विकृति अनुस्वार भूल जाने तथा विच्छेद-भ्रांति के कारण) ।

३. सा० ४-६, सासी० ५-६ की द्वितीय पंक्ति का पाठ है : निगुरा तौ कवट चलै, जव तव करै कुदाव । सावे० ५-५ में 'कूवट' के स्थान पर 'ऊवट' पाठ मिलता है । 'वाट' का विलोमार्थी (जिसका यहाँ प्रसंग है) 'ऊवट' ही होता है, 'कूवट' नहीं । तुल० दा० नि० रामकली २३-३ (ग्रन्था० पद १७५-३) ऊवट चले सु नगर पहुँते वाट चले ते लूटे । अथवा गु० केदारा ३ की अंतिम पंक्ति : ऊवटि चलंते इहु मद पाइआ जैसे खोंद खुमारी । राजस्थान में मिलने वाली हिन्दी प्रतियों में 'कु' तथा 'उ' में बहुत कम अंतर रहता है । सा० सासी० की विकृति कदाचित् इसी भ्रम से हुई है ।

(ग) पदच्छेद-संबंधी विकृति-साम्य—इस प्रकार का एक उदाहरण मिलता है जो निम्नलिखित है—

१. सा० १६क-१० तथा सासी० २७-११ की दूसरी पंक्ति का पाठ है : जा वन में की लाकड़ी, दाभत है वन सोइ । दा० ४-८ में 'जावन मैं क्रीला करी' पाठ मिलता है । सा० सासी० का पाठ यहाँ स्पष्ट ही अशुद्ध है । मृग, जो जीव-धारी होते हैं, अपने को लकड़ी (निर्जीव) नहीं कह सकते । यह उदाहरण भ्रमात्मक पदच्छेद का है और नागरी तथा उर्दू दोनों प्रकार की प्रतियों में हो सकता है ।

(घ) अन्य विकृति-साम्य—सा० तथा सासी० में एक अन्य विकृति-साम्य मिलता है जिसका कारण स्पष्ट नहीं ज्ञात होता। वह विकृति निम्नलिखित है—

सा० ७१-६ तथा सासी० ६-१४५ का पाठ है : कबीर सब जग हेरिया, मेल्यौ कंध चढ़ाय । हरि बिनु अपना कोई नहीं, सब देखा ठोंक बजाय ॥ इसमें 'मेल्यौ' शब्द कुछ संदिग्ध ज्ञात होता है। यह साखी दा० में ३७-१० पर, नि० में ३६-६ पर, गुण० में १०६-७ पर तथा गु० में ११३ पर मिलती है। 'मेल्यौ' के स्थान पर दा० नि० तथा गुण० में 'मंदला' और गु० में 'मादलु' पाठ मिलता है। इसका यह तात्पर्य है कि सा० तथा सासी० के अतिरिक्त सभी प्रतियों का पाठ प्रायः समान है। यदि 'मेल्यौ' पाठ प्रामाणिक मान लिया जाय तो 'मेल्यौ' क्रिया के कर्म के अभाव में अर्थसंबंधी कठिनाई उपस्थित होती है। राघवदास ने अपने 'सटीक साखी-ग्रंथ' (पृ० ११०) में उक्त साखी की टीका देते हुए लिखा है : 'संसार को कंधे चढ़ा के भली-भाँति ठोंक ठठा के देख लिया कि अपना हरि बिना हितकारी कोई नहीं।' इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने कदाचित् 'जग' को ही 'मेल्यौ' क्रिया का कर्म माना है, किन्तु यह अर्थ किसी भी प्रकार से संतोषजनक नहीं माना जा सकता। 'मंदला' 'या' 'मादलु' पाठ स्वीकार कर लेने से सारी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। 'मंदला' (तुल० सं० 'मर्दल') एक प्रकार का बाजा होता है, जो आकार में ढोल से मिलता-जुलता है। मंदला काँधे पर चढ़ा कर घूमने का तात्पर्य है मुनादी करना या डुग्गी पीटना। कबीर ने डुग्गी पीट-पीट कर सारा संसार छान डाला कि कहीं उसका कोई मिले। किन्तु अन्त में उसे कोई भी अपना न मिला। इस प्रकार 'मंदला काँधे पर चढ़ाना' यहाँ मुहावरे के रूप में प्रयुक्त हुआ है। सा० तथा सासी० में 'मंदला' का विकृत रूप 'मेल्यौ' किस प्रकार हुआ होगा, इसका ठीक-ठीक कारण नहीं ज्ञात होता। संभवतः 'मंदला' शब्द से अनुकूल अर्थ की संगति न बैठते देख किसी ने जान-बूझ कर उसका इस प्रकार सुधार कर लिया।

(ङ) छंद-भिन्नता का साम्य—कुछ साखियाँ सा० तथा सासी० में ऐसी मिलती हैं जिनकी छन्द-भिन्नता विशेष रूप से विचारणीय है। कबीर की साखियाँ दोहा छंद के समान हैं, केवल कहीं-कहीं दो-एक सोरठे मिल जाते हैं। सा० तथा सासी० की निम्नलिखित साखियाँ इस संबंध में विशेष आपत्तिजनक हैं—

१. सा० ६४-४, ५ तथा सासी० ५६-२२, २३ का पाठ है—

निंदक न्हाय गहन (सासी० गगन) कुरु खेत । अरपै नारि सिंगार समेत ॥

चौसठ कूवा बाय दिखावै । तौ भी निंदक नरकै जावै ॥

अठसठि तीरथ निंदक न्हई । देह पलोसै मेल न जाई ॥

छप्पन कोटि धरती फिरि आवै । तो भी निंदक नरकहि जावै ॥

२. सा० ६८-३ तथा सासी० ५४-१७ का पाठ है—

तीनि देव को सब कोइ ध्यावै । चौथे देव का मरम न पावै ॥

चौथा छांड़ि पंच चित लावै । कहै कबीर हमरे ढिग आवै ॥

३. इसी प्रकार सा० ६८-१४, १५, १६, सासी० ५४-२३, २४, २५ भी द्रष्टव्य हैं जिनका पाठ है—

एक राम दशरथ घर डोले । एक राम घट घट में बोले ॥

एक राम का सकल पसारा । एक राम तिरगुन तें न्यारा ॥ इत्यादि

कौन राम दशरथ घर डोले । कौन राम घट घट में बोले ॥

कौन राम का सकल पसारा । कौन राम तिरगुन तें न्यारा ॥

आकार राम दशरथ घर डोले । निराकार घट घट में बोले ॥

विदुराम का सकल पासारा । निरालंब सबही तें न्यारा ॥

इन उदाहरणों के प्रत्येक चरण में चौपाई के समान लगभग १६ मात्राएँ हैं । पूरी साखियाँ चौपदी से मिलती-जुलती हैं । इस प्रकार की चौपदियाँ कबीर की अन्य प्रतियों में नहीं मिलतीं अतः इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है । इसके अतिरिक्त तीसरे उदाहरण की दूसरी तथा तीसरी साखियों में एक आपत्ति-जनक बात और मिलती है । कबीर की साखियाँ भाव की दृष्टि से मुक्तक के समान स्वतः पूर्ण हुआ करती हैं, उनका कहीं भी अनयोन्याश्रित संबंध नहीं मिलेगा । उक्त साखियों में ऐसी बात नहीं है । उनमें से एक प्रश्न के रूप में और दूसरी उसके उत्तर के रूप में आयी है । इस प्रकार के प्रश्नोत्तर की शृंखला सा० तथा सासी० में और भी कई स्थलों पर मिलती है । उदाहरण के लिए सा० प्रति के ७४वें अंग की २८, २९, ३०, ३१, ३४, ३५ संख्यक साखियाँ ली जा सकती हैं जो सासी० के 'प्रश्नोत्तर अंग' में क्रमशः ५, ६, ७, ८, ९, १० पर मिलती हैं । सा० ६१-१४ तथा सासी० ७४-३ भी तुलनीय हैं जिनका पाठ है—

अमल माहि अवगुन कहा, कहौ मोहि समुभाय ।

उत्तर प्रदताहि में सुनो, मन को संशय जाय ॥

इस प्रकार को पौराणिक शैली अन्य शाखाओं में नहीं मिलती । अतः केवल सा० तथा सासी० में इनकी स्थिति से दोनों का नैकट्य विचारणीय हो जाता है ।

(घ) पुनरावृत्ति-साम्य—दोनों में कुछ साखियाँ ऐसी मिलती हैं जो अनावश्यक रूप से दो-दो बार आयी हैं । उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. सा० १६-७४ तथा सासी० १६-८४ का पाठ है—

अबिनासी की सेज का, कैसा है उनमान ।

कहिबे को शोभा नहीं, देखे ही परमान ॥

यही साखीं सा० में २०-३ पर तथा सासी० में १४-४० पर भी मिलती है ।
वहाँ इसका पाठ है—

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान ।

कहिबे की सोभा नहीं, देख्यां ही परमान ॥

अन्तर केवल प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध के पाठों में है । यह साखी दा० नि० गुण० सावे० तथा गु० में केवल एक स्थल पर मिलती है, सा० तथा सासी० की भाँति दो स्थलों पर नहीं । तुल० दा० ५-३, नि० ८-२, गुण० ४२-३१, सावे० ४३-२५—

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान ।

कहिबे की सोभा नहीं, देखे ही परमान ॥

तथा गु० १२१ : चरण कमल की मज को कहु कैसे उनमान ।

कहिबे कउ सोभा नही देखा ही परवान ॥

२. सा० ६३-१४ तथा सासी० ३७-८ :

काबा फिर कासी भया, राम जो भया रहीम ।

मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम ॥

तुल० सा० ७६-४ तथा सासी० ४०-४ :

कासी काबा एक है, एकै राम रहीम ।

मैदा इक पकवान बहु, बैठि कबीरा जीम ॥

यह साखी दा० नि० गुण० में केवल एक-एक स्थल पर ही मिलती है जिनका पाठ ऊपर उद्धृत पाठों में से पहले पाठ से मिलता है (दे० दा० ३१-१०, नि० ३७-११, गुण० १२०-१३) ।

इसी प्रकार तुल० (३) सा० ३१-२४ तथा ५४-६ और सासी० २६-३५ तथा ४६-३२; (४) सा० १०३-२ तथा १०३-४ और सासी० ४१-१४ तथा ४१-११; (५) सा० ७४-२ तथा ४६-४ और सासी० १६-२८ तथा ८०-१ ।

सा० तथा सासी० दोनों में पाँच-पाँच साखियों की अनावश्यक पुनरावृत्ति समान रूप से मिल जाने से दोनों का संकीर्ण-सम्बन्ध सिद्ध होने में कोई बाधा नहीं रह जाती ।

इन उदाहरणों के अतिरिक्त सा० तथा सासी० के संकीर्ण-संबंध के लिए नि० सा० सासी०, सा० सावे० सासी०, दा० नि० सा० सासी०, नि० सा० सावे०

सासी०, नि० गु० सा० सासी० के संबंध में दिये हुए उदाहरण भी विचारणीय हैं, क्योंकि अन्य प्रतियों के साथ उसमें सा० तथा सासी० के साम्य भी वर्तमान हैं ।

सावे० तथा सासी० का संकीर्ण-संबंध

(क) पुनरावृत्ति-साम्य—सावे० तथा सासी० में भी कई साखियों की अनावश्यक पुनरावृत्ति समान रूप से मिल जाती है जिससे इन दोनों के संकीर्ण-संबंध के विषय में कोई सन्देह नहीं रह जाता । नीचे उन पुनरावृत्तियों के उदाहरण दिये जा रहे हैं—

१. सावे० १-३६ तथा सासी० १-५५७ का पाठ है—

अहं अग्नि निशि दिन जरे, गुरु सो चाहे मान ।

ताको जम न्यौता दिया, हो हमार मेहमान ॥

यही साखी सावे० में ५७-१५ पर और सासी० में ६१-१ पर फिर मिलती है, दोनों में उसका पाठ इस प्रकार है—

अहं अग्नि निशिदिन जरै, गुरु सों चाहे मान ।

तिनको जम न्यौता दिया, हो हमरे मेहमान ॥

(अंतर केवल 'ताको' और 'तिनको' का है ।)

२. सावे० ३३-२५ तथा सासी० १३-५६ का पाठ है—

आसा तो इक नाम की, दूजी आस निवारि ।

दूजी आसा मारिसी, ज्यों चौपरि की सारि ॥

यही साखी सा० ५१-१० तथा सासी० ६८-२ पर फिर मिलती है जिसका पाठ अक्षरशः उपर्युक्त पाठ से मिलता है ।

३. सावे० ३७-११ तथा सासी० १८-२५ का पाठ है—

कबीर काहे को डरै, सिर पर सिरजनहार ।

हस्ती चढ़ि दुस्ति नहीं, कुरर भुसैं हजार ॥

और सावे० ६४-४ तथा सासी० ७७-५ का पाठ है—

कबीर तू काहे डरै, सिर पर सिरजनहार ।

हाथी चढ़ि करि डोलिऐ, कुरर भुसैं हजार ॥

४. सावे० १-२६, ७१-२४, और सासी० १-१३, ८५-१६ का पाठ है—

गुरु धोबी सिख कापड़ा, साबुन सिरजनहार ।

सुरति सिला पर धोइए, निकतै रंग अपार ।

५. तुल० सावे० १-८६, सासी० २४-६१ :

कठिन कमान कबीर की, पड़ी रहै मैदान ।

केते जोधा पचि गए, खींचै संत सुजान ॥

तथा साबे० ८-७१, सासी० २४-६२—

कड़ी कमान कबीर की, धरी रही मैदान ।

सूरा होइ तो खींचई, नहिं कायर का काम ॥

साबे० सासी० में पुनरावृत्ति-साम्य के उदाहरणों की संख्या अधिक होने से नीचे उनका स्थल-निर्देश मात्र किया जा रहा है—

६. साबे० ४६-२८, सासी० २७-४, तथा साबे० ६५-७, सासी० ८३-६ ।

७. साबे० १२-२६, सासी० १२-३४, तथा साबे० ५३-४, सासी० ६२-४ ।

८. साबे० ११-६, सासी० १७-४७, तथा साबे० ८४-५४, सासी० ३४-४ ।

९. साबे० ४३-६६, सासी० १४-८७ तथा साबे० ६४-७२, सासी० १४-१२२ ।

१०. साबे० १८-६, सासी० १४-७६, तथा साबे० ४३-५१ सासी० ५६-११ ।

११. साबे० १८-११, सासी० १४-१२७, तथा साबे० ८४-५, सासी० ५६-१० ।

१२. साबे० १४-८८, सासी० १६-३८, तथा साबे० १४-८६, सासी० १६-१०६ ।

१३. साबे० ६-२४, सासी० ४-१६, तथा साबे० ३७-४४, सासी० १८-६१ ।

१४. साबे० ४३-३, सासी० १४-३, तथा ४६-२६, सासी० ४२-३८, ।

१५. साबे० ११-८, सासी० २३-३, तथा साबे० ६५-६, सासी० ८३-११ ।

१६. साबे० ६-१२, सासी० ४-१८, तथा साबे० १५-३३, सासी० १५-२२ ।

१७. साबे० १८-२५, सासी० १४-१७, तथा साबे० ४३-६, सासी० ५६-२४ ।

१८. साबे० ४७-३६, सासी० ६-७६, तथा साबे० ७१-३५, सासी० २६-२७ ।

१९. साबे० १५-२०, सासी० १५-४५, तथा साबे० ३६-२०, सासी० ३३-३० ।

२०. साबे० २६-८, सासी० ६-१२३, तथा साबे० ४७-३८, सासी० ४७-६ ।

२१. साबे० १५-४०, सासी० १३-२६, तथा साबे० ३३-१०, सासी० १५-५२ ।

२२. साबे० १५-६७, सासी० १५-६६, तथा साबे० ३५-१७, सासी० १६-२५ ।

२३. साबे० ४७-२६, सासी० ६-१०१, तथा साबे० ६६-२, सासी० ७५-१० ।

२४. साबे० १२-२०, सासी० ७-३४, तथा साबे० ५०-१२, सासी० १२-४६ ।

२५. साबे० २७-४, सासी० ३५-२८, तथा साबे० ५३-१२, सासी० ६२-६ ।

२६. साबे० १७-६, सासी० ७-१५, तथा साबे० ५०-५, सासी० ७-३१ ।

२७. साबे० ३७-४१, सासी० ११-४७, तथा साबे० ६८-८, सासी० ७६-१२ ।

२८. साबे० ४३-१६, सासी० २६-११८, तथा साबे० ४६-१६, सासी० ४२-१६ ।

२९. साबे० ३३-४३, सासी० १३-११ तथा साबे० ८०-३, सासी० २३-१६ ।

पीछे सासी० के विवरण में इस बात की ओर संकेत किया गया है कि उसके संपादन में सावे० का भरपूर उपयोग किया गया है और इस तथ्य का यह सब से पुष्ट प्रमाण है। सावे० पर आधारित होने के कारण ही उसकी बहुत सी साखियाँ जो दो-दो स्थलों पर मिलती हैं सासी० में भी ज्यों की त्यों दो-दो बार आ गयी हैं।

(ख) प्रक्षेप-सम्बन्ध—पुनरावृत्तियों के अतिरिक्त कुछ संदिग्ध साखियाँ सावे० तथा सासी० में ऐसी और मिलती हैं जिनसे दोनों के संबंध की कल्पना की और भी पुष्टि होती है। उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित साखी ली जा सकती है। सावे० २-२१ तथा सासी० ३-६६ का पाठ है—

गुरु है पूरा सिख है पूरा, बाग मोर रन पैठि ।

सत्य सुकृत को चीन्हि के, एक तहत चढ़ि बैठि ॥

कबीरपंथी साहित्य में 'सत्य सुकृत' विशेषण कबीर के लिए ही आता है। प्रायः प्रत्येक कबीरपंथी ग्रंथ में मंगलाचरण के रूप में कबीर तथा कबीरपंथ के पूर्ववर्ती गुरुओं की स्तुति मिलती है जिसका प्रारंभिक अंश इस प्रकार रहता है—

सत्य सुकृत आदि अदली अजर अचिन्त पुरुष मुनीन्द्र करुणामय कबीर सुरति योग संतायन की दया । चार गुरु वंश बयालिस की दय । धनी धर्मदास की दया । इत्यादि ।

उपर्युक्त साखी में जो उपदेश दिया गया है उसे दृष्टि में रखते हुए यह नितांत अस्वाभाविक लगता है कि इसके रचयिता कबीर ही रहे होंगे। सावे० तथा सासी० दोनों में इस संदिग्ध साखी की स्थिति से दोनों में संकीर्ण-सम्बन्ध सिद्ध होता है।

सावे० तथा सासी० के संकीर्ण-संबंध के लिए उक्त साक्ष्यों के अतिरिक्त नि० सा० सावे० सासी०, सा० सावे० सासी० तथा सावे० सासी० गुण० के संबंध में आये हुए साक्ष्य भी सम्मिलित समझना चाहिए।

सा० तथा सावे० का संकीर्ण-संबंध

(क) पुनरावृत्तियों का साम्य—सा० तथा सावे० में तीन साखियाँ ऐसी हैं जो अनावश्यक रूप से दो-दो बार मिलती हैं; उदाहरणार्थ—

१. दा० १२-१४ तथा सासी० १७-६८ का पाठ है—

जांमन भरन बिचारि करि, कूड़े काम निवारि ।

जिनि पंथा तोहि चालनां, सोई पंथ संवारि ॥

नि० में यह साखी १८-१६ पर मिलती है जिसका पाठ है—

हूरि हरि हरि हथियार करि, कूड़ी गल न मारि ।

ज्यां ज्यां पंथों चालणां, सोइ सोइ पंथ संवारि ॥

सा० तथा सावे० दोनों में यह साखी एक बार दा० तथा सासी० के समान पाठ से युक्त क्रमशः ३०-३७ तथा १६-७० पर इस प्रकार मिलती है—

जामन मरण बिचारि के, कोरे काम निवारि ।

जिन पंथा तोहि चालना, सोई पंथ संवारि ॥

और फिर क्रमशः ३४-२५ तथा १८-२३ पर नि० के समान पाठ से युक्त इस प्रकार मिलती है—

कबिरा हरि (सावे० गुरु) हथियार करि, कूरा गली निवारि ॥

जो जो पंथा चालना, सो सो पंथ संभारि ॥

२. सासी० १४-३८ का पाठ है—

पवन नहीं पानी नहीं, नहि धरनी आकास ।

तहां कबीरा संत जन, साहिब पास खवास ॥

सा० में यह साखी एक बार २०-५८ पर मिलती है जिसका पाठ है—

पवन नहीं पानी नहीं, नहीं धरति आकास ।

एक निरंजन देव का, कबिरा दास खवास ॥

और फिर उसी के ३४वें अंग को ४३ वीं साखी के रूप में आती है, जिसका पाठ है—

नाहीं आवागमन था, नहीं धरति आकास ।

हतो कबीरा राम जन, साहिब पास खवास ॥

सावे० में भी यह साखी सा० के सदृश दो स्थलों पर मिलती है : पहले १८-३४ पर जिसका पाठ सा० ३४-४३ से मिलता है (अन्तर : 'राम जन' के स्थान पर 'दास जन'), फिर ४३-२३ पर, जिसका पाठ सासी० १४-३८ से शब्दशः मिलता है जो ऊपर उद्धृत है ।

३. इसी प्रकार सा० २०-७१ से ६६-१५ तथा सावे० २२-६ से ८४-७१ भी तुलनीय हैं जिनके पाठ क्रमशः निम्नलिखित हैं—

जब दिल मिला दयाल सों, फांसी परी बिलाय ।

मोहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाइ ॥

तथा : राम नाम सों दिल मिला, जम से परा दुराय ।

मोहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाइ ॥

थोड़ा सा शाब्दिक अन्तर केवल पहली पंक्ति में मिलता है, अन्यथा स्थूल रूप से दोनों एक ही साखी के दो रूपान्तर हैं।

उपर्युक्त साम्य के अतिरिक्त सा० तथा सावे० का विकृति-साम्य नि० सा० सावे० सासी०, बी० सा० सावे० के संकीर्ण-सम्बन्ध के प्रसंग में आयी हुई विकृतियों पर भी आधारित है, क्योंकि अन्य प्रतियों के साथ उक्त समुच्चय में सा० तथा सावे० भी सम्मिलित हैं।

नि० तथा सावे० का संकीर्ण-संबंध

(क) पुनरावृत्ति-साम्य—नि० तथा सावे० में एक साखी की पुनरावृत्ति समान रूप से मिलती है। नि० में 'निगुणां नर' के अंग में सातवीं साखी निम्नलिखित रूप में मिलती है—

पसुवा सौ पांनों पड़ी, रहि रहि हया म खीज ।

ऊसर बोए न नीपजै, भावै तेता बीज ॥

और २६वें अर्थात् 'कुसंगति के अंग' में दसवीं साखी के रूप में इस प्रकार मिलती है—

कुसंगा सेतो संग किया, रहु रहु हिया न खीज ।

ऊसर बाह्या न नीपजै, भावै दूनै बीज ॥

सावे० में भी यह साखी नि० के समान दो स्थलों पर मिलती है : एक बार सोलहवें अंग की २८वीं साखी के रूप में और फिर ७०वें अंग की १२वीं साखी के रूप में जिनके पाठ क्रमशः इस प्रकार हैं—

पसुवा से पाला पारघी, रहु रहु हिया न खीज ।

ऊसर बीज न उपजिसी, घालै दूना बीज ॥

तथा : पसुवा से पाला परा, रहि रहि हिए में खीज ।

ऊसर परा न नीपजै, केतक डारौ बीज ॥

(ख) फ़ारसी लिपि-जनित विकृति-साम्य—इस संबंध में निम्नलिखित उदाहरण विचारणीय हैं—

१. दा० १२-२, सा० ३०-२, सासी० १७-३६ तथा गुण० १७६-२ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : जिनके तौबत बाजती, मैंगल बंधते बारि । नि० तथा सावे० में यह साखी क्रमशः १६-२ तथा १६-१६ पर मिलती है। इन दोनों प्रतियों में 'मैंगल' के स्थान पर मंगल पाठ मिलता है। 'मैंगल' (=मदमत्त हाथी) इस प्रसंग में अधिक उपयुक्त है, 'मंगल' उसी का विकृत रूप ज्ञात होता है यह विकृति उर्दू में ही संभवतः हो सकती है।

नि० तथा साबे० का संकीर्ण-सम्बन्ध इन उदाहरणों के अतिरिक्त नि० सा० साबे० सासी० के संकीर्ण-सम्बन्ध के प्रसंग में आये हुए उदाहरणों पर भी आधा-रित है ।

सा० साबे० सासी० का संकीर्ण-संबंध

कई पाठ-विकृतियाँ ऐसी हैं जो सा० साबे० तथा सासी० तीनों में समान रूप से मिलती हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि इन तीनों में भी घनिष्ठ संबंध है । आगे उन विकृतियों के उदाहरण दिये जा रहे हैं ।

(क) उर्दू-विकृतियों के साम्य—निम्नलिखित उदाहरण विचारणीय हैं—

१. सा० ५१-४, साबे० २५-५ तथा सासी० ३६-५ की पहली पंक्ति का पाठ है : सहर्जहि सहर्जहि सब गया, सुत बित काम निकाम । दा० २१-३ तथा नि० २२-४ में 'कामिनि काम' पाठ मिलता है । यहाँ स्पष्ट ही दा० नि० का पाठ शुद्ध और सा० साबे० सासी० का पाठ विकृत है । सा० साबे० तथा सासी० का पाठ यदि प्रामाणिक माना जाय तो उसके अनुसार उक्त पंक्ति का अर्थ होगा : धीरे-धीरे पुत्र, धन, काम और निष्कामता सब से नाता छूट गया । किन्तु निष्काम होने के ही लिए तो अनेक प्रकार की साधनाएँ की जाती हैं, फिर उससे विमुख होने का प्रश्न क्यों ? ज्ञात होता है कि जिस प्रतिसे इन प्रतियों का पाठ आया वह अथवा उसका कोई पूर्वज कदाचित् उर्दू में था, जिससे 'जेर' के अभाव में सा० साबे० तथा सासी० की पाठ-परम्परा में ऊपर कहीं किसी ने भ्रम से 'कामिनि काम' के स्थान पर 'काम निकाम' पढ़ लिया और वही पाठ आगे भी चलता रहा । पदच्छेद की असावधानी से भी इस प्रकार की विकृति संभव है ।

२. नि० २१-३७ का पाठ है : जहाँ जराई सुन्दरी, तूं जनि जाइ कबीर । उड़ि के भसम जु लागसी, दहसी सोना सवां सरीर ॥ सा० ४२-६७, साबे० ७३-३६ तथा सासी० ३१-५२ में उक्त साखी की दूसरी पंक्ति का पाठ है : उड़ि के भसम जो लागसी, सूना होइ सरीर । सुन्दरी की भस्म लग जाने पर शरीर 'सूना' (=शून्य या सुन्न) होने की कल्पना यहाँ अप्रासंगिक है । नि० के अनुसार उक्त साखी का अर्थ होगा : ऐ कबीर, जहाँ सुन्दरी जलाई गयी हो, वहाँ भी तू मत जा, नहीं तो भस्म उड़ कर तुम्हारे शरीर पर पड़ेगी और उसकी चिनगारी से तुम्हारा सोने का सा शरीर जल कर राख हो जायगा । अर्थात् जीवित स्त्री की कौन कहे, जली हुई स्त्री के संपर्क का परिणाम भी भयावह हो सकता है । यह अर्थ पूर्ण रूप से सन्तोष-जनक प्रतीत होता है, अतः सा० साबे० तथा सासी० द्वारा प्रस्तुत किया हुआ पाठ विकृत ज्ञात होता है । यह विकृति भी फ़ारसी लिपि

में ही हो सकती है, क्योंकि सोन, वाव, नु, अलिफ़ मिलाकर उसे 'सोना', 'सूना' 'सौना' सभी कुछ पढ़ा जा सकता है।

३. सा० ४३-४८, सावे० ७३-३८ तथा सासी० ३१-५१ का पाठ है : रज वीरज की कोठरी, तापरि साजै रूप। एक नाम विनु बूझिहै, कनक कामिनी रूप ॥ दा० १६-१६, नि० २१-३६ में 'कोठरी' के स्थान पर 'कोथली' है जो प्रस्तुत प्रसंग में ठीक जँचता है। इस साखी में उन कामान्धों के प्रति उपदेश दिया गया है, जो पार्थिव शरीर की सुन्दरता पर दीवाने होकर भगवान को भूल जाते हैं। 'कोथली' का अर्थ 'खलीती' या 'थैली' होता है। रजोवीर्य से निर्मित एक खलीती पर रूप साजा गया है—यही है मानव शरीर जो परमात्मा के नाम का आधार छूट जाने पर कनक-कामिनी के गर्त में विलीन हो जायगा। यही उक्त साखी का सीधा अर्थ ज्ञात होता है। कोठरी भर रज-वीर्य को कल्पना बड़ी धृष्टास्पद लगती है। पुरानी उर्दू-प्रतियों में 'ते' तथा 'टे' प्रायः एक ही प्रकार से लिखे जाते थे। कदाचित् इसी भ्रम से उर्दू 'कोथली' को किसी ने 'कोठली' पढ़ लिया और फिर 'कोठली' के स्थान पर उसका सरल रूप 'कोठरी' कर दिया।

४. दा० १७-६, नि० २०-५ तथा सा० ८६-१३ का पाठ है ; कलि का स्वांमी लोभिया, पीतल धरै खटाइ। राज दुवारै यौं फिरै, ज्यों हरहाई गाइ ॥ सा० ४०-६, सावे० ८४-५८ तथा सासी० ३४-७ में दूसरी पंक्ति के 'हरहाई' के स्थान पर 'हरियाई' पाठ मिलता है। दुष्ट गाय के प्रसंग में सम्पूर्ण मध्यकालीन साहित्य में 'हरहाई' शब्द का ही प्रयोग मिलता है, 'हरियाई' का नहीं। इस प्रसंग में बोजक के शब्द २८ की छठी पंक्ति तुलनीय है, जिसका पाठ है : एतक लै गम कोन्हैसि गइया गइया अति हरहाई। इससे यह सिद्ध होता है कि सा० सावे० सासी० का 'हरयाई' पाठ 'हरहाई' का ही विकृत रूप है। उर्दू 'हे' के नीचे लटकने वाले 'शोशे' को भ्रम से 'ये' का नुक़ता समझ लेने पर 'हरहाई' को सरलता से 'हरियाई' पढ़ा जा सकता है।

५. सा० ८५-६१, सावे० ८-३७, सासी० १५-७२ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : आगि आंचि सहना सुगम, सुगम खड़ग की धारि। नि० ५०-६६ में उक्त पंक्ति का पाठ है : पांच अग्नि सहणीं सुगम, और सुगम खगधार। शरीर को क्लेश देने के लिए प्रायः लोग पंचाग्नि तापा करते हैं। एक ओर से आग की आंच सहना उतना कठिन नहीं है जितना पंचाग्नि का ताप सहना, और उक्त साखी में कठिनाई का ही प्रसंग है, अतः नि० का 'पांच अग्नि' पाठ अधिक उभयुक्त लगता है। सा० सावे० तथा सासी० में 'पांच' के स्थान पर 'आंचि' कदाचित्

फारसी लिपि के कारण हुआ है। नागरी में 'अ' के स्थान पर 'प' हो सकता है किन्तु 'प' से 'अ' बन जाना अपेक्षाकृत कम सम्भव है। विस्तार-भय से आगे शेष विकृतियों का स्थल-निर्देश-मात्र किया जा रहा है।

६. सा० ८०-१, सावे० ५८-१, सासी० ६६-१ : कबीर तहां न जाइए, जहां कपट का हेत। जानौ कली अनार की, तन राता मन सेत ॥ तुल० दा० ४२-१, नि० ४७-१, गुण० ६२-५४ : जालूं कली कनीर की, तन राता मन सेत। (सा० सावे० सासी० की विकृति उर्दू 'लाम' और 'नु' के शोशे में सादृश्य के कारण।)

७. सा० ४३-१३, सावे० ७३-१८, सासी० ३१-१३ : नारी निरखि न देखिए, निरखि न कीजै दौर। तुल० नि० २१-११-१ : नारी दसा (=दिशा) न देखिए, देखि न कीजै डोर। (उर्दू 'डाल' और 'दाल' के सादृश्य के कारण)

८. सा० ५५-३६, सावे० ५०-२१, सासी० ७-३६ : पहले बूड़ी पिरथवी, भूठे कुल की लार। तुल० दा० २४-२१-१, नि० २५-१६-१ : पख लै बूड़ी पिरथमी। (उर्दू के काफ़, हे में यदि 'काफ़' के ऊपर की लकीर अलग होकर कुछ छोटी हो जाय तो वह 'जवर' के सदृश हो जायगी और 'पख ले' के स्थान पर 'पहले' पढ़ा जा सकता है।)

९. सा० ६०-३७, सावे० ७७-१४, सासी० ३०-४० : खुश खाना है खीचड़ी, मांहि पड़ा टुक लौन। भास पराया खायकर, गला कटावै कौन ॥ तुल० दा० २२-१२, नि० ३२-७, सा० ७६-१ तथा गु० १८८ : खूब खान है खीचड़ी।

१०. सा० ३४-२२, सावे० १८-२०, सासी० ५६-१ : कबीर मारग कठिन है, रिखि मुनि बैठे थाकि। तहां कबीरा चढ़ि गया, गहि सतगुर की साक ॥ तुल० दा० १४-६, नि० १८-११, गुण० ४४-६ : 'साक' के स्थान पर 'साखि' (=साक्षी, कथन ; विकृति कदाचित् 'काफ़' में लगे हुए 'हे' के छूट जाने के कारण हुई है अथवा ऊपर 'थाकि' का तुक मिलाने के लिए जानबूझ कर 'साखि' का 'साक' कर लिया गया है।)

(ख) नागरी-लिपि-जनित विकृति-साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. सा० ६२-८, सावे० ३२-२, सासी० ४६-३७ की द्वितीय पंक्ति का पाठ है : परखनहारा बाहिरी, कोड़ी बदले जाय। दा० ४८-२, नि० ५३-३, गु० १५४ तथा गुण० १४२-२४ में 'बाहिरी' के स्थान पर 'बाहिरा' पाठ मिलता है जो वस्तुतः सार्थक और श्रेष्ठतर है। इस पंक्ति का भाव यह है कि बिना सच्चे पारखी के हीरा कोड़ी के मोल बिगड़ता है। अंग्रेजी साहित्य में 'बाहिरा' या

‘बाहिरा’ का प्रयोग ‘विना’ (अभाव-सूचक) अर्थ में किया गया है। कबीर की रचनाओं में इस अर्थ में सर्वत्र ‘बाहिरा’ शब्द का ही प्रयोग हुआ है। इस प्रसंग में निम्नलिखित स्थल तुलनीय है : दा० १२-१५, नि० १६-२२ : राखन-हारे बाहिरा, चिड़ियँ खाया खेत। यह साखी सा० सावे० तथा सासी० में भी (क्रमशः ३०-३६, १६-४०, १७-६६ पर) मिलती है और ‘बाहिरा’ शब्द इन तीनों प्रतियों में भी ज्यों का त्यों मिलता है, उसके स्थान पर ‘बाहिरी’ नहीं मिलता। यह ध्यान देने की बात है कि इस साखी में ‘बाहिरा’ शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में हुआ है जिसमें वह ‘परखनहारा’ के साथ आया है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि ‘बाहिरी’ पाठ विकृत है। पहले संकेत किया जा चुका है कि राजस्थानी नागरी में ‘आ’ की मात्रा ऊपर फुला कर इस ढंग से लगते थे कि उससे कहीं-कहीं ईकार की मात्रा का भ्रम होने लगता है। सा० सावे० तथा सासी० की विकृति इसी प्रवृत्ति तथा तज्जनित भ्रम के कारण आयी हुई जात होती है।

२. सा० २०-१३, सावे० ४३-२७, सासी० १४-४२ : पिंजर प्रेम प्रकासिया, अंतर भया उजास। सुख करि सूती महल में, बानी फूटी बास ॥ दा० ५-१४, नि० ८-९ में इसकी द्वितीय पंक्ति का पाठ है : मुख कस्तूरी महमही, बानी फूटी बास। दा० नि० के अनुसार उक्त साखी का अर्थ होगा : जिसके शरीर में प्रेम का प्रवेश हो जाता है उसका हृदय उसके प्रकाश से उद्भासित हो जाता है, मुख में कस्तूरी का बास हो जाता है और वाणी से सुगन्धि फूट कर निकलने लगती है, अर्थात् जिसने प्रेम का वास्तविक महत्व समझ लिया उसे दिव्य ज्ञान का प्रकाश मिल जाता है; वह जो कुछ बोलता है उसमें संसार भर का ज्ञान अपने आप छिपा रहता है, इसलिए सारा विश्व उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। ‘मुख कस्तूरी महमही’ का यही भाव है। यदि उसके स्थान पर ‘सुख करि सूती महल में’ पाठ ग्रहण किया जाय तो पूरे वाक्य में उसका कोई पूर्वापर संबंध नहीं स्पष्ट होता। ‘सूती’ क्रिया के कर्ता का भी अभाव खटकता है, इसलिए यह पाठ विकृत जात होता है और दा० तथा नि० का पाठ ही मूल के अधिक निकट का जान पड़ता है। विभिन्न सम्भावनाओं पर विचार करने से यह अनुमान लगता है कि कदाचित् यह विकृति नागरी अथवा उससे निकली हुई लिपि के ही कारण आयी है।

३. सा० ८५-५५, सावे० ८-६१, सासी० २४-२२ का पाठ है : सूर के मैदान में, कायर का क्या काम। तीर तपक बरछी बहै, बगसि जायगा चाम। नि० ५०-६२ में

‘बिगसि’ के स्थान पर ‘बिनसि’ पाठ मिलता है। ‘चाम’ (=चमड़ा) के साथ ‘बिगसि’ (=विकसित होना) शब्द कुछ असंगत सा लगता है। वास्तव में इस प्रसंग में ‘बिनसि’ (=क्षत विक्षत होना) शब्द ही अधिक उपयुक्त लगता है और यही पाठ प्राचीनतर भी ज्ञात होता है। नागरी और उससे निकली हुई लिपियों में यदि नकार की बेड़ी लकीर अपने ऊपर की रेखा से मिल जाय तो उसका गोला खड़ी रेखा से अलग होकर ‘ग’ के गोले के सदृश लगने लगता है। ‘बिनसि’ के स्थान पर ‘बिगसि’ हो जाने की भूल कदाचित् इसी प्रकार हुई है।

४. सा० ३०-४२, साबे० १६-३३, सासी० १३-४६ : जिहि घट प्रीति न प्रेम रस, पुनि रसना नहि नाम । ते नर आय संसार में, उपजि खपे बेकाम ॥ दा० २-१७, नि० १६-११ तथा गुण० ३०-२७ में ‘खपे’ के स्थान पर ‘खये’ पाठ मिलता है। ‘खये’ (=क्षये, नष्ट हुए) ‘खपे’ की अपेक्षा प्राचीनतर लगता है। नागरी लिपि में ‘प’ तथा ‘य’ में अधिक अंतर नहीं होता, अतः दोनों में भ्रम हो जाना स्वाभाविक है।

(ग) पुनरावृत्ति-साम्य—सा० साबे० सासी० तीनों में चार साखियों की अनावश्यक पुनरावृत्ति समान रूप से मिल जाने के कारण तीनों के संकीर्ण-संबंध की पूर्णतया पुष्टि हो जाती है। विस्तार के लिए निम्नलिखित स्थल द्रष्टव्य हैं—

१. पहली साखी जो सा० साबे० तथा सासी० में दो बार आती है, पहले तीनों के ‘लौ’ (सासी० लगनी) अंग में मिलती है और फिर तीनों के ‘परिचय अंग’ में। ‘लव अंग’ में यह साखी तीनों में क्रमशः २६-६, १३-६ तथा ५३-१७ पर मिलती है। तीनों स्थलों पर इसका पाठ है—

जोहि बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहि जाइ ।

रैन दिवस की गमि नहीं, तहां कबीर लौ लाइ ॥

तीनों प्रतियों के ‘परिचय अंग’ में भी यह साखी क्रमशः २०-६६, ४३-४२ तथा १४-७२ पर मिलती है, जिसका पाठ तीनों में इस प्रकार है—

जा बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहि जाइ ।

रैन दिवस की गमि नहीं, रहा कबीर समाइ ॥

नाममात्र का अंतर केवल अंतिम चरण के पाठों में है।

२. सा० ६०-१५, साबे० १४-५२ तथा सासी० १६-६३ का पाठ है—

पावक रूपी राम (साबे० सासी० नाम) है, सब घट रहा समाय ।

चित चकमक चहुंटे नहीं, धूँवा होइ होइ जाय ॥

यही साखी सा० साबे० सासी० में क्रमशः १०-१०, १०-१०, १०-१० पर पुनः

मिलती है जिनका पाठ है—

पावक रूपी सांझियां, सब घट रहा समाय ।

चित चक्रमक लागे नहीं, ताते बुझ बुझ जाय ॥

दा० तथा नि० में यह साखी केवल एक-एक बार मिलती है, तुल० क्रमशः २६-१६ तथा ७-२०—

पावक रूपी रांस है, घटि घटि रह्या समाइ ।

चित चक्रमक लागे नहीं, तायँ धूवां ह्वै ह्वै जाइ ॥

इसका पाठ ऊपर की पहली साखी से अधिक मिलता है ।

३. सा० साबे० तथा सासी० में एक निरर्थक पुनरावृत्ति एक ही साखी में मिलती है । सा० ७८-३६, साबे० १६-१५६, सासी० ३२-३१ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : जारनहारा भी मुवा, मुवा जलावनहार । इस पंक्ति के पूर्वाद्ध का वही भाव है जो उसके उत्तराद्ध का है, इसलिए यह पाठ भ्रामक हो गया है । दा० ४६-३१ तथा गुण० १७७-१६७ में इसका पाठ है : रोवणहारे भी मुए, मुए जलावनहार । यह पाठ उक्त दोष से मुक्त है ।

४. सा० साबे० तथा सासी० में एक साखी ऐसी है जो अन्यत्र एक पद की दो पंक्तियों के रूप में मिलती है । इस साखी का पाठ है—

अक्षै पुरुष एक पेड़ है, निरंजन बाकी डार ।

तिर देवा साखा भए, पात भया संसार ॥

यह नि० बिलावल ११, बी० ११४, शबे० (१) भेद ६ की दूसरी तथा तीसरी पंक्तियों से तुलनीय है, जिनका पाठ है—

सत्य पुरुष (नि० अजर अमर, बी० आदि पुरुष) इक वृक्ष निरंजन डारा ।

तिर देवा साखा भए, पाती संसारा ॥

नि० बी० शबे० समुच्चय में जो पद मिलते हैं, उनमें कहीं भी विकृति-साम्य नहीं मिलता । इसलिए उनमें समान रूप से मिलने वाला पाठ प्रामाणिक माना गया है । एक बार पदों में मिल जाने पर पुनः इन पंक्तियों का साखी रूप में पाया जाना खटकता है अतः सा० साबे० सासी०, जिनमें यह अनावश्यक पुनरावृत्ति मिलती है, परस्पर संकीर्ण रूप से संबद्ध हैं ।

उक्त तीनों प्रतियों के संकीर्ण-संबंध के लिए इन साक्ष्यों के अतिरिक्त नि० सा० साबे० सासी० के विकृत-साम्य भी विचारणीय हैं क्योंकि उनमें भी नि० के अतिरिक्त सा० साबे० सासी० के भी साक्ष्य वर्तमान हैं ।

सा० साबे० सासी० में संकीर्ण-संबंध प्रामाणिक हो जाने पर सा० साबे०,

सा० सासी० तथा सावे० सासी० के संकीर्ण-संबंध भी सिद्ध हो जाते हैं।

सावे० सासी० गुण० का संकीर्ण-संबंध

पुनरावृत्ति-साम्य—निम्नलिखित साखी ऐसी है जो तीनों में अनावश्यक रूप से दो-दो बार मिलती है—

१. सावे० १५-२१, सासी० १५-४६, गुण० १६-४१ का पाठ है—

ज्यों मेरा मन तुज्झ सों, यों जो तेरा होइ ।

अहिरन ताता लोह ज्यों, संधि लखै नहिं कोइ ॥

यही साखी पुनः तीनों में क्रमशः ३६-१६, ३३-३८ तथा ३५-१७ पर इस प्रकार मिलती है—

मेरा मन जो तोहि सों, यों जो तेरा होइ ।

अहिरन ताता लोह ज्यों, संधि लखै नहिं कोइ ॥

उपर्युक्त तीनों प्रतियों में संकीर्ण-संबंध मान लेने पर सावे० सासी०, सावे० गुण०, सासी० गुण० का परस्पर संकीर्ण-संबंध भी सिद्ध हो जाता है।

दा० सा० सावे० सासी० का संकीर्ण-संबंध

प्रक्षेप-साम्य—दा० ३३-६ का पाठ है—

मन नहिं छाड़ै बिखै, बिखै नहिं छाड़ै मन कौ ।

इनकौ इहै सुभाव, पूरि लागी जुग जन कौ ।

पंडित मूल बिनास, कहै किमि बिग्रह कीजै ।

ज्यों जल मैं प्रतिबिंब, त्यों सकल रामहिं जांणीजै ।

सो मन सो तन सो बिखै, सो त्रिभुवन पति कहै कस ।

कहै कबीर बिदहु नरा, ज्यों जल पूरा सकल रस ॥

इस छंद में छः पंक्तियाँ हैं, और कुछ विशेषताओं को छोड़ कर मात्रा तथा यति आदि की दृष्टि से यह छप्पय छन्द से मिलता है। दा० में इसे तीन साखियाँ समझ कर दो-दो पंक्तियों के पश्चात् पृथक् संख्या दी गयी है। सा० तथा सासी० प्रतियों में भी दा० के समान यह छंद तीन भिन्न साखियों के रूप में मिलता है, और पाठ भी तोड़-मरोड़ कर साखियों के ही अनुकूल कर लिया गया है। सा० में यह साखियाँ ३१वें अंग में क्रमशः ७०, ७१, ७२ संख्याओं पर और सासी० में २६वें अंग की ३१, ८३ तथा ८४ संख्याओं पर मिलती हैं। दोनों में पाठ क्रमशः इस प्रकार है—

मन नहिं छाड़ै विषय रस, विषय न मन को छाड़ि ।

पंडित भूल बिनासिया, कहै क्यों बिग्रह कीज ।
ज्यों जल में प्रतिबिंब है, त्यों सकल राम जानीज ।
तो मन सोनो सो विषय, त्रिभुवन पति कहू कस ।
कहै कबीर बैदा नरा, जल पूरा सकल रस ॥

सावे० में ७१-७१ पर उक्त छंद की केवल प्रथम दो पंक्तियाँ मिलती हैं जिनका पाठ सा० तथा सासी० से शब्दशः मिलता है। प्रथम दोनों पंक्तियों के आने से सम्पूर्ण छंद की स्थिति का स्पष्ट संकेत मिल जाता है, क्योंकि सावे० के सा० द्वारा प्रभावित होने के पर्याप्त प्रमाण हमें मिल चुके हैं। अतः सावे० में भी इस विकृति की स्थिति समान रूप से माननी पड़ेगी। वस्तुतः साखियों के प्रकरण में छुप्य छंद का मिलना अनुपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि कबीर की साखियाँ सर्वत्र दो पंक्तियों की ही मिलती हैं।

दा० सा० सावे० सासी० में संकीर्ण-संबंध मान लेते पर दा० सा०, दा० सावे०, दा० सासी०, दा० सा० सावे०, दा० सा० सासी० और सावे० सासी० का सम्बन्ध भी सिद्ध हो जाता है, क्योंकि उक्त समुच्चय में इन प्रतियों के भी विकृति-साम्य हैं।

बी० सा०, बी० सावे० तथा बी० सा० सावे० के संकीर्ण-संबंध
(क) प्रक्षेप-साम्य—

१. बी० १३१ तथा सावे० ३५-३५ का पाठ है—

बलिहारी वहि दूध की, जामै निकरै घीव ।

आधी साखि कबीर की, चारि बेद का जीव ॥

इसका अर्थ होगा : बलिहारी उस दूध की है जिससे घी निकले (अर्थात् जिस दूध में घी न निकले उसकी क्या प्रशंसा की जाय ?)। इसी प्रकार बलिहारी कबीर की साखियों की है जिसके अर्द्धांश में चारों वेदों का सार छिपा रहता है। क्या वेदों का खंडन करने वाले कबीर अपनी साखियों को वेद-सम्मत कहने का लोभ करेंगे ? और क्या इस साखी की वाक्य-रचना से यह ध्वनित नहीं होता कि वास्तव में यह कबीर की प्रशंसा के निमित्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा रची गयी है ? अधिक सम्भव यही है कि कदाचित् यह किसी अन्य व्यक्ति की रचना हो।

२. सावे० ३७-४६ और बी० २० सा० ५८ का पाठ है—

साधु संत तेई जना, जिन मानल बचन हमार ।

आदि अंत उत्पति प्रलय, देखहु दृष्टि पसार ॥

यह साखी कबीर की प्रथम पंक्ति संदिग्ध है। कबीर का यह कहना कि मेरी

बात मानने वाले ही सच्चे साधु संत हैं, कुछ अनुपयुक्त सा लगता है।

३. बी० ७४ तथा सावे० ६७-२५ का पाठ है—

सांचा शब्द कबीर का, हृदया देखि बिचारि ।

चित दे समुझत है नहीं, मोहि कहत भैल जुग चारि ॥

यह स्पष्ट ही किसी परवर्ती कबीरपंथी साधु की रचना ज्ञात होती है जिसमें उसके आदि आचार्य का प्रचारात्मक अनुमोदन किया गया है। चार युगों का उल्लेख होने से कबीरपंथियों की उस कल्पना का संकेत मिलता है जिसके अनुसार कबीर ने विभिन्न नाम धारण कर चारों युगों में अवतार लिया था।

यह ध्यान देने की बात है कि उक्त तीनों साखियाँ अन्य किसी भी प्रति में नहीं मिलतीं, केवल बी० और सावे० में ही मिलती हैं। अतः दोनों के नैकथ्य का सन्देह होता है। इस सन्देह के पक्ष में और भी साक्ष्य मिलते हैं जिनका उल्लेख आगे किया जा रहा है।

(ख) पुनरावृत्ति-साम्य—पहले इस बात का संकेत किया गया है कि सावे० में कई साखियाँ दो-दो बार मिलती हैं, जिससे उसका आदर्श-वाहुल्य सिद्ध होता है। बीजक से उसका मिलान करने पर यह भी ज्ञात होता है कि उसकी कुछ पुनरावृत्तियाँ बीजक के ही प्रभाव से आयी हैं। उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित साखियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं—

१. सावे० ६-२८ का पाठ है—

एक समाना सकल में, सकल समाना ताहि ।

कबीर समाना ब्रह्म में, तहां दूसरा नाहि ॥

यही साखी पुनः ज्यों की त्यों सावे० में ८४-२५ पर भी मिल जाती है। बी० तथा सावे० के अतिरिक्त यह साखी सा० में भी ५-४५ पर मिलती है, जिसका पाठ उक्त साखी के पाठ से शब्दशः मिलता है। सावे० का छठा अंग और सा० का पाँचवाँ अंग 'गुरु शिष्य हेरा' के हैं। सा० तथा सावे० का परस्पर संकीर्ण-संबंध भी पहले सिद्ध हो चुका है, इससे यह अनुमान होता है कि सावे० में पहली बार यह साखी सा० के प्रभाव से आयी है, किन्तु पुनः ८४वें अर्थात् 'मिश्रित अंग' में उसी साखी के पुनः मिल जाने से यह संकेत मिलता है कि यह अनावश्यक पुनरावृत्ति कदाचित् किसी अन्य आदर्श के प्रभाव से हुई है। यह अन्य आदर्श बीजक ही ज्ञात होता है। इस प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण मिल जाने से इस संदेह की पुष्टि हो जाती है। निम्नलिखित उदाहरण इस प्रसंग में विचारणीय हैं—

२. सावे० ३७-४० का पाठ है : कर बंदगी बिबेक की, भेस धरे सब कोय ।

कर बंदगी बहि स्यात ने, जहां शब्द बिबेक न होय ॥

यहो साखी पुनः सावे० १६६-६ पर इस प्रकार मिलती है—

कर बंदगी बिबेक की, भेस धरे सब कोय ।

वा बंदगी बहि जान दे, जहं शब्द बिबेक न होय ॥

यह साखी सा० ५०-३ से तुलनीय है, जिसका पाठ अक्षरशः इसी साखी से मिलता है । दोनों में यह साखी 'बिबेक अंग' में मिलती है । सावे० ३७-४० बी० (२६४) के प्रभाव से आयी हुई ज्ञात होती है जिसका पाठ है—

कर बंदगी बिबेक की, भेस धरे सब कोय ।

सो बंदगी बहि जान दे, जहं सब्द बिबेक न होय ॥

३. सावे० ६७-२० का पाठ है—

जाके बोली बंध नहि, सांच नहीं मन मांहि ।

ताके संग न चालिए, छोड़ै पैड़े मांहि ॥

तुल० सावे० ३७-३८ : जाकी जिभ्या बंध नहि, हिरदै नाहीं सांच ।

ताके संग न लागिए, घालै बटिया माभ ॥

पहली साखी सा० ५२-२४ से प्रभावित ज्ञात होती है जिसका पाठ है—

जाके बोली बंध नहि, सांच नहीं मन मांहि ।

ताके संग न चालिए, छोड़ै पैड़ा मांहि ॥

और दूसरी साखी बी० ८३ से प्रभावित ज्ञात होती है, जिसका पाठ है—

जाके जिभ्या बंध नहि, हृदया नाहीं सांच ।

ताके संग न लागिए, घालै बटिया माभ ॥

४. इसी प्रकार तुल० सावे० ३७-४८—

जो तू चाहै मुज्म को, छांड़ि सकल की आस ।

मुभ ही ऐसा ह्वै रहे, सब सुख तेरे पास ॥

तथा सावे० ५६-३ : जो तू चाहै मुज्म को, राखो और न आस ।

मुभहि सरीखा ह्वै रहो, सब सुख तेरे पास ॥

दूसरी साखी सा० ३६-१४ से प्रभावित ज्ञात होती है, जिसका पाठ है—

जो तू चाहै मुभहि को, मत कछु राखै आस ।

मुभहि सरीखा ह्वै रहो, सब कुछ तेरे पास ॥

किन्तु पहली साखी बी० के ही प्रभाव से आयी हुई ज्ञात होती है—

तुल० बी० २६८ : जो तू चाहै मुज्म को, छांड़ि सकल की आस ।

मुभ ही ऐसा ह्वै रहो, सब सुख तेरे पास ॥

५. तुल० सावे० ६-२७ : बृंद समानी समुंद में, यह जाने सब कोय ।
समुंद समाना बृंद में, बूझै बिरला कोय ॥

तथा सावे० ८४-८४ : पाठ शब्दशः वही ।

पहली सा० ५-४१ से प्रभावित ज्ञात होती है और दूसरी बी० ६६ से ।
अन्य सभी प्रतियाँ इस साखी का एक ही पाठ प्रस्तुत करती हैं ।

६. दा० ४६-३, नि० ४४-४, सा० ६७-१ तथा गुण० १७७-११६ का
पाठ है—

काल सिरहारेँ यौं खड़ा, जाग पियारे मित ।

रांम सनेही बाहिरा, तूं क्यों सोवै निंचित ॥

सा० ७८-३ तथा सासी० ३२-३ में इस साखी का पाठ है—

काल चिचाना है खड़ा, तू जाग पियारे मित ।

नाम सनेही बाहिरा, क्यों तूं सोवै निंचित ॥

यह साखी बी० में भी १०२ संख्या पर मिलती है, जहाँ इसका पाठ है—

काल खड़ा सिर ऊपरै, जाग बिराने मित ।

जाका घर है गैल में, क्या सोवै निहँचित ॥

सावे० में यह साखी दो बार मिलती है : एक बार १६-१७६ पर जिसका पाठ
है—

काल चिचावत है खड़ा, जागु पियारे मित ।

नाम सनेही जग रहा, क्यों तूं सोय निंचित ॥

और एक बार पहले ही १६-१२१ पर मिल जाती है, जहाँ इसका पाठ है—

काल खड़ा सिर ऊपरै, जाग बिराने मित ।

जाका घर है गैल में, क्यों सोवै निहँचित ॥

स्पष्ट है कि सावे० में १६-१७६ पर आने वाली साखी दा० नि० सा० सावे०
सासी० स० तथा गुण० में आयी हुई साखी के समानान्तर पाठ प्रस्तुत करती है
और १६-१२१ पर आने वाली साखी बीजक वाले पाठ की शब्दशः प्रतिलिपि है,
क्योंकि दोनों के पाठों में एक मात्रा का भी अंतर नहीं मिलता । इससे यह ज्ञात
होता है कि दा० नि० सा० आदि से सम्बद्ध रहने के कारण यह साखी सावे० की
मूल प्रति में पहले से ही विद्यमान थी, किन्तु उसके सम्पादन में बीजक का भी
उपयोग होने से इस साखी का एक दूसरा रूपान्तर भी उसमें प्रविष्ट हो गया जो
कि बीजक में मिलता है ।

७. नि० ४५-१२, सा० ७६-१२ तथा सासी० १६-३८ का पाठ है—

जाहु वेद घर आपने, तेरा किया न होय ।

जिन या वेदन निरमई, भला करैगा सोय ॥

यह साखी बी० में भी ३१० संख्या पर मिलती है जिसका पाठ है—

जाहु वेद घर आपने, बात न पूछै कोय ।

जिन यह भार लदाइया, निरबाहेगा सोय ॥

सावे० में यह साखी भी दो बार मिलती है : एक बार १४-८८ पर और फिर उसी ग्रंथ की ८६ संख्या पर । साखी ८८ का पाठ है—

जाहु वेद घर आपने, तेरा किया न होय ।

जिनि यह वेदन निरमई, भला करैगा सोय ॥

और ८६ का पाठ है : जाहु मीत घर आपने, बात न पूछै कोय ।

जिन या भार लदाइया, निरबाहेगा सोय ॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि पहली साखी का पाठ नि० सा० सासी० से प्रभावित है और दूसरी का पाठ बी० से ।

इस प्रकार हमने देखा कि सावे० की पुनरावृत्तियों में बी० का पर्याप्त प्रभाव है, जिससे यह सिद्ध होता है कि सावे० के संकलयिता के सम्मुख बीजक की भी कोई प्रति थी जिसका उसने उपयोग किया है ।

सावे० में नौ साखियाँ ऐसी भी मिलती हैं जो बी० में रमैणियों के प्रकरण में आती हैं, जिससे उनके पारस्परिक सम्बन्ध भी कल्पना को और भी अधिक पुष्टि मिलती है ।

सावे० के सदृश सा० में भी दो साखियाँ ऐसी हैं जो बी० में रमैणियों के अन्तर्गत आती हैं—तुल० (१) सा० ७४-१२ तथा बी० २० सा० ३७ : 'बीजक बतावै बित्त को' इत्यादि; (२) सा० २०-६४ तथा बी० २० सा० ७ : 'अविगत की गति क्या कहूँ' इत्यादि । इनमें से दूसरी साखी दा० नि० में भी 'अष्टपदी रमैनी' की पहली साखी के रूप में मिलती है । इससे यह ज्ञात होता है कि यह साखियाँ मूलतः रमैणी में ही थीं, उक्त साखी-प्रतियों के लिपि-कर्त्ताओं अथवा संकलन-कर्त्ताओं ने किसी दूसरी प्रति से लेकर इन्हें अतिरिक्त रूप से जोड़ा है । सा० तथा सावे० के अतिरिक्त अन्य किसी भी साखी-प्रति में इस प्रकार रमैणियों की एक भी साखी नहीं मिलती । हमने यह देखा है कि सा० तथा सावे० में जो साखियाँ इस प्रकार अतिरिक्त रूप से मिलती हैं, उनके पाठ बीजक की उल्लिखित साखियों से शब्दशः मिल जाते हैं, अतः बीजक से उक्त दोनों प्रतियों का संकीर्ण-सम्बन्ध मानना पड़ता है । साथ ही बी० सा० तथा सावे० तीनों में समान रूप

से कुछ अन्य विकृति-साम्य मिल जाने से (जिनका उल्लेख आगे किया जा रहा है) बी० सा० तथा बी० सावे० का संकीर्ण-सम्बन्ध और भी दृढ़तर सिद्ध हो जाता है।

बी० सा० सावे० का संकीर्ण-संबंध

निम्नलिखित विशेषताएँ बी० सा० सावे० में समान रूप से मिलती हैं।

(क) फ़ारसी-लिपि-जनित विकृति-साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. दा० १६-३२ तथा नि० १६-४२ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : माया की भल जग जल्या, कनक कामिणीं लागि। सा० ३७-३७, सावे० ७२-२५ तथा बी० १४१ (बीभ० १४०) में 'भल' के स्थान पर भक पाठ मिलता है। यहाँ पर संसार के जलने का प्रसंग है, अतः 'भल' (=आग की ज्वाला या लपट) की प्रामाणिकता निर्विवाद रूप से स्वीकार की जायगी। 'भक' का प्रयोग सर्वत्र 'जक' अथवा 'धुन' अर्थ में किया गया है; तुल० नि० ८-१०, सा० २०-१४, सावे० ४३-५ तथा सासी० १४-५ : भक लागी जोगी हुआ, मिटि गई ऐंचातान। ज्वाला के अर्थ में 'भल' शब्द का प्रयोग कबीर की रचनाओं में कई स्थलों पर मिलता है। निम्नलिखित स्थल इस सम्बन्ध में विशेष रूप से तुलनीय हैं—

अ—दा० ३८-७, नि० ४०-१३, सा० ७२-१६, सासी० ७०-६ : भल बावै भल दाहिनै, भलहि मांहि ब्यौहार। आगें पीछै भलहि है, राखै सिरजनहार॥ (अर्थात् चारों ओर अग्नि प्रज्वलित है, विधाता ही इससे बचावें।)

आ—दा० १७-१, नि० ६-५२, सा० १६-७२, सावे० १४-८२ तथा सासी० १६-८१ : साहिब मिलै न भल बुझै, रही बुझाइ बुझाइ॥ (अर्थात् न तो स्वामी मिलता है न ज्वाला शांत होती है।)

इ—दा० ४-४, नि० ७-६ : भल ऊठी भोली जली, खपरा फूटम फूट। (अर्थात् अग्नि की लपट से भोली जल गई।)

ई—दा० नि० गौड़ी ८ तथा गु० गउड़ी ४७ की अंतिम पंक्ति : कहै कबीर गुर दिया पलीता, सो भल बिरलै देखी। (यहाँ भी 'भल' का तात्पर्य पलीते की लपट या फुलझड़ी से है।)

यह ध्यान देने की बात है कि अन्य प्रतियों के अतिरिक्त सावे० में भी 'ज्वाला' के अर्थ में 'भल' पाठ ही मिलता है।

उक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि प्रस्तुत प्रसंग में 'भक' पाठ विकृत है और 'भल' पाठ ही श्रेष्ठ तथा मूल प्रति का है। इस प्रकार की विकृति संभवतः उर्दू में ही प्रचलित है।

पास 'ज्वर' रहने से 'काक' का भ्रम हो सकता है। कदाचित् इसी भ्रम से उसे 'भक' पढ़ लिया गया।

२. इसके अतिरिक्त सा० तथा सावे० में एक साखी ऐसी है जो बीजक की 'विप्रमतीसी' में मिलती है और दोनों में दो साखियाँ ऐसी हैं जो बीजक के रमैणी-प्रकरण में मिलती हैं—तुल० (१) सा० १८-५०, १०-५७, सावे० ३७-३० तथा बी० विप्रमतीसी की अंतिम साखी : 'बहते को बहि जान दे' इत्यादि; (२) सा० ४१-१०, सावे० १८-१३ तथा बी० २० सा० ३३ : 'रामहि राम पुकारते जिम्मा परि गइ रांस' इत्यादि, (३) सा० ६०-१३, सावे० ७७-१३ तथा बी० २० सा० ४६ : 'दिन को रोजा रहते हैं' इत्यादि।

नि० सा० सावे० सासी० का संकीर्ण-संबंध

(क) नागरी-लिपि-जनित विकृति-साम्य : निम्नलिखित उदाहरण विचारणीय हैं—

१. नि० २५-३, सा० ५५-१३, सावे० ३४-१५ तथा सासी० १३-१४२ का पाठ है : माला फेरत मन खुशी, तातैं कछू न होइ। दा० २४-३, सा० ६४-१२ तथा गुण० १२६-१० में 'मन खुशी' के स्थान पर 'मनमुखी' पाठ मिलता है, केवल दा३ में 'मन मुखी' पाठ है। विचारणीय यह है कि उक्त तीनों पाठों में से कौन सा पाठ यहाँ मूल प्रति का है।

'गुरुमुख' और 'मनमुख' संत-साहित्य के पारिभाषिक शब्द हैं। 'मनमुखी' वह है जो गुरु की आज्ञा न मान कर अपने मन की ही आज्ञा मानता है, अर्थात् सदैव अपनी काम-वासनाओं की पूर्ति में लगा रहता है और परमार्थ का लेश-मात्र भी चिन्तन नहीं करता। सावे० ४-३ में ऐसे व्यक्तियों के संबंध में कहा गया है—

फल कारन सेवा करै, तजै न मन से काम।

कहै कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ॥

इस प्रकार 'माला फेरै मनमुखी' का अर्थ यह होगा कि माला मनमुखी लोग फेरा करते हैं (इस आशा से कि माला की जितनी गुरियाँ फिरेंगी, पुण्य का खाता उतना ही बढ़ता जायगा)। सा० ५५-१४ तथा सासी० ७-३० पर मिलने वाली साखी में 'मनमुखी' शब्द आया है। उक्त साखी का पाठ है—

माला फेरै मनमुखी, बहुतक फिरै अचेत।

गांगी रोलै बहि गया, हरि सों किया न हेत ॥

दूसरी बात यह है कि 'माला फेरत मन खुशी' कह लेने पर 'तातैं कछू न होइ' कहने की कोई संगति नहीं रह जाती, क्योंकि माला फेरने से यदि मन प्रसन्न

हो जाय तो यह भी कम महत्वपूर्ण नहीं। ऐसा ज्ञात होता है कि नागरी में लिखे हुए 'मनमुखी' से पहले दा३ में 'मन मुखी' ('म' और 'स' के साहचर्य के कारण) हुआ और फिर नि० सा० सावे० सासी० में उसका समानार्थी 'मन खुसी' पाठ कर लिया गया।

(ख) फ़ारसी लिपि-जनित विकृति-साध्य—जिसके उदाहरण इस प्रकार हैं—

१. दा० २६-२, सा० २७-१ तथा गुण० ७२-१२ का पाठ है—

संत न छाँड़े संतई, जे कोटिक मिलहिं असंत।

चंदन भुवंगा बेड़ियौ, तऊ सीतलता न तजंत ॥

नि० २६-२, सा० ५६-५, सावे० ४७-५७, सासी० ६-१२४ में उक्त साखी की द्वितीय पंक्ति के 'बेड़ियौ' के स्थान पर बेधिया या बेधियौ पाठ-भेद मिलते हैं। इन प्रतियों के अतिरिक्त यह साखी गु० में भी १७४वें सलोक के रूप में मिलती है : और वहाँ भी 'बेड़ियौ' पाठ ही मिलता है। इस प्रकार उक्त शब्द के पाठ के संबंध में प्रतियों के मुख्यतया दो पक्ष हो जाते हैं—एक पक्ष दा० स० गुण० तथा गु० का है, जो 'बेड़िया' या 'बेड़िऔ' पाठ प्रस्तुत करता है और दूसरा नि० सा० सावे० सासी० का है जो 'बेधिया' या 'बेधियौ' पाठ प्रस्तुत करता है। 'बेधना' क्रिया का प्रयोग लक्ष्य-संधान करने, छिद्र करने अथवा अत्यन्त उग्र गंध का प्रसार करने के अर्थ में होता है। किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में इन अर्थों में से किसी की भी उपयुक्तता सिद्ध नहीं होती। इस पंक्ति का मूल भाव यह है कि सर्पों द्वारा प्रभावित होने पर भी चन्दन अपनी शीतलता नहीं छोड़ता। इस भाव में 'बेड़ना' पाठ ही अधिक समीचीन होगा। डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'संत कबीर' के शब्दकोष (पृ० १४३) में 'बेड़ियौ' शब्द का अर्थ (कदाचित् संस्कृत 'वेष्ट्' के आधार पर) 'घिरा हुआ' दिया है। खेतों में बाड़ लगाने या रूँधने के अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग प्रचलित है। कबीर ने अन्यत्र इसका प्रयोग निम्नलिखित प्रसंग में किया है; तुल० दा० नि० केदारौ १२, गु० केदारा ४ तथा वी० शब्द ७२ : चलत कत टेढ़ो टेढ़ो टेढ़ो। नऊं (वी० दसहुं) दुवार नरक धरि मूंदे (गु० असति चरम बिसटा के मूंदे) तूँ दुर्गंधि की बेड़ौ ॥ यहाँ 'बेड़ौ' से 'आवरण' या उससे मिलता-जुलता कोई अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। 'बेड़ना' का प्रयोग आग लगने या लगाने के अर्थ में भी किया जाता है। इसी अर्थ में अवधी, भोजपुरी का 'बेड़ा बाजै' अर्थात् 'आग लगे' (तिरस्कारसूचक) मुहावरा प्रचलित है जो प्रायः स्त्रियों द्वारा व्यवहृत होता है। कदाचित् ज्वाला की ही लक्षणा पर इसका प्रयोग सर्प आदि विषैले जंतुओं के तीक्ष्ण विष अथवा किसी तीक्ष्ण बात के प्रसार के लिए

भी किया जाता है। सर्प अथवा विच्छ्र द्वारा काटे जाने पर सारा शरीर उनके विष से 'बेड़ा हुआ' कहा जाता है और इसी प्रकार किसी कटुवचनी की तीक्ष्ण बातों द्वारा सारा गाँव 'बेड़ा हुआ' कहा जाता है। जिस साखी के पाठ पर विचार किया जा रहा है उसमें 'बेढ़ियौ' शब्द का प्रयोग कूँधे जाने अथवा विष की ज्वाला से दग्ध किये जाने के अर्थ में ही किया गया प्रतीत होता है। आगे शीतलता के प्रसंग से इस अर्थ की प्रमाणिकता और भी अधिक विचारणीय हो जाती है। अर्थ जो भी हो, किंतु 'बेधिया' की अपेक्षा 'बेढ़िया' या 'बेढ़ियौ' पाठ की श्रेष्ठता अक्षुण्ण है। नि० सा० सावे० सासी० की यह विकृति फ़ारसी लिपि के कारण पैदा हुई ज्ञात होती है, क्योंकि उसमें शीघ्रतावश 'डाल' (=ड) के स्थान पर प्रायः लोग 'दाल' (=द) लिख जाया करते हैं।

(ग) राजस्थानी-प्रभाव का साम्य—निम्नलिखित राजस्थानी-प्रयोग नि० सा० सावे० सासी० में समान रूप से पाये जाते हैं—

१. नि० २१-४८, सा० ४३-४७, सावे० ७३-३७ तथा सासी० ३१-५ की दूसरी पंक्ति का पाठ है : हरि विच पाड़े अंतरा, जम देसी मुख धूरि ॥
२. नि० २१-३७, सा० ४२-६७, सावे० ७३-३६ तथा सासी० ३१-५२ की द्वितीय पंक्ति का पाठ है : उड़ि के भसम जु लागसी, सूना होय सरीर ।
३. नि० २०-३७, सा० ४०-१६, सावे० २-२२, सासी० ३-१४ की द्वितीय पंक्ति : ते जन ऊभा सूखसी, ज्यों दाहै दाभा रूख ।
४. नि० ३-१, सा० ११-१, सावे० ३४-३८, सासी० १३-८६ की द्वितीय पंक्ति : सांस सांस संभारतां, इक दिन मिलसी आय । यह साखी गुण० ८-८ पर दादू के नाम से मिलती है, वहाँ इसका पाठ है—

दादू सांस सांस संभारतां, इक दिन मिलिहै आय ।

सुमिरन पैड़ी सहज का, सतगुर दिया दिखाय ॥

दादू की छाप मिलने से नि० सा० सावे० सासी० में इस साखी की स्थिति और भी चित्य हो जाती है।

(घ) पुनरावृत्ति-साम्य—नि० सा० सावे० सासी० के संकीर्ण-संबंध का एक अकाट्य प्रमाण यह है कि एक ही साखी इन चारों प्रतियों में अनावश्यक रूप से दो-दो बार आयी है। नि० ४५-४ में जो साखी आती है उसका पाठ है—

कबीर हरि चरणों चल्या, माया मोह थैं टूटि ।

गगन मंडल आसन किया, काल गया सिर कूटि ॥

नि० ५१-११ पर यही साखी थोड़े हेर-फेर से पुनः मिल जाती है जहाँ इसका पाठ है—

मन मनसा समता मुई, अहं गई सब छूटि ।

गगन मंडल मैं घर किया, काल गया सिर कूटि ॥

दोनों में पाठ-भेद नाम मात्र का है । दोनों की दूसरी पंक्तियों का पाठ लग-भग एक ही है । नि० के समान सा० सावे० में भी यह साखी दो-दो बार मिलती है : एक बार सा० १६-४ तथा सावे० ४५-४ पर, जिसका पाठ है—

कबीर तौ हरि (सावे० पियु) पै चला, माया मोह सों तोरि ।

गगन मंडल आसन किया, काल रहा मुख मोरि ॥

और फिर सा० ८८-२३ तथा सावे० ४६-१६ पर, जिसका पाठ है—

मन की मनसा मिट गई, अहं गई सब छूटि ।

गगन मंडल में घर किया, काल रहा सिर कूटि ॥

सा० तथा सावे० की पहली साखी में कुछ परिवर्तन 'तोरि' और 'मोरि' के द्वारा प्रकट होता है, किन्तु भाव, और अधिकांश शब्दावली भी, वस्तुतः वही है जो दूसरी साखी में है ।

सासी० में तो यह साखी तीन स्थलों पर आती है : एक बार २६-११८ पर, जिसका पाठ है—

यह मन हरि चरने चला, माया मोह से छूटि ।

बेहद माहीं घर किया, काल रहा सिर कूटि ॥

दूसरी बार ४२-१६ पर, जिसका पाठ है—

मन की मनसा मिटि गई, अहं गई सब छूटि ।

गगन मंडल में घर किया, काल रहा सिर कूटि ॥

और तीसरी बार ४३-४ पर, जिसका पाठ है—

कबीर तौ पिउ पै चला, माया मोह से तोरि ।

गगन मंडल आसन किया, काल रहा मुख मोरि ॥

दा० प्रतियों में भी यह साखी मिलती है, किन्तु उसका पाठ देखने से ज्ञात होता है कि उसमें नि० सा० सावे० सासी० की भाँति पुनरावृत्ति नहीं है । नि० ४५-४ दा० में ४७-३ के रूप में मिलती है और पाठ भी शब्दशः वही है, किन्तु दूसरी साखी, जो दा० में ४१-७ पर मिलती है, इस प्रकार है—

मन सारखा समिता मुई, अहं गई सब छूटि ।

जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूति ॥

उक्त साखी के पाठ पर ध्यान देने से ज्ञात होगा कि इसकी प्रथम पंक्ति का पाठ अन्य प्रतियों के पाठ से मिलता है, किन्तु द्वितीय पंक्ति का पाठ नितान्त भिन्न

हो गया है। यदि दूसरी पंक्ति का पाठ दा० में भी अन्य प्रतियों के समान ही मिलता तो दा० नि० सा० सावे० सासी० अर्थात् पाँचों में संकीर्ण-संबंध मानना पड़ता, किन्तु दा० में पुनरावृत्ति के अभाव से यह संबंध केवल नि० सा० सावे० सासी० तक ही सीमित रह जाता है।

नि० सा० सावे० सासी० में संकीर्ण-सम्बन्ध सिद्ध हो जाने पर नि० सा०, नि० सावे०, नि० सासी०, सा० सावे०, सा० सासी०, सावे० सासी०, नि० सावे० सा०, नि० सा० सासी० और सा० सावे० सासी० का सम्बन्ध भी सिद्ध होता है, क्योंकि उक्त सभी समुच्चय नि० सा० सावे० सासी० के अन्तर्गत समाहित हैं।

दा० नि० सा० सासी० का संकीर्ण-संबंध

(क) पुनरावृत्ति-साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. दा० ३-४, नि० ४०-२१, सा० १६-४, सावे० १४-६६, सासी० १६-४
सा० ७-३ तथा गुण० २०-५३ का पाठ है—

वासुरि सुख नां रैन सुख, नां सुख सुपिनंतर मांहि ।

कबीर बिलुड़े रांस सों, नां सुख धूप न छांहि ॥

दा० ३१-४, नि० ३३-४, सा० ६३-१२ तथा सासी० ३७-६ पर यह साखी पुनः इस प्रकार मिलती है—

वासुरि गम नहि रैन गम, नहि सुपिनंतर गंस ।

कबीर तहां बिलंबिया, जहां छांह नहि घंस ॥

२. दा० ५१-४ (ग्रन्था० पाद-टिप्पणी में), नि० ५६-३, सा० ६७-७
तथा सासी० ८२-६ का पाठ है—

दाध कलापी सब दुखी, सुखी न देखा कोइ ।

को पुत्रा को बांधवा, को धन हीनां होइ ॥

गुल० दा० ५१-३, नि० ५६-४, सा० ६७-८, सासी० ८२-७—

दाध कलापी सब दुखी, सुखी न देखा कोइ ।

जहं जहं भक्ति कबीर की, तहं टुक धीरज होइ ॥

दोनों की प्रथम पंक्तियों का पाठ शब्दशः वही है।

(ख) राजस्थानी, पंजाबी-प्रभाव का साम्य—निम्नलिखित उदाहरण विशेष रूप से विचारणीय हैं—

१. दा० ३५-२, नि० ३७-३, सा० ६६-१, सासी० २०-५ : भांडा घड़ि

जिन मुख दिया, सोई परण जोग ।

२. दार दा३ २२-७, नि० १६-६, सा० ३०-७, सासी० १७-४२ : ऊजड़ खेड़े ठीकरी, घड़ि घड़ि गए कुम्हार ।

३. दा० १६-२७, नि० १६-२६, सा० ३६-१७, सासी० ६८-१६ : सब आसन आसा तरां, निरवरत कै कोई नाहि ।

४. दार दा३ १२-२४, नि० १६-२४, सा० ३०-११, सासी० १७-६ : कबीर केवल हाड़ का, माटी तरां बंधान ।

प्राचीन पश्चिमी-हिन्दी तथा अपभ्रंश में भी 'तरां' का प्रयोग यत्र-तत्र मिलता है, किन्तु यह विभक्ति कबीर की रचनाओं में अपवाद रूप से ही मिलती है, इस-लिए संभावना इसके विषय में पश्चिमी-प्रभाव की ही यथेष्ट है ।

(ग) प्रक्षेप-साम्य—दार दा३ ५३-६, नि० ५०-६६, सा० १०४-८, सासी० ५-५७ तथा गुण० १७२-४० का पाठ है—

बेकामीं कौं सर जिन बाहै । सांटी खोवै मूल गंवावै ॥

दास कबीर ताहि को बाहै । रार समय सनसुख सरसावै ॥

कबीर की साखियों से इसका छंद भिन्न होने के कारण इसकी प्रामाणिकता में सन्देह होता है, और इसीलिए वह समुच्चय भी संदिग्ध माना गया है जिसमें यह चौपदी मिलती है ।

दा० नि० सा० सासी० तथा दा३ नि० सा० सासी० गुण० में परस्पर संकीर्ण-संबंध सिद्ध हो जाने पर दा० नि०, दा० सा०, दा० सासी०, नि० सा०, नि० सासी०, सा० सासी०, दा० नि० सा०, दा० नि० सासी० तथा नि० सा० सासी० के संकीर्ण-संबंध भी सिद्ध हो जाते हैं ।

बी० साबे० का संकीर्ण-संबंध

(क) नागरी-लिपि-जनित विकृति-साम्य—इस प्रसंग में निम्नलिखित उदाहरण विचारणीय हैं—

१. दा० गौड़ी ८६, नि० गौड़ी ६२ तथा गु० गउड़ी ३६ की प्रथम दो पंक्तियों का पाठ है : हरि ठग जग कौं ठगौरी लाई । हरि के वियोग कैसे जिअउं मेरी माई ॥ दा० नि० गु० का उक्त पद बी० तथा शबे० में भी मिलता है । बी० शब्द ३६ तथा शबे० (२) मिश्रित १४ में 'माई' के स्थान पर भाई पाठ मिलता है । 'भाई' (=आता) अपने सामान्य अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है । 'माई' शब्द का प्रयोग मध्यकालीन साहित्य में मुख्यतया दो अर्थों में होता था : एक 'माता' अर्थ में और दूसरा सखी अर्थ में । कबीर की रचनाओं में भी इसके प्रयोग दोनों अर्थों में मिलते हैं । पहले अर्थ के लिए दृष्टव्य : दा० नि०

गोड़ी २१-३, ४ तथा गु० गूजरी २-३, ४—

ठाढ़ी रोवै कबीर की साइ । ऐ लरिका कैसे जीवै खुदाइ ॥

कहै कबीर सुनो री साई । पूरणहारा त्रिभुवनराई ॥

अथवा बी० शब्द १००-१ : देखौ लोगा हरि कै सगाई ।

साइ धरै पुत्र धिया संग जाई ।

तथा बी० कहरा ११-५ : साई मोर मुवल पिता के संगे,

सर रत्नि मुवल संघाती ने ।

किन्तु प्रेम, विरह आदि का प्रसंग रहने पर यह शब्द सखी के प्रेमपूर्ण सम्बन्धन का द्योतक होता है । तुल० दा० गोड़ी ११७-१ तथा नि० गोड़ी १२०-१—

हरि सोरा पीव साई हरि सोरा पीव । हरि बिनु रहि न सकै मोरा जीव ॥

(अर्थात् हे सखी ! हरि मेरा पति है, उसके बिना मैं जी नहीं सकती ।)

बी० तथा शब्दों में भी अन्यत्र कई स्थलों पर यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । तुलना के लिए दे० बी० ६-१—

साई मोर मनुसा अति सुजान । धंधा कुटि कुटि करै बिहान ॥

(अर्थात् हे सखी, मेरा खसम बड़ा ही भला है... इत्यादि ।)

इस अर्थ में 'साई' शब्द का प्रयोग मध्यकालीन साहित्य में बहुत व्यापक रूप से मिलता है । कबीर के अतिरिक्त अन्य कवियों की रचनाओं में भी इसका प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है ; उदाहरणतया—

साई री घन घन अंतर दामिनि ।—सूर

अथवा : साई भुम्हे कब मिलिहै मेरी जियरा कौं प्रान अधार ।—मीरां

जिस पंक्ति के पाठान्तरों पर विचार किया जा रहा है उसमें हरि के वियोग का प्रसंग रहने से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि आगे हरि से वियुक्त जीवात्मा की उक्ति है । कबीर के साहित्य में परमात्मा-जीवात्मा के सम्बन्ध का वर्णन सर्वत्र पति-पत्नी के रूप में मिलता है । जीवात्मा के स्थान पर जहाँ कहीं कबीर ने स्वयं अपना आरोप किया है वहाँ कबीर की उक्तियाँ भी उसी रूप में आयी हैं । इस प्रकार उक्त प्रसंग में 'साई' पाठ ही वस्तुतः सार्थक और प्रयोगसम्मत सिद्ध होता है, 'भाई' नहीं; क्योंकि कोई स्त्री अपने स्वाभाविक प्रेमोद्गार अपनी सखी को ही सुनाती है, भाई को नहीं । इस परिवर्तन का मूल कारण यह ज्ञात होता है कि जिस प्रति से यह पाठ अन्य प्रतियों में आया उसके प्रतिलिपिकार को 'साई' शब्द का ठीक अर्थ न ज्ञात रहने के कारण इस स्थल पर भ्रम हो गया । इसी भ्रम में लिपि-भ्रम भी सम्मिलित हो गया । नागरी और उससे उत्पन्न लिपियों

में 'म' तथा 'भ' में इतना सूक्ष्म अन्तर रहता है कि भ्रम हो जाना कठिन नहीं । उर्दू में इस प्रकार के भ्रम की सम्भावना नहीं है ।

(ख) पुनरुक्ति-साम्य—अनावश्यक पुनरुक्ति-साम्य के निम्नलिखित स्थल विचारणीय हैं—

१. बी० शब्द ६८ की प्रथम दो पंक्तियों का पाठ है : जो चरखा जरि जाइ बड़इया ना मरै । कातों सूत हजार चरखुला जिन जरै ॥ और आगे उसी की नवीं तथा दसवीं पंक्तियों का पाठ है : देव लोक मरि जाहिगे एक न मरै बढ़ाय ॥ यह मन रंजन कारनै चरखा दियो दृढ़ाय ॥ दोनों के गहरे काले अक्षरों वाले अंश विचारणीय हैं । पहले एक बार 'बड़इया ना मरै' आ चुकने पर पुनः 'एक न मरै बढ़ाय' आना सन्देह उत्पन्न करता है । कुछ हेर-फेर से शवे० में भी इसी प्रकार की पुनरुक्ति मिल जाती है । शवे० में यह पद पहले भाग के मिश्रित पदों के अन्तर्गत चौथी संख्या पर मिलता है । उसकी पहली पंक्ति का पाठ है—

चरखे का सिरजनहार बड़इया एक न मरै ।

फिर आगे छठी तथा सातवीं पंक्तियों का पाठ है—

सास मरै ननदी मरै रे लहुरा देवर मरि जाइ ।

एक बड़इया ना मरै चरखे का सिरजनहार ॥

शवे० में यह पुनरुक्ति और भी अधिक स्पष्ट हो गयी है । दा० गौड़ी १३, नि० गौड़ी १४ तथा सा० ७०-५ की आरम्भिक पंक्तियों का पाठ है—

चरखा जिनि जरै ।

कातोंगो हजरी का सूत नगद के भइया की सौं ॥

शेष दोनों पंक्तियों का पाठ इस प्रकार है—

सब जगही मरि जाइयो एक बड़इया जिनि मरै ।

सब रांएनि कौ साथ चरखा को धरै ॥

(ग) प्रक्षेप-साम्य—बी० और शवे० के संकीर्ण-सम्बन्ध का तीसरा और सब से अधिक पुष्ट प्रमाण यह है कि दोनों में एक पद ऐसा मिलता है जिसकी विभिन्न पंक्तियाँ अन्य प्रतियों के विभिन्न पदों से ली हुई ज्ञात होती हैं । बी० शब्द ६६ तथा शवे० (२) चितावनी १३ में इसका पाठ निम्नलिखित रूप में मिलता है—

अब कहं चले हौ अकेले मीता । उठहु न करहु घरहु की चिंता ॥

खीर खांड घृत पिंड संवारा । सो तन लै बाहरि करि डारा ॥

जिहिं सिर रचि रचि बांधौ पागा । सो सिर रतन बिडारै कागा ॥

हाड़ जरै जस जंगल लकरी । केस जरै जस त्रिन की कूरी ॥

आवत संघ न जात संघाती । काह भए दर बांधे हाथी ॥

माया को रस लेन न पाया । अंतर जस बिलार होइ धाया ॥

कहाँहि कबीर नर अजहुं न जागा । जम का मुग्धर मंभ सिर लागा ॥

इसकी दूसरी पंक्ति दा० नि० गौड़ी ६३ में दूसरी पंक्ति के रूप में मिलती है जहाँ इसका पाठ है—

खीर खांड घृत पिंड संवारा । प्रान गए लै बाहर जारा ॥

तीसरी पंक्ति दा० सोरठि ३४, नि० सोरठि ३३ (ग्रंथा० २६५) में चौथी पंक्ति के रूप में और गु० गउड़ी ३५ में प्रथम पंक्ति के रूप में मिलती है । दा० नि० में इसका पाठ है—

जा सिररचि रचि बांधत पागा । ता सिर चंच संवारत कागा ॥

और गु० का पाठ है—

जिहि सिर रचि रचि बांधत पाग । सो सिर चुंच सवारहि काग ॥

चौथी पंक्ति गु० गौंड २ में तृतीय पंक्ति के रूप में इस प्रकार आती है—

हाड जले जैसे लकरी का तूला । केस जले जैसे घास का पूला ॥

पाँचवीं पंक्ति दा० गौड़ी ६८ तथा नि० गौड़ी १०२ (ग्रंथा० पद ६८) की चौथी पंक्ति के रूप में और गु० भैरउ २ की तीसरी पंक्ति के रूप में मिलती है । दा० नि० गु० में इस पंक्ति का पाठ है—

आवत संघ न जात संघाती । कहा भएउ दर बांधे हाथी ॥

छठी पंक्ति दा० गौड़ी १०१ तथा नि० गौड़ी १०५ (ग्रंथा० पद १०१) की प्रथम पंक्ति है, जहाँ इसका पाठ है—

माया का रस खान न पावा । तब लगि जम बिलवा ह्वै धावा ॥

इसी प्रकार उक्त पद की अंतिम पंक्ति दा० भैरुं २६ तथा गु० गौंड २ की अंतिम पंक्तियों के रूप में मिल जाती है जहाँ इनका पाठ है—

कहै कबीर तबहीं नर जागै । जम का डंड मूड़ महिं लागै ॥

किसी एक पद की विभिन्न पंक्तियों को अकारण अनेक पदों में बिखेर देने की अपेक्षा अनेक स्थलों से कुछ पंक्तियाँ लेकर एक नये पद की सृष्टि कर देना अधिक स्वाभाविक लगता है ।

इस पद के संबंध में एक विशेष बात और भी मिलती है । इसकी पाँचवीं पंक्ति शवे० की ७वीं पंक्ति से भी तुलनीय है जिसका पाठ है—

आवत संघ न जात संघाती । कहा भए दल बांधे हाथी ॥

शवे० के अतिरिक्त यह पद दा० में गौड़ी ६८ पर, नि० में गौड़ी १०२ पर गु० में भैरव २ पर और शक० में सायरी १८ पर भी मिलता है। ऊपर उद्धृत पंक्ति सभी प्रतियों में समान रूप से इसी पद में मिलती है। विभिन्न परम्परा वाली अनेक प्रतियों के समान साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि उक्त पंक्ति की स्थिति वस्तुतः इसी पद में होनी चाहिए। अतः शवे० के पहले पद में यह अनावश्यक रूप से आ गयी है। यह ध्यान देने की बात है कि शवे० के जिस पद में यह अनावश्यक पुनरावृत्ति मिलती है वह इसके अतिरिक्त केवल बी० में ही मिलता है, अन्य प्रतियों में नहीं। इससे यह स्पष्ट संकेत मिल जाता है कि शवे० में यह पंक्ति एक बार अपने उपयुक्त स्थल पर आकर पुनः दूसरी बार वीजक के प्रभाव से ही आयी है।

शक० तथा शवे० का संकीर्ण-संबंध

(क) पुनरुक्ति-साम्य—इस प्रकार के साम्य का निम्नलिखित उदाहरण शक० तथा शवे० में समान रूप से मिलता है—

१. दा० गौड़ी १२६, नि० गौड़ी १३२ तथा स० ६१-१ की सातवीं पंक्ति का पाठ है : यह संसार सकल है मैला राम कहैं ते सूचा। शक० गौड़ी ८, शवे० (१) चिता० उप० २२ में उक्त पंक्ति का पाठ है : यह संसार सकल जग मैला नाम गहे तेहि सूचा। एक बार 'संसार' का उल्लेख हो जाने पर पुनः उसका समानार्थी 'जग' मिलने का कोई विशेष प्रयोजन नहीं समझ पड़ता। इससे ज्ञात होता है कि शक० और शवे० में यह पुनरुक्ति केवल भ्रम के कारण हुई है। इसके विपरीत दा० नि० स० का पाठ जो ऊपर उद्धृत किया गया है, इस वृत्ति से वंचित रहने के कारण श्रेष्ठ और प्रामाणिक ज्ञात होता है।

(ख) पुनरावृत्ति-साम्य—एक पद की दो पंक्तियाँ ऐसी हैं जो शक० और शवे० में दो-दो बार मिलती हैं। तुलनीय शक० मंगल ३ की अंतिम दो पंक्तियाँ—

मंगल कहहि कबीर संत जन गावहीं। गुरु संगति सतलोक सो हंस सिधावहीं॥
तथा उसी के १५वें मंगल की अंतिम दो पंक्तियाँ—

यह मंगल सतलोक के हंस गावहीं। कहहि कबीर सतभाव तो लोक सिधावहीं॥

शक० के समान शवे० में भी यह पंक्तियाँ लगभग उसी रूप में दो बार मिलती हैं। तुल० शवे० (४) मंगल ४ की अंतिम पंक्तियाँ—

यह मंगल सतलोक के हंस गावहीं। कहहि कबीर ससुभाय बहुरि न आवहीं॥
तथा उसी के मंगल १२ की अंतिम दो पंक्तियाँ—

यह मंगल सतलोक के हंसा गावहीं । कहहिं कबीर समुझाय बहुरि नहि आवहीं ॥

इन पंक्तियों की अधिकांश शब्दावली वही है जो शक० की है । इतना ही नहीं, दोनों की अंतिम पंक्ति दोनों में एक-एक स्थल पर और भी मिल जाती है । उदाहरण के लिए तुल० शक० मंगल १ की अंतिम पंक्ति—

परम आनंद जब होय तो गुरुहिं मनाइए । कहहिं कबीर सतभाव तो लोक सिधाइए ॥

इसकी दूसरी पंक्ति शब्दशः वही है जो उसके तीसरे और १५वें मंगल में मिलती है । शक० का पहला मंगल शवे० (४) में पाँचवें पद के रूप में मिल जाता है जिसकी अंतिम पंक्तियों का पाठ है—

परमानंदित होय तो गुरुहिं मनाइए । कहहिं कबीर सतभाव तो लोक सिधाइए ॥

इस प्रकार दो पंक्तियाँ दोनों में दो-दो स्थलों पर और एक पंक्ति दोनों में तीन-तीन स्थलों पर मिलती है ।

(ग) प्रक्षेप-साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. शवे० (१) विरह शब्द १ की अंतिम पंक्तियों का पाठ है—

दास कबीर यह करत बिनती महा पुरुष अब मानिए ।

दया कीजै दरस दीजै अपना करि मोहिं जानिए ॥

किन्तु शक० में इनका पाठ है—

धर्मदास जन करत बिनती साहब कबीर अब मानिए ।

नैन भरि भरि दरस दीजै निमिष नेह न तोड़िए ॥

जिससे यह सन्देह होता है कि उक्त पद कदाचित् कबीर का नहीं, प्रत्युत उनके तथा-कथित शिष्य धर्मदास का है । उनकी छाप के कुछ अन्य पद भी मिलते हैं ।

२. इसी प्रकार का एक अन्य छंद भी 'पंचायतन मंगल' के नाम से दोनों में समान रूप से मिलता है । शक० में यह छंद पृ० ८१ से आरम्भ होता है और शवे० में भाग ४ के पृ० ७ से । छंद लंबा है अतः उसका केवल प्रथम मंगल उद्धृत किया जा रहा है, जो इस प्रकार है—

सत्य सुकृत सत नाम को आदि मनाइए । सुर्त जोग संतायन निसि दिन ध्याइए ॥
सतगुर चरन मनाय परम पद पाइए । कै दंडवत प्रनाम सुमंगल गाइए ॥

मंगल गावहिं कामिनी जहां शशि (शवे० सत्य) शीतल स्थान है ।

परम पावन ठांव अविचल जहं शशि सूरज की खान है ॥

मानिकपुर एक गांव अविचल जहं न रैन बिहानि है ।

कहे कबीर सो हंस पहुंचे जो सत्य नामहिं जानिहै ॥

पंचायतन मंगल के पाँच छंद मिलते हैं और उक्त छंद की

अंतिम पंक्ति सभी के अंत में आती है। इसमें सन्देह के लिए पर्याप्त सामग्री वर्तमान है। पद की पहली पंक्ति में 'सत्य सुकृत' तथा 'सुर्त जोग संतायन' का ध्यान करने का उपदेश दिया गया है। जैसा एक बार पहले संकेत किया जा चुका है, कबीरपंथी साहित्य में 'सत्य सुकृत', 'आदि अदली', 'पुरुष मुनीन्द्र', 'सुरति जोग संतायन' आदि विभिन्न शब्द कबीर के ही बोधक हैं। इससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि यह रचना पंथ के किसी परिवर्ती संत की है जिसमें उसने अपने आदि गुरु कबीर के प्रति यह विनयपूर्ण मंगल पद गाया है। शक० तथा शवे० में इस प्रकार के संदिग्ध पद समान रूप से मिलते हैं, अतः दोनों में संकीर्ण-संबंध मानना पड़ेगा।

३. शक० तथा शवे० में समान रूप से कई पद ऐसे भी मिलते हैं, जिनमें चौका-आरती, पान-परवाना, नरियर-मोरन आदि अनेक परवर्ती साम्प्रदायिक कृत्यों का विधान है। उदाहरण के लिए तुल० शक० मंगल ६ और शवे० (४) मंगल ४—

मंगल अगम अनूप संत जन गावहीं।

उपजत प्रेम बिलास तौ आनंद बधावहीं ॥

प्रथमहिं मंदिर भराय के चंदन तिपावहीं।

बहु बिधि आरति साजि के (शवे० मोतियन थार भराय के) कलश धरावहीं।

सत गुर बिप्र बुलाय के लग्न सुधावहीं।

सजन कुटुंब परिवार सुमंगल गावहीं।

हीरा जीव (शवे० हंस) बैठाय के शब्द सुनावहीं ॥

तेहि कुल उपजे दास परम पद पावहीं।

मिट्यो करम को अंक अगम गम तब भयो ॥

पायौ सुरत सनेह (शवे० सुरति सोहं) तो संसय सब गयो ॥

भक्ति हेतु चित लाय कै आरति उर धरे।

तजि पाखंड अभिमान तो दुरमति परिहरे ॥

[शवे० में अतिरिक्त : तन मन धन और प्राण निछावरि कीजिए।

त्रिगुन फंद निरवारि पानि निज लीजिए ॥]

मंगल कहहिं कबीर भाग तो पावहीं।

सतगुर के परसंग हंस चलि जावहीं ॥

(शवे० कहहिं कबीर समुझाय बहुरि नहिं आवहीं।)

यह मंगल सतलोक के हंसा गावहीं ॥

इसी प्रकार शक० मंगल १ तथा शवे० (४) मंगल ५ में भी यही क्रिया-कलाप और अधिक विस्तार से गिनाये गये हैं। इस पद का पाठ है—

पूरणमासी आदि सुमंगल गाइए। सतगुर के पद परस परम पद पाइए ॥
 प्रथमहिं मंदिर भराइ के चंदन लिपाइए। नूतन वस्तर आनि के चंदवा तनाइए ॥
 पल्लव सहित सो कलशा तहां धराइए। पांच जोति के दीप सो तहां बराइए ॥
 गज श्रोतियन के चौक सो तहां पुराइए। तापर नरियर धोती मिठान्न चढ़ाइए ॥
 तब सतगुर के हेतु तो आसन बिछाइए। गुर के चरण पखार के आसन बिठाइए ॥
 केरा और कपूर सो बहु बिधि लाइए। अष्ट सुगंध सुपारी सो पान चढ़ाइए ॥
 जल दल शील सुधारि के जोति बराइए। ताल मृदंग बजाइ के मंगल गाइए ॥
 साधु संत मिलि आइ के आरति उतारिए। आरति करि पुनि नरियर तहवां मुराइए ॥
 पुरुष को भोग लगाइ सखा मिलि पाइए। जुग जुग छुवा बुझाय तो पाय अघाइए ॥
 परम आनंद जो होइ तो गुरुहिं मनाइए। कहीहिं कबीर सतभाव तो लोक सिधाइए ॥

इस पद में कुछ बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। प्रथम उद्धृत पद की तीसरी पंक्ति दूसरे में भी तीसरी पंक्ति के रूप में मिलती है। इसके अतिरिक्त इस पद में 'पूरनमासी' शब्द भी विचारणीय है। यह पूर्णिमा कौन सी है—इसका उत्तर कबीरपंथी साहित्य में मिल जाता है। कबीरपंथियों में कबीर के जन्म-दिवस के सम्बन्ध में एक चौपदी प्रचलित है—

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए ॥

जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए ॥

इस प्रसिद्धि के अनुसार यह सिद्ध होता है कि कबीर का जन्म सं० १४५५ वि० में ज्येष्ठ पूर्णिमा चंद्रवार को हुआ था। कबीरपंथियों में इस तिथि के संबंध में दो मत नहीं हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस पूर्णिमा को शुभ दिन मान कर यह मंगल गाया गया है वह वास्तव में कबीर का जन्म-दिवस है। बरसायत का उत्सव अब भी कबीरपंथियों में बड़े धूमधाम से मनाया जाता है जिसमें इस प्रकार के मंगल मुख्य रूप से गाये जाते हैं। प्रश्न यह उठता है कि कबीर की प्रामाणिक रचनाओं में क्या इन मंगल-गीतों को सम्मिलित किया जा सकता है? क्या कबीर या कबीर की कोटि का कोई अन्य महापुरुष अपने जन्म-दिवस के गीत बना कर गायेगा? कबीर की अन्य रचनाओं को दृष्टि में रखते हुए यह प्रवृत्ति नितांत अस्वाभाविक लगती है।

एक अन्य उदाहरण भी कम रोचक नहीं है। शक० में पृ० ६० पर नारियल मोरने का एक शब्द (=पद) दिया हुआ है जो शवे० (४) में 'राग गारी' के

अन्तर्गत तीसरे शब्द के रूप में मिलता है। पद इस प्रकार है—

बनजारिन बिनती करै सुन साजना । नरियर लीन्हों हाथ संत सुन साजना ॥

बिना बीज को वृक्ष है सुन साजना । विनु धरती अंकूर संत सुन साजना ॥

ताको मूल पताल है सुन० नरियर फल शुभ जान (शवे० नरियर सीस अकास)।

शक० में अतिरिक्त : नरियल लायो भेंट हो सुन० हंस उधारण काज संत० ।

शवे० में अतिरिक्त : बिना शब्द जिनि मोरहू सुन० जीव एकोतर हानि संत० ।

गुर के शब्द ले मोरहू सुन० हंस उतारो पार (शवे० फूटे जम को कपार) ।

सखियां पांच सहेलरी सुन० नौ नारी विस्तार संत० ।

कहैं कबीर बघेल सों सुन० रानी इंदुमती (शवे० इंद्रमती) सरदार संत सुन० ॥

कबीरपंथ में 'चौका आरती' को बड़ा महत्व दिया जाता है। कदाचित् इससे बढ़ कर अन्य कोई धार्मिक कृत्य उक्त पंथ में नहीं है। इसी के अन्तर्गत एक कृत्य नारियल मोड़ने (=तोड़ने) का भी होता है, और उक्त मंगल उसी अवसर पर गाये जाने के लिए है। कबीरपंथ में इस मंगल का बड़ा आध्यात्मिक महत्व है और कबीरपंथियों के समक्ष इसकी गणना कबीर की अप्रामाणिक रचनाओं में करना बड़े साहस का कार्य है। उनके अनुसार बनजारिन जीवात्मा का प्रतीक है और नारियल ब्रह्मांड का। जिस प्रकार नारियल तोड़ कर गरी अलग कर लेते हैं उसी प्रकार जड़-चेतन की ग्रंथि तोड़ कर जीव को विषय-वासनाओं से विमुख करना चाहिए, जिससे वह पाँच तत्वों, पच्चीस प्रकृतियों तथा नौ नाड़ियों के बंधन से—अर्थात् पार्थिव शरीर के बंधन से—मुक्त हो जाय।^१

किन्तु यहाँ आध्यात्मिक गंभीरता का प्रश्न नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या कबीर ने अपने जीवन-काल में कोई संप्रदाय चलाकर चौका-आरती आदि के लिए नियम-विधान की सृष्टि की थी और उक्त अवसरों पर गाये जाने के लिए कुछ विशिष्ट पदों की रचना की थी या नहीं? समस्या विचारणीय है। अंतिम पंक्ति में बघेल और रानी इंद्रमती के उल्लेख से सन्देह के लिए और भी अधिक सामग्री मिल जाती है। यह इन्द्रमती कौन है, इसका ठीक पता नहीं लगता। वर्तमान रीवाँ-नरेश के भूतपूर्व पर्सनल असिस्टेंट श्री रमाशंकर मिश्र से पूछने पर ज्ञात हुआ है कि रीवाँ की राज-वंशावली में इन्द्रमती नाम की कोई महारानी नहीं मिलती। रीवाँ गजेटियर में कबीर के समकालीन नरेशों का निम्नलिखित विव-

१. दे० महन्त वंशुदास जी रचित तथा स्वसम्बेद कार्यालय, सीयाबाग द्वारा प्रकाशित 'चौका विधान', पृ० २४-२९।

रण मिलता है—

वंश-क्रम	समय	नरेश	रानियाँ
१५	अज्ञात	नरहरि देव	महारानी रतनकुँवरि
१६	सन १४७० से १५ ई०	भीरदेव या भैरदेव	रणदेवी, दूसरी का नाम अज्ञात
१७	१४६५-१५०० ई०	सालिवाहन	कनककुँवरि
१८	१५००-१५४० ई०	वीरसिंह देव	सूर्यकुँवरि
१९	१५४०-१५५५ ई०	वीरभान	रतनकुँवरि
२०	१५५५-१५६२ ई०	रामचन्द्र या रामसिंह	अज्ञात

ज्ञात होता है कि इन्द्रमती वघेल-वंश के किसी अन्य छोटे-मोटे राजा की स्त्री थी, जिसका उल्लेख उक्त पद में हुआ है। कवीरपंथी साहित्य में गिरिनार के चंद्रविजय नामक राजा की स्त्री इन्द्रमती को जानी (कवीरदास का द्वापर-युगीन अवतार) द्वारा पान-परवाना देने का वर्णन मिलता है (उदाहरण के लिए दे० अनुराग-सागर, सीयाबाग, पृ० ५२-६२)। संभव है, यहाँ भी उसी इन्द्रमती की ओर संकेत हो। जो भी हो, इसे कवीर की रचना निरापद रूप से नहीं माना जा सकता।

नि० शक० का संकीर्ण-सम्बन्ध

(क) प्रक्षेप-साम्य—दो पद ऐसे हैं जो शक० में धर्मदास के नाम से मिलते हैं और वे नि० में भी ज्यों के त्यों मिल जाते हैं—अंतर केवल इतना है कि नि० में रचयिता के रूप में कवीर की छाप मिलती है। इनमें से प्रथम पद शक० में प्रभाती राग के अन्तर्गत ग्यारहवीं संख्या पर मिलता है। वहाँ उसकी अन्तिम पंक्ति का पाठ है—

धर्मदास की बीनती अबिगत सुनि लीजै ।

दरसन दीजे पट खोलि कै अब बिलंब न कोजै ॥

नि० में उक्त पद बिलावल १० में मिलता है, जहाँ इन पंक्तियों का पाठ है—

दास कवीर की बीनती अबिगत सुनि लीजै ।

आड़ा परदा खोलि के मोहिं दरसन दीजै ॥

इसी प्रकार नि० तथा शक० दोनों में आरती के छठे पद की अंतिम पंक्ति

भी विचारणीय है। शक० में उसका पाठ है : अविगत रूप अधर परकास ।
 आरति गावै कबीर धर्मदास ॥ नि० में उत्तरार्द्ध का पाठ है : आरती गावै कबीरा
 दास । शक० में धर्मदास का नाम मिलने से यह सन्देह उत्पन्न होता है कि उक्त
 पदों के मूल रचयिता कदाचित् वही थे और कबीर के शिष्य होने के नाते किसी
 प्रति में कबीर की बाणी के साथ ही साथ उनके भी कुछ पद संकलित कर लिए
 गये। आगे चल कर शक० में उन्हें ज्यों का त्यों ही रक्खा गया और नि० में
 उनके नाम के स्थान पर कबीर की छाप लगा दी गयी।

इसी प्रकार का एक अन्य पद भी है जिसमें संदेह के लिए सामग्री वर्तमान
 है। नि० आसावरी १२६ तथा शक० 'कबीर-गोरख सम्वाद' ३ का पाठ है—

संतो मैं अविगत सूं चलि आया ।

मेरा सरम किन्हू नहि पाया ॥ टेक ॥

नां मेरे जनम न गरभ वसेरा बालक ह्वै दिखलाया ।

कासी पुरी जंगल (शक० जलज) बिच डेरा तहैं जुलाहै पाया ।

[शक० में अतिरिक्त : मातु पिता मेरे कछु नाहीं ना मेरे गृहिणी दासी ।

जुलहा के सुत आन कहाए जगत करत है हांसी ॥]

ना मेरे धरनि गगन पुनि नांहीं ऐसा अगम अपारा ।

जोति स्वरूप निरंजन देवा (शक० सत्य स्वरूप नाम साहब का) सो है

नाम हमारा ॥

[शक० में अतिरिक्त :

अधर दीप जहां गगन गुफा में तहां निज वस्तु हमारा ।

जोत स्वरूपी अलख निरंजन सो जपै नाम हमारा ॥]

ना मेरे रक्त हाड़ नहिं चामा एकै नाम उपासी ।

अपरंपार पार परसोत्तम (शक० तारण तिरण अभै पद दाता)

कहै कबीर अबिनासी ॥

इसमें कबीर द्वारा 'अपने मुखतें आपनि करनी' का वर्णन है। कबीर के जन्म
 आदि से संबद्ध तथ्य वही हैं जो कबीरपंथ में अथवा साधारण जनता में प्रच-
 लित हैं, किन्तु जिस शैली में यहाँ उनका उल्लेख हुआ है उससे यही ध्वनि निक-
 लती है कि यह कबीरपंथ के किसी परवर्ती संत की रचना है जिसमें उसने
 अपने सम्प्रदाय के मूल प्रेरक की जीवन-संबंधी घटनाओं को अतिरंजित रूप
 देकर अंत में उसी की छाप लगा दी है जिससे उसकी सत्यता में किसी को
 किंचिन्मात्र भी सन्देह न रह जाय और उस विवाद का सदैव के लिए अन्त हो

जाय जो उनके जन्म को लेकर उठाया जाता है। शक० में 'जलज' का पाठ-परिवर्तन उस सांप्रदायिक विश्वास की ओर संकेत करता है जिसके अनुसार कबीर का आधिर्भाव लहरतारा में कमल के पुष्प पर ज्योतिपुंज के रूप में हुआ था। पद की अंतिम पंक्ति में कबीर के लिए जो विशेषण आये हैं, वे भी कम विचारणीय नहीं हैं। कबीर के समान कोई महात्मा अपने लिए इस प्रकार के विशेषणों का प्रयोग करे—यह बात बड़ी अस्वाभाविक लगती है।

संदिग्ध संकीर्ण-संबंध के समुच्चय

ऊपर जिन-जिन प्रतियों में पारस्परिक संकीर्ण-संबंध सिद्ध किया गया है केवल उन समुच्चयों में आने वाले छंद निश्चित रूप से प्रामाणिक नहीं माने जा सकते। जिन दो या दो से अधिक प्रतियों में किसी भी प्रकार का विकृति-साम्य नहीं मिल सका है केवल उन्हीं-उन्हीं में मिलने वाले पाठ तथा पद पूर्ण रूप से प्रामाणिक माने जा सकते हैं। इस प्रकार के स्वीकृत समुच्चयों का विस्तृत विवरण अगले अध्याय में मिलेगा। इन समुच्चयों में आयी हुई विभिन्न प्रतियों में ऐसे कोई विकृति-साम्य नहीं मिलते जिनसे उनमें किसी भी प्रकार का संकीर्ण-संबंध स्थापित किया जा सके। दा० नि० बी०, दा० नि० गु०, दा० नि० गु० स०, दा० नि० स० शवे० तथा नि० शवे० में एकाध उल्लेखनीय विकृति-साम्य मिल जाते हैं, किन्तु उनके साक्ष्य इतने निर्बल पड़ते हैं कि उन्हें प्रायः नगण्य कहा जा सकता है। फिर भी यहाँ उनका निर्देश किया जाना आवश्यक है।

(क) दा० नि० बी०—एक पंक्ति ऐसी है जो दा० नि० बी० तीनों के पदों में दो-दो बार मिलती है। दा० आसावरी ४० तथा नि० आसावरी ३५ की तीसरी तथा चौथी पंक्तियों का पाठ है—

जो जारे तौ होय भसम तन रहत किरिमि ह्वै जाई ।

काँचै कुंभ उदक भरि शख्यो तिनको कौन बड़ाई ॥

उक्त पद बी० में भी ७३वें शब्द के रूप में मिलता है, जिसमें उक्त दोनों पंक्तियों का पाठ है—

जारे देह भसम ह्वै जाई गाड़े माटी खाई ।

काँचै कुंभ उदक ज्यों भरिया तन की यही बड़ाई ॥

उक्त दोनों पंक्तियों का पाठ दा० नि० केदारौ १२-३, ४ तथा बी० शब्द ७२-५, ६ से तुलनीय है जो इस प्रकार हैं—

जो जारे तौ होय भसम तन (बी० भसम धुरि) रहत किरम जल खाई ।

सूकर स्वान काग को भखिन (बी० भोजन) तामैं कहा भलाई । दोनो

पदों की दूसरी पंक्ति में कुछ भिन्नता है किन्तु पहली पंक्ति का पाठ दोनों में प्रायः एक ही है, अन्तर केवल शाब्दिक है। पाठ-निर्धारण में पुनरावृत्तियों की समस्या विचारणीय हो जाती है। प्रस्तुत उदाहरण में एक बात और भी विचारणीय है। उक्त दोनों पद गु० में भी क्रमशः सोरठि और केदारा राग के अन्तर्गत मिलते हैं, किन्तु दूसरे में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं मिलतीं, केवल एक स्थान पर अर्थात् सोरठि २ में मिलती हैं जहाँ इनका पाठ है—

जब जरीअै तब होइ भसम तन रहै किरम दल खाई ।

काची गागरि नीरु परतु है इअा तन की इहै बड़ई ॥

गु० में इन पंक्तियों के एक ही स्थल पर मिलने से यह सन्देह होता है कि दा० नि० बी० में वे कदाचित् भ्रम से ही दो बार आ गयी हैं। किन्तु यदि इसे भूल स्वीकार कर लिया जाय तो भी जितना अंश तीनों में समान रूप से मिलता है उसकी तुलना में केवल एक प्रमाण दोनों में संकीर्ण-संबंध स्थापित करने के लिए अपर्याप्त माना जायगा। यह भी सम्भव है कि मूल प्रति में उक्त पंक्ति उसी प्रकार से दो स्थलों पर रही हो जैसा कि वह दा० नि० बी० में मिलती है, क्योंकि दोनों पदों में शरीर की नस्वरता का प्रसंग है और उक्त पंक्ति, जो उस प्रसंग के अनुकूल एक स्वाभाविक उक्ति है, दोनों स्थलों पर आ सकती है।

(ख) दा० नि० गु०—दा० नि० गु० में एक शब्द ऐसा मिलता है जो भाषा की दृष्टि से कबीर की रचना के लिए सन्देहास्पद है। दा० १२-४६, नि० १६-५४ तथा गु० १६६ की दूसरी पंक्ति का पाठ है: तब कुल किसका लाजिसी जब लै धरहि मसान। 'लाजिसी' शब्द राजस्थानी का है और कबीर की मूल रचना में यह शब्द खटकने वाला है। जैसा कि प्रतियों के विस्तृत विवरण से ज्ञात होता है, दा० नि० गु० तीनों पश्चिमी प्रदेशों में वहाँ के ही निवासियों द्वारा लिपिबद्ध हुई थीं। प्रतियों का आदर्श सामने रहते हुए भी देश-काल के प्रभाव से वंचित रहना किसी भी प्रतिलिपिकार के लिए असम्भव हो जाता है। तीनों प्रतियों में 'लाजिसी' शब्द की स्थिति इसी प्रभाव के परिणाम-स्वरूप मानी जा सकती है और यह भी असम्भव नहीं कि तीनों में यह शब्द पृथक्-पृथक् सूत्रों से आया हो।

दा० नि० गु० में कबीर की वाणी का बहुत बड़ा अंश समान रूप से मिलता है। उस परिमाण की तुलना में केवल एक विकृति-साम्य उनमें संकीर्ण-संबंध स्थापित करने के लिए अत्यन्त अपर्याप्त है।

इस प्रसंग में एक अन्य बात का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है। दा० बिलावल ४, नि० बिलावल ३, गु० गौंड ४ में, जिसकी प्रारंभिक पंक्ति है: 'आहि

मेरे ठाकुर तुम्हारा जोर, काजी बकिबो हंस्ती तोर ॥' (दे० प्रस्तुत पुस्तक का पद २३), उस घटना की ओर संकेत है जब कि कबीर को हाथी द्वारा कुचल-वाये जाने का आदेश दिया गया था, किन्तु उन्हें किसी प्रकार की क्षति नहीं हुई थी । इसी प्रकार दा० भैरू० १७, नि० भैरू० १६ तथा गु० भैरू० १८ (दे० प्रस्तुत पुस्तक का पद २४) में उन्हें गंगा में डुबाये जाने के असफल प्रयत्न का वर्णन मिलता है । योग तथा अध्यात्म की असाधारण शक्तियों तथा सिद्धियों के प्रति पूर्ण आस्था न रखने वालों के समक्ष कबीर के जीवन की उक्त दोनों घटनाओं की सत्यता प्रतिपादित करना कठिनाइयों से खाली नहीं और इसीलिए उपर्युक्त तीनों प्रतियों के समुच्चय की प्रामाणिकता भी संदेह के परे नहीं मानी जा सकती जिसमें कि इन घटनाओं का उल्लेख मिलता है । किन्तु कबीर जैसे महात्मा के लिए इस प्रकार के कार्यव्यापार नितांत असंभव भी नहीं माने जा सकते; क्योंकि यदि उनमें इतना आत्मबल न होता तो तत्कालीन निरंकुश यावनी शासन में रहते हुए भी ऐसा देशव्यापी प्रभाव उत्पन्न करना सहज काम नहीं था । फिर इन पदों का आध्यात्मिक अर्थ भी है और संतों की वाणी में उसी अर्थ की अपेक्षा अधिक करनी चाहिए ।

(ग) दा० नि० गु० स०—दा० नि० गु० स० में भी दो सन्देहास्पद उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनके आधार पर चारों के संकीर्ण-संबंध की कल्पना की जा सकती है । एक सन्देहास्पद शब्द 'अहरखि' है जो दा० गौड़ी १०५, नि० विहंगडौ १४, गु० आसा १६ और स० ८८-१ में मिलता है । इस शब्द की विकृति के संबंध में विस्तार-पूर्वक विचार अन्यत्र किया गया है । यहाँ केवल यह संकेत कर देना है कि यदि यह शब्द निश्चित रूप से विकृत मान लिया जाय तो इसका प्रभाव उक्त सभी प्रतियों के संकीर्ण-संबंध पर भी पड़ेगा जिनमें यह शब्द मिलता है ।

दूसरा उदाहरण एक पंक्ति की पुनरावृत्ति का है । दा० गौड़ी ६२, नि० गौड़ी ६५, गु० विभास० ४ तथा स० ७६-१ की अंतिम पंक्ति का पाठ है : कहै कबीर भिसति छिटकाई (गु० भिसति ते चूका) दोजग ही मन मांनं । यही पंक्ति एक अन्य पद के अन्त में भी आती है, जो दा० आसावरी ४५, नि० आसावरी ४८, गु० आसा १७ और स० ७६-२ के रूप में मिलता है । वहाँ भी इसका पाठ है : कहै कबीर भिसति छिटकाई दोजग ही मन मांनं । किन्तु कबीर-वाणी के इतने बड़े परिमाण में किसी एक पंक्ति का प्रसंगानुसार दो बार मिल जाना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता ।

(घ) दा० नि० स० शबे०—इसी प्रकार की एक पुनरावृत्ति दा० नि० स०

शबे० में भी मिलती है। दा० नि० गौड़ी २, शबे० (२) प्रेम ६ तथा स० ३०-१ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : बहुत दिनन तें प्रीतम आए। भाग बड़े घर बैठें पाए ॥ यह पंक्ति थोड़े हेर-फेर के साथ एक अन्य पद में भी मिलती है; तुल० दा० नि० गौड़ी ३, शबे० (२) प्रेम १६ तथा स० ३०-२ : बहुत दिनन के बिछुरे पाए। भाग बड़े घर बैठें आए ॥ किन्तु किसी भी कवि की रचना में प्रसंगानुकूल इस प्रकार की साधारण पुनरावृत्तियाँ हो सकती हैं। उन्हें दोनों स्थलों पर प्रामाणिक रूप से स्वीकार कर लेने में कोई कठिनाई नहीं उपस्थित होती और न किसी प्रकार की आस्वाभाविकता ही खटकती है। इस उदाहरण में तो दोनों पद अधिकांश प्रतियों में आसपास ही मिलते हैं। इतने निकट मिलने वाले पदों में कोई प्रतिलिपिकार भूल से कोई पंक्ति दोबार नहीं लिख सकता, अतः यह पंक्तियाँ मूल प्रति में भी ज्यों की त्यों दो स्थलों पर आयी हुई ज्ञात होती हैं।

(ङ) नि० शबे०—इस समुच्चय में मिलने वाले दो-एक पद संदिग्ध ज्ञात होते हैं; किंतु उक्त दोनों प्रतियों में कोई विकृति-साम्य न मिलने के कारण उनमें समान रूप से मिलने वाले किसी पद का बहिष्कार नहीं किया जा सकता।

अगले पृष्ठ पर पाठ-परम्परा का एक कोष्ठक दिया जा रहा है जिससे संकीर्ण-सम्बन्ध का पूर्वापर क्रम अधिक स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है।

संकेत-विवृति

गु०=श्री गुरु ग्रंथ साहिब

गुण०=गुणगंजनामा (जगन्नाथदास-संकलित)

दा०=दादूपंथी प्रति (पंचवाणी-परंपरा)

नि०=निरंजनी संप्रदाय की प्रति

बी०=बीजक (सामान्य परंपरा का)

बीफ०=बीजक (फतुहा परंपरा का)

बीभ०=बीजक (भगताही शाखा या भगवान साहब का)

शक०=शब्दावली (कबीरचौरा से प्रकाशित)

शबे०=शब्दावली (बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित)

स०=सर्वगी (रज्जवदास-संकलित)

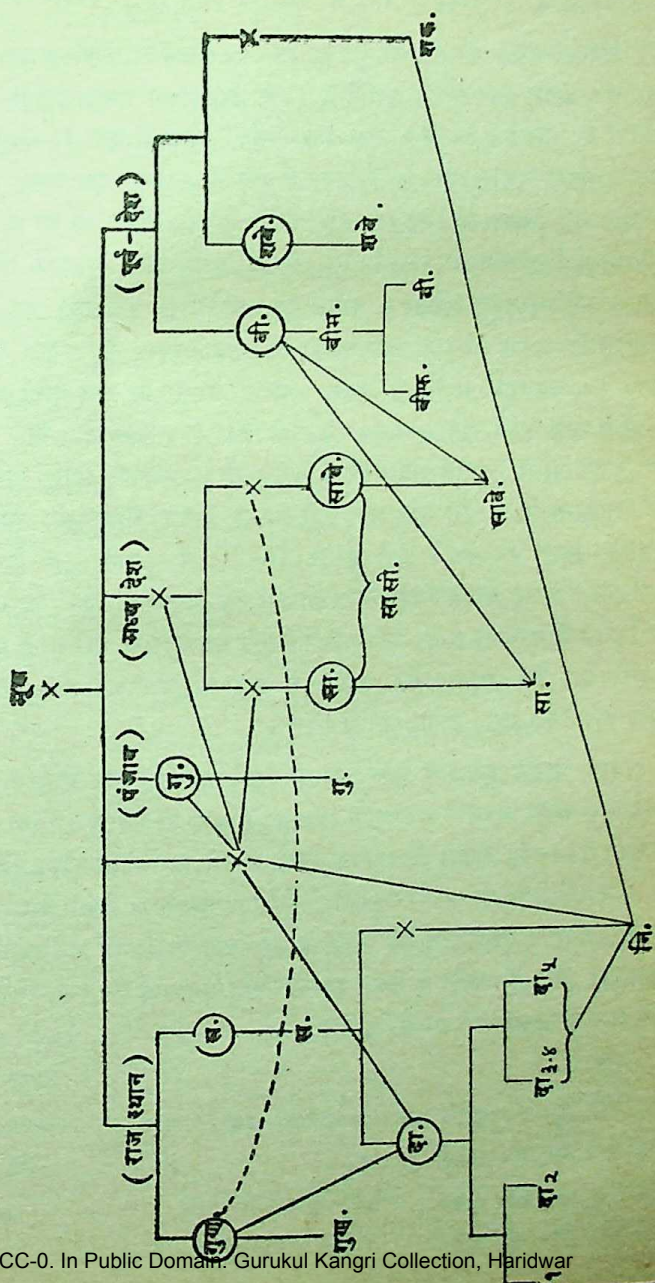
सा०=साखी-प्रति (१११ अंगों की)

सावे०=साखी-ग्रन्थ (बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित)

सासी०=साखी-ग्रन्थ (सीयाबाग, बड़ौदा से प्रकाशित)

○ =अनुमानित पूर्व-स्थिति।

कबीर-वाणी की पाठ-परंपरा



§५ : पाठ-निर्णय और प्रस्तुत संकलन

संकीर्ण-संबंध की समस्या हल हो जाने पर पाठ-निर्णय की समस्या का बहुत कुछ अंश अपने आप सुलभ जाता है। जो पद, साखी अथवा रमैनी केवल उन प्रतियों में मिलती हैं जिनमें परस्पर संकीर्ण-संबंध सिद्ध हो चुका है, उनको (उनकी प्रामाणिकता नितान्त रूप से निश्चित न होने के कारण) मूल वाणी के रूप में स्वीकृत नहीं किया जा सकता; और इसके विपरीत जिन दो या दो से अधिक प्रतियों में विकृति-साम्य नहीं मिलता उनमें मिलने वाली रचनाओं को अप्रामाणिक नहीं माना जा सकता। प्रामाणिक-अप्रामाणिक रचनाओं का यह विभेद भलीभाँति समझ लेने की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ केवल दा० गु० अथवा नि० गु० समुच्चयों में मिलने वाली रचनाएँ प्रामाणिक नहीं मानी जा सकतीं, क्योंकि पहले उनमें संकीर्ण-संबंध सिद्ध हो चुका है। किन्तु दा० नि० गु० तीनों में मिलने वाली रचनाएँ अप्रामाणिक नहीं मानी जा सकतीं, क्योंकि इस समुच्चय में विकृति-साम्य के ऐसे उदाहरण नहीं मिलते जिनके आधार पर संकीर्ण-संबंध स्थापित किया जा सके। इसी प्रकार दा० नि० सा० सासी० में मिलने वाली साखियाँ निश्चित रूप से प्रामाणिक कोटि में नहीं आ सकतीं, किन्तु जो उक्त प्रतियों में मिलने के साथ ही सावे० में भी मिलती हैं वे अप्रामाणिक नहीं मानी जा सकतीं, क्योंकि दा० नि० सा० सावे० सासी० के समुच्चय में विकृति-साम्य नहीं मिलते और दा० नि० सा० सासी० में मिलते हैं।

अतः प्रस्तुत पुस्तक में केवल उन-उन पदों, रमैनियों और साखियों को संकलित कर उनके विषय में आवश्यक सम्पादन-सामग्री दी गयी है जो ऐसे समुच्चयों में आते हैं जिनकी प्रतियों में परस्पर किसी प्रकार का विकृति-साम्य नहीं मिलता है, और इसीलिए जो परस्पर संकीर्ण-संबंध से सम्बद्ध न होकर केवल मूल पाठ के द्वारा परस्पर संबद्ध हैं। ऐसे विभिन्न समुच्चयों में, जिनमें संकीर्ण-संबंध नहीं प्रमाणित होता है, कबीर के केवल निम्नलिखित छंद आते हैं। स्थल-निर्देश सम्पादित पाठ के अनुसार किया जा रहा है।

पद—

दा० नि० गु० स० शवे० शक० से पद सं० ५८	== १ पद
दा० नि० गु० स० शवे० १००	== १ "
दा० नि० गु० बी० शवे० ४६, ६२	== २ "
दा० नि० बी० स० शवे० १०८, १०९, ११०, ११६	== ४ "

दा० नि० गु० वी० शक० १६८ = १ पद
 दा० नि० गु० शवे० शक० ६६ = १ "
 दा० नि० गु० स० शक० ३७ = १ "
 दा० नि० गु० वी० स० २७, ४८, ६०, ६१, १११, १७७, १७८ = ७ "

दा० नि० गु० स० ८, २६, ५०, ५१, ५२, ६३, ६४, ६५,
 १०१, १०६, १०७, ११२, से ११८ तक,
 १५३, १५४, १५६, १६६, १६७, १६८,
 १७१ से १७४ तक, १८३, १८४, १८५ = ३१ "

दा० नि० वी० स० २८, ५३, ६६, १०२, ११६ से १२३ तक,
 १६०, १६१, १६६, १७०, १८०, १८१, १८२ = १६ "

दा० नि० गु० वी० ६७, ६८, ६९, ७०, १२५, १६६, २००, = ७ "
 और चौतीसी रमेनी

दा० नि० गु० शक० २६, १२६, १२७ = ३ "

दा० नि० गु० शवे० ५, ७१, ७२, ७३ = ४ "

दा० नि० स० शवे० ६, ७, ३६, १२४ = ४ "

दा० नि० शवे० शक० ७५, ६१ = २ "

दा० नि० स० शक० ६८ = १ "

दा० नि० गु० ६ से १२ तक, २० से २५ तक, ३०, ३१, ३२,
 ३८ से ४३ तक, ५४ से ५७ तक, ७८ से ८८
 तक, १२८ से १३५ तक, १५५, १५६, १६२,
 १८६ से १६२ तक = ५४ "

दा० नि० शवे० १३, ७६, १४२, १७५, १६३, १६४ = ६ "

दा० नि० शक० १४१ = १ "

दा० नि० वी० ४७, ८६, १०३, १३६ से १४० तक = ८ "

तथा २० रमेनिया

नि० शवे० शक० १४, ३३, ५६, १०४, १४३, १६४ = ६ "

नि० गु० शवे० ७४ = १ "

नि० वी० शवे० ६०, १५२, १५७, १६३ = ४ "

नि० स० शक० १७६ = १ "

नि० शवे० १ से ४ तक, १५ से १८ तक, ३४, ३५, ६२ से

६६ तक, १०५, १४४ से १४६ तक, १५८,

	१६५, १६५	= २५ "
दा० बी०	१५१	= १ "
गु० बी०	४६, ६७, १५०, १६७	= ४ "
गु० शवे०	१६, ४४, ४५	= ३ "

कुल दो सौ पद, एक चौतीसी रमैनी तथा बीस रमैनियां

साखी—

दा० नि० सा० सावे० सासी० गु० बी० स० गुण० से ४-१ = १ साखी

दा० नि० सा० सावे० सासी० स० बी० गुण० १५-१, १५-२, ३१-१ = ३ "

दा० नि० सा० सावे० सासी० स० गु० गुण० ४-२, १५-३, १५-४, २५-१,
३०-१, ३२-१, ३२-२, ३३-१ = ८ "

दा० नि० सा० सावे० सासी० गु० बी० गुण० १८-१ = १ "

दा० नि० सा० सावे० स० गु० बी० गुण० २-१, १५-५, २१-१ = ३ "

दा० नि० सा० सावे० सासी० स० गु० बी० १६-१ = १ "

दा० नि० सा० सावे० सासी० स० गुण० १-२, १-३, २-१५, १६,

४-१६, २०, ७-१, २, ६-१,

१२-१, १४-६, ७, १५-४०,

४१, १६-१६, १७, २२-६

२५-४, ५, ६, ७, २६-६, ७,

३०-२, ३, ४, ५, ६, ७, ८,

९, ११, ३१-४, ५, ३३-३,

४, ५ = ३७ "

दा० नि० सा० सावे० सासी० बी० गुण० १-६, १५-६ = २ "

दा० नि० सा० सावे० सासी० गु० गुण० २-३, ३-६, ६-२, १४-१, २,

१५-२०, २१, १६-११, १६-

१२, १८-२, २४-१, २६-१ = १२ "

दा० नि० सावे० सासी० स० गु० गुण० १४-५ = १ "

दा० सा० सावे० सासी० गु० बी० गुण० १६-१ = १ "

दा० नि० सा० सावे० गु० बी० गुण० १-५ = १ "

दा० नि० सा० सावे० सासी० स० गु० ३-१, ४-३, ५-१, ११-१,

	१५-१८, १६-६, २१-२, ३,	
	२५-२, २६-१, २	= ११ साखी
दा० नि० सा० सावे० सासी० गु० वी०	१५-७, ३१-३	= २ ,,
दा० नि० सा० सावे० सासी० स० वी०	५-२, २२-१	= २ ,,
दा० नि० सा० सावे० सासी० स०	१-१, २-१०, १७, ४-२१,	
	५-३, ५-५ से १० तक,	
	६-४, ६-५, ६, ११-७, ८,	
	१२-२, ३, १४-८, १५-३६,	
	३७, ३८, १६-२५, १६-११	
	से १४ तक, २१-१७ से २१	
	तक, २२-७, ८, २३-२,	
	२५-१०, ११, २६-८, ६,	
	२६-५, ३०-१२ से, १५ तक,	
	३१-६, ७, ८, ३२-३, ३३-	
	७, ८, ३४-१	= ५१ ,,
दा० नि० सा० सावे० सासी० गुण०	१-१३ से १८ तक, २-१८	
	से २६ तक, ३-७ से १२	
	तक, ४-२२ से ३० तक,	
	६-५ से ६ तक, ७-३, ४,	
	६-७ से १४ तक, १०-८ से	
	१० तक, ११-६, १०,	
	१४-१० से २३ तक, १५-४२	
	से ४४ तक, १५-४६ से ५०	
	तक, १६-१८ से २३ तक,	
	१७-४, ५, ६, १८-५,	
	२२-१२, २३-३, २४-११	
	से १४ तक, २५-१२, १३,	
	२६-११, २६-६, ७, ३०-	
	१८, ३१-१२ से १५ तक,	
	३२-४ से ७ तक	= १०४ ,,
दा० नि० सा० सावे० सासी० गु०	१-६, १०, ११, २-४, ५,	

३-२, ३, ४-६, १०, ६-१,
 ७-१०, ८-१, २, ३, ६-३, ४,
 १०-७, १५-२२ से २७ तक,
 १६-२ से ४ तक, १६-७ से
 ६ तक, २१-४, २५-३,
 २६-८ = ३२ साखी

दा० नि० सा० सावे० सासी० बी० २-८, ६, २-११, ४-१६,
 १०-३, ४, ५, १५-६, १०,
 ११, १६-७, २१-१४, १६,
 २४-७, २५-८, ६, २८-६,
 २९-३ = १८ "

दा० नि० सा० सासी० स० गु० ४-४, ६, १५-१६,
 १५-२८, १८-३,
 २८-१ = ६ "

दा० नि० सावे० सासी० गु० बी० १५-८ = १ "

दा० नि० सा० सावे० गु० बी० १६-२, २०-४, २४-२ = ३ "

दा० नि० सा० सावे० बी० गुण० २-२, २-७, ४-१५,
 १०-१, २ = ५ ,

दा० सा० सावे० सासी० बी० गुण० १-७ = १ "

दा० सा० सावे० सासी० गु० गुण० २४-३ = १ "

दा० नि० सा० सासी० स० गुण० ४-४०, ४१, ४२, १२-४,
 ५, १५-७७, ७८,
 १६-२७, २०-६, २१-३३,
 २२-६, १०, ११,
 २४-१७, २६-१०, २७-४,
 २८-७, २९-२१, ३०-१६,
 २०, ३१-२५, ३२-१५, १६ = २३ ,

दा० नि० सा० सासी० बी० गुण० २-१३, ११-३, = २ "

दा० नि० सा० सासी० गु० गुण० ४-५, ७, ८, १५-३०, ३१,
 १६-१३, २०-१२१-७, २३-१, ३३-२ = १० ,

भूमिका : पाठ-निर्णय और प्रस्तुत संकलन

२१६

नि० सा० सावे० सासी० गु० गुण०	२४-४	= १	„
सा० सावे० सासी० गु० बी० गुण०	२४-६	= १	„
दा० नि० सा० सावे० स० बी०	२२-२	= १	„
दा० नि० सा० गु० बी० गुण०	१७-१	= १	„
दा० नि० सा० सावे० सासी०	१-१६ से ३४ तक, २-३०		
	से ४५ तक, ३-१३ से २३		
	तक, ४-३१ से ३६ तक, ५-४,		
	१२, १३, ७-५ से ६ तक,		
	८-४ से ११ तक, ९-१५		
	से ३८ तक, १०-१२ से १५ तक,		
	११-११ से १५ तक,		
	१४-२६ से ३५ तक, १४-३७,		
	३८, ३९, १५-४५, १५-५१		
	से ७५ तक १६-२६,		
	१६-३४ से ३८ तक, १७-७,		
	८, १८-६, ७, ८, १९-१५,		
	१६, २१-२२ से ३२ तक,		
	२२-१४, २४-१५, १६,		
	२५-१४ से १८ तक, २८-२		
	से ५ तक, २९-१० से २०		
	तक, ३०-२१ से २४ तक,		
	३१-१६ से २४ तक, ३२-१०		
	से १४ तक, ३३-६, ३४-		
	२, ३	= २०८	„
दा० नि० सा० सासी० स०	५-११, ८-१३, १४, १२-६, ७,		
	१३-३, १४-६, १५-३६, १६-१७,		
	२०-८, २१-३४, २२-१३,		
	२३-७, ८, २५-१६, २०,		
	२१, २६-२२, ३०-१६, १७,		
	३१-६, १०, ११	= २३	„
दा० नि० सा० सासी० गुण०	२-४६ से ५४ तक, ३-२५,		

	२६, ६-१०, ११, १२,	
	८-१५, ६-३६, ४०, १००	
	१६, ११-१६, १२-८,	
	१४-४०, ४१, १६-२८ से	
	३३ तक, १७-२, १८-६,	
	२०-१०, २५-२२, २६-२३,	
	३१-२६, २७, ३२-८, ६	= ३७ "
दा० नि० सावे० सासी० गुण०	१५-७६	= १ "
दा० नि० सा० सासी० बी०	१६-८, २५-६	= २ "
दा० नि० सा० सासी० गु०	१-१२, २-६, ३-५, ४-११,	
	१२, १४-३, ४, १६-१०,	
	२१-५, ६, ८	= ११ "
दा० नि० सावे० सासी० गु०	१५-२६	= १ "
दा० नि० सा० सावे० बी०	१-८, २-१२, १३-१,	
	१५-१२, १३, २१-१५,	
	२६-५, ३१-२	= ८ "
दा० नि० सा० सासी० स० बी०	१३-२	= १ "
दा० नि० सासी० गुण० बी०	२०-५	= १ "
दा० नि० स० गु० गुण०	२०-३	= १ "
दा० नि० सा० गु० बी०	१६-३	= १ "
दा० नि० सावे० सासी० स०	१५-८६	= १ "
दा० सा० सावे० सासी० गु०	३-४, ११-२, १७-३,	
	१६-१०	= ४ "
दा० सा० सावे० सासी० गुण०	१-४, ६-२, १०-११, १४-२४,	
	२५, १५-७६, ८०, १६-२४,	
	२३-४, ५, ६, २७-१, २,	
	३०-१०, ३१-२८	= १५ "
नि० सा० सावे० सासी० स०	२५-२३,	= १ "
नि० सा० सावे० सासी० गुण०	८-१२, २४-१८, २८-८	= ३ "
नि० सा० सावे० सासी० बी०	२-१४, ३-२४, १५-१६,	
	२६-४	= ४ "

नि० सा० सावे० सासी० गु०	४-१३, १६-१४, १५, १८-४, १६-५, २४-५, २६-३, २६-२	= ८ "
सा० सावे० सासी० गु० गुण०	२१-६	= १ "
सा० सावे० सासी० बी० गुण०	१५-१४	= १ "
सा० सावे० सासी० स० गुण०	२०-११	= १ "
सा० सासी० गु० बी०	२१-११	= १ "
दा० नि० सावे० सासी०	१४-३६, ३०-२५	= २ "
दा० नि० सासी० स०	२-५५, २५-२४	= २ "
दा० नि० सा० बी०	१६-४, १८-११	= २ "
दा० नि० सावे० गु०	१५-३०	= १ "
दा० नि० गु० गुण०	६-३	= १ "
दा० सा० सासी० गुण०	८-१६, १७, १२-६, १५-८१ से ८४ तक, १६-३६, ४०, २२-१५, २५-१५, १६, २७-५	= १३ ;,
दा० सा० सासी० गु०	४-१४, २१-१२	= २ ;
नि० सा० सावे० बी०	४-१७, १८-१०	= २ "
नि० सा० सासी० बी०	११-४	= १ "
नि० सा० सासी० स०	१५-८५	= १ "
सा० सावे० सासी० गु०	१५-३२, ३३, ३४, २१-१०, २४-६, २७-३	= ६ ;,
सा० सावे० सासी० गुण०	४-४३, २६-६	= २ "
सा० सावे० सासी० बी०	४-१८, १०-६, ११-५, ६, १५-१५, १५-८७, ८८, ८६, १६-५, ६, १८-१२, २०-६, २२-३, ४, २४-८, २६-४, ३३-६	= १७ ;,
सा० सावे० बी० गुण०	२४-१०	= १ "
दा० नि० बी०	१६-६, २०-७	= २ "
नि० सा० बी०	२०-२, २२-५	= २ "

साबे० सासी० गु०	१५-३५	= १ ,,
साबे० सासी० बी०	६-४१, १२-१०	= २ ,,
साबे० गुण० बी०	१५-१७	= १ ,,
गु० स०	२१-१३	= १ ,

कुल ७४४ साखियाँ ।

सिद्धांत

यहाँ तक तो स्वीकृत अंशों के संकलन की बात हुई, किन्तु इन अंशों में भी सभी प्रतियाँ एक ही पाठ नहीं प्रस्तुत करतीं। विभिन्न पाठान्तरों में कौन किस कारण से स्वीकृत अथवा अस्वीकृत किया जाय, इस समस्या पर भलीभाँति विचार किये बिना प्रामाणिक सम्पादन का कार्य अधूरा रह जायगा। यहाँ उन सिद्धांतों का उल्लेख किया जा रहा है जिनसे पाठ-निर्णय में सहायता मिलती है—

१. जो पाठ सभी प्रतियों में मिलता है, वह निर्विवाद रूप से मूल प्रति का है—इसके लिए उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं।

२. यदि कोई पाठ किसी एक प्रति में, अथवा दो या दो से अधिक ऐसी प्रतियों में मिलता है जिनमें संकीर्ण-संबंध सिद्ध हो चुका है और उसके स्थान पर अन्य कोई पाठ किन्हीं ऐसी प्रतियों द्वारा प्रस्तुत होता हो जिनमें परस्पर संकीर्ण-संबंध नहीं स्थापित हुआ है तो दूसरा पाठ ही सिद्धांततः स्वीकृत किया गया है। और उसकी तुलना में पहला पाठ अस्वीकृत किया गया है। इस सिद्धांत का प्रयोग इतने व्यापक रूप में हुआ है कि प्रस्तुत संकलन के किसी भी एक पद या साखी को लेकर उसमें इसका निर्वाह देखा जा सकता है। वास्तव में संकीर्ण-संबंध का सिद्धांत ही वह प्रमुख आधार है जिस पर प्रामाणिक पाठ के संकलन या संपादन का सारा ढाँचा खड़ा होता है। किन्तु इस संबंध-जाल को समझने के लिए कुछ बातों का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है। यदि किसी स्वीकृत समुच्चय में एक ही परिवार की विभिन्न प्रतियों में भिन्न-भिन्न पाठ मिलते हों तो उनमें से वही पाठ स्वीकृत किया गया है जो उक्त परिवार के अतिरिक्त अन्य-स्वतंत्र प्रतियों में भी मिलता है। उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित स्थल देखे जा सकते हैं—

(क) प्रस्तुत संकलन का ८७ संख्यक पद दा० नि० गु० प्रतियों में मिलता है। नि० तथा गु० प्रतियों में उसकी चौथी पंक्ति का पाठ है : द्रुक दम

करारी जी करहु हाजिर हजूर खुदाइ । दा१ दा२ में 'हाजिरां सूर खुदाइ' पाठ मिलता है, किन्तु दा३ में उसके स्थान पर वही पाठ मिलता है जो नि० गु० में है, अतः दा१ दा२ का पाठ यहाँ अस्वीकृत कर दिया गया ।

- (ख) पद १११-५ का निर्धारित पाठ है : अढ़ाई में जे पाव घटै तो करकच करै घरहाई । इसके उत्तरार्द्ध के पाठान्तर निम्नलिखित हैं : दा१ नि० : करकच करै बभाई; दा३ करकच करै बतहाई; स० : करकच करै बजहाई; गु० : भगरु करै घरहाई; बीभ० : करकच करै घरहाई; बी० : करकच करै घरहाई । 'करकच' पाठ दा३, बी० और स० के समान साक्ष्य के कारण और 'घरहाई' पाठ गु० तथा बीभ० के साक्ष्य के कारण स्वीकृत हुए हैं ।
- (ग) साखी १२-५ की प्रथम पंक्ति का निर्धारित पाठ है : हरि रस पीया जानिए, जे उतरै नहीं खुमारि । दा१ तथा गुण० में द्वितीय चरण का पाठ है : जे कवहं न जाइ खुमार । किन्तु दा३ नि० सा० सासी० स० में उक्त पाठ मिलने के कारण वही स्वीकृत हुआ है ।
- (घ) साखी १५-५३ की प्रथम पंक्ति का निर्धारित पाठ है : ढोल दमांमां गड़गड़ी, सहनाई संगि भेरि । दा१, दा२, सा० तथा सासी० में 'गड़गड़ी' के स्थान पर 'दुरवरी' पाठ मिलता है, किन्तु दा३, नि० और सावे० में 'गड़गड़ी' मिलने के कारण वही स्वीकृत हुआ है, क्योंकि दा० नि० सावे० में विकृति-साम्य न मिलने के कारण तीनों का समुच्चय मान्य सिद्ध हुआ है ।
- (ङ०) १६-१०-२ का निर्धारित पाठ है : पांसापरा करीम का, तार्तै पहिरा जाल । उक्त साखी दा० नि० बी० में मिलती है । दा२ तथा नि० में 'करीम' के स्थान पर 'करम' पाठ मिलता है, किन्तु दा३ तथा बी० में 'करीम' मिल जाने से वही पाठ स्वीकृत हुआ है (दा० बी० का समान साक्ष्य मान्य होने के कारण) ।
- (च) २४-८-१ : काजर केरी ओवरी, काजर ही का कोट । यह साखी सा० सावे० सासी० बी० में मिलती है । सा० सावे० सासी० में 'ओवरी' पाठ है और बी० में 'कोठरी'; किन्तु बीभ० में 'ओवरी' मिल जाने से वही मूल पाठ के रूप में स्वीकृत हुआ है ।
- (छ) साखी २८-४-१ : पांनों केरा पूतरा, राखा पवन संचारि । दा१ दा२

में 'संवारि' पाठ मिलता है, किन्तु दा३ दा४ नि० सा० सावे० सासी० में 'संचारि' पाठ मिल जाने से वही मान्य ठहरता है। यदि दा० की किसी प्रति में 'संचारि' पाठ न मिलता तो केवल नि० सा० सावे० सासी० में मिलने से वह सहसा स्वीकार्य न होता, क्योंकि नि० सा० सावे० सासी० का समुच्चय स्वतंत्र रूप से प्रामाणिक नहीं सिद्ध हुआ है।

अपवाद—स्वीकृत समुच्चयों के साक्ष्य सर्वत्र ही मान्य सिद्ध हुए हैं और सिद्धांततः ऐसा होना भी चाहिए; किन्तु एक अपवाद मिलता है। पद १११ की तृतीय पंक्ति का निर्धारित पाठ है : सात सूत दे गंड बहत्तर पाठ लागु अधिकाई। 'दे' पाठ दा० नि० स० प्रतियों में मिलता है। पाठान्तर 'नौ' है जो गु० तथा बी० द्वारा प्रस्तुत होने के कारण सिद्धांततः मान्य होना चाहिए, किन्तु 'नौ' शब्द उसी पद की द्वितीय पंक्ति में एक बार आ चुका है और वहाँ कोई पाठान्तर न मिलने के कारण प्रामाणिक रूप से स्वीकार भी किया गया है। अतः अगली पंक्ति में पुनः 'नौ' आ जाने से पुनरुक्ति-दोष उपस्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त 'नौ' पाठ स्वीकार करने से अर्थ की संगति भी ठीक नहीं बैठती। 'दे' पाठ से इस प्रकार की कोई कठिनाई नहीं रह जाती।

३. जब दो स्वीकृत समुच्चय दो विभिन्न पाठ प्रस्तुत करें और ऊपर से देखने में दोनों का महत्व समान ज्ञात हो, तब समस्या कठिन हो जाती है। ऐसे अवसर पर उन प्रतियों का पाठ अधिक प्रामाणिक माना गया है जिनमें पारस्परिक सम्बन्ध की सम्भावना दूसरे वर्ग की अपेक्षा कम मिलती है। उदाहरण के लिए दा० नि० गु० द्वारा एक पाठ प्रस्तुत हो और उसकी तुलना में दूसरा पाठ दा० शवे० या स० शवे० द्वारा प्रस्तुत किया गया हो तो दा० शवे० अथवा स० शवे० के पाठ अधिक प्रामाणिक माने गये हैं, क्योंकि दा० नि० गु० प्रतियाँ लेखन-परंपरा की दृष्टि से एक दूसरे के कुछ अधिक निकट की सिद्ध हुई हैं और उनमें पारस्परिक आदान-प्रदान की सम्भावना भी मानी जा सकती है; किन्तु स० शवे० अथवा दा० शवे० इतने दूर की सिद्ध होती हैं कि उनमें किसी भी प्रकार के आदान-प्रदान की तनिक भी सम्भावना नहीं रह जाती। अतः उनके साक्ष्य विशेष रूप से मान्य सिद्ध होते हैं। दो ऐसे गवाह जो जो एक दूसरे से कभी न मिले हों, यदि एक ही बात कहें, तो उनका कथन निस्संदिग्ध रूप से प्रामाणिक माना जायगा। यही सिद्धांत प्रतियों के साक्ष्य के सम्बन्ध में भी लागू होता है। इसी प्रकार यदि दा० नि० सा० सावे० सासी० में एक पाठ मिला है और उसके स्थान पर गु०

तथा वी० में समान रूप से कोई दूसरा पाठ आया है, तो गु० वी० का पाठ ही अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक माना गया है। प्रतियों के पाठ-संबंध का कोष्ठक भलीभाँति समझ लेने पर यह बातें अधिक स्पष्ट हो जायेंगी। इस सम्बन्ध में प्रस्तुत पुस्तक के निम्नलिखित स्थल विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं—

(क) पद ६८-६ का निर्धारित पाठ है : मूणं पीछें लेहुं लेहु करे भूत रहन क्यूं दीनां। दा० नि० वी० में 'प्रेत' पाठ आता है, किन्तु गु० तथा वी० में 'भूत' मिलने से वही पाठ स्वीकृत हुआ है।

(ख) साखी २-१-१ का निर्धारित पाठ है : विरह भुवंगम तन बसे, मंत्र न मानें कोइ। दा० नि० सा० सावे० गुण० में 'लाने' पाठ है, किन्तु गु० और वी० में 'मानें' मिलने से वही स्वीकृत हुआ है। दा० नि० सा० सावे० गुण० सब में पश्चिमी प्रभाव एक ही प्रकार से मिलते हैं, अतः उनका पारस्परिक आदान-प्रदान सम्भव है, किन्तु गु० और वी० प्रतियाँ इतनी दूर की हैं कि उनमें किसी भी प्रकार का आदान-प्रदान सम्भव नहीं ज्ञात होता।

(ग) १६-१-१ : मरतां मरतां जग मुवा, मुवै न जानां कोइ। दा० नि० सा० सावे० सासी० स० में उक्त पंक्ति के द्वितीय चरण का पाठ है : अवसर मुवा न कोइ। किन्तु वी० में 'मुवै न जाना कोय' और गु० में 'मरि भी न जानिआ कोइ' पाठ हैं; अतः गु० वी० के समान साक्ष्य के कारण वही पाठ स्वीकृत हुआ है।

(घ) २१-१-२ : रासि बिरांनीं राखतां, खाया घर का खेत। 'बिरांनीं' के स्थान पर दा० नि० सा० सावे० स० में 'पराई' पाठ है, किन्तु गु० वी० तथा गुण० में 'बिरांनीं' है अतः वही मूल रूप में स्वीकृत हुआ है।

जो अंश केवल दो ही प्रतियों के आधार पर, अथवा एक ही समुच्चय के आधार पर स्वीकृत हुए हैं उनके पाठ-निर्णय में लिपि, भाषा और भाव-सम्बन्धी विकृतियों की सम्भावनाओं तथा प्रसंगों और प्रामाणिक विचारों, प्रयोगों की सहायता से सिद्धांत स्थिर किये गये हैं। उनके उदाहरण क्रमशः नीचे दिये जा रहे हैं।

४. लिपि-भ्रम की दृष्टि से—इससे पूर्व प्रतियों के विस्तृत विवरण तथा संकीर्ण-संबंध के प्रकरण में लिपि-संबंधी विकृतियों का पर्याप्त निर्देश किया गया है। लिपि-संबंधी विभिन्न सम्भावनाओं पर मनन करने से पाठ-संबंधी निर्णय में भी

सहायता मिलती है। कोई भी पाठ अंतिम रूप से स्वीकार करने के पूर्व यह भली-भाँति निश्चित कर लिया जाता है कि अन्य पाठान्तर नागरी, फ़ारसी आदि लिपियों की विकृति के कारण हुए हैं, और मूल पाठ वास्तव में वही होना चाहिए जिसे प्रामाणिक रूप से स्वीकार किया गया है। इस संबंध में निम्नलिखित उदाहरण विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं।

पदों के उदाहरण—

(क) ४-७ का निर्धारित पाठ है : रिपु कै दल में सहजहिँ रौदाँ अनहद तबल घुराऊं जी। शवे० में 'आनंद तलब बजाऊं जी' पाठ मिलता है। 'अनहद' के स्थान पर आनंद फ़ारसी लिपि-जनित विकृति के कारण और 'तबल' (=तबला बाजा) के स्थान पर तलब वर्ण-विपर्यय के प्रमाद से हुआ ज्ञात होता है।

(ख) ६-४ : तूं सतगुर हौं नौतनु चेला।

दा० नि० का पाठान्तर: नौतम (नागरी नकार तथा मकार के सादृश्य के कारण; नौतन=नूतन, नौसिखुवा)।

(ग) १३-५ : अन्न न भावै नींद न आवै गृह बन धरै न धीर रे। 'अन्न' का पाठान्तर दा० नि० में आन (फ़ारसी लिपि के कारण)।

(घ) ४१-३ : देही गांवां जिउधर महतौ बसहिँ पंच किरसांन। दा० नि० का पाठ है : नगर एक तहां जीव धरम हता बसहिँ जु पंच किसान। कदाचित् पदच्छेद की अव्यवस्था के कारण 'महतौ' का मकार पूर्ववर्ती शब्द में मिला लिये जाने के कारण यह अशुद्धि हुई है।

(ङ०) ४८-४ : ध्रू प्रहलाद बिभीखन सेखा। तन भीतर मन उनहुं न पेखा ॥ स्वीकृत पाठ दा० नि० स० का है। बी० में इसका पाठ है : तन के भीतर मन उनहुं न पेखा। इससे निर्धारित पाठ की पुष्टि होती है, किन्तु गु० में इसका पाठान्तर 'तिन भी तन महि मनु नही पेखा' है। 'तन' के स्थान पर 'तिन' फ़ारसी लिपि की विकृति के कारण और 'भीतर' के स्थान पर 'भा तन' नागरी लिपि की विकृति के कारण हुए ज्ञात होते हैं।

(च) ६१-३ : संत मिलहिँ कछु मुनिए कहिए। मिलहिँ असंत मस्टि करि रहिए ॥ दा० नि० स० में पाठान्तर : 'मुष्टि करि रहिए' (फ़ारसी लिपि के प्रमाद से)।

(छ) ७५-६ तथा ८ : पुहुप पुराने गए सूख। तब भवरहिँ लागी अधिक भूख ॥

- दह दिसि जोवै मधुपराइ । तब भंवरी लै चली सिर चढ़ाइ ॥ पाठान्तर 'गए' के स्थान पर दा० नि० में भए (नागरी लिपि-जनित) 'मधुपराइ' के स्थान पर शवे० में भुईं पड़ाय और शक० में मधु कराय (दोनों फ़ारसी लिपि की विकृति के कारण) ।
- (ज) १०३-१ : को न मुवा कहु पंडित जनां । सो समुझाइ कहहु मोहि सनां । 'को न' के स्थान पर दा० नि० में कौन (फ़ारसी लिपि से) ।
- (झ) ११५-१ : पवनपति उनमनि रहनि खरा । 'रहनि' के स्थान पर नि० में रहति तथा गु० में रहनु (फ़ारसी लिपि-जनित) ।
- (ञ) ११६-५ : तलि करि पत्ता उपरि करि मूल । बहुत भांति जड़ लागे फूल ॥ 'मूल' का पाठान्तर गु० में सूल (नागरी लिपि-जनित) ।
- (ट) ११८-४ : तिस बाझ न जीया जाई । जौ मिलै तो घालै खाई ॥ गु० का पाठांतर : जउ मिलत घाल अघाई (फ़ारसी लिपि-जनित) ।
- (ठ) १२१-३ : चित्त तरउवा पवन खेदा सहज मूल बांधा । 'खेदा' का पाठांतर बी० में खेड़ा (नागरी-भ्रांति के कारण) ।
- (ड) १२२-४ : नव ग्रह मारि रोगिया बैठै जल महि बिब प्रकासै । 'ग्रह' का पाठान्तर दा० नि० स० में ग्रिह (उर्दू-भ्रांति) । इसी प्रकार आगे छठी पंक्ति में 'पारधी' के स्थान पर बी० में पारथीह (नागरी-भ्रांति के कारण) ।
- (ढ) १२३-१० : परिहरि बकला ग्रहि गुन डारि । निरखि देखि निधि वार न पार । 'बकला' (= पेड़-पौधों की छाल) का पाठान्तर दा० स० में बकुला और नि० में बिकुला मिलता है (फ़ारसी लिपि-जनित भ्रांति के कारण) ।
- (ण) १३१-५ : कंकर कुईं पताल पांनियां सोनै बूंद बिकाई रे । 'सोनै' के स्थान पर दा१ दा२ में सूनै (फ़ारसी लिपि की भ्रांति के कारण) ।
- (त) १७६-१ : आसन पवन दूरि करि रउरा । छांड़ि कपट नित हरि भञ्जु बौरा ॥ 'नित' के स्थान पर दा३ तथा स० में नट (फ़ारसी लिपि-जनित) ।

साखियों के उदाहरण—

- (क) १-४-२ : गुरु बिनु अति ऊदै भए, तऊ दृष्टि रहि मंद । दा० गुण० में 'रहि' का पाठान्तर नहिं (कैथी लिपि के प्रमाद से) ।
- (ख) ८८-३१-२ : बांझि जग है लगिनाई मई दवा सो फटि । 'दवा'

- (=दावाग्नि) के स्थान पर सा० में दुवा, सावे० में धुवां तथा दा२, सासी० में दुवां पाठ मिलते हैं; किन्तु यह सभी पाठ विकृत ज्ञात होते हैं और फ़ारसी लिपि-जनित भ्रांतियों के कारण संभावित जान पड़ते हैं।
- (ग) २-६-१ : विरहिन उठि उठि भुइं परै, दरसन कारन रांम । दा० तथा नि० में 'भुइं' के स्थान पर भी पाठ है (उर्दू 'भुइं' और 'भी' में हिज्जे के सादृश्य के कारण) ।
- (घ) ३-१-२ : जाका बासा गोर मैं, सो क्यूं सोवै सुक्ख । नि० तथा स० में 'गोर' (=कब्रस्तान) के स्थान पर घोर (फ़ारसी लिपि-जनित) ।
- (ङ०) ३-४-१ : केसौ कहि कहि कूकिए, नां सोइए असरार । 'असरार' के पाठान्तर सावे० में इसरार और गु० में असार हैं (पहला फ़ारसी लिपि-जनित और दूसरा नागरी लिपि-जनित) ।
- (च) ३-६-२ : ते नर आइ संसार मैं, उपजि खए बेकांम । 'खए' (=क्षय हुए या विनष्ट हुए) के स्थान पर सा० सावे० में खपे (नागरी लिपि जनित) ।
- (छ) ४-१-१ : कबीर चंदन के बिड़ै, बेधे ढाक पलास । 'बिड़ै' के स्थान पर स० प्रति में बिषै (नागरी लिपि-जनित) ।
- (ज) १२-१-१ : कबीर हरि रस यीं पिया, बाकी रही न छाकि । 'छाकि' के स्थान पर दा० नि० सा० स० गुण० में थाकि (नागरी लिपि-जनित) ।
- (झ) १४-७-२ : भरम भलाका दूरि करि, सुमिरन सेल संवाहि । 'सेल' का पाठान्तर सावे० प्रति में सील (फ़ारसी लिपि-जनित) ।
- (ञ) १४-१६-२ : जिहि भावै सो आइ ले, प्रेम आधु हंम कीन्ह । 'आधु' (=दुकान) के स्थान पर सा० सासी० में आगु और सावे० में आगे पाठ मिलते हैं (दोनों विकृतियाँ फ़ारसी लिपि-जनित) ।
- (ट) १५-१६-२ : काया हांडी काठ की, नां ऊ चढ़ै बहोरि । 'चढ़ै' के स्थान पर गु० में चरूहै (उर्दू रे, डे के सादृश्य से) ।
- (ठ) १५-२६-२ : जैहहि आटा लोन ज्यां, सोनां सवां सरीर । तुल० सा० सूना, गु० सोनि (दोनों विकृतियाँ फ़ारसी लिपि-जनित) ।
- (ड) २०-१०-१ : काबा फिरि कासी भया, रांमहि भया रहीम । तुल० नि० तांबा फिरि कांसी भया ('तांबा' फ़ारसी लिपि की विकृति से और 'कांसी' नागरी लिपि की विकृति से) ।

(ढ) २१-१५-१ : साईं सेती चोरियां चोरां सेती गुज्झ । सा० सावे० में 'गुज्झ' (=गुह्य वार्त्ता, घनिष्टता, मेलजोल) के स्थान पर जुज्झ (=युद्ध, लड़ाई); किन्तु यहाँ अप्रासंगिक अतः विकृत (नागरी लिपि-जनित) ।

(ण) २२-१-२ : पंथी छांह न बीसवैं, फल लागैं ते दूरि । 'बीसवैं' (=विश्राम करना) के स्थान पर स० में बैसवैं पाठ है (फ़ारसी लिपि-जनित) ।

(त) ३३-१-१ : कबीर पढ़िवा दूरि करि, पुस्तग देहु बहाइ । गु० पुस्तग देह बिहाइ (फ़ारसी लिपि-जनित) ।

५. पुनरुक्ति-दोष की दृष्टि से—यों तो कभी-कभी पुनरुक्ति सभी कवियों की रचनाओं में मिल जाती है, किन्तु सामान्यतः प्रत्येक कवि पुनरुक्ति से बचना है । इसलिए जब हमारे सामने दो या अधिक पाठों का विकल्प होता है, अर्थात् अन्य दृष्टियों से वे बराबर ही मान्य होते हैं, तो ऐसा पाठ स्वीकार करना जिसमें पुनरुक्ति-दोष नहीं होता, सामान्यतः हमें मूल पाठ के अधिक निकट पहुँचाता है । अतः इस प्रकार की परिस्थिति में पुनरुक्ति-हीन तथा पुनरुक्ति-पूर्ण (किन्तु अन्यथा समान रूप से स्वीकार्य) पाठों में से हमने पुनरुक्ति-हीन पाठ को स्वीकार किया है और पुनरुक्ति-पूर्ण पाठ को अस्वीकृत किया है । निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात भलीभाँति स्पष्ट हो जायगी ।

पदों के उदाहरण—

(क) १-६ का निधारित पाठ है : समानीं दरियाव दरिया पार नां लंघी । शवे० में इस पंक्ति का पाठ है : दरियाव दरिया जा समाने संग में संगी । उक्त पद नि० तथा शवे० में मिलने के कारण स्वीकृत हुआ है । यह ध्यान देने की बात है कि इसी पद में आगे आठवीं पंक्ति का पाठ नि० तथा शवे० दोनों प्रतियों में इस प्रकार से मिलता है : तत्त में निहतत दरसा संग में संगी । इस प्रकार शवे० द्वारा प्रस्तुत छठी पंक्ति का 'पाठ पुनरुक्ति-दोष के कारण विकृत सिद्ध होता है, अतः अस्वीकृत हुआ है ।

(ख) ३-७, ८ : कहै कबीर भूलौ कहा कहं हूँदत डोलै । बिनु सतगुरु नहि पाइए घट ही मैं बोलै ॥ शवे० प्रति में इन पंक्तियों का पाठ है : कहैं कबीर बिचारि कै अंधा खल डोलै । अंधे को सूझै नहीं घट ही में बोलै ॥ शवे० के पाठ में 'अंधा' और 'अंधे' की पुनरुक्ति विचारणीय है ।

- (ग) ४-३ : सहज पलांनि चित्त कै चाबुक लौ की लगांम लगाऊं जी ।
नि० प्रति में 'चित्त कै चाबुक' के स्थान पर 'पवन का घोड़ा' पाठ मिलता है, किन्तु इससे पूर्व की ही पंक्ति में 'घोड़ा' शब्द मिलने से नि० के पाठ में पुनरुक्ति आ जाती है ; तुल० मन की मुहर धरौं गुरु आगै ज्ञान कै घोड़ा लाऊं जी ॥
- (घ) ४-४ : विवेक विचार भरौं तन तरगस सुरति कमांन चढ़ाऊं जी ।
नि० प्रति में 'विवेक' के स्थान पर ग्यांन, किन्तु तुल० पंक्ति २-२ : ग्यांन कै घोड़ा लाऊं जी ।
- (ङ) ५-१ : रांम भगति अनियाले तीर । जेहि लागै सो जानैं पीर ॥ नि० :
रांम बांन अनियाले तीर (तुल० 'वान' तथा 'तीर') ।
- (च) १८-२ : मोहिं तोहिं आदि अंत वनि आई । अब कैसे दुरत दुराई ॥
नि० में उक्त पंक्ति के उत्तरार्द्ध का पाठ है : जैसे सलिता सिंधु समाई ॥
किन्तु तुल० पंक्ति ४ यथा : मोहिं तोहिं कीट भ्रिग की नाई । जैसे सरिता सिंधु समाई ।
- (छ) १८-३ : जैसे कंवल पत्र जल बासा । अैसे तुम साहब हंम दासा ॥
शवे० में इसके पश्चात् एक अतिरिक्त पंक्ति आती है जिसका पाठ है :
जैसे चकोर तकत निसि चंदा । ऐसे तुम साहब हम बंदा ॥ किन्तु इसके उत्तरार्द्ध का भाव वही है जो ऊपर की पंक्ति के उत्तरार्द्ध का है ।
- (ज) २०-३ : दारा सुत देह ग्रेह संपति सुखदाई । दा० नि० में 'सुखदाई'
के स्थान पर अधिकाई पाठ है, किन्तु इस पद की द्वितीय पंक्ति तुलनीय है जिसका पाठ है : रांम नांम सुमिरन बिनु बूडत अधिकाई ।
- (झ) २५-३ : क्रोध प्रधान लोभ बड़ दुंदर मन मैवासी राजा । तुल० गु०
क्रोध प्रधान महा बड़ दुंदर । 'महा' और 'बड़' दोनों समानार्थी हैं ।
- (ब) २५-७ : ब्रह्म अग्नि सहजहिं परजाली एकाहि चोट ढहाया । दा० नि०
का पाठ है : ब्रह्म अग्नि लै दिया पलीता । किन्तु इसी पद की छठी पंक्ति का पाठ है : प्रेम पलीता सुरति नालि करि गोला ग्यांन चलाया ।
अतः पुनरुक्ति स्पष्ट है ।
- (ट) ५०-३ : ऊभर था सो सूभर भरिया तृस्नां गागरि फूटी । गु० में
प्रथम चरण का पाठ है : कांम क्रोध माइया लै जारी । किन्तु इसी पद की चौथी पंक्ति का प्रथम चरण तुलनीय है जिसका पाठ है :
कांम चोलनां भया पुरांनां ।

- (ठ) ५६-३ : गुड़ करि ग्यांन घ्यांन करि महुआ भी भाठी मन धारा ।
दा० नि० में द्वितीय चरण का पाठ है : भव भाठी करि भारा ।
किन्तु 'भाठी' और 'भारा' दोनों पर्यायवाची हैं ।
- (ड) ५६-३ : कोइ सूर अइ मैदांन । जिन मारि किया घमसांन ॥ नि०
का पाठ है : मन मारि किया घमसांन । किन्तु उक्त पद की छठी
पंक्ति में भी 'मन' शब्द आता है : तुल० मन मारि अगम पुर लीया ।
- (ढ) ६२-५ : हाइ जरै जैसे लकड़ी झूरी । केस जरै जैसे त्रिन की पूरी ॥
दा० नि० में इसके स्थान पर जो पंक्ति मिलती है उसका पाठ है :
चोवा चंदन चरचत अंगा । सो तन जरै काठ कै संगी ॥ किन्तु यह
पंक्ति अन्यत्र भी एक पद में मिलती है, तुल० प्रस्तुत संकलन का
पद ७६ जिसकी आरम्भिक पंक्तियों का पाठ है : लाज न मरहु कहहु
घर मेरा । अंत की बार नहीं कछु तेरा ॥ उक्त पंक्ति इस पद की
पाँचवीं पंक्ति के रूप में मिलती है ।
- (त) ६६-४ : सूकर स्वान काग कौ मक्खिन तामैं कहा भलाई । बी०
प्रति में इस पंक्ति का पाठ है : सूकर स्वान काग को भोजन तन की
इहै बड़ाई । किन्तु पद ६८ की चौथी पंक्ति तुलनीय है, जिसका पाठ
है : कांचै कुंभ उदिक ज्यों भरिया या तन की इहै बड़ाई ।
- (थ) ८०-४ : कुंजी कुलफु प्रांन करि राखे करते बार न लाई । दा० नि०
का पाठ है : ताला कुंची कुलफ कै लागै उघड़त बार न होई । 'ताला'
और 'कुलफ' दोनों पर्यायवाची हैं ।
- (द) ८६-२, ३ : वेद पुरांन सभै मत सुनि कै करी करम की आसा । काल
असत सभ लोग सयाने उठि पंडित पै चले निरासा ॥ दा० नि० में
इन पंक्तियों का पाठ है : वेद पुरांन सुंम्रित गुन पढ़ि पढ़ि पढ़ि गुनि
मरम न पावा । संख्या गायत्री अरु खट करमां तिनर्थे दूरि बतावा ॥
('पढ़ि पढ़ि' और 'पढ़ि गुनि' में पुनरुक्ति) ।
- (ध) ११६-४ : बैलहिं डारि गोति घर आई । घोड़े चढ़ि भैंस चरावन
जाई ॥ दा० स० में द्वितीय चरण का पाठ है : पकड़ि बिलाई मुरगे खाई,
और नि० का पाठ है : मूसै पकड़ि बिलाई खाई । किन्तु 'बिलाई' का
प्रसंग पहले आ जाने के कारण पुनरुक्ति । तुल० पंक्ति ३-२ : कुता कौ
ले गई बिलाई ।

(न) १३०-१० : अरध उरध बिच लाइलै अकास । सुनि मंडल महि करि

- परगास । दा० नि० में द्वितीय चरण का पाठ है : तहंवां जोति करै परकास । किन्तु यह पंक्ति पहले भी एक बार आ चुकी है, तुल० अग्रम द्रुगम गढ़िरचिऔ बास । जामहि जोति करै परगास ।
- (प) १३६-१, २ : मन मोर रहटा रसनां पिउरिआ । हरि कौ नांव लै काति बहुरिया । बी० में 'मन' के स्थान पर हरि पाठ है, किन्तु अगली पंक्ति में भी 'हरि' रहने के कारण पुनरुक्ति स्पष्ट है ।
- (फ) १४६-२ : तीनि लोक से भिन्न राज । अनहद धुनि जहं वजै बाज ॥ शवे० में द्वितीय चरण का पाठ है : जहं अनहद बाजा वजै बाज (किन्तु 'बाजा' और 'बाज' दोनों पर्यायवाची) ।
- (ब) १४६-४ : कोटि कृष्ण जहं जोरहि हाथ । नि० का पाठ है : जहां कोटि कृष्ण कर जोरचा हाथ ('कर' तथा 'हाथ' दोनों पर्यायवाची) ।
- (भ) १६१-१ : संतौ आवै जाइ सो माया । नि० प्रति में 'आवै जाइ' के के स्थान पर उपजै खपै पाठ मिलता है, किन्तु अंतिम पंक्ति में भी यह शब्द आते हैं, कहै कबीर राम अविनासी उपजै खपै सो दूजा । प्रथम पंक्ति में आवागमन के प्रसंग पर ही अधिक बल दिया गया है, जिसे दूसरी पंक्ति में और भी अधिक स्पष्ट कर दिया गया है । द्वितीय पंक्ति का पाठ है : निराकार निरलेप निरंजन नां कहूं गया न आया ।
- (म) १८१-२ : क्या लै माटी (मूड़ी ?) भुइं सों मारै क्या जल देह न्हावां । बी० प्रति में प्रथम चरण का पाठ है : क्या मूड़ी भूमी सिर नाए । किन्तु 'मूड़ी' और 'सिर' पर्यायवाची हैं, अतः यह पाठ भ्रामक हो गया है ।
- (य) १६१-१ : भूली मालिनीं है एउ । सतगुर जागता है देउ । दा० नि० स० प्रतियों में उक्त पंक्ति का पाठ है : भूली मालिनीं है गोबिंद । जाग-तौ जगदेव । तू करै किसकी सेव ॥ इसका अंतिम अंश आगे इसी पद की नवीं पंक्ति में आता है : तीनि देव प्रतखिब तोरहि करै किसकी सेउ । अतः दा० नि० स० की पहली पंक्ति में यह अनावश्यक है ।
- (र) १६२-५, ६ : पूरव जनम हंम बांभन होते ओछै करम तप हीनां । राम देव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीन्हां ॥ गु० में उक्त पंक्तियों का पाठ है : हम घरि सूत तनहि नित ताना कंठ जनेउ तुमारे । तुम तउ बेद पढ़हु गाइत्री गोबिंद रिदै हमारे ॥ पद की पहली ही पंक्ति में आया है : मेरी जिम्मा बिस्तु नैन नारायन हिरदै बसै गोबिंद; अतः

‘गोविंद रिदै हमारे’ स्वीकार करने से पुनरुक्ति-दोष का भय है।

साखियों के उदाहरण—

- (क) १-३२-२ : सतगुर सेती खेलतां, कबहुं न आवै हारि। दा० प्रति में इसका पाठ है : कहै कबीरा राम जन, खेली संत विचार ॥ ‘राम जन’ और ‘संत’ प्रायः एक ही अर्थ के द्योतक हैं।
- (ख) १-३३-१ : पांसा पकरा प्रेम का, सारी किया सरीर। नि० तथा सावे० में इसका पाठ है : चौपड़ि माड़ी चौहटै, सारी किया सरीर। किन्तु इसका प्रथम चरण पिछली साखी में भी आता है, तुल० १-३२-१ : चौपड़ि माड़ी चौहटै, अरध उरध बाजारि।
- (ग) २-३-१ : अंवरि कुंजां कुरलियां, गरजि भरे सब ताल। गु० में द्वितीय चरण का पाठ है : बरखि भरे सर ताल। (किन्तु ‘सर’ और ‘ताल’ दोनों पर्यायवाची)।
- (घ) २-६ : विरहिन उठि उठि भुइं परै, दरसन कारन राम। मूएँ दरसन देहुगे, सो आवै कौनै कांम ॥ सा० सावे० सासी० में द्वितीय पंक्ति का पाठ है : लोहा माटी मिलि गया, तब पारस कौनै कांम ॥ किन्तु यह पंक्ति अगली साखी अर्थात् २-१६ में भी मिलती है। उक्त साखी का निर्धारित पाठ है : मूवां पीछै मत मिलौ, कहै कबीरा राम। लोहा माटी मिलि गया, तब पारस कौनै कांम। यहाँ यह पंक्ति दा० नि० सा० सावे० सासी० स० प्रतियों में समान रूप से मिलती है।
- (ङ) ४-१५-१ : राम नाम जिनि चोन्हिया, भीनां पंजर तामु। दा० नि० सा० तथा गुण० में प्रथम चरण का पाठ है : कबीर हरि का भावता; किन्तु तुल० ४-२६-१ : कबीर हरि को भावता। दूरिहि तैं दीसंत।
- (च) ५-५-१ : अैसा कोई नां मिलै, हमकों लेइ पिछांनि। सासी० प्रति में इस पंक्ति का पाठ है : अैसा कोई नां मिला, समुझै सैन सुजांन ॥ किन्तु यह पंक्ति पिछली साखी में भी ज्यों की त्यों आती है; तुल० ५-४ : अैसा कोई नां मिलै, समझै सैन सुजांन। ढोल बजंता नां सुनै, सुरति बिहूनां कांन ॥
- (छ) ११-६-२ : कहै कबीर कैसें बनें, एक चित्त दुइ ठौर। बी० का पाठ है : लानत ऐसे चित्त पर, एक चित्त दुइ ठौर। बी० के पाठ में ‘चित्त’ की पुनरुक्ति स्पष्ट है।
- (ज) १५-५६-१ : राखनहारै बाहिरा, चिड़ियें खाया खेत। दा० तथा स०

प्रतियों में 'बिनु रखवाले बाहिरा' पाठ मिलता है। किन्तु 'बिनु' और 'बाहिरा' दोनों समानार्थी हैं; उदाहरणतया तुल० १६-२-२ : परखन-हारै बाहिरा, कौड़ी बदलै जाइ—अर्थात् बिना पारखी के कौड़ी के मूल्य बिकता है।

(झ) १६-२४-१ : रोवनहारे भी मुए, मुए जलावनहार । सा० सावे० सासी० का पाठ है : जारनहारा भी मुवा, मुवा जलावनहार । पंक्ति के दोनों चरण एक ही भाव प्रकट करते हैं।

(ब) १६-३२-२ : सुर नर मुनियर असुर सव, पड़े काल की फांसि । नि० सा० सासी० का पाठ है : सुर नर मुनि जन असुर सुर । 'सुर' शब्द अनावश्यक रूप से दो स्थलों पर आ जाता है।

(ट) २१-३३ : मोर तोर की जेवरी, गलि बंधा संसार । कांसि कुटुंबा सुत कलित, दाभनि वारंवार ॥ सावे० तथा सासी० प्रतियों में द्वितीय पंक्ति का पाठ है : दास कबीरा क्यों बंधै, जाके नाम आधार । किन्तु प्रस्तुत संकलन की साखी १६-२ तुलनीय है, जिसका पाठ है : वैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार । एक कबीरा नां मुवा, जाके राम आधार ॥

अपवाद—किन्तु मुहावरों अथवा लोकोक्तियों में पुनरुक्ति-दोष नहीं माना गया है और उन्हें ज्यों का त्यों स्वीकार किया गया है। ऐसे स्थल निम्न-लिखित हैं—

(क) पद ११६-६ का निर्धारित पाठ है : कहै कबीर या पद कूं बूझै । ताकों तीनिउं त्रिभुवन सूझै ॥ पाठांतर है : राम रमत तिसि सभ किछु सूझै । 'तीनिउं त्रिभुवन' में तीन संख्या का प्रयोग दो बार रहने से पुनरुक्ति अवश्य प्रतीत होती है, किन्तु अवधी, भोजपुरी बोलियों में 'तीनिउं त्रिभुवन' या 'तीनिउं तिरलोक' अब भी मुहावरे के रूप में प्रचलित हैं। अतः उक्त पाठ स्वीकृत किया गया है।

(ख) साखी ४-१-१ : कबीर चंदन के बिड़ै, वेधे ढाक पलास । तथा ४-६-२ : जिहि कुल दास न ऊपजै, सो कुल ढाक पलास । 'ढाक' और 'पलास' समानार्थी हैं, किन्तु बोलियों में इस प्रकार के कई युग्म प्रचलित हैं जिनमें पुनरुक्ति-दोष नहीं माना जा सकता, जैसे : ओढ़ना-कपड़ा, कुसल-खेम, हाट-बजार, राय-सलाह, पेड़-रूख, बनिया-बक्काल।

६. प्रसंग की दृष्टि से—कई स्थल ऐसे मिलते हैं जिनमें पूर्वापर प्रसंग के

आधार पर विचार करने से पाठ-निर्णय में सहायता मिलती है। यदि दो पाठ ऐसे मिलते हों जो अन्यथा समान रूप से ग्राह्य हों किन्तु उनमें से एक प्रसंग में खपता हो और दूसरा उसके प्रतिकूल हो तो ऐसे स्थलों पर प्रसंग-सम्मत पाठ ही हमें भूल के अधिक निकट पहुँचाता है। अतः प्रस्तुत सम्पादन में जहाँ इस प्रकार का विकल्प आया है वहाँ दो समान पाठों में से प्रसंग-सम्मत पाठ को ही अधिक मान्यता प्रदान की गयी है, इसके विपरीत प्रसंग-विरुद्ध पाठ मूल रूप में ग्रहण नहीं किया गया है। इस संबंध में निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

पदों के उदाहरण—

(क) पद ३-४ का निर्धारित पाठ है : काम क्रोध मल भरि रहे कहा देह पखारै। शवे० प्रति में 'मल' के स्थान पर मद पाठ मिलता है, किन्तु यहाँ पर शरीर के प्रक्षालन का प्रसंग है, अतः 'मल' (=मैल, गंदगी) पाठ ही अधिक प्रासंगिक है। "काम-क्रोध रूपी मल जब शरीर से नहीं जाते तो उसे बार-बार धोने से क्या लाभ है?"—यही कवि का यथेष्ट भाव ज्ञात होता है।

(ख) ३-५, ६ का निर्धारित पाठ है : कागद की नौका बनीं विच लोहा भारा। सबद भेद बूझे बिनां बूड़े मझधारा ॥ शवे० में द्वितीय पंक्ति का पाठ है : सबद भेद जानै नहीं मूरख पचि हारे। नौक के प्रसंग में 'बूड़े मझधारा' की उपयुक्तता और 'मूरख पचि हारे' की अनुपयुक्तता स्वतः स्पष्ट है।

(ग) ८-२ : तन महिं खोजउं चोट न पावउं। ओखद मूरि कहां घंसि लावउं ॥ दा० नि० स० में 'तन महिं' के स्थान पर तन मन पाठ मिलता है। प्रस्तुत पद में इसके पूर्व की पंक्ति है : राम भगति अनियाले तोर। जेहि लागै सो जानै पीर ॥ प्रेम-वाण का लक्ष्य मन ही होता है और मन टटोलने पर तो चोट मिल ही जायगी—हाँ शरीर में उसका चिह्न नहीं मिलेगा। प्रेम-वाण से विद्ध व्यक्ति का बाह्य उपचार वस्तुतः व्यर्थ सिद्ध होता है। फिर यहाँ पर जड़ी-बूटी घिस कर लगाने का प्रसंग है, जो केवल शरीर से ही सिद्ध हो सकता है। मन में जड़ी-बूटी घिस कर नहीं लगायी जा सकती, अतः 'मन' पाठ प्रसंगोचित नहीं है।

(घ) ६-३ : तूं पिंजर हों सुवटा तोर। जमु मंजार कहा करै मोर ॥ दा० नि० में द्वितीय चरण का पाठ है : दरसन देहु भाग बड़ मोरा। किन्तु प्रथम चरण में पिंजरे और तोते का जो रूपक बाँधा गया है उसमें

- दा० नि० का पाठ किसी भी प्रकार से नहीं खप सकता। इसके विपरीत यम रूपी बिलाव से रक्षा पाने का उल्लेख पूर्णरूपेण प्रासंगिक है।
- (च) १२-२ : मुसि मुसि रोवै कबीर की माइ । एवारिक कैसे जीवै खुदाइ ॥ गु० में 'खुदाइ' के स्थान पर रघुराई पाठ मिलता है, किन्तु जुलाहे की माता के मुख से 'रघुराई' सम्बोधन उतना स्वाभाविक नहीं लगता जितना 'खुदाई' का।
- (च) १२-४ : कहत कबीर सुनहु मेरी माई । पूरनहारा त्रिभुवनराई ॥ गु० में द्वितीय चरण का पाठ है : हमरा इनका दाता एक रघुराई । प्रतिपालन और सामर्थ्य के प्रसंग में 'त्रिभुवनराई' (=तीनों लोकों का राजा) शब्द 'रघुराई' (=रघुकुल के राजा) की अपेक्षा अधिक व्यञ्जनापूर्ण है।
- (छ) १३-६ : ज्यों कामीं कौं कामिनि प्यारी ज्यों प्यासे कौं नीर रे । दा० नि० में ज्यों कामिनि कौं काम पियारा पाठ आता है। वासना की तीव्रता के प्रसंग में 'काम' (सूक्ष्म) की अपेक्षा 'कामिनि' (स्थूल) के प्रति आकर्षण दिखाना अधिक स्वाभाविक है।
- (ज) १७-२ : सब मैं व्यापक सबकी जानैं असा अंतरजामीं । शबे० में 'सब की जानैं' के स्थान पर सब से न्यारा पाठ मिलता है, किन्तु अन्तर्यामी के प्रसंग में 'सब की जानैं' पाठ ही अधिक समीचीन सिद्ध होता है।
- (झ) १७-४, ५ : सील संतोख पहिरि दोइ कंगन होइ रही मगन दिवांनीं । कुमति जराइ करीं मैं काजर पढ़ी प्रेम रस बांनीं ॥ 'कंगन' और 'काजर' के स्थान पर शबे० प्रति में क्रमशः सतगुन और कोइला पाठ आते हैं। उक्त पंक्तियों में भक्ति रूपी कामिनी के शृंगार का वर्णन है। उपमेय पक्ष में शील तथा संतोष का निर्देश हो जाने पर उपमान पक्ष में किसी स्थूल आभूषण का उल्लेख अपेक्षित है न कि किसी सात्विक गुण का। शबे० के 'सतगुन' पाठ से रूपक की पूर्ण सिद्धि नहीं होती। इसके विपरीत 'कंगन' पाठ से उक्त समस्या हल हो जाती है। शृंगार की सामग्रियों में कोयले का कोई स्थान भी नहीं, क्योंकि कोयला जलाने में अथवा मुँह काला करने में भले ही प्रयुक्त हो, साज-शृंगार उससे नहीं हो सकता। इसके विपरीत काजल शृंगार-प्रसाधन की एक प्रमुख सामग्री है।

- (अ) २२-५ : नाउं मेरै निरधन ज्युं निधि पाई। कहै कबीर जैसे रंक मिठाई। गु० में इस पंक्ति का पाठ है : माइआ मॉहि जिसि रखै उदास। कहि कबीर हउ ताको दास ॥ संपूर्ण पद में नाम-माहात्म्य का प्रसंग रहने से पद की केवल अंतिम पंक्ति में अचानक माया के मध्य उदास रहने की बात नितांत अप्रासंगिक लगती है।
- (ट) २५-८ : सत संतोख लै लरनै लागा तोरे दुइ दरवाजा। गु० में 'दुइ' के स्थान पर दस पाठ मिलता है। पद के आरम्भ में ही दरवाजों की संख्या दो बतायी गयी है : काम किवार दुख सुख दरवांनी पाप पुनि दरवाजा।
- (ठ) ३६-१० तुम्ह समसरि नाहीं दयालु मोहिं समसरि पापो। दा० नि० का पाठ है : तुम्ह समान दाता नहीं हमसे नहि पापी। पापो के प्रसंग में दाता की उतनी सार्थकता नहीं जितनी दयालु की होती है।
- (ड) ४०-५ : पर निदा पर धन पर दारा पर अपवादहि सूर। गु० में इसका पाठ है : पर धन पर तन परतो निदा पर अपवाद न छूटे। दूसरे के धन अथवा स्त्री की निन्दा नहीं की जाती, प्रायः उनसे ईर्ष्या की जाती है अथवा और पतन होने पर अनुचित संबंध जोड़ा जाता है।
- (ढ) ५०-६ : थाको सौंज संग के बिछुरे राम नाम बसि होई। दा० नि० स० प्रतियों में है : राम नाम मसि धोई। किन्तु यहाँ 'मसि' (=कालिख, स्थाही) धोने का कोई प्रसंग नहीं।
- (ण) ७८-५ : हंसा सरवर कंवल सरीर। राम रसाइन पिव रे कबीर ॥ गु० में 'कमल' के स्थान पर काल पाठ है, किन्तु सरोवर के रूपक में काल की प्रासंगिकता चिन्त्य है।
- (त) ९२-६ : कहै कबीर इक भक्त न जैहैं जिनकी मति ठहरांनी। नि० में इसका पाठ है : कहै कबीर तेरा संत जाइगा राम भगति ठहरांनी ॥ पद में यह विचार प्रतिपादित किया गया है कि संसार की जितनी महत्वपूर्ण वस्तुएँ हैं—राजा-रानी, योगी-ज्ञानी, चन्द्र-सूर्य, पवन-पानी—सभी अंत में विलीन हो जाती हैं। इस नश्वर जगत् में केवल भक्त ऐसा बच रहता है जो भगवान के भरोसे कभी नष्ट नहीं होता अर्थात् उसकी कीर्ति अमर हो जाती है; किन्तु नि० प्रति के पाठ से कवि का प्रमुख मन्तव्य ही समाप्त हो जाता है।
- (थ) १०३ : को न मुवा कहु पंडित जनां। सो समुझाइ कहहु मोहिं सनां ॥

मूए ब्रह्मां बिस्नु महेसा । पारबती सुत मुए गनेसा ॥

मूए चंद मुए रवि सेसा । मुए हनुमत जिन बांधल सेता ॥

मूए कृस्न मुए करतारा । एक न मुवा जो सिरजनहारा ॥

कहै कबीर मुवा नहि सोई । जाकै आवागमन न होई ॥

दा० नि० में प्रथम पंक्ति के पश्चात् की पंक्तियों का पाठ है—

माटी माटी रही समाइ । पवनै पवन लिया संग लाइ ॥

कहै कबीर सुनि पंडित गुनीं । रूप मुवा सब देखै दुनीं ॥

दोनों पाठों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि पहला रूपांतर दूसरे की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक और प्रसंगानुकूल है ।

(द) १३६-१, २ : मन मोर रहटा रसनां पिउरिया । हरि कौ नांव लै काति बहुरिया ॥ बी० में 'रसनां' के स्थान पर रतन पाठ है जो उक्त प्रसंग में निरर्थक है । इसके विपरीत 'रसनां' पाठ की सार्थकता स्पष्ट है । मन चर्खा है जिसमें जिह्वा पियुनी के समान है । उसके द्वारा हरि नाम रूप सूत कातो अर्थात् मन और वाणी से भगवान का नाम स्मरण करो ।

(घ) १३६-३, ४ : बालपनां के मीत हमारे । हमहि छाड़ि कत चलेहु निनारे ॥ बी० में 'निनारे' के स्थान पर सकारे पाठ है, किन्तु मित्रता के प्रसंग में 'सकारे' (=शीघ्र, समय के पूर्व) की अपेक्षा 'निनारे' (=ग्यारे होकर, त्याग कर) पाठ मूल भाव के अधिक निकट का ज्ञात होता है ।

(न) १६३ : बिखिया अजहूं सुरति सुख आसा ।

होन न देइ हरि के चरन निवासा ॥

सुख मागें दुख आगैं आवै । तातैं सुख मांग्या नहि भावै ॥

ता सुख तैं सिव विरचि डेरानां । सो सुख हमहुं सांच करि जानां ॥

सुख छांडा तब सब दुख भागा । गुर के सबद मेरा मन लागा ॥

कहै कबीर चंचल मति त्यागी । तब केवल रांम नांम लै लागी ॥

गु० में अंतिम दो पंक्तियों के स्थान पर निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

सनकादिक नारद मुनि सेखा । तिनभी तन महि मनु नही पेखा ॥

इस मन कउ कोई खोजहु भाई । तन छूटे मन कहां समाई ॥

गुरु परसादी जैदेव नामा । भगति के प्रेम इनही है जाना ॥

इस मन कउ नही आवन जाना । जिसका भरम गइआ तिन सांच पछाना ॥

पूर्व उद्धृत पद में विषय-सुख का प्रसंग है, किन्तु गु० की अतिरिक्त पंक्तियों का विषय बदल गया है। वे स्पष्ट ही मन के संबंध में हैं। यह पंक्तियाँ दा० नि० स० तथा बी० प्रतियों में अन्यत्र एक स्वतंत्र पद के रूप में मिलती हैं, और प्रसंगानुकूल होने के कारण इस पुस्तक में वहीं के लिए स्वीकृत भी हुई हैं (दे० पद ४८)। इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण पद १७६ में भी मिलता है जिसका विस्तार स्थलसंकोच के कारण यहाँ नहीं हो सकता।

(प) १७६-१ : आसन पवन दूर करि रौरा। छांड़ि कपट नित हरि भजि बौरा ॥ दा१, दा२ तथा नि० में आसन पवन किए दिढ़ रहू रे पाठ मिलता है। वास्तव में कबीर ने इस पद में हरि-भजन की तुलना में आसन-प्राणायाम आदि हठयोगी क्रियाओं को व्यर्थ बताया है। यह भाव पद की अगली पंक्तियों में और भी मुखर हो उठा है : का सींगी मुद्रा चमकाएँ। का विभूति सब अंग लगाएँ। कहै कबीर कछु आनन कीजै। राम नाम जपि लाहा लीजै ॥ दा० तथा नि० द्वारा प्रस्तुत पाठ में आसन-पवन की क्रियाओं का समर्थन किया गया है, जिससे यह पाठ भ्रामक हो जाता है।

(फ) १८५-४ : एक बूंद ते सृष्टि रचो है कौन बांभन कौन सूदा। दा० नि० स० में प्रथम चरण का पाठ है : एक जोति तैं सब उतपनां। ब्राह्मण-शूद्र के प्रसंग में ज्योति अथवा तूर से सृष्टि-रचना का वर्णन उपयुक्त नहीं लगता। तूर से सृष्टि की उत्पत्ति मुसलमानी धर्म में मानी गया है। यहाँ पर पारालिख सृष्टि-प्रक्रिया का आधार ही प्रसंगोचित है।

साखियों के उदाहरण—

(क) २-११ : भेरा पाया सरप का, भवसागर के माहिं। जौ छांड़ौ तो बूड़िहीं, गहां तो डसिहै बाहिं ॥ 'बूड़िहैं' के स्थान पर सावे० में बांचिहै (=बच जायगा) पाठ है जो वस्तुतः विपरोत अर्थ प्रकट करता है।

(ख) ६-२३ : पंजरि प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास। मुखि कस्तूरी महमहीं, बांनीं फूटी बास ॥ 'मुखि कस्तूरी महमहीं' के स्थान पर सा० सावे० सासी० में सुख करि सूती महल में पाठ आता है, जिसका यहाँ कोई प्रसंग नहीं।

(ग) २२-१० : पारब्रह्म बड़ मोतियां, भड़ि बांधी सिखरांहें। सगुरां सगुरां

चुनि लिए, चुकि पड़ी निगुरांहं ॥ दा० नि० स० गुण० में 'भड़ि' के स्थान पर घड़ि (=गढ़ कर) पाठ मिलता है। यहाँ मोतियों को गढ़ने का कोई प्रसंग नहीं है क्योंकि आगे की पंक्ति में उन्हें चुनने का भी उल्लेख है। वास्तव में कवि का तात्पर्य यहाँ यह है कि पर्वत-शिखर पर अर्थात् त्रिकुटी पर स्थित ब्रह्मरंध्र में परब्रह्म रूपी बड़े मोतियों की भड़ि लग रही है; जिन्हें सतगुरु का ज्ञान प्राप्त है वे उसे चुन लेते हैं, निगुरे लोग धोखे में रह जाते हैं।

(घ) २४-६ : साधू की संगति रहउ, जौ की भूसी खाउ । खीर खांड भोजन मिलै, साकत संग न जाउ ॥ गु० में तृतीय चरण का पाठ है : होन-हार सो होइहै । किन्तु जौ की भूसी के विरोध में खीर, खांड आदि व्यंजनों का उल्लेख अत्यन्त आवश्यक और प्रासंगिक है।

(ङ) २४-१३-२ : सिर ऊपरि आरा सहै, तऊ न दूजा होइ । 'आरा' के स्थान पर नि० में बोरा पाठ है । आगे विलग होकर दो होने का प्रसंग है, और यह कार्य 'आरा' (=चीरने का एक औजार) से ही सम्भव हो सकता है, 'बोरा' (=पाला, तुपार) से नहीं।

(च) २६-२ : कागद केरी ओवरी, मसि के किए कपाट । पाहन बोरी पिर-थमीं, पंडित पाड़ी वाट ॥ 'कागद' के स्थान पर दा० नि० स० में काजर पाठ मिलता है । यहाँ पंडितों की पोथी का रूपक है जिसमें 'कागद' पाठ ही अधिक प्रासंगिक है, न कि 'काजर'।

(छ) २६-४-१ : तीरथि चाले दुइ जनां, चित चंचल मन चोर । बी० में 'तीरथ गए तीन जन' पाठ आता है । किन्तु पंक्ति के उत्तरार्द्ध में केवल दो ही प्रकार के व्यक्ति गिनाये गये हैं।

(ज) २७-१ : खीर रूप हरि नांव है, नीर आन व्योहार । हंस रूप कोइ साधु है, तत का छाननहार ॥ 'छाननहार' के स्थान पर दा० स० गुण० में जाननहार पाठ है । हंस द्वारा नीर-क्षीर-विवेक के प्रसंग में जानने की अपेक्षा छानने का भाव ही अधिक समीचीन सिद्ध होता है।

७. शब्दों के क्लिष्टतर रूप की दृष्टि से—प्रतिलिपिकारों की यह प्रवृत्ति होती है कि जटिल तथा अप्रचलित शब्दों के स्थान पर समान मात्रा अथवा गण वाला कोई प्रचलित और सरलतर शब्द रख दिया करते हैं। इसके मूल में उनकी यह धारणा ज्ञात होती है कि ऐसा परिवर्तन कर देने पर पाठकों को अर्थ-संबंधी कठिनाई नहीं रहेगी। किन्तु इस प्रवृत्ति से मूल पाठ धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है,

और कालान्तर में हम रचनाकार की विशिष्ट शब्दावली के ज्ञान से वंचित हो जाते हैं। कवीर-बाणी की प्रतियों में भी इस प्रकार के अनेक संशोधन मिलते हैं। वस्तुतः संकलन में जहाँ कहीं दो या दो से अधिक प्रतियों द्वारा अन्यथा समान रूप से ग्राह्य दो पाठ प्रस्तुत हुए हैं वहाँ उनमें से प्रायः क्लिष्टतर तथा अप्रचलित पाठ को ही मूल के अधिक निकट का समझ कर स्वीकृत किया गया और इसके विपरीत सरलतर पाठ को प्रायः अस्वीकृत किया गया है। निम्नलिखित उदाहरणों से इसकी पुष्टि हो जायगी।

पदों के उदाहरण—

- (क) प्रस्तुत संकलन में पद ८-३ का निर्धारित पाठ है : एक भाई दीसैं सब नारी । नां जानीं को पियाहिं पियारी ॥ तुल० दा० नि० स० : एक रूप दीसैं सब नारी ।
- (ख) १२-२ : मुसि मुसि रोवै कवीर की माइ । ए वारिक कैसे जीवहिं खुदाइ ॥ तुल० दा० नि० : ठाढ़ी रोवै कवीर की माइ । ए लरिका कैसे जीवहिं खुदाइ ॥
- (ग) ६४-३ : मुचि मुचि गरभ भई किन बांझ । बुडभुज रूप फिरै कलि मांझ ॥ तुल० दा० नि० : सूकरि रूप फिरै कलि मांझ । बुडभुज / (सं० विडभुज; विड=विष्ठा + भुज=खाने वाला) ।
- (घ) ८२-६ : संपै देखि न हरखिअँ, विपति देखि नां रोइ । ज्यों संपै त्यौ विपति है, करता करै सो होइ ॥ 'संपै' के स्थान पर दा० नि० में संपति पाठ मिलता है, किन्तु अपभ्रंश रूप होने के कारण 'सपे' ही स्वीकृत किया गया है ।
- (च) ११४-५ : उंदरी बपुरी मंगल गावै (सं० उन्दुरी (= 'बूहा' का स्त्रीलिंग) तुल० गु० : घर घर सुसरी मंगल गावै ।
- (छ) १६६-२ : काजल टीकि चसम मटकावै । तुल० शवे० अंजन नैन दरश चमकावै ।
- (ज) १७१-२ : जे नर भए भगति तें बाहज तिन तें सदा डरानैं रहिए । बाहज / गं० बाह्य । तुल० दा० नि० स० : भगति थैं न्यारे ।
- (झ) १८१-७ : ग्यारह मास कहौ क्यूं खाली एकहि माँहि नियांनां । तुल० दा० नि० स० : एकहि माँहि समांनां, गु० एकहि माहि निधाना । 'नियाना' पाठ बोझ० प्रति में मिलता है और 'निधाना' (=कोष, खजाना) का प्राचीनतर रूप होने के कारण वही स्वीकृत भी हुआ है ।

- (ब) १६५-१ : पंडिआ कवन कुमति तुम लागे । दा० नि० में पांडे पाठ मिलता है, किन्तु अपभ्रंश रूप होने के कारण 'पंडिआ' (=पंडिता) ही स्वीकृत किया गया है ।

साखियों के उदाहरण—

- (क) २-३२-१ : आइ न सककों तुजभ पै, सकों न तुजभ बुलाइ । तुल० सा० सावे० सासी० : आय न सकिहीं तोहि पै, सकहुं न तोहि बुलाय ।
- (ख) २-४१ : बिरहिन थी तौ क्यूं रही, जरी न पिउ कै नालि । तुल० सा० सावे० सासी० : जरी न पिव के साथ । (नालि=समीप में, पास में) ।
- (ग) ३-२-२ : इक दिन सोवन होइगो, लांवे गोड़ पसारि । तुल० दा० नि० सासी० : लंबे पांव पसारि; सा० सावे० : लंबे पैर पसारि । किन्तु ठेठ अवधी का रूप होने के कारण गु० द्वारा प्रस्तुत किया 'गोड़' पाठ ही मूल रूप में स्वीकृत हुआ है ।
- (घ) ३-१०-२ तथा ३-११-१ : कोटि करम फिल पलक मैं (फिल=फला फिल्ला, विनष्ट) । तुल० सा० सावे० सासी० : कोटि करम पल में कटै ।
- (ङ) ४-५-२ : ते घर मरहट सारिखे, भूत बसैं तिन मांहि ॥ तुल० गु० सा० सासी० : मरघट ।
- (च) ६-२६-२ : ज्वाला तैं फिरि जल भया, बुभी बलंती लाइ । 'लाइ' (=अग्नि) के स्थान पर सा० सावे० में आग पाठ मिलता है, और उससे तुक मिलाने के लिए प्रथम पंक्ति का पाठ 'बाहर कतहुं न जाय' परिवर्तित कर 'बाहर कतहुं न लाग' कर दिया गया है । इसके अतिरिक्त सासी० में 'बलंतो' के स्थान पर जलती पाठ कर दिया गया है, जो सरलीकरण की प्रवृत्ति का ही फल है ।
- (छ) १२-७-२ : देवल बूड़ा कलस साँ, पंखि तिसाई जाइ । 'तिसाई' $\angle$ सं० तृषात्तं (=प्यासी) । 'तिसाई' के स्थान पर सासी० में पियासा पाठ मिलता है ।
- (ज) १५-३१-१ : कबीर सभ जग हंडिया, मादल कंध चढ़ाइ । हंडिया=भ्रमण किया; तुल० सरहपाद : एकली सबरी ए बन हिण्डइ कर्ण-कुंडल वज्रधारी । गु० समु जगु हउं फिरिओ, नि० सज जग देखिआ; सा० सासी० सब जगह हेरिया ।
- (झ) १५-४३-१ : राम नाम करि बौहड़ा, बाहे बीज अघाइ । बौहड़ा=

बीज-वपन में प्रयुक्त बाँस की एक नलिका जिसमें होकर बीज गिरता है, मालाबाँसा। सा० तथा सावे० में 'राम नाम हल जोतिए' पाठ आता है।

- (ब) १५-६५-१ : डागल ऊपरि दौरनां, मुख नींदरीं न सोइ। डागल=मकान के ऊपर की ढालुवाँ छत जिस पर दौड़ना खतरे से खाली नहीं। सा० सावे० सासी० में 'डागल' के स्थान पर कोठे पाठ आता है।
- (ट) १६-४०-२ : काल्हि अलहजा मैड़ियां, आज मसांनां दीठ। 'अलहजा' =फ़ा० आलीजाह, राजाधिराज, शाहंशाह। दा० गुण० में इस पंक्ति का पाठ है : काल्हि जो बैठा माड़ियां, आजु मसांनां डीठ।
- (ठ) १७-१-२ : जिहि वैसंदर जग जरै, सो मेरै उदिक समान। वैसंदर/ सं० वैश्वानर=अग्नि का पर्यायवाची एक शब्द। गु० में इसके स्थान पर 'जिनि जुआला जग जारिया' पाठ मिलता है।
- (ड) २१-१-१ : औरां कौं परमोधतां, मुहड़ै परिया रेत। 'परमोधतां' (=प्रबोधन करते हुए) के स्थान पर गु० में उपदेसते पाठ मिलता है और बी० में सिखलावते।
- (ढ) २१-३-२ : हेरा रोटी कारनै, गला कटावै कौन। 'हेरा' (=मांस, गोश्त) के स्थान पर दा१ में पेड़ा पाठ मिलता है। किंतु यह लिपि-भ्रम से भी सम्भव हो सकता है।
- (ण) २१-८-१ : कासी काठे घरकरै, पीवै निरमल नीर। 'काठे' (=नदी के तट पर) के स्थान पर गु० में तीर पाठ मिलता है।
- (त) २४-७-१ : काजर केरी ओवरी, असा यहुसंसार। 'ओवरी'=(अत्यन्त अंधेरी और तंग कोठरी) के स्थान पर बी० तथा सा० में कोठरी है।
- (थ) २५-८-२ : सतगुर परचै बाहिरा, अंतरि रहि गइ रेख। तुल० बी० सांई के परचै बिनां।
- (द) ३०-८-१ : पासि बिनंठा कापड़ा, कदे सुरंग न होइ। पासि=पास में, बिनंठा=विनष्ट, सड़ा-गला। इसके अनेक पाठ-भेद मिलते हैं; तुल० सा० कपास अनूठा कापड़ा, सावे० पास न जाके कापड़ा, सासी० कपास बिनूठा कापड़ा।
- (घ) ३०-११-२ : आगि आगि सब एक है, तामै हाथ न बाहि। हाथ न बाहि=हाथ मत डालो। सा० सावे० सासी० में इसका पाठ है : हाथ बिये जरि जाय।

८. अर्थ की दुर्बोधता की दृष्टि से—ऊपर ऐसे पाठ-परिवर्तनों की चर्चा की गयी है जिनमें अप्रचलित पाठों के स्थान पर उनका सरलीकृत रूप देने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु कहीं-कहीं मूल पाठ का भाव ठीक न समझ सकने के कारण प्रतियों में ऐसे पाठ-भेद मिलते हैं जिनसे अर्थ का अनर्थ हो जाता है। ऐसी भ्रांतियाँ प्रायः भाषा के ठेठ शब्दों के सम्बन्ध में अथवा ऐसे शब्दों के संबंध में हुई हैं जिनका प्रयोग किसी विशिष्ट अर्थ में होता है और जिससे अपरिचित होने के कारण प्रतिलिपिकार भूल कर बैठते हैं। ऐसे स्थलों पर विभिन्न पाठभेदों तथा उनके अर्थों पर मनन करने से उपयुक्त पाठ का निर्णय स्वतः हो जाता है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित स्थल विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं।

पदों के उदाहरण—

(क) पद २३-८ का निर्धारित पाठ है : तीन बेर पतिआरा लीन्हां। मन कठोर अजहूं न पतीनां ॥ 'पतियारा' अवधी का एक ठेठ शब्द है। किसी वस्तु या व्यक्ति के छोटे या खरेपन का भलीभाँति निरीक्षण करने या कसने को 'पतियारा लेना' कहते हैं। इस अर्थ से कदाचित् अनवगत होने के कारण गु० में उक्त पाठ के स्थान पर 'पतिआ भरि लीना' पाठ मिलता है, जिसका यहाँ कोई प्रसंग नहीं।

(ख) ३६-३ : उत्तपति बिंदु भयौ जा दिन तैं कवहूं सचु नहि पायौ। कबहूं सचु नहि पायौ=कभी सुख शान्ति न मिली। तुल० साखी ६-११-१ : सचु पाया सुख ऊपनां, दिल दरिया भरपूरि। किन्तु कदाचित् इसे 'सच' (=सत्य) का पर्यायवाची समझ कर शब्द० में 'सांच कहूं नहि पाया' कर दिया गया है।

(ग) ४०-१० : कहत कबीर भीर जन राखहु हरि सेवा करउं तुम्हारी। 'भीर जन राखहु'=जन की भीर रक्खो अर्थात् दास का कष्ट निवारण करो। किन्तु दा० नि० में उक्त पंक्ति का पाठ है : कहै कबीर धीर मति राखी सांसति करौ हमारी। स्पष्ट है कि 'जन' को नकारात्मक 'जनि' (=मत) समझ लेने के कारण ही दा० नि० में उक्त भ्रामक पाठ आया है। 'सांसति करौ हमारी' से भी विपरीत अर्थ प्रकट होता है।

(घ) ८७-२ : यहु जु दुनिया सिहरमेला कोई दस्तगीरी नाहि। 'सिहरमेला'=प्रातः काल लोहा लगने के समय अन्धकार और प्रकाश का मेल, जो क्षणिक होता है (सिहर/फा० सहर=प्रातःकाल)। दा१ दा२

में इस पंक्ति का पाठ है : सहल माल अजीज औरति कोई दस्तगीरी नाहि । दा३ तथा नि० में 'सहज अमल अजीज है' पाठ मिलता है ।

(ङ) ६३-२ : जाके घर में कुबुधि विण्याणीं (=वनानीं) पल पल मैं चित चोरे । 'विण्याणीं' अथवा 'वनानीं' = वनिया की स्त्री, वानिन । शवे० में प्रथम चरण का पाठ है : घर में दुविधा कुमति बनी है ।

(च) ११२-३, ४ : तरवर एक अनंत डारि साखा पुहुप पत्र रस भरिया । यह अंश्रित की बाड़ी है रे तिन हरि पूरै करिया ॥ बाड़ी = बाग, उद्यान; अर्थात् यह अमृतमय उद्यान है जिसको रचना परमेश्वर ने की है । दा० नि० स० में उक्त पंक्तियों का पाठ है : तरवर एक अनंत मूरति सुरता लेहु पछाणीं । साखा पेड़ फूल फल नाहीं ताकी अंश्रित बांणीं ॥ 'बाड़ी' तथा 'बाणी' में कदाचित् उच्चारण-साम्य के कारण दा० नि० स० का पाठ यहाँ भ्रमात्मक हो गया है ।

(छ) साखी २६-६-१ का निर्धारित पाठ है : जप तप दोसै थोथरा, तीरथ व्रत वेसास । वेसास = धोखा, विश्वासघात । तुल० 'विसासी मुजान के आंगन लै बरसी' (घनानंद) । सा० सावे० सासी० में 'वेसास' के स्थान पर विश्वास पाठ दिया गया है । 'वेसास' का विशिष्ट अर्थ न समझ सकने के कारण ही कदाचित् यह पाठ-परिवर्तन किया गया है ।

६. भाषा की दृष्टि से—यह प्रायः निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि कबीर का अधिकांश जीवन काशी अथवा उसके आस-पास के प्रदेशों में व्यतीत हुआ था । भाषा की दृष्टि से काशी अवधी तथा भोजपुरी दोनों क्षेत्रों की सीमा पर स्थित है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कबीर की भाषा में पूर्वी प्रयोगों का अधिक मिलना नितान्त स्वाभाविक है, और इसके विपरीत अन्य प्रादेशिक बोलियों का प्रभाव सामान्यतः प्रक्षिप्त रूप में ही माना जा सकता है । अतः जहाँ दो अन्यथा समान रूप से मान्य पाठों में से एक उनकी स्थानीय भाषा के निकट का और दूसरा उससे दूर का ठहरता है, वहाँ स्वाभावतः निकटवर्ती प्रयोग को ही मान्यता दी गयी है और उसकी तुलना में अन्य को अस्वीकृत कर दिया गया है । साथ ही यदि ऐसे पूर्वी पाठ किसी पश्चिमी प्रति में मिलते हैं तो वे और भी ग्राह्य हो जाते हैं । उदाहरण के लिए निम्नलिखित स्थल देखे जा सकते हैं—

(क) पद १६-२ का स्वीकृत पाठ है : जब हंम रहलीं हठिल दिवांनीं तब पिय मुखहु न बोलै । पाठान्तर : तुल० नि० पहली थो बंदी मान

(ख) ५३-६ : जोलहै तनि बुनि पांन न पावल फारि बिनै दस ठाई हो । तुल०
बी० : जोलहा तांन वान नहि जानै ।

(ग) ५३-७ : त्रिगुन रहित फल रमि हम राखल तब हमरो नांव रामराई
हो । तुल० बी० : तिरबिधि रहैं सभनि मां बरतौं नाम मोर राम
राई हो ।

(घ) १७०-३, ४, ५, ६ का निर्धारित पाठ है—

चंदन कै ढिग बिरिख जो भैला । बिगरि बिगरि सो चंदन ह्वैला ॥
पारस कीं जे लोह छिवैला । बिगरि बिगरि सो कंचन ह्वैला ॥
गंगा में जे नीर मिलैला । बिगरि बिगरि गंगोदिक ह्वैला ॥
कहै कबीर जे राम कहैला । बिगरि बिगरि सो रामहि ह्वैला ॥
'भैला', 'ह्वैला', 'छिवैला', 'मिलैला', 'कहैला' आदि पूर्वी रूप दा०
तथा स० प्रतियों में मिलते हैं । नि० प्रति में यह सभी शब्द 'गा'
प्रत्ययान्त हो गये हैं, जैसे ह्वैगा, छिवैगा आदि और गु० में उक्त पंक्तियों
का पाठ निम्नलिखित है—

चंदन के संगि तरुवर बिगरिओ । सो तरुवर चंदन ह्वै निबिरिओ ॥
पारस के संग तांवा बिगरिओ । सो तांवा कंचन ह्वै निबिरिओ ॥
गंगा के संग सरिता बिगरी । सो सरिता गंगा ह्वै निबरी ॥
संतन संगि कबीर बिगरिओ । सो कबीर रामहि ह्वै निबिरिओ ॥

(ङ) १७६-१ : आसन पवन दूरि करि रउरा । छांड़ि कपट नित हरि भजु
बउरा ॥ तुल० दा१ दा२ नि० : आसन पवन किए दृढ़ रह्य रे
(विपरीतार्थी भी) ।

(च) १८७-३, ४ : सरजीव आनैं देह बिनासै माटी बिसमिल कीया । जोति
सरूपी हाथिन आया कहौ हलाल क्यूं कीया ॥ दा० नि० स० में 'कीया'
के स्थान पर कीता पाठ मिलता है, जो स्पष्टतः पंजाबी का शब्द है ।

(छ) १८७-६ : दिल नापाक पाक नहि चीन्हां तिसका मरम न जानां ।
दा१ में द्वितीय चरण का पाठ है : उसदा खोज न जानां । दा२ नि०
स० में 'उसदा' के स्थान पर उसता पाठ है, किन्तु यह दोनों शब्द
पंजाबी के हैं ।

साखियों के उदाहरण—

(ज) २-३३-२ : मारनहारा जानिहै, कै जिहि लागी सोइ । तुल० नि० मारण-
हारा जागिसा (रजस्थानी) ।

(भ) ४-३५-२ : भाग तिनहुं का हे सखी, जिहि घटि परगट होय । तुल० दा३ : भाग तहंदा हे सखी ।

(ज) १४-६ : कोनैं परे न छूटिहै, सुनि रे जीव अक्क । कबीर मरि मैदान में, करि इंद्रिन सों जूझ ॥ तुल० दा० नि० स० गुण० : 'खूँरैं पड़्या न छूटिहै' तथा 'इंद्रचां सों' (राजस्थानी) ।

(ट) १५-६३-२ : ऊजर भए न छूटिहै, सुख निंदरी न सोइ । 'छूटिए' के स्थान पर नि० सा० सावे० सासी० में छूटिसी है ।

किन्तु जहाँ स्वीकृत समुच्चयों का साक्ष्य मिल जाता है वहाँ पूर्वी रूप रहते हुए भी सिद्धांततः वही पाठ स्वीकृत करना पड़ता है जो स्वीकृत समुच्चय से सिद्ध हो । किन्तु ऐसे स्थल बहुत कम हैं । उदाहरण के लिए पद १३-६-२ का निर्धारित पाठ है : हरि का नांउ लै काति बहुरिया । वी० में 'कातल' पाठ है, किन्तु वी० की एक अन्य प्रति में 'काति' पाठ मिलने से दा० नि० वी० के समुच्चय के अनुसार 'काति' पाठ ही स्वीकृत किया गया, 'कातल' नहीं ।

पश्चिमी प्रभाव को यथासम्भव कम करने पर भी साखियों में यत्र-तत्र कुछ पश्चिमी रूप मिल जाते हैं, किन्तु उन्हें स्वीकृत समुच्चयों के साक्ष्य पर स्वीकार करना पड़ा है । इतना होते हुए भी, जैसा अन्यत्र निर्देश किया गया है, उनके सम्भावित पूर्वी रूप आगे कोष्ठक में दे दिये गये हैं ।

१०. व्याकरण की दृष्टि से—यदि समान रूप से मान्य प्रतियों द्वारा विभिन्न पाठ प्रस्तुत किये गये हों और उनमें से कोई एक व्याकरण की दृष्टि से भी शुद्ध हो और शेष व्याकरण के नियमों के विरुद्ध पड़ते हैं तो व्याकरण-सम्मत पाठ को ग्रहण करने से ही हम रचना के मूल रूप तक पहुँच सकते हैं । यद्यपि कबीर की वाणी में व्याकरण अथवा वाक्य-रचना-सम्बन्धी नियमों के यथातथ्य पालन की ओर विशेष झुकाव नहीं मिलता, फिर भी समान रूप से मान्य विभिन्न पाठान्तरों में यदि कोई पाठ व्याकरण-संगत भी है तो कोई कारण नहीं कि अन्य पाठ-भेदों की तुलना में उसे मान्यता न दी जाय । निम्नलिखित उदाहरण ऐसे हैं जिनके पाठान्तर व्याकरण-विरुद्ध होने के कारण अस्वीकृत हुए हैं । इनमें से कुछ में लिंग, वचन आदि संबंधी अशुद्धियाँ हैं और कुछ की वाक्य-रचना दूषित है । पदों के उदाहरण—

(क) २-५ का निर्धारित पाठ है : डांइन एक सकल जग खायो सो भी देखि डरी । शबे० प्रति में इसका पाठ है : या कारे ने सब जग खायो सत-सुर देखि डरी । जोलिंग किया 'डरी' के साथ पुं० कर्ता 'कारे' असं-

गत, इसके अतिरिक्त कबीर की रचना में 'ने' का प्रयोग भी चिन्त्य है।

- (ख) ८-४ : कहै कबीर जाकै मस्तकि भाग । सब परिहरि ताकौं मिलै सुहाग ॥ दा० नि० स० में द्वितीय चरण का पाठ है : नां जानूं काकुं देइ सुहाग । इस पाठ से प्रथम चरण के 'जाकै' शब्द की कोई संगति नहीं रह जाती । इसके विपरीत निर्धारित पाठ में 'जाकै' के उत्तर में 'ताकौं' मिल जाने से वाक्य-रचना स्वाभाविक हो गयी है ।

- (ग) १३-८ : अबतौ बेहाल कबीर भए हैं, विनु देखे जिउ जाइ रे । दा० नि० का पाठ है : ऐसे हाल कबीर भए हैं । 'हाल' तथा 'कबीर' में व्याकरण की दृष्टि से परस्पर क्या सम्बन्ध है, इस प्रश्न के लिए उक्त पाठ में कोई उत्तर नहीं ।

- (घ) १४-५ : प्रेम मगन ह्वै नाचि सभा में रीझै सिरजनहारा । शवे० का पाठ है : सहस कला कर मन मेरो नाचै । किन्तु ऊपर की पंक्तियों में 'नाचु', 'बजाइ', 'ह्वै रहु' आदि आज्ञासूचक क्रियाओं के क्रम में वर्तमानकालिक क्रिया 'नाचै' व्याकरण की दृष्टि से अनुपयुक्त है ।

- (ङ) १४-६ : जौ तूं कूदि जाउ भवसागर कला बदीं मैं तेरी । शवे० तथा शक० में 'तेरी' के स्थान पर क्रमशः तेरो अथवा तेरा पाठ मिलते हैं, किन्तु स्त्री० संज्ञा 'कला' के साथ पुलिगवाची विशेषण 'तेरो' अथवा 'तेरा' व्याकरण-विरुद्ध हैं ।

- (च) २४-७, ८ : कहै कबीर कोइ संग न साथ । जल थल मैं राखै रघुनाथ ॥ गु० में द्वितीय पंक्ति का पाठ है : जल थल राखन है रघुनाथ । इसमें 'राखन है' पाठ की स्थिति भ्रामक है ।

- (छ) ५४-२ : सो बैकुंठ कहौ धौं कैसा करि पसाव मोहि दइहौ । गु० का पाठ है : सो धौं मुकति कहा देउ कैसी करि प्रसाद मोहि पाई है । 'मोहि' (=मुझे, मुझको) शब्द कर्म के रूप में आ जाने से 'पाई है' क्रिया की सार्थकता चिन्त्य हो गयी है ।

- (ज) १५३-२ : रैन दिवस मोकूं उठि उठि लागैं पंच ढोटा इक नारी । वी० में 'मोकूं' शब्द के स्थान पर मिलि आता है, किन्तु एक पूर्व-कालिक क्रिया 'उठि उठि' वर्तमान रहने पर पुनः 'मिलि' अनावश्यक हो जाती है । इसके अतिरिक्त 'मिलि' पाठ स्वीकार कर लेने से 'लागैं' क्रिया के कर्म का अभाव भी खटकता है ।

- (झ) १७२-४८ : अमिब लै लै सीम सिंजई । कहै कबीर ताकी बांनि त जाई ॥

गु० में द्वितीय चरण का पाठ है : कहत कबीर उआ का सहज न जाई ॥

किन्तु कर्ता के अभाव से यह वाक्य अपूर्ण रह जाता है ।

११. प्रयोग-वैषम्य की दृष्टि से—यदि कोई शब्द किसी विशेष प्रसंग में एक से अधिक स्थलों पर एक ही प्रकार से प्रयुक्त हुआ हो और इसी प्रकार के प्रसंग में अन्यत्र कहीं उसका भिन्न रूप मिल जाता हो तो सिद्धांततः उसे अस्वीकृत कर वहाँ उसका वही सामान्य रूप स्वीकृत किया जाना चाहिए जो अधिकांश स्थलों पर मिलता है । प्रस्तुत संकलन में इस सिद्धांत का भी यथास्थान उपयोग किया किया गया है, जो निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट होगा—

(क) पद १११-३ का निर्धारित पाठ है : सात सूत दे गंड बहतर पाठ लागु अधिकारि । गु० में 'सात' के स्थान पर साठ मिलता है किन्तु 'सूत' के साथ अन्य स्थलों पर प्रायः 'सात' संख्या का ही प्रयोग मिलता है, जैसे—गु० विलावल ४० : सात सूत इनि मुडिए खोए । तथा गु० वसंत ६ : सात सूत मिलि बनजु कीन्ह । अतः यहाँ भी 'सात सूत' पाठ ही स्वीकार किया गया है जो दा० नि० स० बी० द्वारा प्रस्तुत हुआ है । आध्यात्मिक पक्ष में 'सात सूत' का अर्थ है सत धातु ।

(ख) साखी २-५-१ का निर्धारित पाठ है : भल ऊठी भोली जली, खपरा फूटमफूट । 'भल' के स्थान पर सा० सावे० सासी० में भाल पाठ मिलता है । 'भल' शब्द यहाँ आग की लपटों का द्योतक है । इस अर्थ में सर्वत्र 'भल' का ही प्रयोग हुआ है, 'भाल' का नहीं । उदाहरणतया तुल० २-३७-२ : गोविंद मिलै न भल बुझै, रही बुझाइ बुझाइ । अथवा भल बाएं भल दाहिनै, भलहि मांहि ब्योहार । यहाँ यह शब्द दा० नि० सा० सावे० सासी० आदि सभी प्रतियों में मिलता है ।

१२. प्रतिपादित सिद्धान्त अथवा कवि-समय की दृष्टि से—अन्यथा समान रूप से मान्य दो पाठों में से यदि कोई एक अन्यत्र उसी रचना में प्रतिपादित सिद्धांत अथवा विचारधारा का अथवा परम्परागत कवि-समय का विरोध उपस्थित करता हो और दूसरे के द्वारा इस प्रकार का कोई विरोध न प्रकट होता हो तो ऐसे स्थलों पर प्रायः वही पाठ मूल रूप में स्वीकृत किया जाना चाहिए जिससे किसी प्रकार का विरोध अथवा वैषम्य परिलक्षित न होता हो । प्रस्तुत सम्पादन में इस प्रकार के पाठ-भेदों पर भी विचार किया गया है । उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(क) पद ०६१-५-१ का निर्धारित पाठ है : मुंदे त दुर्गधि की वेदी । बी० प्रति

में 'नऊं दुवार' के स्थान पर दसहुं द्वार पाठ मिलता है। दस द्वार मानने पर उसमें ब्रह्मरंध्र भी सम्मिलित करना पड़ेगा जो संत-साधना में परम पवित्र माना गया है—दे० बी० चौंतीसा की पंक्ति ४० जिसमें कहा है : दसएं द्वारे तारी लावै । सो दयाल का दरसन पावै ॥

(ख) ८५-६-१० : राम नाम बिनु सभै बिगूते देखहु निरखि सरीरा । हरि के नाम बिनु किन गति पाई कह उपदेस कबीरा ॥ दा० नि० में इन पंक्तियों का पाठ है : जे नर जोग जुगति करि जानैं खोजैं आप सरीरा । तिनहुं सुकति का संसा नाहीं कहै जुलाह कबीरा ॥ सम्पूर्ण पद में वस्तुतः राम नाम का माहात्म्य प्रतिपादित किया गया है और नाम की तुलना में मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्रा, हज-यात्रा, वेदाध्ययन आदि के साथ-साथ योग-साधन को भी निस्सार बताया गया है, जो पद की चौथी पंक्ति से स्पष्ट है। इसमें कहा गया है : जटा धारि धारि जोगी मूए तेरी गति तिनहुं न पाई। इस प्रकार एक बार योग का खंडन कर पुनः उसी पद में 'जोग जुगति' पर आश्रित होने का उपदेश युक्तिसंगत नहीं लगता, अतः दा० नि० का पाठ अस्वीकृत किया गया है।

(ग) १७०-४ : पारस कीं जे लोह छिवैला । बिगरि बिगरि सो कंचन ह्वै ला ॥ गु० प्रति में इसका पाठ है : पारस के संगि तांवा बिगरिओ । सो तांवा कंचन ह्वै निबिरिओ । कवि-समय के अनुसार पारस के स्पर्श से लोहा का सोना बनना प्रसिद्ध है, न कि ताँवे का।

(घ) साखी ४-८-१ : कबीर भया है केतकी, भंवर भए सब दास । गु० में 'केतकी' के स्थान पर कस्तूरी पाठ मिलता है, किन्तु कवि-परम्परा के द्वारा कस्तूरी के प्रति भ्रमर का आकर्षित होना प्रमाणित नहीं होता।

१३ सांप्रदायिक संशोधनों की दृष्टि से—प्रतियों के विस्तृत विवरण में ऐसे पाठ-परिवर्तनों की ओर निर्देश किया गया है जो सांप्रदायिक प्रवृत्ति के कारण आये हैं। यह परिवर्तन प्रायः ईश्वरपरक नामों के संबंध में हुए हैं। जहाँ इस तथ्य के पर्याप्त प्रमाण हों कि अमुक संशोधन सांप्रदायिक दृष्टि से हुआ है, और साथ ही उसके स्थान पर अन्य पाठांतर भी ऐसा मिलता है जो इस प्रकार के प्रभाव से मुक्त हो तो प्रायः दूसरी कोटि के पाठों को स्वीकार करने से ही मूल के अधिक निकट पहुँचने की सम्भावना रहती है। प्रस्तुत सम्पादन में इस प्रवृत्ति का बराबर ध्यान रखा गया है और यथासम्भव सांप्रदायिक प्रभाव से मुक्त मूल

स्वाभाविक पाठ को ही ग्रहण करने का प्रयत्न किया गया है। कुछ ऐसे स्थलों पर जहाँ कोई दूसरा विकल्प नहीं था, उनके सम्भावित मूल रूप कोष्ठक में दे दिये गये हैं। नीचे उद्धृत उदाहरणों से साम्प्रदायिक प्रवृत्ति के कारण किये हुए पाठ-परिवर्तनों की भी वानगी मिल जायगी और साथ ही ऐसे स्थलों पर जिन सिद्धांतों का अनुसरण किया गया है उनका भी यथेष्ट आभास मिल जायगा—
पदों के उदाहरण—

(क) ५-२ का निर्धारित पाठ है : हंम घरि आए राजा रांम भरतार । उक्त पंक्ति में 'राजा रांम' पाठ दा० नि० गु० प्रतियों के समान साक्ष्य के कारण स्वीकृत हुआ है। शवे० में इसके स्थान पर परम पुरुष पाठ मिलता है। इस बात की ओर पहले ही संकेत किया गया है कि राधा-स्वामी-संप्रदाय के सिद्धांतों से प्रभावित होने के कारण शवे० में सर्वत्र ईश्वरपरक नामों के संबंध में यही प्रवृत्ति मिलती है।

(ख) १४-६, ७ : जौ तू कूदि जाउ भवसागर कला बर्दाँ में तेरी। कहै कबीर राजा रांम भजन सौं नव निधि होइगी चेरी ॥ उक्त पाठ नि० प्रति से लिया गया है। शवे० तथा शक० प्रतियों में दूसरी पंक्ति का पाठ भिन्न मिलता है। शवे० का पाठ है : कहै कबीर सुनो भाई साधो हो रहु सतगुर चेरो। और शक० में है : कहै कबीर सत्य ब्रत साधो नव निधि होइ रहे चेरा। इसी तुक के अनुसार प्रथम पंक्ति में 'तेरी' के स्थान पर शवे० तथा शक० प्रतियों में क्रमशः 'तेरो' तथा 'तेरा' परिवर्तन किये गये हैं। किन्तु स्त्री० 'कला' तथा 'नवनिधि' के साथ 'तेरो' तथा 'चेरो' अथवा 'तेरा' तथा 'चेरा' शब्द व्याकरण की दृष्टि से असंगत हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि शवे० तथा शक० में यह अशुद्धियाँ जान बूझ कर, कदाचित् 'राम' शब्द से बचने के लिए, की गयी हैं।

(ग) १६-१, ५ : हरि रंग लागा हरि रंग लागा । मेरे मन का संसय भागा ॥ हरि जन हरि सौं अैसे मिलिया जस सोनै संग सुहागा ॥ शवे० में उक्त पंक्तियों का पाठ है : गुरु रंग लागा सतरंग लागा । मेरे मन का संसय भागा । भक्त जनन अस साहिव मिलनो जस कंचन संग सुहागा ॥ द्वितीय पंक्ति में वाक्य-रचना का लचरपन भी द्रष्टव्य है।

(घ) ७३-७—१० :

हरि के संत सदा थिर पूजौ जो हरि नाम जपात ।

जिन पर कृपा करत है नाथि ते सतसंग मिलत ॥

मातु पिता बनिता सुत संपति अंत न चलै संगान् ॥

कहत कबीर राम भजु बौरै जनम अकारथ जात ॥

तुल० सावे० 'जो सत नाम जपात', 'जिन पर कृपा करत है सतगुरु' तथा 'कहै कबीर संग करि सतगुरु' ।

(ङ) पद १८३ की अंतिम पंक्ति का पाठ बी० प्रति में है : कहीं कबीर एक राम भजे विनु बांधे जमपुर जासी । किन्तु सावे० में 'कहै कबीर गुरु के बेमुख' पाठ मिलता है ।

साखियों में ऐसे पाठ-परिवर्तन प्रायः सावे० तथा सासी० प्रतियों में मिलते हैं, जो क्रमशः राधास्वामी तथा कबीरपंथी प्रभावों के परिणाम-स्वरूप हुए हैं । उदाहरण के लिए निम्नलिखित स्थल देखे जा सकते हैं—

(क) साखी २-४-२ : जे नर बिछुरे राम सौं ते दिन मिले न राति ।

तुल० सासी० : जे नर बिछुरे नाम सौं तथा सावे० : सतगुरु से जो बीछुरे ।

(ख) २-२०-२ : मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्नि ।

तुल० सावे० : कबहुं गुरु दया करै ।

(ग) २-२१-१ : यहु तनु जारों मसि करौं, लिखौं राम का नाम ।

तुल० सावे० : लिखौं गुरु का नाम ।

(घ) ३-२-१ : कबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि ।

सावे० प्रति में 'मुरारि' के स्थान पर 'दयार' पाठ मिलता है । दूसरी पंक्ति के अंत में 'पसारि' रहने के कारण तुकार्य 'दयालु' शब्द की यह विकृति भी की गयी है ।

(ङ) ६-१-१ : कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाम । सावे० प्रति में सेवक कुत्ता गुरु का और सासी० में सेवक कुत्ता राम का पाठ मिलते हैं । कबीर के लिए कुत्ते का रूपक स्वीकार करना साम्प्रदायिक मर्यादा के प्रतिकूल है, संभवतः इसीलिए सावे० तथा सासी० प्रतियों में उक्त पाठ-परिवर्तन करने पड़े ।

(च) ८-१-२ : जो कछु किया सो हरि किया, भया कबीर कबीर । सावे० तथा सासी० प्रतियों में 'हरि' के स्थान पर साहिब पाठ मिलता है, यद्यपि इस संशोधन के कारण मात्रा तथा यति में पर्याप्त व्यतिक्रम आ जाता है ।

(छ) १६-६ : रोड़ा होइ रहु बाटका, तजि पाखंड अभिमान । असा जे जन होइ रहै, ताहि मिलै भगवान् ॥ सावे० प्रति में 'भगवान्' के स्थान

पर निज नाम पाठ मिलता है जिसका 'अभिमान' से तुक भी नहीं मिलता ।

(ज) ३३-१-२ : वावन अक्खर सोधि करि, ररै ममैं चित लाइ ॥

तुल० सावे० : सत्यनाम लव लाय । उक्त साखी में 'ररै ममैं' का तात्पर्य 'राम' शब्द में आने वाले 'र' और 'म' दो अक्षरों से है । साम्प्रदायिक प्रेरणा के कारण सावे० में 'ररै ममैं' (अर्थात् 'राम') के स्थान पर सत्यनाम कर दिया गया है, यद्यपि पंक्ति के पूर्वार्द्ध में आये हुए 'वावन अक्खर सोधि करि' की पृष्ठभूमि में यह संशोधन निरर्थक और अप्रासंगिक हो गया ।

(झ) ऊपर केवल थोड़े से स्थल उद्धृत किये गये । इनके अतिरिक्त इस प्रकार के उदाहरण अनेक मिलते हैं । तुलनार्थ निम्नलिखित स्थल देखे जा सकते हैं : साखी ३-३, ३-२२, ३-२६, ३-३०, ५-६, १४-१८ में 'राम नाम' के स्थान पर सावे० अथवा सासी० में सत्यनाम ; ३-१६, ५-६, ८-२, १०-१६, १२-१ में 'हरि' के स्थान पर गुरु, २१-६ में 'हरि मिलन' के स्थान पर सत्यलोक पाठ मिलते हैं ।

जहाँ केवल शवे०, सावे० अथवा सासी० का ही पाठ लिया गया है वहाँ ऐसे स्थलों पर कोष्ठक में ईश्वरपरक नाम भी रख दिया गया है । उदाहरण के लिए पद ६४-१, ४ में 'नाम' तथा 'गुरु' के लिए क्रमशः 'राम' तथा 'हरि', ६६-१ में 'नाम' के लिए 'राम' अथवा ७६-६ में 'गुरु' के लिए 'हरि' इत्यादि ।

१४. तुक की दृष्टि से—थोड़ी सी अशुद्धियाँ ऐसी हैं जिनका परिमार्जन तुक की दृष्टि से विचार करने पर हो जाता है । यदि समान तुक वाला कोई सार्थक पाठ मिल रहा हो तो तुकहीन पाठ स्वीकार करने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता । किन्तु यदि कहीं तुक बैठाने के लिए निरर्थक पाठ की भरती की गयी हो तो उसके स्थान पर सार्थक पाठ ही स्वीकार किया गया है चाहे वह तुकहीन ही क्यों न हो । उदाहरणार्थ—

(क) पद ५८-७, ८ का निर्धारित पाठ है : यहु संसार सकल है मैला राम कहहि ते सूचा । कहै कबीर नांव नहि छाड़ुं गिरत परत चढ़ि ऊंचा ॥ गु० में प्रथम पंक्ति का पाठ है : काम क्रोध माइया के लीने इया विधि जगत बिगूता । किन्तु अगली पंक्ति में 'ऊंचा' शब्द रहने के कारण यह पाठ तुकहीन हो गया है । तुकहीनता के अतिरिक्त स्वीकृत पंक्ति की तुलना में गु० प्रति के पाठ की सार्थकता भी चिन्त्य है ।

(ख) ६५-७, ८ : कहै कबीर छांड़ि मैं मेरा । उठि गया हाकिम लुटि गया डेरा ॥ शबे० में 'कहै कबीर नाव बिनु बेड़ा' पाठ मिलता है, किन्तु आगे 'डेरा' शब्द से तुक नहीं सिद्ध होता । इसके अतिरिक्त शबे० द्वारा प्रस्तुत की हुई पंक्ति का न तो कोई संगत अर्थ ही निकलता है और न उसकी वाक्य-रचना ही पूर्ण है ।

(ग) १३८-७, ८ : सोई पंडित सो तत ग्याता जो इहि पर्दाहि बिचारे । कहै कबीर सोई गुर मेरा आप तिरै मोहि तारै ॥ बी० प्रति में प्रथम पंक्ति का पाठ है : कहहि कबीर सुनहु हो संतो जो यह पद अर्थावै । कोई ऐसी विशेषता नहीं दिखलायी पड़ती जिसके कारण बी० का यह तुकहीन पाठ स्वीकार किया जाय ।

(च) १६५-५, ६ : वेद पढ़ता बाभन मारे सेवा करंता स्वामी । अरथ करंता मिसिर पछाड़ा गल मंहि घालि लगांमी ॥ दा० में दूसरी पंक्ति के अंत में 'तू रे फिरै मैंमंती पाठ मिलता है; किन्तु 'स्वामी' की तुलना में यह पाठ तुकहीन हो जाता है । इसके अतिरिक्त स्वीकृत पाठ यहाँ नितान्त प्रासंगिक भी है ।

(ङ) १६५-७, ८ : साकत के तू हरता करता हरि भगतन कै चेरी । दास कबीर रांम कै सरनै ज्यों आई त्यों फेरी ॥ तुल० दा० : ज्यों लागी त्यों तोरी ।

(च) १६६-२ : काजर टीकि चसम मटकावै कसि कसि बांधै गाढ़ी । तुल० शबे० : हंसि हंसि पारै गारी । किन्तु आगे की पंक्ति में 'खात कजेरा काढ़ी' रहने के कारण यह पाठ तुकहीन हो गया ।

(छ) १७१-५ : आप गए औरन हू खोर्वाहि । आगि लगाइ मंदिर मंहि सोर्वाहि ॥ दा० नि० स० में 'आपण बुड़ै औरकों बोरे' पाठ मिलता है, किन्तु आगे 'सोवै' से असंगत ।

साखियों में निम्नलिखित स्थल ऐसे हैं जहाँ कुछ प्रतियों में केवल तुकायं अशुद्ध पाठ मिलते हैं, अतः अस्वीकृत किये गये हैं—

(क) ७-६ : भारी कहूं तो बहु डरूँ, हरुवा कहूं तो भूठ । मैं क्या जानूं रांम को नैंनां कबहुं न दीठ ॥ सासी० प्रति में 'दीठ' की समानता में 'भूठ' के स्थान पर भीठ पाठ दिया गया है । किन्तु यह पाठ अशुद्ध और निरर्थक है, केवल तुक बैठाने के लिए दिया हुआ ज्ञात होता है ।

(ख) १०-१० : कबीर मारग कठिन है, मुनि जन बैठे थाकि । तहां कबीरा

चलि गया, गहि सतिगुरु की साखि ॥ सा० सावे० सासी० में 'साखि' के स्थान पर साक पाठ मिलता है ।

(ग) १४-१० : कबीर सोई सूरिवां, मन सौं माड़ै जूझ । पंच पियादे पार कै, दूरि करै सब दूज ॥ तुल० सा० सावे० सासी० दूझ ।

१५. प्रतियों की पाठ-स्थिति की दृष्टि से—उपर्युक्त सिद्धांतों की सहायता से पाठ-विकृतियों की छान-बीन कर लेने पर भी अनेक स्थल ऐसे बच रहते हैं जिनके संबंध में कोई प्रामाणिक निर्णय नहीं हो पाता, क्योंकि विभिन्न वर्गों द्वारा जितने भी पाठ प्रस्तुत किये गये हैं, यदि सभी शुद्ध हैं और ऊपर से देखने में कोई भी किंसा से घट कर न दोख पड़ता हो तो पाठ-समस्या कठिन हो जाती है । ऐसे स्थलों पर प्रतियों की आपेक्षिक पाठ-स्थिति ही सहायक होती है । विभिन्न प्रतियों द्वारा प्रस्तुत किये हुए समस्त साक्ष्यों पर तुलनात्मक दृष्टि से मनन करने पर प्रत्येक प्रति की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में एक निश्चित धारणा बन जाती है जिसके अनुसार प्रतियों का क्रम लगा लेने पर पाठ-निर्धारण में बड़ी सहायता मिलती है । प्रस्तुत संपादन में प्रतियों की सामान्य पाठ स्थिति के सम्बन्ध में हम जिस निर्णय पर पहुँचते हैं वह संक्षेप में निम्नलिखित है—

(क) स० प्रति सब से अधिक प्रामाणिक सिद्ध होती है, अतः उसके पाठों को अपेक्षाकृत अधिक मान्यता दी गयी है । जहाँ कहीं अतिरिक्त रूप से पंक्तियाँ लेनी पड़ी हैं, उसी से ली गयी हैं । उदाहरण के लिए प्रस्तुत संकलन के पद ११६ तथा १२३ लिये जा सकते हैं । ११६वें पद की दस पंक्तियों में केवल दो पंक्तियाँ ऐसी हैं जो स० तथा वो० प्रतियों में समान रूप से मिलती हैं, शेष आठ पंक्तियों के पाठ दोनों में भिन्न-भिन्न हैं । अतः यह समस्या खड़ी होती है कि यहाँ स० तथा वो० में से किसका पाठ ग्रहण किया जाय । किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर हम इस निर्णय पर पहुँच चुके हैं कि वो० की अपेक्षा स० प्रति उत्कृष्टतर पाठ देती है । अतः यहाँ शेष पंक्तियों का पाठ स० के अनुसार ही रखा गया है । इसी प्रकार की समस्या १२३वें पद में भी है । उसकी दस पंक्तियों में केवल दो पंक्तियाँ वो० में 'ज्ञान-चाँतीसा' अक्षर-रूप में मिलती हैं, किन्तु वहाँ अप्रासंगिक होने के कारण उक्त पद में ही स० प्रति के अनुसार स्वीकृत हैं ।

(ख) दा० नि० गु० के समुच्चय में गु० के पाठ अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक सिद्ध होते हैं, किन्तु यत्र-तत्र दा० नि० के पाठ भी उत्कृष्ट ठहरते हैं ।

उदाहरण के लिए दे० पद ३२, ५७, १३०, १३१ तथा १६२।

- (ग) दा० नि० गु० बी० में गु० अधिक प्रामाणिक है। इसके अतिरिक्त दा० नि० गु० की अपेक्षा गु० बी० का समुच्चय अधिक मान्य सिद्ध होता है, क्योंकि दा० नि० गु० दोनों पश्चिमी परम्परा की प्रतियाँ हैं और बी० पूर्वी परम्परा की।
- (घ) दा० नि० बी० में बी० प्रति के पाठ महत्वपूर्ण अवश्य हैं, किन्तु दा० और बी० के साक्ष्य लगभग समान रूप से प्रामाणिक सिद्ध होते हैं। रमैणियों में बी० की अपेक्षा दा० के साक्ष्य ही अधिक मान्य हैं, अतः अतिरिक्त पंक्तियाँ भी अधिकांश दा० प्रति से ही ली गयी हैं। बी० की अपेक्षा बीभ० का पाठ प्राचीनतर सिद्ध होता है।
- (ङ) दा० नि० शवे० में शवे० का पाठ मूल के अधिक निकट का सिद्ध होता है, किन्तु कुछ अपवाद भी मिलते हैं; उदाहरण के लिए दे० पद १४२ तथा १७६।
- (च) दा० नि० शक० में दा० अधिक प्रामाणिक सिद्ध होती है।
- (छ) दा० नि० गु० शवे० में शवे०, प्रक्षेपों की संख्या अधिक हुए भी पाठ की दृष्टि से अधिक प्रामाणिक है, किन्तु गु० भी कम महत्वपूर्ण नहीं।
- (ज) दा० नि० गु० शक० में गु० अधिक प्रामाणिक लगती है।
- (झ) दा० नि० शवे० शक० में शवे० अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक और नि० बी० शवे० में शवे० अधिक प्रामाणिक।
- (ञ) दा० नि० गु० शवे० शक० में शवे० अधिक प्रामाणिक है, किन्तु गु० के पाठ भी विचारणीय हैं।
- (ट) दा० नि० गु० बी० शक० में गु० अधिक प्रामाणिक।
- (ठ) दा० तथा बी० प्रायः समान रूप से प्रामाणिक हैं। प्रसंग आदि के अनुसार जो पाठ अधिक प्रामाणिक समझ पड़ा है वही रक्खा गया है। रमैणियों में दा० प्रति के पाठ ही प्रमुख रूप से स्वीकार किये गये हैं।
- (ड) नि० बी० में बी० अधिक प्रामाणिक है, किन्तु स्थलों पर नि० के पाठ भी समान रूप से विचारणीय तथा महत्वपूर्ण हैं।
- (ढ) नि० शवे० में शवे० अधिक प्रामाणिक। किन्तु कुछ स्थलों पर नि० के पाठ अधिक उत्कृष्ट सिद्ध होते हैं।
- (ण) गु० बी० में गु० अधिक प्रामाणिक।

(त) गु० शवे० में शवे० अधिक प्रामाणिक । किन्तु उभयनिष्ठ रूप में मिलने वाली रचनाओं का परिमाण अत्यल्प है ।

साखियों में प्रामाणिकता का क्रम इस प्रकार माना जा सकता है—

स—गु०—दा० (अथवा बी० समान रूप से)—नि०—गुण०—सा०—
सावे०—सासी० ।

पाठ-निर्धारण का एक उदाहरण

यहाँ प्रस्तुत संकलन का एक पद उद्धृत कर उसके पाठ-निर्धारण की विस्तृत विवेचना दी जा रही है जिससे यह मलीभाँति स्पष्ट हो जायगा कि ऊपर उल्लिखित सिद्धांतों का सम्पादन में किस प्रकार प्रयोग किया गया है ।

१. प्रस्तुत संकलन के पद ५८ का निर्धारित पाठ है—

डगमग छाँड़ि दे मन बीरा ।

अब तौ जरें मरें बनि आवै लीन्हों हाथि सिधोरा ॥ टेक ॥

होइ निसंक मगन होइ नाचै लोभ मोह भ्रम छाँड़ै ।

सूरा कहा मरन तैं उरपै सती न संचै भाँड़ै ॥

लोक वेद कुल की मर्जादा इहै गले मैं फांसी ।

आधा चलि करि पीछें फिरिहौ होइ जगत मैं हांसी ॥

यहु संसार सकल है मैला रांम कहैं ते सूचा ।

कहै कबीर नाउं नहिं छाँड़उ गिरत परत चढ़ि ऊंचा ॥

उक्त पद दा० नि० गु० स० शवे० शक० में मिलता है । भिन्न-भिन्न प्रतियों में पाठ की स्थिति निम्नलिखित है—

शवे० में प्रथम पंक्ति का पाठ है : छाँड़ि दे मन बीरा डगमग । किन्तु शवे० के अतिरिक्त शेष समस्त प्रतियों में 'डगमग' शब्द पंक्ति के आरम्भ में ही आता है, और दा० नि० गु० स० शक० का समुच्चय मान्य होने के कारण वही पाठ स्वीकृत किया गया है । अगली पंक्ति के अंत में 'सिधोरा' शब्द आने से तुक की दृष्टि से भी यही पाठ संगत लगता है, शवे० का नहीं । इसके अतिरिक्त गु० प्रति में 'छाँड़ि दे' के स्थान 'छाँड़ि रे' पाठ मिलता है, किन्तु दा० नि० स० शवे० में 'दे' रहने के कारण सिद्धान्ततः वही स्वीकार किया गया ।

उक्त पद की प्रथम पंक्ति के पश्चात् शक० में जो पंक्ति मिलती है, उसका पाठ है : गृह तैं निकरी सती होन को देखन को जग दोरा । किन्तु यह पंक्ति किसी अन्य प्रति में नहीं मिलती, अतः मूल रूप में इसे स्वीकार नहीं किया गया है, प्रत्युत अतिरिक्त पंक्ति के रूप में नीचे पाठान्तरों में इसका निर्देश कर दिया गया है ।

पद की द्वितीय पंक्ति में 'जरें मरें' के स्थान पर दा० नि० स० में 'जरें बरें', दा३ में 'जारचां बरचां' पाठ मिलते हैं। किन्तु गु० तथा शबे० में 'जरें मरें' पाठ मिलता है, और गु० शबे० का समुच्चय मान्य सिद्ध हुआ है, अतः दा० नि० स० का पाठ यहाँ अस्वीकृत कर दिया गया। आगे 'बनि आवै' के स्थान पर गु० प्रति में 'सिधि पाईअै' पाठ है, किन्तु अन्य किसी भी प्रति में न मिलने के कारण यह पाठ विचारणीय नहीं हो सका है। 'सिंधौरा' शब्द के कई पाठान्तर मिलते हैं : गु० प्रति में इसके स्थान पर 'संदउरा', दा३ में 'संदौरा' और दा० की अन्य प्रतियों में 'स्यंधौरा' पाठ मिलते हैं। मूल शब्द वस्तुतः 'सिंधौरा' (=सिन्दूरपात्र) है, अतः वही स्वीकृत हुआ है। शेष तीनों शब्द इसी के विकृत रूप हैं। दा३ तथा गु० की विकृतियाँ फ़ारसी लिपि के कारण अथवा पंजाबी उच्चारण के प्रभाव से हुई ज्ञात होती हैं, और 'स्यंधौरा' राजस्थानी के प्रभाव से आ गया है।

इसके पश्चात् शबे० में एक पंक्ति मिलती है, जिसका पाठ है—

प्रोति प्रतीति करौ दृढ़ गुर की सुनो शब्द घनघोरा।

यह पंक्ति अन्य किसी भी प्रति में नहीं मिलती, अतः प्रक्षिप्त ज्ञात होती है।

तृतीय पंक्ति का पाठ गु० में है : मन रे छांडहु भरम प्रगटु होइ नाचहु अझा माइआ के डांडे। किन्तु दा० नि० शबे० शक० में अन्य पाठ मिलने के कारण वही मूल रूप से स्वीकार किया गया है। 'छांडै' शब्द के स्थान पर दा० नि० स० में 'छांडौ' पाठ आता है, किन्तु अगली पंक्ति में गु० तथा शबे० के समान साक्ष्य के कारण 'भांडै' पाठ स्वीकृत हुआ है, अतः तुक की दृष्टि से 'छांडै' ही अधिक समीचीन सिद्ध होता है, 'छांडौ' नहीं। इसके अतिरिक्त 'छांडि दे', 'नाचै' आदि क्रियाओं के क्रम में आज्ञासूचक 'छांडै' सुसंगत और आवश्यक है।

चतुर्थ पंक्ति में प्रथम चरण का पाठ गु० प्रतियों में है : सूर कि सुनमुख रन ते डरपै। किन्तु केवल गु० प्रति में मिलने के कारण ही इसे प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता, इसके विपरीत स्वीकृत पाठ दा० नि० शबे० शक० के साक्ष्य के आधार पर लिया गया है। 'संचै' शब्द के भाँ कई पाठ-भेद मिलते हैं। दा२ तथा स० में इसके स्थान पर 'सतै', शक० में 'संशय' और गु० में 'सांचै' पाठ मिलते हैं। किन्तु दा१ दा३ नि० शबे० में 'संचै' पाठ मिलने से वही स्वीकृत हुआ है, क्योंकि दा० नि० शबे० का समुच्चय मान्य सिद्ध हो चुका है। इस अतिरिक्त गु० के 'सांचै' पाठ से भी इसकी पुष्टि होती है। 'सतै' तथा 'संशय' दानो विकृतियाँ फ़ारसी लिपि के कारण आयी हुई ज्ञात होती हैं।

पद की पाँचवीं तथा छठी पंक्तियाँ दा३ और गु० में नहीं हैं, किन्तु दा० की

भूमिका : पाठ-निरणय और प्रस्तुत संकलन

२५६

शेष प्रतियों में और नि० स० शबे० तथा शक० प्रतियों में मिलने के कारण उन्हें अस्वीकार नहीं किया जा सकता । इन दोनों पंक्तियों के पाठ का निरणय इस प्रकार हुआ है :

पाँचवीं पंक्ति में 'लोक वेद' के स्थान पर शबे० तथा शक० में 'लोक लाज' पाठ आता है। यहाँ पर शबे० शक० का साक्ष्य एक ओर और दा० नि० स० का साक्ष्य दूसरी ओर आता है। दोनों में किसी एक को ही स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि मूल प्रति में किसी पंक्ति के दो पाठों की कल्पना नहीं की जा सकती। ऊपर यह संकेत किया जा चुका है कि ऐसे स्थलों पर स० प्रति का पाठ ही प्रमुख रूप से स्वीकार किया गया है, क्योंकि पाठ की दृष्टि से वही प्रति सर्वोत्कृष्ट सिद्ध होती है। यहाँ भी स० का पाठ श्रेष्ठतर सिद्ध होता है, केवल 'पासी' शब्द इस लिए अस्वीकृत कर दिया गया कि अगली पंक्ति 'हांसी' पाठ आने के कारण इसमें तुक का अभाव कुछ खटकता है; अतः उसका समानार्थी 'फांसी' रखा गया है, जो कि शबे० तथा शक० में मिलता है। इसी सिद्धांत के आधार पर छठी पंक्ति में भी शबे० शक० का पाठ न लेकर स० प्रति का पाठ ही स्वीकार किया गया है।

इसके पश्चात् शबे० तथा शक० प्रतियों में आने वाली पंक्तियों का पाठ है—

अग्नि जरे नां सती कहावै रन जूमे नहिं सूर।

बिरह अग्नि अंतर में जारै तब पावै पद पूरा ॥

किन्तु शबे० तथा शक० प्रतियों में ऊपर संकीर्ण-संबंध सिद्ध किया जा चुका है, अतः उनके द्वारा उपस्थित की हुई पंक्तियाँ तब तक नहीं प्रामाणिक मानी जा सकतीं जब तक कि किसी ऐसी प्रति का साक्ष्य नहीं मिल जाता जो शबे० तथा शक० से स्वतंत्र हो।

सातवीं पंक्ति के पाठ-भेदों की स्थिति इस प्रकार है—गु० का पाठ है : काम क्रोध माइया के लीने इया विधि जगग विगूता । शबे० शक० का पाठ है : यहु संसार सकल जग मैला नाम गहे सो सूचा । दा० नि० स० का पाठ है : यहु संसार सकल है मैला रांम कहैं ते सूचा । दा० नि० स० शबे० शक० के पाठों में स्थूल साम्य मिल जाता है, अतः वही यहाँ स्वीकृत होना चाहिए। गु० प्रति का पाठ तुक तथा अर्थ की दृष्टि से भी भ्रामक है। अंतिम पंक्ति में 'ऊंचा' शब्द आने के कारण 'विगूता' से तुक की सिद्धि नहीं होती और वाक्य के दोनों अंशों में पूर्वापर सम्बन्ध स्पष्ट न होने के कारण अर्थ भी स्पष्ट नहीं निकलता। अतः गु० का पाठ अस्वीकृत किया गया है। शबे० तथा शक० के पाठों में, एक-दूसरे 'संसार'

शब्द आ जाने पर पुनः 'जग' आने के कारण पुनरुक्ति-दोष है, अतः उसे भी अस्वीकृत कर दा० नि० स० का पाठ ग्रहण किया गया है। आगे 'राम' शब्द के स्थान पर शबे० तथा शक० में 'नाम' पाठ साम्प्रदायिकता के प्रभाव से आया हुआ ज्ञात होता है, अतः अस्वीकृत हुआ है।

अंतिम पंक्ति के पाठों की स्थिति इस प्रकार है : गु० कहि कबीर राजा राम न छोड़ुं सगल ऊंच ते ऊंचा। शबे० कहै कबीर भक्ति मत छांडौ गिरत परत चढ़ि ऊंचा। शक० कहै कबीर नर भक्ति न छाड़ुं गिरत परत चढ़ि ऊंचा। दा० नि० स० कहै कबीर नांव नहि छांडौ गिरत परत चढ़ि ऊंचा। पंक्ति के उत्तरार्द्ध का पाठ दा० नि० स० शबे० तथा शक० में समान रूप से मिलने के कारण स्वीकार किया गया है और पूर्वाद्ध का पाठ स० प्रति के अनुसार; क्योंकि सभी प्रतियों में भिन्न-भिन्न पाठ रहने पर किसी ऐसी प्रति का पाठ सिद्धांततः स्वीकार किया जाना चाहिए जो अनेक साक्ष्यों के आधार पर उत्कृष्टतम प्रमाणित होती हो।

§६ : बानियों का क्रम

रमते साधुओं की रचनाओं में किसी प्रकार का सुव्यवस्थित क्रम ढूँढ़ना बड़ा कठिन हो जाता है, क्योंकि उनमें साधना की सहज अनुभूतियों के उद्गार रहते हैं, किसी वैज्ञानिक प्रक्रिया का नपा-तुला हिसाब-किताब नहीं। प्रबन्ध-काव्यों के रचयिताओं के समान उन्हें किसी कथासूत्र के पालन की भी चिन्ता नहीं रहती। सहज उमंग में जो कह दिया सो कह दिया। कबीर जैसे फक्कड़ संत के विषय में यह कठिनाई और भी उग्र रूप धारण कर लेती है। किन्तु प्रस्तुत अध्ययन में इस समस्या पर विचार किया जाना नितान्त आवश्यक है। इस दृष्टि से यह और भी विचारणीय हो जाती है कि जिस मूल प्रति में कबीर की रचनाएँ पहली बार लिपिबद्ध हुई होंगी उसमें कोई क्रम अवश्य रहा होगा। मूल प्रति के अभाव में यद्यपि हम यह ठीक-ठीक नहीं बता सकते कि उसका क्रम क्या था, किन्तु प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के तुलनात्मक अध्ययन से इस बात का पर्याप्त संकेत मिल सकता है कि इस संबंध में मूल प्रति की क्या प्रवृत्ति थी। कबीर की प्रामाणिक रचनाएँ स्थूल रूप से तीन प्रकार के छंदों में मिलती हैं : पद, रमैनी और साखी। अतः तीनों पर प्रत्येक-प्रत्येक विचार करना विशेष सुविधाजनक होगा।

अतः इन प्रतियों के सारे पद विभिन्न रागों में विभाजित मिलते हैं। दा० प्रतियों में रागों की संख्या पन्द्रह के लगभग है, नि० में यह बढ़ कर पच्चीस के लगभग पहुँच गयी है। किन्तु रागों का निर्देश होते हुए विषय-विभाजन की ओर भी इनका भुकाव ज्ञात होता है। उदाहरणतया जहाँ उल्टवासियों के पद आते लगे हैं, वहाँ कुछ दूर तक उल्टवासियाँ ही मिलती हैं। इसी प्रकार प्रेम अथवा उपदेश, चेतावनी आदि के प्रसंग में उन्हीं विषयों से संबद्ध पद मिला करते हैं। इस सिद्धांत के कुछ अपवाद भी मिलते हैं, किन्तु स्थूल रूप से प्रवृत्ति कुछ इसी प्रकार की ज्ञात होती है। दा० नि० के समान गु० के पद भी रागों के अन्तर्गत मिलते हैं। उसमें कबीर की रचनाएँ सत्रह रागों में विभक्त मिलती हैं जिनमें से बारह रागों के नाम ऐसे हैं जो दा० तथा नि० में भी मिलते हैं, किन्तु गु० में विषय-विभाजन का ध्यान कम रखा गया है। 'सर्वगी' में स्पष्ट रूप से सारी रचनाएँ विषय-क्रम के अनुसार रक्खी गयी हैं, चाहे वे पद हों अथवा रमैनी या साखी। 'सर्वगी' में कुल मिलाकर १४२ अंग हैं जिन्हें विभिन्न विषयों के शीर्षक ही समझना चाहिए। किन्तु अंगों में विभाजित रहते हुए भी पदों के पूर्व रागों का निर्देश कर दिया गया है। बीफ०, बीभ० में रागों का कोई निर्देश नहीं मिलता और न विभाजन के अन्य कोई शीर्षक मिलते हैं, किन्तु, जैसा कि बीजक-प्रतियों के विस्तृत विवरण में निर्देश किया गया है, बी० और बीफ० में कुछ अपवादों को छोड़ कर विशेषतया अक्षर-क्रम की ओर अधिक भुकाव ज्ञात होता है, यद्यपि उनमें अकारादि क्रम का पालन नहीं किया गया है। इसके विपरीत बीभ० में अक्षरक्रम का नहीं प्रत्युत विषयक्रम का ही ध्यान रक्खा गया है। शक० में सारे पद रागों के अनुसार दिये गये हैं, विषयक्रम का किञ्चिन्मात्र भी ध्यान नहीं है। इसके विपरीत शबे० में केवल चौथे भाग को छोड़ कर शेष किसी भी स्थल पर राग का निर्देश नहीं। 'सर्वगी' के समान शबे० में भी सतगुरु महिमा, विरह प्रेम, चितावनी-उपदेश, भेद बानी आदि शीर्षकों के अन्तर्गत सारे पद अलगाये हुए मिलते हैं। चौथे भाग में, जो केवल ३० पृष्ठों का है और बहुत बाद का छपा है, एक भी पद ऐसा नहीं है जो कबीर की प्रामाणिक रचनाओं में मिलता हो, अतः शबे० की सामान्य प्रवृत्ति के निर्णय में उसके कारण कोई कठिनाई नहीं पड़नी चाहिए।

इस प्रकार क्रम के संबंध में तीन विकल्प हमारे सामने आते हैं : एक ढंग यह हो सकता है कि कबीर के जितने पद प्रामाणिक सिद्ध हों उन्हें अक्षरक्रम या अकारादि क्रम से व्यवस्थित कर दिया जाय, जिसका किञ्चित् संकेत बी० में

मिलता है। दूसरा क्रम यह हो सकता है कि सारे पदों को विभिन्न रागों के अन्तर्गत विभाजित कर दिया जाय, जैसा कि दा० नि० गु० तथा शक० में मिलता है। तीसरा क्रम यह हो सकता है कि उन्हें विभिन्न विषयों का शीर्षक देकर उन्हींके अन्तर्गत रखा जाय, जैसा कि स० और शबे० में प्रकट रूप से और बीभ० में अप्रकट रूप से किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर एक विशेष क्रम यह भी हो सकता है कि उन्हें भिन्न-भिन्न प्रतियों के अनुसार रखा जाय। उदाहरण के लिए जो पद सभी प्रतियों में मिलते हैं उन्हें सब से पहले रखा जाय, उसके पश्चात् ऐसे पद आवें जो किसी एक प्रति में न मिलते हों, शेष सब में समान रूप से मिलते हों। इस प्रकार क्रमशः सभी समुच्चयों के पद देते हुए अन्त में ऐसे पद दिये जायें जो केवल दो प्रतियों में मिलते हों। ऐसा करने से एक बड़ा लाभ यह होता कि जिस वैज्ञानिक शैली के आधार पर प्रस्तुत सम्पादन किया गया है उसे समझने में बड़ी सुविधा होती, किन्तु साथ ही एक बड़ी असुविधा यह है कि अत्यधिक वैज्ञानिकता के लोभ में पड़ कर साहित्यिकता तथा सहज रसबोध की हत्या भी हो सकती है। इसीलिए इस क्रम का विचार छोड़ दिया गया है, किन्तु गौण रूप से इसका निर्देश अवश्य किया गया है। अकारादि क्रम का अवलम्बन करने से भी यही दुष्परिणाम होता कि सारा संपादन कोष की एक लम्बी तालिका के रूप में परिवर्तित हो जाता और कृत्रिमता का इतना अधिक प्रभाव परिव्याप्त हो जाता कि सामान्य पाठक को उसमें स्वाभाविकता का लेशमात्र भी आनन्द न मिलता। इसी भय से अक्षरक्रम का विचार पूर्णतः छोड़ दिया गया है—यहाँ तक कि उसे गौण स्थान भी नहीं दिया गया। इस प्रकार केवल दो ही क्रम और शेष रह जाते हैं जिनके सम्बन्ध में यह विचार करना है कि इनमें से किस को प्राधान्य दिया जाय। उनमें से एक है रागों का क्रम और दूसरा है विषय का क्रम।

हमें इस प्रश्न को संकीर्ण-सम्बन्ध की उस तुला पर भी तोलना है जिसके आधार पर समग्र रूप से पाठ का निर्णय किया गया है। राग-क्रम के पक्ष में दा० नि० गु० और दा० नि० शक० के समुच्चय पड़ते हैं। पाठ-निर्धारण के प्रसंग में हमने देखा है कि दा० नि० गु० और दा० नि० शक० के साक्ष्य मान्य सिद्ध हुए हैं, क्योंकि उक्त समुच्चयों में किसी भी प्रकार का विकृति-साम्य नहीं मिलता। अतः यदि इन दोनों समुच्चयों का साम्य मान्य समझा जाय तो कबीर की वाणी को उसी रूप में संपादित करना चाहिए जिससे वह पृथक्-पृथक् रागों में विभक्त हो जाय। किन्तु विषय-क्रम का पलड़ा इससे भी भारी पड़ता है। उसके

पक्ष में एक ओर स० शबे० के तथा दूसरी ओर स० बीभ० के साक्ष्य पड़ते हैं। संकीर्ण-सम्बन्ध में निर्देश किया गया है कि दा० गु०, नि० गु० तथा नि० शक० में विकृति-साम्य मिलता है। इसके अतिरिक्त दा०, नि० तथा गु० तीनों का संकलन पश्चिमी प्रदेशों में हुआ है, और पारस्परिक आदान-प्रदान के कारण यह नितान्त स्वाभाविक है कि उनमें क्रम का एक ऐसा रूप अपना लिया गया हो जो उधर प्रचलित हो गया था। किन्तु स० और शबे० में अथवा स० और बीभ० में कहीं से कोई भी ऐसा विकृति-साम्य नहीं मिलता जिससे उनमें किसी प्रकार के संकीर्ण-सम्बन्ध या पारस्परिक आदान-प्रदान की कल्पना को पुष्टि मिले, क्योंकि स० पश्चिमी संकलन है, बीभ० पूर्वी और शबे० मध्यवर्ती। अतः कबीर की वारी का जो पाठ अथवा क्रम का जो रूपांतर स० और शबे० में अथवा स० और बीभ० में मिलता है उसे निरापद रूप से स्वीकार कर लेना चाहिए। पहले इस बात का संकेत कर दिया गया है कि स० और शबे० दोनों में विषय-क्रम का ही अवलम्बन मिलता है। विषय के अनुसार वारियों का क्रम रखने से एक लाभ यह होता है कि पाठकों के सामने कवि की विचारधारा का स्पष्ट चित्र संश्लेषणात्मक रूप में उपस्थित हो जाता है और खोज करने वाले विद्वान् भी बहुत से अनावश्यक परिसे बच जाते हैं। इन्हीं तर्कों के आधार पर विषय-क्रम को प्रमुखता दी गयी है। किन्तु नीचे संकेताक्षरों द्वारा इस बात का भी निर्देश कर दिया गया है कि वे पद किन-किन प्रतियों में कहाँ-कहाँ किन-किन रागों के अन्तर्गत मिलते हैं। साथ ही इस बात का भी यथासाध्य प्रयत्न किया गया है कि एक शीर्षक के अन्तर्गत विशिष्ट प्रतियों में समान रूप से मिलने वाले सभी पद एकही स्थान पर आ जायें। उदाहरण के लिए 'उपदेस चितावनी' शीर्षक के अन्तर्गत मिलने वाले ऐसे पद जो दा० नि० शबे० में मिलते हैं, एक स्थान पर कर दिये गये हैं, जो नि० शबे० में मिलते हैं वे एक पृथक् स्थान पर और जो दा० नि० गु० में मिलते हैं वे पृथक् स्थान पर। इसी प्रकार अन्य समुच्चयों के भी पृथक्-पृथक् समूह बना दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि अधिक से अधिक प्रतियों में मिलने वाले पद पहले दिये जायें, तत्पश्चात् उनसे कम प्रतियों वाले पद और केवल दो प्रतियों में मिलने वाले पद क्रमशः सब के अंत में मिलेंगे। इस प्रकार मध्यम मार्ग का अवलंबन कर लेने पर क्रम संबंधी प्रायः सभी प्रमुख समस्याएँ सुलभ जाती हैं। एक विषय अथवा प्रकरण से संबद्ध सारे पद एक स्थान पर आ जाते हैं जिससे कवि की विचार-शृंखला समझने में सरलता होती है; प्रतियों के किसी एक समुच्चय में मिलने वाले पद एकत्र रहने-से पाठ-संपादन

के सिद्धांत और विभिन्न प्रतियों की प्रवृत्तियाँ समझने में सुविधा रहती है; प्रत्येक के राग का निर्देश रहने से संगीत-सम्बन्धी समस्या का भी सुलभात्व हो जाता है, क्योंकि संतों के पदों का वास्तविक आनन्द प्रायः संगीत के सामंजस्य से ही मिलता है। विभिन्न विषयों का अथवा एक विषय के विभिन्न पदों का क्रम भी मनमाना नहीं लगाया गया है, प्रत्युत वह भी प्रतियों के साक्ष्य पर ही आधारित है।

प्रस्तुत सम्पादन में विषय-विभाजन का सिद्धांत मुख्य रूप से स० और शबे० पर आधारित है, अतः शीर्षक रूप में वही विषय रक्खे गये हैं जो दोनों में समान रूप से वर्तमान हैं। उदाहरण के लिए 'सबंगी' में सर्वप्रथम 'गुरुदेवकौ अंग' है और शबे० (१) में 'सतगुरु और शब्द महिमा' तथा शबे० (२) में 'सतगुरु महिमा' है। अतः प्रस्तुत संस्करण में दोनों के सामंजस्य से शीर्षक का नाम 'सत-गुरु-महिमा' रख लिया गया है और रचनाओं में उसे सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। सामान्यतः अपेक्षाकृत अधिक व्यापक शीर्षक रखना चाहिए, किन्तु लेखक अथवा संकलनकर्त्ता ने मुख्य विषय को ही शीर्षक के रूप रक्खा होगा। मिश्र शीर्षक कदाचित् शबे० के सम्पादक की विशेषता होगी, यह समझ कर दोनों शीर्षकों का समान अंश ही स्वीकृत किया गया है। दूसरा प्रकरण प्रेम-विरह का है जो स० में सातवीं संख्या पर 'विरह कौ अंग' शीर्षक से मिलता है और शबे० में द्वितीय अध्याय के रूप में 'विरह और प्रेम' शीर्षक से। यहाँ भी शबे० का शीर्षक सम्पादक-प्रदत्त लगता है। 'नाउं महिमा' और 'साधु महिमा', जो 'सबंगी' के क्रमशः १८वें तथा २३वें अंग हैं, शबे० के तृतीय भाग में क्रमशः दूसरे तथा चौथे अध्याय के रूप में आते हैं। 'करुना-वीनती' सबंगी का ३७वाँ अंग है और शबे० के तृतीय भाग में अध्याय ७ तथा ८ में 'विनती और दीनता' के नाम से मिलता है। 'परचा' का शीर्षक शबे० में नहीं मिलता, केवल 'सबंगी' के आधार पर ग्रहण किया गया है। 'परचा' के अतिरिक्त 'काल', 'सजेवनि', 'निरंजन रांम', 'निंदक साकत', 'भेख आडंबर' तथा 'भरम विधूषन' नामक छः शीर्षक और हैं जिनका नामकरण केवल 'सबंगी' के साक्ष्य पर हुआ है। पदों के अतिरिक्त आगे चल कर साखियों के प्रकरण में यह नाम 'सबंगी' के अतिरिक्त अन्य कई प्रतियों में भी मिलते हैं। 'उपदेस चितावनी' शीर्षक पद स० तथा शबे० दोनों में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

उल्टवासियों के पद 'सबंगी' में जहाँ आये हैं उस अंग का 'अनभई' (सं/ अनुभव) नाम दिया गया है, शबे० में उसे 'भेद बानी' कहा गया है। प्रस्तुत पुस्तक में उक्त शीर्षक का नाम 'अनभई' ही रक्खा गया है। शीर्षकों के नाम

अथवा क्रम के संबंध में जहाँ स० तथा शवे० में साम्य मिलता है, वहाँ उसे ज्यों का त्यों अपना लेने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती; किन्तु जहाँ दोनों में पारस्परिक भिन्नता मिलती है वहाँ अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन होने के कारण प्रायः 'सर्वगी' के ही साक्ष्य का आधार लिया गया है।

इस प्रकार प्रामाणिक रूप से स्वीकृत २०० पदों को जिन सोलह अंगों या शीर्षकों में विभक्त किया गया है उनके नाम क्रमशः निम्नलिखित हैं—

(१) सतगुर महिमा—४ पद; (२) प्रेम—१५ पद; (३) नांउं महिमां—७ पद; (४) साधु महिमां—६ पद; (५) करुणां वीनती—१२ पद; (६) परचा—१० पद; (७) सूरतन—२ पद; (८) उपदेस चितावनीं—३६ पद; (९) काल—७ पद; (१०) (भगति) सजेवनि—२ पद; (११) अनभई—४५ पद; (१२) निरंजन रांम—६ पद; (१३) माया—७ पद; (१४) निदक साकत—४ पद; (१५) भेल आडंबर—७ पद; (१६) भरम विधूसन—२४ पद=कुल २०० पद।

रमैनियों का क्रम—कबीर की रमैनियों के सम्पादन तथा क्रम की समस्या बड़ी जटिल हो गयी है। रमैनियाँ दा० नि० तथा बी० प्रतियों में मिलती हैं। दा० नि० के पाठ स्थूल रूप से समान हैं, अतः रमैनियों के संबंध में मुख्य रूप से पाठ की दो धाराएँ हो जाती हैं; एक दा० नि० की और दूसरी बी० की। दोनों धाराओं की मुख्य-मुख्य प्रवृत्तियों का संक्षेप में निरीक्षण कर लेने से वस्तुस्थिति का ठीक-ठीक ज्ञान हो जायगा।

दा० तथा नि० में रमैनी का प्रकरण छंद की संख्याओं के आधार पर पृथक् पृथक् शीर्षकों में विभक्त कर दिया गया है, जिनके नाम हैं : (१) सकल गहगरा (भूमिका स्वरूप), (२) सतपदी, (३) बड़ी अष्टपदी, (४) दुपदी (५) लहुरी अष्टपदी, (६) बारहपदी, और (७) चौपदी। दा३ तथा दा४ में बड़ी अष्टपदी सब से पहले आ जाती है, तत्पश्चात् दुपदी, सतपदी, बारहपदी, लहुरी अष्टपदी और चौपदी आती हैं। 'सकल गहगरा' की रमैनी सब के अंत में, कदाचित् उप-संहार रूप में, आती है। इनमें सात, आठ, बारह आदि की संख्याएँ रमैनियों में मिलने वाली साखियों की संख्या सूचित करती हैं। नि० में दा० के अतिरिक्त एक दुपदी रमैनी और मिलती है; इसके पश्चात् उसमें 'अगाध बोध' 'श्री पाजोग' तथा 'शब्द भोग' नामक छोटे-छोटे ग्रन्थ और भी मिलते हैं जिनकी रचना रमैनी छंद में ही हुई है।

जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' में अथवा जायसी-कृत 'पदमावत' में कुछ चौपाइयों के पश्चात् एक या एक से अधिक दोहे मिलते

हैं और पूरे समुच्चय को मिला कर 'दोहा' कहा जाता है, उसी प्रकार संतों की रचनाओं में भी कुछ अर्द्धालियों के अन्त में दोहे के समान एक साखी आ जाती है, और इस प्रकार के एक समुच्चय को एक 'रमैनी' कहा जाता है।

दा० नि० की रमैनियों में दो साखियों के बीच मिलने वाली पंक्तियों की कोई निश्चित संख्या नहीं ज्ञात होती जैसी कि जायसी की (और कहीं-कहीं तुलसी की भी) रचनाओं में मिलती है। व्यतिक्रम की मात्रा इतनी अधिक है कि किसी रमैनी में यदि साखी को छोड़ कर केवल तीन पंक्तियाँ मिलती हैं तो किसी-किसी में बाईस और चौबीस, यहाँ तक कि दुपदी रमैनी के एक पद में बयासी पंक्तियाँ तक मिल जाती हैं।

बी० में कुल ८४ रमैनियाँ मिलती हैं जिनमें से २८, ३२, ४२, ५६, ६२, ७०, ८० तथा ८१ संख्यक रमैनियाँ (=कुल ८ रमैनियाँ) ऐसी हैं जिनके अन्त में साखियाँ नहीं मिलतीं। इनमें भी २८, ६२ तथा ७० संख्यक रमैनियाँ ऐसी हैं जो दा० नि० स० तथा गु० में पदों के रूप में मिलती हैं। बी० में दा० नि० के समान सतपदी, अष्टपदी आदि के समुच्चय नहीं हैं, प्रत्युत सभी, एक के पश्चात् एक, क्रमशः धारावाहिक रूप में मिलती हैं। बी० में पंक्तियों की संख्या में भी विशेष व्यतिक्रम नहीं मिलता। उसमें कम से कम तीन और अधिक से अधिक बारह पंक्तियाँ ही मिलती हैं। बी० की अधिकांश रमैनियों में पंक्तियों की संख्या दस से कम ही है—केवल तीन ऐसी हैं जिनमें यह संख्या दस से अधिक हो गयी है।

यह हुई दोनों रूपान्तरों के आकार-प्रकार की संक्षिप्त रूपरेखा। किन्तु इससे कठिनाई का ठीक अनुमान नहीं होता। कठिनाई का सच्चा स्वरूप तब सामने आता है जब दोनों का पाठ-मिलान किया जाता है। दा० की रमैनियों में साखियों को भी लेकर कुल ४८६ पंक्तियाँ हैं, नि० में उससे ६५ अधिक अर्थात् कुल ५५१ पंक्तियाँ हैं और बी० की रमैनियों में साखियों को भी लेकर कुल ६१२ पंक्तियाँ हैं। इनमें से केवल १४२ पंक्तियाँ ऐसी हैं जो दा० नि० तथा बी० तीनों में मिलती हैं। यह कठिनाई की पहली सीढ़ी है। सिद्धान्ततः केवल उन्हीं पंक्तियों को निश्चित रूप से प्रामाणिक स्वीकार किया जाना चाहिए जो दा० बी० या नि० बी० में समान रूप से मिलती हों। कठिनाई का अनुमान इस बात से और भी लगाया जा सकता है कि बीजक की चौरासी रमैनियों में ६० ऐसी निकल जाती हैं जिनकी एक भी पंक्ति किसी अन्य प्रति में नहीं मिलती, चार रमैनियाँ (अर्थात् ४, ४२, ७६ तथा ७७) ऐसी हैं जिनकी केवल एक-एक पंक्तियाँ दा० नि० में मिल जाती हैं, तीन रमैनियाँ (अर्थात् १, ११ तथा ६५) ऐसी हैं जो केवल

आंशिक रूप से दा० नि० में मिलती हैं। सम्पूर्ण रूप से मिलने वाली रमैनियों की संख्या केवल सोलह है। उनमें सात ही रमैनियाँ ऐसी हैं जिनकी साखियाँ भी दा० नि० में मिलती हैं, शेष की साखियाँ नहीं मिलतीं। कठिनाई का अंत केवल यहीं नहीं हो जाता। जितना अंश सभी प्रतियों में मिलता है उनमें कोई तारतम्य भी नहीं देख पड़ता। दा० नि० अष्टपदी की पहली रमैनी बी० की सातवीं रमैनी से मिलती है और उसी अष्टपदी की दूसरी रमैनी बी० की चालीसवीं रमैनी के रूप में मिलती है; उसी की छठी रमैनी बी० की ८३वीं रमैनी से मिलती है और सातवीं बी० की ३०वीं से ही मिल जाती है, आठवीं और भी पहले आकर बी० की २६वीं रमैनी से ही मिल जाती है। प्रश्न यह उठता है कि रमैनियों में कोई निश्चित क्रम माना जाय अथवा नहीं, और यदि माना जाय तो उसमें किस प्रति को प्राधान्य दिया जाय।

संश्लेषणात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इन रमैनियों में आदि से अंत तक एक सुव्यवस्थित विचारधारा की पुष्टि की गयी है। इसी विचारधारा के आधार पर रमैनियों का क्रम लगाने में सहायता मिलती है। पहली रमैनी, जो दा० नि० चौपदी रमैनी की पहली और बी० की भी पहली रमैनी को मिला कर सम्पादित की गयी है, यह भाव प्रकट करती है कि राजा-प्रजा सब एक ही मूल से उत्पन्न होते हैं। सब में एक ही रुधिर और एक ही प्राण व्याप्त है। सभी मनुष्य माता के गर्भ में एक ही प्रकार से दस मास तक निवास करते हैं, किन्तु उत्पन्न होने पर अपने कर्त्ता को भूल जाते हैं और भाव-भक्ति से उसकी आराधना न करने के कारण नाना योनियों में भ्रमण करते हैं।

दूसरी और तीसरी रमैनियों में उस परमतत्व की विलक्षणता का प्रतिपादन किया गया है जिसका आदि-अन्त कोई नहीं जान सकता। उसकी कोई रूपरेखा नहीं। वह न हलका है, न भारी। भूख-प्यास, धूप-छाँह, सुख-दुःख आदि सभी द्वन्द्वों से रहित वह तत्व सर्वत्र परिख्याप्त हो रहा है। उससे बढ़ कर संसार में और कोई नहीं, अतः जीव को सदैव उसी का स्मरण करना चाहिए। पुराणों में जिन अवतारों की कथाएँ मिलती हैं, परमात्मा उनके परे है। उसने न तो दशरथ के घर अवतार लिया और न देवकी के घर। ग्वालों के संग बन-बन फिरने वाला आर गोवर्धन पर्वत उठाने वाला कोई और है। उसने न तो वामन का अवतार लेकर राजा बलि को छला और न शूकरावतार धारण कर पृथ्वी का उद्धार किया। गंडकी शालग्राम, मच्छ-कच्छ आदि के रूप में जो भगवान के अवतारों की कल्पना की जाती है वह भी मिथ्या है। कबीर का विचार है कि यह सारे

परंपरा सांसारिक व्यक्तियों के बनाये हुए हैं। इन सब के परे परमात्मा का जो अग्रम रूप है वही सच्चा है और वही सारे संसार में व्याप्त हो रहा है। यह दोनों रमैनियाँ दा० नि० बारहपदी में क्रमशः पहली और नवीं रमैनी के रूप में तथा बी० में ७०वीं और ७५वीं रमैनी के रूप में मिलती है।

चौथी रमैनी दा० नि अष्टपदी की पहली और बी० की सातवीं रमैनी के सम्मिश्रण से बनी है। उसमें यह बताया गया है कि जब सृष्टि में कुछ नहीं रहता तब भी परमात्मा वर्तमान रहता है। जब पवन-पानी, पिंड-वास, धरती-आकाश, गर्भ-मूल, कली-फूल, शब्द-स्वाद, विद्या-वेद, गुरु-चेला आदि कुछ नहीं थे तब भी वह था। वह अजेय है, उसका कोई नाम-ग्राम नहीं।

आगे की छः रमैनियों में यह बताया गया है कि इस रहस्य को ठीक-ठीक न समझ सकने के कारण जो नाना प्रकार के मत-मतान्तर चल पड़े हैं, उनके मूल में भ्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आदम-होवा, विस्मिल्लाह और दोब्बल-बिहिश्त आदि की कल्पना सर्वथा निराधार है, क्योंकि सृष्टि के प्रारंभ में, जब हिन्दू-मुसलमान का कोई विभाजन नहीं था और न कुल-जाति का कोई प्रश्न था, तब नर्क-स्वर्ग किसने बनाया? जब गाय और कसाई दोनों नहीं थे, तब 'बिस मिल्लाह' कौन बोलता था? जन्म-ग्रहण, नाम-करण, सुन्नत-जनेऊ आदि लोकाचार सब कृत्रिम हैं, इनके मूल में कोई परमार्थ नहीं है। अतः इन बातों के पीछे पागल होना ठीक नहीं। ब्राह्मण लोग वेदादि का अध्ययन कर और सन्ध्या-तर्पण आदि षट् कर्मों का आचरण कर अपने को उच्च समझने लगते हैं। यदि किसी अन्य व्यक्ति से स्पर्श हो जाता है तो पवित्र होने के लिए शरीर तथा वस्त्रादि का प्रक्षालन करते हैं, किन्तु यह भूल जाते हैं कि अधिक गर्व करने से मुक्ति नहीं मिलती। परमात्मा किसी का अहंकार सहन नहीं कर सकता। यदि निर्वाण प्राप्त करना हो तो जाति-कुल का अभिमान छोड़ कर भगवान का भजन करना चाहिए। क्षत्रिय भी अहंकारवश क्षात्र धर्म का पालन करते-करते अपने लिए कर्मों का जाल खड़ा कर लेते हैं। सच्चा क्षत्रिय वस्तुतः वह है जो मन से संग्राम करे और पाँचों इन्द्रियों को वश में कर एक परमात्मा का स्मरण करे। जैन लोग भी षड्दर्शन के आवर्तन में पड़ कर सच्चा मार्ग भूल जाते हैं। अहिंसा का सिद्धांत मानते हुए भी नाना वृक्षों के फल-फूल तोड़ कर देवालय में चढ़ाते हैं। क्या उन वृक्षों को छिन्न-भिन्न करने से हिंसा नहीं होती? बिना सच्चे ज्ञान के निकट की वस्तु भी दूर की ज्ञात होती है। जो तत्त्व समझ लेते हैं उनके लिए वह सर्वत्र दिखाई देता है। सृष्टिकर्त्ता नाना प्रकार के जीवों की सृष्टि करता है, जैसे कुम्हार नाना

प्रकार के वर्तन गड़ता है। सभी का बनाने वाला एक है जो गर्भ में सबकी समान रूप से रक्षा करता है, किन्तु बाहर आने पर सब लोग अपने को विलग-विलग मानने लगते हैं। कितनी बड़ी मूर्खता है? हिन्दू-मुसलमान अथवा ब्राह्मण-शूद्र आदि के विभाजन सब मिथ्या हैं। जैसे गायें भिन्न-भिन्न रंगों की होती हैं, किन्तु दूध एक ही प्रकार का होता है, वैसे ही सब प्राणियों को समझना चाहिए। वास्तव में जो इस विलक्षण सृष्टि की रचना करता है वही सूत्रधार सच्चा है। जो बुद्धिमान हैं, वे उसी का चिन्तन करते हैं। यह रमैनियाँ दा० नि० अष्टपदी में क्रमशः दूसरी, तीसरी, पाँचवीं, छठी, सातवीं तथा आठवीं रमैनी के रूप में मिलती हैं।

आगे की ग्यारहवीं रमैनी दा० नि० सप्तपदी में दूसरी संख्या पर मिलती है और बी० में दसवीं रमैनी के रूप में मिलती है। सृष्टिकर्त्ता ने जगद्रूप वृक्ष की रचना की है जिसमें तीनों लोक तीन शाखाओं के समान हैं, पत्ते चार युगों के समान हैं और उसमें पाप पुण्य के दो फल लगे हैं। इस प्रकार की विलक्षण सृष्टि बना कर बनाने वाला स्वयं इसी में लुप्त हो जाता है, यही इस रमैनी का भाव है। इसके पश्चात् की छः रमैनियों में क्रमशः निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

सारे संसार के ऊपर काल का पहरा सदैव चला करता है। मोह से अंधी दुनिया इस रहस्य को न समझ विषय-वासना में लिपटी रहती है और भूठे सुख को सुख समझ कर उसी की प्राप्ति के लिए पागल बनी रहती है। परिणाम यह होता है कि लोग दुःख से कभी भी छुटकारा नहीं पाते। सच्चा सुख राम नाम में है, उसी का निरंतर चिंतन करना चाहिए, क्योंकि पता नहीं किस समय काल भपट्टा मारकर जीव की इह लोला समाप्त कर दे।

माया का जाल इतना प्रबल होता है कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी उससे छुटकारा नहीं पा सकते।

माया-मोह के भयानक अंधकार में पड़ कर जीव तड़फड़ाता है और उसे कोई मार्ग नहीं सूझ पड़ता।

वह अपनी मुक्ति के लिए षड्दर्शन, षड्आश्रम, वेद चतुष्टय, षड् शास्त्र और अगणित विद्याओं की सृष्टि करता है; तप-तीर्थ, व्रत-आचार, धर्म-नियम, दान-पुण्य आदि की कल्पना करता है, किन्तु यही सब उसके लिए बंधन हो जाते हैं। वह मिथ्या प्रपंचों में पड़कर सच्ची वस्तु को खो बैठता है।

हरि के विद्योम में जीव को बड़ा संताप सहना पड़ता है। जीवन भर उसे

दुःख ही दुःख भेलना पड़ता है, सुख-सुविधा का लेश-मात्र भी अनुभव नहीं होने पाता। यों ही सारा जीवन व्यतीत हो जाता है और काल का डंका सुनाई पड़ने लगता है।

इसो प्रकार नाना योनियों में यह जीव भ्रमण करता है और बड़ा क्लेश भोगता है, किन्तु ऐसा कोई नहीं मिलता जो उसे संताप की ज्वाला में जलने से उबार ले। वह जिसमें अपना हित समझ कर बड़ी ममता करता है वही अन्त में उसका अनहित कर बैठता है। झूठो मृगतृष्णा के पीछे वह सदैव उन्मत्त फिरा करता है, और ममता की ज्वाला में जला करता है।

ऊपर को छः रमैनियाँ दा० नि० की बड़ी अष्टपदी से ली गयी हैं और बीजक में क्रमशः ११, १६, २२, ६८, ८३, तथा ८४ संख्याओं पर मिलती हैं। शेष रमैनियों में से प्रथम दो दा० नि० की दुपदी से और अंतिम सप्तपदी से ली गयी हैं। अठारहवीं रमैनी में यह बताया गया है कि गुरु की ही कृपा होने पर इस ज्वाला से शान्ति मिलती है और सांसारिक विपत्तियों से छुटकारा मिलता है। उन्नीसवीं रमैनी में यह भाव निहित है कि संसार में सार वस्तु केवल राम का नाम है, शेष सब व्यर्थ का भ्रमजाल है। बीसवीं रमैनी में उसी अविनासी राम-नाम की छाया में चिरंतन विश्राम प्राप्त करने का उपदेश किया गया है। विषय-वासनाओं के उपभोग से निकृष्ट योनियों में जन्म मिलता है। भवसागर बड़ा अथाह है। उसे पार करने के लिए राम-नाम रूपी नौका का ही आधार ग्रहण करना चाहिए। हरि की शरण में जाने से वही दुर्लभ समुद्र गोखुर के समान अत्यल्प परिमाण का हो जाता है।

उक्त क्रम का निर्णय प्रयोगात्मक शैली के आधार पर किया गया है। पहले दा० नि० और बी० के क्रमों का पृथक्-पृथक् अनुसरण कर यह देखने का प्रयत्न किया गया कि दोनों में कौन सा रूपांतर अधिक सन्तोषप्रद सिद्ध होता है। इस दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात हुआ कि बी० प्रति के क्रम का अनुसरण करने से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध-सूत्र नहीं मिलता, किन्तु दा० नि० के क्रम का थोड़े हेर-फेर से अनुसरण कर लेने पर वह मिल जाता है। इसका स्पष्ट संकेत दा० नि० की अष्टपदी रमैनी से मिलता है। उसके केवल चौथे पद को छोड़ कर शेष सब बीजक में भी प्रायः ज्यों के त्यों मिल जाते हैं, किन्तु क्रम दोनों में भिन्न हैं। उसी की पहली रमैनी में परम तत्व की विलक्षणता और चिरंतनता का वर्णन है। दूसरी तथा तीसरी में मुसलमानी मत का खंडन है, इसी प्रकार पाँचवीं में ब्राह्मणों के बाह्याचार का, छठी में क्षत्रियों के आचार का और सातवीं में जैन मत का खंडन

मिलता है। अंतिम अर्थात् आठवीं में सब का सामूहिक रूप से समाधान है। यह क्रम प्रत्येक दृष्टि से स्वाभाविक लगता है। बीजक में यही रमैनियाँ क्रमशः ७, ४०, ३६, ३५, ८३, ३०, और २६ संख्याओं पर मिलती हैं। यदि बीजक के उक्त क्रम का अनुसरण किया जाय तो विचारों की स्वाभाविक शृंखला टूट जाती है और सारा तारतम्य नष्ट हो जाता है। इन्हीं साक्ष्यों के आधार पर दा० नि० के क्रम को प्रमुखता दी गयी है और उसकी पाठ-सम्बन्धी त्रुटियाँ बी० की सहायता से सुधारी गयी हैं। क्रम-व्यवस्था में इस बात का ध्यान रखा गया है कि दा० नि० के एक समुच्चय में मिलने वाली ऐसी रमैनियाँ, जिन्हें प्रामाणिक समझा गया है, प्रायः एक ही स्थान पर आ जायें। इस प्रकार पहली रमैनी दा० नि० की चौपदी से, दूसरी तथा तीसरी रमैनियाँ बारहपदी से, चौथी से लेकर दसवीं तक सात रमैनियाँ अष्टपदी से, ग्यारहवीं रमैनी-सतपदी से, बारहवीं से सत्रहवीं तक छः रमैनियाँ बड़ी अष्टपदी से, अठारहवीं तथा उन्नीसवीं रमैनियाँ दुपदी से और अंतिम अर्थात् बीसवीं रमैनी सतपदी से लेकर संकलित की गयी हैं। इस क्रम से दा० नि० के प्रायः सभी समुच्चय पृथक् पृथक् समूहों में एक साथ मिल जाते हैं, केवल सतपदी के ही दो पदों को दो विभिन्न स्थलों पर रखना पड़ा है। रमैनियों के पंक्ति-स्थापन में जहाँ कहीं व्यवधान समझ पड़ा वहाँ दा० नि० अथवा बी० से अतिरिक्त पंक्तियाँ लेकर उसे पूर्ण किया गया है, किन्तु इस बात का निरंतर प्रयत्न किया गया है कि ऐसी पंक्तियों की संख्या कम से कम हो, क्योंकि सिद्धांततः केवल एक शाखा में मिलने वाली पंक्तियों की प्रामाणिकता संदिग्ध ही रहती है। इन्हें केवल प्रसंग के अनुरोध से स्वीकार करना पड़ा है। इस प्रकार की अतिरिक्त पंक्तियों की संख्या कुल पन्द्रह है जिनमें से नौ पंक्तियाँ दा० नि० से और शेष छः बी० से ली गयी हैं।

रमैनियों की पाठ-समस्या पर विचार करने से इस बात का अनुभव हुआ है कि उसके पाठ में दोनों ही शाखाओं में मनमाने पाठ-परिवर्तन हुए हैं। साथ ही इस बात को भी स्वीकार करना पड़ता है कि जहाँ तक रमैनियों के पाठ का संबंध है, दा० तथा बी० दोनों ही शाखाएँ मूल से बहुत दूर की ज्ञात होती हैं। इतर सामग्रों के अभाव से इसके सम्पादन में कोई बाह्य सहायता भी नहीं मिलती। इसलिए संपादन की कठिनाइयाँ बढ़ गयी हैं। किन्तु दोनों शाखाओं की सहायता से सम्पादन के सिद्धांतों को रक्षा करते हुए, जहाँ तक बन पड़ा है, उसे अधिक से अधिक प्रामाणिक रूप देने का प्रयत्न किया गया है। फिर भी अनेक संदिग्ध स्थल ऐसे रह गये हैं जिनका समाधान अभी पूर्णरूपेण नहीं किया जा सका है। किन्तु

प्राप्त सामग्री के अनुसार उसकी पूर्ति के लिए कोई आलम्ब भी शेष नहीं रह गया है ।

दा० नि० में मिलने वाली 'बावनी रमैनी', जो गु० में 'बावन अखरी' के नाम से और बी० में 'ज्ञान चौंतीसा' के नाम से मिलती है, रमैनी छंद में ही रहने के कारण प्रस्तुत ग्रंथ में 'चौंतीसी रमैनी' शीर्षक सहित अंत में जोड़ दी गयी है ।

साखियों का क्रम—कबीर की साखियाँ शक० और शवे० को छोड़ कर शेष समस्त प्रतियों में मिलती हैं । उनमें से भी केवल गु० और बी० प्रतियों को छोड़ कर शेष सभी में विभिन्न अंगों के अनुसार विभाजित रहने के कारण साखियों के क्रम की समस्या अपेक्षाकृत सरल हो गयी है । विशेषतया जिन समुच्चयों का पाठ निरापद रूप से स्वीकार किया गया है उन सभी में समान रूप से अंग-विभाजन का ही क्रम मिलने के कारण उसे स्वीकार कर लेने में कोई बाधा नहीं जान पड़ती । उदाहरण के लिए दा० नि० सा० सावे० सासी० स० गुण० में तथा दा० नि० सा० सावे० सासी० स० में अथवा दा० नि० सा० सावे० सासी० में जो साखियाँ अथवा साखियों के जो पाठ समान रूप से मिलते हैं उन्हें प्रामाणिक माना गया है, क्योंकि उनके द्वारा प्रस्तुत किये हुए पाठों में कोई ऐसी विकृति नहीं मिलती जो सब में पायी जाय । अतः एक बार जब कि उनके द्वारा प्रस्तुत किये हुए पाठ प्रामाणिक मान लिये जाते हैं तो उनमें मिलने वाले क्रम का वह सामान्य ढाँचा भी प्रामाणिक मान लिया जाना चाहिए जिसके अनुसार उक्त प्रतियों की साखियाँ प्रस्तुत हुई हैं । इस दृष्टि से पहले ऐसे अंगों के नाम पृथक् कर लिये गये हैं जो ज्यों के त्यों अथवा कुछ हेर-फेर के साथ सभी प्रतियों में मिलते हैं । इस बात का यथासाध्य प्रयत्न किया गया है कि अंगों की संख्या यथासंभव कम हो है । यदि किसी विशिष्ट साखी के संबंध में सभी प्रतियों का मतैक्य नहीं मिलता तो उसके अंग का निर्णय प्रसंग अथवा औचित्य के आधार पर किया गया है । कौन सा अंग पले होना चाहिए और कौन बाद को, इस प्रश्न का निर्णय भी प्रतियों के साक्ष्य के आधार पर ही किया गया है । किन्तु जहाँ कहीं उनमें वैषम्य मिलता है वहाँ 'सर्वांगों' के साक्ष्य को ही सब से अधिक प्रामाणिक माना गया है । पर्याप्त रूप से प्राचीन होने के साथ ही साथ इसकी क्रम-व्यवस्था एक प्रबुद्ध संत द्वारा की गयी है अतः संत-साहित्य की अन्य विशेषताएँ उसमें स्वतः समाहित हैं । उसके क्रम को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं दीख पड़ता । इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रति के क्रम का अनुसरण कदापि श्रेयस्कर नहीं

कहा जा सकता ! जैसा कि प्रतियों के विस्तृत विवरण से स्पष्ट है, एक ही परिवार की भिन्न-भिन्न प्रतियों में भिन्न-भिन्न क्रम मिलते हैं; एकरूपता कहीं नहीं दिखाई पड़ती। उदाहरण के लिए दा० परिवार की पाँच प्रतियों में, जो प्रस्तुत सम्पादन के लिए चुनी गयी हैं, तीन प्रकार के क्रम मिलते हैं—प्रथम दो प्रतियों का क्रम एक प्रकार का है, तृतीय और चतुर्थ का क्रम दूसरे प्रकार का है और पंचम प्रति का क्रम इन दोनों से भिन्न है। वी० और वीभ० के क्रम में भी पर्याप्त अन्तर है, जिनकी चर्चा उनके विस्तृत विवरण में हो चुकी है। इस प्रकार की अनेकरूपता के बीच सर्वज्ञी का अनुसरण ही श्रेष्ठतर समझा गया।

उक्त सिद्धान्तों के अनुसार निश्चित रूप से प्रामाणिक कोटि में आने वाली कवीर की ७४४ साखियों को जिन अंगों में विभाजित किया गया है उनके नाम तथा क्रम निम्नलिखित हैं—

(१) सतगुरु महिमा—३४ साखियाँ, (२) प्रेम विरह—५५ साखियाँ, (३) सुमिरन भजन महिमा—२६ साखियाँ, (४) साधु महिमा—४३ साखियाँ, (५) गुरु शिष्य हेरा—१३ साखियाँ, (६) दीनता बीनती—१२ साखियाँ, (७) पिव-पहिचानवौ—१२ साखियाँ, (८) संम्रथाई—१७ साखियाँ, (९) परचा—४१ साखियाँ, (१०) सूखिम मारग—१६ साखियाँ, (११) पतिव्रता—१६ साखियाँ, (१२) रस—१० साखियाँ, (१३) बेलि—३ साखियाँ, (१४) सूरतन—४१ साखियाँ, (१५) उपदेस चितावनी—८६ साखियाँ, (१६) काल—४० साखियाँ, (१७) सजेवनि—८ साखियाँ, (१८) पारिख अपारिख—१२ साखियाँ, (१९) जीवत मृत—१७ साखियाँ, (२०) निरपख मधि—११ साखियाँ, (२१) सांच चाणक—३४ साखियाँ, (२२) निगुणां नर—१६ साखियाँ, (२३) निंदा—८ साखियाँ, (२४) संगति—१८ साखियाँ, (२५) भेख आडंबर—२४ साखियाँ, (२६) भरम विधूसन—११ साखियाँ, (२७) सारग्राही—५ साखियाँ, (२८) विचार—८ साखियाँ, (२९) मन—२३ साखियाँ, (३०) बिखे बिकार—२५ साखियाँ, (३१) माया—२८ साखियाँ, (३२) बेसास—१६ साखियाँ (३३) करनीं कथनीं—६ साखियाँ, (३४) सहज—८३ साखियाँ=कुल ३४ अंग, ७४४ साखियाँ।

क्रम के संबंध में केवल एक बात और विचारणीय रह गयी है, वह यह कि साखी, पद और रमैनी तीन मुख्य रचनाओं में से कौन पहले रक्खी जाय और कौन बाद को। इस पर विचार करने के पूर्व यदि सभी प्रतियों के साक्ष्यों का

संक्षिप्त मानचित्र मस्तिष्क में रख लिया जाय तो निर्णय में विशेष सुविधा होगी ।

दा१ दार तथा दा३ में पहले साखियाँ आती हैं तत्पश्चात् पद और रमैनियाँ । दा४ में पहले पद आते हैं तत्पश्चात् रमैनियाँ और अन्त में साखियाँ । नि० में साखियों के पश्चात् पहले रमैनियाँ आती हैं तत्पश्चात् पद आते हैं । गु० में पहले पद आते हैं तत्पश्चात् साखियाँ । 'बावन अखरी' की रमैनियाँ पदों के बीच में ही गौड़ी राग के अन्तर्गत आ जाती हैं । बोजक में पहले रमैनियाँ आती हैं तत्पश्चात् पद और अन्त में साखियाँ मिलती हैं । इनके अतिरिक्त और कोई ऐसी प्रति नहीं जिनमें तीनों रचनाएँ समग्र रूप से मिलती हों ।

पद सब से पहले आयें और साखियाँ सब के अन्त में, यह कई साक्ष्यों से सिद्ध है । गु० तथा बी० में संकीर्ण-सम्बन्ध न होने से दोनों के समान साक्ष्य प्रामाणिक माने गये हैं । यह ऊपर ही बताया जा चुका है कि गु० और बी० दोनों में पद पहले आते हैं और रमैनियाँ बाद को । दा० ४ तथा बी० के साक्ष्य से भी इसी क्रम को पुष्टि मिलती है । अतः प्रस्तुत पुस्तक में पदों को ही सर्व-प्रथम स्थान दिया गया है । रमैनियों का प्रश्न शेष है, किन्तु उनके सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रतियों के साक्ष्य भिन्न-भिन्न दिखलाई पड़ते हैं । यदि दा० की प्रथम तीन प्रतियों का साक्ष्य ठीक माना जाय तो रमैनियों को अन्त में रखना चाहिए और यदि बी० का साक्ष्य उपयुक्त स्वीकार किया जाय तो उन्हें सब के आरम्भ में आना चाहिए; किन्तु दा० और बी० के साक्ष्यों की पुष्टि किसी अन्य प्रति से नहीं होती । गु० में 'बावन अखरी' की रमैनियाँ बीच में आती हैं और बी० में भी 'ज्ञान चौंतीसा' के नाम से बीच में साखियों के पूर्व ही आ जाती हैं । इनके अतिरिक्त दा४ में भी रमैनियों का प्रकरण साखियों के पूर्व और पदों के पश्चात् आता है । इसी प्रवृत्ति की ओर कई प्रतियों का भुकाव देखकर प्रस्तुत पुस्तक में भी रमैनियाँ पदों के पश्चात् रखी गयी हैं और उन्हीं के साथ चौंतीसी रमैनी देते हुए अन्त में साखियाँ दी गयी हैं ।

§ ७ : असाधारण संशोधन

ऊपर जिन सिद्धान्तों की विवेचना की गयी है उनके आधार पर पाठ का सम्पादन कर लेने पर भी कुछ स्थल ऐसे बच जाते हैं जिनके सम्बन्ध में यह

प्रायः स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे मूल प्रति के अथवा कवि के अभीष्ट पाठ नहीं हो सकते। ऐसे स्थलों पर ही संशोधन का आश्रय लेना पड़ा है। किन्तु ऐसे स्थल बहुत थोड़े हैं।

संशोधन करते समय दो बातों का ध्यान बराबर रखा गया है। पहली बात तो यह कि ऐसे पाठों को भलीभाँति ठीक-वजा कर यह देख लिया गया है कि वे निश्चित रूप से विकृत हैं। दूसरी बात यह कि विकृति मान लेने पर फिर उसमें मनमाना संशोधन नहीं किया गया है। ऐसा करते समय प्रतियों के साक्ष्य के साथ-साथ विकृत पाठ की लिपि, भाषा, प्रासंगिकता आदि से संबद्ध विभिन्न सम्भावनाओं पर विचार करते हुए जो पाठ अधिक से अधिक सम्भव समझ पड़ा है उसी को मूल रूप में ग्रहण किया गया है। आगे उद्धृत उदाहरणों से यह बातें स्पष्ट हो जावेंगी।

१—पद ५-७ का प्रस्तावित पाठ है : मुर तैंतीसों कोटिक आए मुनिवर सहस्र अठासो। 'कोटिक' के स्थान पर दा० नि० में 'कौतिग' और गु० में 'कउतक' पाठ मिलते हैं। दा० नि० गु० का समान साक्ष्य सिद्धांततः स्वीकृत होना चाहिए, किन्तु 'कौतिग' पाठ मान लेने पर उक्त पंक्ति का अर्थ होगा : तैंतीसों देवता कौतुक देखने के लिए आये और अठासी सहस्र मुनिवर भी पधारे। किन्तु परम्परागत प्रसिद्धि के अनुसार देवताओं की संख्या तैंतीस करोड़ मानी गयी है; अतः 'कोटिक' पाठ की आवश्यकता प्रतीत हुई। पहले उर्दू 'ते' के ऊपर छोटी सी पड़ी लकीर देकर 'टे' की आवश्यकता पूरी करते थे जिससे 'त' और 'ट' में स्वाभाविक रूप से भ्रम हो जाया करता था। दा० नि० गु० प्रतियों में फ़ारसी लिपिजनित विकृतियों के अनेक उदाहरण मिले हैं। सम्भवतः यह विकृति भी इसी कारण उक्त प्रतियों में पृथक्-पृथक् रूप में आ गयी।

२—पद १०-१६ : कहै कबीर संसा नहीं भुगुति मुकुति गति पाइ रे। भागवत धर्म की सबसे बड़ी विशेषता उसका 'भुक्ति-मुक्ति प्रद' होना है। बौद्धों का निर्वाण पथ केवल मुक्ति-धर्म था। भागवत धर्म में परलोक और जीवन का, भुक्ति और मुक्ति का समन्वय करने का प्रयत्न किया गया। कबीर का आशय भुक्ति-मुक्ति लाभ का ही समझ पड़ता है, भक्ति-मुक्ति का नहीं। फ़ारसी लिपि में 'भुगुति' का सरलता से 'भगति' हो सकता है।

३—पद ५३-४ : पठएं न जाउं अनवा नहिं आऊं सजि रहूं दुनियाई हो।

जिस पद में यह पंक्ति आती है वह दा० नि० सं० बी० में मिलता है।

बी० में उक्त पंक्ति के 'अनवा' पाठ के स्थान पर 'आने' मिलता है और दा० नि० स० में 'अरवा' मिलता है; दा३ में केवल 'रवा' मिल जाता है। पद में भक्त की सहज द्वंद्वातीत अवस्था का वर्णन है—उस अवस्था का जबकि उसे आत्मा-परमात्मा और जगत् के अस्तित्व का पुरा-पुरा बोध हो जाता है। प्रसंग से प्रस्तुत पंक्ति का सरल अर्थ यही होना चाहिए कि न तो मैं किसी के पठाने से कहीं जाता हूँ और न किसी के 'आनने' से कहीं आता हूँ, बल्कि सहज रूप से संसार में निवास करता हूँ। इस दृष्टि से बी० का 'आने' पाठ अधिक प्रासंगिक लगता है; किन्तु दा३ में 'रवा' और दा० नि० स० में 'अरवा' पाठ मिलने का क्या समाधान हो सकता है, इस समस्या पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। 'अरवा' अथवा 'रवा' का न तो कोई लौकिक अर्थ सम्भव पड़ता है और न आध्यात्मिक। अतः वह निश्चय ही विकृत है। राजस्थान में कबीर के पदों की जो प्राचीन टीका मिली है उसमें उक्त पंक्ति का अर्थ इस प्रकार दिया गया है : "पठयां न जाऊं करमां का। भेज्या न जाऊं। अउठा आऊं नहीं संसार में देह धरि। सहज द्वंद रहित हरि की गति आई।" 'अउठा (=वापस) आऊं नहीं' यह अर्थ 'अरवा' पाठ से नहीं सिद्ध होता, अतः निश्चय ही मूल प्रति में इसके स्थान पर कोई दूसरा शब्द था। अनुमान यह है कि वह कदाचित् 'अनवा' था जिससे 'न' तथा 'र' की आकृति-साम्य के कारण स० प्रति में 'अरवा' हो गया। प्राचीन नागरी लिपि में 'न' तथा 'र' प्रायः एक ही प्रकार से लिखे जाते थे। प्रश्न उठ सकता है कि बी० का पाठ ही यहाँ क्यों नहीं मान लिया गया ? किन्तु पाठ-सम्पादन का यह एक मान्य सिद्धान्त है कि एक शब्द के कई पाठान्तरों में प्रायः गूढ़ और अनगढ़ (किन्तु सार्थक) पाठ ही मूल के अधिक निकट न सिद्ध होते हैं और सरलतर रूपान्तर प्रायः बाद के होते हैं। यही कारण है कि बी० का 'आने' पाठ अस्वीकृत कर दा० नि० स० द्वारा प्रस्तुत 'अरवा' के सम्भावित मूल रूप 'अनवा' को ही प्रामाणिक रूप से स्वीकृत किया गया है। एक बात यह भी विचारणीय है कि 'अरवा' की विकृति 'आने' पाठ से किसी भी लिपि में संभव नहीं हो सकती, केवल 'अनवा' से ही हो सकती है, और वह भी बदलती हुई भाषा के प्रभाव से हुई है।

४—पद ६ -१ : मन आहर कहं बाद न कीजै।

उक्त पंक्ति में 'आहर कहं' के स्थान पर सभी प्रतियों में 'अहरखि' पाठ मिलता है, किन्तु इस शब्द की न तो व्युत्पत्ति ही स्पष्ट है और न कोई उपयुक्त अर्थ ही सम्भव पड़ता है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'अहिरख' का अर्थ 'भोजन' दिया है।

के लिए' दिया है^१, किन्तु यह अर्थ किस व्युत्पत्ति के आधार पर दिया गया है, इसका वहाँ कोई संकेत नहीं। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने अपने एक पत्र में 'अहिरख' का अर्थ 'दूसरों की देखादेखी', 'हिंस में पड़ कर' दिया है। उनके अनुसार 'अहिरप' का 'अ' उसी प्रकार का व्यर्थ आगम है जैसे 'अविरथा' आदि में मिलता है, और 'प' का उच्चारण 'स' होना चाहिए। श्री नरोत्तमदास स्वामी के पत्र से भी ज्ञात होता है कि वे इसका अर्थ के संबंध में पूर्णतया निश्चित नहीं हैं। प्रसंग आदि के अनुसार उन्होंने इसका संभावित अर्थ 'अहंभाव के साथ अथवा गवपूर्वक'—कदाचित् 'अहं' (अहंकार) + 'रखि' (रख कर) के आधार पर दिया है। किन्तु इन अर्थों में से कोई भी संतोषजनक नहीं सिद्ध होता। साथ ही दा० नि० गु० स० में समान रूप से यही शब्द मिल जाने से इस बात का पूर्ण संकेत मिलता है कि मूल प्रति में यह अथवा इससे मिलता-जुलता कोई अन्य शब्द अवश्य था। लिपि-विकृति की संभावनाओं पर विचार करने से यह अनुमान लगता है कि मूल प्रति में कदाचित् 'आहर कहं' (आहर=उद्यम;^२ कर्त्तव्य, तद्वीर—भाग्य अथवा 'तक्रदीर' के विरोध में) पाठ था जो आगे चल कर उर्दू में लिखे रहने के कारण 'अहरपि', 'अहिरख, या 'अहरखि' पढ़ लिया गया और यही पाठ आगे की प्रतियों में भी चलने लगा। उर्दू में 'आहर कहं' का 'अहरखि' सरलता से हो सकता है। 'आहर' शब्द का प्रयोग गुरु अर्जुनदेव के एक सलोक में भी प्रायः इसी अर्थ में मिलता है। सलोक इस प्रकार है : आहर सभि करदा फिरै, आहर इकु न होइ-। नानक जितु आहरि जगु ऊधरै, विरला बूझै कोइ ॥^३ अर्थात् मनुष्य सभी (सांसारिक) उद्यम करता फिरता है, परन्तु (इससे वह) एक उद्यम नहीं होता। हे नानक, जिस उद्यम (के वसीले) से जगत् उद्धार पाता है उसे कोई विरला ही समझता है। जायसोकृत 'पदमावत' तथा मंभनकृत 'मधुमालती' में भी उक्त शब्द का प्रयोग मिलता है, जहाँ यह 'निष्फल' (आहर > अहल > अफल = निष्फल) अर्थ प्रकट करता हुआ ज्ञात होता है; तुल० कत तप कीन्ह छांड़ि कै राजू ॥ आहर गएउ न भा सिधि काजू ॥ जेई जग जनमि न तोहि पहिचांनं ॥ आहर जनम मुएं पछितांनं ॥^४ इस अर्थ से भी संशोधित पाठ में कोई कठिनाई नहीं उपस्थित होती।

४—पद २५ को अन्तिम पंक्ति का निर्धारित पाठ है : चिरकुट फारि चुहाड़ा लै गयो तनी तागरी छूटी। दा० नि० स० में इस पंक्ति का पाठ है : चड़ा चीथड़ा

१. संत कबीर, परि० पृ० १३२। २. तुल० बी० एस० आस्टे, संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी—आहर—(संज्ञा) अकॉम्प्लिशिंग, परफॉर्मिंग, पृ० ११। ३. श्रीगुरुग्रन्थसाहब, मिश्रन-संस्करण, पृ० १६५। ४. दे० डा० माता प्रसाद गुप्त संपादित पदमावत, बंद २०५-६ तथा मधुमालती, बंद ५-१।

चूहड़ा ले गया तणीं तणगती टूटी । गु० का पाठ है : चिरगट फारि चटारा ले गडग्री तरी तागरी छूटी । गु० का 'चिरगट' शब्द वास्तव में अवधी के 'चिरकुट' का विकृत रूप है । 'चिरकुट' शब्द का प्रयोग यहाँ पूर्णतः फटे वस्त्र के लिए किया जाता है, और उसका यहाँ प्रसंग भी है । 'तरी' पाठ में भी विकृति ज्ञात होती है क्योंकि 'तरी तागरी' का कोई उपयुक्त अर्थ नहीं निकलता । वस्तुतः यह 'तनी' शब्द का विकृत रूप ज्ञात होता है जो प्राचीन नागरीलिपि-जनित भ्रम से हुआ जान पड़ता है । दा० और स० का 'तणीं' तथा नि० का 'तड़ी' पाठ भी उसी रूप की ओर संकेत करते हैं । 'चूहाड़ा' अवधी प्रदेश में अभी तक बोला जाता है जो 'चूहा' से व्युत्पन्न है । पश्चिमी हिन्दी में वही 'चूहड़ा' है जो डोम अथवा मेहतर का द्योतक होता है । शव के फटे-चिथड़े प्रायः मेहतर या डोम ले जाते हैं । 'चूहाड़ा' से ही कदाचित् फ़ारसी लिपि के कारण गु० में 'चटारा' पाठ हो गया । 'तागड़ी' करधन या कटिसूत्र को कहते हैं, और 'तनी' का अर्थ है 'चोली बंद'५ । मिर्जा खाँ कृत 'तुहफतुल् हिंद' (हिंदी-फ़ारसी कोश जिस में एक ह० लि० प्रति इंडिया ऑफिस लायब्रेरी, लंदन में सुरक्षित है; रचनाकाल १६७६ ई० से कुछ पूर्व) के पृ० २२८ ए पर 'तनी' शब्द के लिए 'बंदजामा व अम्साले आँ बुवद' टिप्पणी दी हुई है जिससे ज्ञात होता है कि यह बंदजामा की तरह कोई वस्त्र था जिसे पुरुष भी धारण करते थे । प्राचीन काल में प्रायः लोग कटिसूत्र पहना करते थे । तागड़ी पुरुष भी पहना करते थे । हर्ष ने प्राग-ज्योतिषेश्वर के दूत हंसवेग को "मोतियों से बना हुआ परिवेश नामक कटिसूत्र और माणिक्य खचित तरंगण नामक कर्णाभरण एवं बहुत सा भोजन का सामान भेजा था । (२१६)"६ शव को जलाते समय उसे समस्त बंधनों से मुक्त कर देते हैं अतः अंतिम समय में चोली बंद तथा कटिसूत्र तोड़कर निकाल लिये जाते थे—कवि का यही भाव है ।

५—८३-५ : आयी चोर तुरंगहि लै गयी मोहड़ी राखत मुगध फिर ।

उक्त पंक्ति में 'मोहड़ी' शब्द के स्थान पर दा० नि० म० में 'मोरी' और गु० में 'मेरी' पाठ मिलते हैं, किन्तु इन दोनों पाठों से उपर्युक्त अर्थ की सिद्धि

५. तुल० सोहत चोली चारु तनी । (परमानंददास, ३७६) तथा : अंजन नैन तिलक सेंदूर कृत्रि चोली चारु तनी । (कुमनदास, ३१७) । दोनों उद्धरण 'अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन' में पृ० १४० पर डॉ० मायारानी टंडन द्वारा उद्धृत ।

६. द० हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, १९५३ ई०, पृ० १७१ ।

नहीं होती अतः दोनों अशुद्ध ज्ञात होते हैं। यहाँ पर तुरंग का प्रसंग है जिससे यह अनुमान होता है कि मूल में कदाचित् 'मोहड़ी' (= घोड़े के मुँह पर लगने वाला एक साज, मुद्देड़ा) पाठ रहा होगा जो उर्दू में रहने के कारण भूल से 'मोरी' पढ़ लिया गया होगा। उर्दू में 'मोहड़ी' लिखने के लिए मीम, वाव, हे, डे, ये का प्रयोग होता है। यदि शीघ्रता में 'हे' का शोशा लगना भूल जाय तो इसे सरलता से 'मोड़ी' या 'मोरी' पढ़ा जा सकता है, क्योंकि उर्दू 'डे' और 'रे' में अधिक अन्तर नहीं होता। गु० में या उसके किसी पूर्वज में 'मोरी' के स्थान पर कदाचित् उसका समानार्थी पश्चिमी रूप लाने के लिए 'मेरी' कर दिया गया, किन्तु यहाँ 'मोरी' अथवा 'मेरी' दोनों अप्रासंगिक हैं। 'मोरी' का प्रयोग प्रायः छोटी पुलिया के अर्थ में किया जाता है और 'मेरी' को यदि 'मेरा' का स्त्रीलिंग रूप माना जाय तो वह यहाँ नितान्त निष्प्रयोजन होगा, और यदि उसे 'मैड़ी' (=महल) का रूपान्तर माना जाय तब भी उसे पूर्णतया प्रासंगिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि घुड़साल को महल नहीं कहा जाता। इसके विपरीत 'मोहड़ी' पाठ से रचनाकार का वास्तविक तात्पर्य स्पष्ट रूप से व्यक्त हो जाता है। घोड़े के न रहने पर उसकी मोहड़ी का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। घोड़े को चोर चुरा ले गया, किन्तु मूर्ख अभी उसकी मोहड़ी का पहरा देता फिरत है—यही उक्त पंक्ति का उपयुक्त अर्थ होगा।

६—१०८-२ : तरवर एक पींड विनु ठाढ़ा विनु फूलां फल लागा।

'पींड' के स्थान पर दा० नि० स० में 'पेड़' और बी० में 'मूल' पाठ मिलते हैं। बी० की तुलना में स० का पाठ अधिक प्रामाणिक माना गया है अतः उसके पाठ पर भलीभाँति विचार किये बिना उसे अस्वीकृत नहीं करना चाहिए। इसी पंक्ति में पहले 'तरवर' शब्द आ जाने से पुनः 'पेड़' मिलने पर पुनरुक्ति मानी जायगी, अतः उसे इस रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु अनुमान है कि मूल प्रति में वस्तुतः 'पींड' (=जड़ के जालों में बँधी हुई मिट्टी आदि से युक्त ढिंड)। तुल० जायसी, पदमावत २८-२-१ : कटहर डार पींड सों पाके।) पाठ था जिसे फ़ारसी लिपि के भ्रम के कारण प्रतिलिकारों ने 'पेड़' पढ़ लिया होगा, क्योंकि उर्दू में 'पींड' और 'पेड़' एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं। दा० नि० स० प्रतियों की पुनरुक्ति इसी प्रकार से आई हुई ज्ञात होती है। बी० में कदाचित् पुनरुक्ति से बचने के लिए 'मूल' पाठ ग्रहण कर लिया गया।

७—११०-१ : मैं कातों हजारी क सूत चरखुला जिनि जरै।

उक्त पंक्ति में 'हजारी' पाठ किसी भी प्रति में नहीं मिलता। दा० नि०

स० में 'हजरी' और बी० में 'हजार' पाठ मिलते हैं, किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में इनका कोई उपयुक्त अर्थ नहीं निकलता। सूत के प्रसंग में वस्तुतः 'हजरी' पाठ आना अधिक प्रसंगोचित जान पड़ता है। अत्यन्त बारीक सूत या वस्त्र के लिए मध्यकाल में 'हजारो' या 'हजारिया' विशेषण दिया जाता था। कबीर की रचनाओं में अन्यत्र भी इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है; तुल० दा० साखी २८-१३-१ : भगति हजारो कापड़ा, तामैं मन न समाइ। तथा नि० आसावरी ७७-१ : रहटो म्हारो अजब फिरै राजा राम तणां कतवारी। तू कते कते सूत हजारो है ॥ ऐसा ज्ञात होता है कि मात्राभंग के भय से एक शाखा में 'हजारी' को 'हजरी' और दूसरी में 'हजार' कर दिया गया है।

८—११४०-१ : हरि के खारे बरे पकाए जिन जाने तिन खाए।

उपयुक्त पंक्ति के द्वितीय चरण का पाठ गु० में 'किनै बूझनहारे खाए' है जो स्पष्ट ही पंजाबी प्रभाव से युक्त है और परवर्ती संशोधन सा ज्ञात होता है। दा० नि० स० में 'जाने' के स्थान पर 'जारे' पाठ मिलता है, जो उक्त प्रसंग में निरर्थक है अतः यहाँ पर उसके पूर्ववर्ती पाठ की खोज की आवश्यकता जान पड़ी। प्राचीन नागरी या कैथी में 'न' और 'र' में अत्यधिक भ्रम मिला करता है। प्रस्तुत विकृति के मूल में भी यही भ्रम ज्ञात होता है। मूल प्रति में वस्तुतः 'जाने' पाठ रहा होगा जिसे भ्रम से किसी प्रतिलिपिकार ने 'जारे' लिख लिया और वही पाठ चलने लगा। ज्ञात होता है कि गु० या गु० के किसी पूर्वज में 'जारे' पाठ से असंतुष्ट होकर 'किनै बूझनहारे' पाठ के रूप में उसका संशोधन कर लिया गया।

९—११६-६ : तलि करि पत्ता ऊपरि करि मूल। बहुत भाँति जड़ लागे फूल ॥ दा० और स० में 'पत्ता' के स्थान पर 'साखा' और नि० में 'डार' पाठ आते हैं, किन्तु गु० में इसके स्थान पर 'बैसा' पाठ मिलता है। 'साखा' अथवा 'डार' से पंक्ति के मूल भाव में कोई परिवर्तन नहीं होता, किन्तु गु० के पाठ से मूल पाठ के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न होता है। गु० में 'बैसा' पाठ किस प्रकार आया, इसकी संभावनाओं पर विचार कर लेना आवश्यक है। लिपि-संबन्धी विभिन्न संभावनाओं पर विचार करने से यह अनुमान होता है कि मूल पाठ कदाचित् 'पत्ता' था जिसे उर्दू में रहने के कारण गु० में 'बैसा' कर लिया गया। 'पत्ता' लिखने के लिए उर्दू में पे, ते, और अलिफ़ मिलाये जाते हैं। यदि 'ते' के दोनों नुक्ते बारीक होकर जबर के सदृश्य हो जायें और उस के नीचे वाले नुक्ते कुछ बिखर जायें तो उसे 'बैना', 'बैता' अथवा 'बैसा' भी पढ़ा जा सकता

है। अनुमानतः पाठ की उपर्युक्त विकृति के अनन्तर अर्थ में कठिनाई उपस्थित होने पर दा० तथा स० में 'साखा' और नि० में 'डार' संशोधन कर लिये गये होंगे।

१०—एक प्रकार का संशोधन और है जो साखियों में सामान्य रूप से सर्वत्र किया गया है। ऐसे समुच्चयों में जहाँ सभी प्रतियाँ पश्चिमी आ गयी हैं, कुछ क्रिया-पद, विशेषतया सामान्य भविष्यत् काल के रूप, राजस्थानी के आ गये हैं। कबीर की भाषा में राजस्थानी क्रियाओं की स्थिति खटकती है। यह रूप केवल इसलिए आये हुए ज्ञात होते हैं कि जहाँ-तहाँ स्वीकृत समुच्चयों में भी सारी प्रतियाँ राजस्थानी से प्रभावित हैं। यह समुच्चय प्रायः दा० नि० सा० सासी० स० गुण०, दा० नि० सा० सासी० गुण०, दा० नि० सा० सासी० स० अथवा दा० नि० सा० सासी० के हैं। इनमें भविष्यत् काल के रूपों में प्रायः-सी प्रत्ययांत क्रियाएँ आयी हैं, जो राजस्थानी की एक स्थूल विशेषता है। प्रतियों का साक्ष्य न रहने पर भी इन सभी क्रियाओं को कबीर की भाषा की प्रकृति के अनुसार प्रायः 'ई' अथवा 'है' प्रत्ययांत रूप दिये गये हैं। उदाहरणतया—

(क) ४-१६-२ : होसी चंदन बावना, नींव न कहसी कोय। यह साखी दा० नि० सा० सावे० सासी० स० गुण० में मिलती है और सब में 'होसी' तथा 'कहसी' पाठ ही मिलते हैं। इनके स्थान पर क्रमशः 'होइ जु' तथा 'कहिहै' संशोधन किये गये हैं।

(ख) ४-२२०-२ : दुर्मति दूरि बहावसी, देसी सुमति बताइ। 'बहावसी' तथा 'देसी' के स्थान पर क्रमशः 'बहावई' और 'देई' का प्रस्ताव किया गया है।

(ग) १४-६-२ : कबीर या बिनु सूरिवां, भला न कहसी कोय।

'कहसी' के स्थान पर 'कहिहै' संशोधन।

किन्तु सम्पादित पाठ में राजस्थानी रूप देने के अन्तर उनके सम्भावित पूर्वी रूप कोष्ठकों में ही दिये हुए हैं क्योंकि बहुत कुछ संभावना इस बात की भी है कि कबीर के समय में जिस भाषा का स्वरूपविकास हो रहा था उस पर पश्चिमी प्रभाव पर्याप्त मात्रा में था; क्योंकि उसी समय के लगभग कुछ सूक्त्यों की दक्खिनी रचनाओं में भी इस प्रकार के रूप यदाकदा मिल जाते हैं।

द्वितीय खण्ड : कबीर-वाणी का निर्धारित पाठ

कबीर-ग्रंथावली

कबीर-ग्रंथावली

पद

(१) सतगुर महिमा

[१]

हमारै^२ गुर बड़े^३ भ्रिगो ॥

आनि कीटक करत भ्रिग सो आपतैं रंगो^४ ॥ टेक ॥

पाइ^५ औरै पंख औरै औरै रंग रंगी ।

जाति पाति^६ न लखै कोई भगत भी भंगी^७ ॥ १ ॥

नदी नांला मिले^८ गंगा^९ कहावैं गंगी ।

समानों दरियाव दरिया पार नां लंघी^{१०} ॥ २ ॥

चलत मनसा अचल कीन्हों^{११} मांहि मन पंगी^{१२} ।

तत्त में निहतत दरसा^{१३} संग में संगी ॥ ३ ॥

बंध तैं निर्बंध कीया^{१४} तोरि^{१५} सब तंगी ।

कहै कबीर अगम किया गम^{१६} राम^{१७} रंग रंगी ॥ ४ ॥^{१८}

[१]

नि० सोरठि ५९, शबे० (१) विरह-प्रेम ३१—

१. शबे० में इसके पूर्व 'गुरु बड़े भंगी' और जुड़ा है । २. नि० मेरा । ३. नि० बड़ा ।
 ४. शबे० कीट सों ले भंग कीन्हों आप सों रंगी । ५. शबे० पांव । ६. शबे० कुल । ७. शबे० सब
 भये भंगी । ८. नि० मिली (उर्दू मूल) । ९. शबे० गंगे । १०. शबे० दरियाव दरिया जा
 समाने संग में संगी (पुन० तुल० पंक्ति ८) । ११. नि० राखी । १२. शबे० मन हुआ
 पंगी । १३. नि० मिलिया । १४. शबे० कीन्हा । १५. शबे० तोड़ । १६. नि० कहै कबीर
 कोई साध निब जन । १७. शबे० नाम । १८. नि० में ऊपर की शब्दी तथा षठी पंक्तियाँ षठी
 के बाद मिलती हैं ।

[२]

हमारै गुर^१ दीन्हों अजब^२ जरी ।^३

कहा कहों कछु कहत न आवै^४ अंछित^५ रसन^६ भरी ॥ टेक ॥^७

याही तैं मोहि प्यारी लागी^८ लैकै^९ गुपुत धरी ।^{१०}

पांचों नांग पचीसों नांगिनि^{११} संधत तुरत मरी ॥ १ ॥

डांडनि एक सकल जग खायो सो भी देखि डरी^{१२} ।^{१३}

कहै कबीर भया घट निरमल सकल बियाधि ठरी^{१४} ॥ २ ॥

[३]

गुर बिन दाता कोइ नहीं^१ जग मांगनहारा ।

तीनि लोक^२ ब्रह्मंड में सब के भरतारा ॥ टेक ॥

अपराधी तीरथि चले तीरथ कहा^३ तारै ।

कांम क्रोध मल^४ भरि रहे^५ कहा देह पखारै ॥ १ ॥

कागद की नौका बनों^६ बिचि लोहा भारा^७ ।

सबद भेद बूझे बिनां बूड़े मंभधारा^८ ॥ २ ॥^९

[२]

नि० घनाश्री १०, शवे० (१) विरह-प्रेम १४—

१. शवे० गुरू ने (?) मोहि । २. नि० एक । ३. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : सो हम बसि के रुचि सूं पीसी वेदनि सकल भरी (पुन० तुल० पंक्ति ६ में—'सकल बियाधि ठरी') । ४. शवे० सो जरी मोहि प्यारी लगतु है (पुन० तुल० उपर्युक्त पद की अगली पंक्ति) । ५. नि० अंछित (उर्दू मूल) । ६. नि० रस सूं । ७. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : जाकी मरम साथ मल जानै परम असोल खरी । ८. शवे० काया नगर अजब इक बंगला [भारतीय भाषाओं में 'बंगला' शब्द का प्रयोग फिरंगियों के आगमन के पश्चात् ही माना जा सकता है । अतः शवे० में इसका प्रयोग चित्य है ।] । ९. शवे० तासैं । १०. नि० में इसके पश्चात् अतिरिक्त : त्रिविध विकार ताप तन भाजै दुरमति सकल ठरी (तुल० पद की अंतिम पंक्ति) । ११. नि० मन रे भवंग अरु पांच नागिनी । १२. शवे० या कारे ने सब जग खायो सतगुर देखि डरी (खी० क्रिया 'डरी' के साथ पु० कर्ता 'कारे' व्याकरण-विषय और 'जरी' के प्रसंग में 'सतगुर देखि' प्रसंग-विरुद्ध) । १३. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : जाके सुने तैं मृत परानी और कहा बपरी । १४. शवे० कहत कबीर सुनो भाई साथो लें परिवार तरी ।

[३]

नि० विलावल २१, शवे० (१) विरह-प्रेम २—

१. नि० सतगुर समि दाता नहीं । २. नि० अखंड खंड । ३. शवे० का । ४. शवे० मद (उर्दू मूल) । ५. शवे० ना मिटा । ६. नि० कागद की असी नावरी । ७. शवे० भारे । ८. शवे० सबद भेद जानै नहीं मूरख पचि हारे (नौका के प्रसंग में 'बूड़े मंभधारा' अधिक प्रासंगिक लगता है) । ९. शवे० में इसके बाद अतिरिक्त—

बांछ मनोरथ पिय मिले घट भया उजारा । सतगुर पार उतारिहे सब संत पुकारा ॥

पाहन को का पुजिए यामे का पावै । अठसठ के फल घर मिले जो सख बिसावै

कहै कबीर भूलौ कहा कहं दूंदत डोलै ।^{१०}
बिन सतगुरु नहिं पाइए घट ही में बोलै ॥ ५ ॥^{११}

[४]

सतगुरु साह संत^१ सौदागर तहं में चलि कै जाऊं जी^२ ।
मन की मुहर^३ धरौं गुरु आगै ग्यान कै घोड़ा लाऊं जी ॥ टेक ॥
सहज पलान चित कै चाबुक^४ लौ की लगांम^५ लगाऊं जी ।
विवेक^६ बिचार भरौं तन^७ तरगस सुरति कमान^८ चढ़ाऊं जी ॥ १ ॥
धीर गंभीर खड़ग लिए मुदगर^९ माया कै कोट दहाऊं जी ।^{१०}
मोह मस्त मैवासी राजा ताकौं पकड़ि मंगाऊं जी ॥ २ ॥
रिपु कै दल में सहजहिं रौंदौं^{११} अनहद तबल घुराऊं जी^{१२} ।
कहै कबीर मेरै सिर पर साहेब मैं ताकौं सीस नवाऊं जी ॥ ३ ॥

(२) प्रेम

[५]

दुलहिनीं गावहु मंगलचार ।^१
हंम घरि^२ आए राजा राम भरतार^३ ॥ टेक ॥
तन रत करि मैं मन रति करिहौं^४ पांचउ तत्त बराती^५ ।
राम देव^६ मोरै पाहुनै आए^७ मैं जोबन मैमाती^८ ॥ १ ॥
सरीर सरोबर बेदी करिहौं ब्रह्मा वेद उचारा^९ ।
राम देव संगि भावरि लेहहौं धनि धनि भाग हमारा^{१०} ॥ २ ॥

१०-११. शबे० कहै कबीर बिचारि के अंधा खल डोलै। अंधे को सूकै नहीं घट ही में बोलै ॥
('अंधा' तथा 'अंधे' में पुनः) ।

[४]

नि० गौड़ी १३५, शबे० (२) सतगुरु—

१. नि० बड़े । २. नि० जाऊंगा (नि० में प्रत्येक 'जी' के स्थान पर 'गा' मिलता है ।) ३. नि०
महोर । ४. नि० पवन का घोड़ा (पुन० दे० ऊपर की पंक्ति में भी 'ग्यान' कै घोड़ा) । ५. शबे०
अलख लगाव । ६. नि० ग्यान (पुन० तुल० पंक्ति २ में : ग्यान कै घोड़ा) । ७. शबे० तिर ।
८. नि० कवांश । ९. शबे० दलमल । १०. शबे० में यह पंक्ति नहीं है । ११. नि० गण
गंधप मैं सहजै पाया । १२. शबे० आनंद तलब (विपर्यय ?) बजाऊं जी ।

[५]

दा० नि० गौड़ी १, गु० आसा २४, शबे० (१) विरह-प्रेम—

१. गु० गाउ गाउ री दुलहिनी मंगलचारा । २. गु० मेरे ग्रिह । ३. गु० राजा राम भतारा,
शबे० परम पुरुष भरतार (कदाचित् राधास्वामी मत से प्रभावित होने के कारण शबे० में 'राजा
'राम' के स्थान पर 'परम पुरुष' पाठ मिलता है) । ४. गु० तनु रैनी मनु पुनरपि करिहउ (उर्दू
मूल) । ५. दा० पंच तत्त बरियाती, नि० पंचू तत्त बराती, शबे० पंच तत्व तब राती (नागरी
मूल) । ६. गु० राम राइ, शबे० गुरुदेव (सांप्रदायिक प्रभाव) । ७. गु० राम राइ सिउ भावरि
लेहउ (तुल० बाद की छठी पंक्ति का प्रथम चरण) । ८. गु० आतम तिहि रंग राती । ९. गु०
नामि कमल महि बेदी रचिले ब्रह्म गिआन उचारा । १०. गु० राम राइ सो दूलह पाइओ अथ

सुर तैतीसों^{११} कोतिग^{१२} [कोटिक ?] आए मुनिवर^{१३} सहस्र अठासी^{१४} ।
कहै^{१५} कबीर हंम^{१६} ब्याहि चले हैं पुरिख एक अविनांसी^{१७} ॥३॥^{१८}

[६]

बहुत दिनन में प्रीतम आए^१ ।

भाग बड़े घरि बैठें पाए^२ ॥ टेक ॥^३

मंगलचार मांहि^४ मन राखौ । रांम^५ रसाइन रसनां चाखौ ॥ १ ॥

मंदिर मांहि^६ भया उजियारा । लै सूती अपना पिय प्यारा ॥ २ ॥

में निरास जो नौ निधि पाई^७ । हमहि कहा यह तुमहि बड़ाई^८ ॥ ३ ॥

कहै कबीर मैं कछु न कोन्हां । सहज^९ सुहाग रांम^{१०} मोहि दीन्हां ॥ ४ ॥

[७]

अब तोहि जान न दैह रांम पियारे^१ ।

ज्यों भावै त्यौं होहु^२ हमारे ॥ टेक ॥

बहुत दिनन के बिछुरे हरि^३ पाए । भाग बड़े घर बैठें आए ॥ १ ॥^४

चरनन लागि करौं सेवकाई^५ । प्रेम प्रीति राखौं उरभाई ॥ २ ॥

आज बसौ मन मंदिर चोखै^६ । कहै कबीर परहु^७ मति धोखै ॥ ३ ॥

बड़ भाग हमारा । ११ गु० सुरनर मुनि जन । १२ गु० कउतक (उर्दू मूल) । १३ दा० नि० मुनिवर । १४ गु० कोटि तैतीसउ जाना । १५ गु० कहि । १६ गु० मोहि । १७ गु० पुरख एक भगवाना । १८ गु० में पद की प्रथम दोनों पंक्तियाँ चौथी पंक्ति के बाद आती हैं ।

[६]

दा० नि० गौड़ी २, स० ३०-१, शवे० (२) प्रेम ९—

१. दा० नि० स० बहुत दिनन ते में प्रीतम पाए । २. दा० नि० स० आए । ३. दा० नि० स० तथा शवे० में इन पंक्तियों की पुनरावृत्ति—तुल० दा० गौड़ी ३-२ तथा स० ३०-२-२: बहुत दिनन के बिछुरे पाए । भाग बड़े घर बैठें आए ॥ शवे० यथा: बहुत दिनन के बिछुरे पाए । भाग बड़े घर बैठें आए ॥ [किन्तु किसी भी कवि की रचना में प्रसंगानुकूल इस प्रकार की साधारण पुनरावृत्ति हो सकती है; अतः यह पंक्ति दोनों स्थलों पर मूल रूप में स्वीकृत की गयी है—दे० भूमिका ।] ४. शवे० महा । ५. शवे० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । ६. दा० नि० स० मैं र निरासी जे निधि पाई । ७. शवे० कहा करौं पिय तुमरी बड़ाई । ८. दा० नि० स० सखी । ९. शवे० पिया (सांप्रदायिक प्रभाव) ।

[७]

दा० नि० गौड़ी ३, स० ३०-२, शवे० (२) प्रेम १९—

१. शवे० जान न रीं पिउ प्यारे । २. शवे० रहो । ३. शवे० में 'हरि' शब्द नहीं है । ४. दा० नि० स० तथा शवे० में इस पंक्ति की पुनरावृत्ति—तुल० दा० नि० गौड़ी २-१, स० ३०-१-१ यथा: बहुत दिनन ते में प्रीतम पाए । भाग बड़े घर बैठे आए ॥ तथा शवे० (२) प्रेम १-१, २—यथा: बहुत दिनन में प्रीतम आए । भाग भले घर बैठे पाए ॥ (किन्तु दे० भूमिका ।) ५. दा० नि० स० बरिआई । ६. दा० नि० स० इत मन मंदिर रही नित चोखै । ७. स० परीह ।

[८]

रांम भगति^१ अनियाले तोर ।जेहि लागै सो जानै पीर^२ ॥ टेक ॥^३तन महि^४ खोजौ चोट न पावौ^५ । ओषध मूरि कहां घंसि लावौ^६ ॥ १ ॥^७एक भाइ^८ दीसै^९ सब नारी । नां जानौ को पिपहि पिपारी^{१०} ॥ २ ॥कहै^{११} कबीर जाकै मस्तकि भाग । सभ परिहरि ताकौ मिलै सुहाग^{१२} ॥ ३ ॥

[९]

रांम बिनु तन की तपनि न जाइ^१ ।जल महि^२ अगिनि उठी अधिकाइ ॥ टेक ॥तू^३ जलनिधि हउं^४ जल का^५ मौनु^६ । जल मोहि^७ रहउं जलहि बिनु खौनु^८ ॥ १ ॥तू^९ पिजरु हउं^{१०} सुअटा तोर^{११} । जनु मंजार कहा करै मोर^{१२} ॥ २ ॥^{१३}तू^{१४} सतिगुरु हउं^{१५} नौतनु^{१६} चेला । कहै^{१७} कबीर मिल्नु अंत की बेला^{१८} ॥ ३ ॥

[१०]

गोकुल नाइक बोलुला^१ मेरा मनु लाग़ा तोहि रे ।^२बहुतक दिन बिछुरै भए तेरी औसेरि आवै^३ मोहि रे ॥ टेक ॥

करम कोटि कौ ग्रह रच्यौ रे नेह गए की आस रे ।

आपहि आप बंधाइया दोइ लोचन मरहि पियास रे ॥ १ ॥

[८]

दा० गौड़ी ११८, नि० गौड़ी १२१, गु० गउड़ी २१, स० ७-१—

१. दा० नि० स० बांन (पुन० आगे 'तोर' में) । २. गु० लागी होइ सु जानहि पीर ।
 ३. गु० में दोनों चरण परस्पर स्थानांतरित और दूसरी पंक्ति के बाद । ४. दा० नि० स० मन ।
 ५. गु० खोजत तन महि ठउर न पावउ । ६. गु० कत नही ठउर मूल कत लावउ । ७. गु०
 में दोनों चरण स्थानांतरित । ८. दा० नि० स० एक रूप । ९. गु० देखउ । १०. गु०
 किया जानउ सह कउन पेअरी । ११. गु० कहू । १२. दा० नि० स० नां जानू काकू देइ
 सुहाग ।

[९]

दा० गौड़ी १२०, नि० गौड़ी १२३, गु० गउड़ी २—

१. गु० माघउ जल को पिआस (?) न जाइ । २. दा० नि० में । ३. दा० नि० तुम्ह ।
 ४. दा० नि० में । ५. गु० का । ६. दा० नि० मीचा—खीना । ७. दा० नि० सुवना तोरा ।
 ८. दा० नि० दरसन देहु भाग बड़ मोरा । ९. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : तू तरवर हउं पखी
 आहि । मंद भागी तेरो दरसन नाहि ॥ १०. दा० नि० नौतम (हिन्दी मूल) । ११. गु० कहि ।
 १२. दा०, नि० राम रमू अकेला ।

[१०]

दा० नि० गउड़ी ५, गु० गउड़ी ५५—

१. गु० सावल सुंदर रामइआ । २. गु० में इसके आगे की आठ पंक्तियाँ नहीं हैं, किन्तु बिना
 इन पंक्तियों के भाव पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं होता, अतः मूल रूप से स्वीकार करने में कठिनाई
 नहीं पड़ती होती । ३. नि० लागी ।

आपा पर संमि^४ चीन्हिए तब दीसै सरब समान ।^५
 इहि पद नरहरि भेंटिए तू छांड़ि कपट अभिमान रे ॥ २ ॥^६
 नां कतहूँ चलि जाइए नां लीजै सिरि भार ।
 रसनां रसहि बिचारिए सारंग श्री रंग धार रे ॥ ३ ॥
 साधन तैं सिधि पाइए^७ किंवा होइम होइ^८ ।
 जे दिह ग्यांन न ऊपजै तौ अहटि (आथि ?) मरै जनि कोइ रे^९ ॥ ४ ॥
 एक जुगति एकै मिलै^{१०} किंवा जोग कि भोग^{११} ।
 इन दोनितं फल पाइए राम नाम सिधि जोग रे^{१२} ॥ ५ ॥
^{१३}तुम्ह जिनि जानौं गीत है^{१४} यह निज^{१५} ब्रह्म बिचार ।
 केवल कहि समझाइया आतम साधन सार रे^{१६} ॥ ६ ॥
 चरन कंवल चित लाइए राम नाम गुन गाइ^{१७} ।
 कहै^{१८} कबीर संसा नहीं भगति (भुगति ?) मुकुति गति पाइ रे^{१९} ॥ ७ ॥

[११]

'हरि मोरा पिउ^२ मैं हरि की बहुरिया ।^१
 राम बड़े मैं तनक^३ लहुरिया ॥^४
 किएउं सिंगारु मिलन कै ताईं । हरि न मिले जग जीवन गुसाईं^६ ॥ १ ॥^५
 धनि पिउ एकै संगि बसेरा । सेज एक पै मिलन दुहेरा ॥ २ ॥^८

४. दा२ सब, दा३ जब । ५-६. नि० में यह दोनों पंक्तियाँ अगली दोनों पंक्तियों के बाद आती हैं ।
 ७. गु० साधु मिले सिधि पाइए, दा१ साथै सिधि ऐसी पाइए । ८. गु० की एहु जोग की भोग (तुल०
 आगे—किंवा जोग कि भोग) । ९. गु० जितु घटि नामु न ऊपजै कूटि (उर्दू मूल) मरै जन (उर्दू
 मूल) सोइ । १०. गु० एक जोति (उर्दू मूल) एका मिली (उर्दू मूल) । ११. गु० किंवा होइम
 होइ (तुल० ऊपर की पंक्ति ५ का दूसरा चरण; गु० में दोनों परस्पर स्थानांतरित ।) । १२. गु०
 दुहु मिलि कारज ऊपजै राम नाम संजोगु । १३. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : प्रेम भगति
 ऐसी कीजिए सुखि अन्नित वरसै चंद । आपहि आप बिचारिए तब केता होइ अनंद रे ॥
 १४. गु० लोगु जाने इहु गीत है । १५. गु० तउ । १६. गु० जिउ कासी उपदेस होइ मानस
 मरती वार । १७. गु० कोई गावै को सुखै हरि नामा चितु लाइ । १८. गु० कहु ।
 १९. गु० अति परम गति पाइ रे ।

[११]

दा० गोड़ी ११७, नि० गोड़ी १२०, गु० आसा ३०—

१. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : हरि मोरा पीव माई हरि मोरा पीव । हरि विन रहि न
 सकै मेरा जीव ॥ (पुन० तुल० पद की प्रथम पंक्ति) । २. गु० मेरो पिरु (उर्दू मूल) ।
 ३. दा० नि० छुटक । ४-५. बी० ३५-१ : हरि मोरा पीव मैं राम की बहुरिया । राम
 बड़े मैं तनकी लहुरिया ॥ ६. दा० नि० काह न मिली राजा राम गोसाईं । ७. गु०
 में यह पंक्ति पद के आरंभ में आती है । ८. दा० नि० में यह पंक्ति नहीं है ।

धन्नि सुहागिनि जो पिय भावै^१ कह^२ कबीर फिरि जनमि न आवै ॥ ३ ॥^{११}

[१२]

तननां धुननां तज्यौ कबीर^१ ।

रांम नाम^२ लिखि लियो सरीर ॥ टेक ॥

^३मुसि मुसि रोवै^४ कबीर की भाई । ए वारिक^५ कैसे जीवांह खुदाई^६ ॥ १ ॥

जब लगि तागा बाहों बेही । तब लगि^७ बिसरै रांम सनेही^८ ॥ २ ॥^{१२}

कहत कबीर सुनहु मेरी^९ भाई । पूरनहारा त्रिभुवनराई^{१०} ॥ ३ ॥

[१३]

बालम^१ आउ हमारै प्रेह रे ।

तुम्ह बिन दुखिया देह रे ॥ टेक ॥

सब कोइ^२ कहै तुम्हारी नारी मोकों यह^३ अन्देह^४ रे ।

एकमेक ह्वै सेज न सोवै तब लगि कैसा नेह रे^५ ॥ १ ॥

अन्न^६ न भावै नींद न आवै ग्रिह बन धरे न धीर रे ।

ज्यों^७ कांभी कौ कांभिनि प्यारी^८ ज्यों प्यासे कौ बीर रे ॥ २ ॥

है कोई औसा पर उपगारी^९ हरि^{१०} सौं कहै सुनाइ रे ।

अब तौ बेहाल कबीर भए हैं^{११} बितु देखें जिउ^{१२} जाइ रे ॥ ३ ॥

१. दा० नि० अब की बेर मिलन जो पाऊं ।

१०. गु० कहि (उर्दू मूल) ।

११. दा० नि०

कहै कबीर भोजलि नहि आऊं ।

[१२]

दा० गौड़ी २१, नि० गौड़ी २४, गु० गुजरी २—

१. गु० सभ तजिओ हे कबीर । २. गु० हरि का नाम । ३. दा० नि० में यह पंक्ति अगली पंक्ति के बाद है और गु० में सब से पहले । ४. दा० नि० ठाढ़ी रोवै । ५. दा० नि० लरिका ।

६. गु० रघुराई (जुलाहे की माता के पक्ष में 'रघुराई' अस्वाभाविक) । ७. गु० लगु । ८. दा० नि० जब लगि भरी नली का बेह । तब लगि तूटै रांम सनेह ॥ ९. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : ओछी मति मेरी जाति जुलाहा । हरि का नाम लहिओ में लाहा ॥ १०. दा० नि० री । ११. गु० हमरा इनका दाता एक रघुराई ।

[१३]

दा० नि० केदारी ८, शब्द (१) बिरह-प्रेम ४—

१. दा० नि० बाल्हा । २. दा० नि० को । ३. दा० एह, दा३ नि० इहै । ४. शब्द० संदेह । ५. शब्द० स्नेह रे । ६. दा० नि० आन (उर्दू मूल) । ७. दा० नि० ज्यु । ८. दा० नि० कांस पिथारा । ९. शब्द० उपकारी । १०. शब्द० पिय । ११. दा० नि० ऐसे हाज कबीर भए हैं । १२. दा० नि० जीव ।

[१४]

नाचु रे मन मेरो नट होइ^१ ॥ टेक ॥^२
 ग्यांन कै ढोल बजाइ रैन दिन सबद सुनै सब कोई ।
 राहु केतु अरु^३ नवग्रह^४ नाचै^५ जमपुर आनंद होई^६ ॥ १ ॥
 छापा^७ तिलक लगाइ बांस चढ़ि होइ रहु जग तैं न्यारा ।
 प्रेम मगन होइ नाचु सभा में^८ रीझै सिरजनहारा^९ ॥ २ ॥
 जो^{१०} तूं^{११} कूदि जाउ^{१२} भवसागर कला बढौं मैं तेरो^{१३} ।
 कहै कबीर राजा राम भजन सौं नव निधि होइगी चेरो^{१४} ॥ ३ ॥

[१५]

अबिनासी दुलहा^१ कब मिलिहौ सभ संतन के^२ प्रतिपाल^३ ॥ टेक ॥
 जल उपजी जल हीं सौं नेहा^४ रटत पियास पियास ।
 मैं बिरहिनि ठाढ़ी मग जोऊं^५ राम^६ तुम्हारी आस ॥ १ ॥
 छाड़िचौ गेह नेह लगि^७ तुमसे भई चरन लौलीन ।
 तालाबेलि होत घट भीतर^८ जैसें जल बिनु मीन ॥ २ ॥
 दिवस न भूख रैन नहि निद्रा घर^९ अंगना न सुहाइ ।
 सेजरिया^{१०} बैरनि भई मोकों^{११} जागत रैन बिहाइ ॥ ३ ॥
 मैं^{१२} तो तुम्हारी दासी हो सजनां^{१३} तुम हमरै भरतार ।
 दीन दयाल दया करि आवौ समरथ^{१४} सिरजन हार ॥ ४ ॥

[१४]

नि० बिहंगही १८, शबे० (१) बिरह-प्रेम २८, शक० गीरी :—
 १. नि० नट होइ नाच रे मन मेरा । २. नि० में अतिरिक्त : गुन रीझैगा साहिब तेरा (पुन० तुल० पंक्ति ५-२) । ३. नि० राह अर केत । ४. नि० नऊं ग्रह । ५. नि० शक० कापै । ६. नि० जग कै हाथ न होई, शक० यम घर बंधन होई । ७. नि० शक० द्वादस । ८. शबे० सहस कला कर मन मेरो नाचै (ऊपर की पंक्तियों में 'नाचु', 'बजाइ', 'होइ रहु' आदि आह्वान-सूचक क्रियाओं के क्रम में वर्तमानकालिक क्रिया 'नाचै' अनुपयुक्त है) । शक० सहस कला होय नाचु मन मेरा । ९. नि० शक० (नि० गुन) रीझैगा साहिब तेरा । १०. नि० जे । ११. शबे० तुम । १२. नि० डांकि गयो । १३. शबे० तेरो, शक० तेरा (दोनों व्याकरण-विरुद्ध) । १४. शबे० कहै कबीर सुनो भाई साथी हो रहु सतगुरु चेरो । (राधास्वामी-प्रभाव के कारण 'राजा राम भजन सौं' का परिवर्तित पाठ), शक० कहहि कबीर सत्य व्रत साथी नौ निधि होय रहे चेरा (कबीरपंथी प्रभाव) ।

[१५]

नि० काफी २, शबे० (२) प्रेम २०—
 १. नि० दुलहै । २. नि० अहो सब संतन के । ३. शबे० रखपाल । ४. नि० जल सौं नहि नेहा । ५. नि० ऐसे ही बिरहन मघ जोवै । ६. शबे० प्रीतम (राधा० प्रभाव) । ७. नि० लरयो । ८. नि० तुम बिन मेरे परान पियारे । ९. नि० ग्रिह । १०. नि० सेरुडियां (राज० मूल) । ११. शबे० हमको । १२. शबे० हम । १३. नि० प्रभु जी । १४. नि० साहिब ।

कै^{१५} हंम प्रांन तजत हैं प्यारे कै अपनी करि लेहु^{१६} ॥
दास कबीर बिरह अति बाढ़्यौ अब तौ दरसन देहु^{१७} ॥ ५ ॥

[१६]

हरि^१ रंग लागा हरि^२ रंग लागा ।मेरै^३ मन का संसै^४ भागा ॥ टेक ॥

जब हंम रहलौं हठिल दिवांनों^५ तब^६ पिय मुखां^७ न बोला^८ ।
जब दासी भई^९ खाक बराबरि साहिब अंतर खोला^{१०} ॥ १ ॥^{११}
सांचे मन तैं साहिब नेरै भूठै मन तैं भागा^{१२} ।
हरिजन हरि सौं अैसे मिलिया^{१३} जस सोनै^{१४} संग सुहागा ॥ २ ॥
लोक लाज कुल की मरजादा तोरि दियो^{१५} जस^{१६} धागा ।
कहै कबीर गुर पूरा पाया^{१७} भाग हमारा जागा ॥ ३ ॥

[१७]

पिया मोरा मिलिया सत्त गियांनों^१ ।

सब मैं व्यापक सब की जानै^२ अैसा अंतरजांमीं ।
सहज सिंगार प्रेम का चोला सुरति निरति भरि आंनों^३ ॥ १ ॥
सील संतोख पहिरि दोइ कंगन^४ होइ रही मगन दिवांनों ।
कुमति^५ जराइ करौं मैं काजर^६ पढ़ी^७ प्रेम रस बांनों ॥ २ ॥
अैसा पिय^८ हंम कबहुं न देखा सुरति देखि लुभांनों^९ ।
कहै कबीर मिला गुर पूरा^{१०} तन की तपनि बुभांनों ॥ ३ ॥

१५. नि० अब । १६. शबे० लेव । १७. नि० हम हीं कूं दरसन देहु ।

[१६]

नि० सोरठि ५३, शबे० (२) सतगुरु० १५—

१. शबे० गुरु (राधा० प्रभाव) । २. शबे० सत । ३. नि० ताते मेरा । ४. नि० बोला ।
५. नि० पहली धी बंदी मान गुमानिणि । ६. नि० जब । ७. शबे० मुखहु । ८. नि० बोल्या वै
[प्रत्येक पंक्ति के अन्त में 'वै' (पंजाबी मूल)] । ९. नि० अब भई बंदी । १०. नि० खोल्या वै ।
११. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : साहिब बोल्या अंतर खोल्या सेरुहियां सुख दीया वै । अपना
पिया के मैं रंगि राती प्रेम पियाला पीया वै ॥ १२. नि० सांचा दिल सूं साहिब सांचा झूठी
सूं मन भागा वै । १३. शबे० भक्त जनन अस साहिब मिलनो (राधा० प्रभाव) । १४. शबे०
कंचन । १५. नि० तोड़ि डाला । १६. नि० जैसे । १७. शबे० कहै कबीर सुनो भाई साधो ।

[१७]

नि० बिहंगड़ा २६, शबे० (२) सतगुरु० १९—

१. नि० मैदा पीव मित्या बहुत ग्यानी । २. शबे० सब से न्यारा ['अंतर्यामी' होने के
कारण 'सब की जानै' पाठ अधिक समीचीन बात होता है ।] । ३. नि० सहज सुभाइ सनेह की
खोली मन ही मन लुभियांनों । ४. शबे० दोइ सतगुरु । ५. नि० क्रोध । ६. नि० किया ।
७. शबे० कोइला (शूहार में कोयले के लिए कोई स्थान नहीं) । ८. नि० चढ़त । ९. नि०
रूप । CG-0. नि० प्रेम सतगुरु की ।

[१८]

मोहिं तोहिं लागी कैसे छूटै ।

जैसे हीरा फोरे^१ न फूटै ॥ टेक ॥^२मोहिं तोहिं आदि अंति बनि आई । अब कैसे दुरत दुराई^३ ॥ १ ॥जैसे कंवल पत्र जल बासा^४ । असै तुम साहेब हंम दासा^५ ॥ २ ॥^६मोहिं तोहिं कीट भ्रिग की नाई^७ । जैसे सलिता सिंधु समाई^८ ॥ ३ ॥^९कहै कबीर मन^{१०} लाग़ा । जैसे सोनै मिला सुहागा ॥ ४ ॥

[१९]

हौं^१ वारी सुख फेरि पियारे ।करवट दै मोहिं^२ काहे कौ मारे ॥ टेक ॥^३

करवत भला न करवट तोरी । लाग़ु गलै सुनु बिनती मोरी ॥ १ ॥

हंम तुम बीच भयौ नहिं कोई । तुमहिं सो कंत नारि हंम सोई^४ ॥ २ ॥कहत कबीर सुनौं रे^५ लोई । अब तुम्हरी परतीति न होई ॥ ३ ॥

(३) नाउं महिमा

[२०]

^१राम सुमिरि^२ राम सुमिरि राम सुमिरि^३ भाई ।राम नाम सुमिरन बिनु बूझत^४ अधिकाई ॥ टेक ॥बनिता ^५सुत देह प्रेह^६ संपति सुखदाई^७ ॥^८इह मै^९ कछु नाहिं तेरी काल अवधि^{१०} आई ॥ १ ॥^{११}

[१८]

नि० केदारी २१, शवे० (१) चिरह-प्रेम ३५—

१. नि० फोरबौ । २. नि० में पाँचवीं पंक्ति के स्थान पर । ३. नि० जैसे सलिता सिंधु समाई (पुन० तुल० पंक्ति ५-२) । ४. नि० मोहिं तोहिं जीव सांव का बासा । ५. नि० अहो प्रभु तुम ठाकुर में दासा । ६. शवे० में इसके बाद अतिरिक्त : जैसे चकोर तकत निसि चंदा । ऐसे तुम साहेब हम बंदा ॥ (तुल० ऊपर ४-२) । ७. शवे० मोहिं तोहिं कीट भृंग लौ लाई । ८. नि० जैसे सिंधि बंद समाई । ९. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : मैं अनंत कछु नहिं लाग़ा । जैसे टूटै कांचा घागा ॥ शवे० में अतिरिक्त : हम तो खोजा सकल जहाना । सतगुर तुम सम कोउ न आना ॥ १०. शवे० मोरा मन ।

[१९]

शवे० प्रेम १०, गु० आसा ३५—

१. शवे० हं । २. गु० मोकउ । ३. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : जउ तनु चीरहि अंगि न मोरउ । पिंडु परै तउ प्रीति न तोरउ ॥ ४. शवे० होई । ५. शवे० नर ।

[२०]

दा० मारू १, नि० मारू २, गु० बनासरी ५—

१. दा० नि० मन रे (पहले अतिरिक्त रूप में) । २. गु० समिरि (उर्दू मूल) । ३. गु० बूझते ४ दा० नि० दारा । ४ दा० नि० प्रेह नेह । ५ दा० नि० अधिकाई (पुन० तुल० ऊपर की पंक्ति में भी 'अधिकाई') । ६. दा० नि० यामै । ७. गु० अवध (उर्दू मूल) ।

अजामेल गज गनिका पतित करम कीन्हें ।
तेऊ उतरि पारि गए राम नाम लीन्हें ॥ २ ॥
सूकर कूकर जोनि भ्रमे^१ तऊ नां लाज आई ।
राम नाम छाँड़ि अँझित^२ काहे बिखु खाई ॥ ३ ॥
तजि भरम करम बिधि निखेध^३ राम नामु लेही ।
गुर प्रसादि जन कबीर रामु करि सनेही ॥ ४ ॥

[२१]

राम जपत तनु जरि किन जाइ ।
राम नाम चिनु रखौ समाइ^४ ॥ टेक ॥

आपहि^५ पावक आपहि पवन^६ । जरै खसम त राखै कवना^७ ॥ १ ॥^८
काको जरै काहि होइ हांनि^९ । नटबिधि^{१०} खेले सारंगपानि^{११} ॥ २ ॥
कहै कबीर अखर दुइ भाखि^{१२} । होइगा राम^{१३} त लेइगा^{१४} राखि ॥ ३ ॥

१. दा० नि० स्वान सूकर काग कीन्हों । २. दा० नि० अँझित छाँड़ि । ३. दा० नि० नपेद ।
४. दा० नि० यह पंक्तियाँ अन्यत्र सूरदास के नाम से भी मिलती हैं : तुल० सूरसागर (ना० प्र०
स०) पद ३३० पंक्ति ५-६ (नीचे उद्धृत पद में पंक्ति ३) पृष्ठ १००; यथा—

(मन) राम नाम सुभिरन विनु बादि जनम खोयो । रचक सुख कारन तँ अंत क्यों विगोयो ॥
साधु संग भक्ति बिना तन अकार्य जाई । ज्वारी ज्यों हाथ भारि चालै छुटकाई ॥
दारा सुत देह गेह संपति सुखदाई । इनमें कछु नाहि तेरो काल अवधि आई ॥
काम क्रोध लोभ मोह तूना मन सोयो । गोविंद गुन चित विसारि कौन नौद सोयो ॥
सूर कहै चित विचारि भूल्यो भ्रम अंधा । राम नाम भजि ले तजि और सकल धंधा ॥

[प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह दोनों पंक्तियाँ कवीर-कृत सिद्ध हुई हैं । जब तक सूर की प्रामाणिक रचनाओं का पाठ निर्धारित नहीं हो जाता तब तक यह कहना कठिन है कि यह दोनों पंक्तियाँ सूर की भी हैं । यदि यह सूर की भी सिद्ध होती हैं तो समस्या विचारणीय हो जायगी । उस दशा में इसका समाधान इस प्रकार करना पड़ेगा कि कदाचित् इन पंक्तियों के मूल रचयिता कबीर थे, किंतु कालांतर में अत्यधिक प्रचलित होने के कारण, सम्भव है, किसी प्रतिलिपिकार ने सूर के पदों में इन्हें सम्मिलित कर लिया हो । किंतु मेरा अनुमान है कि वैज्ञानिक शैली के आधार पर सूर की रचनाओं का पाठ-निर्धारण होने पर यह पद (अथवा कम से कम उक्त दोनों पंक्तियाँ) उनकी रचनाओं में आणगी ही नहीं ।]

[२१]

दा० गौड़ी ४२, नि० विहंगड़ी २५, गु० गउड़ी ३३—

१. नि० राम कहै सब जरि क्यूँ न जाई । काको जरै काँण पछिताई ॥ दा० में यह पंक्ति नहीं है । २. गु० आपे । ३. दा० नि० जरैगा राम ती राखेगा कवना । ४. दा० नि० में यह पंक्ति अगली पंक्ति के बाद है । ५. दा० नि० कौन कै हांनि । ६. गु० नटवट (वत ?) । ७. गु० सारंगपानि, नि० सारंगपान । ८. दा० नि० द्वै अखिर भाखि । ९. गु० खसम । १०. दा० नि० लेगा ।

[२२]

इहु^१ (यहु ?) धन मेरै हरि कै^२ नाउं ।

गांठि न बांधउं बैचि न खाउं ॥ टेक ॥

नाउं मेरै खेती नाउं मेरै बारी । भगति करउं जन^३ सरनि तुम्हारी ॥ १ ॥^४

नाउं मेरै माया नाउं मेरै पूंजी । तुमहि छांड़ि जानउं नहि दूजी ॥ २ ॥^५

नाउं मेरै बंधिप^६ नाउं मेरै भाई । अंत की बेरियां नाउं सहाई^७ ॥ ३ ॥

नाउं मेरै निरधन ज्यूं निधि पाई । कहै कबीर जैसे रंक मिठाई^८ ॥ ४ ॥

[२३]

आहि^१ मेरे ठाकुर^२ तुम्हारा^३ जोर ।

काजी बकिबो हस्तां तोर ॥ टेक ॥^४

भुजा बांधि भिला^५ (मेला ?) करि डारचौ । हस्ती कोपि^६ भूँड़ महि^७ मारचौ ॥ १ ॥

भाग्यो हस्ती चीसा मारी^८ । या^९ मूरति की हौं^{१०} बलिहारी^{११} ॥ २ ॥

रे महावत तुम्ह डारउं काटि^{१२} । इसहि तुरावहु^{१३} घालहु सांठि^{१४} ॥ ३ ॥

हस्ती^{१५} न तोरै धरै धियांन । वाकै ह्रिदै^{१६} बसै भगवानं ॥ ४ ॥

क्या^{१७} अपराध संत है^{१८} कोन्हां । बांधि पोटि कुंजर कौं^{१९} दीन्हां ॥ ५ ॥

कुंजर पोट^{२०} बहु बंदन करै^{२१} । अजहं न सुभै काजी अंधरै^{२२} ॥ ६ ॥

[२२]

दा० नि० मेरु १, गु० मेरु १—

१. दा० नि० सो । २. दा० नि० का । ३. दा० में । ४. नि० में यह पंक्ति नहीं मिलती ।

५. दा० नि० नाउं मेरै सेवा नाउं मेरै पूजा । तुम्ह बिन और न जानीं दूजा ॥ ६. दा० नि० बंधव । ७. गु० नाउं मेरै संगि अंति होइ सखाई । ८. गु० माइया महि जिसु रखे उदासु ।

कहि कबीर हउ ताको दासु ॥ किंतु यहाँ अप्रासंगिक-तुल० दा० नि० गोही १०१-५ यथा—

कहै कबीर हूं ताका दास । माया माहि रहे उदास ॥—जहाँ यह प्रासंगिक भी है ।

[२३]

दा० विलावल ४, नि० विलावल ३, गु० गौह ४—

१. दा० नि० अहो । २. दा० नि० गोविंद । ३. दा० नि० तुम्हारा । ४. गु० में यह पंक्तियाँ चौथी के बाद हैं । ५. दा० नि० भलैं । ६. गु० कोपि । ७. दा० नि० में । ८. गु० हसति भागि क चीसा मारै । ९. दा० नि० वा । १०. दा० नि० में । ११. गु० बलिहारै (उर्दू मूल) । १२. दा० नि० महावत तोकों मारीं सांठि (तुल० गु० द्वितीय चरण : घालहु सांठि) । १३. दा० नि० मराऊं । १४. दा० नि० काटी (तुल० प्रथम चरण) । १५. गु० हसति १६. गु० रिदै (राज० पंजाबी मूल) । १७. दा० नि० कहा । १८. दा० नि० हौं । १९. गु० कंचर कउ (उर्दू मूल) । २०. नि० मोट । २१. गु० पोट लै लै नमसकारै । २२. गु० वृष्ठी

तीन बेर^{२३} पतियारा लीन्हां^{२४} । मन कठोर अजहूँ न पत्तीनां ॥ ७ ॥
कहै^{२५} कबीर हमरा^{२६} गोबिंद । चौथे पद मंहि जन की^{२७} ज़िद ॥ ८ ॥

[२४]

†मन न डिगै तनु काहे कौ डेराई^१ ।
†चरन कमल चितु रख्यो समाई^२ ॥ टेक ॥
गंग गुसाईंनि गहिर गंभीर^३ । जंजीर बांधि^४ करि^५ खरे कबीर^६ ॥ १ ॥
गंगा की लहरि मेरी टूटी जंजीर^७ । भ्रिगछाला पर बैठे कबीर^८ ॥ २ ॥
कहै^९ कबीर कोऊ^{१०} संग न साथ । जल थल में राखै रघुनाथ^{११} ॥ ३ ॥^{१२}

[२५]

क्यों लीजै गढ़ बंका भाई ।
दोवर कोट अरु तेवर^१ खाई ॥ टेक ॥^२

नहीं काजी अघिआरै । २३. गुं वार । २४. गुं पतीआ भरि लीना । २५. गुं कहि ।
२६. दा० नि० हमारै । २७. दा० नि० जन का ।

[२४]

दा० मैरूँ १७, नि० मैरूँ १६, गुं मैरु १८—

† गुं में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की चौथी पंक्ति के बाद आती हैं ।
१. दा० नि० तार्य तन न डराइ, दा३ तार्य तन न डिगाइ । २. दा० नि० केवल राम रहे ल्यो लाइ । ३. दा० नि० अति अथाह जल गहर गंभीर । ४. दा० नि० बांधि जंजीर । ५. दा० नि० जल । ६. दा० नि० बोरै है कबीर । ७. दा० नि० जल की तरंग उठि कहि है (दा३ कटे हैं जंजीर) । ८. दा० नि० हरि सुमिरत तट बैठे हैं कबीर । ९. गुं कहि । १०. दा० नि० मेरे । ११. गुं जल थल राखत है रघुनाथ । १२. दा३ में अन्तिम पंक्ति नहीं है । ['आज' (बनारस का एक समाचार-पत्र) के सहायक सम्पादक श्री विश्वनाथ सिंह ने 'कबीर का अद्भुत व्यक्तित्व' शीर्षक निबन्ध में इसी से मिलता-जुलता एक पद दिया है, जिसका पाठ निम्नलिखित है —

गंगे की लहरियां में टूट गइयां जंजीर । मृगछाला पर बैठे कबीर ॥
गंगा गोसाइनि बहे अगम गंभीर । तहां राखनहारा खी रघुबीर ॥
साह सिकंदर कहै देखो है पीर । कैसे जादू किया है कबीर फकीर ॥
सुवारक है इसकी तदबीर । साही कब्जे में न आया कबीर ॥

इस पर उक्त महोदय ने टिप्पणी दी है कि "श्री गुरु नानक देव जी ने इस मार्मिक घटना का (सिकंदर लोदी द्वारा कबीर को गंगा में फिकवाये जाने का) वर्णन अपने ग्रंथ में किया है ।" मुझे 'श्री गुरुग्रंथ साहेब' में यह पद कहीं नहीं मिला । 'अपने ग्रंथ' का तात्पर्य सम्पादक ने, पता नहीं, किस ग्रंथ से लिया है । संभव है, किसी परवर्ती सिक्ख गुरु ने कबीर के उक्त पद के अनुकरण पर उनकी महिमा के लिए यह पद रच डाला हो । जब तक ठीक-ठीक नहीं ज्ञात हो जाता, कि यह पद कहां मिलता है, इसबे सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता ।]

[२५]

दा० मैरूँ ३५, नि० मैरूँ ३४, गुं मैरु १७—
१. नि० तीवर (उद्द' मूल) । २. नि० तथा गुं में इसके बाद अतिरिक्त—
पांच पचीस मोह मद मतसर (नि० मंछर) अही अपरबल (गुं आही परबल) माया ।
जन (नि० मो) गरीब को जोर न पडु^१ बै कहा करुं रघुराया (नि० राम राया) ॥

कांसु किंवार^३ दुख सुख दरबानों पाप पुनि^४ दरवाजा ।
 क्रोध प्रधान लोभ बड़^५ दुंदर मनु मैवासी^६ राजा ॥ १ ॥
 स्वाद सनाह टोप समिता कौ कुबुधि कमान^७ चढ़ाई ।
 तिसनां तीर रहै^८ घट^९ भीतरि यह गढ़ु लिअौ न जाई^{१०} ॥ २ ॥
 प्रेम पलीता सुरति नालि करि^{११} गोला ग्यान चलाया ।
 ब्रह्म अग्नि सहजै परजाली^{१२} एकहि चोट ढहाया^{१३} ॥ ३ ॥
 सतु संतोषु लै लरनै लागा^{१४} तोरे दुइ^{१५} दरवाजा ।
 साध संगति अरु गुर की कृपा तैं पकरचौ गढ़ कौ राजा ॥ ४ ॥
 भगवंत भीरि सकति सुमिरन^{१६} की काटि काल की फांसी ।^{१७}
 दास कबीर^{१८} चढ़चौ गढ़ ऊपरि राज लियो^{१९} अविनांसी ॥ ५ ॥

[२६]

नहीं छांडउं रे बाबा राम नाम ।
 मोहि^१ अउर पढ़न सौं नहीं काम ॥ टेक ॥
 प्रह्लाद पढ़ाए^२ पढ़नसाल^३ । संगि सखा बहु लिए^४ बाल^५ ॥ १ ॥
 मोकउं कहा पढ़ावसि^६ आल जाल^७ । मेरी पटिया^८ लिखि देहु स्त्री गोपाल ॥ २ ॥
 संडै मरकै^९ कहाँ जाइ । प्रह्लाद बुलाए^{१०} बेगि धाड़^{११} ॥ ३ ॥
 तू राम कहन की छांडि^{१२} बांनि । तुझ^{१३} तुरत^{१४} छड़ाऊं^{१५} मेरो कहाँ मानि ॥ ४ ॥
 मोकउं कहा सतावहु^{१६} बार बार । प्रभु जल थल गिरि कीए पहार^{१७} ॥ ५ ॥
 राम छांडौ तौ मेरे गुरहि गारि^{१८} । मोकउं घालि जाति भावै मारि डारि^{१९} ॥ ६ ॥

३. गुं किवारी । ४. गुं पनु । ५. गुं महा बड़ (पुनः) । ६. गुं सावासी । ७. नि० कवांण । ८. नि० बहे । ९. दा० नि० तन । १०. दा० नि० सुबधि हाथ नहिं आई । ११. गुं सुरति तवाई । १२. दा० नि० ब्रह्म अग्नि ले दिया पलीता (पुनः ऊपर की पंक्ति में 'प्रेम पलीता') । १३. गुं सिमाइया । १४. दा० नि० लागो । १५. दा० नि० दस (दरवाजे केवल दो हैं, दो पंक्ति २-३ : पाप पुनि दरवाजा) । १६. गुं समिरन (उर्दू मूल) । १७. गुं कटी काल में फांसी । १८. गुं कमार (?) । १९. दा० नि० दिया ।

[२६]

दा० वसंत ३ (दा० में यह पद नहीं है), नि० वसंत १२, गुं वसंत ४, शक० वसंत ६—
 १. गुं मेरो । २. दा० नि० पधार । ३. गुं पढ़नसाल । ४. दा० नि० संगि सखा लिए बहुत बाल । ५. दा० नि० पढ़ावै । ६. नि० कहा रे पढ़ावै पांडे आल जाल । ७. दा० नि० पाटी में । ८. शक० में इसके पश्चात् अतिरिक्त : कहै पंडित तुम सुनहु राव । तेरो पुत्र चलतु है अपनी दाव ॥ मैं मांडी वह दे बिहार । नेको न माने कहा हमार ॥ ९. दा० तब सनां मुरकां, दा० तब सडां मुरकां, नि० सैन मरक जब, शक० शंढामक से । १०. दा० नि० बंधायो । ११. दा० नि० आई । १२. गुं छोड़ । १३. दा० नि० में 'तुझ' नहीं है । १४. दा० नि० बेगि । १५. शक० निवाजों । १६. दा० नि० हरावै । १७. दा० नि० जिनि जल गिरि की कीए प्रहार, शक० जिन जल थल परबत लियो उवारि । १८. गुं इकु राम न छोड़उं गुरहि गारि ।

तब^{२०} काढ़ि खड़ग कोप्यो रिसाइ । तोहि^{२१} राखनहारो मोहि बताइ ॥ ७ ॥
 खंभा तैं प्रगट्यो गिलारि^{२२} । २३ हिरनांस मारयो^{२४} नख बिदारि ॥ ८ ॥
 परस पुरख^{२५} देवाधिदेव । भगति हेत नरसिघ भेव^{२६} ॥ ९ ॥
 कहै^{२७} कबीर कोई^{२८} लहै न पार^{२९} । प्रह्लाद उधारे^{३०} अनिक बार ॥ १० ॥

(४) साधु महिमा

[२७]

भगुरा एक निबेरु^१ राम^२ ।

जे^३ (जउ ?) तुम्ह अपनै जन सौं काम^४ ॥ टेक ॥

ब्रह्मा बड़ा कि जित रे उपाय^५ । वेद बड़ा कि जहां तैं^६ आया^७ ॥ १ ॥

यहु मन बड़ा कि जेहि^८ मन मानैं । राम बड़ा कि^९ रामहि जानैं^{१०} ॥ २ ॥

कहै^{११} कबीर हौं भया^{१२} उदास^{१३} । तीरथ बड़ा^{१४} कि हरि का दास^{१५} ॥ ३ ॥

[२८]

हरिजन हंस दसा^१ लिएं डोलै ।

निरमल नांव चवै (?) जस बोलै^२ ॥ टेक ॥

मानं सरोबर तट के बासी । राम चरन चित आन उदासी ॥ १ ॥^३

१. दा० बांधि मारि भावै देह जारि, नि० शक० मारि डारि भावै देह जारि । २०. गु० 'तब'
 नहीं है । २१. गु० तुम्ह । २२. शक० मुरारि । २३. गु० प्रमं थंम तैं निकसे करि
 विसधार । २४. गु० छेदियो । २५. दा० नि० महापुरुष, शक० आदिब्रह्म । २६. दा० नि०
 नरसिघ प्रगट कियो भगति मेव । २७. गु० कहि । २८. गु० को लखै मेव । २९. शक०
 लीला अपार । ३०. शक० बचायो ।

[२७]

दा० गोड़ी २७, नि० गोड़ी ३०, गु० गोड़ी ४२, बी० ११२, स० १५-४—
 १. बी० बड़ो । २. बी० राजा राम । ३. गु० जउ । ४. बी० जो निखारै सो निखान,
 नि० जो तुम्हरे जन सैं हे काम । ५. गु० कि जासु उपाइआ, बी० की जहां से आया (तुल० द्वितीय
 चरणा) । ६. दा० नि० स० यैं । ७. बी० की जिन्ह उपजाया (तुल० प्रथम चरणा) । ८. गु०
 जासउ, दा० नि० स० जहां । ९. गु० कै । १०. नि० जन राम पिछानो । ११. गु० कहू ।
 १२. दा० नि० स० खरा (राज०) । १३. बी० अमि अमि कबिरा फिर उदास । १४. दा० नि०
 स० बड़े । १५. बी० कि तीरथ के दास ।

[२८]

दा० मैरू २०, नि० मैरू १८, बी० ३४, स० २१-२—
 १. दा० स० दिसा (उर्दू मूल) । २. दा० नि० स० बवै जस बोलै, बी० चुनी
 चुन बोलै । ३. बी० अंत । ४. बी० में यह पंक्ति अगली पंक्ति के बाद आती है ।

मुकताहल बिनु^५ चंचु न लावै^६ । मौनि गहै^७ कै^८ हरि गुन^९ गावै ॥ २ ॥
 कउवा^{१०} कुबुधि निकटि नहि आवै । सो हंसा निज दरसन पावै^{११} ॥ ३ ॥
 कहै कबीर सोई जन तेरा^{१२} । खीर नीर^{१३} का करै निबेरा ॥ ४ ॥^{१४}

[२६]

चलन चलन सब कोइ कहत है ।

नां जानौ^१ बैकुंठ कहां है ॥ टेक ॥^२

जोजन एक परमिति नहि जानै^३ । बातनि ही बैकुंठ बखानै^४ ॥ १ ॥
 जब लग मनि^५ बैकुंठ का आसा । तब लग नहि हरि चरन निवासा^६ ॥ २ ॥
 कहें सुनें कैसे पतिअइ^७ । जब लग तहां आप नहीं जइअ^८ ॥ ३ ॥^९
 कहै कबीर^{१०} यह^{११} कहिअै काहि । साध संगति बैकुंठहि आहि ॥ १० ॥

[३०]

निरमल^१ निरमल हरि^२ गुन गावै ।

सो भाई मेरे^३ मनि भावै^४ ॥ टेक ॥

जो जन लेहि खसम का^५ नाउं । तिनकै^६ मैं बलिहारै जाउं ॥ १ ॥

५. वी० लिपि । ६. वी० चोच लभावै (हिन्दी मूल ?) । [वीजक की टीकाओं में 'लभाना' का अर्थ प्रायः लंबा करना या फैलाना किया गया है, किन्तु लंबा करने के अर्थ में अवधी 'लभाउव' (= लभाना) किया है न कि 'लभाउव' (= लभाना)] । ७. वी० रहे । ८. वी० की । ९. वी० जस । १०. वी० कागा । ११. वी० प्रतिदिन हंसा दरसन पावै । १२. वी० मेरा । १३. वी० नीर क्षीर । १४. वी० में इसके दोनों चरण परस्पर स्थानांतरित ।

[२६]

दा० गौड़ी २४, नि० गौड़ी ३२, गु० गउड़ी १० तथा मैरउं १६, स० २४-४—
 गु० में यह पद दो स्थलों पर मिलता है; पाठांतर में निर्देश दोनों का है । १. दा० जानू ।
 २. दा० नां तौ जानि वीरे बैकुंठ कहावा । सब कोउ जान कहत है तहांवा ॥
 गु० (गउड़ी) ना जाना बैकुंठ कहा ही (उर्दू मूल ?) । जानु जानु सभि कहहि तहांही ॥
 गु० (मैरउ) ससु कोई चलन कहत है उहां । ना जानउं बैकुंठ है कहां ॥
 ३. गु० (गउड़ी) जो जन परमिति परमसु जाना, गु० (मैरउ) आप आप का मरसु न जाना ।
 ४. गु० (गउड़ी) बैकुंठ समाना, गु० (मैरउ) बैकुंठ बखाना । ५. दा० नि० स० हे ।
 ६. गु० (गउड़ी) तब लगु होइ नहों चरन निवासु, गु० (मैरउ) तब लगु नाहों चरनि निवास ।
 ७. गु० (गउड़ी) कहन कहावन नह पतिअइ है । ८. गु० (मैरउ) तउ मनु माने जाते हउमैं जई है । ९. गु० (मैरउ) में यह पंक्ति नहीं है, इसके स्थान पर है : खाई कोटु न परल पगारा ।
 ना जानउ बैकुंठ दुआरा ॥ १०. गु० (गउड़ी) कहु कबीर, गु० (मैरउ) कहि कमीर ।
 ११. गु० (मैरउ) अब ।

[३०]

दा० गौड़ी १२४, नि० गौड़ी १२७, गु० गौड़ी २६—

१. गु० सो निरमल । २. दा० नि० रांम । ३. दा० नि० सो भगता । ४. गु० में यह पंक्ति दूसरी पंक्ति के बाद है । ५. दा० नि० रांम की । ६. दा० नि० ताकी । ७. गु० सव ।

जिहि^८ घटि रांम रहा भरपूरि । तिनकी पद पंकज हंम धूरि^९ ॥ २ ॥

जाति जुलाहा मति का धोर । सहजि सहजि^{१०} गुन रमै कबीर ॥ ३ ॥

[३१]

रांम चरन^१ जाकै हिदै^२ बसत है^३ ताकौ मन कयौ डोलै^४ (देव)^५ ॥

मानौ अठ सिधि^६ नउ निधि ताकै सहजि सहजि^७ जसु बोलै (देव) ॥ टेक ॥

असौ जे उपजै या जिअ कै कुटिल गांठि सब खोलै (देव)^८ ।

बारंवार बरजि बिखया तैं^९ लै नर जौ^{१०} मन तोलै (देव) ॥ १ ॥

जहं जहं^{११} जाइ तहीं सचु^{१२} पावै माया तासु न^{१३} भोलै (देव) ॥

कहै^{१४} कबीर मेरी मन मान्यौ^{१५} रांम प्रीति कै ओलै (देव)^{१६} ॥ २ ॥^{१७}

[३२]

तेरा^१ जनु एक आध है कोई ।

कांम कोध लोभ मोह बिबरजित^२ हरि पद चीन्है सोई ॥ टेक ॥

असतुति^३ निदा दोउ बिबरजित^४ तजहि^५ मानु अभिमानां ।

लोहा कंचन सम करि जानहि^६ ते मूरति भगवानां ॥ १ ॥^७

रज गुन तम गुन सत गुन कहिअै यह सभ तेरी माया^८ ।

चउथै पद कौं जो जन^९ चीन्है तिनहीं परम पदु पाया ॥ २ ॥

चितै तौ माधव चिंतामनि हरि पद रमै उदासा ॥^{११}

चिंता अरु अभिमान रहित है कहै कबीर सो दासा ॥^{१२}

८. दा० जिस । ९. दा० नि० ताको में चरनन की धूरि । १०. दा० नि० हरषि हरषि ।

[३१]

दा० बिलावल ११, (दा१, दार में नहीं है ।), नि० बिलावल २२, गु० बिलावल १२—
१. गु० चरन कमल । २. दा० नि० गु० रिदै (पश्चिमी प्रभाव) । ३. दा० नि० बसहि ।
४. गु० सो जानु किउ डोलै । ५. दा० नि० में पंक्तियों के अन्त में 'देव' शब्द नहीं आता
६. गु० मानउ सधु सुखु । ७. दा० नि० हरखि हरखि । ८. गु० तब इह मति जउ सभ
महि पैलै कुटिल गांठि जब खोलै देव । ९. गु० बारंवार माइआ ते अटकै । १०. गु० नरजा
(हिन्दी मूल) । ११. गु० उह । १२. गु० सुख । १३. दा० नि० ताहि । १४. गु०
कहि । १५. दा० नि० जब मन परचौ । १६. दा० नि० रहे रांम कै बोलै । १७. दा० नि०
में उक्त पद की तीसरी तथा पाँचवीं पंक्तियाँ परस्पर स्थानांतरित ।

[३२]

दा० नि० रांमकली ३२, गु० केदारा १—
१. दा३ तेरो । २. दा० नि० कांम कोष अरु लोभ बिबरजित । ३. गु० उसतति (उई
मूल) । ४. दा३ रहे बिबरजित, दा० नि० आसा छुहै । ५. गु० तजहु (उई मूल) । ६. दा०
नि० देखे । ७. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ छठो के बाद हैं । ८. दा० नि० राजस तामस
सातिग तीन्यू । ९. गु० एह तेरी सभ माइआ । १०. गु० नर । ११-१२. गु० में इन पंक्तियों के
स्थान पर है ०. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[३३]

भाग^१ जाकै संत पाहुनां आवैं ।द्वारै रचिहैं कथा कीरतन हिलिमिलि मंगल गावैं^२ ॥ टेक ॥भयौ लाभ चरनां अंश्रित कौ^३ महाप्रसाद की आसा ।झाकौं जोग जगि तप कीजै^४ सो संतन^५ के पासा ॥ १ ॥^६जा प्रसाद^७ देवन कौ दुरलभ संत सदा ही पाहीं^८ ॥^९कहै कबीर हरि भगत बछल है सो संतन के मांहीं^{१०} ॥ २ ॥

[३४]

है^१ साधू संसार में कंवला जल मांहीं ।

सदा सरबदा संगि रहै जल परसत नांहीं ॥ टेक ॥

जल केरी उद्यौ कूकुही^२ जल मांहि रहाई^३ ।पानीं पंख^४ लिपै नहीं कुछु असर न जाई^५ ॥ १ ॥

तीरथ बरत नेम सुचि संजम सदा रहे निहकामा ।

त्रिसना अरु माइआ अमु चूका चितवत आतमरामा ॥

जिह मंदिर दीपकु परगासिआ अंधकार तह नासा ।

निरभउ पूरि रहै अमु भागा कहि कबीर जन दासा ॥

[पुन० तुल० 'निहकामा' तथा मूल पद की द्वितीय पंक्ति में 'काम विचरजित'; इसी प्रकार तुल० 'अमु चूका' तथा 'अमु भागा'] ।

[३३]

नि० विहंगड़ी २, शवे० (३) साध० २, शक० धुन शब्द १—

१. शवे० धन्य भाग । २. शवे० में इसके स्थान पर दो पंक्तियाँ हैं—

कथा गरंथ होय द्वारे पर भाव भक्ति समभावैं । काम क्रोध मद लोभ निवारैं हिलिमिलि मंगल गावैं ॥

३. शवे० चरन अंश्रित लै, शक० श्वेत चरणाश्रित । ४. शवे० जान मता हम लुग जुग दूँकी,

शक० जा कारण योगी जप तप करिहौं । ५. शवे० साधुन के । ६. शक० में इसके

पश्चात् अतिरिक्त : खीर खांड घृत अंश्रित भोजन सतगुरु भोग लगाए । जो सेवक सांचे मन होवैं

तो साधु में साहिब पाए ॥ (तुल० उपर की अन्तिम पंक्ति) । ७. शक० महाप्रसाद ।

८. शवे० साध से नित उठि पावैं । ९. शवे० में इसके बाद अतिरिक्त : दगाबाज

दुरमति के कारन जनम जनम डहकाए । सील संतोष विदेक दुमा धरि मोह के सहर लुटावैं ॥

१०. शवे० कहै कबीर सुनी भाई साधो अमर लोक पहुँचावैं, शक० दुष्ट सदा दुरमति के घेरे

मिथ्या जनम गंवाए (तुल० उपर शवे० की अतिरिक्त पंक्ति) । इसके पश्चात् शक० में अतिरिक्त :

शिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक सतगुरु सांईं लखाए । कहहि कबीर संतन की महिमा हरि अपने

मुख गाए ॥ [तुल० नि० सीरठि ५८ तथा शवे० (१) ३३ की अन्तिम पंक्ति, यथा : कहै कबीर

साधु की महिमा हरि अपने मुख गाई ।] ।

[३४]

नि० सीरठि ५७, शवे० (३) साध० ४—

१. नि० युं । २. नि० जुगति जानि जल कूकड़ी । ३. शवे० रहानी । ४. शवे० पंख पानि

वेधै नहीं । ५. नि० काई कसरति पाई (उद्गमूल) ।

मीन तलै^१ जल ऊपरै कछु^२ लगे न भारा ।
 आड़ अटक मानें नहीं पौड़े जलधारा^३ ॥ २ ॥^१
 जैसे सीप समंद^४ में चित देइ^५ अकासा ।
 कुंभ कला है खेलही तस साहेब दासा^६ ॥ ३ ॥
 जुगति जंबू^७ पाइया^८ बिसहर लपटाई^९ ।
 वाकौ बिख व्यापै^{१०} नहीं गुरगंमि सो पाई^{११} ॥ ४ ॥
 घड रस भोजन बिजना^{१२} बहु पाक मिठाई^{१३} ।
 जिभ्या लेस लगे नहीं उनके चिकनाई^{१४} ॥ ५ ॥
 बांवी में^{१५} बिसहर^{१६} बसै कोई पकरि^{१७} न पावै ।
 कहै कबीर कोई गारडू तापें सहजै आवै^{१८} ॥ ६ ॥^{१९}

[३५]

नारद साध^१ सौं अंतर नाहीं ।जो मेरै^२ साध^३ सौं अंतर राखें सो नर नरकै जाहों^४ ॥ टेक ॥जागै साध^५ तौ में भी जागूं सोवै साध^६ तौ सोऊं^७ ।जो कोई मेरै साध दुखावै^८ जरा मूल सौं खोऊं^९ ॥ १ ॥जहां साध^{१०} मेरौ जस गावै^{११} तहां करौ में^{१२} बासा ।साध^{१३} चलै^{१४} आगै उठि धाऊं^{१५} मोहि साध^{१६} की आसा ॥ २ ॥लछ्मी^{१७} मेरी^{१८} अरध सरीरी सो^{१९} भगतन की^{२०} दासी ॥^{२१}अठसठ तीरथि साध^{२२} कै चरननि कोटि गया^{२३} अरु कासी ॥ ३ ॥

३. शबे० तिरै । ७. शबे० जल (पुन० पहले 'जल' के कारण) । ८. नि० बिहरै जल सारा ।

९. नि० में इसके बाद अतिरिक्त—

भगल विद्या नट खेलिया तन न्यारा न्यारा । खंड बिहंडा है पड़या ज्यूं का त्यूं सारा ॥
 १०. शबे० समुद्र । ११. नि० घरै । १२. नि० क्रम किला (उर्दू मूल) पक्षाणि कै बिहरे निज
 दासा । १३. शबे० जमूरा । १४. शबे० पाइ कै । १५. शबे० सरपै लपटाना । १६. शबे०
 वेधै । १७. शबे० गुर गम्म समाना । १८. शबे० दुध मात घृत भोजना । १९. नि० बहु
 थाल भराई । २०. शबे० रुसनाई । २१. नि० ज्यूं बंबई । २२. शबे० विषधर । २३. नि०
 मेद । २४. शबे० कहै कबीर गुरुमंत्र से सहजै चलि आवै । २५. नि० में उक्त पद की
 पंक्तियों का क्रम यथा १-२-३-४-५-११-१२-७-८-९-१०-१३-१४ है ।

[३५]

नि० सोरठि ५८, शबे० (१) बिरह-प्रेम ३३—

१. नि० संत । २. शबे० कोई । ३. नि० सोई नरक में । ४. नि० जहां मेरो संत जीवै
 तहां जीऊं जहां सोवै तहां सोऊं । ५. नि० जो मेरे संत को दुख दिखलावै । ६. नि० ताहि
 अनेक दोख धरि खोऊं । ७. नि० जहां मेरो कथा होइ कीरतन । ८. नि० तहां हमारा ।
 ९. नि० चल्यां । १०. नि० होइ चालू । ११. शबे० माया । १२. नि० मेरे (उर्दू मूल) ।
 १३. शबे० औ । १४. नि० संतन की । १५. नि० में अगली पंक्ति के बाद है । १६. नि० गंगा ।

निसि बासुर जो रांम ल्यो लावै सोई परम पद पावै ॥^{१७}

कहै कबीर साध^१ की महिमा हरि अपनै सुखि गावै^{१८} ॥ ४ ॥

(५) करुनां बीनती

[३६]

साधौ^१ कब करिहौ दाय।

कांम क्रोध हंकार^२ बिआपै नां^३ छूटे माया ॥ टेक ॥

उतपति बिदु^४ भयौ जा दिन तैं^५ कबहू सचु नहि पायौ ॥^६

पंच चोर संगि लाइ दिए हैं इन संगि जनम गंवायौ ॥ १ ॥

तन मन डस्यो भुजंग भांमिनी^७ लहरइ^८ वार न पारा ।

गुर^९ गारडू^{१०} मिल्यो नहि कबहू पसरचौ बिख बिकरारा^{११} ॥ २ ॥

कहै कबीर दुख^{१२} कासौ कहिए कोई दरद न जानै^{१३} ।

देहु दीदार बिकार दूर करि^{१४} तब मेरा मन मानै ॥ ३ ॥

[३७]

हरि^१ जननी में बालक तेरा^२ ।

काहे न अवगुन बकसहु^३ मेरा ॥ टेक ॥

सुत अपराध करत है केते^४ । जननी कै चित रहैं न तेते^५ ॥ १ ॥

कर गहि केस करै जौ घाता । तऊ न हेत उतारै^६ माता^७ ॥ २ ॥^८

कहै कबीर इक बुद्धि बिचारी । बालक दुखी दुखी महतारी^९ ॥ ३ ॥

१७. शबे० अंतरध्यान नाम निज केरा जिन भजिया तिन पाई (साम्प्र० प्रभाव) । १८. शबे० गाई ।

[३६]

दा० नि० केदारी १, शबे० (१) विरह-प्रेम ३, स० ३७-२—
१. शबे० गुरु दुयाल (राधास्वामी प्रभाव) । २. दा० नि० स० अहंकार । ३. शबे० नाही ।
४. दा० व्यं० । ५. शबे० जो लागि उत्पति बिदु रचो हे । ६. शबे० सांच कभू नहि पाया ।
७. शबे० भुवंगम भारी । ८. दा० नि० स० लहरी (उर्दू मूल), शबे० लहरै । ९. दा० स० सो ।
१०. शबे० गारडू । ११. नि० विस्तारा । १२. दा० नि० स० यह । १३. दा० नि० स० यह दुख (पुनः) कोई न जानै । १४. शबे० देहु दीदार दूर करि परदा ।

[३७]

दा० गौड़ी १११, नि० गौड़ी ११४, गु० आसा १२, स० ३७-३, शक० प्रभाती ४—
१. शक० गुरु (सांप्रदायिक प्रभाव) । २. गु० रामईआ हउ वारिक तेरा । ३. गु० खंडसि ।
४. दा० नि० स० करी दिन केते, शक० करे जो केता । ५. गु० जननी चीति न राखसि तेते,
शक० जननी कै उर आव न एता । ६. शक० बिसारै । ७. गु० जे अति क्रोप करै करि
घाइआ । ता भी चिति न राखसि माइआ ॥ [पुनः तुल० ऊपर की पंक्ति का दूसरा चरण] ।
८. शक० में इसके बाद अतिरिक्त : जो सुत को विष दे महतारी ! ताको रक्षा करै हमारी ॥
९. गु० में इसके स्थान पर निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

[३८]

अब मोहि^१ राम भरोसा तोरा ।

तब काहू का कवन निहोरा^२ ॥ टेक ॥३

जाके हरि सा ठाकुर भाई^३ । सो कत^४ अनत पुकारन जाई ॥ १ ॥

तोनि लोक जाके हहि भारा^५ । सो काहे^६ न करै प्रतिपारा^७ ॥ २ ॥

कहै कबीर सेवो बनवारी^८ । सोचो पेड़ पियैं सब डारी^९ ॥ ३ ॥

[३९]

कहा करउं^१ कैसे तरउं^२ भव जलनिधि भारी^३ ।

राखि राखि मेरै बीडला जनु सरनि तुम्हारी^४ ।

ग्रिह^५ तजि बनखंडि जाइअे चुनि खाइअे^६ कंदा ।

अजहुं^७ बिकार न छोड़ई^८ पापी मनु मंदा^९ ॥ १ ॥

बिख बिखिया की बासनां^{१०} तजो तजी न जाई ।^{११}

अनिक^{१२} जतन करि राखिअे^{१३} फिरि फिरि लपटाई^{१४} ॥ २ ॥

जीव अछित^{१५} जोवन गया किछु किया न नोका ।

यहु जियरा^{१६} निरमोलिका कौड़ी लगि^{१७} बीका^{१८} ॥ ३ ॥

कहै कबीर मेरै माधवा^{१९} तू सरब^{२०} बिआपी ॥

तुम्ह समसरि नाहीं दयालु मोहि समसरि पायो^{२१} ॥ ४ ॥२२

चित भवनि मनु परिओ हमारा । नाम बिना कैसे उतरसि पारा ॥
देहि बिसल मति सदा सरीरा । सहजि सहजि गुन रवै कबीरा ॥

[३८]

दा० गौड़ी ११४, नि० गौड़ी ११०, गु० गउड़ी २२—

१. गु० कहू । २. दा० नि० और कीन का करी निहोरा । ३. गु० में यह पंक्ति अगली पंक्ति के बाद आती है । ४. दा० नि० जाके राम सरीखा साहिब भाई । ५. गु० मुकति (उर्दू मूल) । ६. दा० नि० जा सिरि तोनि लोक की भारा । ७. दा० नि० सू । ८. दा० नि० जन की प्रतिपारा । ९. गु० कहू कबीर इक बुधि बीचारी (पुन० तुल० गु० गउड़ी १२-५-१ यथा : कहू कबीर इक बुधि बीचारी । ना ओहू कूअटा ना पनिहारी ॥) । १०. गु० किआ बस जउ बिख दे महतारी ।

[३९]

दा० रामकली २६, नि० रामकली २०, गु० बिलावल ३—

१. गु० किउ छूउं । २. दा० नि० तिरि । ३. दा० नि० भीजलि अति भारी । ४. दा० नि० तुम्ह सरनागति केसवा राखि सुरारी । ५. दा० नि० घर । ६. दा० नि० खनि खाइए । ७. दा० नि० बिखै (तुल० अगली पंक्ति) । ८. दा० नि० छूटई । ९. दा० नि० ऐसा मन गंदा । १०. गु० बिखै बिखै की बासना (?) । ११. गु० तजीअ नह जाई । १२. दा० नि० अनेक । १३. दा० नि० करि सुरकिही । १४. दा० नि० पुनि पुनि उरफाई । १५. गु० जरा जीवन । १६. दा० नि० हीरा । १७. दा० नि० पर । १८. गु० भीका (उर्दू मूल) । १९. दा० नि० सुनि केसवा । २०. दा० नि० सकल । २१. दा० नि० तुम्ह समांनि दाता नहीं हमसे नहि पामि । २२. गु० में पद की सफाई की गई है ।

[४०]

गोविंद हम अैसे अपराधी^१ ।जिन प्रभु जीउ पिडु था दीया^२ तिसकी^३ भाव भगति नहिं साधी^४ ॥ टेक ॥कवन काज सिरजे जग भीतरि^५ जनमि कवन फल^६ पाया ।भवनिधि^७ तरन तारन^८ चिंतामनि इक निमिख न यहु मनु लाया^९ ॥ १ ॥पर निदा पर धन पर दारा पर अपवादहिं सूर^{१०} ।आवागवन होत है फुनि फुनि यहु परसंग न चूरा^{११} ॥ २ ॥^{१२}कांस क्रोध माया मद मंछर^{१३} ए संतति^{१४} सों मांहीं^{१५} ।दाया धरम ग्यान गुर सेवा^{१६} ए सुपनंतरि नांहीं^{१७} ॥ ३ ॥दीन दयाल क्रिपाल दमोदर^{१८} भगत बछल^{१९} भै हारी ।कहत कबीर भीर जन राखहु (हरि) सेवा करउं तुम्हारी^{२०} ॥ ४ ॥

[४१]

बाबा अब न बसउं यहि गांउं^१ ।घरी घरी का लेखा मांगै काइय चेतू नाउं ॥ टेक ॥^२देही गांवां जिउधर महतौ^३ बसहि पंच किरसानां^४ ॥नैनूं^५ नकट^६ खवनूं^७ रसनूं^८ इंद्रो कहा न मांन^९ ॥ १ ॥^{१०}

[४०]

दा० रामकली ३९, नि रामकली ३८, गु० रामकली ८—

१. दा० नि० माथी में असा अपराधी । २. दा० नि० में इस पंक्ति का पूर्वार्ध नहीं है ।
 ३. दा. नि० तेरो १ । ४. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की चौथी पंक्ति के बाद हैं । ५. दा० नि० कारनि कवन आइ जग जनमै । ६. दा० नि० सचु । ७. दा० नि० भीजल । ८. दा० नि० तिरख चरण । ९. दा० नि० ता चित बड़ी न लाया । १०. गु० परधन पर तन पर ती निदा पर अपवाद म छूटै [धन और बी की 'निदा' नहीं की जाती, प्रायः उनसे 'ईर्ष्या' की जाती है ।] ११. गु० तूटै । १२. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : जिह घर कथा होत हरि संतन इक निमखन कीनी में फेरा । लंपट चोर धृत मतवारे तिन संगि सदा बसेरा ॥ १३. गु० मतसर । १४. गु० सपै (उर्दू मूल) । १५. दा० नि० हम मांहीं । १६. गु० दया धरम अब गुर की सेवा । १७. दा० नि० स० ए प्रभु सुपिन नांहीं । १८. दा० नि० तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर । १९. गु० भगति बछल (उर्दू मूल) । २०. दा० नि० कहै कबीर धीर मति राखहु सांसति करी हमारी ।

[४१]

दा० आसावरी २१, नि० आसावरी २०, गु० मारु ७—

१. दा० नि० अब न बसुं इह गाई गुसाईं । तेरे नेवगी खरे सयाने हो राम ॥ २. दा० नि० में यह पंक्ति नहीं है । ३. दा० नि० नगर एक तहां जीव धरम हता (उर्दू मूल) । ४. दा० नि० जु पंच किसानां । ५. दा० नैनूं नूर, नि० नैनो । ६. दा०, दा० निकट (उर्दू मूल) । दा० नि० नकट । ७. गु० रसपति । ८. दा० नि० मानै हो राम । ९. दा नि० में इसके बाद अतिरिक्त : गांव कु ठाऊँर खेत कुनेपै काइय खरच न पारै ।

जोरी जेवरी खेत पसारै सब मिलि मोकीं मारै हो राम ॥

धरमराइ जब लेखा मांगै^{१०} बाकी निकसी भारी ।
 पंच किसनवां^{११} भागि^{१२} गए लै^{१३} बांध्यो जिउ दरबारी^{१४} ॥ २ ॥
 कहै कबीर सुनहु रे संतहु खेताहि करहु निवेरा^{१५} ।
 अब की बेर^{१६} बखसि^{१७} बंदे कौ बहुरि न भौजलि फेरा^{१८} ॥ ३ ॥

[४२]

तहां भों^१ गरीब की को गुदरावै^२ ।
 मजलिसि दूरि महल को पावै ॥ टेक ॥
 सत्तरि सहस^३ सलार^४ हैं जाकै । सवा लाख^५ पैगंबर^६ ताकै ॥ १ ॥
 सेख जु कहिअहि^७ कोटि अठासी^८ । छपन कोटि^९ जाकै खेलखासी^{१०} ॥ २ ॥
 तेतीस करोड़ी है खेलखानां^{११} । चौरासी लख फिरै दिवानां ॥ ३ ॥
 बाबा आदम पै नजरि दिलाई^{१२} । उन भो^{१३} भिस्ति घनेरी पाई ॥ ४ ॥^{१४}
 तुम दाते^{१५} हंम सदा^{१६} भिखारी । देउं^{१७} जबाब होइ बजगारी ॥ ५ ॥
 दासु^{१८} कबीर तेरी पनहु समांनां । भिस्ति^{१९} नजोकि राखि रहिमांनां ॥ ६ ॥

[४३]

साधौ दारुन दुख सद्यो न जाइ ।
 मेरी चपल बुद्धि सौं^१ कहा बसाइ^२ ॥ टेक ॥

खोटी महती बिकट बलाही सिर कसदम का पारं (पुन०) ।
 बुरी दिवान दादि नहि लागै इक बांधे इक मारै हो रांम ॥

१०. दा० नि० भाया । ११. दा० नि० पांच किसनवां । १२. दा० नि० भाजि । १३. दा० नि० गए हैं । १४. दा० नि० बांध्यो जीव धरि पारी हो रांम (नि० धरि मारी हो रांम) । १५. दा० नि० हरि मजि बंधी मेरा । १६. गु० वार । १७. दा० नि० बकसि । १८. दा० नि० सब खत करी नवेरा (तुल० उपर की पंक्ति का दूसरा चरण) ।

[४२]

दा० गु० मैरूँ १५, नि० मैरूँ १४—

१. दा० नि० मुक्त । २. गु० गुजरावै । ३. गु० सैइ । ४. दा३ सिलारा । ५. दा० नि० असी लाख । ६. गु० पैकावर (उर्दू मूल) । ७. दा० नि० कहिए । ८. दा० नि० सहस अठ्ठासी । ९. दा० नि० कोड़ि । १०. दा० नि० खेतिबे खासी । ११. दा० नि० कोड़ि तेतीसूँ अरु खिलखानां (नि० लिखखानां) । १२. गु० बाबा आदम पै किछु नदरि दिखाई । १३. दा० नि० नवी (उर्दू मूल) । १४. गु० में इसके बाद अतिरिक्तः दिल खलहल जाके जरदरू बानी । छोड़ि कितेब करै सैतानी । दुनीआ दोसु रोसु है लोई । अपना कीआ पावै सोई ॥ १५. दा० नि० साहिब । १६. दा० नि० कहा । १७. दा० नि० देत । १८. दा० नि० जन । १९. गु० भिसति (गुरुमुखी मूल) ।

[४३]

दा० बसंत ८, नि० बसंत ७, गु० बसंत ५—

१. गु० सिउ । २. गु० में यह पंक्ति उपर की तीसरी पंक्ति के बाद है ।

इसु तन मन मद्धे^३ मदन चोर । जिनि ग्यांन रतनु हरि लीन मोर ॥ १ ॥
 मैं अनाथ प्रभु कहउं काहि । को को न बिगूचे^४ मैं को आहि ॥ २ ॥
 सनक सनंदन सिव सुकादि । नांभि कंवल जाने (जनमे ?) ब्रह्मादि^५ ॥ ३ ॥
 कबि जन जोगी जटा धारि^६ । सभ आपन औसर चले हारि^७ ॥ ४ ॥
 तूं अथाहु मोहि थाह नाहि । प्रभु दीनानाथ दुख कहउं काहि ॥ ५ ॥^८
 मेरी जनम मरन दुख आथि धीर । सुख सागर गुन रउ कबीर ॥ ६ ॥^९

[४४]

राखि लेहु हम तैं बिगरी ॥
 सील धरम जय भगति न कीन्हों हों अभिमान टेढ़ पगरी ॥ टेक ॥
 अमर जानि संचो यह काया सो मिथ्या कांची गगरी ॥
 जिनिहि निवाज साज सब कीन्हें तिनहि^१ बिसारि और लगरी ॥ १ ॥
 संधिक साध कबहुं नहि भेटचौ^२ सरनि परै जिनकी^३ पग री ॥
 कहै कबीर इक बिनती सुनिए मत घालौ जम की खबरी ॥ २ ॥

[४५]

दरमांदा^४ ठाढ़ी दरबारि^२ ।
 तुम बिनु सुरति करै को मेरी दरसन दीजै खोलि किंवार ॥ टेक ॥
 तुम सम धनी उदार न कोऊ^३ लवनन सुनियत सुजस तुम्हार ॥
 मांगों काहि^५ रंक सभ देखों तुम ही तैं मेरी निस्तार ॥ १ ॥
 जैदेउ नांमां बिप सुदांमां तिनकों क्रिपा भई है अपार^६ ।
 कहै कबीर तुम समरथ दाता चारि पदारथ^७ देत न बार ॥ २ ॥

१. दा० नि० तन मन भीतरि बसै । ४. दा० नि० अनेक बिगूचे, गु० को को न बिगूतो ।
 ५. दा० नि० आपन कंवलपति मए ब्रह्मादि । ६. दा० नि० जोगी जंगम जती जटाधार (गु० सारि) । ७. दा० नि० अपने अवसर सब गए हैं हारि । ८-९. दा० नि० कहै कबीर
 रहु संग साथ । अभिअंतर सू कही बात ॥ मन ग्यांन जानि कै करि विचार । राम रमत भी
 तिरिबो पार ॥

[४४]

गु० विलावल ६, शबे० (२) प्रेम १५—
 १. गु० तिसहि । २. गु० सधिक ओहि साध नहीं कहीअउ । ३. गु० तुमही ।

[४५]

गु० विलावल ७, शबे० (२) प्रेम १०—
 १. गु० दरमादा ठाड़े । २. शबे० तुम बार बार । ३. गु० हम धन धनी उदार तिआगी
 ४. शबे० कौन । ५. शबे० मैं यह पंक्ति नहीं है । ६. शबे० पुरन पद को (राधा० प्रभाव) ।

(५) परचा

[४८]

१ता^२ मन कौ^३ खोजहु^४ रे भाई ।

तन छूटे मन कहां समाई ॥ टेक ॥

सनक सनंदन^५ जैदेउ नांमां । भगति करी मन उनहुं न जानां^६ ॥ १ ॥सिव बिरंचि नारद मुनि ग्यांनों । मन की गति उनहुं नहिं जानीं^७ ॥ २ ॥धू प्रह्लाद बिभीखन सेखा^८ । तन भीतर मन उनहुं न पेखा^९ ॥ ३ ॥ता^{१०} मन का कोई जानें न भेउ ।^{११} ता मनि^{१२} लीन^{१३} भया सुखदेउ ॥ ४ ॥गोरख भरथरी गोपीचंदा । ता मन सौं मिलि करै अनंदा^{१४} ॥ ५ ॥^{१५}अकल^{१६} निरंजन सकल सरीरा^{१७} । ता मन सौं मिलि रख्यो कबीरा^{१८} ॥ ६ ॥

[४९]

हरि ठग जगत^१ ठगौरी लाई ।हरि के बियोग कैसे जियौ मेरी भाई^२ ॥ टेक ॥

[४८]

दा० गोड़ी ३३, नि० गोड़ी ३७, गु० गउड़ा ३६, बी० १२, स० ४७-१—

गु० में पद के आरंभ की अतिरिक्त पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

सुख मांगत दुख आगे आवैं । सो सुख हमहि न मांगिआ भावैं ॥

विखिया अजहुं सुरति सुख आसा । कैये होइहे राजा राम निवासा ॥

इस सुख तें सिव ब्रह्म डराना । सो सुख हमहु सांच करि जाना ॥

[यहाँ इन पंक्तियों का कोई प्रसङ्ग नहीं । जान पड़ता है 'गुरु ग्रंथ साहय' के संकलनकर्त्ता ने मूल से दूसरे पद की कुछ पंक्तियों को यहाँ सम्मिलित कर लिया है ।]

२. गु० इस । ३. दा० कुं, बी० के । ४. बी० चीन्हहु, बी० हूँदहु । ५. गु० गुर प्रसादी । ६. गु० भगति के प्रेमि इनही हे जाना, बी० भक्ति हेतु मन उनहुं न जाना ।

७. बी० अंबुराख प्रह्लाद (तुल० ऊपर पंक्ति ४-१) सुदामा । भक्ति सही मन उनहुं न जाना ॥ (पुन० तुल० बी० में ऊपर की पंक्ति का द्वितीय चरण) । गु० में यह पंक्ति नहीं है, इसके स्थान पर निम्नलिखित अतिरिक्त पंक्तियाँ हैं—

इस मन कउ नहीं आवन जाना । जिसका भरसु गइआ तिनि साचु पछाना ॥

इस मन कउ रूप न रेखिया काई । हुकमे होइआ हुकमु वृक्ति समाई ॥

८. गु० सनकादिक नारद मुनि सेखा, बी० सिव सनकादिक (पुनरुक्ति-तुल० पंक्ति १२-१) नारद सेखा । ९. गु० तिन (उर्दू मूल) भी तन (हिन्दी मूल) महि मनु नहीं पेखा, बी० तन के भीतर मन उनहुं न पेखा । १०. बी० जा, गु० इस । ११. गु० जानें भेव । १२. दा० नि० स० रंचक, गु० इह मनि । १३. बी० सगन । १४. बी० ता मन मिलि मिलि कियो अनंदा । १५. गु० में यह पंक्ति नहीं है । १६. बी० एकल । १७. गु० जीव एक अरु सगल सरीरा । १८. गु० इस मन कउ रवि रहे कबीरा, बी० तामहं भ्रमि भ्रमि रहल कबीरा ।

[४९]

दा० गोड़ी ८९, नि० गोड़ी १२, गु० गोड़ी २९, बी० ३६, श्वे० (२) मिश्रित १४—

१ दा० ग० जगदीश गउड़ा ३७, बी० कौंसे जिमहरे भाई (हिन्दी मूल) भावे कस जीवें भाई

कौन पुरिख को काको नारी^३ । अभिअंतरि तुम्ह लेहु विचारी^४ ॥ १ ॥
 कौन पूत को काको बाप^५ । कौन मरै को सहै^६ संताप ॥ २ ॥^७
 कहै कबीर ठग सौं मन मानां । गई ठगौरी ठग पहिचानां ॥ ३ ॥

[५०]

अब^१ मोहि नाचिबौ^२ न आवै ।

मेरीं मन मंदरिया^३ न वजावै ॥ टेक ॥

ऊभर था सो सूर भरिया^४ त्रिसनां गागरि फूटी^५ ।
 काम चोलनां भया पुरानां गया भरम सब छूटी^६ ॥ १ ॥
 जे बहु रूप किए ते कीए^७ अब बहु रूप न होई ।
 थाकी सौंज संग के बिछुरे^८ रांम नांम बसि होई^९ ॥ २ ॥
 जे थे सचल अचल है थाके^{१०} चूके^{११} वाद बिबादा^{१२} ।
 कहै^{१३} कबीर मैं पूरा पाया भया रांम परसादा^{१४} ॥ ३ ॥^{१५}

[५१]

है कोई^१ संत सहज सुख अंतरि^२ जाको जप तप देउं दलाली ।^३
 एक बूंद भरि देइ रांम रस^४ ज्यूं महु^५ देइ कलाली ॥ टेक ॥

(हिन्दी मूल) । ३. बी० शवे० को काको पुरुष कवन काका नारी, गु० कउन को पुरुष कउन की नारी । ४. बी० शवे० अकथ कथा जम दृष्टि (शवे० दुष्ट) पसारी, गु० इथा तत लेहु सरीर विचारी । ५. गु० कउन को पूत पिता को काको, बी० शवे० को काको पुत्र कौन काको बाप । ६. गु० देइ, दा० नि० करे । ७. बी० शवे० में इसके बाद अतिरिक्त : ठग ठगि मूल सवन को लीन्हा । राम ठगौरी काहु न चीन्हा ॥

[५०]

दा० नि० सोरठि २०, गु० आसा २८, स० ५३-१—

१. दा० नि० तायें । २. गु० नाचनों । ३. दा० नि० स० मंदला । ४. गु० काम (पुन० आगे : काम चोलना) कोष मइया लै जारी । ५. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त—

हरि चित्त मेरी मंदला भीनीं भरम भोइन गयी छूटी (तुल० गयो भरम सब छूटी) ।

ब्रह्म अग्नि में जरी जु समिता पाखंड अरु अभिमानां ।

६. दा० नि० स० मां पै होइ न आनां । ७. गु० जउ मैं रूप किए बहुतेरे । ८. गु० अब पुनि । ९. गु० तागा तंतु साजु सब थाका । १०. दा० नि० स० मसि घोई (उट्टू मूल) । ११. गु० सरब भूत एकै करि जानिआ । १२. दा० नि० स० करते । १३. दा० नि० बिबाद-परसाद । १४. गु० कहि । १५. गु० में ऊपर की पाँचवीं तथा छठी पंक्तियां पद के आरंभ में हो आती हैं ।

[५१]

दा० रांमकली ३., नि० रांमकली ४, गु० रांमकली १, स० ५८-३—

१. गु० कोई हे रे । २. दा० नि० स० उपजै । ३. गु० में प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'रे' लगा है । ४. गु० एक बंद भरि तनु मनु देवउ । ५. दा० नि० स० भरि ।

काया कलाली^६ लाहनि मेलेउं^७ गुरु का सबद गुड़ कीन्ह^८ ।
 त्रिसनां काम क्रोध मद मतसर^९ काटि काटि कसि दीन्ह^{१०} ॥ १ ॥
 भवन चतुरदस भाठी पुरई^{११} ब्रह्म अग्नि परजारी^{१२} ।
 मुद्रा मदक^{१३} सहज धुनि लागी^{१४} सुखमन पोतनहारी^{१५} ॥ २ ॥
 नीभर भरै अमोरस निकसै^{१६} इहि मदि रावल छाका^{१७} ।
 कहै कबीर यहु बास बिकट अति ग्यान गुरु लै बांका^{१८} ॥ ३ ॥

[५२]

संतो भाई^१ आई ग्यान की आंधी रे ।^२
 भ्रम की टाटी सभै उड़ांनी^३ माया रहै न^४ बांधी रे ॥ टेक ॥
 दुचिते को^५ दोई^६ थूनि गिरांनीं^७ मोह बलेंडा^८ टूटा^९ ।
 त्रिसनां छांनि परी धर ऊपरि दुरमति भांडा^{१०} फूटा ॥ १ ॥
 आंधी पाछै जो^{११} जल बरसै^{१२} तिहि तेरा जन भीनां^{१३} ।
 कहै कबीर मनि भया प्रगासा उदै भानु जब चीनां^{१४} (— न्हां ?) ॥ २ ॥

[५३]

मैं^१ सबहिन्ह^२ मंहि औरनि (न ?) मैं हूँ सब^३
 मेरी^४ बिलगि बिलगि बिलगाई हो ।
 कोई कहौ कबीर कोई कहौ रांम राई हो^५ ॥ टेक ॥
 नां हम वार बूढ़ नांहीं हम^६ नां हमरै^७ चिलकाई हो ।
 पठएं न जांउं अनवा^८ (?) नहि आऊं सहजि रहूँ^९ नुनियाई^{१०} हो ॥ १ ॥

६. गु० कलालनि । ७. दा० नि० स० करिहं । ८. गु० कीनुरे । ९. दा० नि० स० काम क्रोध मोह मद
 मंछर । १०. गु० बीनुरे । ११. गु० तन जारी । १२. दा० नि० स० मूँदे मदन । १३. दा० नि० स०
 उपजी । १४. गु० पोचनहारी रे । १५. गु० निभर धार चुझै अति निरमल । १६. गु० इहरस मनुआ
 रातो रे । १७. गु० कहि कबीर सगले मद छूछे इहे महारसु साबो रे (तुकहीन-तुल० 'रातो रे') ।

[५४]

दा० गौड़ी १६, नि० गौड़ी १९, गु० गउड़ी ४३, स० ७१-१—
 १. गु० देखी भाई । २. गु० गिरान की आई आंधी । ३. गु० सभै उड़ानी भ्रम की टाटी ।
 ४. गु० रहै न माया । ५. दा० नि० स० हित चित की । ६. दा० नि० स० द्वै । ७. गु० डिगानी ।
 ८. दा० स० बलेंडा (उर्दू मूल) । ९. दा० नि० स० टूटा । १०. दा० नि० स० कुबधि का
 भांडा । ११. नि० हरि । १२. दा० नि० स० बूठा (राज० मूल) । १३. दा० नि० स० प्रेम
 हरीजन भीनां । १४. दा० नि० स० कहै कबीर भान के प्रगटै उदित भया तम खीना (?) ।

[५५]

दा० गौड़ी ५०, नि० गौड़ी ५४, स० ४७-३, बी० कहरा १०—
 १. बी० हौं । २. दा० सबनि मैं, बी० समनी मैं । ३. बी० हौं ना हौ । ४. बी० मोहि ।
 ५. बी० मैं यह पंक्ति नहीं है । ६. बी० नां मैं बालक बूड़ी नांहीं । ७. बी० मोरे । ८. दा०
 नि० स० अरवा (कैथी मूल), दा० रवा, बी० आने [स० का 'अरवा' तथा दा० का 'रवा'
 पाठ निरर्थक ज्ञात होते हैं । ऐसा ज्ञात होता है कि मूल पाठ 'अनवा' था जो कैथी लिपि की
 विकृति के कारण स० में आने के पूर्व 'अरवा' हो गया ।] ९. दा० नि० स० हरिआई हो ।

ओढ़न हमरै^{१०} एक पछेवरा लोक बोलै इकताई^{१०} हो ।^{११}
 जोलहै तनि बुनि पांन^{१२} न पावल^{१३} फारि^{१४} बिन^{१५} दस ठाई^{१६} हो ॥ २ ॥^{१६}
 त्रिगुण रहित फल रंमि हम राखल तब हमरौ नाउं रांम राई हो^{१७} ।
 जग सँ देखौ जग न देखै मोहिं इहि कबीर किछु पाई हो^{१८} ॥ ३ ॥

[५४]

रांम मोहिं^१ तारि कहां लै जइहीं ।^२
 सो बैकुंठ कही धौं कैसा करि पसाउ मोहिं दइहीं^३ ॥ टेक ॥
 जउ तुम मोकों दूरि करत हो^४ तो मोहिं^५ मुकुति बतावहु ।
 एकमेक रमि रह्यो सभनि सँ^६ तौ काहे^७ भरमावहु ॥ १ ॥
 तारन तरनु^८ तबै^९ लगि^{१०} कहिए जब लगि^{११} तत्त न जानां^{१२} ।
 एक रांम देखा सबहिन सँ^{१३} कहै^{१४} कबीर मन मानां^{१५} ॥ २ ॥

[५५]

रांम रसु पीया रे ।^१
 तातै^२ बिसरि गए रस और ॥ टेक ॥
 रे मन तेरी कोइ नहीं लैंचि लेइ^३ जिनि भार ।
 बिरलि बसेरी पंखि कौ तैसौ यहु संसार^४ ॥ १ ॥

१०. दा३ अकुताई । ११. बी० ने इसके बाद अतिरिक्त—

एक निरंतर अंतर नाहीं जी समि घट जल भाई हो ।
 एक समान कोइ समुक्त नाहीं जरा मरन भ्रम जाई हो ।
 रैन दिवस मैं तहँवां नाहीं नारि पुरुष समताई हो ।

१२. दा३ वान (उर्दू मूल) । १३. बी० जोलहा तान वान नहीं जानै । १४. बी० काटि (हिन्दी मूल) । १५. दा० नि० स० बुनी । १६. बी० इसके बाद अतिरिक्त: गुण परताप जिन्हें जस भावी जन बिरले सुधि पाई हो । अनंत कोटि मन हारा बीधी फिटकी मोल न पाई हो ॥ १७. बी० तिरबिधि रहीं सभनि मां बरती नाम मोर राम राई हो । १८. बी० सुरनर मुनि जाके खोज परे हैं किछु किछु कवीरान्द पाई हो । [बी० का क्रम यथापंक्ति १, २-४-३-२-४-६-८ है ।]

[५४]

दा० गौड़ी ५२, नि० गौड़ी ५६, गु० मारु ५—
 १. गु० मोकउ । २. गु० जहँहै । ३. गु० सोषउ मुकति कहा देउ कैसी करि प्रसादु मोहि पाई-
 है । ४. दा० नि० जे मेरे जिव दोइ जानत है । ५. गु० तउ तुम (पुन०) । ६. गु०
 एक अनेक होइ रहियो सगल महि । ७. गु० अब कैसे । ८. दा० नि० तारण तिरण
 ९. दा० नि० जवै । १०. गु० लगु । ११. गु० जानिया । १२. गु० अब तउ बिलस मए
 घट ही महि । १३. गु० कहि । १४. गु० मानिया । [गु० ने प्रथम दो पंक्तियां बीधी पंक्ति
 के बाद आती हैं ।]

[५५]

दा० गौड़ी ५५, नि० गौड़ी ५८, गु० गउड़ी ६४—
 १. दा० नि० गउड़ी रे । २. गु० जिहि रस । ३. गु० बिचि लेइ, नि० लैंचि लेइ । ४. दा०

और सुएँ क्या रोइअै जउ आपा थिरु न रहाइ ।
 जो उपजाई सो बिनसिहै दुख करि रोवै बलाइ ॥ २ ॥
 जहं की उपजी तहं रची पीवत मरदन लाग ।
 कहै कबीर चित चेतिया रांस सुमिरि बैराग ॥ ३ ॥

[५६]

अबधू मेरा मनु सतिवारा ।

उनमनि चढ़ा मगन रस पीवै त्रिभुवन भया उजिआरा ।
 गुड़ करि ग्यांन ध्यांन करि महुआ भौ भाठी मन धारा २ ।
 सुखमनि नारी सहज समांनों पीवै पीवनहारा ॥ १ ॥
 दोइ पुर जोरि रसाई भाठी चुआई महा रसु भारी ।
 कांसु क्रोध दोइ किए बलीता छूटि गई संसारी ॥ २ ॥
 सहज सुनि मैं जिन रस चाखा सतिगुर ते सुधि पाई ।
 दासु कबीर तासु मद माता उछकि न कबहू जाई ॥ ३ ॥

[५७]

बहुरि हम काहे कौ आवाहिगे ।

बिछुरै पंच तत्त की रचनां तब हम रांमहि पारवाहिगे ॥ टेक ॥
 पिरथी का गुन पांनों सोखा पांनों तेज मिलावाहिगे ।
 तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि सहज समाधि लगावाहिगे ॥ १ ॥

नि० ब्रैसा माया जाल । ५. दा० नि० मरत । ६. दा० नि० उपज्या । ७. दा० ताथें
 दुख करि मरे बलाइ । ८. दा० नि० जहां उपज्या तहां फिरि रच्यो रे । ९. गु० कहि ।
 १०. गु० सिमरि । ११. गु० में उक्त पद की पहली पंक्ति तीसरी के बाद आती है ।

[५६]

दा० गौड़ी ७२, नि० गौड़ी ७५, गु० रामकली २—

१. गु० उनमद चढ़ा मदन रसु (?) चाखिया । २. दा० नि० भव भाठी करि भारा (पुन०) ।
 ३. दा० पीवैगा । ४. दा० नि० दोइ पुड़ । ५. दा० नि० चिगाई । ६. गु० पीउ
 ७. गु० जलेता (?) । ८. दा० नि० में इसके बाद की दोनों पंक्तियों के स्थान पर है—

सुनि मंडल मैं मंदला वाजे तहां मेरा मन नाचै ।
 गुरु प्रसादि अमृत फल चाख्या सहजि सुखमनां काछै (पुन० पंक्ति ११) ।
 पूरा मिला तवै सुख उपज्यौ तनकी तपति बुझानों ।
 कहै कबीर भव बंधन छूटे जोतिहि जोति समांनों ।

[किंतु स्वीकृत पाठ की अंतिम दोनों पंक्तियों दा० गौड़ी ७५ तथा नि० गौड़ी ७७ में अंतिम दो
 पंक्तियों के रूप में मिल जाती हैं ।] १. गु० प्रगट प्रगास ग्यांन गुर गंमित [किंतु आगे
 'सतगुरु' शब्द स्वीकृत होने से यहाँ गु० के पाठ में पुनरुक्ति दोष आ जाता है ।] १०. दा० नि०
 दास कबीर इहाँ रस माता ।

[५७]

दा० गौड़ी १५०, नि० गौड़ी १५६, गु० मारू ४—

१-२ दा० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं ।

जैसें बहु कंचन के भूखन एकहि घालि^३ तवावहिगे^४ ।
अैसें हम लोक वेद के बिछुरे^५ सुनिहि माहि समावहिगे ॥ २ ॥
जैसें जलहि तरंग तरंगिनीं अैसें हम दिखलावहिगे ।
कहे कवार स्वांमीं सुखसागर^६ हंसहि हंस मिलावहिगे ॥ ३ ॥

(७) सूरतन

[५८]

डगमग छांड़ि दे^१ मन बीरा^२ ।
अव^३ तौ जरें मरें^४ वनि आवै^५ लोन्हों हाथि सिधौरा^६ ॥ टेक ॥
होइ निसंक मगन होइ नाचै लोभ मोह भ्रम^७ छांड़ै^८ ।

३. दा३ गालि, दा३ वाइ । ४. दा२ तवावहिगे (उर्दू मूल) । ५. दा३ वेद ते न्यारे । ६. दा३ सुख संगम । गु० में इस पद का पाठ है—

उदक समुंद सलल (पुन० दे० 'उदक') की सावित्रा नदी तरंग समावहिगे । [तुल० पंक्ति ०]

सुनहि सुनु मिलिआ समदरसी पवन रूप होइ जावहिगे ।

बहुरि हम काहे आवहिगे [तुल० मूल पद की पंक्ति १] ।

आवन जाना हुकुम तिसै का हुकमै भूमि समावहिगे ॥ १ ॥

जब चूकै पंच धातु की रचना अैसे भरमु चुकावहिगे [तुल० मूल की पंक्ति २] ।

दरसनु छोड़ि भए समदरसी [पुन० तुल० पंक्ति २] एको नामु पिआवहिगे ॥

जित हम लाए तित ही लागे तैसे करम कमावहिगे ।

हरि जी क्रिपा करै जउ अपनीं तौ गुं के सबदि समावहिगे ॥

जीवत मरहु मरहु फुनि जीवहु पुनरपि जनमु न होई ।

कहु कबीर जो नामि समाने सुन रहिआ लिख सोई [तुल० मूल पद पंक्ति ६] ।

सिद्धान्ततः दा० नि० की तुलना में गु० का पाठ ही प्रधान रूप से स्वीकृत करना चाहिये, किन्तु यहाँ गु० के पाठ में—

१-पुनरावृत्तियाँ मिलती हैं (जिनका उल्लेख ऊपर ग्रंथास्थान किया गया है) ;

२-अर्थ संबंधी उलझनें हैं (विशेषतया प्रथम पंक्ति में) ;

३-अंतिम दोनों पंक्तियों का तुल्य अचानक परिवर्तित हो गया है ।

इसके विपरीत दा० नि० के पाठ में इस प्रकार की उलझनें नहीं हैं, अतः यहाँ वही पाठ स्वीकृत किया गया है ।

[५८]

दा० गोड़ी १२९, नि० गोड़ी १३२, स० ६१-२, गु० गउड़ी ६८, शबे० (१) चिता० उप० २२, शक० गौरी ८—

१. गु० रे । २. शबे० छांड़ि दे मन बीरा डगमग । ३. शक० में इसके पूर्व अतिरिक्त : गृह ते निकरी सती होन को देखन को जग बीरा । ४. दा० नि० स० बरी दा३ वरयां । ५. गु० सिधि पाइअै । ६. गु० संघउरा (उर्दू मूल), दा३ संदीरा (उर्दू मूल) । ७. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : प्रीति प्रतीति करौ हृद गुर की सुनो शब्द बनबोरा । ८. दा० नि० स० छांड़ी ।

९. गु० मनेर छांड़हु भरमु प्रगत होइ नाचहु इआ माइआ के डांटे ।

सूरा कहा मरन तैं डरयै^{१०} सती न संचै^{११} भांडै ॥ १॥
 लोक बेद^{१२} कुल की मरजादा इहै गले में कांती^{१३} ॥ १५
 आधा चलि करि पाछैं फिरिहौ^{१४} होइ जगत में हांसी ॥ २ ॥ १६
 यहू^{१५} संसार सकल^{१६} है भैला राम कहैं^{१७} ते सूचा^{१८} !
 कहै कबीर नाउं नहिं छांडौ^{१९} गिरत परत चढ़ि ऊंचा^{२०} ॥ ३ ॥

[५६]

भाई रे अनीं लड़ै^१ सोई सूरा ।
 दोइ दल बिचि खेलै पूरा^२ ॥ टेक ॥

जब बजै जुभाउर बाजा^३ । तब कायर उठि उठि भांजा^४ ॥ १ ॥
 कोई सूर लड़ै भैदानां^५ । जिन मारि किया घमसानां^६ ॥ २ ॥^७
 जहं बांधि सकल हथियारा^८ । गुर ग्यान कौ खड्ग सम्हारा^९ ॥ ३ ॥
 जब बस कियो^{१०} पांचौं थांनां । तब राम भया मिहरबानां^{११} ॥ ४ ॥
 मन मारि अगमपुर लीया^{१२} । चित्रगुप्त परे^{१३} डेरा कीया ॥ ५ ॥ १४
 गढ़ फिरि गई राम दोहाई । कबीरा अविगति की सरनाई^{१५} ॥ ६ ॥ १६

१० गु० सूर कि सनमुख रन तें डरयै । ११ गु० सांचै, दार स० सैंतै (उर्दू मूल), शक० संशय (उर्दू मूल) । १२ शबे० शक० लोक लाज । १३ दा० नि० स० पासी । १४ शबे० शक० आगे हैं पग पाछे धरिहौ । १५-१६ दा३ तथा गु० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं । १७ शबे० तथा शक० में इसके पूर्व अतिरिक्त : अग्नि जरे ना सती कहावे रन जर्म नहिं सूरा । विरह अग्नि अंतर में जारै तब पावै पद पूरा ॥ १८ शबे० शक० जग (पुन० तुल० पहले का 'ससार') । १९ शक० शबे० नाम गहे । २० गु० काम क्रोध मादया के लीने इया विधि जगत बिगूता (तुकहीन-तुल० आगे 'ऊंचा') । २१ गु० राजा राम न छोड़उ, शबे० भक्ति मत छोड़ो, शक० नर भक्ति न छोड़ी २२ गु० सगल ऊच ते ऊचा ।

[५६]

नि० सोरठि ६२, शबे० (३) सूरमा ३, शक० सायरी ११—

१. नि० अर्ली मंडवा, शबे० एन (उर्दू मूल ?) लड़ै । २. शबे० शक० में यह पंक्ति नहीं है ।
 ३. नि० बाजा जुभाऊ बागा । ४. नि० सुनि सुनि भागा । ५. नि० मंडवा चौगानां, शक० लड़े भैदाना । ६. नि० मन मारि करे घमसानां (पुन तुल० पंक्ति ६-१) । ७. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : जहां तीर तुपक नहिं छूटे । तहां शब्दन सो गढ़ टूटे । शक० में यह पंक्ति भी है और इसके अतिरिक्त एक पंक्ति और है : गढ़ भीतर कोई हाकिम होई । गढ़ जाति सके नहीं कोई ॥
 ८. नि० मनवा ने बाग उठाई, शक० जिन बांधे पांचौं हथियारा । ९. नि० संवाली (तुकहीन)
 १०. नि० शक० जब मारवा (शक० मारे) । ११. शबे० शक० जहं साहिब है मिहरबाना ।
 १२. नि० जब गढ़ लीया, शक० अगम गढ़ लीनहां । १३. नि० जत सत में (उर्दू मूल), शक० चित मित पर । १४. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त—
 जहं नाहिं जनम अरु मरना । जम आगे न लेखा भरना ॥ जमदूत है तेरा बैरी । का सोवे नौद घनेरी ॥
 शक० में भी यह पंक्तियाँ किंचित् पाठांतर के साथ ऊपर की प्रथम पंक्ति के बाद मिलती हैं ।
 १५. शक० शबे० जहं बजै कबीर कौ ढंका । तहं लूटि लियौ गढ़ बंका ॥ १६. शबे० का क्रम यथापंक्ति १-६-४-२-३-७ है ।

(८) उपदेस चितावनीं

[६०]

प्राणीं^१ काहे कै^२ लोभ लागे^३ रतन जनम खोयो^४ ।

पुरुष जनमि करम भूमिं बीज नाहीं बोयो^५ ॥ टेक ॥

बूंद तें^६ जिनि पिडु कीया^७ अग्नि कुंड रहाया ।

दस मास माता उदरि राखा^८ बहुरि लागी^९ माया ॥ १ ॥^{१०}

बारिक तें^{११} विरिध भया^{१२} होनीं सो हूआ^{१३} ।

जब जमु आइ भोंट पकरै तबहि काहे रोआ^{१४} ॥ २ ॥

जीवनै की आस नाहीं^{१५} जम निहारै सांसा^{१६} ।

बाजीगरी^{१७} संसार कबीरा चेति^{१८} ढारि पासा ॥ ३ ॥^{१९}

[६१]

बोलनां का कहिए रे भाई^१ ।

बोलत बोलत तत्त नसाई^२ ॥ टेक ॥

बोलत बोलत बढ़ै^३ विकारा । बिनु बोले क्या करहि विचारा^४ ॥ १ ॥

संत मिलहि^५ कछु सुनिअै कहिअै । मिलहि असंत मस्टि^६ करि रहिअै^७ ॥ २ ॥

ग्यानीं सौं^८ बोले उपकारी^९ । मूरख सौं बोले^{१०} भलमारी ॥ ३ ॥

[६०]

दा० आसावरी ३९, नि० आसावरी ३३, गु० आसा ३३, बी० ५९, स० ६०-४-

१. बी० सुभागे । २. गु० काहे कउ, बी० केहि कारन । ३. दा० नि० स० लागि । ४. बी० खोए, गु० खोइआ । ५. दा० नि० स० बहुरि हारा हाथिन आवै राम बिना रोयो, बी० पूरब जनमि भूमि कारन बीज काहे को बोए । ६. दा० नि० जल बूंद येँ । ७. दा० नि० बांघ्या, दा० स० उपाया, बी० संजोयो, बी० साजो । ८. बी० माता के गरमे । ९. बी० लागति । १०. दा० नि० स० में इसके बाद को दो पंक्तियाँ नहीं हैं, किन्तु गु० बी० में हैं । ११. बी० बालक होते । १२. बी० बूढ़ हुआ है (बी० हूआ) । १३. बी० होनहार सो हूआ, बी० होनी रहा स हुआ । १४. बी० जब जमु आइहें बांधि चलइहें नैन भरि भरि रोया । १५. दा० नि० स० एक पल जीवन की आस नाहीं, बी० जीवन का जनि राखइ आसा । १६. बी० काल घरे है (बी० घरे है) स्वासा । १७. बी० बाजी है, दा० नि० स० बाजागर । १८. दा० नि० स० जानि, बी० चित चेति । १९. गु० में उक्त पद का प्रथम दो पंक्तियाँ उसको चौथी पंक्ति के बाद आती हैं ।

[६१]

दा० गोडी ६०, नि० गोडी ७०, गु० गौड १, बी० १० ७०, स० ९३-२-

१. गु० बाबा बोलना किआ कहाँअै, बी० बोलना कायों बोलिए रे भाई । २. दा० ३ बहु बोल्यां येँ, बी० बोलत ही सभ । ३. गु० जैसे राम नाम रवि रहिअै । ४. गु० बढ़हि, बी० बाढ़ । ५. दा० नि० स० बिन बोल्यां कयं होइ विचारा, बी० सो बोलिए जो परे विचारा । ६. बी० मिलहीं संत । ७. दा० नि० स० किडु कहिए कहिए, बी० बचन दुइ कहिए । ८. दा० नि० स० मुष्टि (उर्दू मूल), बी० मीन । ९. बी० होय रहिए । १०. गु० संतन सिउ, बी० पंडित सौं । ११. दा० नि० स० बोल्यां हितकारा, बी० बोलना उपकारी । १२. दा० नि० स० बोल्यां, नि० रहिए ।

कहै कबीर आधा घट बोले^{१३} । भरा^{१४} होइ तौ कबहुं न^{१५} बोले^{१६} ॥ ४ ॥^{१७}

[६२]

झूठे तन कौं क्या गरबावे^१ ।

मरे तौ पल भरि रहन न पावे^२ ॥ टेक ॥

खीर खांड घृत पिंड संवारा । प्रांन गएं लै बाहरि जारा^३ ॥ १ ॥^४

जिहि सिरि रचि रचि बांधत^५ पागा । सो सिरु चंचु संवारीहि कागा^६ ॥ २ ॥^७

हाड़ जरै जैसे लकड़ी भूरी^८ । केस जरै जैसे त्रिन कै कूरी ॥ ३ ॥^९

^{१०} कहै कबीर नर अजहुं न जागै । जम का डंड मूंड महि लागै^{११} ॥ ४ ॥

[६३]

भजि गोबिंद^१ भूलि^२ जनि जाहु ।

मनिखा^३ जनम कौ एही लाहु ॥ टेक ॥

गुर सेवा करि^४ भगति कमाई । जौ तैं^५ मनिखा देहीं पाई ॥ १ ॥

या देही कौ लोचै^६ देवा । सो देहीं करि^७ हरि की सेवा ॥ २ ॥

१३. बी० अर्ध घट डोलै (?), गु० छूछा घट बोले । १४. बी० पूरा । १५. दा० नि० स० मुखां न, बी० विचार लै । १६. गु० डोलै । १७. गु० में पंक्तियों का क्रम यथापंक्ति ३-१-४-२-५ है ।

[६२]

दा० गौड़ी १३, नि० गौड़ी १७, गु० गउड़ी ३५ तथा गौंड २, बी० १९, शवे० (२) चिता० १३—
१-२. गु० इस तन धन को किया गरवाईया । राम नाम काहे न द्विडीया ॥ ; बी० तथा शवे० में इन
पंक्तियों का पाठ है : अब कहां चलेउ अकेले सांता । उठहु न करहु घरहु की चिता ॥ ३. बी०
शवे० सो तन लै बाहर करि डारा । ४. गु० में यह पंक्ति नहीं मिलती । ५. शवे० बंधिसु ।

६. बी० शवे० सो सिर रतन विगारै (शवे० विहारै) कागा । ७. दा० नि० में यह पंक्ति यहाँ
नहीं मिलती, मत्स्युत सोरठि ३४ में अतिरिक्त रूप से मिलती है । तुल० दा० सोरठि ३४-४ यथाः
जा सिरि रचि रचि बांधत पागा । ता सिरि चंच संवारत कागा ॥ ८. शवे० सुखी लकरी ।

९. दा० नि० में इसके स्थान पर अतिरिक्त : चोवा चंदन चरचत अंगा । सो तन जरै काठ के संग ।
किन्तु तुल० दा० नि० सोरठि ३४-३ तथा गु० गउड़ी ११-७ यथा—
चोवा चंदन चरचत (गु० मरदन) अंगा । सो तन जरै काठ के संग ॥

गु० के समानान्तर साक्ष्य के कारण यह पंक्ति वहाँ के लिए प्रमाणित मानी जायगी । यहाँ दा०
नि० में वह अनावश्यक रूप से दुबारा आ गई है । १०. बी० तथा शवे० में इसके पूर्व अतिरिक्त—
आवत संग न जात संगत । काह भए दल बांधल हाथी ॥

माया के रस लेन न पाया । अंतर जम बिलार होय धाया ॥
शवे० में प्रथम पंक्ति की पुनरावृत्ति [तुल० दा० नि० गौड़ी १८-५, गु० मेरउ २-३, तथा शवे०
(१) चिता० उप० ४४-६ : पाठ शब्दशः यही ।] । ११. बी० जम का मुगदर मंझ सिर लागे,
शवे० जम का मुगरा बरसन लागे ।

[६३]

दा० मेरू २४, नि० मेरू २२, गु० मेरउ १, स० ६७-५—

१. दा१ भजि गोबिंद (राज० मूल), गु० भजहु गोविंद । २. गु० मत । ३. गु० मानस,
दा१ मनिसा । ४. गु० ते । ५. गु० तब इह । ६. गु० सिमरहि । ७. गु० भजु ।

जब लगि जुरा^८ रोग नहि आया । जब लगि काल प्रसै^९ नहि काया ॥ ३ ॥
 जब लगि हीन पड़े^{१०} नहि वानों । तब लगि भजि मन सारंगपानों^{११} ॥ ४ ॥
 अब नहि^{१२} भजसि भजसि कब भाई । आवै^{१३} अंत भज्यो नहि जाई^{१४} ॥ ५ ॥
 जे किछु करहि सोई तत सार^{१५} । किरि पछिताहु न पावहु पार^{१६} ॥ ६ ॥
 सेवग सो जो लागै^{१७} सेव । तिनहीं पाया निरंजन देव ॥ ७ ॥
 गुर मिलि जिनिके^{१८} खुले कपाट । बहुरि न आवै जोनीं बाट ॥ ८ ॥
 यहु^{१९} तेरा औसर यहु^{२०} तेरी वार । घट ही भीतरि देखु बिचारि^{२१} ॥ ९ ॥
 कहै^{२२} कबीर जोति भावै^{२३} हारि । बहु बिधि कह्यो पुकारि पुकारि ॥ १० ॥^{२३}

[६४]

जिहि नर^१ राम भगति नहि साधो ।सो^२ जनमत कस न सुओ अपराधो ॥ टेक ॥

जिहि कुल पूत न ग्यांन बिचारी । वाको^३ बिधवा कस न भई महतारी ॥ १ ॥^४
 सुचि सुचि गरभ^५ भई किन बांछ^६ । बुद्धभुज^७ रूप फिरै कलि सांछ^८ ॥ २ ॥
 कहै^९ कबीर नर^{१०} सुंदर सरूप । राम भगति बिनु कुचिल करूप^{११} ॥ ३ ॥

[६५]

मन रे अहरखि [मन आहर कहं ?] वाद न कीजै^१ ।अपनां सुकिनु भरि भरि लीजै^२ ॥ टेक ॥

८. गु० जरा । ९. गु० प्रसी (उर्दू मूल) । १०. गु० विकल भई । ११. गु० भजि लेहि रे मन
 सारंगपानी । १२. गु० न । १३. दा० नि० स० आवैगा । १४. गु० न भजिआ जाई ।
 १५. गु० अब सार । १६. दा० नि० स० फिर पछितावोगे वार न पार । १७. गु० लाइआ ।
 १८. गु० ताके । १९. गु० इही । २०. दा० नि० स० सोचि बिचारि । २१. गु० कहत ।
 २२. गु० के । २३. गु० में पद की प्रथम दोनों पंक्तियों ऊपर की चौथी पंक्ति के बाद आती है ।

[६४]

दा. गौड़ी १२५, नि० गौड़ी १२८, गु० गउड़ी २५, स० ६७-७-

१. दा० नि० स० जा नरि । २. गु० में 'सो' शब्द नहीं है । ३. दा० ताकी, गु० में यह
 शब्द नहीं है । ४. दा० नि० स० काहे न । ५. दा० नि० स० में यह पंक्ति अगली के बाद है ।
 ६. दा० नि० स० गरम मुचेमुचि । ७. गु० गप कीन बचिआ । ८. दा० नि० स० सुकर
 (सरलीकरण) । ९. गु० जीवै जग मकिआ । १०. गु० कहु । ११. गु. जैसे । १२. गु० नाम
 बिना जैसे कुबज करूप ।

[६५]

दा० गौड़ी १०५ (दा१, दा२ में यह पद नहीं है), नि० विहंगड़ी १४, गु० आसा १६, स० ८८-१-
 १. गु० अहरिख वादु न कीजै रे मन [दा० स० में 'अहरखि' और गु० में 'अहरिख' मिलने से
 यह मूल पाठ का शब्द प्रतीत होता है, किन्तु व्युत्पत्ति स्पष्ट न होने के कारण यह पाठ संदिग्ध

कुंभरा एक कमाई माटी^३ बहु बिधि बानों लाई^४ ।
 काहू^५ मंहि मोती मुकताहल^६ काहू व्याधि लगाई ॥ १ ॥
 काहू^५ दीन्हां पाट पटंबर काहू^५ पलंव^७ निवारा^८ ।
 काहू^५ गरी^९ गोंदरी^{१०} ताहीं काहू^५ सेज पयारा^{११} ।
 खूमहि धन राखन कौं दीया^{१२} सुगंध कहै यहू^{१३} मेरा ।
 जम का डंडु झंडु मंहि लागै^{१४} खिन मंहि करै निबेरा^{१५} ॥ ३ ॥^{१६}
 कहै कबीर सुनौं रे संतौ मेरी मेरी झूठी^{१७} ।
 चिरकुट फारि चुहाड़ा ले गयो^{१८} तनी^{१९} तागरी^{२०} टूटी^{२०} ॥ ४ ॥^{२१}

लगता है। ज्ञात होता है कि यह उर्दू मूल 'आहर कह' (= उद्यम के लिए, जीविका के लिए) का विकृत रूप है। 'आहर' शब्द के लिए द्रष्टव्य—श्री गुरु ग्रंथ साहब, मि० संस्क०, पृ० १६५, यथा : आहर सभि करदा फिर आहर इकु न होइ। नानक जितु आहरि जगु ऊधरे चिरला बूझै कोइ ॥ तथा जायसी, पदमावत, वृंद २०४-६; यथा : कत तप कीन्ह छाड़ि कै राजू। आहर गएउ न मा सिधि काजू ॥]। २. गु० सुस्मितु करि करि लीजै रे मन (यथा तांसरी चौथी पंक्ति)। ३. गु० कुम्हारै एक जु माटी गूथी। ४. दा० नि० स० बहु बिधि जुगति बनाई। ५. दा० नि० एकनि, स० एकहु। ६. दा० माहं मोती मुकता। ७. दा० नि० स० सेज [अगली पंक्ति में 'सेज' शब्द रहने के कारण पुनः]। ८. दा० निवाला। ९. दा० गरी (उर्दू मूल), नि० स० गलै (उर्दू मूल)। १०. दा० नि० स० गंदरी [किंतु जायसी में भी 'गोंदरी' शब्द ही मिलता है; दे० पदमावत]। ११. नि० सेज पखारा (हिन्दी मूल), गु० खान परारा [कवि का अभिप्राय परस्पर विरोधी सामग्रियों उपस्थित करना ज्ञात होता है। यहाँ विलोमता पूरी-पूरी पंक्ति में है—'पाट पटंबर' का विलोम है 'गरी गोंदरी' (= सड़ी गली गुंदरी या कंथा) और 'पलंव निवारा' (नेवाड़ा की शय्या) का विलोम है 'सेज पयारा' (पयारा=पुआल, घान का सूखा ढंठल)। 'खान परारा' से यह विलोमता सिद्ध नहीं होती, अतः गु० का पाठ यहाँ आमक ज्ञात होता है। डा० रामकुमार वर्मा ने ('संत कबीर' पृ० ३६ तथा १५० पर) 'परारा' का अर्थ 'करेला' दिया है, किन्तु यह अर्थ संतोपजनक नहीं लगता।]। १२. दा० नि० सांची रही सुम की संपति। १३. दा० नि० मेरी। १४. दा० नि० अंतकाल जम आइ पहुँता। १५. दा० छिन महं कीन्ह नबेरी (उर्दू मूल), नि० याह नहीं किस करे। १६. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : हरिजन ऊतसु भगनु सदा वै आगिआ मनि सुखु पाई। जो तिसु भावै सति करि मानै भाणा मनि बसाई ॥ १७. दा० नि० सब झूठा। १८. दा० नि० चड़ा चौथड़ा चुहाड़ा ले गया, गु० चिरगट (उर्दू मूल) फारि चटारा (उर्दू मूल ?) ले गइओ [अवधी-भोजपुरी में 'चिरकुट' (=जीर्ण शीर्ष वस्त्र) शब्द है, जिससे गु० में संभवतः उर्दू मूल के कारण 'चिरगट' पाठ हो गया है, अतः मूल के लिए 'चिरकुट' पाठ ही स्वीकृत किया गया है। 'चटारा' भी निरर्थक है और 'चुहाड़ा' (=होम या मेहतर) का विकृत रूप ज्ञात होता है। यह विकृति भी संभवतः उर्दू लिपि से हुई है।]। १९. गु० तरी (कैथी मूल), दा० तरा, नि० तड़ी। २०. दा० तरागती टूटी, नि० तामड़ी (नागरी मूल) टूटी। [मूल पाठ 'तनी तागरी' ज्ञात होता है। 'तागरी' करघनी या कटिसूत्र का द्योतक है, और 'तनी' का अर्थ है 'तन पर की'। शव को जलाते समय कटिसूत्र भी तोड़ कर शरीर से विलग कर दिया जाता है।]। २१. स० में पद की अंतिम चार पंक्तियों का पाठ है—

एक दुई दातार उपाए एक मिखारी भूखे।

एकहु को साईं सुख दीन्हां एक करम गति दूखे ॥

कहै कबीर सुनौ मन मेरे पावै प्रभु कौ दीया।

तामैं पर सार कछु नाहीं जा जीव को जो कीया ॥

[६६]

भाई रे बिरलै दोस्त कबीर के यह तत बार बार कासों^१ कहिए ।^२
 भानन^३ गढ़न^४ सवारन^५ संप्रय^६ ज्यों^७ राखै त्यों रहिए ॥ टेक ॥
 आलम दुनों सबै फिरि खोजी^८ हरि बिन सकल अयांनों^९ ।
 छह दरसन पाखंड छद्यांनवै^{१०} आकुल किन्हुं^{११} न जानां ॥ १ ॥
 जप तप संजम पूजा अरचा जोतिग जग बौरांतां^{१२} ।
 कागद लिखि लिखि जगत भुलांतां^{१३} मन हीं^{१४} मन न समांतां ॥ २ ॥
 कहै कबीर जोगी अरु जंगम ए [की ?] सभ भूठी आसा^{१५} ।
 रांमहि नाम^{१६} रटौ चात्रिग ज्यों निहचै भगति निवासा ॥ ३ ॥^{१७}

[६७]

बाबा^१ माया मोह मो हितु कोन्ह^२ ।
 तातैं ग्यांन रतनु^३ हरि लोन्ह ॥ टेक ॥
 जगि जीवतु^४ असा सुपिनै^५ जैसा जीवत^६ सुपिन समांन ।
 सांचु कहि हम^७ गांठि^८ दोन्हों^९ छोड़ि^{१०} परम निधान ॥ १ ॥
 नैन देखि^{११} पतंग उरभै^{१२} पसु न पेखै आगि ।
 काल फांस न सुगध चेतै^{१३} कनक^{१४} कामिनि लागि ॥ २ ॥^{१५}

[६६]

दा० गौड़ी ३४, नि० गौड़ी ३८, बी० २६, स० ३२-१—
 १. नि० का । २. बी० भाई रे बहुत बहुत का कहिए बिरलै दोस्त हमारे । ३. दा० दा०
 भानन, बी० भंजै, बीम० भंजन । ४. बी० गढ़न, बीम० गढ़न । ५. बी० सवारै, (बीम०
 सवारन) । ६. बी० आपै । ७. बी० राम । ८. बी० आयो । ९. बी० एकल उहै न
 आना, बीम० एकल जे उहै निआना । १०. दा० नि० स० छद्यांनवै पाखंड । ११. बी० एकल
 काहु । १२. बी० आसन पीन जोग कृति (बीम० सुचि) सुत्रित जोतिख पढ़ि बैलाना ।
 ('आसन' 'पीन,' 'जोग' आदि कर्मों के साथ 'पढ़ि' क्रिया अस्मात्मक है ।) १३. बी० तजि कारगह
 (बीम० ताजी कर गहि) जगत उचायी (बीम० उपायी) । १४. मन महि । १५. बी० फीका
 उनकी आसा । १६. दा० नि० स० गुर परसादि । १७. बी० में ऊपर की तीसरी तथा पाँचवीं
 पंक्तियों परस्पर स्थानांतरित ।

[६७]

दा० आसावरी ४४, नि० आसावरी ३९, गु० आसा २७, बी० ६०, बीम० ३—
 १. दा० नि० बी० में 'बाबा' शब्द नहीं है । २. दा० नि० माया मोहि मोहि हित कोन्ह ।
 ३. दा० नि० तायें मेरी ग्यांन ध्यांन, बी० गु० जिनि ग्यान रतनु । ४. दा०, दा० नि० संसार,
 दा० जग जीवन, बी० जीवन । ५. बी० सपना । ६. दा० सुपितु । ७. दा० नि० नर ।
 ८. दा० नि० बंध्यौ । ९. बी० शब्द गुरू उपदेश दियो तैं । १०. बी० छान्छौ । ११. बी० जोति
 देखि, दा० नि० नैन नेह । १२. दा० नि० बी० हुलसै । १३. दा० नि० काल फांस जु सुगध
 बंध्या, बी० काल फांस नल सुगध न चेतै । १४. दा० कलक । १५. बी० में इसके बाद अतिरिक्त :
 गेख सैयद पदसि मिरसिबु, डेनाम, जिवांकुलसगुगुगे गोअरिनि तैं जातिवै जीवहि मारे ॥

करि बिचार बिकार परिहरि तरन^{१६} तारन सोइ ।

कहै कबीर भगवंत भजि नर^{१७} दुतिअ नाहीं कोइ ॥ ३ ॥

[६८]

फिरहु का फूले फूले फूले^१ ।

जब दस मास उरध मुखि^२ होते सो^३ दिन काहे भूले^४ ॥ टेक ॥

जब जरिअै तब होइ भसम तन^५ रहै किरिम दल खाई^६ ।

कांचै कुंभ उदिक ज्यों भरिया^७ या तनकी^८ इहै^९ बड़ाई ॥ १ ॥

ज्यों माखी सहतैं नहि बिहुरै^{१०} जोरि जोरि^{११} धन कीन्हां^{१२} ।

मूएँ पीछै^{१३} लेहु लेहु करै^{१४} भूत^{१५} रहन क्यूँ^{१६} दीन्हां^{१७} ।

देहरि लौं बरी^{१८} नारि संग है आगैं सजन सुहेला^{१९} ।

मरहट लौं सभ लोग कुटुंब भयौ आगैं हंसु अकेला^{२०} ॥ ३ ॥

राम न रमसि^{२१} मोह^{२२} कहा माते^{२३} परहु काल बस कूवा^{२४} ।

कहै कबीर नर^{२५} आपु बंधायौ ज्यों ललनों भ्रमि सूवा^{२६} ॥ ४ ॥^{२६}

[६९]

चलत कत^१ टेढ़े टेढ़े टेढ़े^२ ।

१६. दा० नि० तिरण । १७. दा० नि० कहै कबीर रबुनाथ भजि नर, गु० कहै कबीर जगु जीवन
असा (पुन० तुल० पंक्ति ३-२) । गु० में प्रथम दो पंक्तियाँ चौथी पंक्ति के बाद आती हैं ।

[६८]

दा० आसावरी ४०, नि० आसावरी ३५, गु० सोरठि २, वी० ७३, बीम० १००—

१. गु० काहे भइया फिरतौ फूलिया फूलिया, दा० नि० फिरत कत फूल्यौ फूल्यौ फूल्यौ ।

२. बी० अउंध मुख । ३. गु० रहता । ४. गु० कैमे भूलिया । ५. दा० नि० काहे भूल्यौ ।

६. दा० नि० जो जारै तो होइ भसम तन, बी० जारै देह भसम होइ जाई । ७. दा० नि० रहत

कुम है जाई, बी० गाड़े माटी खाई । ८. दा० नि० कांचे कुंभ उदिक भरि राख्यौ, गु० कांची

गागरि नीर परतु है । ९. दा० याकी, दा० दा० तिनकी (उर्द मूल) । १०. दा० नि० कीन ।

११. गु० जिउ मधु माखी निउ सठोरि रस, दा० नि० ज्यूं माखी मधु संचि करि । १२. बी०

सोचि सोचि । १३. गु० कीया-दीया । १४. गु० मरती बार । १५. दा० नि० करि । १६. दा०

नि० बी० प्रेत (बीम० भूत) । १७. बी० कस । १८. बी० बर । १९. दा० नि० ज्यूं घट

नारी संग देखि करि तब लग संग सुहेली । २०. दा० नि० मरघट घाट खैंचि करि राखे वह

देखहु हंस अकेली, बी० अत्रिक थान लौं संग खटोला फिरि पुनि हंस अकेला । २१. दा०

नि० रमहु । २२. दा० नि० मदन । २३. गु० कहत कबीर सुनहु रे प्रानी । २४. गु० परे

काल ग्रस कूवा, दा० नि० परत अवेरै कूवा । २५. दा० नि० सोइ । २६. गु० भूठी

माइया आपु बंधाइया जिउ नलनी भ्रमि सूआ । २७. गु० में प्रथम दो पंक्तियाँ चौथी पंक्ति

के बाद आती हैं ।

[६९]

दा० नि० केदारी १२, गु० केदारा ४, वी० ७२, बीम० १०६—

१. दा० नि० चलत कित, बी० चलहु का । २. दा० नि० टेढ़ी टेढ़ी रे । ३. बी० दसहु

नऊं दुवार नरक धरि मूंदे^२ दुःखं हि के वेड़े^३ ॥ टेक ॥

ज जारै तौ^४ होइ भस्म तन^५ गाड़े क्रिम कोट खाई^६ ।

सूकर स्वांन काग को भक्षित^७ तामैं कहा भलाई^८ ॥ १ ॥

फूटे नैन हिरदै नहिं सूझै^९ मति^{१०} एकौ नहिं जानीं ।

कांम क्रोध तिसनां के^{११} मारे^{१२} बूड़ि सुएहु बिनु पांती^{१३} ॥ २ ॥

रांम न जपहु कवन भ्रम भूले^{१४} तुम तैं काल न दूरी^{१५} ।^{१६}

कोटि^{१७} जतन करि यहु तन राखहु^{१८} अंत अवस्था धूरी^{१९} ॥ ३ ॥^{२०}

^{२१} बालू^{२२} के घरवा^{२३} मांहि बैसे^{२४} चेतत नाहिं अयांनां^{२५} ।

कहै कबीर एक रांम भजे बिनु^{२६} बूड़े बहुत सियांनां^{२७} ॥ ४ ॥

[७०]

रैंनि गई मत्त दिनु भो जाइ^१ ।

भंवर उड़े^२ बग बैठे आइ ॥ टेक ॥

थरहर^३ कंपै वाला जीउ^४ । नां जानीं क्या करिहै^५ पीउ ॥ १ ॥^६

कांचे करवै^७ रहै^८ न पांतीं । हंस उड़ा^९ काया कुम्हिलांतीं^{१०} ॥ २ ॥^{११}

कउवा उड़ावत भुजा पिरांतीं^{१२} । कहै^{१३} कबीर यहु^{१४} कथा सिरांतीं ॥ ३ ॥

द्वार नरक भरि बूड़ [दस द्वार मानने पर उसमें ब्रह्मरंध्र भी सम्मिलित करना पड़ेगा जो परम पवित्र माना गया है; तुल० बी० चोर्तासी, पंक्ति १०, यथा : दसएँ द्वारे तारी लावै । तब दयालु के दरसन पावै], गु० असति (=अस्थि ?) चरम बिसटा के मूदे । १. बी० वं. गंधी की वेदी, दा० नि० तू दुरगंधी की वेदी । ५. बी० तन । ६. दा० नि० रहित किरम जल खाई । ८. बी० भोजन । ९. बी० तन की इहे बढ़ाई [पुन० तुल० बी० ७३; यथा : कांचे कुंभ उदक ज्यौं भरिया तन की इहे बढ़ाई । गु० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं, किन्तु दा० नि० तथा बी० में हैं; अतः स्वीकृत । विशेष के लिए दे० भूमिका ।] ११. गु० फूटी आंख कट्ट न सूझै (अगली पंक्ति के प्रथम चरण से स्थानांतरित) । १२. बी० माते, बीम० मारे, गु० लीने (?) । १३. दा० नि० माया मोह मामता सूं बांध्यौ । १४. नि० अभिनांतीं । १५. बी० चेतन न देखु सुगंध नल बीरे । १६. गु० दूरे (उड़ै मूल) । १७. गु० अनिक । १८. बी० कोटिक जतन करत बहुतेरे । १९. गु० रहे अवस्था पूरे । २०-२१. दा० नि० में यह पंक्तियाँ नहीं हैं, किन्तु गु० तथा बी० में हैं । २२. गु० में इसके पूर्व अतिरिक्त : आपन कीआ कट्ट न होवै किआ की करै परानी । ज' तिसु भावै सतिगुरु भेटै एको नामु बखानी ॥ २३. गु० बलुआ, दा० नि० बाहू । २४. गु० चरआ । २५. गु० बसते, बी० बैठे । २६. गु० फुलवत देह अइआने । २७. गु० कहु कबीर जिह रामु न बेतिआ (तुल० ऊपर की पंक्ति) । २८. गु० सिआने ।

[७०]

दा० मेरू ३६, नि० मेरू ३७, गु० सूही २, बी० १०६, बीम० ६६—

१. बी० रैंनि गई दिवसौ चलि जाइ । २. गु० गए । ३. बी० हलहल । ४. दा० नि० घरहर घरहर कंपे जीव । ५. गु० करसी (राज० मूल) । ६. बी० कांचे बासन । ७. बी० टिकै । ८. बी० उडि गए हंस, गु० हंसु चलिआ । ९. गु० कुमलानी । १०. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : कुआर कंनिया जैसे करत सीगरा । किउ रलीआ मानै बाहु भतारा ॥ ११. गु० काग उड़ावत भुजा पिरानी, दा० नि० कऊवा उड़ावत मेरी बहियां पिरांतीं । १२. गु० कहि । १३. दा० नि० मेरी, गु० उछो. H.P. Public Domain, Surukh Kangri Collection, Haridwar

[७१]

असा ग्यांन बिचारु मना^१ ।हरि किन सुमिरै^२ दुख भंजनां^३ ॥ टेक ॥जब लगि^४ मेरी मेरी करै^५ । तब लगि^६ काजु एक नहिं सरै ॥ १ ॥जब मेरी मेरी मिटि जाइ^७ । तब प्रभु^८ काज संवारै आइ ॥ २ ॥जब लगि^९ सिध रहै बन माहिं । तब लगि^{१०} यहु बन फूलै नाहिं^{११} ॥ ३ ॥उलटि सियार^{१२} सिध^{१३} कौं खाइ^{१४} । तब यहु फूलै सभ बनराइ^{१५} ॥ ४ ॥जीतौ बूड़ै हारौं तिरै^{१६} । गुर परसादि जीवत ही मरै^{१७} ॥ ५ ॥दास कबीर कहै समझाइ । केवल रांम रहहु लिब^{१८} लाइ ॥ ६ ॥

[७२]

हरि नांव^१ न जपसि^२ गंवारा ।^३कया सोचहि^४ बारंबारा ॥ टेक ॥पंच चोर गढ़ मंभा । गढ़ लूटहिं दिवसउ संभा ॥^५जउ गढ़पति मुहकम होई । तौ लूटि सकै नां कोई ॥ १ ॥^६

[७१]

दा० मेहं २४, नि० मेहं २४, गु० मरउ १४, शवे० (१) चिता० उप० ३१—

१. दा० नि० विचारि रे मना । २. गु० सिसरहु । ३. शवे० में यह पंक्ति नहीं है, गु० में तीसरी पंक्ति के बाद है । ४. शवे० में इसके पूर्व अतिरिक्त—

चंदा भलकै यहि घट साही । अंधी आंखन सूझै नाहीं ॥

यहि घट चंदा यहि घट सूर । यहि घट गाजे अनहद तूर ॥

यहि घट बाजै तबल निसान । बहिरा शब्द सुनै नहि कान ॥

५. गु० लगु । ६. दा० नि० में में मेरी करै । ७. दा० नि० जब यहु में मेरी मिटि जाय, शवे० जब मेरी समता मरि जाइ । ८. दा० नि० हरि । ९. गु० तब लगु बन फूलै ही नाहि ।

१०. दा० नि० स्याल । ११. दा० नि० स्यंध । १२. गु० जब ही सिआर सिध कउ खाइ ।

१३. शवे० उकिठा बन फूलै हरियाइ, गु० फूलि रही सगली बनराइ । १४. शवे० में इसके बाद की दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं । इनके स्थान पर निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

ज्ञान के कारन करम कमाय । होय ज्ञान तब करम नसाय ॥

फल कारन फूलै बनराय (पुन० ऊपर पंक्ति ६-२) । फल लागै तब फूल सुखाय ॥

मिरग पास कसतूरी बास । आपु न खोजै खोजै बास ॥

पारै पिंड मीन ले खाई । कहै कबीर लोग बीराई ॥

१५. दा० नि० जीत्या हूवै हाखा तिरै । १६. गु० गुर परसादी पारि उतरै (दे० प्रथम चरण में 'तिरै') । १७. दा० नि० ल्यो ।

[७२]

दा० नि० सोरठि १, गु० सोरठि ७, शवे० (२) उप० २० (अंशतः)—

१. गु० नामु । २. दा० नि० लेहु । ३. शवे० गुरु से (सांप्रदायिक मूल) कर मेल गंवारा ।

४. दा० नि० का सोचै, शवे० का सोचत । ५. शवे० में इन पंक्तियों के स्थान पर—

जब पार उतरना चाहिए । तब केवट से मिलि रहिए ॥

जब उतरि जाहु भव पारा । तब छूटै यह संसारा ॥

अंधियारै दीपक चहिअै । तब वस्तु अगोचर लहिअै ॥^८
 जब^९ वस्तु अगोचर पाई । तब^{१०} दीपक रह्यौ समाई ॥ २ ॥^८
 जौ दरसन देखा चहिअै । तौ दरसन मांजत रहिअै ॥^९
 जब दरसन लागै^{१०} काई । तब दरसन किया न जाई^{११} ॥ ३ ॥^९
^{१२}का पढ़िएं^{१३} का गुनिएं । का^{१४} वेद पुरांनां सुनिएं ॥^{१०}
 पढ़े^{१५} गुने^{१६} क्या^{१७} होई । जउ सहज न मिलिअौ सोई^{१८} ॥ ४ ॥^{१०}
 कहै कवीर मैं जानां^{१९} । मैं जानां मन पतियांनां^{२०} ॥
 पतियांनां जौ न पतीजै । तौ अंधे कौ का कीजै^{२१} ॥ ४ ॥

[७३]

कहा नर गरबसि थोरी बात ।

मन दस नाज टका दस गांठी^१ ऐंडी^२ टेढ़ी जात ॥ टेक ॥बहुत प्रताप^३ गांजं सौ^४ पाए दुइ लख टका बरात^५ ।दिवस चारि की करहु साहिबी^६ जैसे^७ बन हर^८ पात ॥ १ ॥नां^९ कोऊ लै आयौ यह धन^{१०} नां^{११} कोऊ^{१२} लै जात ।रावन हूँ तैं अधिक छत्रपति^{१३} खिन^{१४} महि गए बिलात^{१५} ॥ २ ॥

[किछु आगे गढ़ का प्रसंग शबे० में भी आता है जिससे ज्ञात होता है कि मूल प्रति में स्वीकृत पंक्तियाँ अवश्य थीं ।] ६. गु० इक । ७. गु० बटि । ८. शबे० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं । ९. शबे० लागत । १०. शबे० तब दरसन कहाँ ते पाई । ११. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं, किन्तु दा० नि० और शबे० में हैं । १२. शबे० में यह और इसके आगे की तीनों पंक्तियाँ नहीं हैं; इनके स्थान पर—

जब गढ़ पर बजो बधाई । तब देख तमासे आई ॥

जब गढ़ बिच होत सकेला । तब हंसा चलत अकेला ॥

कह कवीर देख मन करनी । वाके अंतर बीच कतरनी ॥

कतरनि कै गांठि न छूटै । तब पकरि पकरि जम लूटै ॥

१३. गु० किआ पड़ीअै (पंजाबी प्रभाव) । १४. गु० सुने । १५. दा० नि० मति । १७. दा० नि० मैं सहजें पाया सोई । १८. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ पद के आरम्भ में ही आती हैं । १९. गु० अब जानिआ । २०. गु० अब जानिआ तउ मन मानिआ । २१. गु० का पाठ है—मन माने लोगु न पतीजै । न पतीजै तउ किआ कीजै ॥

[७३]

दा० धनश्री ३, नि० सारंग ३, गु० सारंग १, शबे० (२) चिता० ६—

१. दा० वस गंठिया, गु० चारि गांठी । २. दा० नि० टेढ़ी । ३. दा० नि० राजा भयो ।

४. नि० दस, शबे० से । ५. दा० नि० टका लाख दस ब्रात (नि० ब्रात रे), शबे० दुइए टका

बरात । ६. दा० नि० की है पातिसाही । ७. दा० नि० ज्युं । ८. दा० नि० हरियल ।

९. दा० कहा । १०. नि० जामत ही रे कहा लै आयो । ११. नि० मरत कहा । १२. दा० नि०

रावन होत लंक की छत्रपति । १३. दा० नि० लख । १४. दा० नि० लख । १५. दा० नि० लख ।

हरि के संत सदा थिर पूजो जो हरिनाम^{१५} जपात ॥^{१७}
 जिन पर क्रिपा करत है गोबिंद^{१६} ते सतसंगि मिलात ॥ ३ ॥^{१८}
 मात पिता बनिता सुत संपति^{१९} अंति न चले संगत ।
 कहत कबीर राम भजु बउरे^{२०} जनम अकारथ^{२१} जात ॥ ४ ॥^{२२}

[७४]

^१राम^२ सुमिर पछिताइगा ।

पापी जियरा लोभ करत है आजु कालि उठि जाइगा ॥ टेक ॥^३
 लालच लागै^४ जनम गंवाया माया भरमि भुलाइगा ।^५
 धन जोवन का गरब न कीजै^६ कागद ज्यों गरि जाइगा^७ ॥ १ ॥
 जब जम आइ केस गहि पटकै ता दिन कछु न बसाइगा^८ ।
 सुमिरन भजन दया नहिं कीन्हों तौ मुख चोटा खाइगा ॥ २ ॥^९
 धरमराइ जब लेखा मांगै क्या मुख ले कै जाइगा^{१०} ॥^{११}
 कहत कबीर सुनहु रे संतों^{१२} साध संगति तरि जाइगा ॥

[७५]

चलि चलि रे भंवरा कंवल पास^१ ।

तेरी भंवरी बोलै अति उदास ॥ टेक ॥

मैं तोहिं बरजेउं बार बार^२ । तैं वन वन सोध्यों डार डार^३ ॥ १ ॥^४

१५. शबे० सतनाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । १६. शबे० सतगुरु (सांप्रदायिक प्रभाव) १७-१८. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं । १९. दा० नि० लोक सुत बनिता । २०. शबे० संग कर सतगुरु (राधा० प्रभाव) । २१. नि० अमोलिक [दा० तथा नि० में ऊपर की तीसरी तथा पाँचवीं पंक्तियाँ परस्पर स्थानांतरित] ।

[७४]

नि० सोरठि ७९, गु० सारू ११, शबे० (१) चिता० उप० ७४—

१. नि० में इसके पूर्व 'प्राणी' और गु० में 'मन' अतिरिक्त रूप से जुड़े हैं । २. शबे० नाम (राधा० प्रभाव) । ३-४. नि० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं । ५. शबे० लागी । ६. नि० या देही का गरब न करना । ७. नि० गरि जावैगौ । ८. नि० जब जम आवै बांधि चलावै तब तौ कौन छुड़ावैगौ । ९. नि० में इनके स्थान पर : भाई मात पिता सुत बंधु निकट कोई नहिं आवैगौ । १०. नि० तब कियी आपणों पावैगौ । ११. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : लख चौरासी जोनि भुगतिसी फिरि फिरि गोता खावैगौ । खेवट गुरु सू मिलि करि रहिए सो ले पार लगावैगौ ॥ १२. नि० कहै कबीर एक राम भजन सू ।

[७५]

दा० वसंत १२ (दा२ में नहीं है), नि० वसंत १३, शबे० (२) चिता० ३१, शक० वसंत २—
 १. शक० तज तज रे भौरा कमल बास । २. दा० नि० हों ज कहत तोसुं बार बार, शबे० चौज (उर्दू मूल) करत (नागरी मूल) तहं बार बार । ३. शबे० तन वन फूले डारि डारि, शक० तैं वन सोधेउ डाढ़ डाढ़ । ४. दा० नि० में यह पंक्ति अग्रली के बाद है ।

तैं अनेक पुहुप का लियौ है भोग^१। सुख न भयौ तन^२ बढ़्यो रोग ॥ २ ॥
 दिनां^३ चारि के सुरंग फूल। तेहि लखि भंवरा रह्यो भूल^४ ॥ ३ ॥
 बनसपती जव लागै आगि^५। तब भंवरा^६ कहां जैहो भागि ॥ ४ ॥
 पुहुप पुरानें गए सूख^७। तब भवरीहि^८ लागी अधिक भूख ॥ ५ ॥
 उड़ि न सकत^९ बल गयौ छूटि। तब भंवरी^{१०} रोवै^{११} सीस कूटि ॥ ६ ॥
 दह दिसि जोवै मधुपराइ^{१२}। तब भंवरी लै चली^{१३} सिर चढ़ाइ ॥ ७ ॥
 कहै कबीर मन कौ सुभाव^{१४}। इक नाम बिना सत्र जस कौ दाव^{१५} ॥ ८ ॥

[७६]

हंम तौ^१ एक एक करि जानां^२।
 दोइ कहैं तिनहीं कौं दोजग^३ जिन नाहि न पहिचानां^४ ॥ टेक ॥
 एकै पवन एक ही पानों^५ एकै जोति समानां^६।
 एकै खाक गड़े सब भांड़ै^७ एकै कोहरा सांनां^८ ॥ १ ॥
 माया देखि कै जगत लुभानां^९ काहे रे नर गरबानां^{१०}।
 कहै कबीर सुनौ भाई साधौ गुरु (हरि ?) के हाथि काहे न विकानां^{११} ॥ २ ॥

[७७]

चतुराई न चतुरभुज पइअै।
 जब लगि मन माधौ न लगइअै^१ ॥ टेक ॥

५. शबे० बनस्पती का लियौ है भोग। ६. दा० नि० तब (नागरी मूल)। ७. शबे० दिवस। ८. दा० नि० तिनहि देखि कहा रह्यो है भूल। ९. दा० नि० या बनस्पती में लागी आग, शक० जब यह बन में लागी आग। १०. दा० नि० भूरा (उर्दू मूल), शक० मीरा। ११. दा० नि० भग (हिन्दी मूल) सूक (राज० पंजाबी मूल)। १२. शक० मीरा। १३. दा० नि० उड़्यौ न जाइ। १४. शबे० भंवरा। १५. दा० नि० रुनी। १६. शबे० चहु दिसि चितवै भुंइ पड़ाइ। १७. शबे० अब ले चल भंवरी। १८. शबे० ये मन के भाव। १९. दा० नि० राम भगति बिन जस को दाव, शक० एक नाम भजे बिन जन्म वाद।

[७६]

दा० नि० गौड़ी ५५, नि० गौड़ी १८, शबे० (२) प्रेम २१—
 १. दा० नि० अब हम। २. दा० नि० एक एक करि जानां। ३. शबे० दोइ कहै तेहि कौ दुविधा है। ४. शबे० जिन सतनाम न जाना। ५. नि० एक पवन पावक अरु पानों ६. दा० नि० एक जोति संसारा। ७. शबे० इक मिट्टी के चढ़ा गवैला। ८. दा० नि० एक सिरजनहारा। ९. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त—
 जैसे वादी काष्ठ ही काटे अग्नि न काटे सोई। सब घटि अंतरि व ही व्यापक धरे सरूपै सोई ॥
 १०. दा० नि० माया मोह अर्थ देखि करि। ११. दा० नि० काहे कूं गरबानां। १२. दा० नि० निरभै भया कछु नहि व्यापै कहै कबीर दिवानां।

[७७]

दा० गौड़ी ५१, नि० कनडी ३, गु० गउड़ी ६—
 १. गु० रे जनु मरु माधव सिख लाईअै। चतुराई न चतुरभुज पाईअै ॥ २. दा० नि० में इन

क्या जपु क्या तपु क्या व्रत पूजा । जाकै रिदै (ह्रिदै ?) भाव है दूजा ॥ १ ॥
 परिहरु लोभु अरु लोकाचारु । परिहरु कामु क्रोधु हंकारु ॥ २ ॥
 करम करत बंधे अहंमेउ । मिलि पाथर की करहीं सेउ ॥ ३ ॥
 कहै कबीर जौ रहै सुभाइ^५ । भोरै^६ भाइ मिलै रघुराइ^७ ॥ ४ ॥

[७८]

जौ पै^१ रसनां रांसु न कहिबौ । तौ उपजत बिनसत भरमत^२ रहिबौ ।
^३कंधिकाल^४ सुखि कोइ^५ न सोवै^६ । राजारंकु दोऊ मिलि रोवै^७ ॥ १ ॥
 जस देखिअ^८ तरवर की छाया । प्रांन गएं कहु काकी माया ॥ २ ॥
 जीवत कछु न किया प्रबानां^९ । सुएं^{१०} मरम को काकर जानां^{११} ॥ ३ ॥
 हंसा सरवर^{१२} कंवल^{१३} सरीर । राम रसाइन पिउ रे^{१४} कबीर ॥ ४ ॥

[७९]

लाज न मरहु कहहु घरु मेरा ।
 अंत की बार नहीं कछु तेरा ॥ टेक ॥
 उगजै निपत्रै निपजि सनाई । नैनन देखत यह जगु जाई ॥ १ ॥
 बजुत जतन करि काया पाली । मरती बार अग्नि संग जाली^४ ॥ २ ॥
 चोआ चंदन मरदन^५ अंगा । सो तनु जलै^६ काठ कै संग ॥ ३ ॥
 कहै^१ कबीर सुनहु रे गुनियां । बिनसैगौ रूप देखै सभ दुनियां ॥ ४ ॥^{१०}

दोनों पंक्तियों के स्थान पर निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

भातरि कामु क्रोध मद माया । कहा बाहरि के धोए (नि० ध्याए) काया ॥
 का सिधि साधि मखा (नि० साखा) सिरि बांधे । का जल पैसि हुतासन सावे ॥
 ४. दा० नि० में यह पंक्ति भी नहीं है और गु० में भी प्रथम ही बात होती है । ५. गु० कहु कबीर
 भगति करि पाइआ । ६. गु० भोले । ७. गु० रघुराइआ ।

[७८]

दा० नि० गौड़ी १३१, नि० गौड़ी १३८, गु० गउड़ी ८—

१. दा१, दा२ तै । २. गु० रोचत (पुन० तुल० आगे 'मिलि रोवै') । ३. दा० नि० में
 यह चौथी पंक्ति के बाद और गु० में पहली के पूर्व आती है । ४. अंधकार (उर्दू मूल) ।
 ५. गु० कबहिं । ६. गु० सोईहे । ७. गु० रोईहे । ८. दा० नि० जैसी । ९. गु० जस जंती
 महि जीउ समाना । १०. दा० नि० मुवा । ११. नि० मरम काहि का जानां । १२. दा० नि०
 हंस सरोवर । १३. गु० काल । १४. दा० नि० पित्रै ।

[७९]

दा० सोरठि ३४, नि० सोरठि ३३, गु० गउड़ी १९—

१, २. दा० नि० कारनि कान संवारै देहा । यह तन जरि बरि द्वैहे खेहा ॥ ३. दा० नि० में यह
 पंक्ति नहीं है । ४. दा० नि० बहुत जतन करि देहि मुखाई । ५. दा० नि० अग्नि देह में
 जंबुक खाई । ६. दा० नि० चरचत । ७. दा० नि० जरत । ८. दा० नि० में इसके बाद
 अतिरिक्त : जा सिरि रचि रचि बांधत पागा । ता सिरि चंच संवारत कागा ॥ (तुल० गु० गउड़ी ३५-१
 तथा बी० ९९-३ जिहि सिरि रचि रचि बांधत पागा । सो सिरु चुंच संवारहि कागा ॥) । ९. दा०
 नि० कहि कबीर तन भूटा भाई । केवल राम रखी लयी लाई । १०. गु० कहु (कहु ?) ।

[८०]

अब मन जागत रहू रे भाई ।^१गाफिल^२ होइ कै जनमु गंवायौ^३ चोर सुसै घर जाई ॥ टेक ॥षट् चक्र की कोन्ह^४ कोठरी^५ वस्तु अनूपु बिच पाई^६ ॥कुंजी कुलफु प्रांन करि राखे करते बार न लाई^७ ॥ १ ॥पंच^८ पहराया दर मंहि रहते तिनका नहीं पतिआरा ।

चेत सुचेत चित्त होइ रहू तौ लै परगासु उजारा ॥ २ ॥

नउ घर देखि जु कामिनि भूली वस्तु अनूपु न पाई ॥

कहत कबीर नवै घर मूसे दसवै तत्त समाई ॥ ३ ॥

[८१]

अपनै बिचारि असवारी कीजै ।^१सहज कै पांवड़ै^२ पसु धरि लीजै^३ ॥ टेक ॥^३वै मुहरा^४ लगाम पहिरावउं । सिकली^५ जीन गगन दौरावउं ॥चलु रे बैकुंठ^६ तुम्हि^७ लै तारउं । हिचहि त प्रेम ताजनें मारउं^८ ॥ २ ॥कहत कबीर भले असवारा^९ । वेद कतेव तैं रहहि^{१०} निगारा^{१२} ॥ ३ ॥

[८०]

दा० गौड़ी २३, नि० गौड़ी २६, गु० गउड़ी ७३—

१. दा० नि० मन रे जागत रहिए भाई । २. गु० गाफलु (उर्दू मूल) । ३. दा० नि० बसत मति खोवै । ४. दा० दा० कनक । ५. गु० षट् नेम करि कोठड़ी बांधी । ६. दा० नि० वस्तु भाव है सोई । ७. दा० नि० ताला कुंजी कुलफ (पुन०) के लागी उबड़त बार न होई । ८. दा० नि० में यहाँ से आगे की पंक्तियों का पाठ है—

पंच पहराया सोइ गए हैं बसत जागन (नि० बसत जागवा) लागी ।

जुरा मरन व्यापि कछु नाहीं गगन मंडल लै लागी ॥

करत बिचार मन ही मन उपजी नां कहीं गया न आया ।

कहै कबीर संसा सब छूटा रांस रतन धन पाया ॥

[विशेष—यहाँ दा० तथा गु० दोनों के ही पाठों में कुछ अंतियाँ हात होता है । दा० नि० के पाठ से विपरीत अर्थ प्रकट होता है और गु० में भी कुछ संदिग्ध स्थल हैं (दे० ऊपर की पंक्ति ३ तथा ७ में 'वस्तु अनूपु बिचि पाई' और 'वस्तु अनूपु न पाई' में पुनरावृत्ति और पंक्ति ६ में 'परगासु' और 'उजारा' में पुनरावृत्ति ; अतः इस पद का पाठ पूर्णतया संतोषप्रद नहीं बन पाया है ।]

[८१]

दा० नि० गौड़ी २५, नि० गौड़ी २९, गु० गउड़ी ७५—

१. दा० नि० पाइई । २. दा० नि० पांव जब दीजै । ३. गु० में यह पंक्तियाँ अगली के बाद हैं । ४. गु० देख मुहार । ५. गु० सगलत (उर्दू मूल) । ६. दा० नि० चलि बैकुंठ । ७. दा० नि० तोहि । ८. दा० नि० थकहि त । ९. गु० प्रेम के चाबुक मारउं (समानार्थीकरण) । १०. दा० नि० जन कबीर जेसा असवारा । ११. दा० नि० दुहु री । १२. गु० निगारा (समान रूप से ग्रहणीय) ।

[८२]

रमइया^१ गुन गाइअ^२ रे जातै^३ पाइअ^४ परम निधानु ॥ टेक ॥^३
 सुरगवासु^५ न बांछिअ^६ डरिअ^७ न नरकि निवासु ।
 होनां है सो होइहै^८ मनहि^९ न कीजे आसु^{१०} ॥ १ ॥
 क्या जप क्या तप संजसो^{११} क्या व्रत क्या असनान^{१२} ॥^{१०}
 जब लगि^{१३} जुगति न जानिअ^{१४} भाउ भगति भगवान ॥ २ ॥^{१२}
 संपै^{१५} देखि न हरखिअ^{१६} विपति देखि नां रोइ ।
 ज्यों संपै^{१७} त्यों विपति हे करता करै सो होइ^{१८} ॥ ३ ॥^{१४}
 कहै^{१९} कबीर अब जानियां^{२०} संतन ह्रिदै^{२१} मंभारि ।
 जो सेवग सेवा करै ता संगि रमै मुरारि^{२२} ॥ ४ ॥^{२०}

[८३]

मेरी मेरी करता^१ जनम गयो ।
 जनम गयो परि हरि न कह्यौ^२ ॥ टेक ॥
 बारह बरस बालपन खोयो^३ बीस बरस कछु तप न कियो ।
 तीस बरस तैं रांस न सुमिरचौ^४ फिरि पछिताना^५ विरिध भयो ॥ १ ॥

[८२]

दा० गोड़ी १२१, नि० गोड़ी १२४, गु० गोड़ी ३३—
 १. दा० नि० गोधिदा । २. दा० नि० तार्थ । ३. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त—

उंकारे (नि० आकारे) जग उपजे आकारे जग जाइ ।
 अनहद वेन वजाइ करि रखौ गगन मठ छाइ ॥
 झूठे जग ढहकाइया रे क्या जीवण की आस ।
 रांस रसाइंग जिण पिया तिनकीं बहुरि न लगि रे पियास ॥
 अरध खिन जीवन भला भगवत भगति सहैत ।
 कोटि कल्प जीवन विधा नाहि न हरि सूँ हैत ॥

४. दा० नि० सरग लोक । ५. दा० नि० हंसा (राज०) था सो हाँइ रहा । ६. दा० नि० मनहु । ७. दा० नि० झूठी आस । ८. दा० नि० संजसां । ९. गु० इसनासु (उर्दू मूल) ।
 १०. दा० नि० क्या तीरथ व्रत असनान । ११. दा० नि० जो पै । १२. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त : सुनि मंढल में सोधि ले परम जोति परकास । तहंवां रूप न रेख है विन फूलनि फूल्यों रे आकास ॥ १३. दा० नि० संपति । १४. गु० विघने रचिआ सो होइ । १५. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियां दूसरी पंक्ति के पूर्व आती हैं । १६. गु० कहि । १७. दा० नि० हरि गुण गाइले । १८. दा० नि० सत संगति रिदा मंभारि । १९. गु० सेवक सो सेवा भले जिह घट बरम मुरारि । २०. गु० में पहली पंक्ति ऊपर की तीसरी पंक्ति के बाद आती है ।

[८३]

दा० आसावरी ४२, नि० आसावरी ३७, गु० आसा १५—
 १. गु० करते । २. गु० साइर सोखि भुज बलइयो (कदाचित् उर्दू मूल 'भुजंग लइयो' का विकृत रूप) । ३. गु० बीते । ४. गु० तीस बरस कछु देव न पूजा । ५. गु० पड़ताना ।

सुखे सरवरि^६ पालि बंधावै लूनें खेति^७ हठि बारि^८ करै ।
 आयौ चोर तुरंगहि^९ ले गयो मोहड़ी^{१०} (?) राखन सुगध फिरै ॥ २ ॥
 सीस चरन कर कंपन लागे नैन नीरु असराल बहै^{११} ।
 जिभ्या^{१२} बचन सूत्र^{१३} नहि निकसै तब सुकित की बात कहै^{१४} ॥ ३ ॥^{१५}
 कहै^{१६} कबीर सुनहु रे संतो धन संच्यो कलु संगि न गयो^{१७} ।
 आई तलव गोपालराइ की माया मंदिर^{१८} छाड़ि चलयो ॥ ४ ॥^{१९}

[८४]

पूजहु राम एक ही देवा^१ ।
 सांचा नांवरु (न्हांवन ?) गुर की सेवा^२ ॥ टेक ॥
 अंतरि मेल जे^३ तोरथ न्हावै^४ तिन^५ बैकुंठ न जानां ।^६
 लोक पत्नी^७ कलु न होवै^८ नाहीं राम अयांनां ॥ १ ॥^९
 जल कै मज्जनि^{१०} जे गति होवै^{११} नित नित मेंडुक न्हावै^{१२} ॥
 जैसे मेंडुक तैसे ओइ नर^{१३} फिरि फिर जोनीं आवै ॥ २ ॥
 हिरदै^{१४} कठोर मरै^{१५} बानारसि नरकु न बांध्या जाई ।
 हरि का दाव मरै जौ मगहरि^{१६} तो सगली सैन तराई^{१७} ॥ ३ ॥
 दिवस न रैन^{१८} वेदु नहि सासत^{१९} तहां बसे निरंकारा ।
 कहै^{२०} कबीर नर तिसहि धियावहु^{२१} बावरिआ^{२२} संसारा ॥ ४ ॥^{२३}

६. दा१ नि० तरवरि (उर्दू मूल) । ७. गु० लूणे खेति । ८. गु० हथ बारि (उर्दू मूल) ।
 ९. दा१ तुरंग सुसि ले गयो, गु० तुरंतह ले गइयो । १०. दा० नि० स० मोरी, गु० मेरी [उर्दू
 मूल 'मोहड़ी' से दा० नि० स० में 'मोरी' और फिर पश्चिमी प्रभाव के कारण गु० में 'मेरी' का
 समानार्थी 'मेरी' किया हुआ प्रतीत होता है ।] ११. गु० नैनो (उर्दू मूल) नीरु असार बहै ।
 १२. गु० जिहवा । १३. दा२ सुधि, नि० सुध, गु० सुधु । १४. गु० तब रे धरम की आस
 करै । १५. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : हरि जाउ क्रिया करे लिख लावे लाहा हरि हरि
 नामु लीओ । गुर परसादी हरि धनु पाइओ अंत चल दिया नालि चलिओ ॥ १६. गु० कहत ।
 १७. गु० अन्नु धनु कल्यै लै न गइओ । १८. दा० नि० स० मेंडू मंदिर । १९. गु० में इस पद
 की पहली पंक्ति तीसरी के बाद आती है ।

[८४]

दा० मेरू २१, नि० मेरू २०, गु० आसा ३०—
 १. दा० नि० पूजहु राम निरंजन देवा । २. दा० नि० सति राम सतिगुर की सेवा । ३. दा०
 नि० मन में मेल । ४. गु० नावे । ५. गु० तिसु । ६. दा० नि० पाखंड करि करि जगत
 मुलानां । ७. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियां ऊपर की पांचवीं पंक्ति के बाद है ।
 ८. दा० नि० मज्जनि । ९. दा० नि० होई । १०. दा० नि० सीनां नित ही न्हावै ।
 ११. दा० नि० जेसा सीनां तेसा नरा । १२. दा० नि० हिरदै । १३. नि० बसे । १४. गु०
 हरि का वंनु मरै हाड़वै (?) । १५. दा० नि० ती सैन्या सकल तिराई । १६. दा० नि०
 पाठ पुरान । १७. दा० नि० सुंघित । १८. गु० कहि । १९. दा० नि० एक ही ध्यावो ।
 २०. दा० नि० बावरिआ । २१. गु० में पद की प्रथम पंक्ति तीसरी के बाद है ।
 २२. दा० नि० बावरिआ । २३. गु० में पद की प्रथम पंक्ति तीसरी के बाद है ।

[८५]

मन रे संसार अंध कुहेरा^१ ।सिरि प्रगटा जम का पेरा^२ ॥ टेक ॥^३बुत^४ पूजि पूजि हिंदू मूए तुरुक मूए हज जाई^५ ॥जटा धारि धारि जोगी मूए तेरी गति किनहुं न पाई^६ ॥ १ ॥कबित पढ़े पढ़ि कविता मूए^७ कापड़ी^८ कैदारै^९ जाई ।केस लूंचि लूंचि मूए बरतिया इनमै किनहुं न पाई^{१०} ॥ २ ॥धन संचंते राजा मूए^{११} गड़िले^{१२} कंचन भारी ।बेद पढ़े पढ़ि पंडित मूए रूप देखि देखि नारी^{१३} ॥ ३ ॥रांम नांम बिनु सभै बिगूते देखहु निरखि सरीरा^{१४} ।हरि के नांम बिनु किनि गति पाई कहै जुलाह^{१५} कबीरा ॥ ४ ॥^{१६}

[८६]

मन रे सरयो न एकौ काजा ।

(तैं) भज्यो^१ न रघुपति^२ राजा ॥ टेक ॥बेद पुरांन सभै मत सुनिकै करी करम की आसा^३ ।काल प्रसत सभ लोग सयानैं उठि पंडित पैं चले निरासा^४ ॥ १ ॥बन खंड जाइ जोगु^५ तपु कीन्हां कंद मूल चुनि^६ खाया ।नादी बेदी सबदी मोनीं^७ जंम कै पटैं लिखाया ॥ २ ॥भगति नारदी रिदै (हिंदै) न आई काछि कूछि तनु दीनां ।^८राग रागिनीं डिभ होइ बैठा उनि हरि पहिं क्या लीनां^९ ॥ ३ ॥

[८५]

दा० कैदारी १८, नि० कैदारी १९, गु० सोरठि १—

१. गु० मन रे संसार अंध गहेरा (उर्दू मूल), दा० नि० रांम बिनां संसार धंव कुहेरा । २. गु० चहु दिस पसरिओ है जम जेवरा (तुर्कहीन) । ३. गु० में यह दोनो पंक्तियाँ चौथी पंक्ति के बाद हैं । ४. दा० नि० देव । ५. गु० सिरि नाई [हिन्दू भी सिर नवाते हैं, अतः भ्रामक] । ६. गु० ओइ ले जारे ओइ ले गाड़ि तेरी गति दुहुं न पाई । ७. दा० नि० कबी कबीनैं कविता मूए । ८. गु० कपड़ । ९. दा० नि० कैदारी । १०. गु० जटा धारि धारि जोगी मूए तेरी गति इनहिं न पाई [तुल० ऊपर की चौथी पंक्ति] । ११. गु० दरखु संचि संचि राजे मूए । १२. दा० नि० अरुले (उर्दू मूल) । १३. दा० नि० रूप भूले मुई नारी । १४-१५. दा० नि० जे नर जोग जुगति करि जानैं खोजे आप सरीरा । तिनकूं मुक्ति का संसा नाहीं कहै जुलाह कबीरा ॥ [विचार-वैषम्य तुल० ऊपर की पंक्ति ४] । १६. गु० उपदेसु ।

[८६]

दा० नि० गु० सोरठि ३—

१. दा० नि० ताथै भज्यो । २. दा० जगपति । ३-४. दा० नि० बेद पुरांन सुंभ्रित गुन पढ़ि पढ़ि पढ़ि गुनि (पुनः) मरम न पावा । संख्या गाहत्री अरु खट करमां तिनथै दूरि बतावा ॥ ५. दा० नि० बहुत । ६. दा० नि० खनि । ७. दा० नि० राग रागिनीं डिभ होइ बैठा उनि हरि पहिं क्या लीनां ।

पहरचौ^{१०} काल सभै^{११} जग ऊपरि मांहि लिखे भ्रम^{१२} म्यानीं ।
कहै कबीर ते भए खालसै^{१३} रांम^{१४} भगति जिन्ह^{१५} जानीं ॥ ४ ॥^{१६}

[८७]

बंदे खोजु दिल हर रोज^१ नां फिर^२ परेसानीं मांहि ।

यहु जु दुमिया तिहरु मेला^३ कोई^४ दस्तगोरी नांहि ॥ टेक ॥^५

बेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकर न जाई^६ ।

टुक दम करारी जउ करहु हाजिर हजूर^७ खुदाइ ॥ १ ॥

दरोगु पढ़ि पढ़ि खुसी होइ^८ बेखबर वादु वकाहि^९ ।

हक सांच^{१०} खालिक^{११} खलक म्यानीं स्थाम मूरति नांहि^{१२} ॥ २ ॥

असमानं म्यानीं लहंग दरिया गुसल करदन बूद^{१३} ।

करि फिकर^{१४} दाइम लाइ चसमैं जहां तहां मौजूद ॥ ३ ॥^{१५}

अल्लाह पाकपाक है^{१६} सक करउ जे दूसर होइ^{१७} ।

कबीर करम करीम का यहू^{१८} करै जानैं सोइ ॥ ४ ॥^{१९}

[८८]

बावरे तैं^१ म्यानि विचार न पाया ।

विरथा जनमु गंवाया^२ ॥ टेक ॥^३

८-९. दा० नि० में इन पंक्तियों का पाठ है : रोजा किया निमाज गुजारी बंग दे लोग सुनावा ।
हिरदे कपट मिलै क्यूं साईं क्या हज काये जावा ॥ [किंतु अप्रासंगिक] । १० गु० परिओ ।
११. दा० नि० सकल । १२. दा० सभ (दा० भ्रम) । १३. गु० कछु कबार जन भए खालसे ।
१४. गु० प्रेम । १५. गु० जिह (उर्दू मूल) । १६. गु० में इस पद की पहली पंक्ति तीसरी के
बाद आती है ।

[८७]

दा० आसावरी ५६, नि० आसावरी ५०, गु० तिलंग १—

१. दा० नि० दिल खोजि दिलहर खोजि । २. दा० नि० परि । ३. दा०, दा० महल
माल अजीज औरति, दा० नि० सहज असल (नि० माल) अजीज है । ४. गु० में 'कोई' शब्द
नहीं है । ५. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त : पारां मुरादां काजियां मुलां अरु दरवेस । कहां
यै तुम किनि कीया अकलि है सब नेस ॥ ६. दा० नि० कुरानां कतेबां अस (नि० अस्व)
पढ़ि पढ़ि फिकरियां नहि जाइ । ७. दा० हाजरां मूर (उर्दू मूल), दा० हाजिर हजूर । ८. दा०
नि० दरोग बकि बकि हहि खुसियां । ९. दा० नि० वे अकलि बकहि पवाहि । १०. गु०
सचु । ११. गु० खालकु । १२. दा०, दा० कछु सच सूरति मांहि, दा० सैल सूरति (पंजाबी
मूल) मांहि । १३-१४. तुल० दा० नि० आसावरी २५-२६, ८ यथा : असमानं म्यानीं लहंग
दरिया तहां गुसल करदन बूद । करि फिकर रह (दा० दद) सालक जसम (उर्दू मूल) जहां स
तहां मौजूद । १५. गु० फकर (उर्दू मूल), दा० नि० फिकर । १६. दा० नि० अल्लाह पाक
तू नापाक क्यूं । १७. दा० नि० अब दूसरा नहि कोई । १८. दा० नि० करनीं । १९. गु० में
इस पद की प्रथम दो पंक्तियां चौथी पंक्ति के बाद आती हैं ।

[८८]

दा० आसावरी ३४, नि० आसावरी ३३, गु० सूही ४—

१. दा० नि० जो भी Public Domain में है, उसे उर्फूकी रांगरि Collection, Haridwar में रखा गया है । २. दा० नि० में इसके

१. बी० काहु । CC-0. In Public Domain. गुजरात Kangra, वि० (पंजाबी मूल), बी० में

उदै अस्त की बात कहतु हूँ सब का किया विवेका हो^१ ॥ टेक ॥
घाटे बाटै^२ सब जग दुखिया क्या^३ गिरही बेरागो हो^४ ।
सुकदेव अचारज^५ दुख के कारनि गरभ सौं^६ माया व्यागो हो^७ ॥ १ ॥
जोगी दुखिया जंगम दुखिया^८ तपसी कौं दुख दूनां हो^९ ।
आसा त्रिसनां सब कौं व्यापै^{१०} कोई महल न सूनां हो^{११} ॥ २ ॥
सांच कहौं तो कोई न मानै^{१२} झूठ कहा नहि जाई^{१३} हो^{१४} ।
ब्रह्मां बिस्नु महेसुर दुखिया^{१५} जिन यह राह चलाई^{१६} हो^{१७} ॥ ३ ॥
अबधू दुखिया भूपति दुखिया रंक दुखी बिपरीती^{१८} हो^{१९} ।
कहै कबीर सकल जग दुखिया संत सुखी मन जीती हो^{२०} ॥ ४ ॥^{२१}

[६१]

१जतन बिनु मिरगनि खेत उजारे ।^२
टारे टरत नहीं निस वासुरि^३ बिडरत नाहि बिडारे ॥ टेक ॥
अपनै अपनै रस के लोभी करतव^४ न्यारे न्यारे^५ ।
अति अभिमान बढत नहि काहू^६ बहुत लोग^७ पचि हारे^८ ॥ १ ॥
बुधि मेरी किरखी गुर मेरी बिभुका अक्खिर दोइ रखवारे ।^९
कहै कबीर अब चरन देइहौं^{१०} बेरियां भली^{११} संभारे ॥ २ ॥^{१२}

नहीं है । ४. बी० तारक करहु विवेका, नि० सबे बसेका कीया वै । ५. नि० हाटे बाटै, बी० बाटै बाटै । ७. बी० का । ८. बी० सुकाचारज । ९. बी० गरमहि । १०. बी० जोगी जंगम तें अति दुखिया । ११. बी० सब घट व्यापै । १२. बी० ती सब जग लोभै । १३. नि० त्रिसनां में (पुन० ऊपर की पंक्ति में) सब लोई दुखिया तपति तपै सब कोई वै । १४. बी० कहहि कबीर तेई भौ दुखिया । १५. बी० जिन या चाल चलाई । १६. नि० व्यतीती (उर्दू मूल) । १७-१८. बी० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं ।

[६१]

दा० नि० मलार १, श्वे० (१) चिता० उप० ८८ तथा (२) चिता० ३, शक० प्रभाती १३—
१. श्वे० में इसके पूर्व अतिरिक्त : अरे मन मूरख खेतीवान । २. श्वे० में इसके बाद अतिरिक्त : पांच मिरग पच्चास मिरगनी तामें एक मिरगरे । शक० में भी यह अतिरिक्त पंक्ति ऊपर की तीसरी पंक्ति के पूर्व मिलती है । ३. श्वे० मागे मरैं टरैं नहि टारे, शक० निस दिन चरत टरैं नहि टारे । ४. श्वे० शक० चरत फिरै । ५. श्वे० में इसके बाद अतिरिक्त : काम कोष दुइ मुख्य मिरग है नित उठि चरत सवारे । ६. श्वे० अति परचंड महा दुख दाहन, शक० मन अभिमान दबत नहीं काहू कै । ७. श्वे० वेद शाख । ८. श्वे० में इसके बाद अतिरिक्त : धनुष बान लै चढ़ेउ पारधी भाव भगति करि मारा । ९. श्वे० यत की वेड धर्म की खाईं गुर का सबद रखवारा, शक० बुधि कर वेडि सुरति कर टाटी गुर के शब्द रखवारे । १०. दा० नि० अब खान न देह । ११. श्वे० अब की बेर । १२. श्वे० में इसमें मिलता-जुलता एक पद अन्यत्र [३० श्वे० (२) चिता० ३] भी मिलता है; किन्तु उपका पाठ ओझाहुन अधिक दर का है, अतः अलग से उद्धृत किया जा रहा है—

[६२]

जियरा^१ जाहुगे^२ हंम^३ जानीं^४ ।आवैगी कोई लहरि लोभ की^५ बूडैगा^६ बिनु पानीं ॥ टेक ॥राज करंता राजा जाइगा रूप दिपंती रानीं^७ ।जोग करंता जोगी जाइगा कथा सुनंता ग्यानीं^८ ॥ १ ॥^९चंद जाइगा सूर जाइगा जाइगा पवन औ पानीं^{१०} ।कहै कबीर तेरा संत न जाइगा राम भगति ठहरानीं^{११} ॥ २ ॥

[६३]

मन^१ बानियां^२ बांनि न छोड़ै ।जाकै घर में कुबुधि बिरयाणी^३ (बनानीं?) पल पल में^४ चित चोरै^५ ॥ टेक ॥जनम जनम कौ मारा वनियां^६ अजहूँ पूर न तोलै ।कूर कपट की पासंग डारै^७ फूला फूला^८ डोलै ॥ १ ॥^९

जतन बिन मिरगन खेत उज्राड़े ।

पांच मिरग पच्चीस मिरगनी तिनमें तीन चितारे ।

अपने अपने रस के भोगी चुगते न्यारे न्यारे ॥

पांच डार सुवटन की आई उतरे खेत मझारे ।

हा हा करत बाल लै भागे हारि रहे रखवारे ॥

सुनियो रे हम कहत सबन को ऊँचे हांक हंकारे ।

यह नर देह बहुदि नहि पैही काहे न करत संभारे ॥

वन कर खेती मन कर बाड़ी मूल सुरत रखवारे ।

ज्ञान दान औ ध्यान धनुष करि क्यों नहि लेत संचारे ॥

सार सबद बंदक सुरति धरि मारे तीन चितारे ।

कहत कबीर सुनो भाई साधो उबरे खेत तिहारे ॥

शवे० में दोनों पद दो विभिन्न आदर्शों से आये हुए ज्ञात होते हैं ।

[६२]

नि० गोड़ी १६८, शवे० (१) चिता० उप० ६८—

१. नि० जीवडा । २. नि० जाहिगी । ३. नि० में । ४. शवे० में इसके बाद अतिरिक्त : पांच तत्त को बनो है पिजरा जाँमें वस्तु विरानी । ५. शवे० आवत जावत कोइ न देखे । ६. शवे० बूबि गयो । ७. शवे० राजा जैहँ रानी जैहँ और जैहँ अभिमानी । ८. नि० जाइगा बड़ा बड़ा ग्यानीं । ९. शवे० में इसके बाद अतिरिक्त : पाप पुनन की हाट लगी है धरम दंड दरबानी । पांच सखी मिलि देखन आई एक से एक सियानी । १०. नि० गंगा जाइगी जमुना जाइगी जाका निरमल पानीं । ११. शवे० कहै कबीर हरि भक्त न जैहँ जिनकी मति ठहरानी ।

[६३]

नि० आसावरी १८७, शवे० (१) चिता० उप० २४—

१. नि० रे मन । २. नि० बांशियां । ३. शवे० घर में दुबिधा कुमति बनी है । ४. नि० छिन छिन में । ५. शवे० में यह पाँचवीं पंक्ति के बाद है । ६. नि० मारखी कूखी । ७. शवे० पासंग के अधिकारी लै ले । ८. शवे० भूला भूला (उदं मूल) । ९. नि० में यह पंक्ति उपर

पांच कुटुंबी महा हरांमो^{१०} अंश्रित में^{११} बिख घोले ॥^{१२}
कहे कबीर सुनो भई साधो^{१३} कुटिल^{१४} गांठि नां खोले ॥ २ ॥

[६४]

नाम (राम ?) भजा सोइ जीता जग में ।

नाम (राम ?) भजा सोइ जीता रे^१ ॥ टेक ॥

हृथ सुमिरनीं पेट^२ कतरनीं पढ़ै भागवत गीता रे^३ ।

हिरदै^४ सुद्ध किया^५ नहिं वीरे^६ कहत सुनत दिन बीता^७ रे ॥ १ ॥

आन देव की पूजा कीन्हों गुर (हरि ?) से रहा अमीता रे ।^८

धन जोवन तेरा यहीं रहैगा अंत सप्रय चलि रीता रे ॥ २ ॥^९

बाबरिया वन में फंद रोपै संग में फिरै निचीता^{१०} रे ।

कहे कबीर काल यों नारै^{११} जैसे भ्रिग कौं चीता^{१२} रे ॥ ३ ॥

[६५]

अज्ञी नगरिया में^१ केहि^२ विधि रहनां ।

निज उठि कलंक^३ लगावै सहनां ॥ टेक ॥

एकै कुवां^४ पांच पनिहारी ।^५

एकै लं^६ भरें नो नारी ॥ १ ॥^७

फटि गया कुवां बिनसि गई वारी ।^८

बिलग भई^९ पांचौं पनिहारी ॥ २ ॥

को पांचवीं पंक्ति के बाद है । १०. शब्द० कुनवा वाके सकल हरांमो । ११. नि० अंश्रित में ।
१२. शब्द० में इसके बाद अतिरिक्त : तुमहीं जल में तुमहीं धल में तुमहीं बट बट बोले ।
१३. शब्द० कहे कबीर वा सिल को (?) डरिग । १४. शब्द० हिरदै ।

[६६]

नि० सोरठि ८०. शब्द० (१) बिता० उप० ७२—

१. नि० साधो राम भज्या जे जीता । ते नर विमुख फिरै गोविंद सूं आठ गांठि गया रीता ॥
२. हिरदै । ३. नि० में पंक्तियों के अंत में 'रे' नहीं है । ४. नि० हिरदै । ५. नि० होत ।
६. नि० कबहुं । ७. नि० सुगात किता दिन बीता । ८. नि० में इन पंक्तियों के स्थान पर है : साहूकार सदा हरि सुमिरै विगज भंडारै कांता । जासू साहिब सदा सनमुखा बैकुंठा तलां वर्दाता ॥ १०. शब्द० बाबरिया ने (?) बाबर डारी फंद जाल सब कांता रे (पंजाबी मूल) ।
११. शब्द० काल आइ लैने । १२. नि० ज्यूं त्रिषा कूं चीता ।

[६५]

नि० मरू १२. शब्द० (२) चिता० ३८—

१. नि० इस नगरी में । २. नि० किम । ३. तलव । ४. नि० एक कुवो । ५. नि० नेज (उर्दू मूल) । ६. नि० तल० ग० गउंडा । १२-१४ शब्दः कबया एक पंच पनिहारी । हुदी लाजु मरे पनिहारी ॥ नि० हुदी मरे कबया एक पंच पनिहारी । हुदी लाजु चली निराय ।

लज्जा कहै मैं जन की दासी । एक^१ हाथि सुदिगर दूजै हाथि दासी ॥ ४ ॥^२
 कहै कबीर तिन^३ सरबस हारचौ^४ । राम नाम जिन मनहुं^५ बिसारचौ ॥ ५ ॥

(९) काल

[६६]

क्या^१ मागौं किछु थिर न रहाई ।

देखत नैन चला^२ जग जाई ॥ टेक ॥

इक लख पूत सवा लख नाती । तिहि^३ रावन घर दिआ न बाती ॥ १ ॥
 लंका सा कोट समुं^४ सी खाई । तिहि^५ रावन की^६ खबरि न पाई ॥ २ ॥^६
^७आवत संग न जात संगती । कहा भयो दरि^८ बाधे हाथी ॥ ३ ॥^९
^{१०}कहै कबीर अंत की बारी । हाथ भारि जैसें चला जुवारी ॥

[१००]

चारि दिन अपनी नौबति चले वजाइ^१ ।

उताने खटिया गड़िले मटिया^२ संगि न कछु ले जाइ^३ ॥ टेक ॥

माया कहै मैं अबला बलिया । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर कलिया ॥ १. शक० जिन । १०. दा०
 नि० तिनहुं सब हारचौ । ११. शक० मन से ।

[६६]

दा० गौड़ी १८, नि० गौड़ी ११२, शब्द० (१) चिता० उप० ६४, गु० आसा २१-१, २, ३ तथा मैरउ
 २-३, ५, शक० सायरी १९—
 १. दा० नि० का । २. दा० नि० चलया । ३. शब्द० शक० जा, दा० नि० ता । ४. शक०
 शब्द० समुद्र । ५. गु० वर । ६. शक० तथा शब्द० में इसके बाद की अतिरिक्त पंक्तियाँ—

सोने के महल रूप के द्वाजा । छोड़ि चले नगरी के राजा ॥

कोइ करै महल कोइ करै टाटी । उड़ि जाय हंस पड़ी रहे माटी ॥

७-८ गु० आसा २१ में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं, प्रत्युत मैरउ राग के अंतगत दूसरे पद में
 मिलती हैं । आसा २१ में अतिरिक्त पंक्तियों का पाठ है—

चंद सूरज जाके तपत रसोई । बैसंतरु जाके कपरे धोई ॥१॥

गुरमति रामे नामि बसाई । असथिरु रहे न कत जाई ॥

कहत कबीर सुनहु रे लोई । राम नाम विनु मुकति न होई ॥

प्रथम पंक्ति के लिए तुलनायः जायसी, पदमावत २६६-३ : सूरज जेहि के तप रसोई । बैसंतरु
 निति धोती धोई ॥ १. शब्द० दल । १०. तुल० गु० मैरउ २-३ यथा : आवत संग न जात
 संगती । कहा भइयो दरि बाधे हाथी ॥ तथा वी० ११-५ यथा : आवत संग न जात संधाती ।
 काह भए दल बांधल हाथी ॥ ११. तुल० गु० मैरउ २-५ यथा : कहि कबीर किछु गुन बीचारि ।
 बलै जुआरी दुइ हथ भारि ॥

[१००]

दा० केदारी १६, नि० केदारा १७, य० द० १ गु० केदारा ६, शब्द० (२) चिता० ५—

१. दा० नि० स० प्राणों लाल श्रीसर चल्थो रे वजाइ । २. दा० नि० स० मुठी एक
 मटिया मुठी एक कटिया, गु० इतनक सरीआ गठीआ मुठीया । ३. दा० नि० स० संगि काह के

देहरी बैठी मेहरी रोवै^१ द्वारै^२ लागि सगी माइ ।

मरहट^३ लौं सब लोग कुटुंब मिलि^४ हंस अकेला^५ जाइ ॥ १ ॥

वहि सुत वहि बित वहि पुर पाटन^६ बहुरि न देखै^७ आइ ।

कहत कबीर भजन बिन बंदै^८ जनम अकारथ जाइ ॥ २ ॥

[१०१]

तार्ते सेइए नाराइनां ।^१

रसनां रांम नांम हितु जाकै कहा करै जमनां^२ ॥ टेक ॥

जौ तुम्ह पंडित आगम जानौं विद्या व्याकरनां ।^३

तंत मंत^४ सब आखि जानौं अंति तऊ मरनां ॥ १ ॥

राज पाट^५ अरु छत्र सिंघासन^६ बहु सुंदरि रमनां ।

पांन कपूर सुवासिक चंदन^७ अंति तऊ मरनां ॥ २ ॥

जोगी जती तपो संन्यासी बहु तीरथि भ्रमनां ।^८

लुंचित मुंडित^९ मोनि जटाधर अंति तऊ मरनां ॥ ३ ॥^{१०}

सोचि बिचारि सबै जग देखा^{११} कहै न ऊबरनां ।

कहै कबीर सरनाई आयौ^{१२} मेनि जनम^{१३} मरनां ॥ ४ ॥

[१०२]

बुसल खेम^१ अरु^२ सही सलामति ए दोइ काको दीन्हां रे^३ ।

आवत जात दुहूयां^४ लूटे सरब तत्त^५ हरि लीन्हां रे ॥ टेक ॥^६

न जाइ । ४. दा१ दा२ देहरी लागि तेरी मेहरी सगी रे, दा३ नि० देहली लग तेरी सगी रे महेली ।
५. दा० नि० स० फलसा । ६. शब्दे० मरहट । ७. दा१ दा२ सब लोग कुटुंबी, दा३
दा४ सब लोग सगी है, नि० सगी लोग कुटुंबी । ८. दा० अकेली, नि० एकली, गु० इकेला
(उर्दू मूल) । ९. दा० नि० स० कहाँ वे लोग कहाँ पुर पहण । १० दा० नि० स० मिलिबी ।
११. दा१ कहै कबीर जगन श्रमजन विनु, दा२, दा३ नि० स० कहै कबीर राजा राम भजन विनु,
गु० कहतु कबीर राम की न सिमरहु ।

[१०१]

दा० आसावरी ४०, नि० आसावरी ४२, गु० आसा ५, स० ६-४-
१. गु० ताते सेवीअले रामना । २. दा० नि० स० प्रभु मेरी दीन दयाल दया करणां ।
३. गु० आगम निरगम जातिक जानहि बहु बहु विद्याकरना । ४. गु० तंत्र मंत्र । ५. गु०
राज भोग । ६. दा० नि० स० सिंघासन आसन (पुन०) । ७. दा० नि० स० चंदन वीर
कपूर विराजत (दा२ विराजित) । ८. गु० लुंचित मुंडित (उर्दू मूल) । ९-१०. गु० में यह
दोनों पक्तियाँ पद के आरम्भ में ही आती हैं । ११. गु० वेद पुरान मिश्रित सब खोजे ।
१२. गु० कहतु कबीर इउ रामहि जपउ । १३. दा१ जामन ।

[१०२]

दा० नि० बिलावल ४, बी० क० ५, स० ६-४-
१. बी० खेम (बी०० खेम) कुसल । २. बी० श्री । ३. बी० कहतु कबीर की दीन्हां हो ।
४. बी० दोऊ विधि । ५. बी० तंग । ६. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त : माया
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सुर नर मुनि जति^० पीर अरुलिया मीरां पैदा कीन्हां रे ।
 कोटिक भए कहां लगि बरनौ^० सभनि^० पयांनां दीन्हां रे^{१०} ॥ १ ॥
 धरती^{११} पवन अकास जाहिगे^{१२} चंद जाहिगे^{१३} सूर्य रे ।
 हंस नाहीं तुम्ह नाहीं रे भाई रहै राम भरपूरा रे^{१४} ॥ २ ॥
 कुसलहि कुसल करत^{१५} जग खीनां^{१६} पड़े काल भै पासी रे^{१७} ।
 कहै कबीर सबै जग बिनसै^{१८} रहै राम अविनासी रे ॥ ३ ॥

[१०३]

को न^० मुवा^२ कहू पंडित जनां ।

सो समुझाइ कहहु मोहि सनां^३ ॥ टेक ॥

मूए ब्रह्मा बिस्तु सहेसा । पारवती सुत सुए गनेसा ॥
 मूए चंद सुए रवि सेसा । सुए हनुमत् जिन्ह बांधल सेता^४ ॥ १ ॥
 मूए कृसन सुए करतारा । एक न मुवा जो सिरजनहारा ॥
 कहै कबीर मुवा नहि सोई । जाकै आवागवन न होई ॥ २ ॥

[१०४]

काया बौरी चलत प्रांन काहे रोई^१ ।^२

कहत हंस^३ सुन काया बौरी मोर तोर^४ संग न होई^५ ॥ टेक ॥

मोह मद में पीया सुगंध कहे यहू मेरी रे । दिवस चारि भलै मन रजै यहू नाहीं किस केरी रे ॥
 ७. दा० नि० स० जन । ८. वा० कहां लीं (बीम० कहां लगि) गनी अनंत कोटि लीं । ९. बी० सकल । १०. बी० कीन्हां हो (बी० में प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'हो') । ११. बी० पानी ।
 १२. दा० नि० स० जाइगा । १३. बी० ए भा जाहिगे वो भा जाहिगे परत न काहु को पूरा हो ।
 १४. बी० कहत । १५. बी० बिनसै (पुन० दे० अगली पंक्ति का प्रथम चरण) । १६. बी० कुसल काल की फांसी हो । १७. बी० सारी दुनिया बिनसै । १८. बी० रहल ।

[१०३]

दा० गोड़ी ४५, नि० गोड़ी ४९, बी० ४५, बीम० ६३—

१. दा० नि० कौन (उर्दू मूल), बीम० कौना । २. दा० नि० मरै । ३. दा० नि० हंस सनां, बीम० मोहि स्याना । ४. दा० नि० में इसके आगे की पंक्तियां नहीं मिलतीं, इनके स्थान पर अन्य दो पंक्तियां हैं—

माटी माटी रहा समाइ । पवनै पवन लिया संगि लाइ ॥

कहै कबीर सुनि पंडित गुनीं । रूप मुवा सब देखै दुनीं ॥

५. बीम० हलिवत । ६. बीम० सरसेता ।

[१०४]

नि० बिहंगड़ी १३, शवे० (२) चिता० १४, शक० हंसावली ५—

१. दा० नि० चलत प्रांन क्यं रोई रे काया । २. नि० तथा शक० में इसके बाद अतिरिक्त : तुम तो हंस शवन किया घर कूं हम कूं चल्या बिगोई । (नि० में अतिरिक्त : परम हंस चलत प्रांन यं रोई ।) ३. शवे० प्रांन (पुन० तुल० प्रथम पंक्ति) । ४. नि० हम तुम । ५. शवे०

काया पाइ बहुत सुख कीन्हों नित उठि^१ मलि मलि धोई ।^२
 सो^३ तन छिया छार होइ जैहें^४ नाउं न लेइहें^५ कोई ॥ १ ॥^६
 सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक^७ सेस सहस मुख जोई^८ ।
 जिन जिन देह धरी त्रिभुवन में^९ धिर न रहा हैं^{१०} कोई ॥ २ ॥
 पाप पुनि दोइ जनम संधाती^{११} समुझि देखु नर लोई ।
 कहै कबीर प्रभु पूरन की गति^{१२} बूझै^{१३} बिरला कोई ॥ ३ ॥

[१०५]

संतों ई^१ सुरजन कै^२ गांउं ।

तन धरि कोई रहन न पावै काको लीजै नाउं^३ ॥ टेक ॥

पीर मुवा^४ पैगंबर मुवा^५ मुवा^६ जिंदा जोगी^७ ।
 राजा मुवा^८ परजा मुवा^९ मुवा^{१०} वेद ओ रोगी ॥ १ ॥
 चंदौ मरिहै सुरजौ मरिहै मरिहै धरनि अकासा ।^{११}
 चौदह भुवन चौधरी मरिहै^{१२} काको धरिअै आसा^{१३} ॥ २ ॥
 नौ हू मुवा^{१४} दस हू मुवा^{१५} मुवा^{१६} सहस अठासी ।
 तैंतिस^{१७} कोटि देवता मूए^{१८} परे^{१९} काल की पासो ॥ ३ ॥
 एकाहि जोति सकल घट व्यापक^{२०} दूजा तत्त न होई ।^{२१}
 कहै कबीर सुनो रे संती^{२२} भटकि मरै^{२३} जनि कोई । ४ ॥^{२४}

में यह यथा चौथी पंक्ति, इसके बाद अतिरिक्त : तोहि अस मित्र बहुत हम त्यागा संग न लान्हों
 कोई । ऊसर खेत के कुसा मंगाए चांचर चंवर के पानी । जावत ब्रह्म को कोई न पूजे सुरदा के
 मेहमानी ॥ ६. नि० हे काया तुम्हरे संग में बहुत सुख कीन्हा, शक० तोहरे संग बहुत सुख
 कैली । ७. नि० नित प्रति । ८. नि० यी । ९. नि० जाइगा । १०. नि० लेगा ।
 ११-१२. शब्द० में यह दोनों पंक्तियाँ पहली के बाद आती हैं । १२. शक० में इसके पदचाव :
 हंस कहै सुन काया बीरो मोहि तोहि संग न होई । तोहि अस कोटि सोहवती छाड़ल संग न
 चलिहै कोई ॥ (तुल० शब्द० का अतिरिक्त पंक्ति) । १३. नि० ब्रह्मा विद्वान महेश आदि दे ।
 १४. शब्द० होई । १५. शब्द० जो जो जनम लिया वसुधा में । १६. नि० रहीमों । १७. नि०
 पाप पुनि मेरे चले संधाती । १८. शब्द० अभिअंतर की गति : १९. शब्द० जानत ।

[१०५]

नि० आसावरी ६४, शब्द० (२) चिता० १२—
 १. नि० यी । २. नि० मुरदों का । ३. शब्द० में यह पंक्ति नहीं है । ४. शब्द० मरे । ५. शब्द०
 मरिगे । ६. नि० भोगी । ७. नि० चंद भी जाहिगे सूर जाहिगे जाहिगे धरनि अकासा ।
 ८. नि० चौदह लोक जल भीतर जाहिगे । ९. शब्द० इनहू के का आसा । १०. शब्द० परिगे ।
 ११. शब्द० नाम अनाम रहे जो सदही । १२. नि० और न दुतिया लोई । १३. नि०
 सुनो रे संती । १४. नि० भरनि पड़ी । १५. नि० में ऊपर की ओर तथा नीची पंक्तियाँ तीसरी
 चौथी के स्थान पर आती हैं ।

(१०) भगति सजेवनि

[१०६]

हंम न मरै मरिहै संसारा ।

हंमकौ मिला जिआवनहारा^१ ॥ टेक ॥^२साकत मरिहै संत जन जीवहि । भरि भरि रांम रसाइन पीवहि ॥ १ ॥^३^४हरि मरिहै तौ हंमह मरिहैं । हरि न मरै हंम काहे कौ मरिहैं ॥ २ ॥^५कहै कबीर मन मनहि मिलावा । अमर भए सुखसागर पावा ॥ ३ ॥^६

[१०७]

अब हंम^१ सकल^२ कुसल करि मानां ।सांति^३ भई जब^४ गोबिंद जानां ॥ टेक ॥तन मरिहै^५ होती कोटि उपाधि । उलटि भई सुख सहज समाधि ॥ १ ॥जम तैं^६ उलटि भया^७ है रांम । दुख बिनसे^८ सुख किया विसरांम ॥ २ ॥^९^{१०}बैरी उलटि भए हैं मीता । साकत उलटि सजन^{११} भए चीता ॥ ३ ॥^{१२}आपा जानि उलटिलै आप^{१३} । तौ नहि ब्यापै तीन्युं ताप^{१४} ॥ ४ ॥अब मन उलटि सनातन हूवा । तब जानां जब^{१५} जीवत भूवा ॥ ५ ॥कहै कबीर सुख सहजि समावउं^{१६} । आप न डरउं न और डरावउं^{१७} ॥

[१०६]

दा० गोड़ी ४३, नि० गोड़ी ४०, स० ६१-२, गु० गउड़ी १२-२ तथा १३-४—

१. तुल० गु० १२-२ यथा : मैं न मरउं मरिहो संसारा । अब मोहि मिलिऔ है जीआवन-
हारा । [किन्तु वहाँ शेष पंक्तियों से असंबद्ध] । २. दा० नि० स० में इसके पूर्व अतिरिक्त :
अब न मरौ मरनै मन मानां । तेई भए जिनि रांम न जानां ॥ दा० गोड़ी ३१-१ में इस पंक्ति
की पुनरावृत्ति, यथा : अब कैसे मरन मन मानत । मरि जाते तो राम न जानत ॥ दा० का
यह पद गु० में भी गउड़ी २० में मिलता है जहाँ इस पंक्ति का पाठ है : अब कैसे मरउं मरनि
मनु मानिआ । मरि मरि जाते जिन राम न जानिआ । ३. तुल० गु० १३-४ यथा : साकत मरहिं
संत सभि जीवहि । राम रसाइन रगना पीवहि । ४. तुल० सामी० १०-१=३ (पाठ वही) :
किंतु सामी० में यह प्रसिद्ध प्रांतस्थ शोध या मार्जिनैलिया ज्ञात होती है, क्योंकि साखी में दोहों
के समान दो पंक्तियाँ होती हैं और यहाँ केवल एक पंक्ति मिलती है । ५-६. गु० में यह दोनों
पंक्तियाँ नहीं मिलती ।

[१०७]

दा० गोड़ी १५, नि० गु० गोड़ी १७, स० ६१-१—

१. गु० मोहि । २. गु० सरव । ३. दा० नि० स० स्वांति । ४. दा० तब । ५. दा० नि०
स० में । ६. दा० बें । ७. गु० भए । ८. दा० नि० स० विसरवा । ९. दा० तथा नि० में
यह पंक्ति ऊपर की पंक्ति से पूर्व आती है । १०. गु० सुजन । ११-१२. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ
ऊपर की पहली पंक्ति के पूर्व आती हैं । १३. गु० आपु पढ़ाने आपै आप । १४. गु० रोगु न
बिआपै तीनी ताप । १५. दा० नि० स० तब हम जानां । १६. दा० नि० समाज—हराज ।

(११) अनभई भेद वान्नी

[१०८]

अवधू सो जोगी गुर मेरा ।

जो या^१ पद का करै निवेरा ॥ टेक ॥

तरवर एक पेड़^२ [पौंड ?] बिन ठाढ़ा बिन फूलां फल लाग़ा ।

साखा पत्र कछू^३ नहिं बाकै अष्ट गगन मुख^४ बागा^५ ॥ १ ॥^६

पग बिनु निरति करां बिनु बाजा^७ जिभ्या होंनां गावै^८ ।

गावनहार के रूप न रेखा सतगुर होइ लखावै^९ ॥ २ ॥^{१०}

पंखी^{११} का खोज मीन का मारग कहै कबीर बिचारी^{१२} ।

अपरंपार पार परसोतम वा^{१३} मूरति^{१४} की बलिहारी ॥ ३ ॥

[१०९]

मैं सासुरे^१ पिय गौहनि^२ आई ।^३

साईं संगि साध नहिं पूजी^४ गयी जोगन सुपिनै^५ की नाई ॥ टेक ॥

[१०८]

दा० रामकली १३ नि० रामकली १४, स० ७०-२४, बा० २४, श्वे० (१) मेद २६--

१. बा० यह । २. बा० मूल । ३. बा० किछो, वान० किछुवो । ४. श्वे० अष्ट कमल दल । ५. बा० गाजा, श्वे० गाज । ६. श्वे० में इसके बाद अतिरिक्त : चढ़ तरवर दो पछां वै एक गुन एक चेला । चेला रहा सो चुनि चुनि लाया गुन निरंतर खेला ॥ ७. बा० पा बिन पत्र कह बिन तुमा [पूर्व की पंक्ति के अनुसार वृत्त में पत्र ह हो नहीं, अतः बा० का पाठ असंगत; दूसरे उसी पंक्ति में 'पत्र' शब्द आ जाने से पुनः उसे इस पंक्ति में स्वाकार करने से पुनः किछो भा आ जायगा ।] । ८. बा० श्वे० बिनु जिभ्या (श्वे० रसना) गुन गावै । ९. श्वे० सतगुर मिले बतावै । १०. श्वे० में इसके बाद अतिरिक्त—

गगन मंडल में उर्ध मुख कुइयां जहां अमी को बासा ।

सगुरा होइ सो भर भर पावै निगुरा जाइ निरासा ॥

सुन्न सिलर पर गइया धियाना धरता छोर जमाया ।

माखन रहा सो संतन खाया छोछ जगत भरमाया ॥

तुल० गोरख-वान्नी, सबदा २३ यथा : गगन मंडल में ऊंचा कूचां तहां अमृत का बासा । सगुरा होइ सु भरि भरि पावै निगुरा जाइ पियासा ॥ तथा सबदा ११३ : गिगन मंडल में गाइ बियाई कागद दहां जमाया । छोछि काछि पिंडता पीवी सिवां मापण लाया ॥ ११. बा० श्वे० पंछी । १२. बा० श्वे० कहहि कबार दोउ भारा । १३. बा० बोहा । १४. नि० सूरति (हिन्दी मूल) । यह पद यत्किंचित् पाठांतर के साथ आनंदधन नामक एक जैन कवि के नाम से भी मिलता है । पाठ के लिए दे० 'संतवाणा' (जयपुर से प्रकाशित एक मासिक पत्र) वर्ष २ अंक २ में श्री अग्रचंद नाहटा द्वारा उद्धृत अंश (पृ० २४-२५) । नाहटा जी का कथन है कि यह पद आनंदधन के नाम से 'पुरानी प्रतियों' में नहीं मिलता, अतः 'पीछे से ही' किसी ने उसे आनंदधन के नाम से प्रचारित किया है ।

[१०९]

दा० आसावरी २५, नि० आसावरी २५, स० ७०-२६, बा० २४, श्वे० (१) चिता० १२--

१. दा० सासने (हिन्दी मूल) । २. दा० गौहरि, दा० गौहम (दोनों हिन्दी मूल) । ३. बा०

पांच जनां मिलि मंडप छायाँ तोनि जनां मिलि लगन लिखाई^६ ।
 सखी सहेली^७ मंगल गावैं सुख दुख भायैं हलदि^८ चढ़ाई^९ ॥ १ ॥
 नांनां रंगैं भांवरि^{१०} फेरी गांठि जोरि बावै पतिवाई^{११} ।
 पूरि सुहाग भयो बिनु दूल्ह^{१२} चौकै रांड भई संग साई^{१३} ॥ २ ॥
 अपनैं पुरिख मुख कवहुं न देख्यो^{१४} सती होत समझी समझाई^{१५} ।
 कहै कबीर हौं सर^{१६} रजि मरिहौं^{१७} तरौं^{१८} कंत लै तूर बजाई^{१९} ॥ ३ ॥

[११०]

मैं^१ कालों हजारी (?) क सूत^२ ।
 चरबुला^३ जिनि जरै ॥ टेक ॥
 जल जाई थल अपनी^४ आई नगर मैं आप^५ ।
 एक अचंभौ देखिया बिटिया ब्याही^६ बाप ॥ १ ॥^७
 बाबुल मेरा^८ ब्याह करि^९ वर उतिम^{१०} लै आइ^{११} ।
 जब लग वर पावै^{१२} नहीं^{१३} तब लग तूही ब्याहि^{१४} ॥ २ ॥^{१५}

शवे० साई के संग सासुर आई । १. बी० शवे० संग न सूती स्वाद नहिं मानी (शवे० जान्यी) ।
 ५. बी० सपने । ६. बी० शवे० जना चारि मिल लगन सोवायो जना पांच मिल मंडप
 छायाँ । ७. बी० सहलरी । ८. शवे० हरदी । ९. बी० चढ़ाई । १०. बी० शवे० नाना
 रूप परी मन भांवरि । ११. दा० नि० बावै पतिवाई (उदं मूल), बी० भाई पतिवाई, शवे०
 भई पति को आई । १२. बी० शवे० अर्वा के लै चला मुवाभिन (बी० सोझासानी)
 १३. दा० नि० स० चौक के रंगि धरयो संगी भाई । १४. बी० शवे० भयो विवाह चला दिन
 दूल्ह (तुल० ऊपर : पूरि सुहाग भयो बिन दूल्ह) । १५. बी० शवे० बाट जात समधी
 समुझाई । १६. दा० दा० नि० सल । १७. बी० शवे० कहै कबीर हम गवने जइवै
 १८. दा० नि० स० तिरुं, बी० शवे० तरय । १९. बी० बजैवै ।

[११०]

दा० गोड़ी १२, नि० गोड़ी १४, बी० द०, शवे० (१) मिश्रित ७—
 १. दा० नि० स० में इसके पूर्व को अतिरिक्त पंक्ति : चरखा जिनि जरै, बी० में अतिरिक्त : जो
 चरखा जरि जाय बड़ैया ना मरै [पुनरुक्ति-तुल० बी० पंक्ति १ में : एक न मरै बढ़ाय] । २. दा०
 नि० स० हजारी का सूत, बी० सूत हजारी ['हजारी' शब्द किमो प्रति में नहीं मिलता, किन्तु
 'हजरी' अथवा 'हजार' उक्त प्रसंग में निरर्थक है और 'हजारी' के ही विकृत रूप ज्ञात होते हैं ।
 अर्थात् वारीक वख या सूत के लिए 'हजारी' विशेषण का प्रयोग मिलता है—तुल० दा० साखी
 २८-१३-१ : भगति हजारी कापड़ा तामैं सल न समाइ ॥ तथा नि० आसावरी ७०-१ : रहटी
 म्हारी अजब फिरै राजा राम तगां कतवारी तू काते काते सूत हजारी है । अथवा वखना पद ७६-१ :
 काति बहुडिया सूत हजारी । तबुला को बल काढ्यो शुन सतधारी—वखना-वाणी पृ० १३ ।] ।
 ३. दा० नि० स० चरखा । ४. शवे० चरखे का मिरजनहार बड़ैया इक ना मरै (शवे० का पंक्ति
 ७ में पुनरावृत्ति) । ५. दा० दा० ऊपरजा । ६. बी० प्रथमहि नगर पहुँचते परिगो सोक संताप ।
 ७. बी० ब्याहल) बी० ब्याही, दा० नि० स० जायो । ८. शवे० में यह और इसके ऊपर
 का एक पंक्ति नहीं है । ९. बी० बाबा मोर । १०. बी० कराव, शवे० करा दी ।
 ११. दा० स० वर उत्तम, दा० नि० वर ऊंचरी, बी० अच्छा बरहि, शवे० अनजाना बर ।
 १२. दा० नि० स० लै चाहि, बी० तकाय । १३. दा० नि० पाऊं । १४. बी० जीलौ अच्छा
 बर ना मिले, शवे० अनजाया बर ना मिले । १५. शवे० तोहि से मेरा ब्याह । १६. शवे० में

दिन की बैठ^{१५} खसम सौं बरकस^{१६} तापर लगी तिहाई^{१७} ।
 भींगी पुरिया घर ही छांडी^{१८} चला जुलाह रिसाई^{१९} ॥ ३ ॥
 छोछी नली कांम नहि आवै लपटि रही उरभाई ॥ २०
 छांडि पसार रांम भजु बजरे^{२१} कहै कबीर समझाई^{२२} ॥ ४ ॥

[११२]

जानों जानों रे^१ राजा रांम की^२ कहानों ।
 अंतरि^३ जोति रांम परकासै गुरमुखि बिरलै जानों^४ ॥ टेक ॥
 तरवर एक अनंत डार साखा पुहुप पत्र रस भरिया^५ ।
 यहु अंम्रित की बाड़ी है रे तिनि हरि पूरी करिया^६ ॥ १ ॥
 पुहुप बास भंवरा^७ इक राता बारह^८ लै उरधरिया ।
 सोरह मंभै^९ पवन भकोरे^{१०} आकासै फरु फरिया^{११} ॥ २ ॥
 सहज समाधि बिरिख यहु सौंचा^{१२} धरती जलहरु सोखा ।
 कहै कबीर तासु मैं चेला^{१३} जिनि यहु बिरवा^{१४} पेखा ॥ ३ ॥ १५

[११३]

संतो^१ धागा^२ टूटा गगन बिनसि गया सबद जु कहां समाई^३ ॥^४
 एहि संसा मोहि^५ निस दिन^६ व्यापै कोइ न कहै^७ समझाई ॥ टेक ॥^८

हाई, दा३ करकच करे बतहाई, स० करकच करे बजहाई, गु० भगर करे घरहाई, बी० करकच करे
 बहराई (बीम० घरहाई) । १५. बी० नित उठि वैठि । १६. बी० बरवस (उर्दू मूल), दा०
 नि० स० कीजे । १७. दा० नि० स० अरु जु लगी तहां ही (उर्दू मूल), गु० इह बेला कत आई ।
 १८. गु० छूटे कूंडे भींगी पुराया, बी० भींगी पुरिया काम न आवै । १९. गु० चलिओ जुलाहो
 रीसाई, बी० जोलहा चला रिसाई । २०. गु० छोछी नली तंतु नहीं निकसै नतर रही उरभाई,
 बी० कहत कबीर सुनहु हो संतो जिन्ह एह सृष्टि उपाई । २१. गु० छोडि पसार ईहा रह
 भपुरी । २२. गु० कहु कबीर समझाई, बी० भवसागर कठिनाई ।

[११२]

दा० रांमकली १५, नि० रांमकली १५, गु० रांमकली ६, स० ७०-१६—
 १. दा० नि० स० अब मैं जाशिबौ रे । २. दा० नि० स० केवल राइ की । ३. दा० नि०
 स० मंभा । ४. दा० नि० स० गुर गंमि बांशी । ५-६. दा० नि० स० तरवर एक अनंत
 सुरति सुरता लेहु पढ़ांणी । साखा पेड़ (?) फल फल नाहीं ताकी (?) अंम्रित बांशी (बाड़ी ?) ।
 ७. दा३ भूरा । ८. गु० भंवर एक पुहुप रस बीधा । ९. दा० नि० स० बारा । १०. गु० मचे
 ११. गु० भकोरिया । १२. दा० नि० फल फलिया । १३. गु० सहज सुनि इक बिरवा उपजिया ।
 १४. गु० कहि कबीर हउ ताका सेवकु । १५. गु० बिरवा देखिओ । १६. गु० में प्रथम दो
 पंक्तियां चौथी पंक्ति के बाद आती हैं ।

[११३]

दा० गीही ३२, नि० गीही ३६, गु० गउही ५२, स० ६५-१—
 १. गु० में 'संतो' शब्द नहीं है । २. गु० तागा । ३. गु० तेरा बोलतु कहा समाई । ४. गु०
 मोकउ । ५. गु० अनदिनु । ६. गु० मोकउ की न कहै । ७-८. गु० में यह दोनो पंक्तियां

नहीं ब्रह्मंड पिंड पुनि नाहीं^१ पंच तत्त भी^२ नाहीं ।
इला पिगला^३ सुखमनि नाहीं^४ ए गुण कहां समाहीं^५ ॥ १ ॥
नहीं ग्रिह द्वार कछु नहिं तहियां^६ रचनहार पुनि^७ नाहीं ।
जोड़नहारो सदा अतीता इह कहिअै किसु माहीं^८ ॥ २ ॥
टूटै (टूटी ?) बंधै बंधै (बंधो ?) पुनि टूटै जब तब होइ विनासा ।^९
तब को^{१०} ठाकुर अन्न को^{११} सेवग को काकै बिसवासा^{१२} ॥ ३ ॥
कहै कबीर यहु गगन न बिनसै जौ धागा उनमांन ।^{१३}
सीखैं सुनैं पढ़ैं का होई जौ नहिं पढ़हिं समांन ॥ ४ ॥^{१४}

[११४]

हरि के खारे बरे पकाए^१ ।
जिन जानैं^२ (?) तिन खाए^३ ॥ टेक ॥^४
धौल मंदलिया बेल रवाबी^५ कउवा ताल बजावै ।
पहिरि चोलनां गादह नाचै भैंसा निरति^६ करावै ॥ १ ॥
सिध ज बैठा पान कातरै^७ घूस^८ गिलौरा लावै ।
उंदरी वपुरी^९ मंगल गावै कछुआ संख बजावै^{१०} ॥ २ ॥^{११}
कहै कबीर सुनहु रे संतौ गड़री^{१२} परबत खावा ।
चकवा बैसि अंगारै निगलै समद अकासां धावा^{१३} ॥ ३ ॥

ऊपर की चौथी पंक्ति के बाद आती है । १. गु० जह कछु अहा तहा किछु नाही । १०. गु० तह । ११. गु० इहा पिगला । १२. गु० बंधै । १३. गु० ए अवगन कत जाही । १४. गु० जह बरंमंडु पिंडु तह नाही (तुल० ऊपर पंक्ति ३) । १५. गु० तह । १६. दा० नि० स० जोवनहार अतीत सदा संगि ए गुण तहां समाहीं । [पद में आरंभ से ही प्रश्नों की शृंखला चल रही है जो अग्रे का द्विपदा में समाप्त होती है । दा० नि० स० की यह पंक्ति, जो चौथी पंक्ति का उत्तर ज्ञात होती है, प्रश्नों की इस स्वाभाविक शृंखला को तोड़ देती है; अतः अस्वीकृत ।] १७. गु० जोड़ी जुड़ै न तोड़ीं टूटै जब लगु होइ विनासी । १८. गु० काको । १९. गु० को काहू कै जासी (राज० मूल) । २०-२१. गु० कछु कबीर लिव लागि रही है जहा बसै दिन राती । उआ का सरमु ओही परु जाने ओहु तउ सदा अविनासी ॥ (तुकहीनता) ।

[११४]

दा० गौड़ी १२, नि० गौड़ी १३, गु० आसा ६, स० ७०-—
१. गु० राजा राम ककरीआ बरे (?) पकाए । २. दा० नि० स० जारे (नागरी मूल) । ३. गु० किने बूमनहारै खाए । ४. दा० स० में इसके बाद अतिरिक्त : ग्यान अचेत फिरि नर लोई तायें जनमि जनमि दहकाए । नि० में इसका पाठ है : ग्यान अचेत फिरि ते मूले जनमि जनमि पड़ि ताए । ५. गु० फाल रवाबी बलदु पखावज । ६. गु० भगति । ७. गु० बैठि सिंह घर पान लगावै । ८. गु० बास । ९. गु० घर घर मुसरी (समानार्थी करण) । १०. दा० दा० नि० स० कछुअक अन्द सुनावै, दा० दा० कछु अनहद सबद सुनावै । ११. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : बंस को पूतु बिआहन बलिआ सुइहै मंठप दाए । रूप कनिआ सुंदरि बेचो ससै सिष गुन गाए ॥ १२. गु० कीटी । १३. गु० कछुआ (पुन० दे० ऊपर पंक्ति ५) कहै अंगार मिलोरउ लूकी सुइहै सुनाइ ॥
Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[११५]

पवन पति उनमनि रहतु^१ खरा ।^२तहां^२ जनम न भरन जुरा^३ ॥ टेक ॥^४मन बिदत^५ बिर्वाहि^६ पावा^७ । गुरुमुख तैं अगम बतावा^८ ॥ १ ॥जब नख सिख यह मन चीन्हां^९ । तब अंतरि मज्जनु कीन्हां^{१०} ॥ २ ॥उलटोले सकति सहारं । पैसीले^{११} गगन^{१२} मभारं ॥ ३ ॥बेधोले^{१३} चक्र भुअंगा । भेटोले राइ निसंगा^{१४} ॥ ४ ॥चूकीले मोह पिपासं^{१५} । तहां^{१६} ससिहर सूर गरासं^{१७} ॥ ५ ॥जब कुंभक भरिपुरि लीनां^{१८} । तब बाजै अनहद बीनां ॥ ६ ॥सैं बकतै बकि सुनावा^{१९} । सुरतैं तहां कछु न पावा^{२०} ॥ ७ ॥कहै कबीर बिचारं^{२१} । करता लै^{२२} उतरसि पारं ॥ ८ ॥^{२३}

[११६]

एक अचंभौ देखा रे भाई^१ ।ठाढ़ा^२ सिंध चरावै^३ गाई ॥ टेक ॥पहिलै^४ पूत पिछै भई भाई^५ । चेला कै गुर लागै पाई^६ ॥ १ ॥जल की मछरी^७ तरवरि ब्याई । कूता कौं^८ लै गई विलाई ॥ २ ॥^९बैलहिं डारि^{१०} गौनि^{११} घरि आई । घोरे चढ़ि भैंस चरावन जाई^{१२} ॥^{१३}

[११५]

दारे दाइ रामकली ३२, नि० आसावरी ५५, गु० रामकली १०, स० ७०-१३—

१. नि० रहत, दारे दाइ रहनि । २. दा० नि० जहां, गु० नहीं । ३. गु० मिरतु न जनम जरा ।

४. गु० में यह पंक्तियाँ तीसरी के बाद हैं । ५. दा० व्यंदत । ६. दा० व्यंदहि । ७. गु०

बंधिचि बंधनु पाइआ, नि० मन बंधि त्रिवेणीं पाई । ८. गु० मुकतै गुरि अनलु बुझाइआ, नि०

गुरगम तैं अगम लखाई । ९. दा० जब मन नख सिख भरि लीनां, नि० जब तैं नख सख थो

मन लीनां, स० जब नख सख भरि भरि लीनां । १०. दा० नि० में यह और पंक्ति ८ के उत्तरार्ध

परस्पर स्थानांतरित और स० में यह पंक्ति ७वीं से स्थानांतरित । ११. दा० नि० स० बैठिले ।

१२. नि० गिगन । १३. दा० नि० बेधोले, स० देखोले । १४. दा० स० भेटोले राम सुसंगा,

नि० भेटिले नराइन संग । १५. गु० मइआसा (उर्दू मूल) । १६. दा० नि० जब । १७. गु०

ससि कौनो सूर गिरासा । १८. गु० भरि करि लीनां । १९. दा० में बकतै बकै सुनावा, नि०

बकि बकि तैं बकि सुनावा, गु० बकतै बकि सबदु सुनाइआ । २०. दा० तैं सुनतैं कछु न पाया,

नि० सुनि सुनि तैं कछु न पाया, गु० सुनतैं सुनि मनि बसाइआ । २१. गु० कहै कबीरा सारं ।

२२. नि० करि करणी, गु० करि करता । २३. गु० में दोनों चरण परस्पर स्थानांतरित ।

[११६]

दा० गौड़ी ११, नि० गौड़ी १२, स० ७०-७, गु० आसा २२—

१. गु० सुनहु तुम भाई । २. गु० देखतु । ३. गु० चरावत । ४. गु० पहिला । ५. गु०

पिछैरी भाई । ६. गु० गुरु लागो चले की पाई । ७. गु० मछुली, नि० मछो । ८. गु० देखत

कूतरा । ९-१०. दा० में दोनों पंक्तियों के उत्तरार्ध परस्पर स्थानांतरित । ११. गु०

बाहरि बैलु । १२. दा० नि० स० गुनि (उर्दू मूल) । १३. दा० स० एकहि विलाई, स० री खाई,

तलि करि पत्ता^{१४} (?) उपरि करि मूल^{१५} । बहुत भांति जड़ लागे फूल^{१६} ॥ ४ ॥^{१७}
 कहै^{१८} कबीर या पद कौं बूझै^{१९} । ताकौं तीनिउं त्रिभुवन सूझै^{२०} ॥ ५ ॥

[११७]

असा ग्यान बिचारि लै लै लाइ लै ध्यानीं^१

सुनि मंडल में घर किया जैसे रहै सिचांन^२ ॥ टेक ॥

उलटि पवन कहां राखिए कोई मरम बिचारै ॥

साधै तोर पताल कौं फिरि गगनहि^३ मारै ॥ १ ॥

कंसा नाद बजाइले^४ धुनि निमसिले^५ कंसा ॥

कंसा फूटा पंडिता धुनि कहां निवासा ॥ २ ॥

पिंड परे जिउ कहां रहै कोई मरम लखावै ।

जीवत तिस घरि जाइअे ऊंथे सुखि नहि आवै ॥ ३ ॥

सतगुर मिलै त पाइअे औसी अकथ कहांनीं ।

कहै कबीर संसा गया मिला सारंगपानीं ॥ ४ ॥^६

[११८]

अब^१ क्या कोजै^२ ग्यान बिचारा ।

निज निरखत गत ब्योहारा ॥ टेक ॥

जाचिग दाता इक पाया^३ । धन दिया^४ जाइ नां खाय^५ ॥ १ ॥

नि० मूसे पकड़ि बिलाई खाई (ऊपर की पंक्ति में 'बिलाई' आने के कारण पुनरावृत्ति) ।
 १४. दा० स० तलि करि साखा, नि० तर भई डार, गु० तले रे बैसा [मूल पाठ कदाचित् 'पत्ता' है जिससे उर्दू लिपि के कारण गु० में 'बैसा' हो गया और दा० स० में उसका समानार्थी 'साखा' कर दिया गया, अतः मूल पाठ के रूप में 'पत्ता' ही स्वीकृत किया गया है ।] । १५. गु० उपरि सूला (पंजाबी मूल) । १६. गु० तिसके पिंडि लगे फल फूला, नि० उलटि देखि जड़ लागे फूल । १७. गु० में यह पंक्ति ऊपर वाली पंक्ति से पहले आती है । १८. गु० कहत । १९. गु० उइस पद बूझै । २०. गु० राम रमत तिसु समु किछु सूझै [दा० नि० स० के 'तीनिउं त्रिभुवन' में 'तीन' का भाव दो बार आने के कारण पुनरुक्ति अवश्य प्रतीत होती है, किन्तु अवर्षा, भोजपुरी में 'तीनिउं त्रिभुवन' या 'तीनिउं तिरलीक' अब भी मुहावरे के रूप में प्रचलित है ।]

[११७]

दा० नि० रामकली २, गु० बिलावल ११ (अंशतः), स० ७०-२०--

१. दा३ ध्यानीं । २. दा३ सिचांन । ३. दा३ गगन कू । ४. दा० बजावले । ५. दा० निमसिले । ६. तुल० गु० बिलावल ११ यथा—

जनम मरन का अमु गइअा गोविंद लिव लागी । जीवत सुनि समानिअा गुर साखी जागी ॥

कासी ते धुनि उपजे धुनि कासी जाई । कासी फूटा पंडिता धुनि कहा समाई ॥ [तुल० पंक्ति ४-६]

हुकुटां सधि में पखिअा घटहू घट जागी । औसी बुद्धि समाचरी घर माहि तिआगी ॥

आप आप ते जानिअा तेज तेजु समाना । कहू कबीर अब जानिअा गोविंद मनु माना ॥

[११८]

दा० नि० सोरठि २१, गु० सोरठि ६, स० ७०-२५--

१. दा१ इव CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri Collection, Haridwar

कोई ले भरि सक न भूका^६ । औरन पंहि^७ जानां चूका ॥ २ ॥
 तिस^८ बाभ न जोया^९ जाई । वो मिलै त^{१०} घालै खाई^{११} ॥ ३ ॥
 सो^{१२} जीवन भला कहाही^{१३} । बिनु भूए^{१४} जीवन नाहीं ॥ ४ ॥
 घसि चंदन बनखंडि बारा^{१५} । बिनु नैननि रूप निहारा^{१६} ॥ ५ ॥
 तिहिं पूति बाप^{१७} इक जाया । बिनु ठाहर नगर बसाया ॥ ६ ॥
 जो जीवत ही मरि जानै^{१८} । तौ पंच सैल^{१९} सुख मानै ॥ ७ ॥
 कबीरै सो धनु पाया^{२०} । हरि^{२१} भेटत आपु गंवाया^{२२} ॥ ८ ॥

[୧୧୧]

जाइ पूछौ गोविंद पढ़िया पंडिता^१ तेरा कौन गुरु कौन चेला ।

अपनै रूप कौ आपहि जानै२ आपै रहै अकेला ॥ टेक ॥

वांरू का पूत बाप बिनु जाया बिनां पांडं तरवर चढिया ।

अस विनु पाखर गज विनु गुड़िया विनु षंडै संग्रामहि जुड़िया^३ ॥ १ ॥

बोज बिनु अंकुर पेड़ बिनु तरवर बिनु साखा तरवर फलिया ।

रूप बिनु नारि पुहुप बिनु परिमल^४ बिनु नीरै सरवर भरिया ॥ २ ॥

देव बिन देहुरा पत्र बिनु पूजा बिनु पंखा भंवरा^५ बिलंबिया ।

सूरा होइ सु परम पद पावै कीट पतंग होइ सब जरिया ॥ ३ ॥

दीपक बिनु जोति जोति बिनु दीपक हृद बिन अनाहृद सबद बागा ।

चेतनां होइ सु चेत लीजौ कबीर हरि कै अंगि लागा ॥ ४ ॥

सो दीक्षा न जाई खाईया । ६. गु० छोटिया जाइ न मूका । ७. दा० नि० स० पै । ८. गु० जिन्ह । ९. दा० दा० जीव्या, दा० जयना । १०. गु० जउ मिलत । ११. गु० घाल अघाई १२. गु० सद । १३. दा० नि० कहाई । १४. दा० नि० स० मूवा । १५. गु० घसि कुंकम बंदउ गारिया । १६. गु० बिसु नैनहु जगत निहारिया । १७. गु० पूति पिता । १८. गु० जौ जीवत मरना जानै । २०. दा० नि० स० कहै कवीर सो पावा । २१. दा० दा० प्रभु । २२. गु० मिटाइया । गु० में क्रम यथापंति ४-४-१-६-७-२-३-८-९ है ।

[୧୧୧]

दा० रामकली ६, नि० रामकली ७, स० ४१-२, बी० १६ (अशतः) —

१. दा३ पंडित । २. दा३ अपना रूप नें आपै जानें । ३. दा३ सु जुड़िया । ४. दा३ दा३ परमल (उर्दू मूल) । ५. दा३ पांखा भंवरा । [बीजक के पद सं० १६ की केवल दो पंक्तियाँ ऐसी हैं जो उक्त पद की पाँचवीं और तीसरी पंक्तियों से मिलती हैं। पूरा पद इस प्रकार है—

रामुरा भीभी जंतर बाजै । कर चरन विहृना नाचै ॥

कर (पुन०) विनु वाजै सुनै सवन विनु सवन सरोता सोई ।

पाटन सुवस सभा विनु अक्सर वूकहु मुनि जन लोई ॥

इंद्रो विनु भोग स्वाद जिभ्या विनु अचक्य पिह विहना ।

Public Domain Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[१२०]

कैसे नगर^१ करों कूटवारी^२ ।

मांसु पसारि गोध रखवारी^३ ॥ टेक ॥

बैल बियाइ गाइ भई बांभ^४ । बछरहि^५ दूहै तोनिउं सांभ^६ ॥ १ ॥^७

भूसा खेवट नाव बिलइया^८ । सोवै दादुर^९ सर्प पहरिया^{१०} ॥ २ ॥

नित उठि स्यार सिंग सौं जूझै^{११} । कहै कबीर कोई बिरला बूझै^{१२} ॥ ३ ॥^{१३}

[१२१]

गोविंदै तुम्हारै बनि कंदलि (कदली ?) मेरो मन अहेरा खेलै^१ ।

बपु वारी^२ अनंगु मिरगा^३ रुचि रुचि सर मेलै^४ ॥ टेक ॥

चित्त तरउवा^५ पवन^६ खेदा^७ सहज भूल बांधा^८ ।

ध्यान धनुख^९ जोग करम^{१०} ग्यान वान सांधा^{११} ॥ १ ॥^{१२}

खट चक्र (चक्र खट ?) कंवल वेधा^{१३} जारि^{१४} उजारा कीन्हां ।

काम क्रोध लोभ मोह हांकि सावज^{१५} दीन्हां ॥ २ ॥

बीज बिनु अंकुल पेड़ बिनु तरुवर बिनु फूलें फल लागा ।
बांभ की कोख पुत्र अवतरिया बिनु पग तरवर चढ़िया ॥
मसि बिनु द्वात कलम बिनु कागद बिनु अच्छर सुधि होई ।
सुधि बिनु सहज ग्यान बिनु ग्याता कहहि कबीर जन सोई ॥]

[१२०]

दा० गौड़ी ८०, नि० गौड़ी ८३, बी० १५, स० ७०-१-

१. नि० नग्र । २. बी० को अस करै नगर कोतवलिया । ३. दा० नि० स० चंचल पुरिख विचखन नारी । ४. बी० बंभा । ५. बी० बछरवाह । ६. बी० तिनितिन संभा । ७. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त : मकड़ी बरि माखी छद्दिहारी । मांसु पसारि चील्ह रखवारी ॥ (तुल० पंक्ति २) । ८. बी० मूस भी नाव संजार कहिरिया । ९. दा० नि० स० मीहक । १०. दा० नि० स० सांप पहरइया । ११. बी० सिध स्यार सौं जूझै । १२. बी० कबीर का पद जन बिरला बूझै । १३. बी० में ऊपर की दूसरी पंक्ति के बाद आती है । उक्त पद की द्वितीय तथा चतुर्थ पंक्तियाँ सिद्ध देवदणपा (१७वीं शताब्दी) की एक चर्या से तुलनीय हैं, जिसका पाठ है :

बलद विआअल गविआ बांभे । पिटा दुहिण एतिना सभे ।

निति निति पिआला सिहे सम जूझय । देवदणपाएर गीत बिरले बूझय ॥

—चर्यापद, कलकत्ता, पद ३३, पृ० १६० ।

[१२१]

दा० आसावरी ९, नि० आसावरी ८, बी० ८०, स० ६२-१--

१. बी० कबीरों तेरो बनि कंदला में मानु अहेरा खेलै । २. बी० बपु आरि (कदाचित् उर्दू मूल) । ३. बी० आनंद (उर्दू मूल) मीरगा । ४. दा० नि० स० रुचि ही रुचि (उर्दू) मेलै । ५. दा० चितु तरवा, बी० चंतत रावल । ६. बी० लेहा (हिन्दी मूल) । ७. बी० सहज मूलहि बांधै । ८. दा० नि० स० घनक । ९. बी० ग्यान वान । १०. बी० जोग सरसायै । ११. बी० (बाराबंकी) में इस पंक्ति का पाठ है : ध्यान धनुष भरि ग्यान वान बनि जोग सार सार सायै । (कदाचित् संपादकों ने यह संशोधन अपनी ओर से कर लिया है ।) । १२. बी० बटु चक्र कमल वेधि । CC-0. 18. Public Domain. Gurukul Kangri Collection. Hardwar

गगन मंडल रोकि बारा^{१६} तहां दिवस न राती ।
कहै कबीर छांड़ि चले^{१७} बिछुरे सब साथी^{१८} ॥ ३ ॥

[१२२]

अवधू^१ जागत नौद न कीजै ।

काल न खाइ कलप नहि^२ व्यापै देही जुरा^३ न छीजै ॥ टेक ॥

उलटो गंग समुद्राहिं सोखै ससिहर सूर^४ गरासै ।

नव ग्रह^५ मारि रोगिया बैठै जल मंहि^६ बिब^७ प्रकासै ॥ १ ॥

बैठि^८ गुफा मंहि^९ सब जग देखै^{१०} बाहरि किलू न सुभै ।

उलटै धनुख पारथी मारचो^{११} यहु अचिरज कोई वूमै^{१२} ॥ २ ॥

आँघा^{१३} घड़ा न जल मंहि^{१४} डूबै सूधा सुभर भरिया^{१५} ॥

जाकौ यहु जग घिन कर चालै^{१६} ता प्रसादि निस्तरिया^{१७} ॥ ३ ॥

गावनहारा^{१८} कबहु^{१९} न गावै अनबोला नित गावै ।

नटवर पेखि पेखनां पेखै^{२०} अनहद बेन बजावै^{२१} ॥ ४ ॥

कहनों रहनों निज तत जानै^{२२} यहु^{२३} सब अकथ कहांनों ॥

धरती उलटि अकासहिं ग्रासै^{२४} यहु पुरिखां कै बांनों ॥ ५ ॥

बाभ^{२५} पियालै अंचित अंचवै^{२६} नदी नीर भरि राखै ।

कहै कबीर सो बिरला जोगी धरनि महारस चाखै^{२७} ॥ ६ ॥

१६. बी० गगन मद्धे रोकिन्ह द्वारा । १७. बी० दास कबीरा जाइ पहुँचै । १८. दास सब संधाती, बी० संग संधाती, बी० संग रु साथी ।

[१२२]

दा० रामकली १०, नि० रामकली ११, बी० २, स० ७०, १८—

१. बी० संती । २. नि० कलप नां । ३. बी० जरा । ४. बी० ससिअै सूर । ५. दा० नि० स० ग्रिह (उर्द्ध मूल) । ६. दा० नि० स० में । ७. बी० वेंसु, दा० नि० वर्षव (राज०) । ८. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त : डाल गद्यां थैं मूल न सूझै मूल गद्यां फल पावा । बंबई उलटि सरप कूं लागी घरणि महा रस खावा ॥ (पुन० तुल० अंतिम पंक्ति) । बी० में अतिरिक्त : विनु चरनन्ह को दहुं दिसि धावै विनु लोचन जग सुझै । संसै उलटि सिध की ग्रासै ई अचरज को वूमै ॥ ९. बी० पैठि, दा३ वैसि । १० दा० नि० स० देख्या (राज०) । ११. बी० उलटि वान पारथहि (हिन्दी मूल) लागै । १२. बी० सूरा होइ सो वूमै । १३. बी० आँघे, बी० ओन्हें । १४. बी० सुधे सो घट (बी० घड़ा) भरिया । १५. बी० जेहि कारन नल भिन भिन करे । १६. बी० सो गुरु परसादे तरिया । १७. दा० नि० स० में इसमें बाद अतिरिक्त : अंबर वरसै धरती भीजै यहु जानै सब कोई । धरती वरसै अंबर भीजै वूमै बिरला कोई ॥ १८. बी० गायन कहै । १९. दा० नि० स० कदे । २०. बी० नटवट बाजा पेखनी पेखै । २१. बी० हेतु बढ़ावै । २२. बी० कथनों बदनी निजु कै जो है । २३. बी० ई । २४. बी० बेधै । २५. बी० बिना । २६. दा० नि० स० सोख्या २७. बी० कहै कबीर सो जुग जुग जीवै जो राम सुधा रस चाखै । २८. बी० में ऊपर की ७वीं तथा ८वीं पंक्तियाँ दसवीं पंक्ति के बाद आती हैं ।

[१२३]

एहि बिधि सेइए स्त्री नरहरी ॥

मन की दुविधा मन परिहरी ॥ टेक ॥^१

जहां नहीं तहां कछु जानि । जहां नहीं तहां लेहु^२ पिछानि^३ ॥ १ ॥

नाहीं देखि न जइए भागि । जहां नहीं तहं रहिए लागि ॥ २ ॥^४

मन मंजन^५ करि दसवैं द्वारि । गंगा जमुनां संधि^६ बिचारि ॥ ३ ॥^७

बिदाहिं नाद कि नादाहिं बिद । नादाहिं बिद मिलै गोबिद ॥ ४ ॥^८

देवी न देवा पूजा नहि जाप । भाई न बंध माय नहीं बाप ॥ ५ ॥

गुन अतीत जस निरगुन आप । भरम जेवरी जग कियो सांप ॥ ६ ॥^९

तन नाहीं कब जब मन नाहि । मन परतीति ब्रह्म मन^{१०} माहि ॥ ७ ॥

परिहरि बकला^{११} ग्रहि गुन डारि^{१२} । निरखि देखि^{१३} निधि वारन पार ॥ ८ ॥

कहै कबीर गुर परम गियांन । सुनि मंडल में घरौ छियांन ॥ ९ ॥

पिंड परे जिउ जैहै जहां । जीवत ही लै राखौ तहां ॥ १० ॥^{१४}

[१२४]

जिअत न मारि^१ सुवा मति लावै^२ ।

मांस बिहूनां घरि मति आवै हो कंता^३ ॥ टेक ॥

उर बिनु खुर बिनु चंचु बिनु^४ बसु बिहूनां सोई रे^५ ।

सो सावज किन^६ मारै कंता जाकै रगत मास नां होई रे^७ ॥ १ ॥

[१२३]

- दा० नि० मेरू २, बी० ग्यान चौतीसा (अंशतः), स० ४०-२—
 १. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : मन करि पूजा मन करि धूप । मन करि सेवो सहज सरूप ॥
 मन आवै मन दह दिस जाइ । उनमन रहै तो काल न लाइ ॥
 २. नि० प्रवाणि, ३-४. तुल० बी० चौतीसा २३. २४ यथा—
 नहीं देखि नहि आपु भजाऊ । जहां नहीं तहां तन मन लाऊ ॥
 जहां नहीं तहां सब कछु जानी । जहां नहीं तहां ले पहिचानी ॥
 ['चौतीसा' में यह पंक्तियां अतिरिक्त रूप में हैं] । ५. बी० मज्जन । ६. स० सिंधि (उर्दू मूल) । ७-८. नि० में यह दोनों पंक्तियां ऊपर की दोनों पंक्तियों के पूर्व ही आती हैं । ९. नि० में इसके पश्चात् अतिरिक्त : दूध में घृत पुहुप में बास । काष्ठहि भीतरि अग्नि प्रकास ॥ जो रे कहूँ तो कोई न पत्याई । कून काम ब्रह्मंड समाई ॥ १०. नि० तन । ११. दा० स० बकुला (उर्दू मूल), नि० विकुला (उर्दू मूल) । १२. नि० निज सार । १३. नि० निरखि निरखि । १४. बी० में ऊपर की तीसरी चौथी पंक्तियों के अतिरिक्त शेष नहीं मिलती ।

[१२४]

- दा० आसावरी ११, नि० आसावरी १०, शबे० (२) मेद० १५, स० ६२-२—
 १. दा० नि० स० जिनि मारै । २. शबे० सैयां । ३. शबे० मांस बिना मत पेयो रे । ४. शबे० चरम चोखिनि । ५. शबे० मारै । ६. दा० जिनि । ७. शबे० जो कोई

पैली पार कै पारधो ताकी धनुही^१ पनच^{१०} नहीं रे ॥ ११
 होत पात जुगि जात मिरगवा^२ ता झिग^{१३} के सीस नहीं रे ॥ २ ॥
 मारा झिगा जीवता राखा यहु गुर ग्यांत सही रे ॥ १४
 कहै कबीर स्वामों तुम्हरे मिलन कौ बेली है पर पात नहीं रे ॥ ३ ॥ १६

[१२५]

कहौ भइया^१ अंबर कासों^२ लागा ।
 कोई बूझै बूझनहार सभागा ॥ टेक ॥ ३
 अंबर मद्धे दीसै तारा^४ । कौन चतुर अैसा चितरनहारा^५ ॥ १ ॥
 जो खोजहु सो उहवां नाहीं । सो तौ आहि अमर पद माहीं^६ ॥ २ ॥
 ७ कहै कबीर जानैगा सोइ^८ । हिंदै राम मुखि रामें होइ^९ ॥ ३ ॥

[१२६]

मोहि^१ अैसैं बनिज सौं^२ कवन^३ काजु ।
 जिहि घटै मूल नित बढ़ै ब्याजु^४ ॥ टेक ॥
 नाइकु एकु बनिजारै पांच^५ । बरध पचीस क संगु कांच^६ ॥ १ ॥
 नउ वहियां दस गौनि आहि । कसनि बहत्तरि लागि^७ ताहि ॥ २ ॥

हंसा मारि लियावे रक्त मांस नहिं जाकै रे । ८. शवे० धनुष वान ले चढ़े पारथी । ९. दा० धुनहीं (उर्दू मूल), शवे० धनुआ । १०. दा० पिनच, शवे० परच (हिन्दी मूल) । ११. शवे० में इसके बाद अतिरिक्त : सर सर वान तकातक मारै मिरगा के घाव नहीं रे । १२. दा० नि० स० ता बेली कौ दूक्यौ झिगली । १३. नि० सूबा । १४. शवे० में यह पंक्ति नहीं है । १५. शवे० परली पार (तुल० ऊपर की पंक्ति ४) एक बेल का खिरवा वाके पात नहीं (दूसरी पंक्ति के रूप में) । १६. शवे० में इसके बाद अतिरिक्त : कहै कबीर सुनो भाई साधो यह पद अतिहि दुहेला रे । जो या पद को अर्थ बतावै सोई गुरू हम चेला रे ॥ शवे० का क्रम यथापंक्ति १-२-५-६-३-४-७-८ है ।

[१२५]

दा० गौड़ी १११, नि० गौड़ी १४८, गु० गउड़ी २९, बी० ७९ —
 १. बी० कहहु हो, गु० कइ रे पंडित । २. गु० कासि । ३. दा१, दा२ नि० कोई जानैगा जाननहार सभागा, बी० चेतनिहारे चेत सुभागा । ४. दा० नि० अंबर दीसै केता तारा, गु० ओइ जु दीसहि अंबरि तारे । ५. बी० एक चेतै दूजे चेतवनिहारा (उर्दू मूल), गु० किनि ओइ चीते चीनहारे । ६. दा० नि० जे तुम्ह देखो सो यह नाहीं । यह पद अग्रम अगोचर मांहीं, गु० सूरज चंदु करहि उजीअारा । सम महि पसरिआ ब्रह्म पसारा ॥ ७. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : तीनि हाथ एक अरघाई । अैसा अंबर चीन्हौ रे भाई ॥ ८. दा० नि० कहै कबीर जे अंबर जानैं, बी० कहहि कबीर पद बूझै सोई । ९. दा० नि० ताही सू मेरा मन मानैं, बी० मुख हिरदय जाके एकै होई ॥

[१२६]

दा० वसंत ७, नि० गु० वसंत ६, शक० वसंत १० —
 १. दा० नि० मेरी, शक० मोरे । २. गु० सिउ । ३. गु० नही न । ४. दा० नि० मूल छटै सिरि बयै ब्याजु । ५. गु० में यह पंक्ति ऊपर की तीसरी पंक्ति के बाद है । ६. दा० नि० शक० बेल पचीस का संग साथ (तुकहान) । ७. दा० नि० लागे । ८. गु० बनजु ।

सात सूत मिलि बनिज^८ कीन । करम भांवनी^३ (रो ?) संगि लीन ॥ ३ ॥
 तीनि जगाती करत रारि । चलौ बनिजारा हाथ भरि^{१०} ॥ ४ ॥
 बनिज खुटानों पूंजी टूटि^{११} । दह दिसि टांडों^{१२} गयो फूटि^{१३} ॥ ५ ॥
 कहै कबीर यहु जनम बादि । सहजि समानों रही लादि ॥ ६ ॥^{१४}

[१२७]

हरि^२ का बिलोवनां बिलोइ मेरी माई^३ ।
 अैसें बिलोइ^४ जामैं तत्त न जाई ॥ टेक ॥
 तनु करि मटुकी मनाह बिलोइ^५ । ता मटुकी महि सबद संजोई^६ ॥
 इला पिगुला सुखमन नारी । बेगि बिलोइ ठाढ़ी छछिहारी ॥
 कहै कबीर गुजरी बोरानों^७ । मटुकी फूटी जोति समानों ॥^८

[१२८]

हे हजूरि कत^१ दूरि बतावहु^२ ।
 दुंदर बांधहु^३ सुंदर पावहु^४ ॥ टेक ॥^५
 सो मुल्ला^६ जो मन सौं^७ लरै । अहनिमि काल चक्र सौं भिरै^८ ॥ १ ॥
 काल पुरख^९ का मरदै मानु । तिसु मुल्ला कौं^{१०} सदा सलांम ॥ २ ॥
 काजी सो जो काया बिचारै । काया की अगिनि ब्रह्म परजारै^{११} ॥ ३ ॥
 सुपिनैं बिदु न देई भरनां । तिसु^{१२} काजी कउ जरा^{१३} न मरनां ॥ ४ ॥

१. दा० नि० शक० करम पियादी । १०. दा० नि० चल्थी हे बनिजवा बनिज हारि । ११. गु० पूंजी हिरानी बनजु टूट । १२. दा० नि० खाइ । १३. शक० लुट । १४. गु० कहि कबीर मन सरसी काज । सहज समानो त भरम भाज ॥, शक० कहै कबीर मन मेठो बाद । सहज समानो लहेउ स्वाद ॥

[१२७]

दा० मैरूँ ३०, नि० मैरूँ २९, गु० आसा १०, शबे० प्रमाती ६—
 १. गु० में इसके पूव अतिरिक्तः सनक सनंद अंतु नहीं पाइआ । वेद पड़े पड़ि ब्रह्मे जनसु गवाइआ ॥
 २. शबे० सत । ३. गु० बिलोवहु मेरे भाई (नागरी मूल) । ४. गु० सहजि बिलोवहु ।
 ५. गु० मन माहि बिलोइ, शक० मन करि नेता । ६. दा० नि० पवन समोइ, शक० माखन केता । ७. शक० में इसके पूर्व अतिरिक्तः ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवा । या मटुकी का लखी न भेवा । ८. शक० बहुरानी (नागरी मूल) । ९. गु० में इस पद की अंतिम दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं; इनके स्थान पर निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—
 हरि का बिलोवना मन का बीचारा । गुर प्रसादि पावै अंशित घारा ॥
 कहु कबीर नदरि करे जे सीरा । राम नाम लागि उतरै तीरा ॥

[१२८]

दा० नि० मैरूँ ६, गु० मैरु ११—
 १. दा० नि० क्या । २. दा० नि० बतावै । ३. दा० नि० बाँधे । ४. दा० नि० पावै ।
 ५. गु० में यह पंक्ति तीसरी के बाद आती है । ६. दा० नि० मुलनां । ७. गु० सिउ । ८. गु० गुर उपदेसि काल सिउ जुरै । ९. दा० नि० काल चक्र । १०. दा० नि० ता मुलनां कूँ ।
 ११. दा० नि० ब्रह्म परजारै । १२. दा० नि० ता ।

सो सुरतान जु दुइ सर^{१४} तानैं । बाहरि जाता भीतरि आनैं ॥५॥
 गगन मंडल महि^{१५} लसकरु करै । सो सुरतातु^{१६} छत्र सिरि धरै ॥६॥
 जोगी गोरख गोरख करै । हिंदू^{१७} राम नाम ऊचरै ॥७॥
 मुसलमन कहै^{१८} एकु खुदाइ । कबीर का स्वामीं रहा समाइ^{१९} ॥८॥

[१२६]

कहु रे मुल्ला^१ बांग निवाजा^२ ।एक मसीति दसौ^३ दरवाजा^४ ॥ टेक ॥

मनु करि मका कबिला^५ करि देही । बोलनहार परम गुर^६ एही ॥१॥^७
 बिंसिमिलि^८ तामसु भरसु कंदूरी । भखि लै पंचैं^९ होइ सवूरी ॥२॥^{१०}
 कहै^{११} कबीर में^{१२} भया दिवांतां । मुसि मुसि मनुवां^{१३} सहजि समानां ॥३॥^{१४}

[१३०]

इह जिउ^१ राम नाम लिब^२ लागै ।तौ^३ जरा^४ मरन छूटै भ्रम भागै ॥ टेक ॥

अगम दुगम^५ गढ़ि^६ रचिअौ बास^७ । जामहि^८ जोति करै परगास ॥ १ ॥
 बिजुली चमकै होइ अनंद^९ । तहं पउड़े प्रभु बालगोविंद^{१०} ॥ २ ॥
 अबरन वरन स्याम नहिं पीत । हाहू जाइ न गावै गीत ॥ ३ ॥^{११}

१३. दा० नि० जुरा । १४. दा० नि० सुर (उर्दू मूल) । १५. दा० नि० में । १६. दा० नि० सुलितान । १७. दा० होदू । १८. गु० का । १९. दा० नि० कबीर का स्वामीं बटि बटि रह्यौ समाइ ।

[१२६]

दा० गोड़ी ६१, नि० गोड़ी ६४, गु० मेरउ ४—

१. दा० नि० पढ़ि लै काजी । २. गु० निवाज । ३. गु० दसै । ४. गु० दरवाजा । ५. दा० नि० कबिला । ६. दा० नि० जगत गुर । ७. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त : उहां न दोजग भिस्त मुकांमां । इहां ही राम इहां रहिमांमां ॥ चारि पहर कुरान बखानैं । सांझ पढ़्यां सुरगी गहि आनैं ॥ उन सुरगी का होइगा खोजा । ती भिनसि जाइगा तीसूं रोजा ॥ ८. गु० मिसिमिलि (उर्दू मूल) । ९. दा० नि० पंचै भखि ज्यूं । १०. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : हिंदू तुर्क का साहिबु एकु । कह करै मुल्ला का करै सेख ॥ ११. गु० कहि । १२. गु० हउ । १३. दा० नि० मनुआ मुसि मुसि । १४. गु० में इस पद की पहली पंक्ति दूसरी के बाद आती है ।

[१३०]

दा० नि० मेरू ४, गु० मेरउ १९—

१. दा० नि० तहां जा । २. दा० नि० ल्यो । ३. गु० में 'तौ' नहीं है । ४. दा० नि० जुरा । ५. दा० नि० निगम । ६. गु० गढ़ि । ७. दा० नि० चिले अवास । ८. दा० नि० तहुंवां । ९. दा० नि० चमकै बिजुरी तार अनंत । १०. दा० नि० तहां प्रभु बैठै कंवला कंत । (तुल० आगे पंक्ति १०) । ११. गु० अबरन वरन सिउ उन ही प्रीति । हउमैं गावनि

अनहद सबद होत भनकार^{१२} । तहं पउड़े प्रभु स्त्री गोपाल^{१३} ॥ ४ ॥
 अखंड मंडल मंडित मंड । त्री असनान करै त्री खंड^{१४} ॥ ५ ॥
 अगम अगोचर अभिअंतरा^{१५} । ताको पार न पावै धरनीधरा^{१६} ॥ ६ ॥
 कदली पुहुप दीप^{१७} परकास । रिदा (ह्रिदा) पंकज^{१८} मंहि लिया निवास ॥ ७ ॥
 द्वादस दल अभिअंतर मंत^{१९} । जहां पउड़े स्त्री कंवलाकंत^{२०} ॥ ८ ॥
 अरध उरध विच लाइलै अकास^{२१} । सुजि मंडल मंहि करि परगासु ॥ २२ ॥
 ऊहां सूरज नाहीं चंद^{२३} । आदि निरजन करै अनंद ॥ १० ॥
 जो ब्रह्मंडि पिंडि सो जानु^{२४} । मानसरोवरि करि असनांतु^{२५} ॥ ११ ॥
 सोहं हंसा ताकी जाप^{२६} । ताहि न लिपै पुजि अरु पाय^{२७} ॥ १२ ॥
 अमिलन मिलन^{२८} धाम नहि छाहां^{२९} । दिवस न राति कछूं है तहां^{३०} ॥ १३ ॥
 टारचौ टरै न आवै जाइ । सहज सुजि मंहि^{३१} रख्यो समाइ ॥ १४ ॥
 मन मद्धे जानैं जे कोइ^{३२} । जो बोले सो आपै होइ ॥ १५ ॥
 जोति मांहि^{३३} मन असथिरु करै^{३४} । कहै कबीर सो प्रांनी तरै ॥ १६ ॥^{३५}

[१३१]

राम चरन मनि भाए रे ।

अस दुरि जाहु रांड^१ के करहा प्रेम प्रीति लचो लाए रे ॥ टेका ॥आंव चढ़ी अंबली रे अंबली^२ बूबर चढ़ी नग बेली रे ।द्वै थर^३ चढ़ि गयी रांड कौ करहा मनहं पाट की सैली रे ॥ १ ॥

गावहि गीत ॥ १२. गु० भुनकार (उर्दू मूल) । १३. दा० नि० तहां प्रभु बैठे समरथ सार (दा३ दा४ श्री गोपाल) । १४. गु० खंडल मंडल मंडल मंडा । तिअ असधान तीनि तिअ खंडा ॥ १५. गु० अगम अगोचर रहिआ अम अंत । १६. गु० पारु न पावै को धरनीधर मंत (पुन० तुलनीय पंक्ति १०-१) । १७. गु० धूप । १८. गु० रज पंकज (?) । १९. दा० नि० म्यंत । २०. दा० नि० तहां प्रभु पाइसि करिलै च्यंत । २१. गु० अरध उरध मुखि लागो कासु । २२. दा० नि० तहंवां जोति करै परकास (पुन० तुलनीय पंक्ति ३-२) । २३. दा० नि० तहां न ऊगे सूरज चंद । २४. दा० नि० ब्रह्मंडे सो पिंडे जानि । २५. गु० इसनानु (उर्दू मूल) । २६. गु० सोहं सो जाकउ है जाप । २७. गु० जाकउ लिपत न होइ पुंन अरु पाप । २८. गु० अवरन बरन (पुन० तुल० पंक्ति ५-१) । २९. गु० क्षाम । ३०. गु० अवर न पाइअै गुर की साम । ३१. गु० सुंन सहज मंहि । ३२. दा० नि० काया मांहि जानैं सोई । ३३. गु० मंत्रि (पुन० तुल० १०-१) । ३४. दा० नि० जे मन धिर करै । ३५. दा० नि० में उक्त पद का क्रम यथापंक्ति १-२-३-४-५-१०-११-६-७-९-१४-१२-१३-१६-१७ है ।

[१३१]

वा० गौड़ी ७६, नि० गौड़ी ६९, गु० गउड़ी ६६—

१. दा१ ७८० (नि० गौड़ी ७६) २. दा१ में यह शब्द नहीं है । ३. दा२ दा५ गुर (उर्दू

कंकर बुई^१ पताल पानियां सोनें^२ बूंद बिकाई रे ।
 बजर परौ इहि मथुरा नगरी कांन्ह पियासा जाई रे ॥२॥
 एक दहेड़ियां दही जमायौ दुसरी परि गई साढ़ी^३ रे ।
 न्योति जिमांऊं अपनों करहा छार मुनिस की^४ दाढ़ी रे ॥३॥
 इहि बनि बाजै मदन भेरि रे वहि बनि बाजै तूरा रे ।
 इहि बनि खेले राही रुक्मिनि वहि बनि कांन्ह अहीरा रे ॥४॥
 आसि पासि घन^५ तुरसी का बिरवा मांझ बनारस^६ गांऊं रे ।
 जाकौ ठाकुर तुहीं सारिगधर^७ भगत^८ कबीरा नांऊं रे ॥५॥

[१३२]

देव^९ करहु दया^{१०} मोहि^{११} मारगि लाबहु जितु^{१२} भव बंधन टूटै^{१३} ।
 जरन^{१४} मरन दुख फेरि^{१५} करम^{१६} सुख जीअ जनम तैं छूटै ॥ टेक ॥
 सतगुर चरन लागि यौं बिनवौं^{१७} जीवनि कहां तैं पाई^{१८} ।
 कवन काजि जगु उपजै बिनसै कहहु मोहि समझाई^{१९} ॥ १ ॥
 आसा पास खंड नहि पाड़ै^{२०} यहु^{२१} मन सुझि न लूटै^{२२} ।
 आपा पद निरबांतु न चीन्हां^{२३} बितु अनभै क्यूं छूटै^{२४} ॥ २ ॥
 कही^{२५} न उपजै उपजी^{२६} नहि^{२७} जानैं भाव अभाव बिहंनान ।
 उदै अस्त की मति^{२८} बुधि नासी तउ सदा सहजि लिव लीनां^{२९} ॥३॥

मूल) १. दा१ दा२ सूनें (उर्दू मूल) । ५. दा१ साई, दा२ नि० सारी । ६. दा०१
 ढारी (उर्दू मूल), दा२ दा२ही (उर्दू मूल) । ७. दा० नि० में 'वन' शब्द नहीं है ।
 ८. दा० नि० द्वारिका । ९. दा० नि० तहां मेरी ठाकुर राम राइ है । १०. गु० मोहि ।
 गु० में उक्त पद से मिलता-जुलता जो पद है उसमें केवल निम्नलिखित पाँच पंक्तियाँ हैं—
 आस पास घन तुरसी का बिरवा मांझ बनारस गाऊ रे । [तुल० ऊपर की पंक्ति ११]
 उच्चा का (?) सरूप देखि मोही गुआरिनि मोकउ छोड़ि न आउ न जाहू रे ।
 तोहि चरन मन लागो सारिगधर [पुन० तुल० आगे १३वीं पंक्ति] सो मिलै जो बड़ भागो रे ।
 त्रिदावन मनहरन मनोहर क्रिसन चरावत गाऊ रे ।
 जाका ठाकुर तुही सारिगधर मोहि कबीरा नाऊ रे ॥ [तुल० ऊपर की पंक्ति १२]
 अधिक संतोषप्रद होने के कारण मूल रूप में यहाँ दा० नि० का पाठ ही स्वीकृत किया गया है ।

[१३२]

दा० रामकली २७, नि० रामकली २८, गु० आसा १—

१. दा० नि० बाबा । २. दा० नि० कृपा । ३. दा० नि० जन । ४. दा० नि० ज्यौ । ५. दा१
 दार खूटे, दा२ नि० टूटै, गु० तूटै । ६. गु० जनम [पुन० आगे : जीअ जनम तैं छूटै] ।
 ७. गु० फेड़ । ८. दा० नि० करन (हिंदी मूल) । ९. गु० गुरु चरन लागि हम बिनवता
 पृकृत । १०. गु० कह जीउ पाइआ । ११. दा० नि० जा कारिन हम उपजै बिनवै क्यौं न
 कही समझाई । १२. गु० माइआ फांस बंध (पुन०) नहीं फारे । १३. गु० अह । १४. गु०
 लूके (?) । १५. दा० नि० आपा पर आनंद न बूझै । १६. गु० इन विधि अमित न चूके (?)
 १७. दा० नि० कस

ज्यों बिबहि प्रतिबिब समानां^{२२} उदकि कुंभ विगरांनां ।
कहै कबीर जानि भ्रम भागा^{२३} तउ मन सुजि समानां^{२४} ॥ ४ ॥

[१३३]

राजा राम^१ अनहद किंगरी बाजे ।

जाकी दिस्टि^२ नाद लिव^३ लागै ॥ टेक ॥^४

अचरज एकु सुनहु रे पंडिआ अब किछु कहन न जाई ।

सुर नर गए गंधर्व जिनि मोहे त्रिभुवन मेखुली लाई ॥ १ ॥^५

भाठी गगन^६ सोंगी करि चोंगी^७ कनक कलस इक पावा^८ ।

तिसु मर्दि धार चुअै अति निरमल^९ रस मर्हि रसन^{१०} चुआवा^{११} ॥ २ ॥

एक जु बात अनूप बनी है^{१२} पवन पिआला साजा ।

तीनि भवन^{१३} मर्हि एको^{१४} जोगी कहहु कवन है^{१५} राजा ॥ ३ ॥

असैं गिआन प्रगटा पुरखोतम^{१६} कह^{१७} कबीर रंगि राता ।

अउर दुनों^{१८} सभ^{१९} भरमि भुलानों मै^{२०} राम रसाइन माता ॥ ४ ॥

[१३४]

मन रे मनहीं उलटि समानां ।

गुर परसादि अकिलि भई अवरै^१ नातरु^२ था बेगांनां ॥ टेक ॥

मन (उर्दू मूल) । २१. दा० नि० सहजि राम ली लीनां । २२. गु० जिउ प्रतिबिब बिब कउ मिली है । २३. गु० कहु कबीर असा गुण भ्रम भागा । २४. गु० में पद की प्रथम दोनों पंक्तियों चौथी के बाद आती हैं ।

[१३३]

दा० नि० रामकली १, गु० सिरि २—

१. दा० नि० जगत गुर । २. दा० नि० जहां दीरघ । ३. दा० नि० लयी, दा३ ले । ४. गु० में यह पंक्ति तीसरी के बाद आती है । ५. दा० नि० में इन पंक्तियों का पाठ है : त्री अस्थान अंतर भ्रिगछाला [दा३ नि० खिछाला] गगन मंडल सोंगी बाजे । तहुवां एक दुकान रच्यो है निराकार व्रत साजे ॥ ६. दा० नि० गगनहि भाठी । ७. गु० सिडिआ अरु चुंडआ, दा० नि० सोंगी करि चुंगी (दा३ चुंघी) । [मूल वस्तुतः 'चोंगी' (= नली) हात होता है जिससे दा० नि० में उर्दू मूल के कारण 'चुंगी' और गु० में संभवतः पंजाबी उच्चारण के अनुसार 'चुंडआ' हो गया है ।] ८. गु० पाइआ । ९. दा० नि० तहुवां चुवे अमृत रस नीकर । १०. दा० नि० रसही मै रस । ११. गु० चुआइआ । १२. दा० नि० अब तो एक अनूप बात भई । १३. दा३ जुवन (हिंदी मूल) । १४. दा० नि० एकै । १५. दा० नि० कही कहां वसै । १६. दा० नि० बिन रे जानि परखज परसोतम । १७. दा० नि० कहि । १८. दा० नि० यह दुनियां । १९. दा० नि० काइ (राज०) । २०. गु० मन ।

[१३४]

दा० नि० गोडी ५, गु० गड्डी ४—

१. दा० नि० सकि । २. गु० नलक । ३. दा० नि० उलटत । ४. दा० नि० वेवा ।

उलटै^१ पवन चक्र खटु भेदे^४ सुरति सुनि अनुरागी^५ ।
 आवै न जाइ मरै नहि जीवै^६ ताहि खोजि^७ बैरागी ॥ १ ॥
 नियरै दूरि दूरि फुनि नियरै^८ जिन जैसा करि मानां^९ ।
 औलौली^{१०} का चढ़ा बरेंडे^{११} जिन पीया तिन जानां^{१२} ॥ २ ॥
 तेरी निरगुन कथा^{१३} कवन सौं^{१४} कहिअै है कोई चतुर बिबेकी^{१५} ।
 कहै कबीर गुर दिया पलीता सो भूल बिरलै देखी^{१६} ॥ ३ ॥

[१३५]

मेरी मति बउरी मैं रांम बिसारचौं केहि बिधि^१ रहनि रहउं रे^२ ।
 सेजें^३ रमत^४ नैन नहि पेखउं^५ यह दुख कासौं कहउं रे^६ ॥ टेक ॥
 सासु की दुखी ससुर की पिआरी जेठ कै तरसि^७ डरउं रे ।
 ननद^८ सुहेली गरब गहेली^९ देवर कै बिरहि जरउं^{१०} रे ॥ १ ॥
 बापु सावका^{११} करै लराई माया सद मतवारी ।
 सगौ भईआ लै सलि चढ़िहू^{१२} तब हौं नाह^{१३} पिआरी ॥ २ ॥
 सोचि बिचारि देखौ मन मांहीं औसर आइ बन्धौ रे^{१४} ।
 कहै कबीर सुनहुं मतिसुंदर राजा रांम रमौं रे ॥ ३ ॥^{१५}

[१३६]

१मन^२ मोर रहटा रसनां^३ पिउरिया^४ ।

५. दा० सुनि सुरति लै लागी, नि० सहज सुनि अनुरागी । ६. दा० अमर न मरै मरै नहि जीवै (पुन०) । ७. गु० तासु खोजु । ८. दा० नि० नहें ये दूरि दूरि ये नियरा । ९. गु० मानिआ, नि० उनमानां । १०. गु० अलउती [नागरी मूल—कदाचित् 'अ' और 'ल' के बीच का 'उ' छूट गया है] । ११. गु० जैसे भइआ बरेडा, दा० नि० बलौंडे (उर्दू मूल) नि० चढ़या बंढे । १२. गु० जानिआ । १३. दा० नि० अनमै कथा । १४. गु० काइ (राज० मूल) सिउ । १५. गु० असा कोइ बिबेकी । १६. गु० कहु कबीर जिन दीआ पलीता तिन तैसी भूल देखी । १७. दा० नि० में तीसरी, चौथी पंक्तियां छठी के बाद आती हैं, और गु० में प्रथम दोनों पंक्तियां तीसरी के बाद आती हैं ।

[१३५]

दा० आसावरी २९, नि० आसावरी २८, गु० आसा २५—

१. गु० किन बिधि । २. दा० नि० रहीं हो दयाल । ३. दा० दा० जैसे, नि० सेकै । ४. दा० नि० रहूँ । ५. दा० नि० देखी । ६. दा० नि० कहीं हो दयाल । ७. गु० नामि । ८. गु० सखी । ९. गु० ननद गहेली । १०. दा० नि० जरां हो दयाल । ११. दा० नि० सावको । १२. गु० बड़े भाई के जब संगि होती । १३. दा० नि० पियहि । १४-१५. गु० में इन पंक्तियों का पाठ है : कहत कबीर पंच को भगरा भगरत जनसु गवाइआ । झूठी माइआ सभ जगु बाधिआ । मे राम रमत सुखु पाइआ ॥

[१३६]

दा० आसावरी २०, नि० आसावरी २६, वी० ३५—

१. वी० में इसके पूर्व अतिशयोक्ति का प्रयोग है किंगकी Collection, Haridwar में तनकी

हरि कौ नांउं लै^१ काति^२ बहुरिया ॥ टेक ॥
चारि खूटी दोइ चमरख लाई । सहजि रहटवा दियो चलाई ॥ १ ॥^३
छौ मास तागा बरिस दिन कुकुरी । लोग बोलैं भल कातल बपुरी ॥ २ ॥^४
कहै कबीर सूत भल काता । रहटा नहीं परम पद दाता^५ ॥ ३ ॥

[१३७]

है कोई गुरु ग्यानीं जगत मंहि^१ उलटि बेद बूझै ।
पनिआं मंहि पावक जरै^२ अंधै आखिन सूझै^३ ॥ टेक ॥
गाइ नाहर खाइयौ^४ हरिनि खायौ^५ चीता ।
काग लंगर फांदिया^६ बटेरै बाज जीता ॥ १ ॥
झूस तौ^७ मंजार खायौ^८ स्फारि^९ खायौ^{१०} स्वानां ।
आदि कौ उदेस जानैं तासु बीस^{११} बानां^{१२} ॥ २ ॥
एक ही^{१३} दादुल^{१४} खायौ^{१५} पांच हूँ भुवंगा^{१६} ॥ १७ ॥
कहै कबीर पुकारि कै हूँ दोऊ एक संग ॥ ३ ॥^{१८}

[१३८]

इहि ततु^१ राम जपहु रे प्रांनीं तुम^२ दूझहु अकथ कहांनीं ।
जाको भाव होत हृदि उपरि^३ जागत रैन बिहांनीं ॥ टेक ॥

लहुरिया ॥ [तुल० दा० गौड़ी ११०-३, नि० गौड़ी १२०-३ यथा : हरि मेरा पीव मैं हरि की
बहुरिया । राम बड़े में लुटक लहुरिया ॥ तथा गु० आसा ३०-२ यथा : हरि मेरो पिर हउ हरि
की बहुरीआ । राम बड़े में तनक लहुरीआ ॥—दे० प्रस्तुत पुस्तक में पद ११ की प्रथम दो
पंक्तियाँ ।] २. बी० हरि (पुन० आगे की पंक्ति में पुनः 'हरि को नांउं लै') ३. दा२ रसन, बी०
रतन (उर्दू मूल) । ४. दा० नि० पुरइया, दा२ पुवरिया (दोनों उर्दू मूल से) । ५. बी०
सूत, बीम० लेत । ६. बी० कातल (पाठांतर—'कातति') । ७. बी० में यह पंक्ति नहीं है,
किन्तु प्रसंगानुकूल होने के कारण स्वीकृत । ८. दा० नि० में इसके स्थान पर : सासू कहै
काति बहु झैसैं । विनु कातै निसतरिबो कैसैं ॥ ९. बी० मुक्ति की दाता ।

[१३७]

दा० रामकली ८, नि० रामकली ९, बी० तथा बीम० १११—
१. दा० नि० है कोई जगत गुरु ग्यानीं, बीम० है कोई गुरु ग्यानि जगतर । २. दा० नि० पानीं
में अगिनि जरै । ३. दा० नि० अंधे की सूझै । ४. दा० नि० बकरी विचार खायौ । ५. बीम०
खेलो । ६. बी० फादि कै । ७. दा० नि० सूझै । ८. बी० स्फारि, बीम० स्फार । ९. बी०
वेस (बीम० बीस) । १०. दा० नि० (यथा अंतिम पंक्ति) आदि कौ आदेस करत कहै कबीर
ग्यानीं । ११. दा० नि० एकनि । १२. दा० नि० दादुरि । १३. दा० नि० पांच भवंगा ।
१४. दा० नि० में इसके पदचात् : गाइ नाहर खायौ काटि काटि अंगा । (तुल० पंक्ति ३) ।
१५. दा० नि० में यह पंक्ति नहीं है ।

[१३८]

दा० नि० गौड़ी ९, बी० १९, बीम० १८—
१. दा२ इहि तति, बी० ए ततु । २. दा० नि० में 'तुम' शब्द नहीं है । ३. दा० हरि का भाव होइ
जा ऊपरि, नि० हरि की कृपा भई जा ऊपरि । ४. नि० हारि हाइन । ५. दा० स्यंघ (राब)

डांडन डारै^४ सुनहां डोरै सिध^५ रहै बन घेरै ।
 पांच कुटुंब मिलि जूझन लागे बाजन बाजु घनेरै^६ ॥ १ ॥
 रोहै मिरिग^७ ससा^८ बन हांकै^९ पारधी बांन न^{१०} भेलै ।
 सायर जरै सकल बन दाभै^{११} मछ अहेरा खेलै ॥ २ ॥
 सोई पंडित सो तत गयाता जो इहि पदहि बिचारे^{१२} ।
 कहै कबीर सोई गुर मेरा^{१३} आप तिरै मोहि तारे ॥ ३ ॥

[१३६]

यहु^१ ठग ठगत सकल जग डोलै ।
 गवन करत मोसैं सुखहुं न बोलै^२ ॥ टेक ॥
 बालपना^३ के भीत हमारै । हमहि छाड़ि कत चले हो निनारै^४ ॥ १ ॥
 तूं मेरी पुरिखा हौं तेरी नारी ।^५ तोहरि चाल पाहनहुं तैं भारी ॥^६ २ ॥
 'भाटी कै देह^७ पवन कै सरीरा । तेहि ठग सौं जन डरै कबीरा^८ ॥ ३ ॥

[१४०]

अब मेरी रांस कहइ रे बलइया ।^१
 जांमन भरन दोऊ डर गइया ॥ टेक ॥^२
 ज्यों उधरी कौं दे सरवानां । रांस भगति मेरै^३ मनहुं न सांनां ॥ १ ॥^४
 हंस^५ बहनोई^६ रांस मोर सारा । हमहि बाप^७ रांस^८ पूत^९ हमारा ॥ २ ॥
 कहै कबीर ए हरि के बूता । रांस रमे ते कुकुरि के पूता ॥ ३ ॥^{१०}

प्रभाव) । ६. दा० नि० बाजत सबद संघरे । ७. बी० रोहू मृगा, नि० रोहू मृष । ८. बी० संसै, नि० सुसा । ९. दा० नि० बरै । १०. बी० पारथ वाना । ११. बी० डाहि । १२. बी० कहहि कबीर सुनहु हो संतो जो यह पद अरथावै (तुकहीन तुल० आगे 'तारे' ।) । १३. बी० जो यह पद को गाय बिचारे ।

[१३६]

दा० नि० सारंग १, बी० ३०—
 १. बी० हरि । २. दा० नि० गवन करै तब सुखह न बोलै । ३. बी० बालापन । ४. बी० हमहीं तजि कहं चले सकारे । [ऊपर की पंक्ति में मित्रता का प्रसंग है, अतः 'सकारे' (= शीघ्र) की अपेक्षा 'निनारे' (= न्यारे, त्याग कर) मूल भाव के अधिक निकट ज्ञात होता है ।] ५. बी० तुमहि पुरुष (पाठांतर : तुअ अस पुरुष) में (पाठांतर : हूं) नारि तुम्हारी । ६. दा० नि० तुम्ह चलतै पाथर थैं भारी । दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की दोनों पंक्तियों के पूर्व ही आ जाती हैं । ७. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : हमसू प्रीति न करि री बारी । तुम्ह से केते लागे डारी ॥ हंस काहू संगि गए न आप । तुम्ह से गढ़ हंस बहुत वसाए ॥ ८. दा० नि० देही । ९. बी० हरि ठग ठग से हरहि कबीरा ।

[१४०]

दा५ गौड़ी १६, नि० आसावरी १०३, बी० १००—
 १-३ बी० देखहु लोग हरि कर सगाई । माई धरै पुत्र धिया संग जाई ॥ सासु ननद मिलि अदल चलाई । मादरिया ग्रिह वेठा जाई ॥ ४. नि० मनहि समानां । ५. दा० नि० में । ६. दा० नि० बहनेऊ । ७. दा० नि० में वपुवा । ८. बी० हरि । ९. बी० पुत्र । १०. दा० नि० कहै कबीर सकल जग मठा (?) । रांस कहै मोहं जग मठा ।

[१४१]

बनमाली जानें बन के आदि ।

राम नाम बिन^१ जनम बादि ॥ टेक ॥

फूल जु फूले^२ रत बसंत । जामें मोहि रहे सब जीव जंत ॥ १ ॥

फूलनि में जैसे रहत^३ बास^४ । यूं घटि घटि गोविंद^५ है^६ निवास^७ ॥ २ ॥

कहै कबीर मन भयो अनंद । जग जीवन मिलियो परमानंद^८ ॥ ३ ॥

[१४२]

अबधू जानि राखि मन ठाहिरि^१ । 109630

जो कछु खोजी सो तुमहीं माँहि^२ काहे को भरमें बाहरि^३ ॥ टेक ॥

घट ही भीतरि वनखंड गिरिवर^४ घटि ही^५ सात सभुंदा^६ ॥ १ ॥

घट ही भीतरि तारा मंडल घट भीतरि रवि चंदा ॥ १ ॥ १५

ममता भेटि सांच करि मुद्रा^७ आसन सील दिढ़ कोजै ।

अनहद सबद कोंगरी बाजै ता जोगी चित दीजै^८ ॥ २ ॥

सत करि खपर^९ खिमा करि भोरी ग्यांन बिभूति चढ़ाई^{१०} ॥ १२

उलटा पवन जटा धरि^{११} जोगी साँगी सुन्नि^{१२} बजाई^{१३} ॥ ३ ॥

नाटक चेटक भैरों कलुवा इनमें जोग न होई^{१४} ॥ १६

कहै कबीर रमता सौ रमतां देही बादि न खोई ॥ ४ ॥ १७

[१४१]

दा० वसंत ६, नि० वसंत ५, शक० वसंत १—

१. शक० एक नाम भजे बिना । २. शक० एक फूल फूले । ३. नि० पुहुप । ४. शक० इन फूलन में अधिक बास । ५. शक साहेब । ६. नि० हरि । ७. शक० में इसके बाद अतिरिक्त—

उड़ि उड़ि भंवरा गए बिदेस । सोरे हरि भीतम से कहे संदेस ॥

चोलि पुरानी जीवन भार । मोहि विरह सतावै बार बार ॥

ऊँचा पर्वत बिषम बाट । अगम पथ कोई लहे न बाट ॥

पार बेलि राख्यो है कंत । मैं का संग खेलौ ऋतु वसंत ॥

ऋतु वसंत की परी हूल । आम मीर कचनार फूल ॥

५. शक० मोहि हर्षि मिले गुरु रामानंद ।

[१४२]

दा० गीडी ६४, नि० आसावरी ७६, शबे० (३) भेद १५—

१. शबे० ठीरा । २. शबे० में यह चरण नहीं है । ३. शबे० काहे को बाहर दीरा । ४. शबे० तो मैं गिरिवर तो मैं तरवर । ५. शबे० तो मैं । ६. शबे० तारा मंडल तोहि घट भीतर तामें रवि औ चंदा । ७-८. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ अंतिम दो पंक्तियों के पूर्व आती हैं ।

९. शबे० पहिरि मन मूया । १०. शबे० अनहद सम्मद होत धुनि अंतर तहां अचर चित दीजै ।

११. शबे० सील के पत्र । १२. शबे० ब्रह्म बिभूति चढ़ावो । १३. शबे० करि । १४. नि०

साँगी सुरति शबे० अनहद नाद (पुनः तुल० पंक्ति ६ : अनहद सबद) । १५. शबे० बजावो ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[१४३]

१नाथ जी^२ हम तब के^३ बैरागी ।हमरी सुरति नाम (राम ?) सौं लागी^४ ॥ टेक ॥ब्रह्मां नहिं जब टोपी दीन्हां बिस्तु नहीं जब टीका^५ ।सिव सकती के जनमहुं नाहीं^६ जबै जोग हंम सीखा^७ ॥ १ ॥^८सतजुग मैं हंम पहिरि पांवरी^९ ब्रेता भोरी डंडा^{१०} ।द्रापर मैं हंम अड़बंद पहिरा^{११} कलउ फिरचौ^{१२} नौ खंडा ॥ २ ॥^{१३}गुर परताप साध की संगति जीति अमरगढ़ आया^{१४} ॥^{१५}कहै कबीर सुनौ हो अवधू^{१६} मैं अभै निरंतरि पाया^{१७} ॥ ३ ॥^{१८}

[१४४]

सतगुरु संग होरी खेलिए^१ ।जातैं^२ जरा मरन भ्रम^३ जाइ ॥ टेक ॥

१६-१७. शबे० सुकदेव ध्यान धरबो घट भीतरि तहां हती कहं माला । कहै कबीर भेख सांड भूला मूल छोड़ि गहि डाला ॥ [किंतु यहाँ यह पंक्तियाँ प्रसंग से असंबद्ध । दा० तथा नि० में यह पंक्तियाँ अन्यत्र आती हैं और वहाँ प्रसंग के अनुकूल भाँ जान पड़ती हैं—तुल० दा० गौड़ा ७६-७८ तथा नि० आसावरी १३१-७, ८ : गरम बास में सुमिरन कीन्हां सुखदेव कौन सु माला । कहै कबीर सब भेख भुलांन (दा० विलंब्या) मूल छोड़ि गहि डाला ।] ।

[१४३]

नि० सोरठि ६१, शबे० (२) भेद १, शक० कबीर-गोरख-संवाद १—

१. शबे० में इसके पूर्व अतिरिक्त—

प्रश्न गोरखनाथ : कबीरा कब से भये बैरागी ।

तुम्हरी सुरति कहाँ को लगी ॥

उत्तर : धुंधमई का मेला नाहीं नहीं गुरु नहिं चेला ।

सकल पसारा जेहि दिन नाहीं जेहि दिन पुरुष अकेला ॥

शक० का पाठ है—कबीर जी कब से भये बैरागी ।

धुंधूकार आदि के मेला नहीं गुरु नहीं चेला । जब से हम यह योग उपाया तब से फिरि अकेला ॥ २. शबे० गोरख । ३. नि० में तब का । ४. नि० तातैं राम नाम ली लागी । ५. नि० धराश नहीं जब लिया मेखला ब्रह्मंड नहीं जब टीका, शक० धरती नहीं जब टोपी लीन्हां ब्रह्मां नहीं तब टीका । ६. नि० महादेव का जनम न होता, शक० शिव संकर सौं भोगी नाहीं । ७. नि० जब लीया भोली संखा, शक० तब ते भोली सीका । ८. नि० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की पौचवौं पंक्ति के बाद हैं । ९. नि० सतजुग पकड़ि फाहड़ा कीन्हीं, शक० द्रापर की हम करी फाहरी । १०. शबे० मंडा (राज० मूल) । ११. नि० द्रापर जुग में फिरि दोहाई, शक० सतजुग मेरी फिरि दोहाई । १२. नि० शक० कलजुग में । १३. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : कासो में हम प्रगट भए हैं रामानंद चिताए । समर्थ को परवाना लाए हंस उबारन आए ॥ १४. शक० अजर अमर घर पाया । १५. शक० गोरख । १६. शक० जब से तत्त्व लखाया । १७-१८. शबे० : सहजै सहजै मेला होइगा जाकी भगति उतंगा । कहै कबीर सुनौ हो गोरख चली सबद के संग । ॥

[१४४]

नि० काफ़ी ५, शबे० (१) होली १—

१ नि० इन औसि राम रमाइय हो । २ नि० अही तातैं । ३ नि० में । ४. नि० जोग

ध्यानं जुगति^१ की करि पिचकारी खिमा^५ चलावनहार^६ ।
 आतम ब्रह्म जो^७ खेलन लागे काया नग्न सभार^८ ॥ १ ॥
 ग्यानं गली में^९ होरी खेलै^{१०} मची^{११} प्रेम की कीच ।
 लोभ मोह दोऊ कटि (कड़ि ?) भागे^{१२} सुनि सुनि सबद अतीत^{१३} ॥ २ ॥
 त्रिकुटी महल में^{१४} बाजा बाजे होत छतीसों^{१५} राग ।
 सुरति सखी जहं देखि तमासा^{१६} सतगुर खेलै फाग^{१७} ॥ ३ ॥
 सतगुर मिलिया फगुवा दीया^{१८} पैंड़ा दिया बताइ^{२०} ।
 कहै कबीर सोई ततवेता जीवन मुक्ति समाइ ॥ ४ ॥^{२१}

[१४५]

रस गगन गुफा में अजर भरै^१अजपा सुमिरन जाप करै^२ ॥ टेक ॥

बिनु बाजा भनकार उठै जहं समुक्ति परै जब ध्यान धरै^३ ॥
 बिनु चंदा उजियारी दरसै^४ जहं तहं हंसा नजरि परै^५ ॥ १ ॥
 दसवैं द्वारै ताड़ी लागी अलख पुरुख जाकौ ध्यान धरै ।
 काल कराल निकटि नहि आवै कांम क्रोध मद लोभ जरै ॥ २ ॥
 लुगन जुगन की त्रिखा बुझांनीं करम भरम अघ व्याधि टरै ।
 कहै कबीर सुनौ भाई साधौ अमर होइ कबहुं न मरै ॥ ३ ॥

जुगति । ५. शबे० छिमा । ६. नि० खेलावनहार । ७. नि० दोऊ । ८. शबे० पांच पचीस सभार । ९. नि० काया नगर में (पुन०) । १०. नि० मातै । ११. नि० मची । १२. नि० कांम क्रोध दोऊ छुटि भागे । १३. नि० अजीत । १४. नि० त्रिकुटी कोट में । १५. नि० छतीस (उर्दू मूल) । १६. नि० ग्यान ध्यान दोऊ देखन लागे । १७. नि० गुर गभि खेली फाग । १८. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : इंगला पिंगला सुखमना हो सुरति निरत दोड़ नारि । अपने पिया संग होरी खेलै लज्जा कानि निवारि ॥ सुत्र सहर में होत कुतूहल करै राग अनुराग । अपने पुरुष के दरसन पावैं पूरन प्रेम सुहाग ॥ १९. शबे० सतगुर मिले फगुवा निज पायो । २०. शबे० मार्ग दिया लखाय । २१. शबे० कहै कबीर जो यह गति पावै सो शिव लोक (?) सिचाय ।

[१४५]

नि० मैहं ५१, शबे० (१) भेद १३—

१. नि० अजर जरै कोई अजर जरै । २. शबे० में यह पंक्ति नहीं है; किंतु इसे स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है । ३. नि० सुनि मंडल में बाजा बाजे सुखमनि तांती घोर परै । ४. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : बिना तलाव जहां कंवल फूलाने तेहि चड़ि हंसा केल करै (पुन० तुल० अगली पंक्ति का द्वितीय चरण) । ५. नि० विन दीपक दह दिसि उजियारा । ६. नि० साधु जाकौ ध्यान धरै । (तुल० ऊपर पंक्ति ४) । ७. नि० में इसके आगे की पंक्तियों का पाठ है : गंगा जमुनां मधि सुरसती नाद बिद को गांठि परै । सुनि मंडल में आसल साधै दसवैं द्वार की खबरि परै ॥ [तुल० पंक्ति ५ : दसवैं द्वारै ताड़ी लागी] । सोई पंडित सो तत ग्याता विन खंडे संग्राम करै । कहै कबीर सोई गुर मेरा आदि अंत लौं कबहुं न मरै ॥ [तुल० ऊपर की अंतिम पंक्ति]

[१४६]

‘फल मीठा पै^२ तरवर ऊंचा कौन जतन करि लीजै^३ ।

नेक निचोड़^४ सुधा रस वाकौ कौन जुगति सौं पीजै^५ ॥ टेक ॥

पेड़ बिकट है^६ महा सिलहला^७ अग्रह गहा नहिं जावै^८ ।

तन मन मेलिह^९ चढ़ै सरधा सौं तब वा फल कौं खावै^{१०} ॥ १ ॥

बहुतक लोग चढ़े अनभेद^{११} देखा देखी गहि वांहीं^{१२} ।

रपटि पांव गिरि परे अधर तैं^{१३} आइ परे^{१४} भई^{१५} मांहीं ॥ २ ॥

सील सांच कै^{१६} खूंटै धरि पग^{१७} ग्यान गुरु गहि डोरा^{१८} ।

कहै कबीर सुनौं भई साधौ तब वा^{१९} फल कौं तोरा ॥ ३ ॥

[१४७]

वा घर की सुधि कोइ^१ न बतावै जा घर तैं जिउ आया हो ।

काया छाड़ि चला जब हंसा कहौ न कहां समाया हो ॥ टेक ॥^२

घरती अकास पवन नहिं पांनों नहिं तब आदी माया हो ।^३

ब्रह्मा बिस्तु महेस नहीं तब जीव कहां तैं आया हो ॥ १ ॥^४

‘मैं मेरी ममता के कारनि^५ बार बार पछिताया हो ।^६

लखि नहिं परै नांम साहेब का^७ फिर फिर भटका खाया हो ॥ २ ॥^८

मेरी प्रीति पीव सौं लागी उलटि निरंजन ध्याया हो ।^९

कहै कबीर सुनौं भई साधौ वा घर बिरलै पाया हो^{१०} ॥ ३ ॥

[१४६]

नि० सोरठि ७२, श्वे० (१) भेद १६—

१. नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : भाई रे । २. नि० पणि । ३. नि० कही किसी विधि लीजै ।
 ४. नि० नेक न बाइ । ५. नि० कैसे ही करि पीजै । ६. नि० वाकौ । ७. नि० अधिक
 सलसली । ८. नि० जाई । ९. श्वे० डारि । १०. नि० खाई । ११. श्वे० बिन भेदे ।
 १२. श्वे० देखी देखा गहि मांहीं । १३. नि० रपट्ठी पांव गिरे अधर सौं । १४. नि० पड़्या
 (राज०) । १५. नि० मैं । १६. श्वे० सत्त सबद के । १७. नि० पेड़ा पग दे । १८. श्वे०
 गहि गुर ग्यानहि डोरा । १९. नि० एहि विधि ।

[१४७]

नि० मारुं ७, श्वे० (१) भेद १३—

१. नि० क्युं । २-४. नि० में यह तीनों पंक्तियाँ नहीं हैं । ५. श्वे० में इसके पूर्व अतिरिक्त—
 पानी पवन के दहिया जमायो अग्नि के जामन दीन्हों हो ।
 चांद सुरुज दोउ बने अहीरा मधि दहिया धिउ काड़ा हो ॥ (तुक-हीन) ।

६. श्वे० ये मनसा माया के लोभी । ७. नि० बारंबार ठगाया । ८. नि० समझि न परै ग्यान
 गुगमि की (?) । ९. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : जहां चंद न सूर दिवस नहिं रजनीं तहां
 जाइ मठ छाया । सुरति सुहागिनि पांव पलोटै खमम आपनां पाया । १०. श्वे० में यह
 पंक्ति नहीं है, (किन्तु बिना इसके अंतिम द्विपदी अधूरी ही रह जाती है) । ११. नि० परा
 के पार बताया

[१४८]

मानुख^१ तन पायो बड़े भाग ।

अब^२ बिचारि कै^३ खेलौ फाग ॥ टेक ॥

बिनु जिभ्या^४ गावै गुन^५ रसाल । बिनु चरनन^६ चालै अघर चाल ॥ १॥^७

बिनु कर बाजा बजै बेन । निरखि देखि^८ जहं^९ बिनां नैन ॥ २॥

बिन ही मारै मृतक होइ^{१०} । बिनु जारै होइ खाक सोइ^{११} ॥ ३॥

बिनु मांगै ही बस्तु देइ^{१२} । सो^{१३} सालिम बाजी जोति लेइ ॥ ४॥

बिनु^{१४} दीपक बरै अखंड जोति । तहां पाप पुनि नहि लगै द्योति^{१५} ॥ ५॥

जहं चंद सूर नहि आदि अंत । तहं कबीर^{१६} गावै बसंत^{१७} ॥ ६॥

[१४९]

जहं^१ सतगुर खेलत^२ रितु बसंत ।

परम जोति^३ जहं साथ संत ॥ टेक ॥

तीन लोक तैं भिन्न राज । अनहद धुनि जहं बजै बाज^४ ॥ १ ॥^५

चहुं दिसि जोति की बहै धार^६ । बिरला जन कोइ उतरै पार^७ ॥ २ ॥

कोटि किस्न जहं जोरै हाथ^८ । कोटि^९ बिस्तु जहं नारै^{१०} माथ ॥ ३ ॥

कोटिक ब्रह्मां पढ़ै पुरांन । कोटि महेस^{११} जहं धरै ध्यान ॥ ४ ॥

कोटि सरसती^{१२} धारै^{१३} राग । कोटि इंद्र जहं^{१४} गगन^{१५} लाग ॥ ५ ॥

सुर गंधर्व मुनि^{१६} गनै न जाइ । जहां साहेब प्रगटे आप आई^{१७} ॥ ६॥^{१८}

[१४८]

नि० बसंत १९, शबे० (२) होली १९—

१. नि० मनिखा । २. नि० पांच । ३. नि० मिलि । ४. नि० रसना । ५. नि० पद ।
 ६. नि० चरनां । ७. नि० में दोनों चरण परस्पर स्थानांतरित । ८. नि० छेमे निरखि देखि ।
 ९. नि० नर । १०. नि० बिन मास्यौ मरि जाइ सोइ । ११. नि० जरि खाक होइ । १२. शबे०
 बिन मांगे बिन जाचे देइ । १३. नि० या । १४. नि० जहां । १५. नि० तहां पाप पुनि की
 नहीं द्योति । १६. नि० दास कबीर । १७. शबे० खेलै ।

[१४९]

नि० बसंत १७, शबे० (१) होली ६—

१. नि० छेमें । २. नि० खेलै । ३. नि० परम पुरख । ४. शबे० जहं अनहद बाजा बजै बाज
 (पुन०) । ५. नि० में दोनों चरण परस्पर स्थानांतरित । ६. नि० जहां कोटि किरण ऊँ
 अपार । ७. नि० तहां कोई बिरला पढ़ै पार । ८. नि० जहां कोटि किस्न कर जोइया
 हाथ (पुन०) । ९. नि० कोटिक । १०. नि० नवारै । ११. नि० महादेव । १२. शबे०
 सरस्वती । १३. नि० करहि । १४. नि० तहां । १५. नि० गगन । १६. नि० मुनी
 सुनेस्वर । १७. नि० तहां प्रभु बैठे सहज भाइ । १८. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : चोवा

जब बसंत गहि राग लीन्ह । सतगुर सबद उचार कीन्ह ॥ ७ ॥^{१९}
कहै कबीर मन हृदय लाइ^{२०} । नरक उधारन नाउं आहि^{२१} ॥ ८ ॥

[१५०]

कोरी कौं काहू मरमु न जानां ।

सब^२ जुगु आनि^३ तनायौ^४ तांतां ॥ टेक ॥^५

घरनि^६ अक्रास की करगह बनाई^७ । चंद सुरुज दुइ नरी^८ चलाई^९ ॥ १॥

सहज तार लै पूरिन पूरी । अजहू बिनै कठिन है दूरी ॥ २॥^{१०}

कहत कबीर कारगह तोरी^{११} । सूतै सूत मिलाए कोरी^{१२} ॥ ३॥

[१५१]

जोगिया फिरि^१ गयौ गगन^२ मभारी ।

रह्यौ समाइ पंच तजि नारी^३ ॥ टेक ॥

गयौ दिसावरि^४ कौन बतावै । जोगिया बहुरि गुफा नहि आवै^५ ॥ १॥

जरि गौ कंथा धजा गयौ टूटी^६ । भजि गौ डंड^७ खपर गयौ फूटी^८ ॥ २॥

कहै कबीर जोगी जुगुति कमाई । गगन गया सो आवै न जाई^९ ॥ ३॥

[१५२]

सार सबद^१ गहि^२ बांचिहौ^३ मानौं^४ इतबारा ।^५

चंदन श्री अवीर । पुहुप वास रसो गंभीर । सिरजत हिए निवास लीन्ह । सो यहि लोक से रहित भिन्न ॥ [तुल० पंक्ति ३-१] १९. नि० जन रामानंद प्रभु रमिता भेव । सतगुर सबद विचारि लेव ॥ २०. नि० ए दया आहि । २१. नि० एक नरक निवारन नांव ताहि ।

[१५०]

बी० १० २८, गु० आसा ३६—

१. बी. अस जोलहा । २. बी० जिन । ३. बी० आइ (उर्दू मूल) । ४. बी० पसारिन्ह । ५. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : जब तुम सुनते वेद पुराना । तब हम इतनकु पसरिओ ताना । ६. बी० महि, बी० घरती । ७. बी० दोउ गाड़ खंदाया । ८. गु० साथ । ९. बी० बनाया । १०. गु० में यह पंक्ति नहीं है, इसके स्थान पर : पाई जोरि वात इक कीन्ही तह तांती मनु माना । जोलाहै बरु अपना चीन्हा घट ही रामु पछाना ॥ (भिन्न छंद) । ११. बी० करम सौ जोरी । १२. बी० सूत कुसुत बिनै भल कोरी ।

[१५१]

दारे आसावरी २, बी० ६५—

१. दा० खेलि । २. बी० नगर । ३. बी० जाय समाना पांच जहां नारी । ४. बी० देसंतर । ५. दा० बहुरि न जोगिया गुफा में आवै । ६. दा० रहि गए धागा कंथा गयी छूटी । ७. दा० भागा डंड । ८. दा० नि० खपरा गयी फूटि । ९. बी० में इस पंक्ति का पाठ है : कहै कबीर ई कलि है खोटी । जो रहे करवा सो निकरै टोटी ॥ (तुल० गोरख-बानी)

[१५२]

नि० बिलावल ११, बी० ११४, शबे० (१) भेद ६—

१. नि० सति सदि० । In Public Domain. Digitized by eGangotri Collection. ५. इसके

या संसार सभै बंधा जम जाल पसारा ॥ टेक ॥
अजर अमर^१ एक^२ बिरिछ^३ निरंजन डारा^४ ।
तिरदेवा^५ साखा भए पाती संसारा^६ ॥ १ ॥
ब्रह्मां वेद सही किया सिव जोग पसारा^७ ।
बिस्तु माया^८ परगट^९ किया उरलै^{१०} ब्योहारा ॥ २ ॥
कीर भए सब जीयरा^{११} लि^{१२} बिल कर चारा ।
करम की^{१३} बंसी^{१४} डारिं कै^{१५} पकरचौ^{१६} संसारा ॥ ३ ॥
जोति सरूपी हाकिमा जिन अमल पसारा ।
तीनि लोक दसहूँ दिसा जम रोकै^{१७} द्वारा ॥ ४ ॥
अमल मिटावौं तासु का^{१८} पठवौं भव पारा ।
कहै कबीर अमर करौं जो होइ हमारा^{१९} ॥ ५ ॥

(१२) निरंजन राम

[१५३]

निरगुन^१ राम जपहु रे भाई ।

अविगत की गति लखी न जाई^२ ॥ टेक ॥

चारि वेद अरु^३ सुंछित पुरांनां । नौ व्याकरनां मरम न जानां^४ ॥१॥

सेस नाग जाकै गरुड़ समानां^५ । चरन कंवल कंवला नहि जानां^६ ॥२॥

कहै कबीर सो भरमैं नाहीं^७ । निज जन बैठे हरि की छाहीं^८ ॥३॥

बाद अगली पंक्ति केवल नि० में मिलती है; और फिर दो अतिरिक्त पंक्तियाँ : गुरु गस्ती होइ देखिय,
अजहूँ अहंकारा ॥ चेतनिहारा चेतियौ बूझी जिन धारा । ६. बी० आदि पुरुष, शब्द० सत्त पुरुष ।
७. शब्द० अर्च्छे । ८. नि० पुरुष । ९. नि० ताकी डारा । १०. गु० तीनि देव । ११. बी०
पत्ता संसारा, नि० पत्र जग सारा । १२. नि० उचारा । १३. नि० धरम । १४. नि० उत्पन्न
किया । १५. नि० उला (उर्दू मूल) । १६. नि० तिरदेवा व्याधा भए (पुन० तुल० ऊपर
पंक्ति ३), नि० कीर भया तीन्यूँ जनां । १७. नि० दे । १८. नि० कर्मा की । १९. नि०
पासी । २०. बी० लाय कै । २१. शब्द० फांसा । २२. नि० मूँदे । २३. शब्द० ताहि को ।
२४. बी० कहै कबीर निरमै करीं । २५. बी० में ऊपर की १वीं पंक्ति ढठी के पूर्व आती है और
७वीं पंक्ति १वीं के स्थान पर । नि० में ढठी तथा १वीं पंक्तियाँ पहली के बाद आती हैं और ७वीं
पंक्ति १वीं के बाद ।

[१५३]

दा० गौड़ी ४१, नि० गौड़ी ५३, गु० घनासरी १, स० ५२-३—

१. दा० तिरगुण (उर्दू मूल) । २. गु० में इस पंक्ति का पाठ है : सत्संगति रामु रिदै बसाई ।
३. गु० में इसके पूर्व अतिरिक्त : सनक सनंद महेस समाना । सेख नाग तेरो मरम न जाना ।
४. दा० नि० स० जाकै । ५. गु० कमलापति कवला नहीं जानां (तुल० ऊपर पंक्ति ४) ।
६. गु० हनुमान सरि गरुड़ समानां । ७. गु० सुरपति नरपति नही गुन जानां । ८. दा०
नि० स० कहै कबीर जाकै भेदै नाहीं । ९. गु० पग लागि राम रहै सरनाही ।

[१५४]

लोका^१ तुम ज कहत हौं नंद कौ नंदन नंद कहौ धूं काको^२ रे^३ ।
 धरनि अकास दोऊ नाहिं होते^४ तब यह नंद कहां थौं रे ॥ टेक ॥
 लख चौरासी जीअ जोनि माहिं^५ भ्रंमत भ्रंमत नंद थाकौ रे^६ ।
 भगति हेतु औतार लियौ है भागु बड़ो बपुरा कौ रे ॥ १ ॥^७
 जनमैं^८ मरै न संकटि^९ आवै^{१०} नांव निरंजन जाकौ रे ।
 दास कबीर कौ ठाकुर असौ^{११} जाकौ माई न बापौ रे^{१२} ॥ २ ॥^{१३}

[१५५]

जौ जांचउं तौ केवल राम ।
 आन देव सौं^१ नाहीं काम ॥ टेक ॥
 जाके सूरिज कोटि करहिं परकास^२ । कोटि महादेव अरु^३ कविलास ॥ १ ॥
 दुरगा कोटि जाके मरदनु करें । ब्रह्मा कोटि वेद ऊचरै^४ ॥ २ ॥
 कोटि चंद्रमा^५ करहिं^६ चिराक^७ । सुर तैतीसउ जेवहिं^८ पाक ॥ ३ ॥
 नवग्रह कोटि ठाढ़े दरवार । धरमराइ पौली प्रतिहार^९ ॥ ४ ॥
 पवन कोटि चउवारै फिरहिं । बासिग^{१०} कोटि सेज बिसतरहिं^{११} ॥ ५ ॥^{१२}
 समुद कोटि जाके पनिहार^{१३} । रोमावलि कोटि^{१४} अठारह भार ॥ ६ ॥^{१५}
 कोटि कुबेर^{१६} जाके^{१७} भरहिं भंडार । कोटिक लखमो^{१८} करें सिंगार ॥ ७ ॥
 कोटिक पाप पुनि ध्यौहरै^{१९} । इंद्र कोटि जाकी^{२०} सेवा करें ॥ ८ ॥

[१५४]

दा० गोडी ४८, नि० गोडी ५२, गु० गउई ७०, स० ४३-२—
 १. गु० में 'लोका' शब्द नहीं है । २. गु० नंद सु नंदनु काको रे । ३. गु० दसो दिस नाही ।
 ४. दा० नि० स० जीव जंत में । ५. गु० भ्रमत नंद बड़ थाको रे । ६. दा० नि० स० में यह और
 पाँचवीं पंक्ति परस्पर स्थानांतरित । ७. दा० नि० स० में इसके स्थान पर : अधिनासी उपजे
 नहिं बिनसे संत सुजस कहै ताको रे । [आगे 'जनमैं मरै न संकटि आवै' के कारण पुनरुक्ति-
 दोष] । ८. दा० जामैं । ९. दा० नि० संकटि (उर्दू मूल) । १०. गु० संकटि नहीं परे जोनि
 नहीं आवै । ११. गु० कबीर को सुआमी असौ ठाकुर । १२. दा० नि० स० भगति करै हरि
 ताको रे । १३. गु० में इस पद की प्रथम दो पंक्तियाँ ऊपर की चौथी पंक्ति के बाद आती हैं ।

[१५५]

दा० मैरू १६, नि० मैरू १५, गु० मैरु २०—
 १. गु० सिउ । २. गु० कोटि सूर जाके परगास । ३. दा० नि० गिरि । ४. दा० नि० में दोनों
 चरण परस्पर स्थानांतरित । ५. गु० चंद्रमे । ६. दा० नि० गहैं । ७. गु० चराक । ८. दा०
 नि० जामैं । ९. गु० धरम कोटि (?) जाके प्रतिहार । १०. गु० वासक । ११. गु० बिसतरहिं ।
 १२. दा० नि० में दोनों चरण स्थानांतरित । १३. गु० पनीहार । १४. दा० नि० में 'कोटि'
 नहीं है । १५. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ उपर्युक्त पद की चौदहवीं पंक्ति के बाद हैं ।
 १६. गु० कमेर । १७. गु० में 'जाके' शब्द नहीं है । १८. दा० नि० लक्ष्मी कोटि । १९. गु०

बावन कोटि जाकै कुटवार^{२१} । नगरी नगरी खिअत अपार^{२२} ॥६॥
 लटट्टी खेलै^{२३} विकराल । अनंत कला नटवर गोपाल^{२४} ॥१०॥^{२५}
 कोटि जगि जाकै दरवार । गंधर्व^{२६} कोटि करहि जैकार ॥११॥
 बिद्या कोटि सभै गुन कहै । तऊ पारब्रह्म का अंतु न^{२७} लहै ॥१२॥
 असंखि कोटि जाकै जमावली^{२८} । रावन सैनौ जिहि तैं छली^{२९} ॥१३॥
 सहस बांह कै हरे परान^{३०} । जरजोधन^{३१} का मथिआ मान^{३२} ॥१४॥
 कंद्रप कोटि जाकै लावन करै^{३३} । घट घट भीतरि^{३४} मनसा हरै ॥१५॥
 कहै^{३५} कबीर सुनि^{३६} सारिगपांनि । देहि अमै पदु मांगउं दान ॥१६॥

[१५६]

मोहि बैराग भयो ।

यहु जिउ आइ रे कहां गयो^१ ॥ टेक ॥^२आकासि गगनु पातालि गगनु है वह दिसि^३ गगनु रहाईले ।आनंद मूल सदा पुरखोतम^४ घट बिनसै गगनु न जाईले ॥ १ ॥पंच तत्त मिलि^५ काया कीनीं तत्त कहां तैं कोनु रे^६ ।करम बद्ध तुम^७ जीउ कहत हौं करमहि किन जिउ दीनु रे^८ ॥ २ ॥हरि मंहि^९ तनु है तन मंहि^{१०} हरि है सरब निरंतरि सोइ रे^{११} ।कहै^{१२} कबीर हरि नाउं^{१३} न छाड़उं सहज होइ सु होइ रे^{१४} ॥ ३ ॥

[१५७]

अवधू^१ कुदरति की^२ गति न्यारी ।रंक निवाज करै राजेसुर^३ भूपति करै भिखारी^४ ॥ टेक ॥

बहुहिराइ । २०. गु० जाके (उद्दू मूल) । २१. गु० छपन कोटि जाकै प्रतिहार (पुन० तुल० पंक्ति ६-२) । २२. दा० नि० खेत्रपाल । २३. गु० बरतै । २४. गु० कोटि कला खेलै गोपाल । २५. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की पंद्रहवीं के बाद है । २६. दा० नि० गंधर्व । २७. दा० नि० पार । २८. गु० बावन कोटि (पुन० तुल० पंक्ति ११) जाकै रोमावली (पुन० तुल० पंक्ति ८) । २९. दा० नि० जायें चली । ३०. सहस कोटि बहु कहत पुरान (कर्ता का अभाव) । ३१. गु० जरजोधन । ३२. दा० नि० में यह पंक्ति ऊपर की सातवीं पंक्ति के बाद है । ३३. गु० लवै न धरहि । ३४. गु० अंतर अंतरि । ३५. दा० नि० दास । ३६. दा० नि० भजि ।

[१५६]

दा० सोरठि ३२, नि० सोरठि ३१, गु० गौड ३—

१. दा० नि० मन रे आइ रे कहां गयो ताते मोहि बैराग भयो । २. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ तीसरी पंक्ति के बाद हैं । ३. गु० चहुँ दिसि । ४. दा० नि० परसोतम । ५. दा० नि० तैं । ६. दा० नि० कीन्हां रे । ७. दा० नि० करमों के बसि । ८. दा० नि० जीव करम किनि (नि० किस) दीन्हां रे । ९. दा० नि० मैं । १०. दा० नि० है पुनि नाहों सोई । ११. गु० कहि । १२. गु० राम नामु । १३. दा० नि० होइ ।

[१५७]

यातैं लोंगहिं फर नहिं लागै^५ बावन चंदन फूलै^६ ।
 मच्छ सिकारी रमैं जंगल में सिध समुंदर भूलै^७ ॥ १ ॥
 एरंड रुख^८ करै मलयागिरि^९ चहुं दिसि फूटै^{१०} बासा ।
 तीनि लोक^{११} ब्रह्मंड खंड मै^{१२} अंधरा देख^{१३} तमासा ॥ २ ॥
 पंगुला^{१४} मेर सुमेर उलंघै^{१५} त्रिभुवन मुकुता^{१६} डोलै ।
 गुंगा ग्यांन विग्यांन^{१७} प्रकासै अनहद^{१८} बांनहीं बोलै ॥ ३ ॥
 बांधि अकास पतालि पठावै^{१९} सेस सरग पर राजै^{२०} ।
 कहै कबीर राम है राजा^{२१} जो कछु करै सो छाजै ॥ ४ ॥

[१५८]

साधौ करता करम तैं न्यारा ।

आवै न जाइ^२ मरै नहिं जनमैं^३ ताका करी बिचारा ॥ टेक ॥

जाकै धरनि गगन है सहसौं^४ ताकौ सकल पसारा ।^५
 नाद बिद तैं रहित है^६ सोई खसम हमारा ॥ १ ॥^७
 राम को पिता जो जसरथ कहिअै^८ जसरथ^९ कौनै जाया^{१०} ।
 जसरथ^{११} पिता राम कौ दादा कहौ कहां तैं आया ॥ २ ॥
 राधा रुकमिनि क्रिसन की रांनौ^{१२} क्रिसन दोऊ का मोरा^{१३} ।
 सोरह सहस गोपी उन भोगी^{१४} वह भयौ काम कौ कोरा^{१५} ॥ ३ ॥
 बसवै पिता देवकी माता^{१६} नंद भहर घरि आया^{१७} ।
 कहै कबीर करता नहिं होई^{१८} जो करमा^{१९} हाथि बिकाया ॥ ४ ॥^{२०}

५, शबे० याते लोंग गाछ फूल लागै, बीम० ईशा तैं लवंग हरफ (हिन्दी मूल) न लागै [बी०
 अन्य प्रतियों : याते लोग (उर्दू मूल) हरफता (हिन्दी मूल) लागै], नि० ईश रसाल जहर फूल
 लागै । ६, बी० शबे० चंदन फूल न फूला । ७, नि० मच्छ सिकारि चहुं बन मांहीं सिध समुंद
 में भूलै । ८, बी० शबे० रेडा रुख । ९, नि० मलयागार (उर्दू मूल) । १०, बी० फूटी (उर्दू
 मूल) । ११, नि० अर्नत कोटि । १२, नि० का । १३, नि० बी० देखै अंध । १४, नि०
 पिगी (उर्दू मूल), बी० पंगा । १५, शबे० उड़ावै । १६, शबे० माहीं । १७, नि० प्रग्यान ।
 १८, नि० अचिरल । १९, नि० इंद्र राजा कुं पयाल पठावै, शबे० पताल बांधि अकास पठावै ।
 २०, नि० सेखी गोपुर राजै । २१, नि० राम राजेसर, शबे० समरथ है स्वामी (राधास्वामी प्रभाव) ।

[१५८]

नि० आमावरी ६२, शबे० (२) उप० ३६—

१, नि० करमनि सूं । २, शबे० जावै । ३, शबे० जानै । ४, नि० भरती अंबर आदि देव है ।
 ५, शबे० अनहद नाद सबद धुनि जाके । ६-७, शबे० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की दूसरी पंक्ति
 के बाद आती हैं । ८, नि० दसरथ राम का पिता कहानै । ९, नि० दसरथ । १०, नि० कौन
 उपाया । ११, नि० बहनां (?) । १२, नि० उन्हीं का बीरा (उर्दू मूल) । १३, नि० मोछा
 संग लेला । १४, नि० सो क्रिसन बिख (बिलै ?) का कोरा । १५, शबे० बासुदेन (?) पिता
 मातु देव । १६, नि० बासुदेन (?) पिता । १७, शबे० बासुदेन (?) पिता । १८, नि० बासुदेन (?) पिता ।
 १९, नि० बासुदेन (?) पिता । २०, नि० बासुदेन (?) पिता ।

(१३) माया

[१५६]

विखिया अजहूँ सुरति सुख आसा ।

होन^१ न देख हुरि कै चरन निवासा^२ ॥ टेक ॥सुख मांगें^३ दुख आगें^४ आवे । तारैं सुख मांग्या नहि भावै^५ ॥ १ ॥^६जा^७ सुख तैं सिव विरंजि^८ डरांनं । सो सुख हमहुं सांच करि जानां ॥ २ ॥^९सुख छांड़ा तब सब दुख भागा । गुर कै सबदि मेरा मन लागा ।^{१०}

कहै कबीर चंचल मति त्यागी । तब केवल राम नाम ल्यो लागी ॥ ४ ॥

[१६०]

अवधू औसा ग्यांन विचारी ।

तारैं भई पुरिख तैं नारी ॥ टेक ॥^१नां हूँ परनीं ना हूँ क्वारी^२ पूत जनमांवनहारी^३ ।

[१५६]

दा० गीड़ा = २, नि० गीड़ा = ५, गु० गडड़ा ३६, स० ११२-१—
 १. दा० हूँन, दा० हूँण (पंजाबी मूल) । २. गु० कैसे होईहे राजा राम निवासा । ३. गु०
 मागत । ४. दा० नि० स० पहली (उर्दू मूल) । ५. गु० सो सुख हमहुं न मागिआ भावै ।
 ६. दा० में यह पंक्ति नहीं है । ७. गु० इस । ८. गु० प्रहम । ९. गु० में इसके बाद की
 पंक्तियाँ नहीं हैं, इनके स्थान पर निम्नलिखित सात पंक्तियाँ हैं—

सनकाधिक नारद मुनि सेवा । तिन भी तन माहि मनु नहीं सेवा ॥

इस मन कउ कोई खोजहु माई । तन छूटे मनु कहा समाई ॥

गुर प्रसादी जेदेउ नामा । नगति कै प्रेमि इनही है जाना ॥

इस मन कउ नहीं आविन जाना । जिसका भरमु गडआ तिलि साचु पछाना ॥

इस मन कउ नपु न रेखिआ कोई । हुकमे होइया हुकमु वृत्ति समाई ॥

इस मन का कोई जाने भैत । इह मन लीग मग सुख देव ॥

जाउ एकु आन सगल करीरा । इस मन कउ रवि रहे कबीरा ॥

गु० की यह पंक्तियाँ दा० नि० स० तथा वी० में अन्यत्र एक स्वतन्त्र पद के रूप में मिलती हैं
 (तुल० दा० गीड़ा ३६, नि० गीड़ा ३९, वी० १२, स० ४०१) । [पद के पूर्वांश की पंक्तियाँ विषय-
 सुख के संबंध में हैं और शेष सातों पंक्तियाँ, जो यहाँ उद्धृत की गयी हैं, स्पष्ट ही मन के संबंध
 में हैं । दोनों का पृथक् रूप में जाना ही अधिक व्यक्तिगत लगता है, जैसा कि दा० नि० स०
 तथा वी० में हुआ है । 'श्रीगुरु ग्रंथ साग्व' में यह मूल या तो उस प्रति से आयी होगी जिससे
 कबीर के पद उसने लिखे गये अथवा यह भी संभव है कि ग्रंथ के संकलकर्ता ने ही मूल से दोनों
 पदों की एक में मिला दिया हो । १०. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त 'निस
 वासुर विषै तन' (राज०) उपगार । बिबई नरकि न जात' (राज०) वास । 'तन' या 'तना'
 राजस्थानी प्रत्यय है और कबीर की रचना में मूल रूप से नहीं स्वीकृत किया जा सकता ।]

[१६०]

दा० आसावरी ३०, नि० आसावरी २९, वी० १५, स० १५६-२; दा० दा० में यह पद नहीं है—
 १. वी० इसहु पंडित कछु बिचारा पूतवा है कि नारी । २. वी० बर नहि बरै क्याह नहि करै
 (एक ही भाव की पुनः) । ३. वी० पूत जनम उन्निहारी, दा० नि० स० पूत जनमो कीहारी

कारे^४ मूंड को एक न छांड्यो अजहूँ अकन^५ कुंवारी^६ ॥ १ ॥
 बांहन कै घरि बांहनि होती^७ जोगी कै घरि चेली ।
 कलसां पढ़ि पढ़ि भई तुरकिनीं^८ कलि मंहि^९ फिरौ^{१०} अकेली ॥ २ ॥
 पीहर जांउं न रहूँ सासुरै^{११} पुरखहि^{१२} संग^{१३} न लाऊँ^{१४} ।
 कहै कबीर मैं जुग जुग जीऊँ^{१५} अंगहि अंग न छुवाऊँ^{१६} ॥ ३ ॥^{१७}

[१६१]

यहु^१ माया रघुनाथ की^२ खेलन चढ़ी अहेरै^३ ।

चतुर चिकनियां^४ चुनि चुनि मारे कोई न छांडा नेरै^५ ॥ टेक ॥

मौनों बीर^६ डिगंबर^७ मारे जतन करंता जोगी ।^८

जंगल मांहि^९ के जंगम मारे तूं रे फिरै अपरोगी^{१०} ॥ १ ॥

बेद पढ़ता बांहन^{११} मारा^{१२} सेवा करंता स्वांमी^{१३} ॥

अरथ करंता मिसिर पछाड़ा^{१४} गल मंहि घालि लगांसी^{१५} ॥ २ ॥^{१६}

साकत कै तूं हरता करता^{१७} हरि भगतन कै^{१८} छेरी ।

दास कबीर राम कै सरनै^{१९} ज्यों आई त्यों फेरी^{२०} ॥ ३ ॥

(राज० पंजाबी) । ४. दा० नि० स० काली (उर्दू मूल) । ५. दा२ अकन, बी० आदि ।
 ६. बी० कुमारी । ७. दा० नि० स० बांहन कै बहनेटी कहित्री । ८. बीम० तुरकिनि हांतिउं ।
 ९. दा० नि० स० अजहूँ (पुन० तुल० पंक्ति ४) । १०. बी० रही । ११. बी० मैके रहे (बीम०
 रहौं) जाहूँ (बीम० जाव) नहि सुसुरे । १२. बी० साहें । १३. दा० नि० स० अंग (पुन०
 अगली पंक्ति में) । १४. बी० सोऊँ । १५. दा० नि० स० कहै कबीर सुनहु रे संतो । १६. बी०
 जाति पांति कुल खोवै (बीम० खोवौ) । १७. बी० में इस पद की दूसरी तथा तीसरी पंक्तियों
 पाँचवीं पंक्ति के बाद आती हैं । [विशेष—यह पद यत्किंचित् पाठांतर के साथ आनंदघन
 नामक एक जैन कवि के नाम से भी मिलता है । पाठ के लिए दे० 'संतवाणा' (जयपुर की एक
 मासिक पत्रिका) वर्ष ३ अंक २ में श्री अग्रचंद नाहटा द्वारा उद्धृत अंश (पृ० २५-२६) । नाहटा
 जी का कथन है कि आनंदघन के नाम से यह पद 'पुरानी प्रतियों में' नहीं मिलता, अतः 'पंडि
 से ही किसी ने उसे आनंदघन के नाम से प्रचारित किया है' ।

[१६१]

दा० रामकली ३५, नि० रामकली ३७, बी० कहरा १२, स० ११६-३—

१. नि० तूं, बी० ई । २. बी० रघुनाथ की बीरी । ३. बी० चली अहेरा हो । ४. दा१
 चिकारे (कैथी मूल), दा२ दा३ नि० स० छिकारे (छिनारे ?) । ५. दा२ कोई न छोड़्या बोले,
 बी० कोई न राखै नेरा । ६. दा० नि० स० सुनिवर पीर (उर्दू मूल) । ७. दा२ बी० दिगंबर
 (बीम० होगंबर) । ८. बी० ध्यान धरते जोगी । ९. बी० में, बीम० महं । १०. दा१ दा२
 तू रे फिरै बलवंती (तुकहीन), बी० माया किनहुं न भोगी हो । ११. बी० वेदुआ (बीम०
 पांडे) । १२. बीम० मारो । १३. बी० पूजा करते । १४. बी० अरथ विचारत पंडित मारो ।
 १५. दा० तू रे फिरै सैमंती (तुकहीन, तुल० दा० पंक्ति ४), बी० बाधेउ सकल लगामी हो ।
 १६. बी० में इसके बाद अतिरिक्त: सींगारिले वन भीतरि मारे ब्रह्मा का सिर फोरी हो । नाथ
 मधंदर चले पीठि दै सिंघल हूं महं बीरी हो ॥ १७. बी० साकत के घर करता घरता । १८. बी०
 की । १९. बी० कहहि कबीर सुनहु हो संतो । २०. दा० ज्यों लागी त्यों तोरी (तुकहीन) ।

[१६२]

एक सुहागिनि जगत पियारी ।^३

सगले^१ जीअ जंत^२ की नारी ॥ टेक ॥^३

खसम मरै तो नारि न रोवै । उस रखवारी^४ अउरो^५ होवै ॥ १ ॥

रखवारे^६ का होइ बिनास । आगे^७ नरक इहां^८ भोग बिलास ॥ २ ॥

सुहागिनि गलि सोहै हार । संत कौ^९ बिख बिगसे^{१०} संसार ॥ ३ ॥

करि सिंगार बहै पखिआरी^{११} । संत की ठिठकी फिरै बिचारी ॥ ४ ॥

संत भागे^{१२} वा पाछे^{१३} परै । गुर कै सबदनि^{१४} मारहु^{१५} डरै ॥ ५ ॥

साकत कै^{१६} यहू^{१७} पिंड परांडनि । हमरी^{१८} दृष्टि परै त्रिखि^{१९} डांडनि ॥ ६ ॥

अब हंस इसका पाया भेउ^{२०} । हुए कृपाल मिले गुर देव ।

कहै^{२१} कबीर अब बाहरि टरी^{२२} । संसारी^{२३} कै अंचलि परी ॥ ७ ॥

[१६३]

माया महा ठगिनि^१ हंस^२ जानीं ।

तिरगुन फांसि^३ लिए कर डोलै बोलै मधुरी वानीं ॥ टेक ॥

केसव कै कंवला होइ बैठी सिव कै भवन भवानीं^४ ।^५

पंडा कै मूरति होइ बैठी तीरथ हू मैं पानीं^६ ॥ १ ॥

जोगी कै जोगिनि होइ बैठी राजा कै घरि रानीं ।

काहू कै हीरा होइ बैठी काहू कै कौड़ी कानीं ॥ २ ॥

भगतां कै^७ भगतिनि होइ बैठी तुरकां कै तुरकानीं^८ ।^९

[१६२]

दा० नि० विलावल १, गु० गौड ७—

१. दा० नि० सकल । २. दा० नि० जीव । ३. गु० में यह पंक्तियाँ चौथी के बाद हैं । ४. दा० नि० रखवाला (लै) । ५. दा० नि० ओरें । ६. दा० नि० उतहिं । ७. दा० नि० इत । ८. दा० नि० संतनि । ९. दा० नि० विलसै । १०. दा० नि० पाछे लागा फिरै [पुन० तुल० दि० चरणः फिरै बिचारी] पवि हारी । ११. दा० नि० भाजै । १२. दा० नि० पाछी (उर्दू मूल) । १३. दा० गुर कै सबदं, गु० गुर परसादी । १४. दा० नि० मारबौ । १५. गु० कौ (उर्दू मूल) । १६. दा० गुर कै । १७. गु० हम कउ । १८. दा० नि० जस । १९. गु० हम तिसका बहु जनिआ भेउ । २०. गु० कहु । २१. दा० नि० टिरी (उर्दू मूल) । २२. गु० संसार (उर्दू मूल) ।

[१६३]

नि० बिहंगडी ४, बी० ५९, श्रवे० (१) चिता० उप० २६—

१. नि० जुग ठगनीं । २. नि० मैं । ३. नि० त्रिगुणीं पास । ४. नि० ब्रह्मां के ब्रह्माणीं (तुल० पंक्ति ७) । ५. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : ईश्वर के गोरां होइ बैठी इंद्रां के इंद्राणीं । ६. नि० तीरथ जाइ रे पानीं । ७. बी० भगता के । ८. बी० ब्रह्मा के ब्रह्माणीं । ९. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : लख बीरासी चुंग चुंगि खाया तोऊ किनहुं न पिछाणीं ।

दास कबीर साहेब का बंदा जाके हथि बिकानों^{१०} ॥ ३ ॥^{११}

[१६४]

जारों में^१ या जग की चतुराई ।

राम भजन नहिं करत बावरे^२ जिन यह जुगति बनाई^३ ॥ टेक ॥

माया जोरि जोरि करै इकठी^४ हंम खैहें^५ लरिका व्योसाई^६ ॥^{१०}

सो धन चोर मूसि लै जावै^७ रहा सहा^८ लै जाइ जंवाई ॥ १ ॥^{१०}

यह माया जैसे कलवारिन^{११} मद पियाई^{१२} राखै बौराई^{१३} ।

एक तो पड़े धरनि पर लोटें^{१४} एकन कौ देखत छलि जाई^{१५} ॥ २ ॥^{१६}

या माया सुर नर मुनि डंहे^{१७} पोर पर्यंवर कौ धरि खाई^{१८} ।

जे जन रहें राम कै सरन^{१९} हाथ मलै तिनकौ पछिताई^{२०} ॥ ३ ॥

कहै कबीर सुनौ भाई साधौ लै फांसी हमहूँ पै आई^{२१} ।

गुर परताप^{२२} साध की संगति हरि भजि चल्थौ निसान बजाई^{२३} ॥ ४ ॥

[१६५]

साधौ बाधिनि खाइ गई लोई^१ ।

खातां जान न कोई ॥ टेक ॥^२

काजल टीकि चसम मटकावै कसि कसि बांधै गाढ़ी^३ ।

लुभुकी लुभुकि चरै अभिअंतर खात करेजा काढ़ी^४ ॥ १ ॥

१०. वी० शबे० कहै कबीर सुनी भाई साधौ ई सब अकथ कहानी । ११. नि० में इस पद का क्रम यथापंक्ति १-२-४-५-३-७-६-८ है ।

[१६४]

नि० कनही २, शबे० (१) चिता० उप० ६७, शक० सायरी १८—

१. नि० जालू । २. शबे० साई को नाम न कबहूँ सुमिरे (राधा० प्रभाव), शक० प्रभु जी को नाम बिसरि जनि जाई । ३. नि० शक० जिन या जल सू जुगति बनाई । ४. शबे० शक० जोरत दाम काम अपने को (?) । ५. नि० खाई । ६. शबे० धिलसाई, शक० वोसाई । ७. नि० सो धन राजा डंडे चोर लै गयो, शक० सो धन चोर हाकिमा लीहें । ८. नि० रखी पत्नी । ९-१०. नि० में प्रंक्ति ५-६ के स्थान पर । ११. नि० ऐसी कलवारी, शक० ऐसी कलवारिन । १२. नि० पाइ । १३. नि० में यह तीसरी पंक्ति के स्थान पर है । १४. शबे० शक० धूरि में लोटें । १५. शबे० शक० एक कहै चोखा दे साई (शक० भाई) । १६. नि० में यह आठवीं पंक्ति से स्थानांतरित । १७. नि० इन माया सुर नर मुनि मोदे, शबे० सुर नर मुनि माया छलि मारे । १८. नि० दबी (देवी ?) देवता ठगि अरु खाई, शक० देव देवा सब धरि धरि खाई । १९. शबे० कोइ एक भाग बचै सतसंगति, शक० कोइ कोइ लागि रहे गुर चरणों (पुन० तुल० पद की अंतिम पंक्ति) । २०. नि० तिनकूँ देखि रे अधिक लजाई, शक० तिनहूँ को माया फिर पछताई । २१. नि० हमहाँ कूँ पासी ले धाई । २२. शबे० गुर की दया । २३. शबे० नचिगे अभय निसान बजाई, शक० अय हम रहे निसान बजाई ।

[१६५]

नि० बिहगंडी ७, शबे० (३) माया १—

१. नि० खाया लोई । २. शबे० में यह पंक्ति नहीं है । ३. शबे० अजन नैन दस चमकावै हंसि हंसि पारै गारी (तुकहीन, तुल० आगे : काढ़ी) । ४. नि० लोक प्रलोक अंतरगति पैड़ी

कानं गहि काजी नाक गहि मुल्ला पंडित कै आखी कोरी ।^१
 तींगी रिलि श्री गुर कनफूँका बाधिनि सभै मरोरी ॥ २ ॥^२
 अर^३ (?) इन्द्रादिक बर ब्रह्मादिक ते बाधिनि धरि लाया ।^४
 गिरि गोबरधन नख पर राख्यो ते बाधिनि मुख आया ॥ ३ ॥^५
 उत्पति परलै जनीं बधिनियां^६ सतगुर एह बिचारी ।^७
 कहै कबीर सुनौ भाई साथी हमसुं बाधिनि न्यारी^८ ॥ ४ ॥

(१४) निदक साकत

[१६६]

कबीरा बिगरचौ^१ रांम दुहाई ।तुम्ह जिनि बिगरी मेरे भाई^२ ॥ टेक ॥

चंदन कै ढिग बिरिख^३ जु भैला । बिगरि बिगरि सो चंदन हैला ॥ १ ॥^४
 पारस काँ जे लोह छिपैला^५ । बिगरि बिगरि सो कंचन हैला^६ ॥ २ ॥^७
 गंगा में जे नीर मिलैला^८ । बिगरि बिगरि गंगोदिक हैला ॥ ३ ॥^९
 कहै कबीर जे रांम कहैला^{१०} । बिगरि बिगरि सो रांमहि हैला^{११} ॥ ४ ॥^{१२}

[१६७]

अैसे लोगनि सौं का कहिए ।

जे नर भए^१ भगति तैं बाहज^२ तिनतैं सदा डरानैं^३ रहिए ॥ टेक ॥

काढ़ि कलेजी खासों । ४-६. शबे० नाक धरे मुलना कान धरं काजी श्रीलिया बद्ध^(?) पदारी ।
 छत्र भूपती राय बिहारा सोखि लीन्ह नर नारी ॥ ७. शबे० में इसके पूर्व अतिरिक्त : दिन
 बाधिन चकचाँधी लावै राति समुंदर सोखी । ऐसन वाउर नगर के लोगवा घर घर बाधिन पोखी ॥
 ८-९. शबे० इन्द्राजित श्री ब्रह्मादिक दुनि सिव मुख बाधिन आई । गिरि गोबरधन नख पर राख्यो
 बाधिनि उनहुं मरोरी ॥ (तुकहीन) । १०. शबे० उत्पति परलै दोउ दिसि बाधिन । ११. शबे०
 कहै कबीर बिचारी । १२. शबे० जो जन सत के भजन करत है तासे बाधिन न्यारी (राया०
 प्रभाव) ।

[१६६]

दा० नि० सोरठि १३, गु० भैरउ ४, स० १०-२-

१. गु० बिगरिओ कबीरा । २. गु० साधु भइओ अन कतहि न जाई । ३. दा० ब्रखि । ४. गु०
 चंदन कै संगि तरवर बिगरिओ । सो तरवर चंदनु होइ निबखिओ ॥ ५. दा० नि० छिपैया
 [नि० में प्रत्येक 'ला' के स्थान पर 'गा'] । ६. नि० होइगा । ७. गु० पारस के संगि तांवा (?)
 बिगरिओ । सो तांवा कंचनु होइ (?) निबखिओ । [कवि-समय के अनुसार पारस के स्पर्श से
 लोहा सोना बनता है न कि तांवा] । ८. दा० नि० मिलैगा । ९. गु० गंगा के संग सलिला
 बिगरी । सो सलिला गंगा होइ निबरी ॥ [गु० में यह पंक्ति पद के आरम्भ में हो आ जाती है ।] ।
 १०. नि० कहेगा, हैगा । ११. गु० संतन संगि कबीरा बिगरिओ । सो कबीर राते होइ निबखिओ ॥

[१६७]

दा० गोही १४४, नि० गोही १५१, गु० गउही ४४, स० १३-१-

१. गु० श्री प्रेमदास कृष्णदास कृष्णदास कृष्णदास कृष्णदास । २. दा० दा० इराते । ३. दा० नि०
 ४. गु० श्री प्रेमदास कृष्णदास कृष्णदास कृष्णदास कृष्णदास । ५. दा० नि०

हरि जस सुनहि न हरि गुन गावहि । बासन ही असभांनु गिरावहि ॥ १ ॥
 आप न बेही^१ सुरआ पानी^२ । तिहि^३ निवहि जिन^४ गंगा आनी^५ ॥ २ ॥
 आपु गए औरन हू खोवहि^६ । आनि^७ लगाह मंदिर में सोवहि ॥ ३ ॥
 औरन हंसत आप हहि कानै^८ । तिनको देखि कबीर लजानै^९ ॥ ४ ॥

[१६८]

राम राम राम रनि^१ रहिए ।^२

साकत सेती^३ भूति न^४ कहिए ॥ टेक ॥^५

का^६ सुनहां^७ कौ सुंअत^८ सुनाएं । का^९ साकत पंहि^{१०} हरि गुन गाएं ॥ १ ॥
 कउवा कहा कपूर खराएं^{११} । का^{१२} बिसहर^{१३} कौ दूध पिआएं^{१४} ॥ २ ॥^{१५}
 अंअत ले ले नीब^{१६} सिचाई । कहै कबीर बाकी बानि न जाई^{१७} ॥ ३ ॥

[१६९]

है हरिजन सौं जगत लरत है ।

कुनिगा^१ कतहं^२ गरुड़ भखत है ॥ टेक ॥

अचिरज एक देखहु^३ संसारा । सुनहां^४ देखै कुंजर^५ असवारा ॥ १ ॥^६
 प्रसा एक अचंभौ देखा^७ । जंजुक करै केहरि सौं लेखा^८ ॥ २ ॥^९
 कहै कबीर राम भजि भाई । दास अधम गति कबहुं न जाई ॥ ३ ॥^{१०}

स० में यह पंक्ति नहीं है । ५. दा१ आपण (राज०) । ६. गु० लुरु भरि पानी । ७. दा० ताहि । ८. गु० जिहि । ९. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : बैठत उठत कुटिलता चालहि । आपु गए अउरन हू वालहि (पुन० तुल० ऊपर पंक्ति ५) । कृदि कृचरचा आन न जानहि । ब्रह्मा हू को कहिओ न मानहि ॥ १०. दा० नि० स० आपण बुझैं और को बोरैं [आगे 'सोवहि' से तुल० की असंगति] । ११. दा० नि० स० अग्नि । १२. दा० नि० स० आपण अंध और कूँ कानां । १३. दा० नि० स० हरानां (पुन० तुल० ऊपर पंक्ति २ में : हरानैं रहिए ।) ।

[१६८]

दा० नि० आसावरी २०, गु० आसा २०, स० १३-४—

१. गु० रन रनि । २. गु० सिउ । ३. गु० नही । ४. गु० में यह पंक्तियाँ तीसरी पंक्ति के बाद मिलती हैं । ५. गु० कहा । ६. गु० सुआन । ७. गु० सिअित । ८. दा० नि० स० पै । ९. दा० नि० स० का कउवा कौ कपूर खवाएं (दा१ सुवाएं) । १०. गु० विसोअर । ११. दा० नि० स० पिलाएं । १२. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त : साखित सुनहां दोऊ भाई । वो निदे वो भौकत जाई ॥ गु० की अतिरिक्त पंक्तियाँ—

सति संगति मिलि विवेक बुधि होई । पारसु परसि लोहा कंचनु सोई ॥

साकतु सुआनु सभु करे कहाइया । जो धुरि लिखिआ सो करम कमाइया ॥

१३. गु० नीसु १४. गु० कहत कबीर उया को सहज न जाई [कर्ता का अभाव, अतः अपूर्ण] ।

[१६९]

दा० गौड़ी १४५, नि० गौड़ी १४२, बी० ३१, स० १०-३—

१. बी० ऐसे हरि सौं । २. बी० पांडुर । ३. दा० नि० स० कैसैं । बी० खरह है । ४. बी० देखल । ५. बी० सोनहा । ६. बी० कुंजल । ७. बी० में यह पंक्ति अलग के बाद है । ८. बी० सूस बिलाई कैसन हेतु । ९. बी० खेतु । १०. बी० कहाइ कबीर सुनहु संती भाई । इहे संधि कहि खिरलें पाई ॥

(१५) भेख आडंबर

[१७०]

चलहु^१ बिचारी रहहु^२ संभारी^३ कहता हूँ ज पुकारी^४ ।
 रांस नांस अंतरगति नाहीं तौ जनम जुवा ज्यों हारी ॥८॥^५
 झूंड मुड़ाइ फूलि का^६ बैठे काननि^७ पहिरि संजुसा ।
 बाहरि देह खेह लपटांनीं^८ भीतरि तौ घर भूसा^९ ॥१॥
 गालिब [गारव (= गर्व ?)] नगरी गांउं बसाया^{१०} हाम^{११} काम हंकारी^{१२} ।
 घालि रसरिया जब जम खेचै^{१३} तब का पति रहै पुम्हारी^{१४} ॥२॥
 छांड़ि कपूर गांठि बिल बांधा मूल हुवा^{१५} नहि लाहा ।^{१६}
 मेरै रांस की अमै पद नगरी कहे कबीर जुलाहा ॥३॥^{१७}

[१७१]

काया मोजसि^१ कौन गुना ।

घट^२ भीतरि है मलनां^३ ॥८॥^४

हिंदै कपट मुखि ग्यानीं^५ । भूटै^६ कहा बिलोवसि^७ पानीं^८ ॥१॥^९
 तूवीं^{१०} अठसठि तीरथि न्हाई । कडुवापन^{११} तऊ^{१२} न जाई ॥२॥^{१३}
 कहै कबीर बिचारी । भवसागर तारि सुरारी ॥३॥

[१७०]

दा० गोड़ी १३४, नि० गोड़ी १४२, बी० क० ७, स० १६-१—
 १. दा१ दा२ चली । २. दा१ दा२ रही । ३. बी० रहहु संभारे (उर्दू मूल) रांस बिचारे (उर्दू मूल) ।
 ४. बी० पुकारे (उर्दू मूल) । ५. बी० में प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'हो' लगा है ।
 ६. बी० में यह पंक्ति नहीं है । ७. बी० कै । ८. बी० मुद्रा । ९. बी० तेहि ऊपर कछु छार लपटे ।
 १०. बी० भितर भितर घर भूसा हो । ११. बी० गांव बसतु है गरव भारती (बी० गर्भ भारती) ।
 १२. बी० बास, बी० नाम (उर्दू मूल) । १३. बी० हंकारा हो (बी० हंकारी हो) ।
 १४. बी० मोहन जहां तहां ले जइ है । १५. बी० नहि पति रहे तोहारा (बी० तोहारी) हो ।
 १६. नि० न हुआ । १७-१८. बी० का पाठ है—

मांस भंभरिया वसै जो जानै जन होइहै सो थीरा हो ।

निरमै हूँ रहु गुरु की नगरिया सुख सोचै दास कबीरा हो ॥

[१७१]

दा० नि० सोरठि १६, गु० सोरठि ८, स० १५-७—

१. दा० नि० स० मंजसि । २. गु० जउ घट, नि० तेरे घट । ३. नि० मैले घणा । ४. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : बाहरि ला मलि जल सूं पोई । भीतरि ला मलि काहे खोई ॥ जे वं हिरदै मेला होवै । तौ तूं बाहरि सूं का धोवै ॥
 ५. दा० नि० जो तूं हिरदै सुख मन ग्यानीं, नि० जे तूं अंतरि सुधि बुधि ग्यानीं । ६. दा० नि० स० तौ । ७. दा० नि० स० भुकोले । ८. नि० में अतिरिक्त : कइई तूवीं काटि लई । लै चेला कै हाथि दई ॥ ९. गु० लउकी । १०. गु० कउरापन (उर्दू मूल) । ११. नि० अजहूँ । १२. नि० में इसके बाद—

तूवीं का कडुवापन न गया । तौ तूं निमल कैसे भया ॥

कहै कबीर मैला सब कोई । रांस भजे सो निमल होई ॥

[१७२]

आसन पवन दूरि करि रजरा^१ ।छांड़ि कपट नित^२ हरि भलि बौरा ॥टेक॥१का^१ सौंगी मुद्रा चमकाएं । का^२ बिभूति सब अंग लगाएं ॥१॥

सो हिंदू सो भूतलमांन । जिसका दुरुस रहै ईमांन ॥२॥

सो जोगी जो धरै उनमनीं ध्यान^३ । सो ब्रह्मा जो कथै ब्रह्म गियांन ॥३॥^४

कहै कबीर कछु आन न कीजै । राम नाम जपि लाहा लीजै ॥४॥

[१७३]

सार सुख पाइअै रे^१ ।^२रंगि रवहु^३ आतमांराम^४ ॥टेक॥^५बनहि^६ बसैं का कीजिअै^७ जौ मन नहीं तजै बिकार^८ ।घर बन समसरि^९ जिनि किया ते बिरला^{१०} संसार ॥१॥का जटा भसम लेपन किए^{११} कहा गुफा में बास ।मन जीतैं^{१२} जग जीतिअै जौ बिलिया तैं रहै उदास^{१३} ॥२॥काजल^{१४} देइ सभै कोई चलि^{१५} चाहन मांहि बिनांन ।^{१६}जिनि लोइन मन मोहिया^{१७} ते लोइन परवांन ॥३॥^{१८}

[१७२]

दा० मेरू ३१, नि० मेरू ३०, गु० बिलावलु ८, स० १६-२—

१. दा१ दा२ नि० आसन पवन किये दिदु रहू रे (विपरीत अर्थ), गु० आसनु पवन दूरि करि बवरे । २. दा३ वा४ स० नट (उर्दू मूल) । ३. दा१ दा२ नि० मन का मेल छांड़ि दे बौरा । ४. गु० में यह और इसके आगे की पंक्तियाँ नहीं हैं, गु० में ऊपर की पहली पंक्ति के अतिरिक्त केवल दो पंक्तियाँ और हैं—हंडा मुद्रा खिया आधारी । भ्रम के भाइ भवै भेलधारी ॥

जिह तू जाचहि सो त्रिभवन भोगी । कहि कबीर केसी जगि जोगी ॥

५. दा१ दा२ नि० क्या । ६. दा१ दा२ नि० काजी सो जानै रहिमांन । ७. दा१ दा२ नि० में दोनों चरण परस्पर स्थानांतरित ।

[१७३]

दा० नि० केदारो १, गु० मारू २, स० १६-३—

१. गु० पाइअै रामा । २. दा० नि० रमहु । ३. गु० आतम राम । ४. गु० में यह पंक्तियाँ चौथी के बाद हैं । ५. दा० नि० बनह (उर्दू मूल) । ६. गु० किउ पाइअै । ७. गु० जउ लउ मनहु न तजहि बिकार । ८. दा० नि० स० तत समि । ९. गु० पूरे । १०. गु० कीआ । ११. दा० नि० स० जीत्यां (राज० मूल) । १२. गु० जाते विषया ते होइ उदासु । १३. गु० अंजनु । १४. गु० टुकु । १५. गु० गिआन अंजनु जिहि पाइअै । १६-१७. दा० नि० स० में यह दोनों पंक्तियाँ यहाँ नहीं हैं, एक अन्य पद (दे० दा० गौड़ी २८-२, ३) में हैं । यहाँ दा० तथा स० में : सहज भाइ जे उपजे ताका किसान अभिमान । आपा पर सम चीनिअै तब मिलै आतमांराम ॥ नि० में इनके स्थान पर : कुंभा बांध्यां जल रहे जल विन कुंभ न होइ । ग्यानां बांध्यां मन रहे

कहै कबीर क्रिया भई^{१८} गुर ग्यान कहा^{१९} समझाइ ।
हरिदै स्त्री हरि भेटिया^{२०} अब मन अनत न जाइ ॥

[१७४]

का नांगें का बांधें चांम ।

जौ^१ नहि चीन्हसि आतमरांम ॥टेक॥

नांगे फिरें जोग जी होई । बन का मिरग मुकति गया कोई^२ ॥१॥^३
सूंड मुड़ाएं जी सिधि होई^४ । सरगहि^५ भेंड़ न पहुंची कोई^६ ॥२॥
बिंदु राखि जौ तरिअै भाई^७ । तौ खुसरै बयूं न^८ परम गति पाई ॥३॥^९
कहै^{१०} कबीर सुनौं रे भाई^{११} । रांम नांम बिन किन सिधि^{१२} पाई ॥४॥

[१७५]

साधौ भगति भेख तैं न्यारी ।

मन पवनां पांचौं बसि कीया^२ तिन या राह संवारी^३ ॥टेक॥

काया कोट मैं अमर न रहनां^४ कागद का घर कीन्हां ।

माला तिलक तिरचौं नहि कोई परम तत नहि चीन्हां^५ ॥१॥

गोरखनाथ न मुद्रा पहिरी मस्तक^६ नहीं मुड़ाया ।

ऐसा भगत भया भू^७ ऊपरि गुर पै राज छुड़ाया ॥२॥

प्रभवास मैं सुमिरन कीन्हां^८ सुखदेव कौन सु^९ माला ।^{१०}

कहै कबीर सब भेख भुलांनां^{११} भूल^{१२} छांड़ि गहि डाला ॥३॥^{१३}

गुर बिन ग्यानं न होइ ॥ १८. गुं कहि कबीर अब जानिआ । १९. गुं दीआ । २०. गुं अंतरगति हरि भेटिआ ।

[१७४]

दा० गोड़ी १३२, नि० गोड़ी १३९, गुं गउड़ी ४, स० १३-५—

१. गुं जब । २. गुं नगन फिरत जौ पाईअें जोगु । ३. गुं में यह पंक्ति सब से पहले है ।
बन का मिरग मुकति सभु हांगु (?) । ४. गुं पाई । ५. दा० श्रगहि, दा३ अंगें । ६. गुं
मुकती भेड़ न गईआ काई । ७. दा० नि० स० जे खेलें भाई । ८. दा० नि० स० कील ।
९. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त : पढ़ें गुनें उपजै अहंकारा । अबधर दूबे वार न पारा ।
१०. गुं कहु । ११. गुं नर भाई । १२. गुं गति ।

[१७५]

दा० ५ गोड़ी ७६, नि० आसावरी १३१, शबे० (३) भेद १५ (अशंत) :—

१. शबे० में आरंभ की छः पंक्तियाँ नहीं हैं । दा० पाँची करि सींगी । ३. नि० सुधारी ।
४. नि० वारु का घरवा में बैठे (पुन० तुल० नि० केदारी १२-९ : वारु के घरवा में बैसे चेतत नांछि
अयांनां ।) ५. नि० विनां परम तत चीन्हां । ६. नि० मस्तग । ७. दा० नी । ८. नि०
कीन्हां । ९. नि० सुखदेव कैसी । १०. नि० कहै कबीर सब भेख भुलांनां । ११. दा० पेड़ ।
१२-१३. तुल० शबे० (३) भेद १५—

[१७६]

गुणों का भेद न्यारों न्यारों ^१कोई जानै जाननहारों ॥ टेक ॥ ^२सोइ गजराज राजकुल ^३ मंडन ^४ जाकै मस्तकि मोती ।और सकल ए ^५ भार लदाऊ ^६ महिली ^७ सुत ^८ कै गोती ॥ ३ ॥सोई भुवंग जाकै मस्तकि मनि है ^९ जोति उजालै खेलै ।और सबै सावन कै भुनगा ^{१०} जगत पगां तलि पेलै ^{११} ॥ २ ॥सोई सुमेर उदात उजागर ^{१२} जामैं धातु निवासा । ^{१३}और सकल पाखान बराबरि टांकी ^{१४} अग्निनि प्रकासा ॥ ३ ॥ ^{१५}सोइ तिरिया जाकै पातिव्रत ^{१६} आगयांकार न लोपै ।और सकल ए कूकरि सूकरि ^{१७} सुंदरि नाउं न ओपै ^{१८} ॥ ४ ॥कहै कबीर सोई जन गरुवा ^{१९} राम भगति व्रतधारी ^{२०} ।और सकल ए पेट भरन कौं बहु विधि बांनं धारी ॥ ५ ॥ ^{२१}

अवधू जानि राखु मन ठीरा ।

काहै को बाहर दौरा ॥ टेक ॥

तोमें गिरिवर तोमें तरवर तोमें रवि ओ चंदा ।

तारा मंडल तोहि बट भीतर तोमें सात समुंदा ।

ममता भेटि पहिनि मन सुद्रा ब्रह्म विभूति चढ़ावो ।

उलटा पवन जटा करि जोगी अनहद नाद बजावो ॥

सील कै पत्र छमा कै भोली आसन दृढ़ करि कीजै ।

अनहद सबद होत धुन अंतर तहां अरध चित दीजै ॥

सुखदेव ध्यान धर्यो बट भीतर तहां हती कहं माला ।

कहै कबीर भेल सोइ भूला मूल छोड़ि गहि डाला ॥

शवे० की आरंभिक आठ पंक्तियाँ दा० नि० में अन्यत्र मिलती हैं और वहाँ मूल रूप में स्वीकृत की गयी हैं। किंतु अंतिम दो पंक्तियाँ वहाँ पर प्रसंग के उतनी अनुकूल नहीं जितनी यहाँ हैं, अतः यहाँ के लिए स्वीकृत की गयी हैं।

[१७६]

नि० आसावरी १०८, स० १४-४, शक० गौरी १८—

१-२ स० संती दुनियां भेल मुलान्ती । अपनी वस्तु न काहू जानी ॥ ३. स० सति कुल ।
 ४. शक० नंदन (उटूँ मूल ?) । ५. शक० सब (पुन० 'सकल' के कारण) । ६. शक० लदनियां ।
 ७. नि० स० महकी (उटूँ मूल) । ८. शक० सहिपासुर । ९. स० मस्तकि मणि वासा ।
 १०. नि० शक० कीड़ा (सरलकारण) । ११. शक० मेलै । १२. नि० सोइ गिरि मेर सुमेर (पुन०)
 बराबरि, शक० सोइ सुमेर जो उदित उजागर । १३. नि० टांकी । १४-१५. शक० में यह दोनों
 पंक्तियाँ ऊपर की तीसरी पंक्ति के पूर्व ही आ जाती हैं । १६. नि० पतिव्रता सोई पिवकूँ मानै,
 शक० सोइ पतिव्रता पिया रंग राते । १७. नि० और सबै ही स्वान मंजारी, शक० और सकल
 सब (पुन०) श्वान सूकरी । १८. शक० होवै । १९. नि० सोई साध सिरमणि । २०. नि०
 शक० राम (शक० नाम) भजन अधिकारी । २१. नि० शक० और सकल साहब को (?) बांनं
 देखौ हृदय विचारी ।

(१६) भरम बिधूसन

[१७७]

अल्लह राम जिऊं तेरे नाईं ।

बंदे ऊपरि मिहरि करौ मेरे साईं^२ । टेक ॥

क्या^१ ले माटी (मूड़ी ?) भुइं सों मारें^३ क्या^४ जल देह न्हाए^५ ।

खून करै मिसकीन कहावै^६ गुनही^७ रहै छिपाए^८ ॥१॥

क्या^९ ऊजू^{१०} जय मंजन^{११} कोए^{१२} क्या^{१३} मसीति^{१४} सिरु नाए^{१५} ।

दिल माहि कपट निवाज गुजारै^{१६} क्या^{१७} हज कावै^{१८} जाए^{१९} ॥२॥

बांझन^{२०} ग्यारसि^{२१} करै चौबीसों काजी महं (माह ?) रमजांनां^{२२} ॥३॥

ग्यारह मास कहौ क्यूं खाली^{२३} एकहि माहि नियांनां^{२४} ॥३॥

जौ रे खुदाइ मसीति बसतु है^{२५} और मुलुक^{२६} किस केरा ।

तीरथि मूरति^{२७} राम^{२८} निवासी^{२९} दुहु माहि किनहुं^{३०} न हेरा ॥४॥

पूरब दिसा^{३१} हरी का बासा पच्छिमि अलह मुकांमां ।

दिल माहि खोजि दिलै दिलि खोजहु^{३२} इहई रहौमां रामां^{३३} ॥५॥

[१७७]

दा० आसावरी ५८, नि० आसावरी ५२, गु० विभास० २, बी० १७, स० ७७-२—

१. बी० जीव, गु० जीवहु । २. दा३ बंदे परि करौ मिहरि मेरे साईं, गु० तू करि मिहरामति साईं, बी० जन पर (बीभ० के) मेहर होहु तुम साईं । ३. दा३ क्या ले माटी में (उर्दू मूल) सो पटकी, नि० क्या ले माटी भंय संवारे, बी० का मूड़ी भूमी सिर नाए (पुनरुक्ति) । ४. बी० का (बीभ० क्या) । ५. बी० नहाए । ६. दा० नि० स० जोर करै मिसकीन सतावै । ७. बी० औगुन (बीभ० गुनही) । ८-९. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं । १०. दा१ तूज (पंजाबी मूल) । ११. दा३ सजम । १२. गु० कहा उड़ीसे मजनु कीआ । १३. बी० महजिद । १४. दा० नि० रोजा करै निमाज गुजारे, बी० हिरदया कपट निमाज गुजारे । १५. बी० मक्का । १६. बी० हिंदू, गु० ब्रह्मन । १७. गु० गिआस, बी० एकादसि । १८. नि० काजी मिहरमुदांनां (उर्दू मूल), बी० रोजा मूसलमाना । १९. बी० (बाराबंकी) हिंदू एकादसी चौबीसों रोजा मुसलिम तीस बनाए । २०. दा१ दा२ जुदे क्यूं कोए, गु० पास कै राखे, बी० कहो किन्ह टारा । २१. दा० नि० स० एकहि माहि समांनां, गु० एकै माहि निधाना, बी० ये केहि माहि समाए (बीभ० एकहि माहि नियांनां) । २२. गु० अलहु एकु मसीति बसतु है, बी० जो खोदाय महजीदि बसतु है । २३. दा० नि० मुलिक (उर्दू मूल), गु० मुलखु । २४. बी० मूरति महं, गु० हिंदू मूरति । २५. गु० नाम (हिंदी मूल) । २६. दा१ दा२ निवासा, दा३ निवाजा । २७. बी० काहु, गु० ततु । २८. गु० दखन देस (दक्षिण दिशा कदाचित् पंजाब की दृष्टि से दी गयी है) । २९. दा० नि० स० भीतरि । ३०. दा१ दा२ इहां राम रहि-मांनां (तुकहीन), गु० एही ठरर सुकामा, बी० इहई करीमा रामा । ३१. बी० में इसके बाद अतिरिक्त : वेद कितेव कहो किन भूठा भूठा जो न विचारे । सम घट एक एक कै लेखा मै दूजा कै सारै ॥ [तुल० दा० नि० गोही ६२-४, ६ तथा गु० विभास० ४-१, २ तथा : वेद कितेव कहो क्यूं (गु० नि० मूठा भूठा जो न विचारे । सब घट एक एक करे जो न भा दूजा करे]

जेते औरति मरद उपाने^{३२} सो सभ^{३३} रूप तुम्हारा ।
कबीर पुंगरा^{३४} अलह राम का^{३५} सोइ^{३६} गुर पीर हमारा ॥६॥^{३७}

[१७८]

काजी तैं कवन^१ कतेब बखानों^२ ।

पढ़त पढ़त केते दिन बीते^३ गति^४ एकौ नहि जानी^५ ॥टेक॥

सकति सनेह^६ पकरि करि सुनति^७ मैं न बदउंगा भाई ।^८

जौ रे खुदाइ तुरक मोहिं करता^९ तौ आपहिं कटि किन जाई^{१०} ॥१॥

सुनति कराइ तुरक जौ होना^{११} तौ औरति कौ^{१२} का कहिए^{१३} ।

अरध सरीरी नारि न छूटे^{१४} तातैं^{१५} हिंदू रहिए^{१६} ॥२॥^{१७}

हिंदू तुरक कहां तैं आए किन एह राह चलाई ।^{१८}

^{१८}दिल महिं खोजि देखि खोजादे भिस्ति कहां तैं आई ॥३॥^{२०}

छाड़ि कतेब राम भजु बउरे^{२१} जुलुम^{२२} करत है भारी^{२३} ।

कबीरै पकरी टेक राम की^{२४} तुरक रहे पचि हारी^{२५} ॥४॥

मारे ॥ (गु० जउ सभ महि एकु खुदाइ कहत हउ तउ किउ सुरगां मारे) ॥ ३२. गु० एते अउरत मरदा साज, दा० नि० जेता औरति मरदां कहिए । ३३. दा१ दा२ सब मैं, दा३ यह सब, गु० ए सभ । ३४. दा१ दा२ पंगुड़ा, बी० पंगरा । ३५. गु० राम अलह का । ३६. दा० नि० स० हरि, गु० सभ । ३७. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : कहतु कबीर सुनहु नर नरवै परहु एक कां सरना । केवल नामु जपहु रे प्रानी तबही निहचै तरना ॥

[१७८]

दा० गौड़ी ५१, नि० गौड़ी ६२, गु० आसा ८, बी० ८५, स० ७४-८—

१. दा० नि० स० काजी कौन । २. दा० नि० स० बखानें (उर्दू मूल) । ३. गु० पढ़त गुनत जैसे सभ मारे, बी० भंखत बकत रहहु निसि वासर । ४. दा३ दा४ नि० मति (हिंदी मूल) । ५. गु० किनहु खबरि न जानी । ६. दा१ दा२ से नेह । ७. गु० सकति सनेहु करि सुनति करिए, बी० सकि अनुमाने सुनति करतु है । ८. दा० नि० स० यह न बहूँ रे भाई । ९. गु० मोहिं तुरक करेगा, बी० तेरी सुनति करतु है । १०. गु० आपन हो कटि जाई, बी० तो आपहिं कटि क्यों न आई । ११. गु० होइगा । १२. दा० नि० स० सौं । १३. गु० करीअ । १४. बी० बखानी । १५. दा० नि० स० आया । १६. नि० कहिए (पुन०) । १७. बी० में इसके बाद अतिरिक्त : पहिरि जनेउ जो ब्राह्मण होना मेहरि क्या पहिराया । वो तो जनम की सूद्रिन परसै तुम पांडे क्यों खाया ॥ १८. बी० दिल में खोजि दिलही में देखो भिस्ति कहां किन पाया । गु० दिल महि सोचि विचारि कवादे भिस्ति दोजक किनि पाई । १९-२०. दा० नि० स० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं; गु० में ऊपर की पहली पंक्ति के पूर्व हैं । २१. दा० नि० स० छाड़ि कतेब राम कहि काजी, बी० कहाँ कबीर सुनो ही संतो, बी० छाड़ि पसार राम भजु बउरे । २२. दा० नि० स० खून, बी० जोर । २३. बी० भाई । २४. दा१ दा२ स० पकरी टेक कबीर भगति की, दा३ ही टेक भगति की कबीरै, बी० कबीरन ओट राम की पकरी । २५. दा० नि० काजी है तख मारी, बी० उत चले पछ हारी ।

[१७६]

पंडित^१ बाद बदै सो^२ भूठा ।

राम कहें^३ दुनियां गति पावै^४ खांड कहें^५ मुख मोठा ॥ टेक ॥

पावक कहें^६ पांव जे दाभै^७ जल कहें^८ त्रिखा बुझाई ।

भोजन कहें^९ भूख जे भाजै तौ सब कोई^{१०} तिरि जाई ॥ १॥

नर कै संगि^{११} सुवा हरि^{१२} बोले हरि^{१३} परताप न जानैं ।

जौ कबहुं उड़ि जाइ जंगल में बहुरि सुरति नहिं आनै^{१४} ॥ २॥

बिनु देखैं बिनु अरस परस बिनु नाम लिऐ^{१५} का होई^{१६} ।

धन के कहें^{१७} धनिक जौ होई^{१८} तौ निरधन रहै न कोई ॥ ३॥

सांची प्रीति बिखै माया सौं हरि भगतन सौं हांसी^{१९} ।

कहै कबीर प्रेम नहिं उपजै^{२०} तौ बांधे जमपुर जासी ॥ ४॥

[१८०]

जौ पै बीज रूप भगवान^१ ।

तौ पंडित का कथसि गियांन^२ ॥ टेक ॥

नहिं तन नहिं मन नहिं हंकार^३ । नहिं सत रज तम^४ तीन प्रकार ॥ १॥

बिख अंछित फर फरे अनेक । वेद अरु बोध कहैं तरु एक^५ ॥ २॥

कहै कबीर इहै मन मांतां^६ । कोधों छूट^७ कवन अरुभानां^८ ॥ ३॥

[१८१]

असा भेद^१ बिगूचनि^२ भारी ।

वेद कतेव दीन अरु दुनियां^३ कौन^४ पुरिख^५ कौन^६ नारी ॥ टेक ॥

[१७६]

दा० गौड़ी ४०, नि० गौड़ी ४४, स० ८६-२, बी० ४०, श्वे० (३) मिश्रित २२—

१. दा२ पिढत (उर्दू मूल) । २. दा१ स० वदंते, श्वे० वेद से । ३. दा० नि० स० कथां (राज० मूल) । ४. बी० जो जगत गति पावै, श० जगत तरि जाई । ५. बी० डाहै, श्वे० जरई । ६. बी० श्वे० तौ दुनियां । ७. दा० नि० नर कै साथि । ८. श्वे० आइ (राधा० प्रभाव) । ९. श्वे० गुरु परताप (राधा० प्रभाव) । १०. बी० तो हरि सुरति न आनै, दा० नि० बहुरि न सुरतै आनां । ११. नि० राम कथां । १२. नि० माया कथां माया सापजै (?), बी० धन के कहै धनिक जो होखे (पूर्वी प्रभाव) । १३-१४ दा० तथा स० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं, किंतु नि० बी० तथा श्वे० में हैं । १५. बी० फांसी । १६. बी० कहहि कबीर एक राम भजे बिनु, श्वे० कहै कबीर गुरु के बेमुख (राधा० प्रभाव) ।

[१८०]

दा० गौड़ी ३८, नि० गौड़ी ४२, बी० ६७, स० ७५-२—

१. बी० भगवान । २. बी० का पूछहु आन । ३. बी० कहं मन कहं बुधि कहं हंकार (बी० अंकार) । ४. बी० सत रज तम गुन । ५. दा३ बोध वेद कहैं तरु एक, बी० बोधा (बी० बउधा) वेद कहैं तरवे का । ६. बी० कहहि कबीर तैं में का जान, दा२ कहहि कबीर मान उरभान । ७. दा० नि० स० कहि धू । ८. बी० छूटल । ९. बी० को उरभान ।

[१८१]

दा० गौड़ी ५७, नि० गौड़ी ६०, बी० ७५, स० ७५-४—

१. बी० भर्म । २. बी० बिगूचन । ३. बी० दोजख । ४. बी० को । ५. बी० पुरखा । ६. दा०

एक रुधिर^१ एक मल मूत्र^२ एक चांम एक गूदा ।
 एक बूंद तैं सृष्टि रची है^३ कौन^४ बाह्यन कौन^५ सूदा ॥१॥
 माटी का पिंड सहज उतपना^६ नाद [अ] रु बिंद समानां^७ ॥१२
 बिनसि गया तैं का नांव धरिहौ पड़ि गुनि मरम न जानां^८ ॥२॥^{१३}
 रज गुन ब्रह्मां तम गुन संकर सत गुन हरि है सोई^९ ॥१४
 कहै कबीर एक राम जपहु रे^{१०} हिंदू तुरुक न कोई ॥३॥

[१८२]

जो पै^१ करता बरन बिचारै^२ ।तौ जनतैं^३ तीनि डांडि किन सारै^४ ॥ टेक ॥^५

जे तूं बाभन बभनीं जाया^६ । तौ आन बाट होइ^७ काहे न आया^८ ॥१॥
 जे तूं^९ तुरुक तुरुकिनीं जाया । तौ भीतरि खतनां क्यूं न कराया^{१०} ॥२॥^{११}
 कहै कबीर मद्धिम नहिं कोई । सो मद्धिम जा सुखि राम न होई ॥३॥^{१२}

[१८३]

मुल्ला^१ कहहु निआउ^२ खुदाई ।इहि बिधि जीव का भरम न जाई^३ ॥ टेक ॥

नि० स० बूंद (पुन० आगे की पंक्ति में भी 'बूंद' के कारण) । ७. बी० हाड़ मल मूत्रा । ८. दा० नि० स० एक जोति तैं सब उतपनां [पुन० आगे की पंक्ति में 'सहज उतपनां'] । इसके अतिरिक्त ज्योति अथवा नूर से सृष्टि की उत्पत्ति मुसलमानी धर्म में मानी गयी है । ब्राह्मण-शूद्र के प्रसंग में पौराणिक सृष्टि-प्रक्रिया का आधार ही अधिक उपयुक्त लगता है, अतः बी० का पाठ यहाँ स्वीकृत किया गया है ।] । ९. बी० माटी के घट साज बनाया । १०. बी० नादे बिंद समाना । ११. बी० घट दिनसे का नाम घरहुगे अहमक खोज भुलाना । १२-१३. बी० में यह दोनों पंक्तियाँ दूसरी पंक्ति के बाद आती हैं । १४. बी० सत्तगुना हरि सोई । १५. बी० कहहि कबीर राम रमि रहिए ।

[१८२]

दा० गोड़ी ४१, नि० गोड़ी ४५, बी० २० ६२, स० ७५-१०—
 १. बी० तोहि । २. बी० बिचारा । ३. दा० दार जनमत, नि० जन्म तैं । ४. बी० अनुसारा (उर्दू मूल) । ५. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त : उतपति बिंद कहां तैं आया । जोति घरी अरु लागी माया । नहीं को ऊंचा नहीं को नीचा । जाका पिंड ताही का सींचा ॥ (तुल० ऊपर की अंतिम पंक्ति) ; बी० की अतिरिक्त पंक्ति : जनमत सूद्र सुए पुनि सूद्रा । कृतम जनेउ घालि जग दुंद्रा ॥ ६. बी० जो तुम ब्राह्मन ब्राह्मनि जाए । ७. बी० अवर राह ते । ८. तुल० गु० गउड़ी ७५, ६ यथा : जी तूं ब्राह्मण ब्रह्मणी जाइआ । तउ आन बाट काहे नही आइआ ॥ ९. बी० तुम । १०. बी० पेटहि काहे न सुनति कराए । ११. बी० में इसके बाद अतिरिक्त : कारी पियरी द्रुहहु गाई । ताकर दूध देहु बिलगाई ॥ १२. बी० छांहु कपट नल अधिक सयानी । कहहि कबीर भजु सारंगपानी ॥

[१८३]

दा० गोड़ी ६२, नि० गोड़ी ६५, गु० विमास० ४, स० ७६-१—
 १. दा० सुलना । २. दा० नि० स० करि ल्यौ । ३. गु० तेरे मन का भरम न जाई । ४. दा०

सरजीव आनै^४ देह बिनासै^५ माटी^६ बिसमिल कीआ^७ ।
 जोति सरूपी हाथि न आया^८ कहीं हलाल क्यूं कीआ^९ ॥१॥
 वेद कतेव कहहु मत भूठै^{१०} भूठा जो न बिचारे^{११} ।
 सभ घटि एक एक करि लेखै^{१२} मै^{१३} दूजा करि मारै^{१४} ॥२॥
 कुकड़ी मारै बकरी मारै हक्क हक्क करि बोलै^{१५} ।
 सबै जीव साईं के प्यारे उबरहुगे किस बोलै ॥३॥
 दिल^{१६} नापाक^{१७} पाक नहि चीन्हां^{१८} तिसकी मरम न जानां^{१९} ।
 कहै कबीर भिसति छिटकाई^{२०} (छुटकाई?) दोजग ही^{२१} मन मानां ॥४॥
 [१८४]

मीयां तुम्ह सौं बोल्यां^२ बनि^३ नहि आवै ।
 हम मसकीन खुदाई बंदे तुम्ह राजस मनि भावै ॥ टेक ॥
 अल्लह अवलि दीन कौ साहिब जोर नहीं फुरमाया^३ ।
 मुरसिद पीर तुम्हारै है को कहीं कहां तैं आया ॥१॥
 रोजा करै^४ निवाज गुजारै^५ कलमें^६ भिस्ति न होई ।
 सत्तरि काबे घट ही भीतरि^७ जे करि जानैं कोई ॥२॥
 खसम पिछानि^८ तरस करि जिय मैं माल^९ मनीं^{१०} (मनै?) करि फीकी ।
 आपा जानि^{११} और^{१२} कौ जानैं तव होइ भिस्ति सरोकी ॥३॥

सरजी आनै, गु० पकरि जाउ आना । ५. गु० बिनासी (उर्दू मूल) । ६. गु० माटी कउ ।
 ७. दा० नि० स० कीता (पंजाबी मूल) । ८. गु० जोति सरूप अनाहत लागी । ९. दा०
 नि० स० क्यूं भूठा । १०. दा० नि० स० जानै । ११. दा० नि० स० भी (उर्दू मूल) ।
 १२. गु० जउ सभ महि एक खुदाई कहत हउ तउ किंउ मुरगी मारै । १३-१४. तुल० बी० १७-
 १२, १३ यथा : वेद कितेव कहो किन भूठा भूठा जो न बिचारे । सभ घट एक एक कै लेखै
 मै दूजा कै मारै । १५-१६. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं, इनके स्थान पर : किआ उजु
 पाकु कीआ मुहु घोइआ किआ मसीति सिह लाइआ । जउ दिल महि कपट निवाज गुजारहु
 किआ हज कावै जाइआ । [पुनरुक्ति-तुल० गु० २२५-१, १० : कहा उडीमे मजनु कीआ
 किआ मसीति सिह नाएँ । दिल महि कपटु निवाज गुजारै किआ हज कावै जाएँ । १७. गु०
 तू । १८. दा० नि० स० नहि पाक । १९. गु० सूक्तिआ । २०. दा१ उसदा खोज न जानां,
 दा२ नि० स० उसता खोज न जानां (पंजाबी मूल) । २१. गु० कहि कबीर भिसति ते चूका ।
 २२. गु० दोजक सिउ । २३. दा० नि० गु० में इस पंक्ति की पुनरावृत्ति-तुल० दा० आसावरी
 ५४-१०, नि० आसावरी ४८-१० यथा : कहै कबीर भिसति छिटकाई दोजग ही मन मानां । तथा
 गु० आसा १७-११ यथा : कहै कबीर भिसति छोटि करि दोजक सिउ मन माना ।

[१८४]

दा० आसावरी ५४, नि० आसावरी ४८, गु० आसा १७. स० ७६-२—
 १. गु० काजी बोलिआ । २. नि० बिन (उर्दू मूल) । ३. गु० फुरमावै । ४. गु० में यह
 पंक्ति नहीं है । ५. गु० घरै । ६. नि० गुदारै । ७. गु० कलमा । ८. दा० नि० स० इक दिल
 भीतरि । ९. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : निवाज सोई जो निवाज बिचारे कलमा अकलहि
 जानै । १०. गु० पकानै । ११. गु० मारि ।
 १२. गु० मरी । १३. गु० आप जनाइ । १४. दा० नि० साई । १५. दा१ दा२ सब में ।

माटी एक भेख धरि नांनां तामैं^{१५} ब्रह्म समानां^{१६}।
कहै कबीरा भिस्ति छोड़ि करि^{१७} दोजग ही^{१८} मन मानां ॥४॥

[१८५]

लोका जानि^१ न भूलहु भाई ।

खालिक खलक खलक महि^२ खालिक सब घटि रहा समाई^३ ॥टेका॥

अव्वलि अल्लह नूर उपाया कुदरति के सभ बंदे^४ ।

एक^५ नूर तैं सब जग कीआ^६ कौन भले कौन भंदे^७ ॥१॥

ता अल्ला की गति नहिं जानी^८ गुर गुड़ दीन्हां मीठा ।

कहै कबीर मैं पूरा पाया सब घटि साहिब दीठा^९ ॥२॥^{११}

[१८६]

जिअ रे^१ जाहिगा मैं जानां ।^२

जत जत देखउं बहुरि न पेखउं^३ संगि माया^४ लपटांनां^५ ॥ टेका॥

बलकल बस्तर^६ किता पहिरवा^७ क्या बन मद्धे बासा^८ ।

कहा सुगध रे पाहन पूजै^९ क्या जल डारें गाता^{१०} ॥१॥

ग्यानीं ध्यानीं बहु उपदेसी इहु जगु सगलो धंधा ।^{११}

कहं कबीर इक रांम नांम बिनु या जगु माया अंधा^{१२} ॥२॥

१६. गु० पछाना । १७. दा० नि० स० कहै कबीर भिसति छिटकाई । १८. गु० दोजक सिउ ।

[१८५]

दा० गौड़ी ५१, नि० गौड़ी ५५, गु० चिमास० ३, स० ७५-२—

१. गु० भरमि । २. दा० नि० स० में । ३. गु० पूरि रह्यो खब ठाई । ४. दा० नि० स० अल्ला एकै नूर उपनाया (दा३ नि० स० निपाया) ताकी कैसी निदा । ५. दा० नि० स० ता । ६. गु० उपजिआ । ७. दा० नि० स० कौन भला कौन मंदा । ८. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : माटी एक अने^१ भाति करि साजी साजनहारै । ना कछु पोच माटी के भांडे ना कछु पोच कुंभारै ॥ सभ महि सचा एको सोई तिसका कीआ ससु कछु होई । इकुम पछानै सु एको जानै बंदा कहिअै सोई ॥ ९. गु० अलहु अलखु न जाई लखिआ । १०. गु० कहि कबीर मेरी संका नासी सरब निरंजनु दीठा । ११. गु० में इस पद की प्रथम दोनों पंक्तियाँ ऊपर की चौथी पंक्ति के बाद आती हैं ।

[१८६]

दा० गौड़ी ८८, नि० गौड़ी ९१, गु० गौड़ी ६०—

१. दा० जियरा, नि० जीवरा । २. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : अविगनु समझु इआना । ३. दा० नि० जो देख्या सो बहुरि न पेख्या । ४. दा० नि० माटी सू । ५. दा३ मन मानां । ६. दा१ दा२ बाकल बसतर, गु० विपल (नागरी मूल) वसत्र । ७. गु० केते हे पहिरे । ८. दा० नि० का तप बनखंडि बासा । ९. गु० कहा भइआ नर देवा घोखे । १०. गु० बोरीओ गिआता । ११-१२. दा० नि० में अंतिम दोनों पंक्तियों का पाठ है : कहै कबीर सुर मुनि उपदेसा लोका पंथि लगाई । सुनीं सत सुनिरो भगत जन हरि बिन जनम गंवाई । १३. गु० में प्रथम दो पंक्तियाँ चौथी के छठे आंश Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[१८७]

'भूली मालिनीं है एउ ।

सतिगुरु जागता है देउ ॥ टेक ॥^२पाती तोरै मालिनीं^३ पाती पाती जीउ ।जिसु^४ मूरति^५ कौ पाती तोरै सो मूरति^५ निरजीउ ॥ १ ॥टांचनहारै टांचिया^६ दै छाती ऊपरि^७ पाउ ।जे तूं^८ मूरति सांचि^९ है तौ गढ़नहारै^{१०} खाउ ॥ २ ॥लाडू लावन लापसी^{११} पूजा चढ़ै अपार^{१२} ।पूजि पुजारा लै गया^{१३} दै^{१४} मूरति^{१५} कै मुहि छार ॥ ३ ॥पाती ब्रह्मां पुहुप^{१६} बिसनूं^{१७} मूत्र फल महादेव^{१८} ।^{२०}तीनि देव प्रतखि तोरहि^{१९} करहि किसकी सेव ॥ ४ ॥^{२१}मालिनि भूली जग भुलांनो हम भुलांनै नांहि ।^{२२}कहै कबीर हम रांम राखे क्रिया करि हरि राइ ॥ ५ ॥^{२३}

[१८८]

मेरी^१ जिभ्या^२ बिस्तु नैन नाराइन हिरदै बसहि^३ गोविदा ।^४जम दुवार जब लेखा मांगे^५ तब का कहसि^६ मुकुंदा ॥ टेक ॥^७तूं ब्राह्मन में कासी क जोलहा चीन्हि न मोर गियांनो^८ ।तैं सब मागे भूपति राजा मोरै रांम धियांनो ॥ १ ॥^९

[१८९]

दा० रांमकली ४६, नि० रांमकली ४५, गु० आसा १४—

१. गु० में यह पंक्ति ऊपर की तीसरी पंक्ति के बाद है । २. दा० नि० स० भूली मालिनीं है गोविंद जागता जगदेव । तूं करै किसकी सेव ॥ (पुन० तुल० पंक्ति १०) । ३. दा० नि० स० भूली मालिनि पाती तोड़ै (पुन० तुल० पंक्ति १ : भूली मालिनीं है एउ) । ४. दा० नि० स० जा । ५. गु० पाहन । ६. दा० गढ़नहारै चढ़ियो, गु० पाखान गढ़ि कै मूरति कान्ही । ७. नि० दै छाती परि, गु० दै कै छाती । ८. गु० एह । ९. दा० नि० स० सकल (?) । १०. दा० बढगहारै (राज० प्रभाव), गु० गढ़नहारै (पंजाबी प्रभाव) । ११. गु० मातु पहिति अरु लापसी । १२. गु० करकरा कासर । १३. गु० भोगनहारै भोगिया । १४. गु० इस । १५. दा० पावर । १६. दा० कली । १७. गु० ब्रह्म पाती बिसनु डारी । १८. दा० फूल फल महादेव (पुन०), दा० फूल (पुन०) मूल महादेव, दा० नि० स० मूल फल महादेव, गु० फूल संकर देउ । १९. दा० दा० नि० स० तीनि देवो एक मूरति, दा० तीनि मूरति एक देवा । २०-२१. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की चौथी पंक्ति के पूर्व आती हैं । २२-२३. दा० नि० स० एक न भूला दोह न भूला भूला सब संसारा । एक न भूला दास कबीरा जाके रांम अपारा ॥ (भिन्न बंद) ।

[१८८]

दा० आसावरी ४९, नि० आसावरी ४४, गु० आसा २३—

१. दा० मेरे (उर्दू मूल) । २. गु० जिहवा । ३. दा० नि० ज्यों । ४. गु० जब पृथ्वि बवरे । ५. दा० कहसि (उर्दू मूल) । ६. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ तीसरी तथा चौथी पंक्तियों के रूप में हैं । ७. गु० बुरखु मार गिआन । ८. गु० तुल० तब का कहसि मुकुंदा । ९. गु० भूपति राजा मोरै रांम धियांनो ।

पूरव जनम हम बांहन होते ओहै करम तप हीनां ।^१
 रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीन्हें ॥२॥^{१०}
 हंम गोरु तुम गुग्रांर गुसांई^१ जनम जनम रखवारे ।^{११}
 कबहू न पार उतारि चराएहु कैसे खसम हमारे ॥३॥^{१२}
 भौ बूडत कछु उपाइ करीजै^{१३} ज्यों तिरि लंघै तोरा ।^{१४}
 राम नाम जपि^{१४} भेरा बांधौ कहै उपदेस कबीरा ॥४॥^{१६}

[१८६]

जउ मैं^१ बउरा तउ राम तोरा ।
 लोगु^२ मरमु का^३ जानैं मोरा ॥ टेक ॥^४
 माला तिलक पहिरि मन मानां^५ । लोगन रामु खिलौनां जानां ॥१॥
 तोरउं न पाती पूजउं न देवा । राम भगति बिनु निहकल सेवा ॥२॥^६
 सतगुरु पूजउं सदा मनावउं । औसी सेव दरगह सुलु पावउं ॥३॥^७
 लोगु^२ कहैं कबीर बौरांनां । कबीर का मरमु राम भल जानां^८ ॥४॥

[१९०]

सभ^१ खलक^२ सयांनीं^३ मैं बौरा ।
 मैं बिगरचौं^४ बिगरै मति^५ औरा ॥ टेक ॥
 बिद्या न पढ़उं^६ वाद नाहि जानौं । हरि गुन कथत सुनत बउरांनां ॥१॥

गु० में यह और इसके पूर्व की एक पंक्ति पद के अंत में आती है । १-१०. गु० हम हरि सुतु तनहि नित ताना कंठि जनेउ तुमारे । तुम तउ बेदु पड़हु गाइत्री गोविंदु रिदै हमारे ॥ (पुन० तुल० प्रथम पंक्ति में 'हिरदै बसहि गोविंद') । ११-१२. दा० नि० नीर्मा नेम दसमीं (दा३ दसैं) करि संजम एकादसी जागरनां । द्वादसी दान पुनि की बेला (दा३ वरियां) सकल पाप प्यी करनां ॥ १३. दा३ भौ बूडतां (राज०) उपाइ करीजै । १४. दा१ दा२ लिखि । १५-१६. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं । [विशेष—यहाँ दा० नि० की तुलना में सिद्धांततः गु० का पाठ स्वीकृत होना चाहिये, किंतु ऐसा करने में निम्नलिखित कठिनाइयाँ हैं : (१) गु० का पाठ स्वीकार करने से रचनाकार का नाम ही नहीं आ पाता तथा (२) गु० की द्वितीय पंक्ति के 'गोविंदु रिदै हमारे' में तृतीय पंक्ति के 'हिरदै बसहि गोविंद' की पुनरावृत्ति है ।]

[१८६]

दा० मेरूँ १९, नि० मेरूँ १८, गु० मेरउ ६—

१. गु० हउ । २. नि० लोक । ३. गु० कह । ४. गु० में यह अगली पंक्ति के वाद है ।
 ५. गु० माथे तिलकु हयि (?) माला वाना । ६-७. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं, इनके स्थान पर : धीरी भगति बहुत अहंकारा । औसे भगता मिलैं अपारा ॥ ८. गु० पहिचानां ।

[१९०]

दा० गौड़ी १४७, नि० गौड़ी १५४, गु० विलावल २—

१. गु० में इसके पूर्व अतिरिक्त : मेरे बाबा मैं बउरा । २. दा२ दुनियां, दा३ दुनीं । ३. गु० सैआनी । ४. दा० नि० हंम बिगरे । ५. दा० नि० बिगरी जिनि । ६. गु० पड़ (जड़) सल ।

आपि न बीरा^७ राम कियो बडरा । सतिगुरु जारि गयो भ्रमु मोरा ॥२॥^८
 मैं बिगरचौ अपनीं मति खोई । मेरे भरमि भूलउ मति कोई ॥३॥
 सो बडरा जो आपु न पछानैं । आपु पछानैं त एकै जानैं ॥४॥
 अर्वाह न माता सु कबहुं न माता । कह^९ कबीर रामें रंगि राता ॥५॥

[१६१]

पंडिआ^१ कवन कुमति तुम लागे^२ ।बूड़हुगे परिवार सकल सिउं^३ राम न जपहु अभाग^४ ॥ टेक ॥

बेद पुरांन पढ़े का क्या गुनु^५ खर चंदन जस भारा ।
 राम नाम की गति नहि जानों कैसे उतरसि पारा^६ ॥१॥^७
 जीअ बधहु सु घरमु करि थापहु^८ अधरम कहहु कत भाई^९ ।
 आपन कौं मुनिवर करि थापहु^{१०} काको^{११} कहों कसाई ॥२॥
 मन के अंधे आपि न बूझहु काहि बुझावहु भाई^{१२} ।
 माया कारनि बिद्या बेचहु जनमु अविरथा जाई ॥३॥^{१३}
 नारद बचनु बिआस कहत है सुक कौं पूछहु जाई^{१४} ।
 कहि (कहै ?) कबीर रामें रमि छूटहु नाहिं त बूड़े भाई ॥४॥^{१५}

[१६२]

कहु पंडित^१ सूचा^२ कवन ठाउं ।जहां बैसि हउं भोजनु खाउं^३ ॥ टेक ॥

७. दा० नि० में नहि बीरा । ८. दा० नि० में इसके बाद की तीनों पंक्तियाँ नहीं हैं; इनके स्थान पर : काम क्रोध दोष भए विकारा । आपहि आप जरै संसारा । मीठो कहा जाहि जो भावै । दास कबीर राम गुन गावै ॥ (किंतु पूर्व की पंक्तियों के भाव से कोई मेल नहीं) । ९. गु० कहि ।

[१६१]

दा० गौड़ी ३९, नि० गौड़ी ४३, गु० मारू १—

१. दा० नि० पांडे । २. दा० नि० तोहि लागी (उर्दू मूल) । ३. दा० नि० में यह अंश नहीं है । ४. दा० नि० अभागी (उर्दू मूल) । ५. दा० नि० वेद पुरांन पढ़त अस पांडे । ६. दा० नि० दास नाम तत समझत नाहीं अति पढ़ै मुखि द्वारा । दा० नि० दास नाम का मरम न जान्यौ ले दृव्यो परिवारा । ७. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त— वेद पढ़्यां का फल यह पांडे सब बटि देखै रामां । जनम मरन यँ ती वं छूटै सुफल होहि सब कामां । ८. दा० नि० औ घरम कहतु हा । ९. दा० नि० अधरम कहा है (दा० नि० कहां) भाई । १०. दा० नि० आपन ती मुनि जन ह्वे बैठे । ११. दा० नि० कामनि । १२-१३. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं । १४. दा० नि० नारद कहै व्यास यौ भाखै सुखदेव पूछौ जाई । १५. दा० नि० कहै कबीर कुमति तब छूटै जे रही राम ल्यौ लाई ।

[१६२]

दा० आसावरी ५०, नि० आसावरी ४५, गु० बसंत ७—

१. दा० नि० सुके । In Public Domain. Digitized by eGangotri Collection, Haridwar

माता जूठी पिता भी^१ जूठा जूठे ही फल लागे^२ ।
 आवाहि जूठे जाहिं भी जूठे^३ जूठे भरहिं अभाने^४ ॥१॥^५
 अग्नि भी जूठी पांनी जूठा^६ जूठे^७ नैसि^८ पकाया ।
 जूठी करछी^९ अन्न परोसा^{१०} जूठे जूठा खाया^{११} ॥२॥
 गोबर जूठा चउका जूठा जूठे दोनी^{१२} कारा ।
 कहै कबीर तेई जन सूचे जे हरि भजि तजहिं बिकारा^{१३} ॥३॥^{१४}

[१६३]

आऊंगा न जाऊंगा मरुंगा न जिऊंगा ।
 गुर कै साथि अमी रस पिऊंगा ॥ टेक ॥
 कोई फेरै माला कोई फेरै तसबी । देखौ रे लोगा दोनों कसबी ॥१॥
 कोई जावै मक्के कोई जावै कासी । दोऊ कै गलि परि गई पासी ॥२॥
 कहत कबीर सुनों नर लोई । हंस न किसी के न हमरा कोई ॥३॥

[१६४]

कौन^१ मरै कौन^२ जनमैं आई ।
 सरग^३ नरक कौनैं गति पाई ॥ टेक ॥

४. दा० नि० पुनि । ५. दा० नि० जूठे फल चित लागे । ६. दा० नि० जूठा आवन जूठा जावन । ७. दा० नि० चेतइ क्युं न अभाने । ८. गु० में इसके बाद अतिरिक्त—
 जिहवा जूठी बोलत जूठा करन नेत्र सभ जूठे । इंद्री की जूठी उतरसि नाहीं ब्रह्म अग्नि के लूटे ॥
 ९. दा० नि० अन्न जूठा पांनी पुनि जूठा । १०. गु० जूठा (उर्दू मूल) । ११. दा० नि० बैठा
 १२. दा० नि० कड़छा । १३. गु० परोसन लागे । १४. गु० जूठे ही बैठि खाया । १५. दा०
 नि० काढ़ा । १६. गु० कहि कबीर तेई नर सूचै साची परी बिचारा । १७. गु० में इस पद
 की प्रथम पंक्ति तीसरी के बाद आती है ।

[१६३]

दा० नि० मेरुं ७, शवे० (२) मिश्रित १९—
 दा० तथा नि० का पूरा पद इस प्रकार है—

आऊंगा न जाऊंगा मरुंगा न जिऊंगा ।
 गुर के सवदु में रमि रमि रहूंगा ॥ टेक ॥

आप कटोरा आपैं धारी । आपैं पुरिखा आपैं नारी ॥
 आप सदाफल आपैं नीच । आपैं मुसलमान आपैं हिंदू ॥
 आपैं मछ कछ आपैं जाल । आपैं भीवर आपैं काल ॥

कहै कबीर हम नाहीं रे नाहीं । नां हम जीवत न सुवले माहीं ॥

[पाँचवीं पंक्ति 'गोरखवानी' पद ४१-३, ४ से तुलनीय है जिसका पाठ है : आपण ही मछ कछ आपण ही जाल । आपण ही धीवर आपण ही काल ॥ नि० में अंतिम पंक्ति के पूर्व एक पंक्ति अतिरिक्त : आपैं नाहर आपैं गाइ । आपैं मारै आपैं खाइ ॥ इस प्रकार पद के आरंभ की दो पंक्तियों को छोड़ कर शेष पंक्तियां नितान्त मिल्ती हैं ।] १. शवे० में इसके बाद अतिरिक्त : कोई पूजे महियां कोई पूजे गोरान । दोऊ की मतियां हरि लई चोरान ॥

[१६४]

दा० गौही ४४, नि० गौही ४८, शवे० (३) मेरुं ४—

पंच तत अविगत तैं उतपनां एकैं किया निवासा ।
बिछरें तत फिरि सहजि समांनां रेख रही नांह आसा ॥१॥
जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहरि भीतरि पानीं ।
फूटा कुंभ जल जलहि समांनां यहु तत कयौ गियानीं ॥२॥
आदै गगनां अंतै गगनां मद्धे गगनां भाई ।
कहै कबीर करम किस लागै भूठी संक उपाई ॥३॥

[१६५]

साधौ सो जन उतरे^१ पारा ।
लिग मन तैं^२ आपा डारा ॥ टेक ॥
कोई कहै मैं ग्यानीं रे भाई कोई कहै मैं त्यागी ।
कोई कहै मैं इंद्रो जीती अहं सभनि कौं^३ लागी ॥१॥
कोई कहै मैं जोगी रे भाई कोई कहै मैं भोगी ।
मैं तैं आपा दूरि न डारा^४ कैसे जीवै रोगी ॥२॥
कोई कहै मैं दाता रे भाई कोई कहै मैं तपसी ।
निज तत नाउं निहचै^५ नहि जानां सब माया मैं खपसी ॥३॥
कोई कहै मैं जुगती जानौं^६ कोई कहै मैं^७ रहनीं ।
आतम देव सौं परचा^८ नांहों यहु सब भूठी कहनीं ॥४॥

विन गुरु ज्ञान नाम ना पड़हौ मिरथा जनम गँवाई हो ॥ टेक ॥
जल भरि कुंभ धरे जल भीतर बाहर भीतर पानी हो ।
उलटि कुंभ जल जलहि समैहे तब का करिहौ ज्ञानी हो ॥
विनु करताल पखावज बाजे विनु रसना गुन गाया हो ।
गावनहार के रूप न रेखा सतगुरु अलख लखाया हो ॥

[पुन० तुल० शबे० (१) भेद २६-६, ७ और उसी पद में यह पंक्तियाँ दा० नि० स० तथा बी० में भी आती हैं—दे० क० ग्रं०, पद १६५ ।]

हे अथाह थाह सबहिन में दरिया लहर समानी हो ।
जाल डारि का करिहौ धीमर मान के हूँ मैं पानी हो ॥
पंछा क खोज औ मान के मारग दूँ दे ना कोई पाया हो ।
कहै कबीर सतगुरु मिलि पूरा भूले को राह बताया हो ॥

[शबे० का उक्त पद मिश्रित ज्ञात होता है, क्योंकि इसमें अन्य प्रतियों के विभिन्न पदों की विभिन्न पंक्तियाँ मिलती हैं—तुल० दा० गौड़ी १६५-७, ५ तथा बी० ४४]

[१६५]

नि० आसावरी ८३, शबे० (१) मिश्रित ३—

१. नि० उतरया । २. नि० मैं तैं । ३. नि० सबै कौ । ४. नि० डारया । ५. शबे० निश्चय । ६. नि० कोई कहै मैं जुगति सब जानौं । ७. नि० मेरे । ८. शबे० परिचय ।

कोई कहै धरम सब साधे और बरत सब कीन्हां^१ ।
 आपा कौ आंटी नहिं निकसी करज बहुत सिरि लीन्हां^२ ॥५॥
 गरब गुमान सब दूरि निवारै करनीं कौ बल नाहीं ।
 कहै कबीर साहेब का बंदा^३ पहुंचा हरि पद^४ सांहीं ॥६॥

[१६६]

काहे भेरे बांन्हन हरि न कहहि^१ ।
 राम न बोलहि पांडे दोजक भरहि^२ ॥टेक॥
 जिहि^३ मुख बेदु^४ गाइत्री उचरै^५ सो क्यूं बांन्हन बिसरु करै ।^६
 जाकै पाइं जगत सभ लागै^७ सो पंडित जिउघात करै^८ ॥१॥
 आपन ऊंच^९ नीच घरि भोजनु घीन करम^{१०} करि उदरु भरहि^{११} ।
 ग्रहन अमावस^{१२} रुचि रुचि मांगहि^{१३} कर^{१४} दीपकु लै कूप^{१५} परहि^{१६} ॥२॥^{१७}
 तूं बांन्हन मैं कासी क जुलहा मोहि तोहि बराबरी कैसे कै बनहि^{१८} ।^{१९}
 कहै कबीर हंम राम लगि उबरे^{२०} बेदु भरोसे पांडे डूबि मरहि^{२१} ॥३॥

[१६७]

राम न रमसि^१ कौन डंड^२ लागा^३ । मरि जैबे^४ का करिबे^५ अभाग^६ ॥

१. नि० कोई कहै मैं सब सिधि साधे कोई कहै सब व्रत काया । १०. नि० लीया ।
 ११. नि० सो सांई का बंदा । १२. शबे निज पद (राधा० प्रभाव) ।

[१६६]

नि० आसावरी ७०, गु० रामकली ५, बी० १७—
 १-२ नि० काहे रे पांडे तुम जयौ न हरे । हरि न भजे सो ती नरक परे ॥, बी० रामहि गावै
 औरहि समुझावै हरि जाने बिनु सकल (बीम० विकल) फिरै । गु० में यह दोनों पंक्तियाँ तीसरी,
 चौथी पंक्तियों के स्थान पर आती हैं । ३. बी० जा । ४. नि० सबद । ५. गु० निकसै ।
 ६. नि० या सबदन संसार तिरै, बी० तासु वचन संसारतरै । ७. बी० जाके पांव जगत
 उठि लागै, नि० जा पांडे मैं सब जग बूझै । ८. बी० सो ब्रहमन जिव बच करै, गु० सो
 किउ पांडितु हरि न कहै (तुकहीन) । ९. नि० ऊंच घरि जन्म । १०. नि० गु० हठे करम ।
 ११. नि० बी० भरे । १२. गु० चउदस अमावस, नि० अमास पुन्युं । १३. गु० रुचि रुचि
 मांगै, बी० दुकि दुकि मांगै । १४. नि० हाथि । १५. नि० कुबै । १६. नि० बी० परै ।
 १७. बी० में इसके बाद की पंक्तियों का पाठ है : एकादसी बरत नहिं जाने भूत प्रेत हठि
 हृदय धरै । तजि कपूर गांठी बिख बांधै ग्यान गुंवाए सुगुण फिरै ॥ बीजे साहु चोर प्रति-
 पाले संत जना का कूट करै । कहहि कबीर जिन्म्या के लंपट यहि विधि (?) प्राणी नरक परै ॥
 १८. नि० बाढ़ि न कान्हौं मूच न माखी खेत उजाखी सब अंधरे । १९. गु० हमरे राम नाम
 कहि उबरे [यह पाठ स्वीकार करने पर रचनाकार का नाम ही नहीं रह जाता अतः यहाँ नि० का
 पाठ स्वीकृत किया गया है ।] २०. नि० तुम वेद भरोसे गरब गरे ।

[१६७]

१. गु० रमहु । २. गु० मति । ३. गु० लागे । ४. गु० जह्ये कुज । ५. गु० करहु अभाग ।

कोइ तीरथ कोइ मुंडित केसा । पाखंड मंत्र बर्ज उपदेसा ॥^{१०}
 बिद्या बेव पढ़ि करै हंकारा । अंत काल पुत्र फलै क्षारा ॥^{११}
 दुखित सुखित होइ^१ कुटुंब जेबावै^{१०} । भरण बेर^{११} एकसर दुख पावै^{१२} ॥
 कहै कबीर यह कलि है छोटी । जो रहै करवाँ सो निकसै टोटी^{१३} ॥

[१६८]

सभै^१ मदमातै कोऊ न जाग ।

संग ही^२ चोर घरु भुसन लाग ॥टेक॥

जोगी माते धरि^३ धियांन । पंडित^४ माते पढ़ि पुरांन ॥१॥^५

तपा जु^६ माते तप कै भेव । संन्यासी माते अहंभेव^७ ॥२॥^८

जागै^९ सुखदेउ ऊधौ^{१०} अकूर । हणवत जागै^{१०} लै^{१२} लंगूर^{१३} ॥३॥

संकर जागै^{१०} चरन सेव^{१४} । कलि जागै^{१०} नामां जेबै ॥४॥

जागत सोवत बहु प्रकार । गुरुमुखि जागै सोई सार ॥५॥^{१५}

चंचल मन के अधम कांम^{१६} । कहै^{१०} कबीर भजि^{१८} राम नाम ॥६॥

[१६९]

हरि बिन भरमि विगूचे गंदा ।^१

जापहिं^२ जाउं^३ आपु छुटकावन^४ ते बांधे^५ बहु फंदा^६ ॥टेक॥^७

६. तुल० दा३ केदारा गौड़ी २-१, २ यथा : राम न जपइ कवन भ्रमि लागे । मरि जाइगे का करहु अभागे ॥ ७-८. गु० में उक्त दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं, इनके स्थान पर : अथर्वि आइ कहा, तुम कीना । राम को नामु न कबहू लीना ॥ (प्रथम पंक्ति के रूप में) । ९. गु० दुख सुख करि कै । १०. गु. जीवाइआ । ११. गु० मरती बार । १२. गु० पाइआ । १३. गु० कंठ गहन तब करन पुकारा । कहि कबीर आगे ते न संसारा ॥

[१६८]

दा० वसंत ११, नि० वसंत १०, गु० वसंतु २, बी० वसंत १०, शक० वसंत १२—

१. बी० शक० सबही (बी० सभै) । २. दा० नि० तार्थ संग ही । ३. गु० शक० जोग । ४. गु० पंडित जन । ५-६. दा० तथा गु० में दोनों पंक्तियों के प्रथम तथा द्वितीय चरण परस्पर स्थानांतरित । ७. बी० करि हमेव । ८. गु० बी० शक० तपसी [किंतु 'तपस्वी' के अर्थ में 'तपा' शब्द का प्रयोग प्राचीनतर है; तुल० जायसी, पदमावत ३०-३: जपा तपा सब आसन मारे ।, १००-७: करवत तपा लेहि होइ चूर ।, १६७-१: बैठि सिध छाला होइ तपा । ९. बी० तथा शक० में इसके बाद अतिरिक्त : मोलना माते पढ़ि मोसाफ । कारी माते दे निसाफ ॥ संसारी माते माया के धार । राजा माते करि हंकार ॥ १०. बी० शक० माते । ११. गु० अरु । १२. गु. धरि । १३. गु० लंकूर । १४. बी० सिव माते करि चरन सेव । १५. दा० नि० ए अभिमान सब मन के काम । ए अभिमान नहीं कहीं ठाम ॥, बी० शक० सत्त सत्त कहै सुभ्रिति वेद । जस रावन मारेउ घर के मेद ॥ १६. दा० नि० आतमाराम को मन विश्राम, गु० इसु देही के अधिक काम (?) । १७. गु० कहि । १८. बी० शक० मजु ।

[१६९]

दा० गौड़ी १३३, नि० गौड़ी १४०, गु० गउड़ी ५१, बी० ३८—

१. गु० छुलाने अंधा, दा० नि० विगूते गंदा । २. बी० जहंजह, दा० नि० जापै । ३. बी० गए । ४. दा० नि० अपनपी छुड़ावन, बी० आपनपी खोए । ५. बी० तेहि फंदा, दा० नि० ते बांधे । ६. गु० फंदा ('अंधा' से तुक मिलाने के लिए) । ७. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की चौथी

जोगी कहहि जोगु भल खोटा^१ और न दूजा^१ भाई ।
 सुंचित^{१०} सुंडित मोनि जटाधर^{११} एहि^{१२} कहहि^{१३} सिधि पाई ॥१॥
 पंडित^{१४} गुनीं सूर कवि दाता^{१५} एहि कहहि बड़ हमहों^{१६} ।
 जहं ते उपजे तहई^{१७} समाने^{१८} हरि पद बिसरा जबहीं ॥२॥^{१८}
 तजि बावें दाहिनें विकारा^{१९} हरि पद दिढ़ करि गहिए^{२०} ।
 कहै^{२१} कबीर गूँगे गुड़ खाया पूछें तैं^{२२} क्या कहिए ॥३॥

[२००]

लोगा तुम हौं मति के भोरा^१ ।

२जउ कासी^३ तनु तजहि^४ कबीरा तौ रांमहि^५ कौन^६ निहोरा ॥१॥^७

जो जन भाउ भगति कछु जानें^८ ताकों अचरजु काहो ।^९

जैसें जल जलहों दुरि मिलिऔं^{१०} त्यों दुरि^{११} मिल्यौ जुलाहो^{१२} ॥२॥^{१३}

पंक्ति के बाद है । ८. दा१ दा२ नि० जोग सिधि नीकी (नि० नीका) । ९. दा१ दूजी, बी० दुतिया । १०. गु० सुंचित, बी० सुंडित, बी० सुंचित (उर्दू मूल ?) । ११. गु० एकै (?) सबदी । १२. दा० नि० ए. जु, बी० तिनहूँ । १३. बी० कहाँ । १४. बी० ग्यानी । १५. गु० हम दाते । १६. दा० नि० जहाँ का उपज्या तहाँ बिलानां, गु० जह ते उपजी (उर्दू मूल) तही समानी (उर्दू मूल) । १७. गु० इहि विधि बिसरो तबही, बी० छूटि गयल सभ तबहीं । १८. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त : बार पार की खबरि न जानी फिरयो सकल बन औसैं । यह मन बोहिध के कउवा ज्यूं रखौ ठग्यौ सौं बैसैं ॥ गु० में यहाँ अतिरिक्त : जिसहि बुझाए सोई बूझै बिनु बूझै किउ रहीअै । सति गुरु मिलै अंधेरा चूकै इन विधि मागकु लहीअै ॥ बी० में इस स्थल पर कुछ नहीं है । १९. बी० बाएं दहिने तजे (बी० तेजु) विकारा । २०. बी० निजु के हरि पद गहिया । २१. गु० कहूँ, बी० कहहिं । २२. दा० नि० बूझै तो । २३. बी० कहिया, दा० नि० तथा गु० में यह पंक्ति अगली पंक्ति के बाद आती है; किंतु यह क्रम स्वीकार कर लेने पर अर्थ समझने में कुछ कठिनाई पड़ती है अतः यहाँ वा० का क्रम स्वीकार किया गया है ।

[२००]

दा० घनाश्री ४, नि० घनाश्री ४, गु० घनासरी ३, बी० १०३—

१. दा१ लोका मति के भोरा रे (दा२ चोरा), बी० लोगा तुमहो मति के भोरा, गु० हरि के लोगा में तउ मति का भोरा (विरोधार्थ) । २. बी० में यह अंतिम पंक्ति के रूप में आती है । ३. गु० तनु कासी । ४. बी० तेजहों । ५. गु० रमईअै । ६. गु० कहा । ७. दा१ दा२ तथा नि० में इसके बाद अतिरिक्त : तब हम जैसे अब हम जैसे इहै जनम का लाहा । ८. दा१ दा२ राम भंगति पै जाको हितचित्त, दा२ नि० जोपै भगत भगति हरि जानें । ९. बी० में यह पंक्ति नहीं है । दा१ दा२ में यह अगली पंक्ति के बाद है । १०. दा१ दा२ ज्यूं जल में जल पैसि न निकसै, गु० जितु जल जल महि पैसि न निकसै; बी० ज्यों पानी पानी महं मिलि गी । ११. दा२ हरि, बी० धुरि (उर्दू मूल) । १२. बी० मिलै (बी० मिले) कबीरा । १३. बी० में इसके बाद अतिरिक्त : जी सैधिल को (बी० सैधो का) सांचा न्यास । तोर (बी० तोहरा) मरन होय मगहर पास । मगहर मरै सो गदहा होय । भल परतीति राम सौं खोय । मगहर मरै (बी० मरौं) मरन नहि पावै (बी० पावौं) । अनतै मरै तो राम लजावै (बी० मरौं, लजावौं) ।

कहै कबीर सुनहु रे लोई^{१७} भरसि न भूलहु कोई^{१४} ॥^{१६}
 क्या^{१०} कासी क्या^{१८} महगर^{१९} ऊपर हिंदै^{२०} राम जो होई^{२१} ॥३॥^{२२}

रमैनी

[१]

ओं ओंकार आदि है मूला । राजा परजा एकहि मूला ॥^१
 ३हंम तुम मांहेँ एकै^३ लोह । एकै प्रांन बियापै^४ मोह ॥
 एकहिं बास रहै दस मासा । सूतग पातग एकै बासा^५ ॥
 एकहिं जननि^६ जनां संसारा । कौन ग्यांन तैं भएउ नितारा ॥^७
 बालक हूँ^८ भग द्वारे आवा । भग भोगन कौं^९ पुरिख^{१०} कहावा ॥^{११}
 भाव भगति सौं हरि न अराधा । जनम सरन की मिटी न साधा^{१२} ॥

१४. दा१ दा२ कहे कबीर सुनौ रे संतो, दा३ कहे कबीर राम में जान्यो । १५. दा१ दा२ भ्रमि परै जनि कोई, दा३ भ्रमि मुलाइ जनि कोई । १६. बी० में यह पंक्ति नहीं है । १७. दा० नि० जस, बी० का । १८. दा० नि० तस, बी० का । १९. दा१ बी० महगर ऊपर (दा२ ऊपर, दा३ दा४ नि० ऊपर) । २०. गु० रिदे (पंजाबी) । २१. बी० राम बसै मोरा, दा१ दा२ राम सवि होई । २२. गु० में पहली दो पंक्तियों चौथी के बाद आती है ।

[१]

दा० नि० चौपदी १, बी० १—

१. बी० में यह पंक्ति नहीं है । २. बी० में इसके पूर्व अतिरिक्त—
 अंतर जोति सवद एक नारी । हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी ॥
 ते तिरिए भग लिंग अनंता । तेऊ न जानैं आदिउ अंता ॥
 बाखरि एक विधातैं कीन्हां । चौवह ठहर पाट सो लीन्हां ॥
 हरि हर ब्रह्मा महंतो नाऊं । तिनि पुनि तीनि बसवाल गाऊं ॥
 तिनि पुनि (पुन०) खल खंड ब्रह्मंडा । छह दरसन छानवे पखंडा ॥
 पेटें काहु न वेद पढ़ाया । सुनति कराय तुरुक नहि आया ॥
 नारी मोचित गर्भ प्रसूती । स्वांग धरै बहुते करतूती ॥
३. बी० तहिया हम तुम । ४. दा० नि० जीवन है । ५. बी० में यह पंक्ति नहीं है । ६. बी० जनी (उर्दू मूल) । ७. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त—
 ग्यांन न पायी बावरे धरी अविद्या मंड । सतगुर भिक्ष्या न मुक्ति फल तातैं खाई बंड ॥
८. बी० भी बालक । ९. बी० भग भोगी के (बीम० भोग के) । १०. बी० पुरुष । ११. दा० नि० में आगे अतिरिक्त : ग्यांन न सुमिरखी निरगुण सारा । विखतैं विरिब न किया बिचारा ॥
१२. बी० में यह पंक्ति नहीं है, इसके स्थान पर—
 अविगति की गति काहु न जानी । एक जीम कित (बीम० क्या) कहाँ बखानी ॥
 जो मुख होय जीम दस लाखा । तो कोई आइ महंतो भाखा ॥

भाव भगति बिसवास बिनु, कटै न संसै मूल ॥

कहै कबीर हरि भगति बिनु, सुकृति नहीं रे मूल ॥^{१३}

[२]

पहिले^१ मन में सुमिरौ सोई । ता सम तुलै अवर नहि कोई^२ ॥

कोई न पूजै वासों पांनां^३ । आदि अंति वो किन्हुं न जानां ॥^४

रूप अरूप^५ न आवै बोला^६ । हरु गरु कछु^७ जाइ न तोला^८ ॥

भूख न त्रिला धूप नहि छाहीं । दुख सुख रहित रहै सब मांहीं ॥^९

अविगत अपरंपार ब्रह्म^{१०}, ग्यांन रूप सब ठांम^{११} ॥

बहु विचार करि देखिया, कोई न सारिख रांम^{१२} ॥

[३]

तेहि^१ साहब के लागौ^२ साथ । दुख सुख^३ मेति कै^४ रहहु सनाथा ॥^५

नां जसरथ^६ घरि औतरि आवा^७ । नां लंका का राव सतावा ॥

बेवै कोखि^८ न अवतरि आवा^९ । नां जसवै लै^{१०} गोद खिलावा ॥

नां वो म्वालन कै संगि फिरिया । गोबरधन लै नां कर धरिया ॥^{११}

बावन होइ नहीं बलि छलिया । धरनीं बेद लै न ऊधरिया ॥^{१२}

१३. बी० कहहि कबीर पुकारि कै ई लेऊ व्यवहार । इक राम नाम जाने बिना भव बूढ़ि मुवा संसार ॥ यह दा० नि० बारहपदी में १वीं साखी है और वहीं प्रसंगानुसार उपयुक्त सी है । स० में यह साखी दा० नि० के समान उसी रमैनी के अंत में है, जो बी० की ७५वीं रमैनी है ।

[२]

दा० नि० बारहपदी १, बी० ७७—

१. दा० नि० पहली । २. दा१ प्रांनां । ३-४. बी० में इन पंक्तियों का पाठ है—

एकै काल (?) सकल संसारा । एक नाम है जगत पियारा ॥

त्रिया पुरुष कछु कथो न जाई । सर्व रूप जग रहा समाई ॥

५. दा० नि० सरूप, बी० निरूप । ६. बी० जाय नहि बोली । ७. बी० हलुका गरुआ, बी० हलुक न गरुह । ८. बी० तोली । ९. बी० तेहि माहीं । १०. बी० अपरंपार रूप मगु (बी० अपर परम रूप मगु) रंगी । ११. बी० ग्यांन रूप बड़ आहि, बी० (पाठांतर) रूप निरूप न भाय, बी० में यह तथा तीसरा चरण लिखने से छूट गया है । १२. बी० कहै कबीर पुकारि कै अवबुद कहिए ताहि, बी० (पाठांतर) बहुत ध्यान कै खोजिया नहि तेहि संस्था आहि ।

[३]

दा० नि० बारहपदी १, बी० १० ७५, स० ४३-३—

१. दा० नि० स० ता । २. दा० नि० लागहु । ३. बी० दुइ दुख । ४. दा० नि० मेति ।

५. दा० नि० स० रखी अनाथा । ६. दा३ दूसरथ । ७. बी० दूसरथ कुल औतरि नहि आया ।

८. बी० नहि । ९. दा० नि० स० कूख (उर्दू मूल) । १०. बी० नहीं देवकी के गर्भहि आया ।

११. बी० नहीं जसोद, नि० नहीं जसोदा । १२. बी० नहीं गोबरधन कर गहि धरिया । नहि

ग्वालन संय बन बन फिरिया । १३. बी० मिथिमी खन दवन नहि करिया । पैति पताल नहीं

बलि छलिया ॥ इसके आये अतिरिक्त : नहि बलिराज से माड़ी रारी । नहि हरिनाकुस बषल

गंडक^{१४} सालिगरांम न कोला^{१५} । मच्छ कच्छ होइ जलहि न^{१६} डोला ॥
बद्री बैस ध्यान नहि लाबा । परसरांम ह्वै खत्री न सतावा ॥^{१७}
द्वारावती सरीर न छांडा । जगन्नाथ लै^{१८} पिंड न गाड़ा^{१९} ॥
कहै कबीर बिचारि करि,^{२०} ए ऊले^{२१} व्योहार ।
याही तैं जो अगम है, सो बरति रहा संसार^{२२} ॥५॥^{२३}

[४]

तब नहि होते^१ पवन न^२ पानों । तब नहि होती सिस्टि उपानों ॥^३
तब नहि होते^४ पिंड न बासा^५ । तब नहि होते धरनि अकासा^६ ॥^७
तब नहि होते^८ गरभ न भूला । तब नहि होते^९ कली न फूला ॥^{१०}
तब नहि होते^{११} सबद न स्वादा^{१२} । तब नहि होते^{१३} बिद्या न बेदा^{१४} ॥^{१५}
तब नहि होते^{१६} गुरू न चेला । गंम अगम यह पंथ अकेला^{१७} ॥
अविगति की गति क्या कहै^{१८}, जिस कर^{१९} गांउं न ठांउं^{२०} ।
गुन बिहूँ का पेखिए,^{२१} का कहि धरिए^{२२} नांउं ॥४॥

[५]

आदम आदि सुधि नहि^१ पाई । मामा होवा कहां तैं आई ॥^२
तब^३ नहि होते तुरूक न^४ हिंदू । मां का उदर^५ पिता का^६ बिदू ॥

पछारी ॥ १४. नि० गिलकी। १५. बी० कूला। १६. बी० जल नहि। १७. बी० ब्राह्म रूप
धरनी नहि धरिया (तुल० इसी छंद की पंक्ति ५-२), खत्री मारि निछत्र न करिया। १८. बी०
लै जगनाथ। १९. बी० नहि। २०. बी० पुकारि कै। २१. बी० ई लेऊ, बीम० ई लेवो
(पाठान्तरः ई बैली)। २२. बी० एक राम नाम जाने विना सब बूढ़ि मुवा संसार। २३. बी०
में यह साखी पहली रमैनी के अंत में आती है।

[६]

दा० नि० अष्टपदी १, बी० ७—
१. दा०३ दा४ तब नहि हुते, बी० तहिया होत। २. बी० नहि। ३. बी० तहिया सिस्टि कौन
उतपानी। ४. बी० वाम। ५. बी० नहि धर धरनि (पुन०) न गगन अकासू (पुन०)।
६. बी० में यह पंक्ति ऊपर की चौथी पंक्ति के बाद है। ७-८. बी० में इनके प्रथम तथा द्वितीय
चरण परस्पर स्थानान्तरित। ९. दा० नि० स्वादां। १०. दा० नि० वादां। ११. दा१ दा२
गंम अगम पंथ अकेला, बी० गम अगम नहि पंथ दुहेला। १२. बी० का कहौं। १३. दा० नि०
जस कर (उर्दू मूल), बी० जाके। १४. दा० नि० नांउं (पुन० दे० आगे की पंक्ति में : का कहि
धरिए नांउं)। १५. बी० गुन बिहूना पेखना। १६. बी० लीजै।

[५]

दा० नि० अष्टपदी २, बी० ४—
१. बी० ना। २. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त : जब नहि होते राम सुदाई, साखा मल
आदि नहि छुटै ॥ In Rubric 10. Gurukul Kangri Collection, Varanasi. ३. दा० नि०
१६. बी० लीजै।

जब^१ नहिं होते गाइ कसाई । तब बिसमिला^२ किन कुरमाई ॥
जब नहिं होते कुल औ जाती । दोजग भिस्ति कौन उतपाती ॥^३

^१ संजोगै करि गुन धरा, ^२ बियोगै^२ गुन जाइ ।

जिभ्या स्वारथि आपनै, ^३ कीजै^३ बहुत उपाइ ॥५॥

[६]

जिन^१ कलसां कलि सांहि पढ़ावा^२ । कुदरति खोजि तिनहुं नहिं पावा^३ ॥

करम करीम भए करतूता^४ । वेद कुरांन भए^५ दोउ^६ रीता ॥

किरतिम^७ सो जु गरभ अवतरिया । किरतिम^७ सो जो नांमहिं धरिया^८ ॥

किरतिम^७ सुन्नति^९ और जनेऊ । हिंदू तरक न जानैं भेऊ ॥

मन मुसले की जुगति न जानैं^{१०} । मति भुलानि^{११} दुइ दीन बखानैं ॥^{१२}

पानी पवन संजोइ^{१३} करि, कीया है उतपाति^{१४} ।

सुनि मैं सबद समाइगा, ^{१५} तब^{१६} कासनि^{१७} कहिए जाति ॥६॥

[७]

पंडित भूले पढ़ि गुनि बेदा । आपु अपनपौ जान न भेदा^१ ॥

संभा तरपन अरु^२ खट करमां । लागि रहे इनकै आसरमां^३ ॥

गाइत्री जुग चारि पढ़ाई । पूछहु जाइ सुकुति किन पाई ॥

और के छुएं लेत है सींचा^४ । इनतैं कहहु कवन है नींचा ॥

अति^५ गुन गरब करै^६ अधिकाई । अधिकै गरवि^७ न होइ भलाई ॥

७. बी० तब । ८. बी० तब कहु बिसमिल । ९. दा० नि० भूला फिर दीन द्वै धावै । ता साहिब का पंथ न पावै ॥ १०. बी० में इसके पूर्व अतिरिक्त : मन मुसले की सुधि नहिं जाने । मति भुलान दुइ दीन बखानै ॥ ११. बी० संजोगे का गुन रचै । १२. बी० बियोगे का । १३. बी० स्वाद के कारने । १४. बी० कान्हे ।

[६]

दा० नि० अष्टपदी ३, बी० ३१—

१. बी० जिन, बी०० जिन्हि । २. बी० पढ़ाया, दा० नि० पठावा (हिन्दी मूल) । ३. बी० पाया । ४. बी० कर्म ते कर्म करै करतूता । ५. बी० भया । ६. दा३ है; बी० सब ।

७. बी० कर्म तो; दा० नि० कृतम । ८. दा१ दा२ नि० जु नांव जस धरिया; दा३ दा४ ज नांव जिनि धरिया । ९. नि० सुन्नति, दा० सुनित्य (राज० प्रभाव) । १०. बी० मन मुसले (उद्दू मूल ?) की सुधि नहिं जाने । ११. दा० नि० भूले । १२. बी० में यह ४०वाँ रस्मेनी की अंतिम पंक्ति है । १३. दा० नि० संजोग । १४. बी० रचिया यह उतपाति । १५. बी० सुनिहि सुरति समाइया । १६. बी० में 'तब' नहीं है । १७. बी० कासां ।

[७]

दा० नि० अष्टपदी ५, बी० ३५—

१. दा० नि० आप न पावैं नांन भेदा । २. बी० आं । ३. बी० ई बहु रूप करहि अस धमां । ४. दा० नि० सब में सांग रहे अपने सींचा । ५. बी० ई बहु रूप करहि अस धमां । ६. बी० गर्व ।

जासु नांम है^१ गरव प्रहारी । सो कस गरवहि सकै सहारी^२ ॥
 कुल अभिमान विचार तजि,^{१०} खोजौ^{११} पद निरवान ।
 अंगुर बीज नसाइगा,^{१२} तब^{१३} मिलै^{१४} विदेही थान ॥७॥

[८]

खत्री^१ करै खत्रिया^२ घरमां । वाके बड़े सवाई करमां^३ ॥
 जीवहि सारि जीव प्रतिपारै^४ । देखत जमम आपनौ^५ हारै ॥^७
 खत्री^८ सो जु कुटुम सौं जूझै । पांचौ^९ मेटि एक कौं^{१०} बूझै ॥
 जो आवध^{११} गुर ग्यान लखावा । गहि करवाल धूप धरि धावा^{१२} ॥
 हेला^{१३} करै निसानें घाऊ ।^{१४} जूझि परै तहां मनमथ राऊ ॥
 मनमथ मरै न जीवई, जीवहि^{१५} मरन न होइ ।
 सुझि सनेही राम बिनु, गए^{१६} अपनपौ खोइ ॥

[९]

अरु^१ भूले खट दरसन भाई । पाखंड भेख रहे^२ लपटाई ॥
 जीव सीव का आहि नसौनां । चारिउ बद्ध चतुरगुन मौनां^३ ॥
 जैन जीव की सुधि ताहि जानै^४ । पाती तोरि देहुरै^५ आनै ॥
 दोना^६ मरुआ^७ चंपक^८ फूला । तामै जीव कोटि सम तुला^९ ॥

८. दा० नि० जाकौं ठाकुर । ९. दा० नि० सो कयूं सकई गरव सहारी । १०. बी० कुल मरजादा खोय कै । ११. बी० खोजिनि । १२. बी० नसाय कै । १३. बी० में 'तब' नहीं है । १४. बी० भए ।

[८]

दा० नि० अष्टपदी ६, बी० ८३—
 १. बी० छत्री । २. बी० छत्रिया । ३. दा० नि० घरमां । ४. दा० नि० तिनकूं होइ सवाया करमां । ५. बी० प्रतिपालै । ६. बी० धालै । ७. बी० में यह उपर का चौथी पंक्ति के स्थान पर है । ८. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : पंच सुभाव जु मेटै काया । सब तजि करम भजै राम राया ॥ ९. दा० नि० पंचू । १०. बी० कै । ११. बी० धिन अवधू । १२. बी० ताकर मन तहई^१ पलटायी (वामं तहई^२ लै धाया) । १३. बी० हालै । १४. दा० नि० भूझि । १५. दा० नि० जीवन । १६. बी० चले ।

[९]

दा० नि० अष्टपदी ७, बी० ६०—
 १. बी० ओर । २. बी० रहा । ३. दा० नि० जैन बोध अरु साकत सैनां । चारबाक चतुरंग विहृनां ॥ [१. 'सैनां' तथा 'विहृनां' में तुकहीनता । २. इस छंद में आद्योपांत जैनियों का ही वर्णन है अतः बीच की केवल एक पंक्ति में बौद्ध, शाक्त तथा चार्वाक आदि का उल्लेख असंगत लगता है ।] ४. बी० जैनी धर्म का मर्म न जाने । ५. बी० देववर । ६. दा० नि० दोना (उर्दू मूल) । ७. दा० नि० मबरा (उर्दू मूल) । ८. बी० चंपा कै । ९. दा० नि०

अरु^१ प्रिथिमीं के रोम उचारै^{१०} । देखत जीव कोटि संधारै^{११} ॥
 मननथ करम^{१२} करै असरारा । कलवै बिद खसै नहिं द्वारा^{१३} ॥
 ताकर हाल^{१४} होइ अदभूत^{१५} । खट^{१६} दरसन मंहि जैन बिगू ता^{१७} ॥
 ग्यांन अमर पद बाहिरा, नियरे तैं है दूरि ।^{१८}
 जिनि जानां^{१९} तिनि^{२०} निकटि है, रहा^{२१} सकल घट पूरि^{२२} ॥६॥

[१०]

आपुहि^१ करता भए कुलाला । बहु बिधि सिस्टि रची दर हाला^२ ॥
 बिधिनां सभै की ह एक ठाऊं । अनेक जतन के बने बनाऊं ॥^३
 जठर अगिनि दोन्हों परजाली^४ । तामैं आप करै^५ प्रतिपाली ॥
 भीतर तैं जब बाहरि आवा^६ । सिव सकती दुइ^७ नाउं धरावा ॥
 भूलै भरमि परै मति कोई^८ । हिंदू तुरुक भूठ कुल दोई ॥^९
 घर का सुतं जो होइ अयांनां । ताकै संगि न जाहिं^{१०} सयांनां ।
 सांची बात कहै जे वासों । सो फिरि कहै दिवांनां तातों^{११} ॥
 गोय भिन्न है^{१२} एकै दूधा । काकों^{१३} कहिए बांह्यान सूदा ॥
 जिनि यह चित्र बनाइय, सांचा सो सुतधार^{१४} ।
 कहै^{१५} कबीर ते जन भले, जे चित्रवंतों^{१६} लेहिं बिचारि ॥

[११]

सुख कै विरखि^१ यह^२ जगत उपायः । समुझि न परै बिखम^३ तेरी^४ माया ।

तामैं जीव बसैं कर तूला । १०. दा० नि० उपारै (उर्दू मूल) । ११. बी० देखत जनम आपनी हारै (पुन० तुल० पिछली रमैनी की पंक्ति २-२) । १२. बी० बिद (पुन० तुल० अगले चरण में : कलवै बिद) । १३. दा० नि० धसै तिहि द्वारा । १४. दा० नि० हत्या । १५. बी० अघकूचा (केवल तुकार्थ), बी० अदभूत । १६. बी० छत्र । १७. बी० विगूचा । १८. दा० नि० नेहा ही तैं दूरि । १९. बी० जो जाने । २०. बी० तिहि । २१. दा० रांम रखा । २२. दा० नि० भरपूरि ।

[१०]

१. दा० नि० आपन । २. बी० बहु बिधि वासन गढ़ै कुम्हारा (पुन० तुल० 'कुलाला') । ३. दा० नि० बिधना कुंम किए द्वै थानां । प्रतिबिब ता मांहि समानां ॥ ४. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : बहुत जतन करि बानक बांनां (तुल० पंक्ति २-३) । साँज मिलाय जीव तहं ठांनां ॥ ५. बी० जठर अगिनि महं दोन्ह प्रजारी । ६. बी० भया । ७. बी० बहुत जतन से बाहर आया । ८. बी० तब सिव सकती । ९. बी० भूठ मर्म भूलै मति कोई । १०. बी० में यह व्वों पंक्ति के पश्चात् आती है । ११. दा० नि० क्यूं जाइ । १२. बी० सांची बात कही मैं अपनी । भया दिवाना और को सपनी । १३. दा० गोप (हिन्दी मूल) भिन्न है, बी० गुप्त प्रगत है । १४. दा० नि० कासू । १५. बी० सुतधार । १६. बी० कहहि । १७. दा० नि० चित्रवत ।

[११]

१. दा० नि० सुक विरखि [आगे शाला तथा पत्रों का उल्लेख होने के कारण वृक्ष का सूखा कहा जाना प्रसंग-विरुद्ध होगा । उल्लेखों की का सी यहाँ कोई प्रसंग नहीं है ।] । २. बी० एक ।

साखा तीनि^५ पत्र^३ जुग चारी । फल दोइ^० पाप पुत्रि अधिकारी ॥
 स्वाद अनेक कथे नहि जाहीं^८ । किया चरित सो इनमें नाहीं ॥^९
 नटवंत साज साजिया साजी^{१०} । जो खेलै सो दीसै^{११} वाजी ॥
 मोहा वपुरा जुक्ति न देखा ।^{१२} सिव सकती बिरंचि नहि पेखा^{१३} ॥^{१४}
 जिन^{१५} चीन्हां ते निरमल अंग । अनचीन्हें^{१६} ते भए पतंगा ॥^{१७}
 ते तौ आहि निनार निरंजनां, आदि अनादि न आन ।
 कहन सुनन कौं कीन्ह जग, आपै आप भुलान ॥^{१८}

[१२]

काल^१ अहेरी सांभ सकारा । सावज ससा सकल संसारा ॥^२

३. बी० विषय (नागरी मूल) । ४. बी० कछु । ५. बी० छव छत्री । ६. बी० पत्री ।
 ७. बी० दुइ । ८. बी० स्वाद अनंत कछु बरनि न जाई । ९. बी० कै चरित्र सो ताही माहीं ।
 १०. दा० नि० जिनि नटवंत नटसारी साजी (अगले चरण में 'जो' सर्वनाम होने के कारण 'जिनि'
 अस्मात्मक तथा व्याकरण-विरुद्ध) । ११. बी० देखे । १२. दा० नि० मां वपुरा यै जो गति
 दीठी । १३. दा० नि० सिव बिरंचि नारद नहि दीठी । १४. दा० नि० में इसके पश्चात् की
 अतिरिक्त पंक्तियाँ—

आदि अंति जो लीन भए है । सजै जांनि संतोषि रहे है ।

सहजै राम नाम ल्यौ लाई । राम नाम कहि भगति दिदाई ॥

राम नाम जाका मन मानां । तिनि तौ निज सरूप पहिचानां ।

निज सरूप निरंजनां निराकार, अपरंपार अपार ।

राम नाम ल्यौ लाइस जियरे, जिनि भूलै बिस्तार ॥

१५. बी० जो । १६. बी० ताकौ । १७. दा० नि० जे अचीन्ह । १८. यह पंक्ति बोजक की
 चौथी रमैनी की १५वीं पंक्ति के रूप में आती है और दा० नि० में 'बाह्यपदी' के पाँचवें हंद्
 की १५वीं पंक्ति के रूप में । दोनों की शेष पंक्तियाँ नितान्त भिन्न होने के कारण छोड़ दी गयी हैं,
 केवल यही एक पंक्ति जो दोनों में मिलती है, यहाँ प्रसंगानुसृत होने के कारण ग्रहण की गयी है ।
 दा० नि० में यह साखी ऊपर की चौथी पंक्ति के पूर्व आती है । बी० में इस साखी का पाठ है—
 परदे परदे चलि गए समुझि परी नहीं बानि । जो जानहि सो बांचिहै होत सकल की हानि ॥
 किहु दा० नि० की साखी का पाठ श्रेष्ठतर तथा प्राचीनतर ज्ञात होता है, अतः मूल रूप में वही
 स्वीकृत हुआ है ।

[१२]

दा० नि० बड़ी अष्टपदी ५, बी० ११—

१. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त—

जिनि यह सुपिनां फुर करि जानां । और सबै दुखियादि न आनां ।

ग्यान हीन जेते नहीं सूता । मैं जाग्या बिलहर मैं भूता ॥

पारधी वान रहे सर (पुन०) साधे । बिलख वान (पुन०) मारे बिल बांधे ॥

[दा० नि० में प्रथम पंक्ति की पुन०, तुल० बड़ी अष्टपदी ७-४ यथा : संसय सावज सब
 संसारा । काल अहेरी सांभ सकारा ॥ तथा बी० रमैनी १०-४ यथा : संसय सावज सब
 संसारा । काल अहेरी सांभ सकारा ॥ ३. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त—

दावातु अति बिकला साखी सोहि लै जमा ॥
 पवन सहाइ लोग अति भइया । जग चरचा बहु दिसि फिरि गइया ॥

नां जानों कब मारिहै, कै घरि कै परदेस ॥१२॥^{१५}

[३३]

गन गंधर्व सुनि अंत न पावा । हरि अलोप जग धंधे लावा ॥^{१५}

जम के चरचहुं दिसि फिरि लागे । हस पखेरुआ अब कहां जाइवे ॥

केस गहरे कर निस दिन रहई (तुल० ऊपर की साखी की प्रथम पंक्ति)। जब जरि
अैंचैं तब धरि चहई ॥

कठिन पास कछु चलै न उपाई । जम द्वार सीमें सब जाई ॥

सोई आस सुनि रांम न गावै । मृग त्रिस्नां भूठी दिन धावै ॥

४. दा० नि० मिरत काल (उर्दू मूल) : ५-६ बी० में यह दोनो पंक्तियाँ नहीं हैं, इनके स्थान पर--

आंधरि गुष्टि सिस्टि भई बोरी । तीनि लोक सहि लागि ठगारी ।

ब्रह्मा ठगो नाग कहं जारो । देवतन सहित ठगो त्रिपुरारी ॥

राज ठगौरी बिस्नुहि परी । चाँदह भुवन केर चौधिरी ॥

७. दा० नि० रस । ८. दा० नि० संसारा । ९. बा० बिख के संग कौन गुन होई । किंचित
लाम मूल गौ खोई ॥ १०. तुल० बा० र० ८४-२ : साया मोहन बंधे सब लोई । किंचित
लाम मूल गौ खोई ॥ ११. बा० गौ एकै राने । १२. बा० जिन जाना तिन बिख कै मानी ।
१३. बा० कहा भए नर सुध बेसुधा । १४. दा० नि० चिन परचै जग बूझनि बूझा । १५. बा० में
इसके बाद अतिरिक्त : मात के हान कवन गुन कहई । लालच लागे आसा रहई ॥ १६. बा०
में इस रमैनी की समापक साखी का पाठ है : सूबा है मरि जाहुगे, सुए कि बाजी डोल ।
सपन सनेही जग भया, सहिदानी रहिगी बोल ॥ यह दा० नि० में नहीं मिलती, किन्तु उपर की
साखी, जो बाजक की १९ वीं रमैनी से ली गयी है, प्रसंग के अधिक निकट है और साथ ही दा०
नि० में भी मिल जाती है । तुल० दा० साखी ४६-११ तथा १२-१३ : कबीर कहा गरबियी
काल गहै कर केस । नां जानैं कहां भासिरी कै धर कै परदैस ॥

[१३]

दा० नि० बही अष्टपदी २, वा० १६—

१. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : दान पुन्य हम दहूँ निरासा। कब लग रहूँ नटारंभ काऊँ॥ २. दा० नि० फिक्त फिक्त सब चरन तुलाने। ३. दा० नि० हारि चरित अगम कहै को जानै, वाम० हारि परे तहां अति रसिया नाना (उद्गमूल)। ४. दा० नि० रहबौ अलख जग धबे लावा। ५. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त—

इहि बाजे सिवलिनि प्रविष्टि भुवि लामाइन ग्रुप कालको विविध अवस्था, Haridwar

गहनी^१ बिदु^२ कछु^३ नहिं सूझै । आप गोप भयो आगम बूझै^४ ॥

भूलि परा जिउ अधिक डेराई । रजनीं ग्रंथ कूप होइ आई ।

भाया मोह उनवै^{१०} भरपूरी । दादुर दामिनि पवनां पूरी ।

तरपै बरसै अखंड धारा^{११} । रैनि भयावनि कछु न अधारा^{१२} ॥^{१३}

सबै लोग जहं डाइया, अंधा सबै भुलांन ।

कहा कोई मानै नहीं, सब एकै साहिं समान ॥१३॥^{१४}

[१४]

अलख निरंजन लखै न कोई । जेहि बंधे बंधा सब लोई ॥^१

जेहि भूठे बंधायौ आनां^२ । भूठी बात सांच कै जानां^३ ॥

बंध बंध कीन्हें बहुतेरा^४ । करम बिबरजित रहे न नेरा^५ ॥

खट आत्म खट दरसन कीन्हां । खट रस बांछि करम संगि दीन्हां ।^६

चार वेद छ साख बखानै^७ । बिद्या अनंत कथै को जानै ॥^८

तप तीरथ कीन्हें ब्रत पूजा । धरम नेम दांन पुनि दूजा ॥^९

और अगम कीन्हें बेवहार^{१०} । नहिं गमि सूझै^{११} बार न पारा ॥^{१२}

साया मोह धन जोबनां, इनि बंधे सब लोई ।

भूठे भूठ बियापिया कबीर, अलख न लखई कोइ ॥१४॥^{१३}

ब्राहि ब्राहि इनि कीन्ह पुकारा । राखि राखि साईं इहि वारा ॥

कोटि ब्रह्मंड गहि दीन्ह फिरी । फल कर कोट जन्म बहुतारी ॥

ईश्वर जाग खरा जब लीन्हां । टखौ ध्यान तप खंडन कीन्हां ॥

सिध साधिक उन्तै कहहु कोई । मन चित अस्थिर कह कैसे होई ॥

लीला अगम कथै को पारा । बसहु समीप कि रहहु निनारा ।

६. दा० नि० गहन (उद् मूल) । ७. वी० बंधन । ८. वी० बान । ९. वी० धाकि परे (पुन० तुल०) उपर की प्रथम पंक्ति का दूसरा चरण) तब किछु वां न वृत्ता । १०. वी० उहां । ११. वी० बरसै तपै अखंडित धारा । १२. दा० नि० रैनि भांभिनी (उद् मूल) । १३. दा० नि० में इस रसैनी की अंतिम चार पंक्तियां पहले हैं और प्रथम दोनो पंक्तियां बाद में । बीच में सात पंक्तियां और आती हैं जो प्रस्तुत ग्रंथ में सोलहवीं रसैनी के रूप में स्वीकृत हुई हैं । १४. दा० नि० में यह साखी नहीं मिलती ।

[१४]

दा० नि० बड़ी अष्टपदी २, वी० २० २२—

१. तुल० दा० नि० बड़ी अष्टपदी २-१ : अलख निरंजन लखै न कोई । निरमै निराकार है सोई ॥ २. दा० नि० भूठनि भूठ सांच करि जानां, वी० (बाराबंकी) जेहि भूठे सो बंधो अयोना (स्वीकृत पाठ वी० काहे) । ३. दा० नि० भूठनि में सब सांच लुकांन । ४. वी० धंश बंधा कीन्ह बेवहारा (पुन०) । ५. वी० बरसै निनारा । ६. दा० दा० खट रस खाटि कांम रस लीन्हां, वी० पट रस बरतु खोट सब चीन्हां, वी० पटरस बास पटै बस्तु चीन्हां । ७. वी० चारि वृष छव सोख (वी० सखा) बखानै । ८. वी० बिद्या अग्रनित गनै न जानै । ९. वी० जप तीरथ कांजै ब्रत पूजा । दा० पुनि कांजै बहु दूजा । १०. वी० औरो आगम करै बिचारा । ११. वी० ते नहिं सूझै । १२. वी० में यह पंक्ति उपर की पंक्ति के पूर्व आती है । दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त : लीला करि और मूल फिरी । अष्ट बहुत कहु कहे न आती । दा० नि० में इस साखी का

[१५]

अलपे सुख दुख आहि अनंता^१ । मन मैगर भुलान मैमंता^२ ॥१॥
 दीपक^३ जोति रहै^४ इक संगी । नैन नेह जस^५ जरै पतंग^६ ॥२॥
 सुख बिलाम किन्ह नहि पावा^७ । परिहरि सांच भूठ दिन^८ धावा ॥३॥
 लालच लागे जनम सिरावा^९ । अंति काल दिन आइ तुरावा^{१०} ॥४॥
 भरम का बांधा ई जग, एहि बिधि आवै जाइ ।
 मानुख जनम नर पाइ कै, काहे कौ जहंडाइ ॥१५॥^{१२}

[१६]

तेहि^१ बियोग तै^२ भए^३ अनाथा । परे निकुंज न पावै पंथा^४ ॥१॥
 बेदनि आहि कहं को मानै । जानि वृष्णि में भया अयांनै^५ ॥२॥
 नट बहु रूप खेलै जो जानै^६ । कला केर गुन ठाकुर मानै^७ ॥३॥
 ओ खेलै^८ सबहिन^९ घट मांहीं । दूसर के लेखै^{१०} कछु नांहीं^{११} ॥४॥
 भले रे पोच औसर जब आवा^{१२} । करि सनमान पूरि जन पावा^{१३} ॥५॥
 जेहि कर सर लागै हिए, सोई जानै पीर ।
 लागै सौ भाजै नहीं, सुखसिंधु निहारि कबीर ॥१६॥^{१४}

पाठ है : मंदलि तो है नेह का मति कोई पैठे घाय । जो कोई पैठे घाई कै विन सिर सेती जाय ॥ किन्तु यह साखी उक्त प्रसंग में उपयुक्त नहीं जान पड़ती. अतः इसके स्थान पर दा० नि० से एक अन्य साखी ली गयी है, जो उनमें इस रमैनी के आरंभ में ही आती है और प्रसंगानुकूल भी है ।

[१५]

दा० नि० बड़ी अष्टपदी ५, बी० २३—

१. बी० दुख आदि औ अंता । २. बी० मन भुलान मैगर मैमंता । ३. बी० अमल । ४. बी० हाहे । ५. दा० दा० मानुं, दा० मन । ६. बी० में यह अगली पंक्ति के पश्चात् है । ७. बी० सुख विसराय मुक्ति कह पावै (?) । ८. बी० निज । ९. बी० में इसके पूर्व अतिरिक्त : कछु विचार जे सब दुख जाई । परिहरि भूठा केरि सगाई (तुल० ऊपर की पंक्ति का दूसरा चरण) । १०. बी० सिराई । ११. बी० जरा मरन नियरायल आई । १२. तुल० दा० नि० सतपदी ३ : कर्म का बांधा जीयरा अह निसि आवै जाइ । मनसा देही पाइ करि हरि विसरे तो फिरि पीछे पड़ताइ ॥

[१६]

दा० नि० बड़ी अष्टपदी २, बी० ६८—

१. दा० नि० तिहि । २. दा० नि० तजि । ३. बी० भया । ४. बी० परि निकुंज बन पावन पंथा । ५. बी० वेदो नकल कहै जो जानै । जो समुझै सो भलो न मानै ॥ ६. बी० नट वट बंद खेलै जो जानै । ७. बी० तेहि का गुन सो ठाकुर मानै । ८. बी० उहै जो खेलै । ९. बी० सब । १०. बी० लेखा । ११. दा० नि० में इसके पश्चात् अतिरिक्त : जाके गुन सोई पै जानै । और को जानै पार अयांनै ॥ १२. बी० भलो पोच जो औसर आवै । १३. बी० कैसहु कै जन पूरा पावै । १४. यह साखी दा० नि० में मध्यम Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[१७]

जियरा आपन दुखहि संभारु^१ । जो^२ दुख व्यापि रहा संसारु^३ ॥१॥
 माया मोह बंधे सब लोई । किंचित^४ लाभ मूल^५ दिवौ खोई ॥२॥
 मैं मेरी करि बहुत विगूता^६ । जननीं उदर जनम का सूता^७ ॥३॥
 बहुतें रूप भेख बहु कीन्हां^८ । जुरा सरन कोथ तन खीन^९ ॥४॥
 उपजि दिनसि फिरि जोइनि आवै । सुख कर लेसन सपनेहु पावै^{१०} ॥५॥
 दुख संताप कष्ट^{११} बहु पावै । सो न मिला जो जरत बुझावै^{१२} ॥६॥
 जिहि हित जीव राखिहै भाई । सो अनहित होइ जाइ बिलाई^{१३} ॥७॥
 मोर तोर महुं जर जग सारा^{१४} । भ्रिग स्वारथ भूठा हंकारा^{१५} ॥८॥
 भूठै मोह रहा जग लागी^{१६} । इनतैं भागि बहुरि पुनि आगी^{१७} ॥९॥

^१आपु आपु चेतै नहीं, कहौं तो रुसवां होइ ।

कहै कबीर जो सपनैं जागै, निरग्रहि अस्थि न होइ ॥१०॥

[१७]

१. दा० नि० रेरे जिय अपना दुख न संभारा । २. दा० नि० जिहि । ३. दा० नि० व्याप्या सब संसारा । ४. दा० नि० मूल । ५. दा० नि० अल्प । ६. दा० नि० मानिक । ७. दा० नि० मोर तोर में सबे विगूता । ८. दा० नि० जनना बोध गरम (पुनः) महुं सूता । ९. दा० नि० बहुतक खेल खेलै बहु कूता, बाम० ई बहु खेलि खेलै बहु रूपा । १०. दा० नि० जन भौरा अस गण बहुत । ११. दा० नि० उपजै विनसे जोनि फिराई । सुख कर मूल न पावै चाहौ ॥ १२. दा० नि० कलेस । १३. दा० नि० (चारावकी) में यह दोनों पंक्तियों उपर की तीसरी पंक्ति के पूर्व आती है । १४. दा० नि० जो हित कै राखै सब सोई । सब समान बंधा नहि कोई । १५. दा० नि० करि जरे अपारा । १६. दा० नि० मृग त्रिस्नां कूठा संसारा । १७. दा० नि० माया मोह भूठ रही लागी । १८. दा० नि० का भयोइहां का हैहै आगी (उर्दू मूल) । १९. दा० नि० में साखी के पूर्व की अतिरिक्त पंक्तियाँ—

कहु कहु चेत देखि जीव अबहीं । मनिखा जनम न पावै कबहीं ॥

सार आहि जे संग पियारा । जब चेतै तबहैं उजियारा ॥

त्रिजग जोनि जो आहि चचेता । मनिखा जनम भयो चित चेता ॥

आत्मा मुरुखि मुरुखि जरि जाई (?) । पिछले दुख कहतां न विराई ॥

सोई मास जे जानै हंसा । तो अजहं न जीव करे संतोसा ॥

भौसागर अति बार न पारा । ता तिरिजे का करहु विचारा ॥

[दा० नि० में इस पंक्ति की पुनरावृत्ति, तुल० सतपदी ७-४ (पाठ वही)]

जा जल की आदि अंति नहि जानिए । ताको डर काहे नहि मानिए ॥

को बोहिय को खेवट आही । जिहि निरिए सो लजै चाहौ ॥

समझि विचारि जीव जब देखा । यहु संसार सुपन करि लेखा ॥

मई बुद्धि कहु न्यांन निहारा । आप आप ही किया विचारा ॥

आपन मैं जे रह्यो समाई । नेहू दूरि चली नहि जाई ॥

ताके चीन्है परचो पावा । मई समाधि तासूं मन लावा ॥

दा० नि० में इस साखी का पाठ है : भाव भगति हित बोहिया सतगुर खेवनहार । अल्प उदिक तब जानिए जब गोपद खुर विस्तार ॥ [तुल० दा० नि० सतपदी साखी ७ : भौसागर अथाह जल तपि कीहियरि । कालिदास कविप्रसन्न । तिसागुन देवालोपासु सखितपार] ।

[१८]

ब्रजहुं तैं त्रिन खिन सहि होई । त्रिन तैं बज्ज करै फुनि सोई ॥१॥
 नीभरु नीरु^२ जानि परिहरिया । करम के बांधै^३ लालच करिया ॥२॥^४
 भरम करम दोउ मति परिहरिया^५ । झूठे नाउं^६ सांच लै धरिया ॥३॥
 रजनीं गत भए रवि परकासा ।^७ भरम करम^८ बुहुं^९ केर बिनासा ॥४॥
 रवि प्रकास तारे गुन खीनां^{१०} । चर बीहर दोनों सहं लीनां^{११} ॥५॥
 बिख के दाधै^{१२} बिख नहि भावै^{१३} । जरत जरत सुख सागर पावै ॥६॥^{१४}

जरत जरत जल पाइया, सुखसागर का झूल ।

गुर परसादि कबीर कहि, भागी संसै झूल ॥१८॥^{१५}

[१९]

राम^१ नाम निज पाया सारा^२ । अविरथा^३ झूठ सकल संसारा ॥१॥
 हरि उतंग सैं^४ जाति पतंगा । जंबुक केहरि के ज्युं संग^५ ॥२॥
 किंचित है सुपिनै निधि पाई । हिय न समाइ कहं धरौं लुकाई ॥३॥^६
 हिय न समाइ छोरि^७ नहि पार । लागे लोभ न और हंकारा^८ ॥४॥
 सुमिरत हं अपनै उनमानां^९ । किंचित जोग राम सैं जानां^{१०} ॥५॥

[१८]

दा० नि० दुपदी २, बी० २१—

१. तुल० दा० नि० दुपदी २-११ यथा : बज्ज तैं त्रिन खिन भीतर होई ॥ त्रिन तैं कुलिस करै पुनि सोई ॥ २. बी० (बाराबंकी) नरु, बीभ० नीरु । ३. बी० बांधल । ४. दा० नि० में इसके पश्चात् अतिरिक्त : कहै कबीर कछु आहि न बाही । भरम करम दोउ मति गंधाई ॥ (पुन० तुल० आगे : भरम करम दोउ मति परिहरिया ॥) । ५. बी० करम धरस मति बुधि (पुन०) परिहरिया । ६. बी० झूठा नाम । ७. बी० रजगति त्रिविध कीन्ह परगासा । ८. बी० करम धरम । ९. बी० बुधि, दा० नि० धूँ (उर्दू मूल) । १०. बी० रवि के उदै तारा भी खीनां । ११. दा० नि० आचार व्योहार सब भए मलीनां । १२. बी० खाए । १३. बी० जावै । १४. बी० गारुड़ि सो जो मरत जियावै । १५. बी० में इस साखी का पाठ है : अलक जो लागी पलक में पलकहि में बसि जाय । बिखहर मंत्र न मानै ती गारुड़ि पाह कराय ॥ [किन्तु दा० नि० का पाठ अपेक्षाकृत अधिक प्रासंगिक लगता है ।]

[१९]

दा० नि० दुपदी २, बी० ६५—

१. बी० में इसके पूर्व अतिरिक्त—

अपनै गुन को अवगुन कहहु । इहै अभाग जो तुम न विचारहु ॥
 तू जियरा बहुते दुख पावा । जल विनु मीन कौन सचु पावा ॥
 चात्रिग जलहल असै पासा । स्वांग धरे भव सागर आसा ॥
 चात्रिग जलहल भरे जु पासा । मेव न बरसे चलै उदासा ॥

२. बी० अहं निज । ३. बी० औरो । ४. बी० तुम । ५. बी० जमघर (उर्दू मूल) किएइ जीव को संग । ६. दा० नि० नहि सोभा को धरो लुकाई । ७. दा० नि० जानिए । ८. बी० झूठा लोभ ते कुछ नहि चारा । ९. बी० सुमित । १०. दा० नि० मरत तर कुल

११ जिहि^{१२} दुरमति डोलै संसारा । परे असुम्कि वार नहिं पारा^{१३} ॥६॥

अंध भए सब डोलहीं, कोइ न करै विचार ।

कहा हमार मानें नहीं, किमि छूटै भ्रमजार ॥१६॥^{१४}

[२०]

अब गहि^१ रांम नांम अविनासी । हरि तजि^२ जनि^३ कतहुं कै^४ जासी ॥१॥

जहां जाहि तहां होहि पतंगा^५ । अब जिनि जरसि^६ समुक्ति बिख संग ॥२॥

बोला रांम नांम मनि लोन्हां । भिगी कीट भिन्न नहिं कोन्हां ॥३॥^७

भौसागर अति वार न पारा । तिहि तिरिखे का करहु बिचारा ॥४॥^८

मनि भावै अति लहर विकारा^९ । नहिं गमि सूझै^{१०} वार न पारा ॥५॥

भौ सागर अथाह जल^{११}, तामैं^{१२} बोहिय रांम आधार ।

रहै कबीर हरि सरन गहु, तब गोबद्ध खुर विस्तार^{१३} ॥२०॥

चौतीसी रमैनी^१

बावन अक्खिर लोक त्रै, सब कछु इनहीं सांहि ।

ए सब खिरि खिरि जाहिंगे, सो अक्खिर इन मंहि नांहि ॥१॥

तुरुक तरीकत जानिए, हिंदू बेद पुरांन ।

मन समुझावन कारनैं, कछु एक पड़िए ग्यान ॥२॥

×

×

×

छागर होइ जाना । ११. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त—

सुखां साथ का जानिए असाधा । कथंचित जोग रांम मैं लाधा ॥

कुविज होइ अंतित फल बंछा । पहुँचा तब मन पूर्ण इच्छा ॥

नियर थैं दूरि दूरि थैं नियरा । रांम चरित नां जानिए जियरा ॥

सांत थैं अगिनि सांत पुनि होई । रवि थैं ससि ससि थैं रवि सोई ॥

सांत थैं अगिनि (पुन०) होइ परजरई । धल थैं निधि निधि थैं धल करई ॥

गिरिवर छार छार गिरि होई । अविगति गति जानै नहिं कोई ॥

१२. बी० जीव । १३. बी० ते नहिं सूझै वार न पारा । १४. दा० नि० में यह साखी नहीं है ।

[२०]

दा० नि० सतपदी ७, बी० २० २०—

१. बी० कहु (उई सूल) । २. बी० छोड़ि (पाठांतर : तजि) । ३. बी० जियरा । ४. बी०

कतहुं न । ५. दा० जहां जाइ तहां तहां पतंगा । ६. बी० जरहु । ७. बी० रांम नाम ली

लाय सु लोन्हां । भिगी कीट समुक्ति मन दोन्हां ॥ ८. बी० भव अस गरुवा दुख कै भारा ।

करु जिव जतन जे देखु विचारा ॥ ९. बी० मन का बात है लहर विकारा । १०. बी० ते नहिं

सूझै । ११. बी० इच्छा के भवसागर । १२. बी० में 'तामैं' शब्द नहीं है । १३. दा० नि० कहे

कबीर हम हरि सरन, तब गोपद खुर (पुन०) विस्तार ।

चौतीसी रमैनी—१. यह रमैनी दा० ३ दा० नि० ग० तथा बी० में मिलती है । दा० नि० में इसका

क० प्र०—क० १

२ जहाँ बोल तहं अचखर आवा ॥ जहं अबोल तहां मन न रहावा ॥१

बोल अबोल भंभि है सोई । जस ओहु है^४ तस लखै न कोई ॥३॥२

अल्लह लहौ त क्या कहौ, कहौ त को उपकार ।

बटक बीज मंहि^५ रमि रहा, जाका तीन लोक बिस्तार ॥४॥३

ओं ओंकार आदि में जानां । लिखि अरु^६ भेटै ताहि न मानां ॥

ओं ओंकार लखै जौ कोई^७ । सोई लखि^८ भेटनां न होई^९ ॥५॥

कबका कंवल किरन मंहि^५ पावा^{१०} । ससि बिगास^{१२} संपुट नहि आवा ।

अरु जे तहां कुसुम रस पावा^{१३} । अकह^{१४} कहा कहि^{१५} का ससुभावा^{१६} ॥६॥

खखला इहै खोरि^{१७} मन आवा^{१८} । खसमहि^{१९} छांड़ि बहूं दिसि^{२०} धावा ।

खसमहि जानि^{२१} खिमां करि रहै । तौ होइ न खीन^{२२} अखै पद लहै ॥७॥

गंगा गुर के बचन पछांनां^{२३} । दोसर^{२४} बात न धरई^{२५} कानां ॥

रहै^{२६} बिहंगम कतहु^{२७} न जाई । अगह गहै गहि^{२८} गगन रहाई ॥८॥

शीर्षक 'ग्रन्थ वाचना', गु० में 'वाचन अखरी' तथा बी० में 'ज्ञान चांतीसा' मिलता है। बीम० में इसका नाम 'चांतीसा' दिया हुआ है। दा० नि० गु० में 'ग्रन्थ वाचना' या 'वाचन अखरी' शीर्षक संस्कृत के वाचन वर्णों को परंपरा को ध्यान में रखकर दिये हुए ज्ञात होते हैं, किन्तु प्रस्तुत रचना में हिन्दी वर्णमाला के चांतीस अक्षरों ('क' से लेकर 'म' तक के पच्चीस अक्षर, 'य' से लेकर 'ह' तक के आठ और एक ओंकार = ३४ अक्षर) का ही उपयोग किया गया है, वाचन का नहीं। अतः बी० तथा बीम० के शीर्षक ही उपयुक्त ज्ञात होते हैं। बीम० में इसे 'चांतीसा' कहा गया है और रमैनी के समान छंद मिलने के कारण प्रस्तुत सम्पादन में इसके लिए 'चांतीसी रमैनी' शीर्षक निश्चित किया गया है। २. बी० में इसके पूर्व की चार पंक्तियाँ नहीं मिलती, किन्तु दा० नि० गु० में मिलने के कारण स्वीकृत हुई हैं। कठिनाई केवल 'वाचन' शब्द के सम्बन्ध में है। गु० में दूसरी साखी ऊपर की छठी पंक्ति के पश्चात् मिलती है। ३. तुल० बी० सा० २०४ : जहाँ बोल तहं अचखर आया। जहं अचखर तहं मनहि दहाया ॥ बोल अबोल एक है सोई। जिनि यह लखा सो बिरला होई ॥ [बी० में यह पंक्तियाँ साखियों के बीच मिलती हैं, किन्तु छंद में पर्याप्त भिन्नता है। पहले संभवतः यह किसी प्रति के हाशिये में लिखी रही होगी जिसे कालांतर में किसी प्रतिलिपिकार ने भूल से मूल भाग में सम्मिलित कर लिया होगा।] ४. दा० नि० जे कुछि है। ५. दा० नि० में। ६. दा० नि० में यह द्विपदी स्थानांतरित (दे० आगे ३४वीं द्विपदी का पाद-टिप्पणी), गु० में इसके बाद अतिरिक्त : अलह लहंता भेद है रुकु कुछ पाइयो भेद। उलट भेद मनु बेधियो पाइयो अमंग अछेद ॥ ७. दा० नि० लिखि कै। ८. दा० नि० ओं ओंकार करे जस कोई, बी० ओं ओंकार कहै सब कोई। ९. दा० नि० तौ ताही लिखि (उर्दू मूल)। १०. बी० जिनि यह लखा सो बिरला होई। ११. गु० किरणि कमल मंहि पावा। १२. नि० ससि प्रकास, बी० ससि बिगसित। १३. बी० तहां कुसुम रंग जो पावै। १४. दा० नि० ती अकह। १५. नि० कहे। १६. बी० औगह गहि के गगन रहावै (पुन० दे० आगे ७-२ : अगह गहै गहि गगन रहाई)। १७. गु० खोडि। १८. बी० खला चाहे खोरि मनावै। १९. दा० नि० खोरिहि, गु० खोडे। २०. दा० नि० चहूं दिसि। २१. बी० छांड़ि। २२. दा० नि० निखव, गु० निखिअउ (उर्दू मूल)। २३. बी० बचनहि माना। २४. गु० दुजा। २५. दा० नि० धरिण, बी० करै नहि। २६. दा० नि० सोई बी० तहां। २७. दा० नि० कतहु (उर्दू मूल)। २८. दा० नि० अगह गहै गहि, बी० औगह गहि के।

घट्टा घटि घटि निमसै^१ सोई । घट फूटे घट कबहुं^२ न होई ॥^३
 ता घट मांहि घाट जो पावा । तौ सुघट^४ छांड़ि औघट कत थावा ॥^५
 नन्ना^६ निग्रह^७ सौं नेह करि, निरुवारै संदेह^८ ।
 नांहों देखि न भाजिए, परम^९ सयानप एह ॥ १० ॥^{१०}
 चच्चा रचित^{११} चित्र है^{१२} भारी । तजि चित्रै^{१३} चेतहु चितकारी ।
 चित्र बिचित्र इहै^{१४} औडैरा^{१५} । तजि बिचित्र^{१६} चित राखि चितैरा^{१७} ॥ ११ ॥
 छछुछा आहि^{१८} छत्रपति पासा । छकि किन रहौ छांड़ि कै^{१९} आसा ।
 रे मन तोहि^{२०} छिन छिन समुझावा^{२१} । ताहि^{२२} छांड़ि कत आप बंधवा ॥ १२ ॥
 जज्जा यहु तन जियत जरावै^{२३} । जोवन जारि जुगति सो पावै^{२४} ॥ २५ ॥
 जुगति जानि जो जरि बरि^{२६} रहै^{२७} । तब जाइ जोति उजारा लहै^{२८} ॥ १३ ॥^{२९}
 भूभक्ता उरभि पुरभि नहि^{३०} जानां । रह्यो भूभक्ति नांहों परवानां^{३१} ॥
 कत भलि भलि औरन समुझावा । भगव^{३२} किए भगरा हो^{३३} पावा^{३४} ॥ १४ ॥
 नन्ना^{३५} निकटि जु घट रहै, दूरि कहां तजि जाइ ।^{३६}
 जा कारण जग डूडिया, नेरै^{३७} पाया ताहि ॥ १५ ॥^{३८}
 टट्टा बिकट बाट^{३९} घट^{४०} मांहों । खोलि कपाट महल जब^{४१} जाहीं ।
 रहै लपटि घट परचो पावा^{४२} । देखि अटल टलि कतहुं न जावा^{४३} ॥ १६ ॥

१. बी० बिनसै (उर्दू मूल) । २. गु० कवहि । ३. बी० घवा घट बिनसै घट होई । घटही महं घट राखु समोई । ४. गु० सो घट । ५. बी० सो घट घटे घटहिं फिरि आवै । घटही महं फिरि घटहिं समावै । ६. गु० डडा । ७. दा० नि० निरखि । ८. दा० प्रेम । ९. १०. तुल० बी० (आगे 'ज' के लिए स्थानांतरित) नन्ना निग्रह से कर नेह । कर निरवार छांड़ि संदेह ॥ नहीं देखि नहि भाजै कहै । जानहु परम सयानप एह ॥ ११. दा० नि० चरित, बी० रचो । १२. बी० बड़ । १३. दा० नि० तजि बिचित्र, बी० चित्र छोड़ि । १४. नि० गु० अवकरा (राज० हिन्दी मूल—'ड' तथा 'भ' में समानता के कारण) । १५. बी० जिन यह चित्र बिचित्र उखेला । १६. गु० चित्रै (पुन० ऊपर की पंक्ति में) । १७. बी० तैं चेतु चितेला । १८. दा० नि० इहै । १९. बी० मेदि सम, गु० छांड़ि किन (उर्दू मूल) । २०. दा० नि० तू, गु० में तज । २१. बी० में तोहां छिन छिन समुझावा । २२. बी० खसम । २३. बी० जियतहि जारो । २४. बी० जुक्ति जो पारो । २५. दा३ नि० अस जरि परजरि जरि बरि । २६. बी० जी कछु जानि जानि परिजरै । २७. बी० घटही जोति उजियारो करै । गु० अस जरि परजरि जरि (पुन०) जब रहै । २८. २९. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियां आगे 'घ' के लिए स्थानांतरित । ३०. बी० कत । ३१. दा० नि० रहि मुखि भूभक्ति भूभक्ति परवानां, बी० होइत डूडित जाइ पराना । ३२. दा० नि० भगरा । ३३. दा० नि० भगरावो । ३४. बी० कोटि सुमेर डूडि फिरि आवै, जो गड़ गडा गड़हिं सो पावै ॥ ३५. गु० बंवा । ३६. दा० नि० नेहै, गु० नेरउ । ३७-३८. बी० में यह दोनों पंक्तियां नहीं हैं, इनके स्थान पर वह द्विपदो आया है जो दा० नि० गु० में ऊपर 'ड' के लिए आ चुका है । इसके बाद बी० में अतिरिक्त : नहीं देखि नहि आप भजाऊ । जहां नहीं तहां तन मन लाऊ । जहां नहीं तहां सब कछु जानो । जहां नहीं तहां ले पहचानी ॥ (तुल० पद १२३-३, ४; पृ० ७३) ३९. गु० नि० बाट । ४०. बी० मन । ४१. बी० सो, बी० तैं, गु० किन । ४२. बी० रही लटापटि जुटि तेहि माहीं । ४३. गु०

ठूठा दूर ठौर ठग नियरा^१ । नीठि नीठि मन कीयो घोरा^२ ।
 जिहि ठग ठग्यो^३ सकल जग खावा । सो ठग ठग्यो ठौर भव आवा ॥१७॥^४
 डड्डा डर उपजै डर जाई^५ । डरही महं डर रहा समाई^६ ।
 जो डर डरै तो फिरि डर लागै^७ । निडर होइ तो उरि डर भागै^८ ॥१८॥
 ढढ्ढा ढिग ढूँढहि कत आंतां^९ । ढूँढत^{१०} ही ढहि गए परांतां^{११} ॥
 चढ़ि^{१२} सुमेर ढूँढि जब^{१३} आवा । जिहि गढ़ गढ़ा सु गढ़ महि पावा^{१४} ॥१९॥
 रांरां रांरि^{१५} रूतौ नर नाहीं करै । नां फुनि नवै न सब संचरै ॥^{१६}
 धनि जनम ताही कौ गनै । भारै^{१७} एक तजि जाहि धनै ॥२०॥^{१८}
 तत्ता अतिर तिरयो^{१९} नहि जाई । तन त्रिभुवन^{२०} सहि रहा समाई^{२१} ।
 जे त्रिभुवन मन^{२२} माहि^{२३} समावै । तौ^{२४} तत्तहि तत्त मिलै सच्चु पावै^{२५} ॥२१॥
 थथा अथाह^{२६} थाह नहि पावा^{२७} । ओहु^{२८} अथाह यहु^{२९} थिर न रहावा^{३०} ॥
 थोरै थलि थानक^{३१} आरंभै । तौ बिनहीं थामह^{३२} मंदिर थंभै ॥२२॥^{३३}
 ददा देखि जु^{३४} बिनसनहारा । जस अदेख^{३५} तस राखि^{३६} विचारा ॥
 दसवै द्वारि जब कूंची दीजै^{३७} । तब दयाल कौ दरसन कीजै^{३८} ॥२३॥
 धधधा अरधै उरध नबेरा । अरधै उरधै मंझि बसेरा ॥^{३९}
 अरधै छांड़ि^{४०} उरध जौ आवा^{४१} । तौ अरधहि उरध मिला सुख पावा^{४२} ॥२४॥

में दोनों चरन परस्पर स्थानांतरित । १. दा० नि० गु० नीरा । २. बी० निति कै निटुर
 कीन्ह मन बीरे । ३. दा० ठगि, नि० ठगि जु, बी० ठगे । ४. बी० जे ठग ठगे सब
 लोग सयाना । सो ठग बीन्हि ठौर पहिचाना । ५. बी० डर होई, नि० डड्डा डरऊं
 जे डर जाई । ६. बी० राखु समोई । ७. बी० डरहि फिरि आवै । ८. गु० निडर हुआ डर
 उर होइ भागै, बी० डरही महं फिरि डरहि समावै । ९. बी० ढडा ढूँढत ही कत जान ।
 १०. बी० हींढत । ११. दा० नि० ढूँढत ढूँढत गए परांतां । १२. बी० कोटि । १३. दा०
 नि० जग, बी० फिरि । १४. बी० जेहि ढूँढा सो कतहुं न पावै, बी० जे गढ़ गढ़ा गढ़हि सो
 पावै, गु० जिहि गढ़ गढ़िओ सु गढ़ महि पावा (पंजाबी प्रभाव) । १५. दा० नि० रिग । १६. बी०
 नाना दुई बसाए गाऊं । रे ना ढूँढै तेरे नाऊं (बी० नाना ढूँढै नाना तेरे नाऊं) ॥ १७. दा०
 नि० मरै । १८. बी० सुए एक जाय तजि घना । मरहि इत्यादिक ते के गिना ॥ १९. बी०
 अति त्रियो, बी० अति तिरियो, गु० अतर तरियो । २०. गु० त्रिभुवन । २१. व० राखु
 छिपाई । २२. बी० तन । २३. बी० जौ तन त्रिभुवन माहि । २४. बी० में नहीं । २५. बी०
 तत्तहि मिलै तत्त सो पावै । २६. बी० अति अथाह । २७. बी० जाई । २८. दा० नि० वो ।
 २९. दा० नि० यहि । ३०. बी० ई थिर ऊ थिर नाहि रहाई । ३१. दा० नि० थानै । ३२. दा०
 नि० थंभै । ३३. बी० थोर थोर थोर होहु रे माई । बिनु थंभै (बी० खंभै) जस मंदिर
 थंभाई । ३४. बी० देखहु । ३५. दा० नि० जस न देखि, बी० जस देखहु । ३६. बी० करहु ।
 ३७. बी० दसहुं दुवारे तारी लावै । ३८. बी० पावै । ३९. बी० घधा अरध माहि अंधियारा ।
 अरध छांड़ि उरध मन तारी (पुनः) ॥ ४०. दा० नि० त्यागि । ४१. बी० सन लावै ।
 ४२. दा० नि० तौ उरधहि छांड़ि अरध कत पावा, बी० आपा मेटि कै प्रेस बढ़ावै ।

नञा निस दिन निरखत जाई । निरखत नैन रहे रतवाई^१ ॥३॥
^२निरखत निरखत जब जाइ पावा । तब लै निरखै निरख मिलावा ॥२५॥^३
 पप्पा अपार पार नहि पावा । परम जोति सौं परचौ लावा^४ ।
 पांचौं इंद्रो निग्रह करई । पाप पुनि दोऊ निरवरई^५ ॥२६॥^६
 फफफा बिनु फूलां फल होई । ता फल फंक लखै^७ जो कोई ॥
 दुनों न परई फंक बिचारै । ता फल^८ फंक सभै तन फारै ॥२७॥^९
 बंदा बंदहि बंद^{१०} मिलावा । बंदहि बंद न बिछुरन पावा ॥
 बंदा होइ बंदगी गहै^{११} । तौ बंदगि^{१२} होइ बंद सुधि^{१३} लहै ॥२८॥^{१४}
 भग्ना भेदहि भेद मिलावा^{१५} । अब भौ^{१६} भानि भरोसा आवा ॥
 जो बाहरि सो भीतरि जानां । गयौ भेद भूपति पहिचानां ॥२९॥^{१७}
 मग्ना मन सौं^{१८} काज है, मन साधै^{१९} सिधि होइ ।
 मनहीं मन सौं^{२०} कहै कबीरा, मन सा^{२१} मिला न कोइ ॥३०॥^{२२}
 मग्ना मूल गहै मन मानै । मरमो होइ सो मन कौं^{२३} जानै ॥
 मति कोइ मन^{२४} मिलता बिलमावै । मगन भया तैं सो सच्चु पावै ॥३१॥^{२५}
 जज्जा जानौं तौ दुरमति हनि^{२६}, करि बसि काया गांउं ॥
 रन रतौं भाजौं नहीं, तौ सूरु थारौ^{२७} (तिहारी?) नांउं ॥३२॥^{२८}

१. बी० रतवाई । २. बी० निमिख एक जी निरखै पावै । ताहि निमिख मह नैन छिपावै ॥
 ३-४. बी० में यह दोनों पंक्तियों 'ड' के लिए आयी हैं, यहाँ पर 'न' के लिए उसमें केवल
 एक पंक्ति है : चौथे बी० नाना मह जाई । राम के गदहा हो खर खाई ॥ ५. दा० नि० आवा ।
 ६. दा० नि० दोऊ नां संचरै । ७. बी० में 'प' के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—पप्पा
 पाप करे सब कोई । पापके करे (बी० भ० धरें) धरम नहि होई ॥ पप्पा कहै सुनहु रे भाई ।
 हमरे से इन (बी० भ० सेवे) किछुवो न पाई ॥ ८. गु० फूलह । ९. दा० नि० लहै ।
 १०. दा० नि० ताका । ११. बी० में 'क' के लिए : फफफा फल लागे बड़ दूरी । चाखै सतगुरु
 देइ न तूरी ॥ फफफा कहै सुनहु रे भाई । सरन पताल कि खबरि न पाई ॥ (बी० में उत्तरार्द्ध
 नहीं है) । १२. बिंदहि बिंद (उर्दू मूल) । १३. दा० नि० जे बंदा बंद गहि रहे । १४. गु०
 बंदक (उर्दू मूल) । १५. दा० नि० समै बंद । १६. बी० में 'ब' के लिए : बाबा बरबर
 कर सम कोई । बरबर करे काज नहि होई । बाबा बात कहै अरथाई । फल का मरम न जानहु
 भाई ॥ १७. दा० नि० मग्ना भिदे भेद नहि पावा । १८. दा० नि० अर भै । १९. बी० में
 'भ' के लिए : भग्ना भमरि रहा भरपूरी । भमरे ते है नियरै दूरी । भग्ना कहै सुनहु रे भाई । भमरै
 आवै भमरे जाई । २०. गु० सिउ । २१. दा० नि० मान्यां । २२. दा. नि० सो । २३. गु०
 में यह साखी अगली दो द्विपदियों के पश्चात् आयी है और बी० में यह साखी नहीं मिलती ।
 २४. दा० नि० मरमहि । २५. दा० नि० मनसा । २६. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : इहु मन
 सकती इहु मन सीउ । इहु मन पंच तत को जीउ । इहु मन लै जउ उनमनि रहे । तउ तीन लोक
 की बात कहै ॥ (तुल० गोरखबानी, पृ० १८) । बी० में 'म' के लिए : मग्ना सबै मरम ना पाई ।
 हमरे से इन मूल गंवाई । (पुन० तुल० बी० पंक्ति ४५-२) । माया मोह रहा जग पूरी । माया मोहहि
 लखहु बिसृष्टी । २७. दा० नि० हारी । २८. दा० नि० गु० थारी (मूल कदाचि 'तिहारी') ।
 २९. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ 'ज' के लिए स्थानांतरित । बी० में इनके स्थान पर : जज्जा

ररा सरस^१ निरस करि जानैं । होइ निरस सो रस पहिचानैं^२ ॥
 यहु रस छांडे^३ यहु रस आवा^४ । यहु रस पीएं यहु नहि भावा^५ ॥३३॥^६
 लल्ला असें लौ मन लावै^७ । अनत न जाइ परम सुख पावै ॥
 अस जो तहां प्रेम लौ लावै । तौ अलह लहै लहि चरन समावै ॥३४॥^८
^९बाधा बाही जानिए, वा जानैं यहु होइ ।
 यहु अरु बहु जबहीं मिलैं, तब मिलत न जानैं कोइ ॥३५॥^{१०}
 सस्सा सो नीका करि सोयहु^{११} । घट परचा की बात निरोयहु^{१२} ।
 घट परचै जो उपजै भाउ । पूरि रह्यौ तहं त्रिभुवन राउ^{१३} ॥३६॥^{१४}
 खरखा^{१५} खोजि परै जे कोई । जे खोजै सो बहुरि न होई ॥
 खोजि ब्रह्मि जे करै बिचारा । तौ भौजल तरत न लावै^{१६} बारा ॥३७॥^{१७}
 सस्सा सो सह^{१८} सेज संवारे^{१९} । सोई सही^{२०} संदेह निवारै ॥
 अलप^{२१} सुख छांडि^{२२} परम सुख पावै । तब यहु तीअ^{२३} ओहु कंत कहावै^{२४} ॥३८॥
 हहा होत होइ^{२५} नहि जानां । जबहीं^{२६} होइ तबै मन मानां ।
 है तो सही लखै^{२७} जो कोई । तब ओही ओहु एहु न होई^{२८} ॥३९॥^{२९}

जगत रहा भरपूरी (तुल० बी० पंक्ति ५३-१) । जगतहु ते है जाना दूरो ॥ जज्जा कहे सुनी रे भाई । हमरे सेवे जै जै पाई ॥ १. गु० रस । २. दा० नि० सो रस करि मांनैं । ३. दा० नि० बिसरै । ४. दा० नि० होई । ५. दा० नि० सो रस रसिक लहै जो कोई । ६. बी० में 'र' के लिए : ररा रारि रहा अरुआई । राम कहे दुख दालिद जाई । ररा कहे सुनहु रे भाई । सतगुरु पूछि के सेवहु आई ॥ ७. दा० नि० लल्ला लै मन सी मन लावै । ८. दा० नि० में यह द्विपदी 'ह' के बाद आती है । यहाँ दा० नि० में निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं : लल्ला लहो तो भेद है, कहीं तो को उपगार । बटक बीज में रमि रहा, ताका तीन लोक बिस्तार । (तुल० पीछे चौथी द्विपदी) । बी० में इस स्थल पर है : लल्ला तुतरे बात जनाई । तुतरे या तुतरे परचाई ॥ अपने तूतर और को कहई । एकै खेत दुनो निरबहई ॥ ९. गु० में इसके पूर्व अतिरिक्त : ववा बार बार बिसन संभारि । बिसन संभारि न आवै हारि । बलि बलि जे बिसन तना (राज०) जस गावै । बिसन मिले सभ ही सखु पावै । १०. बी० : ववा वह वह कह सब कोई । वह वह करे शान नहि होई । वह तो कहे सुनै जो कोई । सुरग पताल न देखै कोई ॥ ११. दा० नि० सोवै । १२. दा० नि० निरोवै । १३. दा० नि० मिले ताहि त्रिभुवन पति राव । १४. बी० में 'स' के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ आती हैं : सस्सा सर नहि देखै कोई । सर सीतलता एकै होई । सस्सा कहे सुनहु रे भाई । सुनन समान (बी०) सुन समान) चला जग जाई । १५. नि० क्षमा । १६. दा० नि० लावै । १७. बी० में 'प' के लिए : पष्पा खर खर कर सभ कोई । खर खर करे काज नहि होई (पु० तुल० बी० पंक्ति ४८) ॥ पष्पा कहे सुनहु रे भाई । राम नाम लै जाहु पराई ॥ १८. दा० ससा सोई जे ; नि० शशा शोई जे । १९. नि० शंवारे । २०. दा० नि० साह । २१. नि० अति । २२. दा० नि० बिसरै । २३. दा० नि० सो अस्त्री । २४. बी० में 'स' के लिए : सस्सा सरा रची बरियाई । सर बेधे सभ लोग तवाई ॥ सस्सा के बर सुनगुन होई । इतनी बात न जानै कोई ॥ २५. दा० नि० होइ होतु । २६. दा० नि० सो । २७. दा० नि० लहै । २८. दा० नि० जब वा होइ तब यहु न होई । २९. बी० में 'ह' के लिए : हा हा करत जीव सभ जाई । देव परै तब को (बी०) त कहवै) समझाई ॥ देव परे काहु अंत न पावा । कहहि कबीर असुन गोहवा । शिवत लाल द्वारा सम्पन्नित बीजक में 'ह' के लिए

१७५^२ खिरत खपत गए केते^३ । खिरत खपत अजहं नहिं चेतै^४ ॥
 अब जग जानि जौ मनां रहै^५ । जहं का बिछुरा तहं थिरु लहै^६ ॥४०॥^७

×

×

×

बावन (चौतिस ?) अखिर जोरे आनि । सका न अखिर एक पछानि^८ ॥
 सति का सबद कबीरा कहै । पंडित होइ सु अनभै रहै^९ ॥४१॥
 पंडित लोगनि^{१०} कौं व्यौहार । ग्यानवंत कौं तत्त बिचार ॥१२
 जाकै जिअ जैसी बुधि होई । कहै कबीर जानैगा सोई^{११} ॥४२॥^{१३}

—०—

साखी

(१) सतगुरु महिमा कौ अंग

रांम नांम^१ कै पटंतरै, देवे कौं कछु नाहिं ।
 क्या^२, लै गुर संतोखिए, हौंस रही मन माहिं ॥१॥
 सतगुर सवां न को [इ] सगा^३, सोधी सई^४ न दाति^५ ।
 हरि जी सवां न^६ को^७ [इ] हितू, हरिजन सई^८ न जाति^९ ॥२॥

निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं : ह हा होय होत नहिं जानै । जबही होय तबै मन मानै । है तो सही लहै सब कोई । जब वा होय तब या नहिं होई । [यहाँ बी० का पाठ दा० नि० से अत्यधिक मिलता है । बी० के अन्य संस्करणों में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं ।] १. गु० में इसके पूर्व अतिरिक्त : लिउं लिउं करत फिरै सभु लोगु । ता कारण बिअपै बहु सोगु ॥ लिखमीवर ६४ जउ लिउ लावै । सोगु मिटै सबही सुख पावै ॥ २. दा० नि० क्षमा । ३. दा० नि० नहिं चेतै । ४. दा० नि० वांते दिन केते । ५. दा० नि० जोरि मन रहै । ६. दा० नि० तौ जातै बिछुरा सो थिर लहै । ७. बी० (शिवप्रतलाल) में 'स' के लिए : छच्छा छिन परलय मिटि जाई । छेव परे तब को समझाई ॥ छेव परे कोउ अंत न पाया । कह कबीर अगमन गोहराया ॥ बी० के अन्य संस्करणों में पहली पंक्ति नहीं है । ८. दा० नि० एकी अखिर सक्या न जानि । ९. दा० नि० पूछी जाइ कहां मन रहै । १०. गु० लोगह । ११. नि० जाकै हिरदै जैसी होई । कहै कबीर लहेगा सोई ॥ १२-१३. दा३ दा४ में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं ।

साखी

[१] दा० १-४, नि० १-२३, सा० १-३१, सावे० १-१७, सासी० १-४७, स० १-१—

१. सावे० सासी० सत्तनाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । २. सासी० कह ।

[२] दा० १-१, नि० १-१, सा० १-४०, सावे० १-३, सासी० २-३, स० १-२, गुण० २-१—

१. सा० सतगुरु समान को सगा, सावे० सासी० सतगुरु सम को है सगा । २. दा२ सोची सर्वा को दाति, सा० सोधि समानी दात, सावे० सासी० साधू सम को दात । ३. सावे० सासी० हरि समान । ४. सावे० सासी० को है । ५. सा० हरिजन समानी जात, सावे० सासी० हरिजन सब-कोण Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चौसठि दीया जोइ करि, चौदह चंदा मांहि ।
 तिहि^१ घरि किसको चांदिनो^२, जिहि घरि^३ सतगुरु^४ नांहि ॥३॥
 निसि अंधियारी कारनै, चौरासी लख चंद ।
 गुर बिनु अति ऊदै भए^१, तऊ दिष्टि रहि मंद ॥४॥
 सतगुर नपुरा^१ क्या करै, जो^२ सिखही मांहें^३ चूक ।
 भावै त्यों^४ परमोधिए^५, ज्यों^६ बांसि^७ बजाइए^८ फूंक ॥५॥
 जाका गुरु है^१ आंधरा^२, चेला है जाचंध^३ ।
 अंधे अंधा ठेलिया^४, दोन्युं कूप परंत^५ ॥६॥
 संसै खायो सकल जग, संसा किन्हुं न खद्व ।
 जे बेधे गुरु अखितरां, ते संसा चुनि चुनि खद्व ॥७॥^१
 गुर सिकलीगर कीजिए^१, ग्यांन^२ मसकला देइ ।^३
 सबद छोलनां छोलि कै^४, चित^५ दरपन करि लेइ ॥८॥

[३] दा० १-१७, नि० १-११, सा० ४-६, सावे० ५-९, सासी० ५-६, स० १-४, गुण० ६-१—
 १. दा२ जिहि । २. नि० सा० सावे० सासी० चांदिनां । ३. गुण० गुरु । ४. दा० नि० स०
 गुण० गोधिद ।

[४] दा० १-१८, सा० ४-५, सावे० ५-१०, सासी० ५-७, गुण० ६-२—
 १. दा० अति आतुर ऊदै किया । २. दा० गुण० तऊ दिष्टि नहि (कैयी मूल) मंद, सासी०
 तऊ सुदिष्टिहि मंद ।

[५] दा० १-२१, नि० २-१२, सा० ३-१, सावे० ४-४, गु० १५८, बी० ३२१, गुण० १७१-१९—
 १. दा० सावे० बी० गुरु विचारा, गु० साचा सतिगुरु । २. दा० नि० गुण० जे, सा० जो, बी० में
 यह शब्द नहीं है । ३. गु० सिखा (?) महि, सा० शिष्ये मांहि । ४. सा० सावे० ज्यों ।
 ५. गु० अंधे एक न लागई, बी०म० शब्द बान बेवै नहीं । ६. बी० सा० सावे० में यह शब्द नहीं है ।
 ७. दा० नि० गुण० बंसि । ८. बी० बजाए, बी०म० बजाइन्हि, दा० नि० सा० सावे० गुण० बजाई ।

[६] दा० १-१५, नि० २-२, सा० २-२, सावे० २-२, सासी० ३-३, बी० १५४, गुण० ७-१६—
 १. दा० भी । २. दा० नि० गुण० अंधला । ३. नि० सा० सासी० चेला खरा निरंध, सावे०
 चेला निपट निरंध, बी० चेला काह कराय । ४. बी० अंधे अंधा पेलिया, सा० सासी० अंधे को अंधा
 मिला । ५. दा३ नि० दोन्युं खूहि पड़त, बी० दोऊ कूप पराय, सा० सासी० पड़ा काल के फंद ।

[७] दा० १-२२, सा० ८-८, सावे० २३-९, सासी० ३२-५७, गुण० ६-२१, बी० ८८—
 १. बी० संसा सब जग खंधिया, संसै खंधो न कोय । संसै खंवै सो जना, जो सबद बिबेकी होइ ॥
 तुल० सरह : साहके खाद्वउ सअल जगु सहकाण केणवि खद्व । जे सहका सहिअउ सो
 परमत्य बिलद्व ॥—राहुल सांकृत्यायन संपादित सरहपाद कृत 'दोहाकोष'; दो० १५८-५९ ।
 किंतु यह दोहा न वागची के संस्करण में मिलता है और न हरप्रसाद शास्त्री के । भोट अनुवाद
 में भी नहीं है । तुल० डोला मारूरा दूहा २२० : चिंता बंध्यउ सयल जग, चिता कि गहि न
 बंध । जे नर चिंता बस करइ, ते माणस नहि सिध्य ॥ किंतु यह दोहा 'डोला मारूरा दूहा'
 की किसी भी वाचना की किसी भी प्रति में नहीं मिलता, पता नहीं किस आधार पर यह
 उक्त ग्रंथ में सम्मिलित किया गया है ।

[८] दा० ४०-३, नि० १-२२, सा० २-२१, सावे० १-२४, तथा १-१०५ (दो बार) बी० १६०—
 १. बी०म० करि ले । २. बी० सावे० (२४) मनहि (पुन० दे० आगे 'चित्त') । ३. दा०
 सतगुर औसा चाहिए, जैसा सिकलीगर होइ । ४. दा० नि० सबद मसकला फेरि करि (तुल०
 ऊपर : ग्यांन मसकला देइ), नि० सा० सावे० मन का मेल छुड़ाइ के । ५. दा० नि० देह ।

सतगुरु सांचा सूरिवां^१, सबद जु बाहा एक ।
 लागत ही भुईं मिलि गया^२, परा करेजे छेक^३ ॥१॥
 बूड़ा^४ था पे^२ ऊबरा^३, गुरु^४ की लहरि चमकि^५ ।
 जब भेरा देखा जरजरा^६, तब^७ उतरि परा^८ फरंकि ॥१०॥
 थापनि^९ पाई यिति भई^२, सतगुरु दोन्हों^३ धीर ।
 कबीर हीरा बनिजिया, मानसरोबर तोर ॥११॥
 गूंगा हुआ बावरा, बहरा हुआ कान ।
 पांवां तैं^१ पंगुल^२ भया, सतगुरु मारा^३ बांन ॥१२॥
 सतगुरु की महिमां अनंत, अनंत किया उपगार^४ ।
 लोचन अनंत उधारिया, अनंत दिखावनहार ॥१३॥
 पाछें लागा जाई था^१, लोक वेद कै साथि ।
 पैंडे में सतगुरु मिला, दीपक दीया हाथि ॥१४॥
 दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट ।
 पूरा किया बिसाहुनां, बहुरि न आवाँ हट्ट ॥१५॥

- [१] दा० १-७, नि० १-२५, सा० १-५२, सावे० १७५, सासी० २-२, गु० १५७—
 १. गु० साचा सतिगुरु में मिलिआ । २. दा१ में मिलि गया, दा३ दा४ सा० सावे० सासी० में मिटि गया, नि० भरम मिटि गया । ३. दा० तथा गु० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है जिससे दोनों का संकीर्ण-सम्बन्ध सिद्ध होता है—तुल० दा० ४०-४ : सतगुरु सांचा सूरिवां, सबद जु बाहा एक । लागत ही में मिलि (दा२ दा३ मिटि) गया, पड़्या कलेजे छेक ॥ तथा गु० ११४ : कबीर सतिगुरु सूरमै बाहिआ बानु जु एक । लागत ही भुई गिरि परिआ परा करेजे छेक ॥
 [१०] दा० १-२५, नि० १-२०, सा० २-२०, सावे० १-१५, सासी० १-५६, गु० ६७—
 १. गु० हुआ । २. नि० पंगि (राज०) । ३. गु० उबरिओ । ४. गु० गुन (नागरी मूल) । ५. गु० ऊबकि । ६. गु० जब पेखिओ वेड़ा जरजरा । ७. सा० सावे० सासी० में 'तब' शब्द नहीं है । ८. गु० उतरि परिओ हउ, सा० सावे० सासी० ऊतरि भया ।
 [११] दा० १-२१, नि० १-२२, सा० १-४३, सावे० १-४८, सासी० २-६२, गु० १६१—
 १. गु० घूनों, सा० तिथि (हिन्दी मूल—तुल० आग आगत से) । २. सावे० सासी० धिर भया, सा० मन धिर भया । ३. गु० बंधी ।
 [१२] दा० १-१०, नि० १-२१, सा० १-६२, सासी० २-७०, गु० १९३—
 १. दा१ दा२ पांऊं थैं, दा० ३ पांवां थैं, नि० पांवां मू (राज० मूल), सासी० पावन ते । २. नि० पिंगुल, गु० पिंगल, सा० पिंगला (तीनों उर्दू मूल से) । ३. गु० मारिआ सतिगुरु ।
 [१३] दा० १-३, नि० १-४, सा० १-४१, सावे० १-४, सासी० २-५, गुल० ३-१९—
 १. सा० सावे० सासी० उपकार ।
 [१४] दा० १-११, नि० १-१५, सा० १-१२, सावे० १-६४, सासी० २-५२, गुल० ५-१—
 १. नि० कबीर चाल्या जाइया, सावे० बहे बहाये जात थे । २. दा३ आगा थैं, गुल० आगे तैं ।
 [१५] दा० १-१२, नि० १-१६, सा० १-१३, सावे० १-६५, सासी० २-५३, गुल० ५-२—
 अन्यत्र यह साखी लालदास के नाम से भी मिलती है : लाल जी दीपक जोरा तेल मरि, बाती करी सुघाट । पूरा किया बिसावनां, बहुरि न आवाँ बाट ॥ —याज्ञिक-संग्रह ना० प्र० स० की १४६-५५ संस्कृत ह० लि० पोथी में ।

ग्यान प्रकासी^१ गुर मिला, सो जनि^२ बीसरि^३ जाइ ।
 जब गोबिंद क्रिया करी, तब गुर मिलिया^४ आइ ॥१६॥
 नां गुर मिला न सिख मिला^१, लालच खेला डाव^२ ।
 दोनों बूड़े^३ धार सैं^४, चढ़ि पाथर^५ की नाव ॥१७॥^६
 सतगुर मिला त का भया, जे मनि पाड़ी^१ भोल ।
 पासि बिनंठा कापड़ा^२, क्या करै बिचारी^३ चोल ॥१८॥
 बलिहारी गुर आपकी^१, द्यौहाड़ी सौ बार^२ ।
 जिन^३ मानिख तैं^४ देवता किया, करत न लागी^५ बार ॥१९॥
 सतगुर कै सदैव किया^१, दिल अपनीं का^२ सांच^३ ।
 कलिजुग हमसौं लड़ि पड़ा, सुहकम मेरा बांच^४ ॥२०॥
 सतगुर लई कमान करि^१, बाहन लागा तीर ।
 एक ज^२ बाहा प्रीति सौं, भीतरि भिदा सरीर ॥२१॥
 हंसै न बोलै उनमुनीं, चंचल मेला^१ सारि ।
 कहै कबीर भीतरि भिदा^२, सतगुर कै हथियार ॥२२॥

[१६] दा० १-१३, नि० १-१०, सा० १-१६, सावे० १-७, सासी० १-३७, गुण० ४-९—

१. दा० प्रकास्या (नागरी मूल) । २. सावे० जन (उर्दू मूल) । ३. सावे० बिसरि न ।
 ४. दा० ३ मिलिहै ।

[१७] दा० १-१६, नि० २-१, सा० २-१, सावे० २-१, सासी० ३-२, गुण० ७-११—

१. दा० गुण० भया । २. सा० सावे० सासी० दांव । ३. दा० दूवे । ४. नि० बापड़ा ।
 ५. दा० नि० पांहुण । ६. सासी० में इस साखी को पुनरावृत्ति मिलती है; तुल० सासी० ३-१ :
 गुरु लोभी सिख लालची, दोनों खेले दाव । दोनों बूड़े बापुरे, चढ़ि पाथर की नाव ॥

[१८] दा० १-२४, नि० २-१३, सा० ३-३, सावे० १-१२१, सासी० ३-३२, गुण० १०२-९—

१. सा० सासी० परिगा । २. सा० सासी० कपास विनाया कापड़ा, सावे० पास वख ढांके नहीं
 (परवर्ती संशोधन ?) । ३. सावे० वपुरी ।

[१९] दा० १-२, नि० १-२२, सा० १-१७, सावे० १-११, सासी० १-४३—

१. दा० आपणीं, नि० आपणीं, सा० आपनीं, सावे० आपनैं (पंजाबी) । २. नि० दीहाड़ी
 (राज० पंजाबी) सौ बार, सावे० चढ़ि चढ़ि सौ सी बार, सा० सासी० घरी घरी सौ बार ।
 ३. सावे० सासी० में 'जिन' शब्द नहीं है । ४. सावे० सासी० मानुख । ५. दा० लाई ।
 गु० में यह साखी गुरु नानकदेव के नाम से मिलती है जहाँ इसका पाठ है : बलिहारी गुर
 आपणे दिउहाड़ी सववार ॥ जिनि माणस ते देवते काए करत न लागी बार ॥ [दे० श्री
 गुरु ग्रन्थ साहव, मिशन संस्करण, पृ० ४६२, सलोक महला १। किन्तु प्रस्तुत अध्ययन के
 अनुसार दा० नि० सा० सावे० सासी० का सम्मिलित साक्ष्य मान्य सिद्ध होने से उक्त साखी कबीर
 की प्रामाणिक साखियों की कोटि में स्वीकार की गयी है ।]

[२०] दा० १-४, नि० १-२१, सा० १-४०, सावे० १-४२, सासी० २-२८—

१. दा० दा० करं । २. सा० सावे० सासी० अपने को । ३. दा० साह । ४. दा० बाह ।

[२१] दा० १-६, नि० १-२६, सा० १-४१, सावे० १-७०, सासी० २-१९—

१. नि० सा० सावे० सासी० सतगुरु सबद कमान करि (नि० लै) । २. सासी० एकहि ।

[२२] दा० १-९, नि० १-२८, सा० १-६१, सावे० १-८८, सासी० २-६९—

१. दा० मेल्हा । २. सा० सासी० कह कबीर अंतर बिध्या, सावे० कबीर अंतर बेधिया ।

सतगुरुं मारा^१ बांन भरि, घरि करि सूखो^२ मूठि ।
 अंगि उघारै लागिवा^३, गई दवा^४ लौं फूटि ॥२३॥
 कबीर गुरु गरवा मिला^१, मिलि गया^२ आटै लौन ।
 जाति पांति कुल सब मिटे^३, नाउं धरोगे कौन ॥२४॥
 भली भई जो गुरु मिले, नहिंतर होती हांनि ।
 दीपक जोति^१ पतंग ज्यों, पड़ता पूरी जांनि^२ ॥२५॥
 साया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि मांहि^१ पड़ंत ।
 कहै कबीर गुरु ग्यांन तैं, एक आघ उबरंत^२ ॥२६॥
 चेतन चौकी बैसि^१ करि, सतगुरु दोहों धीर ।
 निर्भय होइ निसंक भजि, केवल कहै^२ कबीर ॥२७॥
 गुरु गोबिंद^१ तौ^२ एक हैं, दूजा सब^३ आकार ।
 आपा भेटै हरि भजै^४, तब पावै दीदार^५ ॥२८॥
 कबीर^१ सतगुरु नां मिला, रही^२ अधूरी सोख ।
 स्वांग जती का पहिरि करि, घरि घरि मांगै भीख ॥२९॥
 सतगुरु मेरा सूरिवां^१, ज्यों तातैं लोहि लुहार ।
 कसनी दै कंचन किया, ताइ लिया ततसार ॥३०॥

[२३] दा० १-८, नि० १-२७, सा० १-५५, सावे० १-७८, सासी० २-१२—

१. सावे० बाहा । २. सासी० धीरी । ३. नि० लगि गई । ४. सा० दुवा, सावे० धुवां, दा० सासी० दुवां (?) ।

[२४] दा० १-१४, नि० १-९, सा० १-६, सावे० १-६, सासी० १-७—

१. सा० सासी० गुरु तौ गरवा मिला । २. दा० सावे० रलि गया । ३. सा० सावे० सासी० कुल मिटि गया ।

[२५] दा० १-१९, नि० १-५ सा० १-१४, सावे० १-५४, सासी० १-४५—

१. दा० दिटि । २. सा० सावे० सासी० पड़ता आय निदान ।

[२६] दा० १-२०, नि० १-६, सा० २०-४६, सावे० ७२-३९, सासी० ३०-२०—

१. नि० दा० दार इवें, दा० दिसे । २. नि० सा० सावे० सासी० कोई एक गुरु ज्ञान तैं उबरे साधु संत ।

[२७] दा० १-२३, नि० १-१४, सा० १-४६, सावे० १-६३, सासी० २-६७—

१. सा० सावे० सासी० बैठि कै । २. सावे० नाम ।

[२८] दा० १-२६, नि० १-११, सा० १-५, सावे० १-२९, सासी० १-५—

१. सावे० साहिब (राया प्रभाव) । २. सा० सासी० दोउ । ३. दा० यहु । ४. दा० आपा भेटि जीवत मरै, सावे० आपा भेटै गुरु भजै । ५. दा० सावे० करतार ।

[२९] दा० १-२७, नि० २-६, सा० २-९, सावे० २-५, सासी० ३-१९—

१. सा० सावे० सासी० पूरा । २. सा० सावे० सासी० सुनी ।

[३०] दा० १-२८, नि० १-२८, सा० १-२८, सावे० १-२८, सासी० १-२८—

निहचल^१ निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर ।

निपजी मैं साभी घनां, बांटे नहीं^२ कबीर ॥३१॥

चौपड़ मांडी चौहटै, अरध उरध बाजारि ।

सतगुर सेती खेलतां, कबहुं न आवै हारि^३ ॥३२॥

पांसा पकड़ा प्रेम का^४, सारी किया सरीर ।

सतगुर दांव बताइया, खेलै दास कबीर ॥३३॥

सतगुर हम सौं रोभि करि, कहा एक^५ परसंग ।

बरसा बादल प्रेम का, भोजि गया सब अंग ॥३४॥

(२) प्रेम बिरह कौ अंग

बिरह भुवंगम^६ तन^७ बसै^८, मंत्र^९ न मानै^{१०} कोइ ।

राम^{११} बियोगी नां जिअै^{१२}, जिअै त बजरा^{१३} होइ ॥३१॥

बिरह भुवंगम^६ पैठि कै^{१४}, किया^{१५} करेजै घाउ ।

साधू^{१६} अंग न मोरही^{१७}, ज्यों भावै त्यों खाउ ॥३२॥

अंबरि कुंजां कुरलियां^{१८}, गरजि^{१९} भरे सब ताल^{२०} ।

जिनतैं साहिव बोलुरा^{२१}, तिनकों कौन हवाल ॥३३॥

[३१] दा० १-३०, १-१७, सा० १-४५, सावे० १-५०, सासी० २-६४—

१. सा० सावे० सासी० निश्चय । २. सा० सावे० सासी० बांटनहार ।

[३२] दा० १-३१, नि० ५०-४३, सा० ८५-८९, सावे० ८-३४, सासी० २४-७२—

१. दा० कहे कबीरा राम जन, खेली भंत (पुन०) बिचारि, नि० सा० कबीर खेलै राम सँ, कबहुं न आवै हारि ।

[३३] दा० १-३२, नि० १-१०, सा० ८५-९१, सावे० १-६६, तथा १५-६८ (दो बार), सासी० १५-७०—

१. नि० सावे० (१-६६) चौपड़ि माड़ी चौहटै (पुनरावृत्ति—तुल० पिछली साखी में भी “चौपड़ि माड़ी चौहटै, अरध उरध बाजारि ।”) ।

[३४] दा० १-३३, नि० १-१८, सा० १-४०, सावे० १-६९, सासी० २-३४—१. सावे० एक कहा ।

[१] दा० ३-१८, नि० ६-१६, सा० १९-३५, सावे० १४-९, स० ७-१, गु० ७६, बी० ९७, गुण० १८-६६ तथा २६-९ (दो बार) —

१. गु० भुअंगसु, सा० भुवंगहि । २. गु० मन । ३. सा० सावे० हसा, बी० हस्यी । ४. गु० मंतु ।

५. दा० नि० स० सा० सावे० गुण० लागै । ६. गु० सावे० नाम । ७. नि० बिरही जन जीवै नहीं, सा० बिरह बियोगी क्यौं जियै । ८. बी० सावे० बाउर ।

[२] दा० ३-१९, नि० ६-१७, सा० १९-३४, सावे० १४-१०, बी० ९९, गुण० १८-६०—

१. दा० ३-१९, नि० ६-१७, सा० १९-३४, सावे० १४-१०, बी० ९९, गुण० १८-६०—

१. दा० ३-१९, नि० ६-१७, सा० १९-३४, सावे० १४-१०, बी० ९९, गुण० १८-६०—

१. दा० ३-१९, नि० ६-१७, सा० १९-३४, सावे० १४-१०, बी० ९९, गुण० १८-६०—

१. दा० ३-१९, नि० ६-१७, सा० १९-३४, सावे० १४-१०, बी० ९९, गुण० १८-६०—

१. दा० ३-१९, नि० ६-१७, सा० १९-३४, सावे० १४-१०, बी० ९९, गुण० १८-६०—

१. दा० ३-१९, नि० ६-१७, सा० १९-३४, सावे० १४-१०, बी० ९९, गुण० १८-६०—

१. दा० ३-१९, नि० ६-१७, सा० १९-३४, सावे० १४-१०, बी० ९९, गुण० १८-६०—

चकई^१ बिछुरी^२ रैनि की, आइ मिलै^३ परभाति ।
 जे नर^४ बिछुरे राम सौं^५, ते दिन मिले न राति^६ ॥४॥^७
 भल^८ ऊठी भोली जलो^९, खपरा फूटमफूट^{१०} ।
 जोगी था^{११} सो रमि गया^{१२}, आसनि रही बिभूति^{१३} ॥५॥^{१४}
 रेनाईर बिछोहिया^{१५}, रहु रे^{१६} संख म भूरि^{१७} ।
 देवल देवल धाहड़ी^{१८}, देसो^{१९} (देई ?) ऊगे^{२०} सूरि ॥६॥
 हिरदै भीतरि दौं बलै^{२१}, धुवां न परगट होइ ।
 जाकै लागी सो लखै^{२२}, कै^{२३} जिहि^{२४} लाई सोइ ॥७॥
 विरह की ओदी लाकड़ी^{२५}, सपचै औ धुंधुवाइ^{२६} ।
 छूटि पड़ै या विरह तै^{२७}, जो सगली^{२८} जरि जाइ^{२९} ॥८॥

जु सारस कुरलिया, गुंजि रहे सब ताल । जिगाकी जोड़ी बाछड़ी, तिगका कवग हवाल ॥ किन्तु यह कहना कठिन है कि कबीर की रचनाओं में यह साखी 'ढोला मारू रा दूहा' से सम्मिलित की गयी है । डॉ० साताप्रसाद गुप्त ने सार्थकता की दृष्टि से कबीर के नाम से प्रचलित दोहे को 'ढोला मारू' के दोहे से प्राचीनतर सिद्ध किया है (उत्तर भारती, भाग ६, अंक २, पृ० १२९) । अधिक संभव यही लगता है कि यह दोहा अपभ्रंश-काल से ही लोक में अत्यधिक प्रचलित रहा होगा और उसी स्रोत से 'ढोला मारू रा दूहा' और कबीर की रचनाओं में पृथक् पृथक् रूप से सम्मिलित कर लिया गया होगा ।

[४] दा० ३-३, नि० ६-१३, सा० १९-३, सावे० ११-७० तथा १४-६८, सासी० १६-३, गु० १२५—
 १. नि० सासी० चकवी । २. दा० बिछुरी । ३. सा० सावे० आनि मिली (उई मूल) ।
 ४. सावे० सासी० जन । ५. सावे० सासी० नाम सौं (साम्प्रदायिक प्रभाव) । ६. नि० मिले
 बीछ नां राति, सा० सावे० सासी० मिले दिवस नहि राति । ७. सावे० में यह साखी दो स्थलों
 पर मिलती है; सावे० १४-६८ का पाठ है : चकई बिछुरी रैनि की, आइ मिली परभाति । सतगुरु
 से जो बीछुरे, मिलै दिवस नहि रात ॥

[५] दा० ४-४, नि० ७-६, सा० २९ क-६, सावे० १४-४२, सासी० २०-७, गु० ४८—
 १. सा० सावे० सासी० भाल । २. गु० खिधा जलि कोइला भई । ३. दा० नि० फूटिम फूट ।
 ४. गु० जोगी बपुरा खेलियो, दा३ नि० हंसा जोगी चलि गया । ५. सा० सावे० सासी० भभुत ।
 ६. दा० में दूसरी पंक्ति एक अन्य साखी में भी श्रम से दुबारा आ गयी है; तुल० दा० ४१-७ :
 मन साखा भमिता मुई, अहं गई सब छूटि । जोगी या सो रमि गया, आसनि रही बिभूति ॥

[६] दा० ३-४४ (दा० २ में नहीं), नि० २५-१८, सा० १९-५२, सासी० १६-६६, गु० १२६—
 १. गु० रेनाईर बिछोरिया (नागरी मूल), दा३ रेणाइयां बिछोहिया, नि० रेणाईर सूं बीछहवा-
 सा० नेहै राम बसाइया, सासी० रनयां राम छिपाइया । २. सा० सूखम कूरि । ३. सासी० रहु
 रहु, सा० रहि रहि । ४. सा० देहड़ी । ५. गु० देसहि, सा० दिवसहि, सासी० दिवस न ।
 ६. गु० उगवत ।

[७] दा० ४-३, नि० ७-२, सा० १९ क-५, सावे० १४-४८, वी० ६७, गुल० २५-१८—
 १. वी० आगि जो लगी समुद्र में । २. वी० जानै सो जो जरि मुवा । ३. सा० सावे० की (उई
 मूल), वी० में यह शब्द नहीं है । ४. सा० सावे० गुल० जिन, वी० जाकी ।

[८] दा० ३-३७, नि० ६-३६, सा० १९-२५, सावे० १४-३०, सासी० १६-४६, वी० ७२—
 १. दा० हूं रे विरह की लाकड़ी, नि० हूं विरहिन की लाकड़ी, सा० सासी० हूं जो विरह की
 लाकड़ी, सावे० विरहिन ओदी लाकड़ी । २. दा० सा० समकि समकि धूंधाउं (सा० धुंधुवाय),
 नि० सिलगूं अरु धूंधाउं । ३. वी० दुख से तबहीं बांछिहो । ४. सा० सासी० छूटि पड़ै जो
 विरह हूं । ५. वी० जब सकलो, दा० जे सारी ही, सावे० जो सिगरो, सावे० सासी० जे सगरी
 ही । ६. दा० नि० जे ।

बिरहिन उठि उठि भुईं परै^१, दरसन कारन^२ रांम ।
 मूएं दरसन देहुगे, सो आवै कौनै कांम^३ ॥१॥
 मूएं पोछै मति मिलौ, कहै कबीरा रांम ।
 लोहा माटी मिलि गया^४, तब पारस कौनै कांम ॥१०॥
 भेरा पाया सरप का^५, भौसागर के मांहि ।
 जो छाड़ौ^६ तौ बूड़िहौ^७, गहौं त डसिहै बांहि^८ ॥११॥
 मारा है मरि जाइगा^९, बिन सर थोथी भालि ।^{१०}
 परा^{११} कराहै^{१२} बिरछि तलि, आजु मरै कै^{१३} काल्हि^{१४} ॥१२॥
 आगि^{१५} जु लागी नीर मंहि^{१६}, कांदौ^{१७} जरिया झारि ।
 उतर दखिन के^{१८} पंडिता, मुए^{१९} बिचारि बिचारि ॥१३॥
 जाहु वैद^{२०} घर आपनै, तेरा किया न होइ^{२१} ।
 जिन या वेदन निरमई भला करैगा सोइ^{२२} ॥१४॥^{२३}

[९] दा० ३-७, नि० ६-६, सा० १९-७, सावे० १४-७०, सासी० १६-१२, बी० २७०—

१. दा० बिरहिन उठै भी (उटूँ मूल) पढ़ै, नि० कबीर बिरहिन भी (उटूँ मूल) पढ़ै, बी० बिरहिन साजी आरती । २. बी० कौजै । ३. दा० नि० मूवां पाछै देहुगे, सो दरसन किहि कांम, सा० सावे० सासी० लोहा माटी मिल गया, तब पारस किहि काम । दा० नि० सा० सावे० सासी० स० में यह पंक्ति एक अन्य साखी में समान रूप से मिलती है (दे० अगली साखी की द्वितीय पंक्ति), अतः यह वहाँ के लिए स्वीकृत हुई है । यहाँ सा० सावे० सासी० में वह अनावश्यक रूप से दुबारा आ गयी है ।

[१०] दा० ३-८, नि० ६-७, सा० १९-८, सावे० १४-७१, सासी० १६-१३, स० ७-६—

१. दा० स० पाथर घाटा लोह सब, नि० लोहा तौ पाथर बस्या । २. सा० सावे० सासी० किहि ।

[११] दा० ३-४३, नि० ७-१७, सा० १९-३३, सावे० २-१३, सासी० २७-६५, बी० ११८—

१. दा० नि० भेरा (दा१ भेला) पाया सप सूँ, सा० भेरे चढ़िया सरप के, बी० वेड़ा बांधिनि सरप का, सावे० वेड़े चढ़िया झंझरे । २. बी० सावे० छाड़ै । ३. दा० नि० हूविही, सावे० सासी० बूड़िहै, बी० बूड़ई, सावे० बांचिहै (विपरीतार्थी ?) । ४. नि० गहूँ तौ खाजै बांहि, सावे० नातर बूड़ै माहि ।

[१२] दा० ४-२, नि० ७-४, सा० १९-२३, सावे० १९-१२९, बी० १९३—

१. दा० नि० माखा है जे मरैगा, बी० सावे० मूवा है (सावे० मूए ही) मरि जाहुगे । २. नि० बिन सीगणि बिन भालि । ३. दा० नि० सा० पड़्या (नागरी मूल) । ४. दा० नि० सा० पुकारै, सावे० कराइल । ५. बी० सावे० की । ६. बी० काल ।

[१३] दा० ४-५, नि० ७-७, सा० १९-७, सासी० २७-८, बी० ५५, गुण० २५-२२—

१. दा० नि० गुण० अगिनि । २. बी० ससुद्र सहं । ३. दा१ दा३ नि० कंदू, दा३ कंदू (दोनों उटूँ मूल) । ४. बी० पुव्व पछिम के, सा० सासी० उत्तर दिस के । ५. नि० सा० सासी० गुण० रहे ।

[१४] नि० ४५-१२, सा० ७९-१२, सावे० १४-८८, सासी० १६-३८, बी० ३१०—

१. नि० सा० वैद जाहु । २. बी० यहाँ वात न पूछै कोय । ३. बी० जिन या भार लदाइया निरवाहेगा सोय । ४. सावे० में यह साखी १४-८९ पर भी मिलती है जिसका पाठ है : जाहु मीत घर आपने, वात न पूछै कोय । जिन यह भार लदाइया, निरवाहेगा सोय ॥ यह पाठ बीजक के प्रभाव से आया हुआ ज्ञात होता है । यह साखी अन्यत्र नानक के नाम से भी मिलती है, तुल० गुण० १८-५० : जाहि वैद घर आपणै, जाणै कोइ न कोइ । जिन दुख लाया नानका, भला करैगा सोइ ॥ (इस) यह मिलान नाम के भी पाठ मिले हैं, जिन में किसी प्रभावित है ।

बासुरि सुख नां रैन सुख, नां सुख सुपिनै^१ मांहि ।

कबीर बिछुड़ै रांम सौं^२, नां सुख^३ धूप न छांहि ॥१५॥

बिरहा बिरहा^४ मति कहौ, बिरहा है सुलतान ।

जिहि घटि बिरह न संचरै, सो घट सदा^५ मसान ॥१६॥

सब रथ तांति रवाब^६ तन, बिरह बजावै नित्त ।

और न कोई सुनि सकै^७, कै साईं कै चित्त ॥१७॥

बहुत दिनन की जोवती^८, बाट तुम्हारी रांम^९ ।

जिय तरसै तुझ^{१०} मिलन कौं, मन नाहीं बिसरांम ॥१८॥

अंदेसौ^{११} नांहि भाजिसी^{१२} (भाजिहै ?), संदेसौ कहियांह^{१३} ।

कै हरि आया भाजिसी (भाजिहै ?), कै हरि पासि^{१४} गयांह^{१५} ॥१९॥

यहु तनु ज्वा^{१६} नसि करौं^{१७}, ज्युं धूवां जाइ सरगि^{१८} ।

मति वै रांम दया करै^{१९}, बरसि बुझावै अगि^{२०} ॥२०॥

[१५] दा० ३-४, नि० ४०-२१, सा० ११-४, सावे० ११-७२ तथा १४-६९, सासी० १६-४, स० ७-३ गुण० २०-४३—

१. सा० सावे० सासी० सपनां, गुण० सुपिनंतरि । २. नि० सा० सासी० जे नर बिछुरे रांम से, सावे० जे नर बिछुरे नाम से । ३. सा० सावे० सासी० तिनकी । सावे० १४-६९ में द्वितीय पंक्ति का पाठ किंचित् भिन्न है, यथा: सतगुरु से जो बीछुरे, तिनको धूप न छांहि (रावा० प्रभाव) ।

[१६] दा० ३-२१, नि० ६-२०, सा० ११-३६, सावे० १४-३२, सासी० १६-२६, स० ७-४७, गुण० १८-४१—

१. नि० सावे० सासी० बिरहा । २. सावे० सासी० जान । ३. सासी० में यह साखी पुनः एक स्थल पर आती है, तुल० सासी० १६-१०३: बिरहा बूरा जनि कहौ, बिरहा है सुलतान । जा घट हरि बिरहा नहीं, सो घट सदा मसान ॥ गु० में इसी से मिलती-जुलती एक साखी शैल प्रदीप के नाम से भी मिलती है, जो इस प्रकार है: बिरहा बिरहा आखाण, बिरहा है सुलतान । फरीदा जितु तनि बिरह न उपजै, सो तनु जाणु मसाण ॥ दे० मि० सं०, पृ० १३७९ । किंतु स्वाभाविकता तथा सार्थकता की दृष्टि से कबीर कृत साखी का पाठ प्राचीनतर लगता है ।

[१७] दा० ३-२०, नि० ३-६, सा० ११-३६, सावे० १४-७६, सासी० १६-४३, स० ७-७—

१. सासी० खाव (हिन्दी मूल) । २. नि० दूजा कोई नां सुगै ।

[१८] दा० ३-६, नि० ६-५, सा० १८-४, सावे० १४-८, सासी० १६-५—

१. सा० सासी० जोहती । २. सावे० रटत तुम्हारी नाम । ३. सा० सावे० सासी० तुव ।

[१९] दा० ३-९, नि० ६-९, सा० ११-११, सावे० १४-२५, सासी० १६-३९, गुण० ११-१६—

१. दा० गुण० अंदेसड़ी । २. सा० सावे० सासी० भागसी । ३. सा० सासी० कहियाय, गयाय । ४. नि० गुण पास । ५. सावे० कै आवै पिय आपही, कै मोहि पास बुलाय ॥

[२०] दा० ३-११, नि० ६-११, सा० ११-१४, सावे० १४-७२, सासी० १६-४१, गुण० १८-१६—

१. सावे० यह तन जारी भसम करी । २. सावे० होय सुरंग, सा० सासी० जाय सुरंग, गुण० जाइ स्वर्ग । ३. सावे० कवहुंके गुरु (रावा० प्रभाव) दाया करै । ४. सा० सावे० सासी० अंग, गुण० अंग । तुल० डोला मारु रा दूहा, छंद १८१: यह तन जारी नसि करुं, धूवां जाइ सरगि । मुक्त मिय वडह होइ करि बरसि बुझावै अगि ॥ 'डोला मारु रा दूहा' की केवल एक प्रति में यह दूहा मिलता है । इसके अतिरिक्त मुक्त प्रिय बहल होइ करे से अग्रे बरसति स्पष्ट है ।

यह तन जारौं मसि करौं, लिखौं राम कां नांउं^२ ।
 लेखनि करौं करंक की^३, लिखि लिखि राम^४ पठाउं ॥२१॥
 इस^१ तन का दीवा^२ करौं, बाती मेलौं जीव ।
 लोही^३ सींचौं तेल ज्यौं, तब मुख देखौं पीव^४ ॥२२॥
 अंखियां^१ प्रेम कसाइयां^२, जग जानै^३ दूखड़ियांह^४ ।
 राम सनेही कारनै^५, रोइ रोइ रातड़ियांह^६ ॥२३॥
 परबति परबति^१ मैं फिरा, नैन गंवाया रोइ ।
 सो बूटी पाऊं नहीं, जातैं जीवन होइ ॥२४॥
 नैन हमारे बावरे^१, छिन छिन लोरैं तुज्भ ।
 नां तूं मिलै न मैं सुखी^२, ऐसी बेदनि मुज्भ ॥२५॥
 कमोदिनीं जलहरि बसै^१, चंदा बसै अक्रासि ।
 जो है जाका भावता^२, सो ताही कै पासि ॥२६॥

इसके विपरीत कवीकृत दोहे के प्रस्तुत पाठ की निदोषता स्वतः सिद्ध है (दे० डॉ० साता-प्रसाद गुप्त, उत्तर भारती, भा० ६, अंक २, पृ० १२९ तथा १३१) ।

[२१] दा० ३-१२, नि० ६-१४, सा० १९-१५, सावे० १४-७३, सासी० १६-४२, गुण० १८-९७—
 १. सावे० गुरू का (साम्प्रदायिक प्रभाव) । २. गुण० कागद उर धरि नाव । ३. सावे० करउं
 लेखनी करम की (नागरी मूल) । ४. सावे० गुरू (साम्प्रदायिक मूल) ।

[२२] दा० ३-२३, नि० ६-१९, सा० १९-३७, सावे० १४-१५, सासी० १६-५४, गुण० १८-९८—
 १. सावे० यहि, सा० सासी० या । २. सा० सावे० सासी० दिवला । ३. सा० सावे० सासी०
 लोह । ४. नि० मति नैनां देखूं पीव ।

[२३] दा० ३-२५, नि० ६-२२, सा० १९-४१, सावे० १४-८, सासी० १६-५५, गुण० १८-७३—
 १. दा२ अंखहि, दा१ दा३ दा४ गुण० अंखड़ियां (राज० मूल०) । २. सावे० बसाइया (नागरी
 मूल) । ३. दा० लोग जाणैं, नि० लोक जन जाणैं, सावे० जिनि जाने । ४. दा० दुखड़ियां,
 सा० सावे० सासी० दुखदाय (समानार्थीकरण) । ५. दा० साइं अपणैं कारणैं, गुण० प्रीतम
 प्यारे कारणैं । ६. सा० सावे० सासी० रो रो रात बिताय । [दादू-वाणी का प्रभाव : तुल०
 साखी ३-९ : बिरहिन कुरलै कुंज ज्यूं, निश दिन तलपत जाइ । राम मनेही करनैं, रोवत रैन
 बिहाइ ॥] ।

[२४] दा० ३-४० नि० ६-४८, सा० १९-५५, सावे० १४-३३, सासी० १६-६३, गुण० ५४-३—
 १. सा० सासी० रोवत रोवत ।

[२५] दा० ३-४२, नि० ६-३९, सा० १९-५१, सावे० १४-२२, सासी० १६-५५, गुण० २४-८—
 १. दा० १-२ जलि गए, गुण० वलि गए । २. दा० खुसी ।

[२६] दा० ४४-१, नि० ४९-१, सा० ८३-१६, सावे० १५-६५, सासी० १५-६७, गुण० ५६-२—
 १. दा३ सा० सावे० सासी० जल मैं बसै कमोदिनी (समानार्थीकरण) । २. दा३ नि० जो
 जाही कै मनि बसै । तुल० 'ढोला मारूरा दूहा' (ना० प्र० स०) छंद २०१ : जल महि बसै
 कमोदशी, चंदउ बसइ अगासि । ज्यउ ज्यंही कह मन बसइ, सउ त्यांही कै पासि ॥ यह
 दोहा 'ढोला मारूरा दूहा' की प्रथम तथा द्वितीय वाचनाओं की प्रायः समस्त प्रतियों में
 मिलता है, केवल तृतीय वाचना की प्रतियों में नहीं मिलता और पाठ की दृष्टि से समान रूप से
 संगत प्रतीत होता है । ऐसा बात होता है कि लोक में यह दोहा बहुत प्राचीन से प्रचलित रहा

गुर जौ बसै^१ बनारसी^२, सोख समुंदर^३ तीर ।
 बीसारे नहि बीसरै^४, जौ गुन होइ सरीर ॥२७॥
 जो है जाका भावता, जदि तदि^५ मिलिहै^६ आइ ।
 जाकों तन मन सौंपिया, सो कबहुं छांड़ि न जाइ^७ ॥२८॥
 स्वांमीं सेवक^८ एक मत^९, मत^{१०} में मत^{११} मिलि जाइ^{१२} ।
 चतुराई रोझै नहीं, रोझै मन कै भाइ ॥२९॥^{१३}
 दीपक पावक आनिया, तेल भी आनां^{१४} संग ।
 तीनों मिलिकै जोइया, तब उड़ि उड़ि परै^{१५} पतंग ॥३०॥
 बिरहिन ऊभी पंथ सिरि, पंथो बूझै घाइ ।
 एक सबद कहि पीव का^{१६}, कब रे^{१७} मिलिहंगे आइ ॥३१॥
 आइ न सक्तौ तुज्झ पै^{१८}, सकुं न तुज्झ^{१९} बुलाइ ।
 जियरा यौही लेहुगे,^{२०} बिरह तपाइ तपाइ ॥३२॥
 कबीर पीर पिरादनी^{२१}, पंजर^{२२} पीर न जाइ ।
 एक जु पीर पिरोति की, रही कलेजा छाइ ॥३३॥

हे और कबीर तथा 'ढोला मारू रा दूहा' दोनों में ही लोकतत्व का आधार ग्रहण करने के कारण दोनों में अपने अपने ढंग से पृथक् रूप में आ गया है ।

[२७] दा० ४४-२, नि० ४९-२, सा० १-२६, सावे० १-१३, सासी० १-१७, गुण० ५६-३—
 १. दा० नि० गुण० कबीर गुर बसै । २. दा३ बांजारसी, नि० बिगारसी । ३. दा० नि० गुण० समंदां (राज० मूल) । ४. सा० सावे० सासी० एक पलक बिसरै नहीं ।

[२८] दा० ४४-३, नि० ४९-३०, सा० ५३-१५, सावे० १५-६४, सासी० १५-६६, गुण० ५६-११—
 १. सा० सावे० सासी० जब तब । २. दा० नि० मिलिसी (राज० मूल) । ३. सा० सावे० सासी० तन मन ताकीं सौंपिप, जो कबहुं न छांड़ी जाय ।

[२९] दा० ४४-४, नि० ४९-१, सा० ६-७, सावे० ७-३, सासी० १०-६, गु० ५५-१३—
 १. सा० सावे० सासी० सेवक स्वामी । २. सावे० मति । ३. दा० मन (नागरी मूल) ही में मिलि जाइ । ४. सासी० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है; तुल० सासी० ४-४४ : स्वामी सेवक होय के, मन ही में मिलि जाय । चतुराई रोझै नहीं, रहिए मन के भाय ।

[३०] दा० ४-१, नि० ७-१, सा० १९क-४, सावे० १४-४७, सासी० १६-९०—
 १. सावे० लाया । २. सावे० मिलै ।

[३१] दा० ३-५, नि० ६-४, सा० १९-३, सावे० १४-७, सासी० १६-६—
 १. नि० एक संदेसा पीवका । २. सा० सासी० कबहि ।

[३२] दा० ३-१०, नि० ६-१०, सा० १९-१२, सावे० १४-२६, सासी०—
 १. सा० सावे० सासी० आइ न सकिहीं तोहि पै । २. सासी० तुझै । ३. सावे० जियरा यौ लय होयगा ।

[३३] दा० ३-१३, नि० ६-१५, सा० १९-३१, सावे० १४-६०, सासी० १६-१०९—
 १. नि० कबीर पीर पिरानिया, सावे० पीर पुरानी बिरह की, सा० बिरही आनी बिरह को ।
 २. सफा सीवेन सेवकी पिनाइन. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चोट संतानी^१ बिरह की, सब तन जरजर होइ ।
 मारनहारा जानिहै^२, कै जिहि^३ लागी सोइ ॥३४॥
 जबहीं^१ मारा^२ खँचि करि, तब सँ पाई^३ जानि ।
 लागी चोट मरम्म की^४, गई कलेजा छांनि ॥३५॥
 अंखियन तौ^१ भाई परी, पंथ निहारि निहारि ।
 जिभ्या सँ^२ छाला परा^३, रांस^४ पुकारि पुकारि ॥३६॥
 जीव बिलंवा जीव^१ सौं, अलख न लखिया^२ जाइ ।
 गोविंद^३ मिलै न भल बुझै, रही बुझाइ बुझाइ ॥३७॥
 हंसि हंसि कंत^१ न पाइअै, जिन पाया तिन रोइ ।
 हांसी खेला^२ पिउ^३ मिलै, तौ नहीं दुहागिनि कोइ^४ ॥३८॥
 कबीर देखत^१ दिन गया, निसि भी निरखत^२ जाइ ।
 बिरहिनि पिउ पावै नहीं, जियरा तलकत जाइ^३ ॥३९॥
 कै बिरहिनि कौं मोच दै, कै आपा दिखलाइ^१ ।
 आठ पहर का दाभुनां, मोपै सहा न जाइ ॥४०॥
 बिरहिनि थी तौ क्यों रही, जरी न पिउ कै नालि^१ ।
 रहि रहि सुगध गहेलरी^२, प्रेम न लाजौं मारि^३ ॥४१॥

[३४] दा० ३-३४, नि० ७-४, सा० १९-३२, सावे० १४-६१, सासी० १६-४०—
 वै१. सा० सावे० सासी० सता । २. नि० जांशिरी, सावे० जानही । ३. नि० जिनि, सा० सासी० जिस ।

[३५] दा० ३-३६, नि० ४-७, सा० १-६०, सावे० १-२२, सासी० २-६८—
 १. नि० तुम । २. नि० सारी । ३. सा० सावे० सासी० मूआ । ४. नि० सा० सावे० सासी०
 जु सबद की ।

[३६] दा० ३-३२, नि० ६-१, सा० ११-७९, सावे० १४-४, सासी० १६-५१—
 १. दा० नि० सा० आंखडियां (राज०) । २. दा० नि० सा० जीमडियां (राज०) । ३. नि०
 हुआ । ४. सावे० सासी० नाम ।

[३७] दा० १७-१, नि० ६-५२, सा० १९-६९, सावे० १४-८२, सासी० १६-८१—
 १. सावे० पीव, नि० अलख । २. दा३ लखनां (उई मूल), सा० सावे० सासी० लख्यी ।
 ३. सा० सावे० सासी० साहिब ।

[३८] दा० ३-२१, नि० ६-२८, सा० १९-४७, सावे० १४-१९, सासी० १६-६०—
 १. दा२ पीव । २. दा१ जे हांसे ही । ३. दा० हरि । ४. सा० सावे० सासी० कौन
 दुहागिनि होइ ।

[३९] दा० ३-३४, नि० ६-३२, सा० १४-४९, सावे० १४-६३, सासी० १६-६२—
 १. सा० सावे० सासी० देखत देखत । २. दा१ सा० सावे० सासी० देखत । ३. सावे० केवल
 जिय घबराय, दा० नि० जियरा तलकै साइ ।

[४०] दा० ३-३५, नि० ६-३४, सा० १९-२३, सावे० १४-१३, सासी० १६-४४—
 १. सासी० कै आप आया दिखलाय ।

[४१] दा० ३-३६, नि० ६-३५, सा० १९-२४, सावे० १४-४५, सासी० १६-११—
 १. दा३ नि० लार, सा० सावे० सासी० साथ (समानार्थिकरण) ।
 रोइए, नि० गहली (उई मूल) । २. सावे० सासी० अब क्या मोच हाय ।

कबीर तन मन यों जला^१, विरह अग्निनि सों लागि ।
 मिरतक पीर न जानई, जानेंगी वह^२ आगि ॥४२॥^३
 कबीर सुपिन हारि मिला^१, मोहि सूत^२ लिया जगाइ ।
 आखि न मोचौ^३ डरपता, मति सुपिनां होइ जाइ ॥४३॥
 साई^१ केरे बहुत गुन, लिखे जु हिरदै साहि ।
 पांनों पिऊं न डरपता^२, मति वै धोएि जाहि ॥४४॥
 कबीर सुंदरि यों कहै, सुनि हो^१ कंत सुजान ।
 बेगि मिलौ तुम आइकै, नहितर तजौ परान^२ ॥४५॥
 कबीर^१ प्रेम न चाखिया, चाखि न लीया साव^२ ।
 सून घर का पाहुनां, ज्यों आवै त्यों जाव^३ ॥४६॥
 ननां अंतरि आव तूं^१, निस दिन निरखूं तोहि ।
 कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहि ॥४७॥
 ननां तीरु लाइया^१, रूढ़ बहै^२ निस^३ धाम^४ ।
 पपिहा^५ ज्यों पिउ पिउ करौं, कब रे^६ मिलहुगे राम ॥४८॥

[४२] दा० ३-३८, नि० ६-३७, सा० ११-२८, सावे० १४-३१, सासी० १६-४१—

१. सा० सावे० सासी० तन मन जीवन यों जला । २. सावे० क्या । ३. सासी० में यह साखी अन्यत्र १६-८६ पर भी आती है, जिसका पाठ है : तन मन जीवन जरि गया, विरह अग्निनि बट लागि । विरहिनि जाने पीर को, क्या जानेंगी आग ॥

[४३] दा० ५०-६, नि० ५८-१०, सा० १०२-१०, सावे० ८४-२, सासी० ५३-२१—

१. सा० सावे० सासी० सोवत । २. सावे० खोलूं । तुल० डोला मारू रा दूहा (ना० प्र० स०) छंद ५०३ : सुपनइ प्रीतम सुक मिल्या, हूं गलि लागी पाइ । डरपत पलक न छोड़ही, मति सुपनउ होइ जाइ ॥ किंतु 'डोला मारू रा दूहा' की तीन वाचनाओं में से यह केवल प्रथम वाचना की प्रतियों में मिलता है ।

[४४] दा० ५०-७, नि० ५८-६, सा० १०२-६, सावे० ८४-१, सासी० ३३-४८—

१. दा० नि० गोविंद । २. दा० डरता पांगरीं नां पिऊं ।

[४५] दा० ५२-१, नि० ५७-१, सा० १०१, सावे० १४-१२, सासी० १६-३२—

१. सा० सावे० सासी० सुनिए । २. सा० सावे० सासी० नहिं ती तजिऔं प्रांन ।

[४६] दा० २-१८ (दा० ३ में नहीं है), नि० १६-६६, सा० १८-१६, सासी० १५-२७, गुण० ३०-२६—

१. सा० सासी० पहिले । २. नि० सबाइ, सा० सासी० स्वाद । ३. नि० जाइ, सा० सासी० बाद । तुल० वी० चांचर २० : पड़े गुने का कीजिए मन बीरा हो, अंत विलैया खाइ समुझ मन बीरा हो । सून घर का पाहुना मन बीरा हो, ज्यों आवै त्यों जाइ समुझ० । गु० में यह साखी नानक के नाम से है—तुल० मिशन संस्क० पृ० ७९० : जिनी न पाइओ प्रेम रसु कंतु न पाइओ साउ । सुंओ घर का पाहुणा जिउ आइथ तिउ जाउ ॥ किन्तु प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर दा० नि० सा० सासी० गुण० का सम्मिलित साक्ष्य मान्य होने के कारण उक्त समुच्चय में मिलने वाली साखी कबीरकृत ही सिद्ध होती है ।

[४७] दा० ३-३३, नि० ६-३१, सा० ११-५०, सासी० १६-६४, गुण २४-७—

१. दा१ आचर ।

[४८] दा० ३-२४, नि० ७६-२, सा० ११-८०, सासी० १३-४१, गुण० २४-३—

१. सासी० कबीर नैन भर लाइए । २. नि० अरहट बहै । ३. नि० निज । ४. सासी० सा० जाम

सोई आंसू साजानां^१, सोई लोग बिड़ाहिं ।
 जो लोइन^२ लोही चुवै, तौ जानौं हेतु हियांहिं^३ ॥४६॥
 गुर^४ दाभा चेला^२ जला, बिरहा लाई^३ आगि ।
 तिनका बपुरा ऊबरा, गलि पूरे^४ कै लागि ॥५०॥
 पांनों मांहीं परजली, भई^२ अपरबल आगि ।
 बहती सलित रहि गई, मच्छ^२ रहे जल त्यागि ॥५१॥
 कबीर दरिया^१ परजला, दाभे जल थल भोल ।
 बस नांहीं गोपाल सौं, बिनसै^२ रतन अमोल ॥५२॥
 ऊनइ^१ आई बादरी, बरखन लगा अंगार ।
 ऊठि कबीरा धाह दै, दाभत है संसार ॥५३॥
 समुंदर लागी आगि^१, नदिया जलि कोइला भई ।
 देखि^२ कबीरा जागि, मंछी रूखां^३ चढ़ि गई ॥५४॥
 जिहि सरि भारा काल्हि, सो सर मेरे मन बसा ।
 तिहि सरि अजहूं मारि, सर बिनु सचु पाऊं नहीं ॥५५॥

नि० नाम (नागरी मूल) । ५. दा३ बबीहा (राजस्थानी) । ६. दा० नि० कबीर, गुण० कव र, सासी० कबीर । सासी० १६-५२ भी तुलनीय है जिसका पाठ है : नैनन तौ रुढ़ि लाइया, रहट बहै निनु वास । पपिहा ज्यौं पिव पिव रटै, पिया मिलन की आस ।

[४९] दा० ३-२६, नि० ६-२३, सा० १९-४२, सासी० १६-५६, गुण० १८-७६—

१. दा० सहजड़ा (राज०), सावे० सजन जन । २. दा१ बिहा, सा० बहरीया, सावे० बहाहि, सासी० बिहाय । ३. सासी० लोचन । ४. सासी० तौ जानौं हित आय, सा० तौ जानौं हेतड़ीयां ।

[५०] दा० ४-७, नि० ७-९, सा० १९क-९, सासी० २७-५३, गुण० २५-९—

१. सा० जल । २. नि० बी० कंवल । ३. दा० गुण० लाई । ४. सा० परा, सासी० पूरी (उर्दू मूल) । सासी० में यह साखी २७-१० पर भी मिलती है जिसका पाठ है : जल दाभा चीखल जला, बिरहा लागी आग । तिनका बपुरा ऊबरा, गल पुला कै लाग ॥ [यह पाठ सा० से आया हुआ ज्ञात होता है ।]

[५१] दा० ४-९, नि० ७-१८, सा० १८-११, सासी० २७-१२, गुण० २५-२३—

१. गुण० हुई, सासी० रुई (नागरी मूल) । ३. नि० मीन ।

[५२] दा० ५१-१, नि० ५६-१, सा० १७-५, सासी० ७०-८, गुण० ३७-१—

दा२ रियिया (उर्दू मूल) ।

[५३] दा० ५१-२, नि० ५६-२, सा० १७-६, सासी० २७-४०, गुण० ३७-३—

१. दा० ऊनमि । २. सा० सासी० वरसन ।

[५४] दा० ४-१०, नि० ७-१४, सा० १९क-१२, सासी० २७-१३, गुण० २५-२४—

१. दा३ लाइ । २. सा० सासी० ऊठि । ३. सा० सासी० बिरहा । ४. यह साखी केवल सासी० में दोहे के रूप में मिलती है, शेष सब में सोरठे के रूप में है । यह साखी सासी० २७-५८ से भी तुलनीय है जिसका पाठ है : दव लागी दरियाव में, नदिया कुइला होइ । मच्छी परवत चढ़ि गई, वृक्षे बिरला कोइ ॥

[५५] दा० ३-१७, नि० ६-१७, सासी० १६-११०, म० ७-६—

सासी० में यह साखी दोहे के रूप में मिलती है ।

(३) सुमिरन भजन महिमां कौ अंग

कबीर सूता क्या करै^१, उठि किन रोवै दुख^२ ।
जाका बासा गोर मै^३, सो क्युं सोवै सुख ॥१॥
कबीर सूता^१ क्या करै, जागि न जपै^२ मुरारि^३ ।
इक दिन सोवन होइगा^४, लांबे गोड़^५ पसारि ॥२॥
लूटि सकै तो^१ लूटि लै^२, रांम नांम^३ की^४ लूटि ।
फिरि पाछै पछिताहुगे, प्रांन जाहिगे^५ छूटि ॥३॥
केसौ कहि कहि कूकिअै^१, नां सोइअै असरार^२ ।
राति दिवस कै कूकनै^३, कबहुं^४ लगै^५ पुकार ॥४॥
कबीर कठिनाई खरी^१, सुमिरंता हरि नांउं^२ ।
सूरी ऊपरि खेलनां^३, गिरै^४ त नांहीं ठांउं^५ ॥५॥
तूं तूं करता तूं भया^१, मुभ मै^२ रही^३ न हूं ।
वारी तेरे नांउं परि^४, जित देखौं तित तूं^५ ॥६॥

[१] दा० २-१३, नि० १६-७५, सा० ११-३९, सावे० ७४-४, सासी० १३-७३, स० ६९-२२, गु० १२७—

१. गु० करहि । २. गु० जागु रोइ मै दुख । ३. नि० सा० घोर मै (उर्दू मूल) ।

[२] दा० २-११, नि० १६-६५, सा० ११-३५, सावे० १९-७४ तथा ७४-१, सासी० १३-६९—
१. सावे० (१) सोता (उर्दू मूल), सावे० (२) सोया (उर्दू मूल) । २. सा० सावे० जागे जपो, सासी० जागी जपो । ३. सावे० दयार (राधास्वामी प्रभाव) । ४. दा० एक दिनां भी सोवणां, दा३ एक दिन होइगा सोवणां, नि० एक दिहाई सोइबी (राज० मूल), सा० सावे० सासी० एक दिना है सोवना । ५. दा० सासी० लंबे पांव, नि० लांबा पांव, सा० सावे० लंबे पैर ।

[३] दा० २-२५, नि० ५-९, सा० ११-३१, सावे० ३३-४६, सासी० १३-६५, गु० ४१—
१. गु० लूटना है त । २. दा० नि० लूटियो । ३. सावे० सतनाम (राधा० प्रभाव) । ४. गु० है । ५. दा० नि० यहू तन । ६. दा३ दा२ जैहै, दा३ जाइंगे, नि० जासी (राजस्थानी मूल) ।

[४] दा० २-१६ (दा२ दा३ में यह साखी नहीं है), सा० ११-४५, सावे० ७४-९, सासी० १३-७९, गु० २२३—

१. गु० केसो केसो कूकिअ, सावे० पिउ पिउ (राधा० प्रभाव) कहि कहि कूकिअ । २. गु० असार, सावे० इसरार (उर्दू मूल) । ३. सा० कूकवे, सावे० सासी० कूकते । ४. दा० मत कबहुं । ५. गु० सुनै ।

[५] दा० २-२०, नि० ३-२१, सा० ११-७५, सासी० १३-४२, गु० १०९—
१. सा० कबीर चतुराई पढ़ी (उर्दू मूल), गु० कबीर चतुराई अति बनी । २. गु० हरि जपि हिरदै माहि, सा० सावे० सासी० सुमिरत हरि को नाम । ३. दा० नि० सा० सासी० सूली ऊपरि नट बिद्या (सा० सासी० विद्या) । ४. नि० गिरूं । ५. गु० ठाहर नाहि ।

[६] दा० २-९, नि० ३-११, सा० ११-८३, सावे० ३४-३७, सासी० १३-१३०, गु० २०४, गुण० ४२-५५—
१. गु० हूआ । २. सा० तुल्ले । ३. गु० रहा । ४. नि० बारखा हरि का नांव परि । गु० जब आपा पर का मिटि गइआ, दा० वारी फेरी बलि गई, गुण० तूं करते तूं पाइआ । ५. गु० जत देखउ तत वं, गुण० अब तो तूं ही तूं ।

भगति भजन हरि नाउं है^१, दूजा दुख अपार ।
 मनसा बाचा कर्सनां^२, कबीर सुमिरन सार ॥७॥
 चिता तौ हरि नाउं^३ की, और न चितवै^४ दास ।
 जो कहु चितवै राम^५ बिनु, सोई काल की पास ॥८॥
 जिहि^६ घटि प्रीति न प्रेम रस, कुनि^७ रसनां नहिं राम^८ ।
 ते नर आइ^९ संसार में, उपजि खए^{१०} वेकांम ॥९॥
 पहिलै^{११} बुरा कमाइ करि, बांधी ब्रिख की पोट ।
 कोटि करम फिल पलक में^{१२}, जब आया हरि^{१३} की ओट ॥१०॥
 कोटि करम फिल^{१४} फलक में, जे रंचक आवै नाउं
 जुग अनेक जो पुनि करै, नहीं^{१५} नाउं बिनु ठाउं ॥११॥
 लंबा सारग दूरि घर, बिकट^{१६} पंथ बहु सार ।
 कहां संतौ क्यों पाइअै^{१७}, दुरलभ हरि^{१८} दीदार ॥१२॥
 तत्त तिलक^{१९} तिहुं लोक में, राम^{२०} नाम निज सार^{२१} ।
 जन कबीर सस्तकि दिया^{२२}, सोभा अनंत^{२३} अपार ॥१३॥
 कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल ।
 आदि अंत सब^{२४} सोधिया, दूजा देखौं^{२५} काल^{२६} ॥१४॥

[७] दा० २-४ (दा३ में नहीं है), नि० ३-३०, सा० ११-४, सावे० ३४-४२, सासी० १३-११९, तथा १३-१७४ (दो बार)—

१. नि० कबीर निज सुख नांव है, सा० सासी० (११९) निज सुख आत्मराम है, सावे० निज सुख सुमिरन नाम है (पुन० तुल० अगली पंक्ति में 'सुमिरन मार') । २. नि० निहवै ।

[८] दा० २-६, नि० ३-१४, सा० ११-४०, सावे० ३४-३२, सासी० १३-१२७, गुण० १७-६—

१. सावे० सासी० सतनाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । २. दा३ गुण० चिता । ३. सावे० सासी० नाम ।

[९] दा० २-१७, नि० १६-११, सा० ३०-४२, सावे० १९-३३, सासी० १३-४६, गुण० ३०-२७—

१. सासी० जा । २. सासी० पुनि । ३. सावे० सासी० नाम (राधा० प्रभाव) । ४. सावे० सासी० पसु । ५. सा० सावे० खपे (नागरी मूल) ।

[१०] दा० २-१९, नि० ३-१५, सा० ११-४४, सावे० १-११५, सासी० १-६५, गुण० ९-१४—

१. दा० गुण० पहली । २. सा० सावे० सासी० कोटि करम पल में कटै (समानार्थीकरण) । ३. सावे० सासी० गुरु (सांप्रदायिक प्रभाव) ।

[११] दा० २-२०, नि० ३-१६, सा० ११-४५, सावे० ३३-२७, सासी० ५७-१३, गुण० ९-१५—

१. दा० गुण० पैले । २. दा० नि० गुण० राम ।

[१२] दा० २-२७, नि० ३-१९, सा० ११-७७, सावे० ८४-२०, सासी० १३-४३, गुण० ४४-१—

१. नि० कठिन । २. सावे० कह कबीर कस पाइए । ३. सावे० सासी० गुरु (सांप्रदायिक मूल) ।

[१३] दा० २-३ (दा०२ दा३ में नहीं है), नि० ३-४, सा० ५५-१, सावे० ४८-१, सासी० ७-३—

१. नि० तत नांव । २. सावे० सासी० सतनाम (सांप्रदायिक मूल) । ३. नि० ततसार ।

४. नि० घरया । ५. सा० सावे० अमित, सासी० अगम, दा० अधिक ।

[१४] दा० २-५, नि० ३-३१, सा० ११-४, सावे० ३४-४१, सासी० १३-१११—

१. सा० सावे० सासी० मधि । २. नि० दीसे । ३. सावे० ल्याल ।

पांच संगि^१ पिउ पिउ करै, छठा जो सुमिरै मन ।
 आई सूति^२ कबीर की, पाया राम^३ रतन ॥१५॥
 कबीर निरभै राम^१ जपि, जब लगि दीवै वाति ।
 तेल घटे वाती बुझै^२, तब सोवैगा दिन राति ॥१६॥
 कबीर सूता^१ क्या करै, काहे न^२ देखै जागि ।
 जाके संग तैं बीछुरा, ताही कै संगि लागि^३ ॥१७॥
 कबीर सूता क्या करै, सूता^१ होइ अकाज ।
 ग्रह्यां का आसन डिगा^२, सुनत काल की गाज ॥१८॥
 जिन^१ हरि^२ जैसा जानियां, तिनको तैसा लाभ ।
 ओसां^३ प्यास न भाजई^४, जब लगि धंसै न आभ ॥१९॥
 राम पियारा^१ छाड़ि करि, करै आन^२ का जाप ।
 बेस्वा^३ केरा पूत ज्यों, कहै कौन सों^४ बाप ॥२०॥
 जैसे माया मन रमै, यों जे^१ राम^२ रमाइ ।
 तो तारा मंडल बेधि कै^३, सो अमरापुर जाइ^४ ॥२१॥

[१५] दा० २-७, नि० ३-१३, सा० ११-८१, सावे० ३४-३६, सासी० १३-१२८—

१. सावे० सखी । २. नि० सा० सावे० सासी० सुरति (उर्दू मूल ?) । ३. सावे० नाम ।

[१६] दा० २-१०, नि० ४-११, सा० ११-३४, सावे० ३४-४९, सासी० १३-६८—

१. सावे० सासी० नाम । २. दा० नि० बुझा (उर्दू मूल) ।

[१७] दा० २-१२, नि० १६-४०, सा० ११-४१, सावे० १९-७३ तथा ७४-६ (दो बार), सासी० १३-७५—

१. सावे० सोता, सोया (उर्दू मूल) । २. सावे० को नहीं । ३. नि० फिरि ताहीं संग ।

[१८] दा० २-१४, नि० ४४-४४, सा० ११-३८, सावे० १९-७५, सासी० १३-७२—

१. सावे० होते (उर्दू मूल) । २. दा० खिस्यी । सावे० में यह साखी अन्यत्र ७४-३ पर भी मिलती है जहाँ इसका पाठ है : कबीर सोया क्या करै, सोये होय अकाज । ग्रह्या का आसन डिगा, सुनी काल की गाज ॥ -

[१९] दा० २-११, नि० ५-५, सा० ११-१६, सावे० ३७-३६, सासी० १८-६०—

१. दा० नि० जिहि । २. सावे० सासी० गुरु (साम्प्रदायिक प्रभाव) । ३. सा० सार० ओसै ।

४. सा० सावे० सासी० भागसी (राज० मूल) । सासी० १४-१२९ भी तुलनाय है जिसका पाठ है : जिन जेता प्रभु पाइया, ताहुं तेता लाभ । ओसै प्यास न भाजई, जब लग घसे न आभ ।

[२०] दा० २-२२, नि० १६-२७, सा० २९-२, सावे० ८०-३, सासी० २३-१६—

१. सावे० सासी० सत्तनाम को (साम्प्रदायिक प्रभाव) । २. सा० सावे० और । ३. सा० सावे० सासी० बेस्वा । ४. सा० सावे० सासी० को । सावे० सासी० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है, तुल० सावे० ३३-४३ तथा सासी० १३-११ : नाम पियू का छोड़ि कै, करै आन का जाप । बेस्वा केरा पूत ज्यों, कहै कौन सों बाप ॥ इस साम्य से दोनों का संकीर्ण संबंध सिद्ध होता है ।

[२१] दा० २-२४, नि० ५-८, ११-४६, सावे० ३३-४२ तथा ३४-५० (दो बार), सासी० १३-४०—

१. सा० सावे० सासी० तैसे । २. सावे० नाम । ३. दा० छोड़ि करि, नि० बेधि कै । ४. दा०

लूटि सकै तौ लूटि लै^१, रांम नांम^२ भंडार ।
 काल कंठ कौ^३ गहेगा^४, रुंधै^५ दसहुं दुवार ॥२२॥
 कबीर चित्त^१ चमकिया^२, दहुं दिसि लागी लाइ ।
 हरि^३ सुमिरन हाथौ घड़ा^४, बेगे लेहु बुझाइ^५ ॥२३॥
 जानंता^१ बूझा नहीं, समुझि^२ किया नहि गौन ।
 अंधे कौ अंधा मिला^३, राह^४ बतावै कौन ॥२४॥
 कबीर कहता जात है^१, सुनता है सब कोइ ।
 रांम कहै^२ भला होइगा, नातर भला न होइ ॥२५॥
 कहै कबीर मैं कथि गया^१, कथि गए ब्रह्म महेस^२ ।
 रांम नांम^३ ततसार है, सब काहू उपदेस ॥२६॥

(४) साध महिमां कौ अंग

कबीर चंदन कै विडै^१, बेधे^२ ढाक पलास^३ ।
 आपु सरीखे करि लिए, जे होते^४ उन पास^५ ॥१॥

जहं कैसी तहां जाहू साबे ३४-५० का पाठ है : जैसा माया मन रमै, तैसे नाम रमाय ।
 तारा मंडल छाड़ि कै, जहां नाम तहं जाय ॥

[२२] दा० २-२६, नि० ४४-१, सा० ११-३३, साबे ११-११, सासी १३-६०—
 १. सासी० कहे कबीर तू लूटि लै । २. साबे० सत्तनाम (राधा० प्रभाव) । ३. दा१ दा२ जब ।
 ४. साबे० पकरिहै । ५. नि० सा० साबे० सासी० राके ।

[२३] दा० २-३२, नि० ३-२४, भा० ११-४९, साबे ३४-५१, सासी १३-११३—
 २. दा२ दा३ दा४ चिता । २. सा० साबे० सासी० चंचल भया । ३. साबे० सासी० गुरु
 (सांपदाधिक प्रभाव) । ४. हरि सुमिरन हाजर खड़ा (उर्दू मूल) । ५. नि० लेहु बुझाइ बुझाइ ।

[२४] नि० २-९, सा० २-३, साबे २-३, भासी० ३-४, बी० १५३—
 १. बी० जाना नहि, सासी० जानीता । २. नि० सा० साबे० बूझि । ३. नि० भूला कूं भूला ।
 मिल्या । ४. नि० सा० सासी० पंथ ।

[२५] दा० २-१, नि० ५-६, सा० ११-९५, सासी १३-१५७, गुण० ८-१—
 १. सा० सासी० कहता हूं कहि जात हूं । २. भा० सासी० सुमिरन सौ ।

[२६] दा० २-२, नि० ५-४, सा० १०-६५, सासी १५-६५, गुण० ८-२—
 १. सागी० मैं कथि कहि कहि कहि गए । २. नि० सा० सासी० ब्रह्मा विस्नु महेस । ३. सासी०
 सत्तनाम (सांपदाधिक मूल) ।

[१] दा० २८-७, नि० २७-८, सा० ५७-२० तथा ५७-२२, साबे १६-२१, सासी ९-७, गुं
 ११, बी० ४१, स० २४-२, गुण० ७०-१६—

१. दा३ कबीर चंदन कौ विडै, सा० कबिरा चंदन के विधे (नागरी मूल) ['विधे' से ध्वनि-
 साम्य के कारण 'विधे' और पुनः उससे अंतर-सादृश्य के कारण सा० में 'विधे' बना हुआ
 ज्ञात होता है ।], साबे० कबीर चंदन के दिधे, सासी० कबीर चंदन संग से, गुं चंदन का
 विरवा भला, बी० मलयागिरि के वास में (कदाचित् बी० ४८ के अनुकरण पर जिसकी प्रथम
 पंक्ति है : मलयागिरि की वास में मलयागिरि के वास में) दा३ गुण० बेडवा (उर्दू मूल, गुं

संत न छाड़ै संतई^१, जौ^२ कोटिक^३ मिलाहि असंत ।
 मलय^४ भुयंगम^५ बेड़िआ^६, तऊ^७ सीतलता न तजंत ॥२॥
 है गै बाहन^८ सघन घन, छत्र^९ धुजा फहराइ ।
 ता^{१०} सुख तैं^{११} भिख्या भली, जौ^{१२} हरि सुमिरत दिन जाई^{१३} ॥३॥
 पुर पट्टन सूबस बसै, आनंद ठाएं ठाई^{१४} ।
 राम सनेही^{१५} बाहिरा, ऊजड़ मेरै भाई ॥४॥
 मेरै संगी दोइ जनां^{१६}, एक^{१७} बैस्तों^{१८} एक^{१९} राम ।
 वो है दाता मुकति का,^{२०} वो सुमिरावै नाम^{२१} ॥५॥
 जिहि^{२२} घरि साध न पूजिए^{२३}, हरि की सेवा नाहि^{२४} ।
 ते घर मरहट^{२५} सारिखे, भूत बसैं तिन माहि^{२६} ॥६॥

बेड़िआ (उर्दू मूल), दा३ नि० सा० सावे० वेड़ा । ३. दा० नि० गुण० आक पलास, स० डेक पलास ['ढाक' और 'पलास' यद्यपि समानार्थी हैं किन्तु उनका प्रयोग यहाँ मुहावरे के रूप में हुआ है, अतः पुनरुक्ति नहीं होगी ।] ४. सा० सासी० ठहरा । ५. गु० ओइ भी चंदन होइ रहै बसे जु चंदनु पास, बी० वेना कवहुं न बेधिया, रहै जुगो जुग पास । सा० ५७-२२ का पाठ है : मलया गिरि की बास में, बेधे ढाक पलास । बास न कवहुं बेधिया, रहै जुगो जुग पास ॥ (यह पाठ बीजक से प्रभावित ज्ञात होता है ।)

[२] दा० नि० २९-२, सा० ५९-५, सावे० ४७-५७, सासी० ६-१२४, स० ७-१, गु० १७४, गुण० ७२-१७—

१. सावे० सासी० संतता । २. सा० सावे० सासी० में यह शब्द नहीं है । ३. दा० ३ कोटि एक । ४. दा० नि० स० गुण० चंदनु, गु० मलियागुरु (उर्दू मूल) । ५. दा० नि० स० भुवंगा, सा० भुवंगि, सावे० सासी० भुवंगम । ६. नि० सा० सावे० सासी० बेधिया (उर्दू मूल) । ७. सा० सावे० सासी० गुण० में यह शब्द नहीं है ।

[३] दा० ३०-४, नि० ३२-३, सा० ६१-२३, सावे० ३३-३४, सासी० १३-६०, स० १२३-२, गुण० ११२—

१. दा० नि० स० है गै गैवर (पुन०), सा० सासी० हयवर गयवर, सावे० हय गय औरी । २. गु० लाख । ३. गु० इआ । ४. दा० नि० छैं । ५. नि० जे, दा० सा० सावे० सासी० में 'जौ' या 'जे' नहीं है । ६. सावे० सासी० नाम भजत दिनु जाइ (साम्प्रदायिक प्रभाव) । गु० में इस साखी की पुनरावृत्ति, तुल० गु० १५० : ऊच भवन कनकामनी सिख रि घजा फहराइ । ताते भली मधुकरी संत संग गुन गाइ ॥

[४] दा० ३०-३, नि० ३२-१, सा० ६१-२२, सासी० ६-६४, स० ७८-३, गु० १४—

१. दा३ पाटण ती सूबस बसै, गु० कबीर हज जह तह फिरिओ । २. गु० कउतक ठाओ ठाई । ३. गु० इक राम सनेही । गु० में यह साखी १५१ पर पुनः मिलती है, वहाँ इसका पाठ है : पाटन ते ऊजर भला राम भगति जिह ठाई । राम सनेही बाहरा जमपुर् मेरे भाई ॥

[५] दा० २८-४, नि० २७-४, सा० ५७-१३, सासी० ९-१६, ६-१७९, गु० १६४, गुण० ६९-१७—
 १. गु० कबीर सेवा कउ दुह भले । २. दा३ के । ३. गु० संतु । ४. गु० रामु जु दाता मुकति को । ५. गु० संतु जपावै नाम । सासी० में यह साखी अन्यत्र भी आती है, तुल० सासी० ६-१७९ : कबीर सेवा दोउ भली, एक संत इक राम । राम है दाता मुक्ति का, संत जपावै नाम ॥ (यह पाठ गु० से लिया हुआ ज्ञात होता है ।)

[६] दा० ३०-३, नि० ३२-२, सा० ६१-२०, सासी० ६-६२, गु० १९२, स० ८५-२—

१. गु० सासी० जा । २. गु० सेवीअहि, सा० सासी० सेवही । ३. सासी० पारब्रह्म पति नाहि । ४. गु० सा० सासी०

दावे दाभन होतु है, निरदावे रहै^१ निसंक ।
 जे जन^२ निरदावे रहै, ते गनै इन्द्र कौ^३ रंक ॥७॥
 कबीर भया है केतकी,^४ भंवर भए सब दास ।
 जहं जहं^२ भगति कबीर की,^३ तहं^४ तहं^५ राम निवास ॥८॥
 कबीर कुल सोई भला^६, जिहि कुल उपजै दास^७ ।
 जिहि कुल दास न ऊपजै, सो कुल ढाक पलास^८ ॥९॥
 है गै बाहन^९ सघन घन^{१०}, छत्रपती की नारि ।
 तासु पटंतर^{११} नां तुलै^{१२}, हरिजन की पनिहारि ॥१०॥
 क्यों त्रिपनारी निदिष्ट, क्यों पनिहारो^{१३} कौ मान ।
 वा^{१४} मांग संवारै पीव की^{१५}, वा नित उठि सुमिरै राम^{१६} ॥११॥
 जिनहुं किछु जानां नहीं^{१७}, तिन्ह सुख नौद बिहाइ^{१८} ।
 मैं रे अबूझी बूझिया^{१९}, पूरी परी बलाइ^{२०} ॥१२॥
 सुपतै हूँ बरराइ^{२१} कै, जिहि मुख निकसै राम^{२२} ।
 ताके पग की पांनही^{२३}, मेरै तन कौ चाम ॥१३॥

[७] दा० ३०-९, नि० ३१-१४, सा० २१-१२, सासी० २८-१८, गु० १६९, गुण० १०६-१६—
 १. दा० नि० सासी० में 'रहे' शब्द नहीं है । २. दा० नि० जे नर । ३. गु० सो, नि० सा० सू ।

[८] दा० ३०-११, नि० ३२-१०, सा० ६१-३०, सासी० ११-२०, गु० १४१, गुण० ६८-२८—
 १. नि० हरि जी भया है केतकी, गु० कबीर कसतूरी भया (कस्तूरी से भँवरों का संबंध कवि समय से सिद्ध नहीं होता) । २. गु० जिउ जिउ । ३. नि० भगति निरमली । ४. गु० तित तित ।
 ५. दा० भगति (पुन०), सा० सासी० मुकति ।

[९] दा० ३०-८, नि० ३२-५, सा० ६१-२८, सावे० ४०-७९, सासी० ११-१८, गु० १११—
 १. दा० नि० कबीर कुल तो सो भला । २. गु० जिहि कुल हरि को दासु । ३. सा० सावे० सासी० आक पलास ।

[१०] ३०-५, नि० ३२-२४, सा० ६१-२४, सावे० ४०-८१, सासी० ६-६५, गु० १५९—
 १. दा० नि० है गै गैवर (पुन०) । २. सावे० सुघर घर (नागरी मूल) । ३. सा० सावे० सासी० पटतरै । ४. गु० पुजै ।

[११] दा० ३०-६, नि० ३२-२४, सा० ६१-२५, सासी० ६-६६, गुण० १६०—
 १. गु० हरि चेरी । २. गु० ओहु । ३. गु० बिलै कउ । ४. गु० ओहु सिमरै (उर्दू मूल) हरि नाम ।

[१२] दा० २९-६, नि० ३१-५, सा० ६०-७, सासी० १६-९५, गु० १८१—
 १. दा० जिन्य कुछ जाँग्या नहीं, सा० सासी० कबीर जिन कुछ जानिया । २. सा० सासी० सुख निदरी बिहाय । ३. दा० मैं र अबूझी बूझी, नि० मुझै अबूझी बूझी, सा० मेरे (उर्दू मूल) अबूझी बूझिया, सासी० मेरे अब सी (?) बूझिया, गु० हमहुं जु बूझा बूझना । ४. नि० जाँगी भारी पड़ी बलाइ, सा० सासी० पड़ी पड़ी बिलखाय । कबीर की यह साखी अन्यत्र श्रेष्ठ फरीद के नाम से भी मिलती है, तुल० गुण० ६४-१६ : फरीदा जिन कुछ बूझिया, तिन सुख रैन बिहाइ । मैं ज अबूझी बूझिया, चप्परि भई बलाइ ॥

[१३] नि० ३२-१२, सा० ११-६०, सावे० ३३-३१, सासी० १३-५८, गु० ६३—
 १. सा० सासी० सामने से । २. गु० नि० बरहाइ । ३. नि० जे रे कहैगे राम, सा० सावे० सासी० चोखे निकरै राम (सावे० सासी० नाम—संप्रदायिक प्रतीति) । ४. सा० सावे० सावे० पग की पैतरी,

कबीर चला जाइ था^१, आगें मिला^२ खुदाइ ।

मीरां मुक्तसौं यों कहा^३, तुमै कीन्हि^४ फुरमाई गाइ ॥१४॥

राम नाम जिन चीन्हिया^५, भीनां पंजर तासु^६ ।

नैन^७ न आवै नौदरी^८, अंग न जांमैं मासु^९ ॥१५॥

राम^१ वियोगी विकल^२ तन, इन्ह दुखवौ मति कोइ^३ ।

छूवत ही मरि जाइंगे, तालाबेली होइ^४ ॥१६॥

जानि^५ बूझि जड़ होइ रहै, बल तजि निरबल होइ ।

कहै कबीर तेहि संत का^६, पला न पकड़ै कोइ^७ ॥१७॥

लालन की^८ ओबरी नहीं, हंसन की नहिं पांति^९ ।

सिंहन के लेंहड़ा नहीं, साधु न चलैं जमाति ॥१८॥

कबीर संगति साधु की, कदे^१ न निरफल होइ^२ ।

चंदन होसी (होई ?) वावनां^३, नौब न कहसी (कहई ?) कोइ^४ ॥१९॥

नि० ताका तन की पाहनीं (उर्दू मूल) ।

[१४] दा० २१२१, सा० १०-३४, सासी० ७३-३७, गु० ११०—

१. गु० हज कावे हउ जाइया । २. सा० सासी० मिले । ३. गु० साईं मुक्त सिउ लरि परिआ, सा० सासी० मीरां मुक्तसौं कब कही । ४. सा० सासी० कह ।

[१५] दा० २१-४, नि० ८६८, सा० ६०-४, सावे० १४-४३, बी० ४४ गुण० ७२-२१—

१. दा० नि० सा० गुण० कबीर हरि का भावता (पुन० तुल० दा० २१-३ नि० ८६९ सा० ६०-४ सावे० ७-२२, सासी० ११-५ तथा गुण० ७२-२० की प्रथम पंक्ति जिस का पाठ है : कबीर हरि (सावे० सासी० गु०) का भावता दूरहि ते दासंत ।) । २. नि० भीणे पिजर सांस । ३. दा० नि० गुण० रैणि (हिन्दी मूल) । ४. दा० नि० गुण० नौदरी (राज० प्रभाव) । ५. दा० नि० अंग न चढ़ई मास, दा० दा० नि० गुण० अंग न बाढ़े मास, सा० देह न तन की मास ।

[१६] दा० २१-१, नि० ३१-३, सा० ६०-३०, सावे० १४-२१, सासी० १६-१६, बी० ६८—

१. सावे० नाम (राधा० प्रभाव) । २. नि० खीन । ३. दा० नि० सा० सासी० ताहि न चीन्है कोइ । ४. दा० नि० सासी० तंबोली का पांन ज्यूं, दिन दिन पीला होइ । ५. सावे० में यह साखी १४-४४ पर भी आती है जिसका पाठ है : नाम वियोगी विकल तन, ताहि न चीन्है कोइ । तंबोली का पान ज्यूं, दिन दिन पीला होइ । यह पाठ दा० नि० सा० सासी० के पाठ से मिलता है ।

[१७] नि० १३-३, सा० २५-७ सावे० ४४-७, बी० १६७—

१. सा० सावे० जानि, बी० समझि । २. नि० सा० सावे० ता दास कू । ३. नि० सा० सावे० गंजि न सकै कोइ ।

[१८] बी० १७२, सा० ५९-३, सावे० ७४-१३, सासी० ६-१३८—

१. बी० हीरो की । २. सावे० सासी० नहिं बेरियां । ३. बी० मलयागिर नहिं पांति । ४. बी० सिंहा के । ५. सा० सावे० सासी० में इस साखी के प्रथम तथा तृतीय चरण परस्पर स्थानांतरित ।

[१९] दा० २८-१, नि० २८-१, सा० ५७-६, सावे० १६-७, सासी० ९-५, स० २४-१, गुण० ७०-१५—

१. सावे० कधी (राज० मूल) सासी० कर्मा । २. सा० जाय । ३. सावे० सासी० बासना । ४. सा० काय (केवल बुकार्य) ।

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत^१ मिलाहि^२ ।
 अंक भरे भरि भेटिए, पाप सरीरउ^३ जाहि^४ ॥२०॥
 जेता सीठा बोलनां^१, तेता साधु न जानि ।
 पहिले थाह दिखाइ करि, ऊंडे देसी^२ (देई ?) आनि ॥२१॥
 कबीर संगति साधु की, नित प्रति कीजै जाइ^१ ।
 दुरमति दूर बहावसी^२ (ई), देसी (देई ?) सुमति बताइ ॥२२॥
 मथुरा जाउ भावै द्वारिका, भावै जाउ जगनाथ^१ ।
 साधु संगति हरि भगति^२ बिनु, कछु न आवै हाथ ॥२३॥
 निरबैरी निहकांमता, सांई सेती नेह ।
 बिखया सौं न्यारा रहै, संतनि^१ का अंग^२ एह ॥२४॥
 खोद खाद^३ धरती सहै, काट कूट बनराइ^२ ।
 कुटिल बचन^३ साधू^४ सहै, दूजै^५ सहा न जाइ^६ ॥२५॥
 कबीर हरि का भावता^१, दूरहि तै^२ दीसंत ।
 तन खीनां^३ मन उनमुनां^४, जगि रूडड़ा^५ फिरंत ॥२६॥

[२०] दा० २८-३, नि० २७-३, सा० ६१-१२ तथा ५७-१५, सावे० ४७-७४, सासी० ६-३, स० ३०-४^१
 गुण० ६९-३३—

१. सासी० साधु । २. सावे० सासी० मिलाय । ३. दा० सरीर, सावे० सासी० गुण० सरीर ।
 ४. सावे० सासी० जाय । सा० ५७-१५ का पाठ है : कबीर सो दिन निरमला, जा दिन संत
 मिलाइ । अंक भरे भरि भेटिए, पाप देह का जाइ ।

[२१] दा० २७-३, नि० २८-१, सा० ५९-१, सावे० ५०-२, सासी० ७-१६, स० ३-१ तथा ७७-१—
 १. सासी० बोलवा । २. सासी० आंई ।

[२२] दा० २८-२, नि० २७-२, सा० ५७-१, सावे० १६-३, सासी० ९-१ गुण०, ७०-१३—
 १. दा० दा० गुण० वेगि करीजै जाइ, दा० कीजै नित प्रति जाइ । २. दा० नि० गुण०
 गंवाइसो ।

[२३] दा० २८-३, नि० २७-३, सा० ५७-१२, सावे० १६-३, सासी० १-२५, गुण० ७०-२७—
 १. सा० सासी० मथुरा कासी द्वारिका, हरिद्वार जगन्नाथ । २. सा० सावे० सासी० हरिभजन ।

[२४] दा० २९-१, नि० २९-१, सा० ५९-१, सावे० ४७-३, सासी० ६-१०७, गुण० ११०-३८—
 १. सावे० सासी० साधन । २. नि० गुण० सासी० मत, सावे० मति (उद्गू मूल) ।

[२५] दा० ३९-२, नि० ४१-१, सावे० ६२-२, सासी० १९-४३, गुण० १५२-३—
 १. दा० नि० गुण० खूंदन तो । २. दा० नि० गुण० बाद सहै बनराइ । ३. दा० नि० गुण०
 कुसवद तो । ४. दा० गुण० हरिजन । ५. सावे० सासी० और से (समानार्थीकरण) ।
 ६. नि० ज्यूं देखिया बूंद समाइ ।

[२६] दा० २९-३, नि० ८-३९, सा० ६०-५, सावे० ५-२२, सासी० ११-५, गुण० ७२-२०—
 १. सावे० सासी० गुरु के भावते । २. नि० दूरां सू । ३. सा० सावे० सासी० खीनां ।
 ४. सावे० सासी० अग्रमना । ५. सा० सावे० सासी० जगतें रुठि । सासी० में यह साखी
 ६-२०१ पर भी मिलती है जिसका पाठ है : सतगुरु केरा भावता, दूरहि ते दीसंत । तन खीना मन
 उनमना, ~~कूट कूट~~ फिरंत ।

जान भगत का नित भरन, अनजानें का राज ।
 सर अपसर^१ समझै नहीं, पेट भरन सों काज ॥२७॥
 जानि बूझि सांची तजै, करै झूठ सों नेहु ।
 ताकी संगति रांम जी^२, सुपिनै हू जनि^३ देहु ॥२८॥
 कबीर खाई कोट की, पानीं पियै न कोइ ।
 जाइ परै^४ जब गंग मै, तौ सब गंगोदिक होइ ॥२९॥
 बिखै^५ पियारी प्रीति सों, तब हरि^६ अंतरि नाहि^७ ।
 जब अंतरि हरि जी^८ बसै, तब बिखिया सों चित^९ नाहि ॥३०॥
 ऊजल देखि न धोजिए, बग ज्यों माड़ै ध्यान ।
 धोरै^{१०} बैठि चपेटही^{११}, यों लै बूड़ै ग्यान ॥३१॥
 कबीर^{१२} लहरि समंद की, केती आवैं जाहि^{१३} ।
 बलिहारी ता दास की, उलटि समावै माहि^{१४} ॥३२॥
 पंच बलधिया फिरकिड़ी^{१५}, ऊजड़ि ऊजड़ि जाइ ।
 बलिहारी वा दास की, पकड़ि जु राखै ठाई^{१६} ॥३३॥
 भगत^{१७} हजारी कापड़ा, तामैं मल न समाइ ।
 साकत काली कामरी, भावै तहां बिछाइ ॥३४॥
 सब घटि मेरा सांइयां, सूनी सेज न कोइ ।
 भाग तिनहुं का हे सखी^{१८}, जिहिं घटि परगट होइ ॥३५॥

- [२७] दा० २९-७, नि० ३१-३, सा० ६०-८, सावे० १२-२२, सासी० १२-३७, गुण० ६६-१५—
 १. सा० सावे० सासी० ओसर ।
 [२८] दा० २८-३, नि० २६-३, सा० ५६-१३, सावे० १७-२, सासी० ९-४८, गुण० ६७-२—
 १. सावे० हे प्रभू । २. नि० सा० सावे० सासी० मति ।
 [२९] दा० २८-८, नि० २७-१०, सा० ५७-३४, सावे० १६-२२, सासी० ९-२१, गुण० ७०-१९—
 १. दा१ दा२ सा० सावे० सासी० मिले ।
 [३०] दा० २९-१३, नि० २१-३८, सा० ४०-१२, सावे० ३१-५, सासी० ७९-१०, गुण० ११०-३९—
 १. दा० जदि बिखै, गुण० जब विपै । २. सावे० सासी० सतगुरु । ३. सावे० तब लगि गुरुमुख
 नाहि । ४. सावे० सासी० सतगुरु । ५. सा० सावे० सासी० कचि ।
 [३१] दा० २७-२, नि० २८-२, सा० ५८-२, सावे० ५८-३, सासी० ७-१३—
 १. सावे० धूरे, सासी० धीरे (हिन्दी मूल) । २. दा० चपेटसी (राज० मूल), नि० चपेटिले ।
 [३२] दा० २८-११, नि० १७-४४, सा० ३१-७८, सावे० ७१-१५, सासी० २९-१२—
 १. दा० केती । २. दा० कत ऊपजै कत जाइ । ३. दा० उलटौ माहि समाइ ।
 [३३] दा१ दा२ २५-१४, नि० ३१-३, सा० ६०-३, सावे० ७-२१, सासी० ११-७—
 १. नि० पांच बलद एक फिरकिड़ी, सा० सावे० सासी० कबीर पांचों बलधिया । २. दा२ दा३
 बबकि अड़वै ठांड, सा० सावे० सासी० पकड़ि जु राखै बाहि ।
 [३४] दा० २८-१३, नि० २९-३, सा० ५९-३, सावे० ४७-३१, सासी० ६-७—
 १. दा१ भगति (उर्दू मूल), नि० सा० सावे० सासी० साधु ।
 [३५] दा० २९-२८, नि० ३१-११, सा० ६०-१४, सावे० ७-२७, ४०-५ (दो बार), सासी० ३९-२—
 १. दा१ भागि । दा१ पंजाबी मूल ।

कबीर खालिक जागिया, और न जागे कोइ^१ ।
 कै जागे बिखई बिख भरा^२, कै दास बंदगी होइ^३ ॥३६॥
 चंदन की कुटकी भली, नां बबूर लखरांव^४ ।
 साधुन की^५ छपरी^६ भली, नां साकत कौ बड़गांव^७ ॥३७॥^५
 कबीर धनि सो सुंदरी^१, जिन जाया बैसनौ^२ पूत ।
 रांम^३ सुमिरि निरभै भया^४, सब जग^५ गया अऊत ॥३८॥
 साकत बांहन मति^१ मिलै, बैसनौ मिलै चंडाल^२ ।
 अंकमाल दै भेटिए^३, मानौ मिले गोपाल^४ ॥३९॥
 काम^१ मिलावै रांम^२ कौ, जौ कोइ जानै राखि ।
 कबीर बिचारा क्या करै^३, सुखदेउ बोले साखि ॥४०॥
 कामिनि अंग अरत^१ भए, रत भए हरि नाई^२ ।
 साखी गोरखनाथ ज्यौ^३, अमर^४ भए कलि मांहि ॥४१॥

[३६] दा० २९-२०, नि० ३१-१२, सा० ६०-१६, सावे० ७-२६, ७६-१३ (दो बार), सासो० ११-३—
 १. नि० कबीर सब जग लोटिया, जागत नाहीं कोइ । २. दा३ नि० कै जाग्यो बिखहर बिख भरया, १० सावे० सासो० कै जागे बिखया भरा । ३. सा० सावे० सासी० जोय ।

[३७] दा० ३०-३, नि० ३२-२१, सा० ६१-२१, सावे० ४७-२०, सासो० ३-३३—
 १. दा३ दा३ नां बबूल अंवरान्, नि० नां बबूल बनराइ, सा० सासो० नां बाबुल बनराव । २. दा० वेशनी की । ३. सा० सावे० सासी० छपरी । ४. दा३ नि० सा० सासी० नां साकुट कौ गांव । ५. सा० तथा सा० में दोना पंक्तियाँ परस्पर स्थानांतरित । सावे० ६१-३५ पर यह साखी पुनः मिलती है, जहाँ इसका पाठ है : चंदन की कुटकी भली, कहा बबूल बनराव । साधुन की छपरी भली, बुरी असाधु को गांव ॥ तुल० नि० ३२-२२ : साधन की छपरी भली, नां साखित का गांव । ऊंचा भिंदर किस काम का, जहां नहीं हरि नांव । इस संबंध में गु० सलोक १५ भी तुलनीय है, जिसका पाठ है : संतन की भुगिआ भली भठि कुसती गांव । आगि लगौ तिह घउलहर जह नाही हरि का नाव ।

[३८] दा० ३०-७, ३२-५; सा० ६१-२७, सावे० ४७-२५, सासो० ६-२४—
 १. नि० सा० सावे० सासी० धनि सो माता सुंदरी । २. सावे० सासी० साधु । ३. सावे० सासो० नाम । ४. नि० वै भगति करे मगवंत की । ५. दा३ सा० सावे० सासी० और सब ।

[३९] दा० ३०-३, नि० ३२-१६, सा० ९६-३, सावे० ४७-३२, सासी० ५-३४ तथा ६-१२५—
 १. दा३ जिन । २. दा३ बिहाल (उर्दू मूल) । ३. सा० सावे० सासी० अंग (उर्दू मूल) भरे भरि भेटिए । ४. नि० सा० सावे० सासी० दयाल । सासी० ६-१२ का पाठ है : साकत बाह्यन मति मिलै, साधु मिली चंडाल । जाहि मिले सुख ऊपजै, मानो मिले दयाल ॥

[४०] दा० २९-२५, नि० ३१-२३, सा० ४४-३, सासी० ७३-३, सा० ११४-१, गुण० ११२-४०—
 १. सा० सासी० सील । २. सासो० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । ३. सा० सासी० कहै कबीर में क्या कहै ।

[४१] दा० २९-१२, सा० ४४-५, सासी० ७९-४, स० ११४-२, गुण० १११-३९—
 १. दा३ सा० सासी० गुण विकत । २. सा० सासी० सीलहि राखि विरक्त भए, हरि के मारग जाहि । ३. दा३ ते नर गोरखनाथ ज्यौ । ४. दा३ दा३ दा३ दा३ सिद्ध ।

स्वारथ कौ सब कोइ सगा^१, जग सगला ही जानि ।^२
बिन स्वारथ^३ आदर करै, सो हरि की प्रीति पिछानि^४ ॥४२॥
कबीर बन बन में फिरा^५, कारन अपनै रांम ।
रांम सरोखे जन मिले, तिन सारे सब कांम ॥४३॥

(५) गुर सिख हेरा कौ अंग

अैसा कोई नां मिलै,^१ अपनां घर^२ देइ जराइ ।
पांचउ^३ लरिके पटक कौ,^४ रहै रांम^५ लौ^६ लाइ ॥१॥
अैसा कोई नां मिलै, जासौं रहिए लागि ।
सब जग जरता देखिया^१, अपनीं अपनीं आगि ॥२॥^२
अैसा कोई नां मिलै, हंमकौं^३ दे उपदेश ।
भौसागर में बूडते,^४ कर गहि काढ़े केस ॥३॥
ऐसा कोई नां मिला, समझै सैन सुजान ।
ढोल बजंता^१ नां सुनै, सुरति बिहंन^२ कांन ॥४॥
अैसा कोई नां मिलै, हंमकौं लेइ पिछानि^३ ।
अपनां करि किरपा करै,^४ लै उतरै^५ मैदानि ॥५॥

- [४२] दा० २१-१५, नि० ३१-२ सा० १६-२, सासी० २४-१, स० ७८-३, गुण० ८८-३—
१. नि० सगे स्वारथी सब मिले । २. सा० सासी० सारा ही जग जान । ३. नि० आदर ।
४. सा० सासी० सो नर चतुर सुजान ।
[४३] सा० ६१-२८, सावे० १६-३३, सासी० ६-७७, गुण० ४४-१०—
१. सा० सावे० सासी० परबत परबत में फिरा (पुन० तुल० प्रस्तुत पुस्तक को साखी २-२४ यथा :
परबति परबति में फिरा, नैन गंवायौ रोइ ।
[१] दा० ४३-३, नि० ४८-३, सा० ५-३, सावे० ६-३, सासी० ४-२, गु० ८३, स० ३२-३—
१. गु० कबीर अैसा को नहीं । २. गु० मंदर । ३. दा० पंचू । ४. गु० मारि के, नि० पकड़ि
करि । ५. सावे० सासी० नाम । ६. गु० लिउ । गु० में इससे मिलती-जुलती एक साखी
अन्यत्र भी मिलती है जिसका पाठ है : अैसा कोई न जनमिओ अपने घर लावै आगि । पांचउ
लरिका जारिके रहै राम लिव लागि ॥
[२] दा० ४३-५, नि० ४८-१, सा० ५-३, सावे० ६-२, सासी० ३-४१, स० ३२-१०, बी० ३२२—
१. बी० ई जग जरते देखिया, दा३ सब जुग (उर्दू मूल) दीसै दाफता । २. बी० में इस साखी
की दोनों पंक्तियों परस्पर स्थानान्तरित ।
[३] दा० ४३-१, नि० ४८-२, सा० ५-२, सावे० ६-२, सासी० ४-१, स० ३२-४—
१. दा३ जाकुं । २. सासी० हूबते ।
[४] दा३ ४३-३, नि० ४८-३, सा० ५-३, सावे० ६-५, सासी० ४-५—
१. सावे० ढोल बाजता, नि० ढोल बागा ।
[५] दा० ४३-२, नि० ४८-५, सा० ५-१०, सावे० ६-३, सासी० ४-३, स० ३२-५—
१. सासी० समझै सैन सुजान (पुन० तुल० सासी० ४-५ में भी : अैसा कोई ना मिला, समझै सैन
सुजान) । २. नि० अपनां करि कै पाकरे (उर्दू मूल ?) । ३. दा३ दा३ नि० लै उतरै, दा३
लै उतरौ, सावे० सासी० लै उतार ।

असा कोई ना मिलै, राम भगति^१ का मोत ।
 तन मन सौपै मिरिग ज्यों, सुनै बधिक^२ का गीत ॥६॥
 असा कोई ना मिलै, सब विधि देइ^३ बताइ ।
 सुनि^४ मंडल में पुरिख एक^५, ताहि^६ रहे लौ लाइ ॥७॥
 हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाहि ।
 असा कोई ना मिलै, पकड़ि छुड़ावै बाहि ॥८॥
 सारा सूरु बहु मिलै, घाइल मिलै न कोइ ।
 घाइल कौं घाइल मिलै, तौ राम भगति^७ दिदु होइ ॥९॥
 प्रेमीं दूढ़त में फिरूं, प्रेमीं मिलै न कोइ ।
 प्रेमीं सौं प्रेमीं मिलै, तौ सब बिख अंम्रित होइ^८ ॥१०॥
 तीन सनेही बहु मिलै, चौथे मिलै न कोइ ।
 सर्वाहि पियारे राम के, बैठे परबसि होइ ॥११॥
 सरपाहि दूध पियाइए, दूधै^९ बिष होइ जाइ ।
 असा कोई ना मिलै, सौं सरपें बिख खाइ^{१०} ॥१२॥
 हम घर जारा आपनां, लिए मुराड़ा हाथि^{११} ।
 अब घर जालौं तास का^{१२}, जो चले हमारै साथि ॥१३॥

[६] दा० ४२-३, नि० ४८-३, सा० ५-११, सावे० १-३७, सासी० १-५२, स० ३२-—
 १. सा० राम भजन, सावे० सासी० सत्तनाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । २. दार विषक (उद्धू मूल) ।

[७] दा० ४२-७, नि० ४८-३, सा० ५-१५, सावे० ६-३, सासी० ६-३, स० ३२-—
 १. दार देउ । २. सावे० कवन । ३. नि० सा० सावे० सासी० है । ४. नि० तहां. सावे० जाहि । ५. सा० सावे० रतू । सासी० रतू ।

[८] दा० ४२-८, नि० ४८-१०, सा० ५-१५, सावे० ६-३, सासी० ६-१२, स० ३२-३—

[९] ४२-११, नि० ४८-११, सा० ५-१५, सावे० ६-११, सासी० ६-१६ स० ३२-१२—

१. दा० ही । २. सावे० गुरु भक्ती ।

[१०] दा० ४२-१२, नि० ४८-१२, सा० ५-१९, सावे० ६-१२, सासी० ६-१५, स० ३२-१२—
 १. सावे० गुरु भक्ती दृढ़ होय, सा० सासी० विल में अमृत होइ । सावे० तथा सासी० में यह साखी दो-दो बार मिलती है जिससे दोनों में संकीर्ण-संबंध ज्ञात होता है—तुल० सावे० १५-३३ तथा सासी० १५-२२ : प्रेमी दूढ़त में फिरूं, प्रेमी मिलै न कोय । प्रेमी से प्रेमी मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥ तुल० सावे० १५-३३ तथा सासी० १५-२२ : प्रेमी दूढ़त में फिरूं, प्रेमी मिलै न कोय । प्रेमी से प्रेमी मिलै, विष से अमृत होय ॥

[११] दा० ४२-३, नि० ४८-९, सा० ५-१६, सासी० ६-१४, स० ३२-११—

[१२] दा० ५५-३, नि० ४८-१४, सा० ५-२१, सावे० ६-१४, सासी० ४-१३—

१. नि० सो तो, सा० सावे० सासी० सोई । २. सा० सावे० सासी० आपे ही विष खोइ ॥

[१३] दा० ४२-१३, नि० ५-१२, सा० ५-३, सावे० ६-३, सासी० ६-११ तथा ४२-४२—

१. सावे० सासी० लोका लीला, हाथ । २. नि० श्रीं का मीं जालिखी, मारवा । सावे० सासी०

(६) दीनता बीनती कौ अंग

कबीर कूता राम का^१, सुतिया मेरा नाउं ।
 गले राम की जेवरी^२, जित^३ खैचै^४ तित^५ जाउं ॥१॥
 मेरा मुझ में^६ किछु नहीं, जो किछु है सो तेरा^७ ।
 तेरा तुझकों सौपतां,^८ क्या लागै मेरा^९ ॥२॥
 निगुसावां बहि जाइगा,^{१०} जाके थांघी^{११} नाहीं कोइ ।
 दीन^{१२} गरीबी बंदगी^{१३}, करतां होइ सु होइ ॥३॥
 कबीर सब जग दूढ़िया^{१४}, बुरा न मिलिया कोइ ।
 कबिरा सब काहू बुरा^{१५}, कबीरै^{१६} बुरा न होइ ॥४॥
 करता^{१७} केरे बहुत गुन, औगुन कोई नाहिं ।
 जो दिल खोजै आपनी^{१८}, तो सब औगुन मुझ मांहि ॥५॥
 जद^{१९} का साई जनमिया, कदे^{२०} न पाया सुख ।
 डारी डारी में फिरौं, पातैं पातैं दुख ॥६॥
 औसर बीता अलप तन, पीव रहा परदेस ।
 कलंक उतारौ साइयां^{२१}, भानों भरम अंदेश ॥७॥

वाहू का घर फूंक दूं । तुल० सासी० ४२-४२ : मैं मेरा घर जालिया, लिया पलीता हाथ ।
 जो घर जारी आपना, चली हमारे साथ ॥

[१] दा० ११-१४, नि० १५-२६, सा० ६-१५, सावे० ७-१२, सासी० १०-७, गु० ७४—
 १. सावे० सेवक कुत्ता गुरू का, सा० सासी० सेवक कुत्ता राम का [यह पाठ-परिवर्तन
 सांप्रदायिक मनोवृत्ति के कारण किया हुआ ज्ञात होता है, क्योंकि कबीर को राम का कुत्ता
 बनाना सांप्रदायिक मर्यादा के विरुद्ध है ।] २. गु० गले हमारे जेवरी, सा० सावे० सासी०
 डोरी लागी प्रेम की । ३. गु० जह । ४. गु० खिचै । ५. गु० तह ।

[२] दा० ११-३, सा० ६-२०, सावे० ४-५ तथा ३६-२४, सासी० ५४-१५, गुण० २०-३—
 १. गुण० महि । २. सा० सावे० सासी० तोर, सावे० तुझ । ३. सावे० सासी० सौपते ।
 ४. सा० सावे० लागैगा मोर, सासी० लागत है मोर, सावे० (२) लागत है मुझ ।

[३] दा० ४१-११, नि० ५१-१५, गु० ५१, गुण० ३३-३—
 १. गु० कबीर निगुसाएं बहि गए । २. दा५ थंभी । ३. नि० दास । ४. गु० आपुनी ।

[४] दा३ ३१-१०, नि० ५५-७, सा० ७२-११, सावे० ६५-११, सासी० ८३-१२, स० १२७-१—
 १. दा३ नि० बुरा बुरा सब कोइ कहै, सा० सावे० सासी० बुरा जो देखन में चला । २. दा३
 कबीर देख्या आपकूं, सा० सावे० सासी० जो दिल खोजी आपना (पुन० तुल० अगली साखी का
 तृतीय चरण) ३. नि० सा० सावे० सासी० मुझ सा ।

[५] दा० ५६-३, नि० ६१-३, सा० १०५-१४, सावे० ३६-११, सासी० ३३-१४, गुण० ३६-३—
 १. सा० सावे० सासी० सांझ । ३. सा० सावे० सासी० आपना ।

[६] दा० ३८-११, नि० ४८-२०, सा० १८-२१, सावे० ८६-३१, सासी० ८६-२१, गुण० ११-११—
 १. सा० सावे० सासी० जब । २. सा० सासी० कितै । ३. दा० पातैं पातैं, सा० सावे० सासी०
 पात पात में । इस साखी से सासी० ७८-१ तुलनीय है : जा दिन ते जिव जनमिया, कबहुं न पाया
 सूख । डाले डाले में फिरा पातै पातै दूख ॥

[७] दा० ५६-४, नि० ६१-७, सा० १०५-२०, सावे० ३६-१३, सासी० ८६-१०, गुण० ३५-२१—
 १. दा० गुण० केसवा. नि० ४१० राम जी ।

ज्यों मेरा मन तुझ सों^१, यों जो तेरा^२ होइ ।
 तौ अहरनि ताता लोह ज्यों^३, संधि न लखई कोइ ॥८॥
 नां परतीति न प्रेम रस, नां इस^४ तन में ढंग ।^५
 क्या जानों^६ उस पीव सों, कैसे^७ रहसी रंग ॥९॥
 कबीर भूल बिगड़िया^८, तूं नां करि मेला चित्त^९ ।
 साहिब गरवा लोड़िए^{१०}, नफर बिगड़ै नित्त^{११} ॥१०॥
 दीन गरीबी दीन कौं, दुंदर कौं अभिमान ।
 दुंदर दिल बिल सों भरी^{१२}, दीन गरीबी रांम^{१३} ॥११॥
 कबीर बिचारा करै बीनती^{१४}, भोसागर कै ताईं^{१५} ।
 बंदे ऊपर जोर होत है^{१६}, जम कौ बरजि गुसाईं^{१७} ॥१२॥

(७) पिउ पहिचानिबे कौ अंग

कस्तूरी^१ कुंडलि^२ वसै, अंग^३ ढूँढ़े बन मांहि ।
 असै घटि घटि रांम है^४, दुनिया देखै^५ नांहि ॥१॥

[८] दा० ५६-२, नि० ६१-१०, सा० ८२-१०, सावे० १५-२१ तथा ३६-१९ (दो बार), सासी० १५-४६ तथा २२-३८ (दो बार) गुण० १९-४१ तथा ३५-१० (दो बार)—

१. नि० कबीर मेरा मन तुझ सों, सावे० सासी० मेरा मन जो तोहि सों । २. नि० यूं तेरा मुक्ति सों । ३. दा० गुण० ताता लोहा यों मिले । यह साखी सावे० सासी० तथा गुण० में दो-दो बार आती है जिससे तानों में सकोश-संबंध ज्ञात होता है ।

[९] दा० ११-१६, नि० ६१-१५, सा० १०५-२२, सावे० ३६-२२, गुण० १९-३४—

१. दा० मन । २. दा० को । ३. गुण० नां मुक्त रूप न रंग है, नां मुक्त एकौ ढंग । ४. नि० सा० जानूं । ५. नि० सावे० क्यूं करि, गुण० क्यूं ही ।

[१०] दा० ५६-२, नि० ६१-२, सा० १०५-११, सासी० ३३-३२, गुण० ३४-१—

१. नि० बंदे बहुत बिगाड़िया । २. नि. सा० सासी० करि करि मेला चित्त । ३. सा० नफरि भी ऐसा चाहिए, सासी० नफर तो दीन अधीन है । ४. सा० सासी० साहिब राखे हित ।

[११] दा० ४१-१२, नि० २९-३, सा० ३९-५, सासी० ८२-३, गुण० ३२-४—

१. नि० दुंदर दीजिग जाइगा, गुण० दुंदर दिल दीजिग महीं, सा० सासी० दुंदर तौ विष सो भरा । २. सा० सासी० जान ।

[१२] दा० ५६-५, नि० ६१-४, सा० १०५-३, सासी० ३२-३९, गुण० ३५-३—

१. नि० कबीर करि न बीनती, सा० सासी० कबीर करत है बीनती । २. सा० सासी० बंदे जोरा होत है ।

[१३] दा० ५३-१, नि० ५९-२, सा० १०२-१, सावे० ४०-१, सासी० ४१-१२, सा० ५०-३, गुण० १३६-८—

१. दा० किसूरी (उर्दू मूल) । २. साखी० नामी । ३. नि० मृष । सा० जैसे घट घट ब्रह्म है, सावे० सासी० ऐसे घट में पीव है (साम्प्रदायिक प्रभाव) । ४. सा० सासी० जुने ।

ज्यों नैननि में^१ पूतरी, त्यों खालिक घट मांहि ।
 मूरिख लोग न जानहीं, बाहरि दूढ़न जाहि ॥२॥
 संपुट^२ मांहि समाइया, सो साहिब नहि होइ ।
 सकल मांड में रमि रहा, साहिब कहिए सोइ^३ ॥३॥
 कबीर साथी सोइ किया, दुख सुख जाहि न कोइ ।
 हिलमिल कै संगि खेलिहुं^४, कदे^५ बिछोह न होइ ॥४॥
 भोरै भूली खसम कै, बहुत किया बिभिचार^६ ।
 सतगुर आनि^७ बताइया, पूरबला भरतार ॥५॥
 सो साईं^८ तन में बसै, मरम^९ न जानै तास^{१०} ।
 कस्तूरी का मिरिग^{११} ज्यों, फिरि फिरि दूढ़ै^{१२} घास ॥६॥
 जाकै मुंह माया नहीं, नाहीं रूप कुरुप^{१३} ।
 पुहुप बास तैं पातरा, औसा तत्त अनूप ॥७॥
 ऐसी अदबुद^{१४} मति कयो, अदबुद राखि लुकाइ^{१५} ।
 बेद कुरानों गमि नहीं^{१६}, कहें न कोइ पतियाइ ॥८॥
 भारी कहूं तो बहु डरूं, हरुवा^{१७} कहूं तो भूउ^{१८} ।
 मैं क्या जानूं राम कौ^{१९}, नैनां कबहुं^{२०} न दीठ^{२१} ॥९॥

[२] दा० ५२-३, नि० ५९-२, सा० १०४-५, सावे० ४०-३, सासी० ४१-४, स० ५०-२, गुण० १३६-२०—
 १. दा० नैनहुं में, नि० नैनुं में ।

[३] दा० ३६-१, नि० ३६-१, सा० ६८-२०, सावे० ३९-३, सासी० ५४-२, गुण० ५०-२—
 १. दा० नि० गुण० संपटि (उर्दू मूल) । २. सा० सावे० सासी० मेरा साहिब सोय ।

[४] दा० ५९-३, नि० ४-४०, सा० १०५-३, सावे० ८४-४, सासी० ४४-२, गुण० १०९-१—
 १. दा० नि० हिलमिल है करि खेलिख्युं । २. सासी० कबहुं, सावे० कधी (राज०) ।

[५] दा० ३६-३, नि० १४-२३, सा० २७-२६, सावे० ९-२९, सासी० २२-४१—
 १. सा० सावे० सासी० कबहुं न किया बिचार । २. दा१ दा२ गुरु, दा३ सरू (उर्दू मूल), नि० सही ।

[६] दा० ५२-३, नि० ५९-५, सा० १०२-२, सावे० ४०-२, सासी० ४१-१४—
 १. सा० सासी० साहिब । २. दा० अम्यो, नि० भरम । ३. सावे० तेरा साईं तुज्ज में ज्यों पुहुपन में बास । ४. दा० मृग, नि० मृव । ५. दा० सूवै । सा० तथा सासी० में यह साखी अन्यत्र भी आती है जहाँ इसका पाठ सावे० से मिलता है, तुल० सा० १०३-४ तथा सासी० ४१-११ : तेरा साईं तुज्ज में, ज्यों पुहुपन में बास । कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिरि फिरि दूढ़ै घास ॥

[७] दा० ३६-३, नि० ३६-३, सा० ६८-२२, सावे० ३९-१०, सासी० ५४-१०—
 १. सावे० सासी० अरूप ।

[८] दा० ८-३, नि० १२-३, सा० २४-३, सावे० ४४-३, सासी० ३८-१२—
 १. नि० उदबुद (उर्दू मूल), सासी० अदबुद । २. सावे० सासी० कयो तो चरो क्षियाय । ३. सा० सावे० सासी० वेद कुराना ना लिखा ।

[९] दा० ८-१, नि० १२-१, सा० २४-१, सावे० ४४-१, सासी० ३८-१०—
 १. सावे० सासी० हलका । २. सासी० कौठ (केवल तुकार्थ) । ३. सावे० पीव को (साम्प्रदायिक प्रभाव) । ४. सा० सावे० कहु । ५. नि० मैं तो जानौं राम कूं, नैनां अंतरि दीठ ।

दीठा है तौ कस कहूँ, कहें न कोइ पतिआइ ।
हरि^१ जैसा तैसा रहै^२, तूँ हरखि हरखि गुन गाइ^३ ॥१०॥
रहै निराला मांड तैं, सकल मांड तिहि मांहि ।
कबीर सेवै तासकों^४, दूजा सेवै नांहि ॥११॥
तिन कै ओलहै^५ रांम है, परबत मेरै भाइं ।
सतगुर मिलि परचै भया, तब पाया घट मांहि ॥१२॥
नां कछु किया न करहिंगे, नां करनें जोग सरीर^६ ।
जो कछु किया सु हरि किया^७, भया कबीर कबीर^८ ॥१३॥

(८) संम्रथाई कौ अंग

सात सभुंद की^१ मसि^२ करौं, लेखनि सब बनराइ^३ ।
धरती सब कागद करौं^४, तऊ^५ हरि गुन^६ लिखा^७ न जाइ ॥२॥
कबीर करनीं क्या करै^८, जौ रांम न करै सहाइ^९ ।
जिहिं जिहिं^{१०} डारी पग धरौं, सोई नइ नइ जाइ^{११} ॥३॥
कीयां कछु न होत है, अनकीयां सब होइ ।
जौ कीएं ही होत है^{१२}, तौ करता औरै कोइ ॥४॥

[१०] दा० ८-२, नि० १२-२, सा० २५-२, सावे० ४४-२, सासी० ३८-११, गु० १२२—

१. गु० कबीर देखि के कहि कहउ । २. दा० नि० कहां (राज० मूल), सा० सासी० कहूँ ।

३. सा० सासी० तो । ४. सावे० सांई । ५. गु० उही (उद् मूल) । ६. गु० रहउ हरखि गुन गाइ ।

[११] दा० ३६-२, नि० ३६-२, सा० ६८-१९, सासी० ५४-२७, गुण० ५०-३—

१. नि० ता रांम कूँ ।

[१२] दा० ५२-७, नि० ५१-१४, सा० १०३-१०, सासी० ४१-१८, गुण० १३६-३४—

१. सा० सासी० तिल के ओते ।

[१३] दा० ३८-१, नि० ४८-३, सा० ७२-२, सावे० ३८-४, सासी० ३२-५, गुण० ६२—

१. गु० ना हम किआ न करहिगे न करि सकै सरीर । २. गु. किआ जानउ किछु हरि किया, सावे० सासी० जो कुछ किया संहिब किया (राधास्वामी तथा कबीरपंथी प्रभाव) । ३. नि० सा० सावे० सासी० तातें भया कबीर ।

[२] दा० ३८-५, नि० ४८-२, सा० ७२-२१, सावे० १-१४, सासी० १-५५, गु० ८१—

१. गु० समुंदहि । २. गु० मसु (उद् मूल) । ३. गु० कलम करउं बनराइ । ४. गु० बसुधा कागद जउ करउं । ५. सा० सावे० सासी० गु० में 'तऊ' शब्द नहीं है, केवल दा० नि० में है । ६. गु० हरि जसु, सावे० सासी० गुरु गुन (राधा० प्रभाव) । ७. गु० लिखनु । सा० सावे० तथा सासी० में इस साखी के प्रथम तथा तृतीय चरण परस्पर स्थानान्तरित ।

[३] दा० ३८-१०, नि० ४८-१९, सा० ४२-२, सावे० २८-१७, सासी० ५२-२, तथा ७०-१०, गु० ९७—

१. नि० सासी० (७०-१०) करनि विचारी क्या करै, गु० कारनु बपुरा किआ करै । २. सावे० सासी० (५२-२) जो गुरु नहीं सहाय, सासी० (७०-१०) हरि नहि होय सहाय । ३. नि० ज्यां ज्यां । ४. सा० सावे० सासी० (७०-१०) नमि नमि, सासी० (५२-२) भिव निव, गु० मुरि मुरि ।

[४] दा० ३८-२, नि० ४८-५, सा० ७२-११, सावे० ३८-३, सासी० ३२-७—

१. सा० सावे० सासी० कीया जो कछु होत तो ।

अबरन कौं क्या बरनिए, मोबे बरनि^१ न जाइ ।
 अबरन बरने बाहिरा^२, करि करि थका उपाइ^३ ॥५॥
 हेरत हेरत हे सखी^१, रहा कबीर हिराइ^२ ।
 बूंद समानों समुंद में, सो कत हेरी जाइ ॥६॥
 हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ ।
 समुंद समानां बूंद में, सो कत हेरा जाइ ॥७॥
 जिसहि न कोई^१ तिसहि तूं, जिस तूं तिस सब कोइ^२ ।
 दरिगह तेरी सांइयां, भेटि न सकै कोइ^३ ॥८॥
 भौसागर^१ जल बिख भरा^२, मन नहि बांधें धीर ।
 सबल^३ सनेही हरि मिला^४, तब उतरा पारि कबीर ॥९॥
 सांइ मेरा बानिया, सहजि करै व्योपार ।
 बिन डांडी बिन पालरै, तोलै सब संसार ॥१०॥
 सांइ^१ सौं सब होत है, बंदे सौं^२ कछु नाहि ।
 राई तैं परबत करै, परबत राई माहि^३ ॥११॥

- [५] दा० ३८-६, नि० ४०-३, सा० ७२-२२, सावे० ३८-१०, सासी० ८४-१३—
 १. दा० लख्या । २. सा० बाहरी (उर्दू मूल) । ३. दा० नि० अपनाना बांनाना बाहिया, कहि कहि थाके माइ ।
- [६] दा० ७-३, नि० १२-१, सा० ४-३०, सावे० ६-२५, तथा ८४-२३, सासी० ४-२१—
 १. सा० सावे० सासी० हेरिया । २. सावे० (८४-२३) हेरत गया हिराय ।
- [७] दा० ७-४, नि० १२-२, सा० ४-३१, सावे० ६-२६ तथा ८४-२३, सासी० ४-३०—
 [८] दा० ३८-३, नि० ४०-३, सा० ७२-१२, सावे० ३८-३, सासी० ३३-१८—
 १. सा० सावे० सासी० जिस नहि कोई । २. सा० सावे० सासी० होय । ३. दा० नि० नामहर मन होइ (?) ।
- [९] दा० ४०-१, नि० ४८-१, सा० १०२-२, सावे० १-११७, ८४-४० (दो बार), सासी० ४३-२७—
 १. दा० भौ समंद । २. नि० भौसागर सूभर भखा । ३. सावे० (८४-४०) सबद (उर्दू मूल) ।
 ४. सावे० (१-१७) गुर, (८४-४०) पिउ (राधास्वामी प्रभाव) ।
- [१०] दा० ३८-२, नि० ४०-१५, सा० ७२-३०, सावे० ३८-१३, सासी० ३३-१३—
 याज्ञिक संग्रह (ना० प्र० स०) की ३४६-४५ संल्यक पोथी में यह साखी लालदास के नाम से मिलती है, वहाँ इसका पाठ है : लाल जी साहिब मेरा बानिया, सहज किया बोहार । बिन डंडी बिन पालरै, तोले इह संसार ॥२१॥ किन्तु प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह कबीर की प्रामाणिक साखियों में आती है । ज्ञात होता है कि कबीर से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण लालदास ने उनकी कुछ साखियाँ अपने नाम से ग्रहण कर लीं अथवा संभवतः किसी प्रतिलिपिकार ने भ्रम से इन्हें लालदास की रचनाओं में सम्मिलित कर लिया हो, क्योंकि उक्त पोथी में लालदास के नाम से ऐसी अनेक साखियाँ मिलती हैं जो वास्तव में कबीर की हैं ।
- [११] दा० ३८-१२, नि० ४०-२, सा० ७२-१, सावे० ३८-१, सासी० ३३-१—
 १. दा० सा० सावे० सासी० साहिब । २. सा० सावे० सासी० से । ३. सावे० नाइ ।

साईं में तुम्हें बाहिरा^२, कौड़ी हू न लहाउं^३ ।
 जो सिर ऊपरि तुम धनी^४, तौ लाखों मोल कराउं^५ ॥१२॥
 एक खड़ा ही नां लहै, एक^६ खड़ा^२ बिललाइ ।
 समर्थ मेरा साइयां^३, मूतां देइ जुगाइ ॥१३॥
 कबीर पूछै राम सौं, सकल भवन पति राइ ।
 सबही करि अलगा^१ रहै, सो बिधि देहु बताइ^२ ॥१४॥
 कबीर जांचन जाइया, आगें मिला अजंच ।
 लै चाला घरि आपनै, भारी पाया संच^२ ॥१५॥
 आदि मध्य अरु अंत लौं^१, अबिहड़ सदा अभंग ।
 कबीर उस करतार का, सेवग तजै न संग^२ ॥१६॥
 कबीर सिरजनहार बिन, मेरा हितु न कोइ ।
 गुन औगुन बिहड़ै^३ नहीं, स्वारथ बंधो^२ लोइ ॥१७॥

(६) परचा कौ अंग

जब मैं था तब हरि^१ नहीं, अब हरि^१ है मैं नाहि ।
 सब अंधियारा मिटि गया, जब दीपक देखा माहि^२ ॥१८॥

[१२] नि० ४०-२६, सा० ७१-५, सावे० ३८-१२, सासी० ३२-१२, गुण० ५१-६२—
 १. सावे० साईं तुम्ह से । २. गुण० बाहरी (राज० नागरी मूल) । ३. सावे० कौड़ी नाहि बिकाय,
 सासी० कौड़ी हू नहि पाउं । ४. गुण० खड़ा । ५. सावे० महंगे मोल कराय, सासी० महंगे मोल
 बिकाउं ।

[१३] दा० ३८-४, नि० ४८-७, सा० ७२-१३, सासी० ३२-२४, स० ४६-३—
 १. दा० ओर । २. सा० सासी० ऊभा । ३. दा० साईं मेरा सुलखनां ।
 [१४] दा० ५७-१, नि० ४६-१, सा० ८०-१, सासी० ३९-३, स० ४६-१—
 १. सा० सासी० न्यारा । २. दा० सो बिधि हमहि बताइ, सा० सासी० सोई देहु बताय ।
 [१५] दा० ५०-१२, नि० ५८-१२, सा० १०२-१२, सासी० ५२-३१, गुण० ११५-२३—
 १. नि० सा० सासी० आप सरीखा करि लिया । २. नि० घरि मस्तग परि हाथ ।

[१६] दा० ५९-३, नि०, सा० १०७-२, सासी० ४५-३, गुण० १०९-३०—
 १. सा० सासी० आदि अंत अरु मध्य लौं । २. सा० सासी० कभी न छुड़ै संग ।
 [१७] दा० ५९-२, सा० ७३-५, सासी० ४५-५, गुण० १०९-८—
 १. सा० सासी० बूढ़े (उर्दू मूल), गुण० बिसरै । २. सा० सासी० बंधा (नागरी मूल) ।
 [१८] दा० ५-३५, नि० ८-२५, सा० २८-३४, सावे० १५-१०, सासी० १६-१०१, स० १२६-२,
 गुण० ४२-५४—

१. सा० गुण० गुरु । २. सा० कबीर नगरी एक में, दो राजा न समाहि, सावे० प्रेम गली अति
 सांकरि, तामें दो न समाहि । ३. सासी० में यह साखी दो अन्य स्थलों पर भी मिलती है, तुल०
 सासी० १४-४७ : जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु है मैं नाहि । कबीर नगरी एक में, दो राजा
 न समाहि ॥ तथा सासी० १५-३९ : जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु है मैं नाहि । प्रेम गली
 अति सांकरि, तामें दो न समाहि ॥ पहली साखी सा० से तथा दूसरी सावे० से ली हुई बात
 होती है ।

पारब्रह्म के तेज का^१, कैसा है उनमांन^२ ।
 कहिवे कौ^३ सोभा नहीं, देखें ही^४ परवांन ॥२॥
 भली भई जो^५ भै परा^६, गई दसा सब भूलि ।
 पाला गलि^७ पांतीं भया, दुरि मिलिया उस कूलि^८ ॥३॥
 जा कारनि मैं जाइथा^९, सोई पाया ठौर^{१०} ।
 सोई फिरि आपन भया, जासों कहता^{११} और ॥४॥
 अगम अगोचर गवि नहीं, जहां जगमगै^{१२} जोति ।
 तहां^{१३} कवीरा बंदगो^{१४}, जहां^{१५} पाप पुनि नहि छोति ॥५॥
 पंखि^{१६} उड़ानीं गगन कौं, पिंड रहा परदेस ।
 पांतीं पीया चंचु बिनु^{१७}, भूलि गया यह^{१८} देस ॥६॥
 पंजरि प्रेम प्रकासिया, जागो^{१९} जोति^{२०} अनंत ।
 संसै खूटा^{२१} सुख भया^{२२}, मिला पियारा कंत ॥७॥
 मन लागा उनमन सौं, गगन पहुंचा^{२३} जाइ ।
 चांद बिहूनां चांदिनां, तहां अलख निरंजन राइ^{२४} ॥८॥

[२] दा० ५-३, नि० ८-२, सा० १९-७४ तथा २०-३, सावे० ४२-२५, सासी० १४-४० तथा १६-८४, गु० १२१, गुल० ४२-३१—

१. गु० चरन कवल की मउज को । २. गु० कहु कैसा उनमान । ३. सा० कहिवे री (राज०), सावे० सासी० कहिवे की । ४. दा० नि० गुल० देखा ही, सा० सावे० सासी० देखे ही, सा० १९-७४ तथा सासी० १६-८४ में इस साखी का पाठ है : अविनासो की सेज का, कैसा है उनमान । कहिवे को सोभा नहीं, देखे ही परमान ॥ उक्त दोनों प्रतियों में एक ही प्रकार की पुनरावृत्ति मिलने से दोनों में प्रक्षेप-संबंध सिद्ध होता है ।

[३] दा० ५-१८, नि० ८-१६, सा० २०-२०, सावे० ११-१७, सासी० ६६-२, गु० १७७—
 १. गु० भउ । २. नि० सा० मिटया, सासी० पड़ी । ३. गु० सा० सासी० दिसा उर्दू मूल) ।
 ४. गु० झोरा गरि । ५. गु० जाइ मिलियो डलि कूलि, सासी० डुलि मिलिया उस कूल ।

[४] दा० ५-१७, नि० ८-२६, सा० २०-३५, सावे० ४३-५७, सासी० १४-७७, गु० ८७—
 १. गु० कवीर जाकउ खोजते । २. सा० सावे० सासी० जा तो पाया ठौर । ३. गु० सोई फिरि कै तू भइथा । ४. दा० कहिता (उर्दू मूल) ।

[५] दा० ५-३, नि० ८-३, सा० २०-४, सावे० ४३-४४, सासी० १४-१९, स० ५०-१—
 १. सा० सासी० फिलमिली (उर्दू मूल), सावे० फिलमिले (उर्दू मूल) । २. दा० जहां ।
 ३. सासी० रमि रहा ।

[६] दा० ५-२०, नि० ४२-१०, सा० २०-२३, सावे० ४३-५२, सासी० २०-१४, सा० ४८-५—
 १. सा० सावे० सासी० पंछी । २. नि० चंच भरि, सा० सावे० सासी० चौच विन । ३. सा० सावे० सासी० वह । ४. दा० तहां ।

[७] दा० ५-२३, नि० ८-२, सा० २०-१२, सावे० ४३-१४, सासी० १४-२३, गुल० ४२-३—
 १. दा० नि० गुल० जाया । २. दा० नि० गुल० जोग । ३. सावे० सासी० छूटा । ४. सा० सावे० सासी० भय मिटा ।

[८] दा० ५-१५, नि० ८-१२, सा० २०-१७, सावे० ४३-१७, सासी० १४-२६, गुल० ५२-१७—
 १. दा० पड़ता (राज० मूल) । २. तुल० गोरखबानी, सबदी १७१-२ : चंद बिहूनां चादिनां
 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पांनों हूँ तैं हिम भया, हिम ही गया बिलाइ ।
 जो कुछ था सोई भया^१, अब कुछ कहा न जाइ ॥६॥
 सुरति समांनों निरति मैं, अजपा मांहीं^१ जाप ।
 लेख समांनों अलेख मैं, यौ आपा मांहीं^१ आप ॥१०॥
 सचु^१ पाया सुख ऊपनां^२, दिल दरिया भरपूरि^३ ।
 सकल पाप सहजै गए, जब साईं^४ मिला हजूरि ॥११॥
 कबीर देखा इक अगम^१, महिमां कही न जाइ ।
 तेज पुंज पारस^२ धनीं, नैननि रहा समाइ ॥१२॥
 नौव बिहूनां देहुरा, देह बिहूनां देव ।
 कबीर तहां बिलंबिया, करै अलख की^१ सेव ॥१३॥
 देवल मांहीं^१ देहुरी, तिल जेता^१ बिस्तार ।
 मांहीं पांती मांहीं^३ जल, मांहीं पूजनहार ॥१४॥
 कबीर तेज अनंत का, मांनों ऊगी^१ सूरिज सेनि ।
 पति संगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेनि^२ ॥१५॥

तहां देख्या श्री गोरखराइ ॥

[९] दा० ५-१७, नि० ८-१४, सा० २०-१९, सावे० ४२-५०, सासी० १५-२८—

१. नि० कबीर जो था सो भया ।

[१०] दा० ५-२३, नि० ? सा० २०-२६, सावे० ४२-१९, सासी० १६-३०, गुण० ४२-२४—

१. सा० सावे० सासी० माहीं ।

[११] दा० ५-२६, नि० ८-२०, सा० २०-२८, सावे० ४२-५३, सासी० २-३५ तथा १६-३३, गुण० ४२-२५—

१. सावे० सुचि । २. सा० सावे० सासी० ऊपजा । ३. दा१ दा२ अरु दिल दरिया पूरि ।
 ४. सावे० साहिब, सासी० सतगुरु । सासी० १६-३३ का पाठ है : सुचि पाया सुख ऊपजा, दिल दरिया भरपूरि । सकल पाप सहजै गया, साहिब मिले हजूर ॥ (यह पाठ सावे० के समान है) ।

[१२] दा० ५-३६, नि० ८-२७, सा० २०-३७, सावे० ४२-३७, ४१-५८, सासी० १६-५१, गुण० ४२-३५—

१. दा० नि० सासी० अंग (नागरी मूल) । २. सा० सावे० परसा ।

[१३] दा० ५-४१, नि० ८-४६, सा० २०-३९, सावे० ४२-३९, सासी० १६-३६, गुण० ४२-११—

१. नि० अलख पुरुष की ।

[१४] दा० ५-४२, नि० ८-४२, सा० ३०-४०, सावे० १४-३७, सासी० ११८-७, गुण० ४३-१२—

१. दा० गुण० जेहै (राज० मूल) । २. गुण० सा० सासी० फूल ।

[१५] दा० ५-४१, नि० ८-४१, सा० २०-२२, सावे० ४२-४३, सासी० १४-५०—

१. नि० ऊगा (राज० नागरी मूल), सा० सावे० सासी० में 'ऊगा' या 'ऊगी' नहीं है । २. सा० सावे० सासी० में 'ऊगी' In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कबीर मन मधुकर भया, करै^१ निरंतर^२ बास ।
 कंवल ज फूला^३ नीर^४ बिनु, निरखै^५ कोइ निज दास ॥१६॥
 अंतरि^१ कंवल^२ प्रकासिया^३, ब्रह्म बास तहां होइ^४ ।
 मन भंवरा^५ जहं लुबधिया, जानैगा जन कोइ ॥१७॥
 साइर नाहीं सोप नहिं^१, स्वाति वृंद भी नाहिं ।
 कबीर मोती नीपजै, सुनि सिखर^२ गढ़^३ माहिं ॥१८॥
 घट में^१ औघट पाइया^२, औघट माहिं घाट ।
 कहै कबीर परचा भया, गुरु दिखाई वाट ॥१९॥
 सूर^१ समानां चांद में, दुहुं^२ किया घर एक ।
 मन का चेता तब भया, कछु पूरबला लेख^३ ॥२०॥
 हृद छांड़ि बेहद गया, सुनि किया अस्थान^१ ।
 मुनिजन महल^२ न पावहीं, तहां किया^३ विसराम ॥२१॥
 देखौ करम कबीर का, कछु पूरबला^१ लेख ।
 जाका रहल न मुनि लहैं, सो दोस्त किया अलेख^२ ॥२२॥

[१६] दा० ४-६, नि० ८-४, सा० २८-५, सावे० ४२-४५, सासी० १४-५३—
 १. दा० नि० रहा । २. सावे० नरतर (उर्दू मूल) । ३. सासी० कमल खिला है । ४. दा०
 दा० जलइ । ५. दा० देखै । तुल० दा० ४-५ : हरे छांड़ि बेहद गया, हुवा निरंतर बास ।
 कंवल ज फूलया फूल बिनु, को निरखै निज दास ॥

[१७] दा० ४-७, नि० ८-३६, सा० २८-७८, सावे० ४२-६७, सासी० ३८-४०—
 १. सा० सावे० कबीर । २. सा० कंचन । ३. सा० भासिया । ४. दा० बास यै (उर्दू मूल)
 सोइ । ५. दा० भुंवरा (उर्दू मूल ?) । सासी० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है,
 तुल० सासी० १४-५८ : कबीर कंचन भासिया, ब्रह्म बास जहां होइ । मन भौरा तहां लुबधिया,
 जानैगा जन कोइ । (यह पाठ सा० से लिया हुआ ज्ञात होता है) ।

[१८] दा० ४-८, नि० ८-५, सा० २८-६, सावे० ४३-४, सासी० १४-७३—
 १. दा० साइर नाहीं सोप बिनु, सावे० सासी० सोप नहीं सायर नहीं । २. सासी० सरवर
 (नागरी मूल) । ३. सा० सावे० सासी० घट ।

[१९] दा० ४-९, नि० ८-६, सा० २८-७, सावे० ४३-४७, सासी० १४-७५—
 १. दा० माहिं । २. दा० लखा ।

[२०] दा० ४-१०, नि० ८-७, सा० २८-१०, सावे० ४३-२६, सासी० १४-७१—
 १. सावे० सासी० सुरज । २. सा० सावे० सासी० दोठ । ३. सा० सावे० सासी० कछु पूरब
 जनम का लेख ।

[२१] दा० ४-११, नि० ६४-३, सा० ५-११, सावे० ४१-४, सासी० ४४-४—
 १. दा० दा० किया सुन्न असनान । २. सावे० जान । ३. दा० नि० किया ।

[२२] दा० ४-१२, नि० ८-११, सा० २८-११, सावे० ४२-४२, सासी० १४-१०८ तथा १४-४६—
 १. दा० पूरब जनम का । २. सा० सावे० सासी० किए सो दोस्त अलेख । यह साखी
 सासी० में एक स्थल पर और मिलती है; तुल० सासी० १४-४६ : कुछ करनी कुछ करम गति, कुछ
 पूरबले लेख । देखौ भाग कबीर का, लेख से भया अलेख ॥ नि० में भी इससे मिलती-तुलती
 एक साखी मिलती है किन्तु उसकी दूसरी पंक्ति कुछ भिन्न है; तुल० नि० ४०-१८ : क्यूं करनी
 क्यूं करमगति, क्यूं पूरबला लेख । क्यूं तेरा साईं मैं बल, क्यूं हमही तहां बिसेख ।

तत पाया तन बीसरा, जब मनि धरिया ध्यान^१ ।
 तपनि मिटो^२ सीतल भया, जब सुनि किया असनान^३ ॥३१॥
 कबीर दिल सावित भया^४, फल पाया^५ समरत्थ ।
 सायर माहिं ढंढोरता^६, हीरै पड़ि^७ गया हत्थ ॥३२॥
 मन उलटी दरिया मिला, लागा सलि मलि न्हान ।
 थाहत थाह न आवई^८, तू^९ पूरा रहिमान ॥३३॥
 मानसरोवर^{१०} सुभग^{११} जल, हंसा केलि कराहि ।
 मुक्ताहल मुक्ता^{१२} चुगै, अब^{१३} उड़ि अनत न जाहि ॥३४॥
 गगन गरजि अंचित चुवै^{१४}, कदली कंवल प्रकास ।
 तहां कबीरा बंदगी, कर^{१५} कोई निज दास ॥३५॥
 कबीर कंवल प्रकासिया, ऊगा निरमल^{१६} सूर ।
 रैनि अंधेरी मिटि गई, बागे अनहद तूर ॥३६॥
 कबीर सबद सरीर में, बिन गुन बाजै तांति^{१७} ।
 बाहिर भीतरि रमि^{१८} रहा, तातैं छूटि भरांति^{१९} ॥३७॥
 आकासै मुखि^{२०} आँधा कूवां^{२१}, पातालै पनिहारि ।
 ताका जल कोई हंसा पीवै^{२२}, बिरला आदि बिचारि^{२३} ॥३८॥

४. सा० सावे० बुझी चलती (सावे० जलती) आग, सासी० वूझी जलती लाय ।

[३१] दा० ५-३२, नि० ८-२२, सा० २०-३१, सावे० ४३-५४, सासी० १४-३४—

१. सा० सावे० सासी० मन घाया धरि ध्यान । २. दा० गई । ३. दा० नि० सा० सासी० अस्थान ।

[३२] दा० ५-३४, नि० ८-२४, सा० २०-३३, सावे० ४३-५६, सासी० ३८-४२—

१. नि० कबीर दिल सद्गति भई, सावे० कबीर दिल दरिया मिला । २. नि० लागा ।
 ३. नि० ढिंढोलिया । ४. सावे० चढ़ि । सासी० में यही साखी १४-५५ पर भी मिलती है;
 तुल० कबीर दिल दरिया मिला, पाया फल समरत्थ । सायर माहिं ढिंढोरता, हीरा चढ़ि गया
 हत्थ ॥ (यह पाठ सावे० से लिया हुआ ज्ञात होता है) ।

[३३] दा० ७-२, नि० १०-२, सा० २२-२, सावे० १२-३, सासी० ४२-३९ तथा ५३-२०—

१. सा० सासी० पावई । २. सासी० (१) सो ।

[३४] दा० ४-३९, नि० ८-४४, सा० २०-४६, सावे० ४३-३८, सासी० १४ व—

१. नि० राम सरोवर । २. दा० दा० सुभग, सा० सावे० सुगम (नागरी मूल) । ३. सा० सावे०
 सासी० मोती । ४. दा० इव ।

[३५] दा० ५-४०, नि० ८-२८, सा० २०-५१, सावे० ४३-५९, सासी० १४-६६—

१. सा० सावे० सासी० गरजे गगन अमी चुवै । २. दा० कै ।

[३६] दा० ५-४१, नि० ८-४८, सा० २०-५१, सावे० ४३-३२, सासी० १६-५२—

१. दा० त्रिमल । २. सावे० सासी० बाजै ।

[३७] दा० ४८-१, नि० ४२-१, सा० ५४-१, सावे० ३५-१, सासी० १९-१—

१. दा० तंति । २. दा० भरि । ३. दा० भरति ।

[३८] दा० ५-४५, नि० ८-५७, सा० २०-४३, सावे० ४३-४३, सासी० २७-५५—

१. सा० सावे० सासी० आकासै । २. दा० दा० उवै कूवै । ३. सावे० अंचवै । ४. सावे०

अब तौ में अैसा भया^१, निरमोलिक निज नाउं^२ ।
 पहिले^३ कांच कथोर था, फिरता ठावें ठाउं^४ ॥३६॥
 मन लागा उनमन्न सौं^५, उनमुनि मनहि^६ बिलंगि^७ ।
 लौन^८ बिलंगा पांनिया, पांनों लौन^९ बिलंगि^{१०} ॥४०॥
 पारस रूपी नाम^१ (राम ?) है^२, लौह रूप संसारा ।
 पारस तैं पारस भया^३, परखि भया टकसार^४ ॥४१॥^५

(१०) सूखिम मारग कौ अंग

कबीर मारग कठिन है^१, कोइ न सकई जाइ^२ ।
 गए ते बहुरे^३ नहीं, कुसल कहै को आइ ॥१॥
 कबीर का घर सिखर पर^४, जहां^५ सिलहली^६ गैल^७ ।
 पांव न टिकै पिपीलका, लोगनि^८ लादे बैल ॥२॥
 उततैं^९ कोई न आइया^{१०}, जासौं^{११} पूछौं^{१२} घाइ ।
 इततैं सब कोई गए^{१३}, भार लदाइ लंदाइ ॥३॥

आई सुरति बिचारि ।

[३९] दा० १०-८, नि० ५८-७, सा० १०२-७, सासी० ५३-२६, गुण० १२४-२८—
 १. दा० गुण० कबीर अब तौ ऐसा भया । २. दा० नगनाउं (नागरी मूल) । ३. दा० नि०
 गुण० पहिली । ४. सा० सासी० ठामहि ठाम ।

[४०] दा० ५-१३, नि० ८-१३, सा० २०-१८, सासी० १४-२७, गुण० ४२-१८—
 १. सा० सासी० उनमुनि सौं मन लागिया (द्वितीय चरण का समानार्थी) । २. सा० सासी०
 नहीं । ३. दा० लूण ।

[४१] बी० ५१, सावे० ३३-३८, सासी० १३-३२ तथा १४-११२—
 १. बी० जीव । २. सासी० (१४) साहेब पारस रूप है । ३. सावे० सासी० (१३) पारस पाया
 पुरुष का, सासी० (१४) पारस सी पारस भया । ४. सावे० सासी० (१३) परखि परखि टकसार ।
 ५. तुल० सा० ८०-२, सासी० १३-६१ : पारस रूपी राम (सासी० नाम) है, लोहा रूपी जीव ।
 जब सो पारस भेटिहै, तब जिव है (सासी० होसी) सोव ॥

[१] दा० १४-६, नि० १८-८, सा० ३४-१८, सावे० १८-१७, बी० २४१, गुण० ४४-२—
 १. बी० मारग तौ अति कठिन है । २. बी० वहां कोई मति जाइ, नि० कोई एक सकई जाइ ।
 ३. दा० नि० बहुदे ।

[२] दा० १४-७, नि० १८-९, सा० ३४-१९, सावे० १८-१८, बी० ३३, गुण० ४४-४—
 १. दा० गुण० जन कबीर का सिखर घर, दा० जन कबीर कठिन नगर, नि० कबीर का घर सिखर
 में । २. दा० नि० बाट । ३. नि० सलसली, दा० गुण० सलैली । ४. दा० नि० गुण० सैल ।
 ५. बी० खलकन, सावे० पंडित ।

[३] दा० १४-२, नि० १८-२, सा० ३४-१२, सावे० १८-१, सासी० ५६-१७, बी० २६३—
 १. दा० नि० उततैं । २. दा० नि० आवई, सा० सावे० बाहुरा । ३. दा० नि० सा० जाकौं ।
 ४. नि० सा० सावे० सासी० बूझौं । ५. दा० नि० इततैं सबे पठाइया, सा० सावे० सासी०
 इततैं सब कोइ गए, बी० में इस सबी की दोनो पंक्ति में समानार्थक है ।

जिहि बन सिध न संचरै, पंखी^१ उड़ि नहि जाइ ।
 रैन दिवस की गमि नहीं, तहां रहा^२ कबीर लौ लाइ^३ ॥४॥
 चलन चलन^४ सब कोइ कहै, मोहि अंदेशा और ।
 साहेब सौ परचै नहीं, बैठेने^५ किस^६ ठौर ॥५॥
 नांव न जानौ गांव का, बिनु जानै कह^७ जांउं ।^८
 चलते चलते जुग गया^९, पाव कोस पर गांउं ॥६॥
 गंग जमुन के^{१०} अंतरै^{११}, सहज सुनि लौ^{१२} घाट ।
 तहां कबीरा मठ रचा^{१३}, मुनिजन जोवै बाट^{१४} ॥७॥
 जहां न चिउंटी चढ़ि सकै, राई नां ठहराइ ।
 मन पवनां की गमि नहीं^{१५}, तहां^{१६} पहुँचा जाइ ॥८॥
 कबीर मारग कठिन^{१७} है, मुनि जन^{१८} बैठे थाकि ।
 तहां कबीरा चलि गया^{१९}, गहि सतगुर की साखि^{२०} ॥९॥
 सुर नर थाके मुनि जनां, जहां न कोई जाइ ।
 मोटे भाग कबीर के^{२१}, तहां रहा घर छाड़^{२२} ॥१०॥

[४] दा० १०-१, नि० १४-३, सा० २६-९, सावे० १३-६, सासी० ५३-१७, बी० २४-४—
 १. सावे० सासी० पच्छी, बी० पंखी । २. दा० नि० उड़ि नहि । ३. सा० सावे० सासी० में 'रहा'
 शब्द नहीं है । ४. बी० सो बन कविरन होंदिया, मुन्न समाधि लगाय । यह साखी सा० सावे०
 तथा सासी० में अन्यत्र भी मिलती है; तुल० सा० २०-१९, सावे० ४३-४२, तथा सासी० १४-०२:
 जा बन सिध न संचरै, पंखी उड़ि नहि जाय । रैन दिवस की गम नहीं, (तहां) रहा कबीर
 समाय । इस पुनरावृत्ति-साम्य से सा० सावे० सासी० में संकीर्ण-संबंध सिद्ध होता है (दे०
 भूमिका) । तुल० सरहपा (१९वीं शताब्दी) : जिहि बग पवनां संचरइ, रवि ससि साह पवेस ।
 तहि बड़ चित्त विसाम कर, सरहै कहिय उएसु ॥—दोहाकोप, कलकत्ता, पृ० २० ।

[५] दा० १४-४, नि० १८-६, सा० ३४-१५, सावे० १८-१३, सासी० ५६-२०, बी० १८-१—
 १. बी० साहेब साहेब । २. दा० जाहिगे, नि० सा० सावे० सासी० पहुँचंगे । ३. बी० केहि ।

[६] सा० ३४-८, सावे० १८-१२, सासी० २-८९ तथा ५६-१५, बी० ५२—
 १. सा० कित । २. बी० मन कहै कब जाइए, चित कहै कब जाव, सासी० (२-८९) चलते चलते
 जुग गया, कोइ न बतावै धाम । ३. बी० छवों मांस के हँडते, सासी० (२-८९) पंड़ में सतगुर
 मिले ।

[७] दा० १०-३, नि० १४-१, सा० २६-३, सावे० १३-५, सासी० ५३-१६, गु० १५२—
 १. दा० नि० उर । २. सावे० सासी० बीच में । ३. गु० के । ४. गु० मटु कीआ । ५. गु०
 खोजत मुनिजन बाट ।

[८] दा० १४-८, नि० १८-१०, सा० ३४-२१, सावे० १८-१९, सासी० ५६-२२, गुण० ४४-५
 १. सा० सावे० सासी० मनुवा तहां ले राखिया । २. सावे० तहई, सा० सासी० सोई ।

[९] दा० १४-९, नि० १८-११, सा० ३४-२२, सावे० १८-२०, सासी० ५६-१, गुण० ४४-६—
 १. गुण० मारग असा अगम है । २. सा० सब मुनि, सासी० रिखि मुनि । ३. सा० सावे०
 सासी० चढ़ि । ४. सा० सावे० सासी० साक (केवल तुकार्य) ।

[१०] दा० १४-१०, नि० १८-२२, सा० ३४-२३, सावे० १८-२१, सासी० ५६-२३, गुण० ४४-७—
 १. नि० रैन दिवस की गमि नहीं । २. नि० सा० सासी० लौ लाइ ।

प्रांन पिंड कौं तजि चला, मुझा कहैं सब कोइ ।
 जीव अछुत^१ जांमैं मरै, सुखिम^२ लखै न कोइ ॥११॥
 करता की गति अगम है, तूं चलि अपनै^१ उनमान ।
 धीरै धीरै पांव दै, पहुंचौगे^२ परवांन^३ ॥१२॥
 कौन देस कहां आइया, जानैं कोई नाहिं^१ ।
 ओहु मारग पावै^२ नहीं, भूलि परै एहि^३ मांहि ॥१३॥
 हम बासी उस देस के, जहां जाति पांति^१ कुल नाहिं ।
 सबद^२ मिलावा ह्वै रहा, देह मिलावा नाहिं ॥१४॥
 सबकौं ब्रूभत^१ मैं फिरुं^२, रहन कहैं नहिं कोइ ।
 प्रीति न जोड़ी रांम^३ सौं, रहनि कहां तैं होइ ॥१५॥
 कबीर सुखिम सुरति का^१, जीव न जानैं जाल ।
 कहै कबीरा दूरि करि^२, आतम अदिष्ट^३ काल ॥१६॥

(११) पतिव्रता कौ अंग

आसा एक जु रांम की^१, दूजी^२ आस निरास ।
 जसै सोप समंद मैं, नहीं स्वाति बिन प्यास^३ ॥१॥

[११] दा० १४-२, सा० ३४-२, सावे० १८-३७, सासी० ५६-३१, गुण० १०४-९—
 १. सा० सावे० सासा० कृता । २. सा० सावे० मूच्छम ।

[१२] दा० ८-४, नि० १३-४, सा० ३४-४५, सावे० १८-३६, सासी० ५६-२९—
 १. सावे० सासी० गुरु के । २. दा० अमर्हगे । ३. दा० निरदान, नि० निरबांन ।

[१३] दा० १४-१, नि० १८-१, सा० ३४-७, सावे० १८-८, सासी० ५६-१४—
 १. दा० कहू क्यूं जांगया जाइ । २. नि० पाऊं । ३. सा० सासी० जग ।

[१४] दा० १४-१, नि० ८-२९, सा० २०-६६, सावे० ४२-३५, सासी० १४-१२ तथा १३—
 १. नि० सा० सावे० सासी० बरन । २. सासी० (१४-१३) सैन ।

[१५] दा० १४-३, नि० १८-५, सा० ३४-१४, सावे० १८-१५, सासी० ५६-१९—
 १. सा० सावे० सासी० पृच्छत । २. सा० सावे० सासी० फिरा । ३. सावे० गुरु (राधा० प्रभाव)
 सासी० नाम (कबीरपंथी प्रभाव) ।

[१६] दा० १४-१, नि० १८-१५, सा० ३४-१, सासी० ५६-३३, गुण० १०४-३—
 १. सा० सासी० सूक्ष्म सुरति का सम है, गुण० अतिसै सुखिम सुरति का ।
 २. नि० हरि दयाल ए दूरि करि । ३. सा० सासी० आदिहि ।

[१] दा० ११-११, नि० १४-१, सा० ३६-१, सावे० ३२-२४ तथा ५९-९ (दो बार), सासी० ६८-१,
 स० ५६-२, गु० ९४—

१. गु० आसा करीअै राम की, सावे० आसा एक जु नाम की (राधा० प्रभाव) । २. गु० अवरे ।
 ३. दा० नि० पांणी मांहि घर करै, ते भी मरै पियास, गु० नरकि परहि ते मानई जो हरि नाम
 उदास, सा० सावे० सासी० पांणी में भोजन का गोलाकारे पिछा, Haridwar

कबीर सुख न एहि जुग^१ (जग ?), करहै जु बहुतै सीत^२ ।

जिन दिल बांधी एक सौं^३, ते सुख पावहि नीत^४ ॥२॥^५

जौ मन लागे एक सौं^६, तौ निरुवारा^७ जाइ ।

तूरा दुइ सुख बाजनां^८, न्याइ^९ तमाचा^{१०} खाइ ॥३॥

कबीर पगरा^{११} दूरि है^{१२}, आइ पहुंची सांभ^{१३} ।

जन जन कौ मन राखतां^{१४}, बेस्वा^{१५} रहि गई बांभ^{१६} ॥४॥

नारि कहवै पीव की, रहै और संग सोइ ।

जार सीत हृदया बसै^{१७}, खसम खुसी क्यों होइ ॥५॥

हौं चितवत हौं तोहि कौं, तू चितवत कछु और^{१८} ।

कहै कबीर कैसे बनें^{१९}, एक चित दुइ ठौर ॥६॥

[२] दा० ११-१३, सा० २८-३, सावे० ११-११, सासी० २३-१ गु० २१—

१. दा० सा० सासी० कबीर कलिजुग आइ के, सावे० कबीर या जग आइ के। २. दा० सा० सावे० कीया बहुतक मित, सासी० कीया बहुत ज सीत। ३. गु० जो चितु राखहि एक सित। ४. दा० सा० सावे० सासी० ते सुख सौंवे निचित। ५. तुल० गुण० ११-५६ : कबीर तिनकी सुख कहाँ, कीन्हें अनंत जु ईठ। जिन मन लाया एक सी, ते अति सुखिया दीठ ॥ किन्तु गुण० में यह साखी जेमल के नाम से भी मिलती है; तुल० ५२-३ : यमला सुख न इत्त जगु, किए जु बहुतै मित। जिन चित बंध्या एक सौं, ते सौंवाहि सुख नित।

[३] दा० ११-१२, नि० १५-१३, सा० २०-२२, सासी० ३४२०, बी० ८१, बीम० ७३, गुल० ५१-५५—

१. दा० बी० एक एक निरुआरिए। २. दा० नि० निरवाल्या, सा० सासी० गुण० निरुवारा। ३. बी० दुइ दुइ सुख का बोलना। ४. बी० घना। ५. बीम० तमंचा। सासी० में यह साखी अन्यत्र भी आती है, तुल० २२-३१ : जो मन लागै एक सौं, तो निरुवारा जाइ। तूरा दो सुख बाजता, घना तमाचा खाइ ॥

[४] नि० २८-८, सा० २८-१०, सासी० ३२-७९, बी० ५१—

१. नि० पंगिड़ा (उर्दू मूल) २. सा० कबीर पंथ निहारता, बी० मालि परे दिन आए। ३. बी० अंतर परि गइ सांभ, नि० आइ पहुँची सांभ। ४. बी० बहुत रसिक के लगते। ५. सा० सासी० बेस्वा। नि० सा० तथा सासी० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है तुल० नि० ३२-६ : धामां धूम दिन गया, चितवत भई ज सांभ। राम भजन हरि भगति विनु, जननीं जनि भई बांभ ॥ सा० ३०-२० : धूम धाम में दिन गया, सोचत हो गई सांभ। एक बरी हरि ना भजा, जननीं जनि गई बांभ ॥ तथा सासी० २३-१ : कबीर पंथ निहारता, आनि पड़ी है सांभ। जन जन को मन राखता, बेश्या रहि गई बांभ ॥ नि० सा० तथा सा० में इस पुनरावृत्ति-साम्य के कारण संकीर्ण-संबंध ज्ञात होता है। नि० तथा सा० की साखियों का पाठ अपेक्षाकृत अधिक मिलता है अतः दोनों का संबंध निश्चित रूप से सिद्ध है।

[५] बी० २६८, सा० २८-५ सावे० ११-१ सासी० २३-५—

१. सा० सावे० सासी० जार सदा मन में बसे।

[६] सा० ८३-९, सावे० १५-२० तथा ३६-२० (दो बार), सासी० १५४५ तथा ३३-२० (दो बार) बी० १३७—

१. सा० सावे० सासी० मेरा मन तौ तुझ सौं, तेरा मन कहूं और। २. बी० लानत ऐसे चित पर (आगे पुनः 'चित' आने के कारण पुनरावृत्ति है)। सावे० तथा सासी० में यह साखी दो बार आती है जिससे दोनों का संकीर्ण-सम्बन्ध सिद्ध होता है।

कबीर जे कोइ सुंदरी, जानि करै बिभिचारि ।
ताहि न कबहुं आदरै, परम^१ पुरिख भरतार ॥१५॥
दोजग तौ हंम आंगिया^१, यहु डर^२ नाहीं मुज्झ ।
भिस्ति न मेरै चाहिए, बाझ^३ पियारै तुज्झ ॥१६॥

(१२) रस कौ अंग

कबीर हरि रस यौ पिया^१, बाकी रही न छाकि^२ ।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि^३ न चढ़ई^४ चाकि ॥१॥
सबै रसाइन में^१ किया^२, हरि रस सम नहि कोइ^३ ।
रंचक^४ घट में^५ संचरै, तौ सब तन कंचन होइ^६ ॥२॥
काया कमंडल भरि लिया, ऊजल निरमल नीर ।
पीवत तृखा न भाजही, तिरखावंत कबीर^१ ॥३॥
सतगंठो^१ कोपीन दै, साधु न मानै संक^२ ।
राम अमलि माता रहे, गिनै इंद्र कौ रंक ॥४॥

[१५] दा० ५२-२, नि० ५७-३, सा० १०१-२, साबे० ११-९, सासी० २३-११—

१. वार दार प्रेम (उर्दू मूल) ।

[१६] दा० ११-७, नि० १५-८, सा० २७-२९, सासी० २२-५३, गुण० ५१-४—

१. सा० सासी० दोजख हमहि अंगेजिया । २. सा० सासी० दुख । ३. सासी० बांझि (उर्दू मूल) ।

[१] दा० ६-१, नि० ९-२, सा० २१-३, साबे० १५-३५, सासी० १५-३७, गुण० ७८-२१, स० ५८-६—

१. साबे० सासी० कबीर हम गुरु रस पिया (सांप्रदायिक प्रभाव) । २. दा० नि० सा० स० गुण० थाकि (नागरी मूल ?) । ३. दार बहुहि । ४. सा० चढ़िदे, साबे० सासी० चढ़ी (राज० मूल) ।

[२] दा० ६-८, नि० ९-११, सा० २१-२५, साबे० १५-४०, सासी० १५-५२, स० ५८-१०—

१. सा० सासी० हम । २. सा० पिया । ३. साबे० सासी० प्रेम समान न कोइ, दा० हरि सा और न कोइ । ४. दार दार तिल इक, साबे० रति इक । ५. साबे० सासी० तन में । ६. साबे० तथा सासी० में यह साखी अन्यत्र मिलती है: तुल० साबे० ३३-१० : सभी रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय । रति इक घट में संचरै, सब तन कंचन होइ ॥ तथा सासी० १३-२६ : सबहि रसाइन हम करी, नहीं नाम सम कोय । रंचक घट में संचरै, सब तन कंचन होय ॥ (दोनों में संकीर्ण-संबंध) । अन्यत्र यह साखी सम्मन के नाम से भी मिलती है: तुल० गुण० ३१-१५ : सबै रसाइन पिण्ण (बिण्ण ?) में, पेम न पूजै कोइ । जिहि तन रत्तो संचरै, सब तन सोना होइ ॥

[३] दा० ७-१, नि० १०-१, सा० २२-१, साबे० १३-३, सासी० ५३-१८, स० ५८-९ तथा १३९-१—

१. दा० तन मन जोवन भरि पिया, प्यास न मिटी सरीर (पुन०) ।

[४] दा० ३७-८, नि० ९-८, सा० २१-११, सासी० २८-१० तथा ८०-१० (दो बार), स० ११-६ तथा १२२-१ (दो बार), गुण० ११५-११—

१. सा० सासी० (२८-१७) आठ गांठि । २. सा० सासी० मन नहि मानै संक । ३. सासी० नाम (कबीर) (उर्दू मूल) ।

आंगन बेलि अकास फल, अनव्यावर^१ का दूध ।
ससा सींग की धनुहड़ी^२, रमें बांझ का पूत^३ ॥३॥

(१४) सूरतन कौ अंग

अब तौ असी होइ परी^१, मन का भावतु कीन^२ ।
मरनें तैं क्या डरपना^३, जब हाथि सिंधौरा^४ लीन ॥१॥
जिसु मरनें तैं जग डरै, सो मेरै आनंद^२ ।
कब मारिहौं कब भेटहौं^३, पूरन परमानंद ॥२॥
सती पुकारै सलि^४ चढ़ी, सुनि रे मीत^२ मसान ।
लोग बटाऊ^३ चलि^४ गए, हंम तुम रहे^२ निदान ॥३॥
सारा^१ बहुत पुकारिया, पीर पुकारै और ।
लागी चोट जु सबद की^२, रहा कबीरा ठौर ॥४॥
चोट सुहेली सेल की^१, पड़तां^२ लेइ उसांस ।
चोट सहारै सबद की, तास गुरु में दास^३ ॥५॥
कोनै^१ परां न छुटिहै, सुनि रे जीव अबूझ ।
कबीर मरि^२ मैदान में, करि इंद्रचां सौं^३ जूझ ॥६॥

[३] दा० ५८-४, नि० ६३-४, सा० १०६-१, सासी० ४०-१, स० ६०-१—

१. सासी० अनव्याही । २. सा० सासी० धनुस की । ३. या० सासी० खेंच बांझ सुत सख ।

[१] दा० ४५-१२, नि० ५०-१३, सा० ८६-१, सावे० १०-१, सासी० २१-१, गु० ७१, गुण० ७६-०—

१. गु० कबीर असी होइ परी । २. दा० गुण० मन का कथिता कीन्ह, नि० मन का चंचल कीन्ह, सा० सावे० सासी० मन अति निरमल कीन्ह । ३. दा० नि० गुण० मरनें कहा डराइए, सा० सावे० सासी० मरने का भय छाड़ि कै । ४. दा० नि० स्पंधौरा (राज० मूल) ।

[२] दा० ४५-१३, नि० ५१-१३, सा० ८८-२६, सावे० ४६-२१, सासी० ४२-२९, गु० २२,

गुण० ७६-३८—

१. सा० सावे० सासी० जा मरना सौं । २. सा० सावे० सासी० मेरे मन आनंद । ३. गु० मरने, ही ते पाईअै ।

[३] दा० ४५-३३, नि० ५०-४६, सा० ८६-७, सासी० २१-७, गु० ८५—

१. सासी० सर, गु० चिह । २. गु० वीर । ३. गु० सबाइआ । ४. सासी० सब । ६. गु० कामु ।

[४] दा० ४०-८, नि० ४२-४, सा० ७४-४, सासी० १९-३०, गु० १८२—

१. गु० सारे (नागरी मूल ?) । ३. गु० मिरम की ।

[५] दा० ३९-१, नि० ४१-२, सावे० ६२-७, सासी० २४-१४६, स० ३-१, गुण० १५२-२, गु० १८३—

१. दा० दा० गुण० अनीं सुहेली सेल की, दा० स० चोट सतागौ सेल की, सासी० चोट सहे जो सेल की । २. गु० लागत, सासी० ऊटी । ३. सासी० देह अवास । ४. सासी० चोट शब्द की जो सहे, सोइ सुहागी दास ।

[६] दा० ४५-२, नि० ४७-१२, सा० ८५-१, सावे० ८४-२, सासी० २४-८३, स० ६१-३, गुण० ७८-६—

१. दा० नि० स० गुण० खूनों (राज० मूल) । २. नि० मडि, सा० सावे० सासी० मंड । ३. सावे०

कायर हुआं न छूटिहै, कछु^२ सूरतन साहि^२ ।
 भरम भलाका दूरि करि^४, सुमिरन सेल^५ संबाहि ॥७॥
 कबीर आरनि पैसि करि^५, पीछै रहै न^३ सूर ।
 साईं सौं सांचा भया^४, जूझै^५ सदा हजूर ॥८॥
 सूर जूझै गिरद सौं, इक दिसि सूर न होइ ।
 कबीर या बिन सूरिवां^५, भला न कहसी (ई?) कोई ॥९॥
 कबीर सोई सूरिवां, मन सौं साडै जूझ ।
 पंच पियादैं^५ पारि कै^२, दूरि करै सब दूजि^३ ॥१०॥
 मेरै संसै कोई^५ नहीं, हरि^२ सौं लागा हेत ।
 काम क्रोध सौं जूझनां^३, चौडै मांडा खेत ॥११॥
 सूर सोइ सराहिण^५, लडै धनीं कै हेत ।
 पुरिजा पुरिजा होइ परै^३, तऊ न छांडै खेत ॥१२॥
 खेत न छांडै सूरिवां^५, जूझै दोउ^२ दल मांहि ।
 आसा जीवन मरन की, मन में आनै^३ नांहि ॥१३॥

[७] दा० ४५-१, नि० ५०-३, सा० ८४-१, सावे० ८-४१, सासी० २४-८५, स० ६१-२, गुण० ७८-३—
 १. सावे० सासी० भए । २. सा० सासी० कृचि । ३. सा० सासी० सूरतन माहि (नागरी मूल),
 सावे० सूरता समाय । ४. नि० छाडि दे । ५. सावे० सील (उर्दू मूल) । ६. सावे० मजाय,
 सासी० सनाहि । ७. सासी० में पुनरावृत्ति, तुल० सासी० २४-८६ : कायर भया न छूटिहो, सुरता
 कछु समाय । भरम भालका दूरि करि, सुमरन सेल मजाय ॥ (सासी० में यह पाठ सावे० से आया
 हुआ ज्ञात होता है) ।

[८] दा० ४५-५, नि० ५०-६, सा० ८५-६, सावे० ८-५५, सासी० २४-४, स० ६१-४—
 १. सा० कबिरा रन में पैठि के, सावे० सासी० कबीर रन में आय के । २. सा० पीछा । ३. दा०
 नि० स० ज । ४. नि० सा० सावे० सासी० सनमुख भया । ५. दा० नि० सा० स० रहसी
 (राज० मूल) ।

[९] दा० ४५-४, नि० ५०-५, सा० ८५-५, सासी० २४-१७, स० ६१-४—
 १. नि० यूँ विहंगां सूरिवां, सा० सासी० यौं जूझै बिन बाडिरा (एक ही भाव की पुनरावृत्ति) ।
 [१०] दा० ४५-३, नि० ५०-४, सा० ८५-२, सावे० ८-५३, सासी० २४-१, गुण० ७८-१—
 १. दा० सावे० सासी० पांचां इंद्री । २. नि० पा० सावे० सासी० पकड़ि करि, गुण० पारितै ।
 ३. सा० सावे० सासी० दूझ (केवल तुकार्थ) ।

[११] दा० ४५-७, नि० ५०-११, सा० ८५-१०, सावे० ८-४०, सासी० २४-५२, गुण० ७८-८—
 १. सावे० कछु । २. सावे० सासी० गुरु (सांप्रदायिक प्रभाव) । ३. सा० सासी० जुझता ।
 [१२] दा० ४४-९, नि० ५०-२, सा० ८५-१२, सावे० ८-४, सासी० २४-१५, गुण० ७८-२९—
 १. नि० सूर सोई जाणिण । २. सावे० रहे । गु० में यह साखी राग सारू के अंतर्गत नवें पद के
 अंत में मिलती है जहाँ इसका पाठ है : सूर सो पहिचानाँत्रे जु लरै दीन के हेत । पुरजा पुरजा
 कटि मरै कबहु न छाडै खेत ॥

[१३] दा० ४५-१०, नि० ५०-२३, सावे० ८-६, सासी० २४-३५, गुण० ७८-३०—
 १. सा० सावे० सासी० सूरसा । २. नि० दुहु, सासी० दी । ३. सा० सासी० राखि, गुण० छाडै ।

कायर बहुत पमावहीं, बहकिं न बोले सूर ।

कांम परे हो^२ जानिए, किसके मुख परि^३ नूर ॥१४॥

कबीर निज घर प्रेम का^१, मारग अगम अगाध ।

सीस काटि^२ पग तर धरै, तब निकटि प्रेम का स्वाद ॥१५॥

सीस काटि पासंग किया, जीव सेर भरि^१ लीन्ह ।

जिहि भावै^२ सो आइ ले, प्रेम आघु^३ हंस कीन्ह ॥१६॥

सूरा सीस उतारिया^१, छांडी तनकी आस ।

आगां तैं^२ हरि^३ हरखिया^४, आवत देखा दास ॥१७॥

भगति दुहेली रांम^१ की, नहि कायर का कांम ।

सीस उतारै हाथ सौं^२, सो लेसी (लेई ?) हरि नांम^३ ॥१८॥

भगति दुहेली रांम की^१, जस खांडे की धार ।

जो डोले सो कटि पड़े^२, निहचल^३ उतरै^४ पार ॥१९॥

कबीर हीरा बनजिया, महंगे मोलि अपार ।

हाड़ गला^१ माटी मिली^२, सिर सांटे व्यौहार ॥२०॥

जौ हारौं तौ हरि सवां^१ (-नां ?), जो जीतौं तौ डाव ।

पारब्रह्म^२ सौं खेलतां^३, जो सिर जाइ त जाव ॥२१॥

[१४] दा० ४५-१४, नि० ५०-१४, सा० ८४-५, साबे० ८-२५, सासी० २४-८९, गुण० ७८-१५—

१. नि० बड़कि, साबे० बड़क (नागरी मूल), सासी० अधिक । २. नि० सार खलक्यां, सा० सासी० सार खलक के, साबे० सारी खलक रीं । ३. सा० साबे० सासी० मुहड़े ।

[१५] दा० ४५-२०, नि० ५०-२०, सा० १८-३, साबे० १५-५४, सासी० १५-२, गुण० ३०-१०—

१. सा० साबे० सासी० यह तो घर है प्रेम का । २. दा० उतारि ।

[१६] दा० ४५-२२, नि० ५०-२४, सा० १८-४, साबे० १५-५६, सासी० १५-४, गुण० ३०-१६—

१. दा० गुण० सरभरि (उर्दू मूल), नि० सरोभरि (उर्दू मूल) । २. नि० गुण० जो चाहे, साबे० जो भावै । ३. साबे० आगे, सा० सासी० आगु ।

[१७] दा० ४५-२३, नि० ५०-२७, सा० ८५-२०, साबे० ८-१०, सासी० २४-१८, गुण० ७६-२७—

१. नि० सीस उतारया सूरिवां । २. सा० साबे० सासी० से । ३. साबे० सासी० गुरु, नि० हरि जी । ४. दा१ दा२ मुलकिया, नि० मिल्या ।

[१८] दा० ४५-२४, नि० ५०-३२, सा० १५-२६, साबे० १२-४, सासी० १२-१०, गुण० ७६-२८ ।

१. साबे० गुरु, सासी० गुरुन । २. दा० करि । ३. साबे० सो लेसी सतनाम । सासी० ताहि मिलै सतनाम (सांप्रदायिक प्रभाव) ।

[१९] दा० ४५-२५, नि० ५०-३३, सा० १५-२७, साबे० १२-५, सासी० १२-१२, गुण० ७६-२९—

१. साबे० सासी० नाम । २. नि० जे होलीं तौ कटि पड़ीं । ३. दा० नि० नहिर, गुण० नहीं त । ४. नि० उत्तर्क ।

[२०] दा० ४५-२८, नि० ५०-३७, सा० ८५-२५, साबे० ८-५७, सासी० २४-७, गुण० ३०-१३—

१. सा० सासी० गली । २. दा१ दा२ गुण० गली ।

[२१] दा० ४५-३०, नि० ५०-४४, सा० ८५-१०, साबे० ८-३५, सासी० २४-७३, गुण० ३०-१४—

१. सा० हारौं तौ हरि मान है, साबे० सासी० जो हारौं तौ सेव गुरु । २. साबे० सासी० सतनाम । ३. साबे० सासी० सिर जावे तो जाव ।

ज्यों ज्यों^१ हरि गुन^२ सांभलौ^३, त्यों त्यों^४ लागै तीर ।
 लागे तैं भागै नहीं, साहनहार कबीर^५ ॥२२॥
 सती जरन कौं नीकसी, चित धरि एक बिबेक^६ ।
 तन मन सौंपा पीव कौं, अंतरि रही न रेख ॥२३॥
 सती जरन कौं नीकसी, पिउ का सुमिरि सनेह ।
 सबद सुनत जिय नीकसा^७, भूलि गई सुधि देह ॥२४॥
 अब तौ जूझा^८ ही बनै, सुड़ि चाला^९ घर दूरि ।
 सिर साहिव कौं सौंपता^{१०}, सोच न कीजै सूर ॥२५॥
 गगन दसांमां बाजिया, परत निसानैं घाउ ।
 खेत बुहारा^{११} सूरिवां, अब मरिबे कौं दाउ^{१२} ॥२६॥
 सूरै सार संवाहिया^{१३}, पहिरा सहज संजोग ।
 ग्यानं गयंदहि चढ़ि चला^{१४}, खेत परन का जोग^{१५} ॥२७॥
 जाय पूछौ उस घायलै, दिवस पीर निसि जागि ।
 बाहनहारा जानिहै^{१६}, कै जानैं जिहि^{१७} लागि ॥२८॥

[२२] दा० ४०-७, नि० ५०-१५, सा० ८५-३७, सावे० ८-३०, सासी० २४-७१, गुण० २१-१६--

१. नि० जिमि जिमि । २. सावे० सासी० गुरु गुन (सांप्रदायिक प्रभाव) । ३. सावे० सासी० सांभले । ४. नि० तिमि तिमि । ५. नि० पणि, सा० सासी० पन, सावे० से । ६. नि० सोई संत सुधीर, सा० सावे० सासी० सोई साधु सुधीर । ७. तुल० बी० २० सा० ६८-२ : जे कर सर लागे हिप, सो जानेगा पीर । लागै तो भागै नहीं, सुख सिंधु निहार कबीर ॥

[२३] दा० ४५-३७, नि० ५०-४९, सा० ८६-३, सावे० १०-३, सासी० २१-३, गुण० ७६-९--

१. दा० नि० बमेक, गुण० बवेक ।

[२४] दा० ४५-३६, सा० ८६-४, सावे० १०-४, सासी० २१-४ गुण० ७६-४--

१. दा१ दा२ नीकल्या, दा३ नीसरया । २. दा० सब सावे० निज, गुण० यह ।

[२५] दा० ४५-२१, सा० ८५-१४, सावे० ८-७, सासी० २४-३६, गुण० ७८-३१--

१. सावे० सासी० जुम्मे । २. सा० सावे० सासी० चाले । ३. सावे० सासी० सौंपते ।

[२६] दा० ४५-६, नि० ५०-८, सा० ८५-७, सावे० ८-२, सासी० २४-१३--

१. सा० सावे० सासी० पुकारै । २. दा१ सुभ सरण का चाव, सा० सावे० सासी० अब लड़ने का दाव । गु० में यह साखी सग सारू के अन्तर्गत नवें पद के अंत में मिलती है जहाँ इसका पाठ है : गगन दसामा बाजियो परिआ नीसानै घाउ । खेतु जु माढ़ियो सूरमा अब जुम्न को दाउ ॥

[२७] दा० ४५-८, नि० ५०-१०, सा० ८५-११, सावे० ८-४१, सासी० २४-३४--

१. नि० सावे० संभालिया । २. दा१ दा२ अब कै ग्यानं गयंद चढ़ि । ३. दा३ हई लड़न का जोग ।

[२८] दा० ४५-१५, नि० ५०-१७, सा० ८५-१५, सावे० ८-४६, सासी० २४-४०--

१. नि० मारणहारा जीजिरी (राज० मूल) । २. सा० सासी० जिस ।

घाइल घूमै गहभरा^१, राखा रहै न ओट ।
जतन कियां जीवै नहीं^२, लगी मरम की चोट ॥२६॥
ऊंचा विरिख अकासि फल^३, पंखी मूआ भूरि^४ ।
बहुत^५ सयाने पचि सुए, फल निरमल^६ पै दूर ॥३०॥
कबीर यह घर प्रेम का^१, खाला का घर नाहि ।
सीस उतारै हाथ सौं^२, तब पैसै^३ घर माहि ॥३१॥
प्रेम न बारी^४ ऊपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ ।
राजा परजा जेहि रुचै^५, सीस देइ लै जाइ^६ ॥३२॥
राम^१ रसाइन प्रेम^२ रस, पीवत अधिक^३ रसाल ।
कबीर पीवन दुलभ^४ है, मांगै सीस कलाल ॥३३॥
कबीर भाठी प्रेम की^१, बहुतक बैठे आइ ।
सिर सौपै सोई पित्रै^२, नातर पिया न जाइ^३ ॥३४॥

[२९] दा० ४५-१६, नि० ४२-५, सा० ८५-१६, सावे० ८-८, सासी० २४-४१—

१. नि० घाइल घूमै ग है भरा, सा० सावे० सासी० वायल तो घूमत फिर । २. सावे० जतन किए नहि बाहुरै । यात्रिक संग्रह (ना० प्र० स०) की एक पोथी में यह सखी लालदास के नाम से भी मिलती है, किन्तु प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह सखी कबीरकृत सिद्ध है ।

[३०] दा० ४५-१७, नि० ५०-२१, सा० ८५-१८, सावे० ८-३१, सासी० २४-१०६—

१. नि० सा० सावे० सासी० ऊंचा तरवर गगन फल । २. सा० विपूर । ३. सा० सावे० अनेक । ४. सासी० लागा । ५. सावे० अति । सावे० में द्वितीय तथा चतुर्थ चरण परस्पर स्थानान्तरित । सासी० में इस सखी की पुनरावृत्ति, तुल० सासी० १४-१३० : अकास वेली अंश्रित फल, पंखी सुवै सब भूर । सारा जगहि भूखि मुचा, फल भीठा पै दूर ॥

[३१] दा० ४५-१९, नि० ५०-१९, सा० १८-१, सावे० १५-१, सासी० १५-१—

१. सा० सावे० सासी० यह तो घर है प्रेम का । २. सा० सावे० सासी० मुई घरै । ३. सा० सावे० सासी० बैठे । 'गुणगंजनामा' में ३०-११ पर यह सखी सम्मन के नाम से भी मिलती है । वहाँ इसका पाठ है : पहली सीस उतारि करि, तो पैसी घर माहि । सम्मन यह घर प्रेम का खाला का घर नाहि ॥ ऐसा ज्ञात होता है कि अन्धविश्वास नष्ट होने के कारण कबीर की यह सखी सम्मन ने अपने नाम से चला दी ।

[३२] दा० ४५-२१, नि० ५०-२३, सा० १८-३ सावे० १५-३, सासी० १५-३—

१. दा० नि० खेतों नीपजै । २. नि० राजा परजा सारिखा । ३. दा० नि० सिर दे सो लै जाइ । ४. यह सखी भी 'गुणगंजनामा' में सम्मन के नाम से मिलती है । तुल० गुण० ३०-१२ : सीस पलटै प्रेम है, सम्मन हाटि बिकाइ । राजा परजा जेहि रुचै, सिर दे सो लै जाइ ॥ किन्तु यह सखी भी प्रस्तुत अध्ययन के अनुसार कबीर की ही सिद्ध होती है । अच्छी उक्ति होने के कारण ही सम्मन तथा अन्य कवियों ने इसे अपने नाम से प्रचलित करना चाहा है ।

[३३] दा० ६-२, नि० ५४-९, सा० २१-४ सावे० ८-७४, ८-३६ (दो बार), सासी० १५-५०—

१. सावे० सासी० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । २. सावे० (८-३६) अधिक । ३. सावे० (८-७४) बहुत । ४. सावे० (८-७४) कठिन ।

[३४] दा० ६-३, नि० ५-४, सा० २१-५, सावे० १५-३७, सासी० १५-३६—

१. दा० कलखि की In Public Domain Digitized by eGangotri

कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चढ़ि असवार ।
 ग्यांन खड़ग गहि^१ काल सिरि, भली मचाई^२ मार ॥३५॥
 जेते तारे रैंनि के, तेते बैरी मुज्म^३ ।
 घड़ सूली सिर कंगुरै, तऊ न बिसरौं तुज्म^२ ॥३६॥
 हौं तोहि पूछौं हे सखी^२, जीवत क्यों न जराइ^३ ।
 मूए पीछै सत करै, जीवत क्यों न कराइ ॥३७॥
 कबीर हरि^१ सब कौं भजै^२, हरि^१ कौं भजै^२ न कोइ ।
 जब लगि आस सरीर की, तब लग दास न होइ ॥३८॥
 आप सुवारथि^१ मेदिनी, भगति सुवारथि^१ दास ।
 कबीरा राम सुवारथी^२, छांडी^३ तनकी आस ॥३९॥
 सिर दीन्हें जो पाइअै, तौ वेत न कीजै कानि^१ ।
 सिर के सांटे हरि मिलै^२, तऊ हांनि मत जानि^३ ॥४०॥^४
 सती सूरतन^१ साहि करि^२, तन मन कीया घान^३ ।
 दिया महौला पीव कौं^४, मरहट करै बखान ॥४१॥

[३५] दा० ४५-२७, नि० ५०-३५, सा० ८५-२१, सावे० ८-११, सासी० २४-५—
 १. नि० सा० सावे० सासी० ले । २. नि० बजाई (उर्दू मूल) ।

[३६] दा० ४५-२९, नि० ५०-४२, सावे० ८-३३, सासी० २४-५६—
 १. दा३ दा४ मोहि । २. दा३ दा४ तोहि ।

[३७] दा० ४५-३८, नि० ५०-५०, सा० ८६-९, सावे० १०-७, सासी० २१-१०—
 १. सासी० में । २. नि० सती । ३. दा० मराय ।

[३८] दा० ४५-४०, नि० ५०-५९, सा० ७-५, सावे० ७-५, सासी० ११-४—
 १. सावे० सासी० गुरु । २. सावे० सासी० चहै ।

[३९] दा० ४५-४१, नि० ५०-५२, सा० १६-५, सावे० ८-२९, सासी० २६-६—
 १. सा० सावे० सासी० स्वारथी । २. सावे० कबीर नाम स्वारथी, सासी० कबीर जन परमाथी ।
 ३. सा० सासी० ढारी ।

[४०] दा० ४५-३१, नि० ९-६, सा० २१-८, सासी० २८-८, गुण० ३०-१५—
 १. दा० नि० सिर सांटे हरि पाइअै, छाहि जीव की बानि । २. दा० नि० जो सिर दीयां हरि मिले । ३. सा० सासी० तब लगि सुहंगा जानि । ४. तुल० सावे० १५-३८ तथा सासी० १५-५१ ; यह रस मरंगा सो पियै, छाहि जीव की बान । माथा सांटे जो मिले, तौमी सस्ता जान ॥ सासी० में यह साखी २४-१३७ पर भी मिलती है जिसका पाठ है : सिर सांटे का खेल है, छाहि देय सब बानि । सिर सांटे साहब मिले, तौहु हांनि मत जानि ।

[४१] दा० ४५-३५, नि० ५०-४८, सा० ८६-५, सासी० २१-२४, गुण० ७६-१२—
 १. दा० नि० सूरतन । २. दा३ नि० साहिया, सा० ताहया । ३. सासी० ध्यान (हिन्दी मूल) ।
 ४. गुण० राम की-१. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(१५) उपदेस चितावनीं कौ अंग

काल सिरहाने^१ है^२ खड़ा^३, जागि पियारे^४ मित^५ ।

राम सनेही^६ बाहिरा^७, तूं क्यों सोवै निचिंत^८ ॥१॥^९

पाव पलक की^१ गमि^२ नहीं, करै काल्ह का साज ।

काल अचानक मारिहै^३, ज्यों तीतर कौ बाज ॥२॥

कबीर नोबति आपनों, दिन दस लेहु बजाइ ।

यहु पुर पटन^१ यहु गली^२, बहुरि न देखहु आइ ॥३॥

कबीर धूरि सकेलि कै^१, पुड़िया बंधी एह^२ ।

दिवस चारि का पेखनां^३, अंति खेह की खेह ॥४॥

मानुख^१ जनम दुलभ है^२, होइ^३ न बारंबार^४ ।

पाका फल जो गिरि परा^५, बहुरि न लागै^६ डार ॥५॥

मानुख जनमहि पाइ कै^१, चूकै अक्की घात ।

जाइ परै भवचक्र में^२, सहै घनेरी लात^३ ॥६॥^४

[१] दा० ४६-३, नि० ४४-४, सा० ७८-४३, सावे० ११-१७९, सासी० ३२-३, स० ६७-१६, बी० १०२ गुण० १७७-११९—

१. दा२ दा३ सिहांलें, नि० सिहांलें, सा० सासी० चिचाना, सावे० चिचावत, गुण० सिचाणां ।
२. दा० नि० यीं, गुण० सिरि । ३. बी० काल खड़ा सिर ऊपर । ४. बी० सावे० बिराने ।
५. दा० स० म्यंत (राज०), बी० सासी० मीत । ६. सा० सासी नाम । ७. बी० जाका घर है गैल में, सावे० नाम सनेही जगि रहा । ८. बी० सासी० निचिंत । ९. सावे० में यह साखी अन्यत्र मिलती है, तुल० सावे० १९-१२१ : काल खड़ा सिर ऊपर, जागु बिराने मीत । जाका घर है गैल में, सो क्यों सोवै निचिंत ॥ सावे० का यह पाठ बी० से प्रभावित ज्ञात होता है ।

[२] दा० ४६-६, नि० ४४-६, सा० ७८-९, सावे० १९-१६, सासी० १७-५४, स० ६७-६, बी० २६८, गुण० १७७-५५—

१. दा१ दा२ कबीर पल की । २. गुण० सुधि । ३. दा० नि० गुण० काल अच्यंता कड़पसी (राज० मूल), बी० बीचहि चानक मारिहि ।

[३] दा० १२-१, नि० १६-१, सा० ३०-१, सावे० १९-१८, सासी० १७८-८, स० ६७-१०, गुण० १७६-१, गु० ८०— दा२ पाटण । २. गु० नदी नाव जोजे निः । ३. दा३ देखसि, गु० मिलिहै ।

[४] दा० १२-२०, नि० १६-१४, सा० ३०-२४, सावे० १९-३५, सासी० १७-१२, स० ६७-१२, गुण० १७६-६२, गु० १७८—

१. गुण० समेष्टि करि । २. गु० देह । ३. सा० देखता ।

[५] दा० १२-३४, नि० १६-४२, सा० ३०-१०८, सावे० १९-१७८, स० ६७-११, गु० ३०, बी० ११५, गुण० १७६-२६—

१. गु० मानस । २. बी० सा० सावे० दुर्लभ अहै । ३. दा० नि० स० गुण० देह । ४. गु० बारी बार, नि० बारंबार, बी० दूजी बार । ५. दा० नि० स० गुण० तरवर तें फल कड़ि पड़्या, सा० सावे० तरवर तें पत्ता कुरै, गु० जिर बन फल पाके मुंड गिरहि ।

[६] दा० १२-२९, नि० १६-७६, सा० ३०-४२, सावे० १९-१००, सासी० १७-७५, बी० ११३—
१. दा० नि० इहि औसरि चेत्या नहीं, सा० सासी० राम नाम जाना नहीं । २. दा० नि० सा० सासी० माटी मलनि (सा० सासी० मिलन) कुम्हार की । ३. दा० चर्नी सहै सिर लात, नि० चर्नी सहै ली (छत्र) लात, सा० सासी० चर्नी सहै लात । ४. सासी० में यह साखी अन्य स्थल

हाड़ जरै ज्यों^१ लाकरी, केस जरै ज्यों^१ घास ।

सब जग^२ जरता देखि करि, भया कबीर उदास^३ ॥७॥

जैसी उपजै पेड़ तैं^१, जौ तैसी निबहै श्रोरि^२ ।

कौड़ी कौड़ी जोड़ता^३, जोरै लाख करोरि ॥८॥

कबीर सुनिनै रैन कैं, अघरि आए नैन ।^१

जीव परा बहु लूटि मै^२, जागै तौ लेन न देन^३ ॥९॥

नांव न जानैं गांउं का, भूला मारगि जाइ^१ ।

काल्हि गइ जो कांटवा^२, अगमन^३ कस न खुराइ^४ ॥१०॥

हिरदा भीतर आरसी, मुख देखा नहि जाइ^१ ।

मुख तौ तबहीं देखिअ^२, जौ दिल को^३ दुविधा जाइ^४ ॥११॥

नोर^१ पियावत^२ का फिरै^३, सायर घर घर बारि^४ ।

त्रिखावंत जो होइगा^५, पीवैगा भूख मारि ॥१२॥

पर भी मिलती है; तुल० सासी० १७-१७० : यह अवसर चेत्यो नहीं, चूक्यो मोटी बात । माटी मिलत कुंभार की, बहुत सहीगे लात ॥

[७] दा० १२-१६, नि० १६-२०, सा० ३०-३३, सावे० ११-३, सासी० १७-४४, गु० ३६, बी० १७४-१. बी० जस । २. दा० नि० सब तन । ३. बी० जरै कबीरा राम रस, कोठी जरै कपास ।

[८] दा० ३४-७, नि० ५-२, सावे० १३-९ सासी० ५३-४, गु० १५३, बी० २०९—
१. बी० जैसी लागी श्रोर से, सावे० सासी० जैसी ली पहिले लगी । २. बी० छोर । ३. दा० नि० पैका पैका जोड़ता, गु० हीरा किसका बापुरा, सावे० सासी० अपने देह को को गिनै । ४. दा० नि० जुड़सी लाख करोड़ि, गु० पुजहि न रतन करोड़ि, सावे० सासी० तारै पुरुष करोर ।

• [९] दा० १२-२२, नि० १६-१७, सा० ३०-३१, सावे० १९-३५, सासी० १७-१४, बी० २११, गु० १७६-६५—

१. बी० सपने सोया मानवा, खोलि जो देखा नैन । २. नि० परिया था बहु लूट मै । ३. बी. सावे० ना कछु लेन न देन । ४. तुल० बी० १२६-२ : राउर को पिछवारे, गावहि चारिउ सैन । जीव परा बहु लूटि महं, ना कछु लेन न देन ॥

[१०] दा० ५०-१, नि० ५८-१, सा० १०२-१, १९-१३०, सासी० ५३-२१, बी० २०६ ।

१. दा० नि० मारगि लागी जाउं, सा० सासी० पाँछें लागी जाइ । २. दा० नि० सा० सासी० काल्हि जु कांटा भाजिसी (नि० लागिसी, सा० सासी० भागिसं) । ३. दा० नि० सा० पहिली, सासी० पहिले । ४. दा० नि० क्यूं न खड़ाउं, सावे० कस न कराय ।

[११] दा० १३-५, नि० १७-१०, सा० ७४-३, सावे० २३-२ तथा ७१-४४, सास ० ४६-५ बी० २९,—
१. सासी० तेरे हिरदे राम है, ताहि न देखा जाइ । २. सा० सावे० सास ० ताको तो तब देखि । ३. दा० नि० मन की । ४. सा० सावे० (२३-२) दुविधा देख बहाइ ।

[१२] दा० ३७-७, नि० ३९-५, सा० ७१-७, सावे० ३७-४७, बी० १२—

१. बी० सावे० पानि । २. दा० दा० सा० पिलावत । ३. बी० फिर । ४. बी० सावे० सा० घर घर अयास वारि । ५. दा० जो ३ पियासा होइगा, सावे० जो जन त्रिषावंत है ।

बाजन दे बाजंतरी^१, कलि कुकुही मति छेड़ि^२ ।
 तुमै बिरांनीं^३ क्या परी, तूं अपनीं आप निवेरि ॥१३॥
 एकै साथै सब सधै^४, सब साथै सब^५ जाइ ।
 उलटि जो सींचै मूल कौं^६, फूल फलै अघाइ^७ ॥१४॥
 साधु भया तौ क्या भया^८, बोले नांहि बिचारि ।
 हतै पराई आतमां, जीभ बांधि तरवारि ॥१५॥^२
 सांच बरोवरि^९ तप नहीं, भूठ बरोवरि^{१०} पाप ।
 जाकै हिरदै^{११} सांच है, ताकै हिरदै आप^{१२} ॥१६॥^३
 बोलत ही पहिचानिए, साहु^{१३} चोर का घाट ।
 अंतर घट की करनीं^{१४}, निकसै सुख की वाट ॥१७॥
 राम नाम^{१५} जानां नहीं^{१६}, लागी मोटी खोरि ।
 काया हांडी काठ की, नां ऊ^{१७} चढ़ै^{१८} बहोरि ॥१८॥
 राम नाम जानां नहीं, पाला कटक^{१९} कुटुंब ।
 धंधा ही में मरि गया^{२०}, बाहरि^{२१} भई न बंब^{२२} ॥१९॥^४

[१३] दा० ३७-८, नि० ३९-३, सा० ७१-३, सावे० ३७-१०, व० २४८—

१. सा० बाजन दे बैजंत्री, सावे० बाजन देहु जंतरी, नि० बाजन देहु बजंतरी । २. सा० जग जंत्रा ना छेड़, दा० नि० बं कलि जंतरी न छेड़ि । ३. नि० सा० पराई ।

[१४] सा० २७-२०, सावे० ८०-७, सासी० २३-२०, बी० २७-३, गुण० १२-१—

१. बी० एक साथै सब साधिया । २. बी० एक, बीम० सब । ३. सावे० जो गहि सेवै मूल को, सासी० माली सींचै मूल को, गुण० जी जल सींचै मूल तै । ४. गुण० तौ फल फूल अघाइ ।

[१५] सा० ६५-११, सावे० ३७-४१, सासी० १९-१४०, बी० २१९ (बीम० में नहीं है) —

१. सा० सास० मुख आवै सोई कहे । २. सावे० तथा सासी० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है, तुल० सावे० ६८-८ तथा सासी० ७६-१२ : ज्यों आवै त्यों ही कहे, बोले नहीं बिचारि । हतै पराई आतमा, जीभ लेइ तरवारि ॥ इससे सावे० तथा सासी० में संकीर्ण-संबंध सिद्ध होता है ।

[१६] नि० २३-१, सा० ५२-१, सावे० ६७-१, सासी० ८१-२२, बी० ३३४—

१. नि० सा० सासी० बराबरि । २. व० (बाराबंकी) भीतर । ३. सावे० ता हिरदै गुठ आप । ४. याज्ञिक-संग्रह (ना० प्र० स०) का एक पोथी में यह साखी लालदास के नाम से मिलती है, किन्तु नि० सा० सावे० सासी० तथा बी० प्रतियों में मिलने से यह साखी निश्चित रूप से कबीर की सिद्ध हो जाती है । अन्य साखियों की भांति कबीर की यह साखी भी अत्यधिक प्रचलित है; यहाँ तक कि अपनी सुवोधता के कारण यह लोकोक्ति के रूप में प्रयुक्त होने लगी है । लालदास के समय तक यह निश्चित रूप से पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुकी होगी और लालदास या उनके शिष्य इसे अपने नाम पर चलाने का लोभ संवरण न कर सके होंगे ।

[१७] बी० ३३०, सावे० ३७-४३, गुण० १४४-१२—

१. गुण० साथ । २. सावे० अंतर की करन करे, गुण० बासन सहि क वस्त सब ।

[१८] दा० १२-३१, नि० १६-३५, सा० ३०-५१, सावे० १९-४४, सासी० २३-२३, स० ६७-१२, गु० ७०—

१. सावे० सप्तनाम (राधा० प्रभाव) । २. गु० कबीर नामु न बिआइओ । ३. दा० बी० सा० सावे० सासी० व० गु० ओइ । ४. गु० चरहै (उड़ मूल) ।

[१९] दा० १२-३३, नि० १६-३७, सा० ३०-५३, सावे० १९-४६, सासी० २३-२३, स० ६७-१२, गु० ७०—

१. सा० साखी० मूल । २. नि० कलि गुण० सा० साखी० कलि मूल । ३. सा० बाजन दे

कबीर यहू तन जात है^१, सकै तौ ठाहर लाइ^२ ।

कै सेवा^३ करि साध की, कै हरि के गुन गाइ^४ ॥२०॥

कबीर यहू तन जात है^१, सकहु त लेहु^२ बहोरि ।

नांगे हाथों^३ ते^४ गए, जिन्हके^५ लाख करोरि ॥२१॥

कबीर गरबु न कीजिअ^१, देही देखि सुरंग^२ ।

भ्राजु काल्हि तजि जाहुगे^३, ज्यों कांचुरी भुवंग^४ ॥२२॥

कबीर गरब न कीजिअ^१, अंचा देखि अवास ।

काल्हि परों^२ भुइ^३ लोटनां, ऊपरि जांमैं^४ घास ॥२३॥

कबीर गरबु न कीजिअ^१, चांम लपेटे^२ हाइ ।

हैवर^३ ऊपर छत्र तर^४, ते भो^५ देवा गाइ^६ ॥२४॥

सासी० बार । ४. सा० सास० बंब । ५. गु० में यह सासी कुछ हेर-फेर के साथ अन्यत्र भी आता है, वल० गु० १०६ : हरि का सिमरनु छाड़ि के पालिओ बहुत कुटुंब । धंधा करता रहि गया भाई रहिआ न बंधु ॥

[२०] दा० १२-३६, नि० १६-४७, सा० ३०-६४, सावे० १९-४४, सास० १७-१९, गु० २८ गुण० १७६-२९—

१. गु० जाइगा । २. सा० सास० सकै तौ ठौर लगव, गु० कबने मारगि लाइ । ३. गु० संगति । ४. दा० सा० गुण० के गुण गोविंद के गाइ, सावे० सास० के गुरु के गुन गाइ ।

[२१] दा० १२-३७, नि० १६-४८, सा० ३०-६५, सावे० १९-६१, सासी० १८-२१, गु० २७ गुण० १७६-३०—

१. गु० जाइगा । २. सा० सावे० सास० राखु । ३. गु० नांगे पावहु, गुण० नांगे पाऊं । नि० नांगा पावां, सावे० सासी० खाली हाथों । ४. नि० जे, सा० सो, सावे० सासी० वह । ५. नि० तिनकै ।

[२२] दा० १२-९, नि० १६-१०, सा० ३०-१९, सावे० १९-२८, सासी० १७-६, गु० ४०—

१. दा० नि० सा० कबीर कहा गरबियौ, बी० कनक कामिनी देखि के । २. बी० तू मत भूल सुरंग । ३. दा० नि० बी० छहियां मिलवौ (सा० मिलसं) नहीं, सावे० सास० बिछुरे पर मेली नहीं, बी० बिछुरन मिलन दुहेलरा । ४. बी० जस केंचुलि तजत भुजंग, दा० नि० कांचलियार भुवंग, सा० सावे० सास० ज्यों केंचुली भुजंग ।

[२३] दा० १२-१०, नि० १६-७९, सा० ३०-१७, सावे० १९-३०, सासी० १७-३, गु० ३८—

१. दा० नि० सा० कबीर कहा गरबियौ । २. गु० आजु कालि । ३. दा० भैं । ४. सावे० सास० जमसी, सा० जामिहै ।

[२४] दा० १२-११, नि० १६-१२, सा० ३०-२०, सावे० १९-३१, सासी० १७-४ तथा ५, गु० ३७—

१. दा० नि० सा० कबीर कहा गरबियौ । २. दा० नि० पलेटे (पंजाबी मूल), सासी० (५) लपेटौ (उर्दू मूल) । ३. नि० हस्ती । ४. दा० छत्र सिरि (उर्दू मूल), नि० छत्रपति, सास० छत्र तट (हिन्दी मूल) । ५. नि० सा० तेऊ, सावे० सासी० तोभी, गु० ते फुनि । ६. दा० देवा खड, नि० दीए खंड, सा० दीए खाड, सावे० सासी० देवै गाइ, गु० घरनी गाइ । ७. सासी० (५) इक दिन तेरा छत्र सिरि, दा० कांछे देवा । Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जो पहिले सुख भोगिया^३, तिनका गुड़ लै खाइ ॥३१॥

सा० देखा, सासी० देखा।
[११] दा० १२-५१, नि० २०-३५, सा० ३०-४१, सासी० १०-१५१, गु० ४४, गुल० ०६-६०-
१. नि० १४ जितना मूल २. सा० गुल० जनि संसारी जाय, सासी० मत संसार नंवाय। गु०
मत सहसा रहि जाइ (उद् मूल-संसारिह) Public Domain (Copyright) Kanoo Uday Singh, Haridwar

कबीर हरि सौं हेत करि, कूड़े^२ चित्त न लाइ ।
बांधा बारि खटीक कै, तां^३ पसु केतिक^४ आइ ॥३६॥
कबीर हरि की^५ भगति बिनु, ध्रिग जीवन संसार ।
धूवां केरा धौलहर^६, जात न लागै बार^७ ॥४०॥^४
राम नाम करि बौहड़ा^८, बाहै बीज अघाइ^९ ।
अंतकालि^{१०} सूखा परै, तऊ न निरफल जाइ^{११} ॥४१॥^४
जिनके^{१२} नौवति बाजती, मैंगल^{१३} बंधते बारि ।
एकहि हरि के नाउं बिनु, गए जनम सब^{१४} हारि ॥४२॥
कबीर थोड़ा जीवनां, माडै बहुत मंडान ।
सबही ऊभा पंथ सिर^{१५}, राव रंक सुलतान ॥४३॥
कबीर गरब न कीजिअ^{१६}, काल गहे कर कर केस^{१७} ।
नां जानौं कहं मारिहै^{१८}, कै घर^{१९} कै परदेस ॥४४॥
कबीर गरब न कीजिअ, इस^{२०} जोवन की आस ।
टेसू^{२१} फूले दिवस दोइ^{२२}, खंखर भए पलास ॥४५॥

- [३९] दा० ४६-२७, नि० ४४-३७, सा० ७८-६२, सासी० ३२-३८, स० ६७-८—
१. दा० नि० सू० । २. सा० सासी० कोरै (उर्दू मूल) । ३. नि० तह । ४. दा० नि० कितो एक ।
[४०] दा० १२-२७, नि० १६-३८, सा० १५-३, सावे० १२-२८ तथा १९-५० (दो बार), सासी० १२-२३, स० ६७-१३, गुण० १७६-६४—
१. सावे० सासी० गुरु की (साम्प्रदायिक प्रभाव) । २. सावे० सासी० विक । ३. सावे० का धौलहर, सा० सासी० का धौराहरा । ४. सासी० विनसत लागै न बार । ५. सावे० में यह साखी उपर्युक्त दो स्थलों पर मिलती है और दोनों का पाठ शब्दशः मिलता है ।
[४१] दा० ३५-४, नि० ३७-७, सा० १५-८, सावे० १२-३१, सासी० १२-२७, स० १५-१, गुण० ४७-७—
१. सा० सावे० राम नाम (सावे० सत्तनाम) हल जोतिप, सासी० छिमा खेत भल जोतिप । २. सा० सावे० सासी० सुभिरन बीज जमाइ । ३. नि० सरव लोक, सा० सावे० सासी० खंड ब्रह्म । ४. सावे० सासी० भक्ति बीज नहि जाइ, दा० १२ गुण० निरफल कदे (गुण० तऊ) न जाइ । ५. तुल० सावे० ३४-६० : सुभिरन का हल जोतिप, बीजा नाम जमाय । खंड ब्रह्म सूखा पड़े, तऊ न निरफल जाय ॥
[४२] दा० १२-२, नि० १६-२, सा० ३०-२, सावे० १९-१९, सासी० १७-३९, गुण० १७६-२—
१. दा० ज्यांह कै । २. दा० नि० सावे० संगल (उर्दू मूल ?) । ३. सावे० सतगुरु, सासी० गुरु के । ४. नि० तन ।
[४३] दा० १२-५, नि० १६-४, सा० ३०-५, सावे० १९-२२, सासी० १७-८, गुण० १७६-५—
१. दा० गुण० उभा मेलिह गया, नि० ऊमी मेलिहगा, सावे० ऊमा में लगी रहा ।
[४४] दा० १२-१२ तथा ४६-१९ (दो बार), नि० ४४-१, सा० ३०-२१, सावे० २९-१, सासी० १७-१, गुण० १७७-१५२—
१. दा० गुण० कबीर कहा गरबियो । २. नि० काल गहवां सिर केस । ३. दा० मारिखी (राज० मूल) । ४. सा० सावे० सासी० क्या ।
[४५] दा० १२-८, नि० १६-९, सा० ३०-१८, सावे० १९-२९, सासी० १७-२—
१. सावे० अंस (उर्दू मूल) । २. दा० नि० सावे० सासी० क्या । ३. दा० बारि सासी० क्या ।

भ्रैसां^१ यहु संसार है, जैसा सँबल^२ फूल ।
 दिन दस के ब्यौहार हैं^३, भूठे रंगि न भूल ॥४६॥
 कबीर सुपिन^४ रैन के, पड़ा कलेजे छेक^५ ।
 जौ सोऊं तौ दोइ जनां, जौ जागूं तौ एक ॥४७॥
 कबीर हरि की^६ भक्ति करि, तजि बिखिया रस चौज ।^७
 बार बार नहि पाइए, मनखा जनम की मौज ॥४८॥
 जब लगि भगति सकांम हैं^८, तब लगि निरफल सेव ।
 कहै कबीर वह क्यों मिलै, निहकांमीं निज देव ॥४९॥^९
 कबीर तहां न जाइअ, जहां कपट का हेत ।
 जालू^{१०} कली कनीर^{११} की, तन राता मन सेत ॥५०॥
 ढोल दमांमां गड़गड़ी^{१२}, सहनाई संगि^{१३} भेरि ।
 औसर चले बजाइ कै, है कोई लावै^{१४} फेरि^{१५} ॥५१॥
 इक^{१६} दिन भ्रैसा होइगा, सब सौं^{१७} परै बिछोह ।
 राजा रांनां छत्रपति^{१८}, सावधानं किन होइ^{१९} ॥५२॥
 जामन मरन बिचारि कै^{२०} कूड़े कांम निवारि^{२१} ।
 जिहि पंथां तोहि चालनां^{२२}, सोई^{२३} पंथ संवारि^{२४} ॥५३॥

- [४६] दा० १२-१३, नि० १६-१३, सा० ३०-२३, सावे० ११-३४, सासी० १७-१५, गुण० १७६-७६—
 १. सा० सासी० कबीर । २. सावे० सेसर, सासी० सँमल । ३. सा० सा० सासी० में ।
 [४७] दा० १२-३३, नि० ७-१६, सा० ३०-३०, सावे० १४-५१, सासी० १६-३५, गुण० १७६-६६—
 १. दा० पास जिय में छेक, गुण० परा स जिय में छेक ।
 [४८] दा० १२-३५, नि० ५-१४, सा० १५-२, सावे० १२-१, सासी० १२-१२, गुण० १७६-२७—
 १. सावे० सासी० गुरु की । २. नि० कबीर हरि का नांव ले, तजि माया बिख चौज, गुण० कबीर
 हरि की भगति करि, तजि माया बिख चौज । ३. सा० सावे० सासी० मनुख ।
 [४९] दा० ११-१०, नि० २१-५५, सा० १५-३०, सावे० १२-३४, सासी० १२-३६, गुण० ५१-९—
 १. दा० नि० गुण० सकांमता । २. यह साखी 'गुणगंजनामा' में ही अन्यत्र कमाल के नाम से
 भी मिलती है, तुल० गुण० १०९-२८ : जब लग कांम न बीसरी, तब लगि निरफल सेव । कहि
 कमाल हरि क्यों मिलै, वे निहकांमीं देव ॥ किन्तु गुण० के अतिरिक्त दा० नि० सा० सावे० सासी०
 में भी मिलने से यह साखी कबीर की ही सिद्ध होती है, कमाल के नाम से कदाचित् वह भूल से
 प्रचलित हो गयी है ।
 [५०] दा० ४२-१, नि० ४७-१, सा० ८१-१, सावे० ५८-१, सासी० ६९-१, गुण० ६२-५४—
 १. सा० सावे० सासी० जानो (उर्दू मूल) । २. सा० सावे० सासी० अनार ।
 [५१] दा० १२-३, नि० १६-३, सा० ३०-३, सावे० १९-२१, सासी० १७-४०—
 १. दा० नि० गिड़गिड़ी, दा० सा० सासी० दुरवरी, २. सावे० अरु । ३. दा० दा० सा०
 सासी० राखै । ४. सा० अपनी अपनी बेरि ।
 [५२] दा० १२-६, नि० १६-५, सा० ३०-६, सावे० १९-२३, सासी० १७-४१—
 १. सासी० एक । २. दा० थे । ३. सा० सावे० सासी० राजा राना राव रंक । ४. सावे० सासी०
 सावध क्यों नहि कोइ ।
 [५३] दा० १२-१४, नि० १८-१६, सा० ३०-३०, सावे० ११-३४, सासी० १६-३५, गुण० १७६-६६—
 १. सावे० जनम मरन दुख याद कर, सा० सासी० जनम मरन बिचारि कै, नि० हरि हरि हृदियार

राखनहारै बाहिरा^१, चिड़िअँ खाया खेत ।

आधा परधा ऊबरै, चेति सकै तौ चेति ॥५४॥

कबीर मंदिर लाख का, जड़िया हीरै लालि ।

दिवस चारि का पेखनां, बिनसि जाइगा काल्हि ॥५५॥

कहा किया हंम आइ करि, कहा करैगे जाइ ।

इत के भए न ऊत के, चाले मूल गंवाइ^१ ॥५६॥

आया अनआया भया^१, जे बहु राता^२ संसारि ।

पड़ा भुलावा गाफिलां, गए कुबुद्धी हारि ॥५७॥

जिन हरि की^१ ज़ोरी करी, गए राम^२ गुन भूलि ।

ते बिधिनां वागुन रचे^३, रहे अरध^४ मुखि भूलि ॥५८॥

यहु तन कांचा कुंभ है, लियां फिरै था साथि ।

ढबका^१ लागा फुटि गया, कछु न आया हाथि ॥५९॥

कबीर यहु तन बन भया^१, करम जु भए कुहारि^२ ।

आप आपकों काटिहै, कहै कबीर बिचारि ॥६०॥

करि । २. नि० कूड़ी गल न मारि । ३. सावे० जिन जिन पंथो चालना, नि० ज्यां ज्यां पंथी (नागरी मूल) चालणां । ४. नि० सोइ सोइ । ५. सावे० संभार । उक्त स्थलों के अतिरिक्त सा० में यह साली ३४-२५ पर और सावे० में १८-२३ पर भी मिलती है जहाँ इसका पाठ है : कबीर हरि (सावे० गुरु) हथियार करि, कूरा गली निवारि । जो जो पंथा चालना, सोई पंथ संवारि ॥ यह पाठ नि० से प्रभावित ज्ञात होता है । सा० तथा सावे० में एक ही प्रकार की पुनरावृत्ति मिलने से दोनों में संकीर्ण-संबंध सिद्ध होता है ।

[५४] दा० १२-१५, नि० १६-२३, सा० ३०-३९, सावे० १९-४०, सासी० १७-६६—
१. दा० बिन रखवाले बाहिरा ('बिन' तथा 'बाहिरा' में एक ही भाव की पुनरावृत्ति), सा० बिन रखवारे बाहरी, सावे० सासा० घर रखवाला बाहिरा ।

[५५] दा० १२-१९, नि० १६-१६, सा० ३०-३९, सावे० १९-३७, सासी० १७-१३—

[५६] दा० १२-२५, नि० १६-३७, सा० ३०-५५, सावे० १९-४७, सासी० १७-७८—

१. नि० चाले जनम ठगाइ ।

[५७] दा० १२-२६, नि० १६-३६, सा० ३०-५४, सावे० १९-४८, सासी० १७-८८—

१. सा० कबीर अनहूवा हुआ । २. सा० बहु रोता (राज० मूल) है । सासी० में पुनरावृत्ति; तुल० १७-२१ : कबीर अनहूवा हुआ, बहु रोता संसार । पड़ा भुलावा गाफिला, गया कुबुद्धी हार ॥ यह पाठ सा० से लिया हुआ ज्ञात होता है ।

[५८] दा० १२-२८, नि० १६-२८, सा० ३०-४३, सावे० १९-४३, सासी० १७-६९—

१. सावे० सासी० गुरु की । २. सावे० सासी० नाम । ३. बार बार किए । ४. बार और, बार उच (उर्दू मूल) ।

[५९] दा० १२-३९, नि० १६-४४, सा० ३०-६१, सावे० १९-५२, सासी० १७-८०—

१. सा० सावे० सासी० टपका (नागरी मूल)

[६०] दा० १२-४४, नि० १६-५३, सा० ३०-६६, सावे० १९-६४, सासी० १७-८६—

१. दा० यह तन तो सब बन भया । २. सा० सावे० सासी० कुहारि

काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोइम धोइ ।
 ऊजर भए न छूटि^१, सुख नींदरी न सोइ ॥६१॥
 तेरा^१ संगी कोइ नहीं, सबै स्वारथी लोइ^२ ।
 मन परतीति न ऊपरजै, जिय^३ बेसास न होइ ॥६२॥
 डागल^४ ऊपरि दौरनां, सुख नींदरी न सोइ ।
 पुन^५ पाया देह रे^६, ओछी ठौर^७ न खोइ ॥६३॥
 ऊजड़ खेड़े ठीकरी^८, गढ़ि गढ़ि^९ गए कुम्हार ।
 रावन सरिखा^{१०} चलि गया, लंका का सिकदार ॥६४॥
 तन सांहीं जो मन धरै, मन धरि ऊजल होइ ।
 साहिब सौं सनमुख रहै, तौ अजरावर होइ^{११} ॥६५॥
 मरैगे^{१२} मरि जाहिगे^{१३}, कोइ^{१४} न लेगा^{१५} नाउं^{१६} ।
 ऊजड़ जाइ बसाहिगे^{१७}, छोड़ि बसंता गांउं^{१८} ॥६६॥
 आजि कि काल्हि कि पचे दिन^{१९}, जंगलि होइगा बास ।
 ऊपरि ऊपरि फिरहिगे^{२०}, ढोर चरंते^{२१} घास ॥६७॥
 राम नाम^{२२} जानां नहीं, हूआ बहुत अकाज ।
 बूड़गा रे बापुरा, बड़े बड़ों^{२३} की लाज ॥६८॥

- [६१] दा० १२-५३, नि० १६-५७, सा० ३०-७७, सावे० १९-५५, सासी० १७-९२—
 १. नि० सा० सावे० सासी० छूटिसी (राज० मूल) ।
- [६२] दा० १२-५५, नि० १६-६७, सा० १६-४, सावे० १९-८५, १९-१०८ (दोवार), सासी० १७-९८—
 १. नि० सा० सासी० मेरा । २. दा० सब स्वारथ वंधी लोइ । ३. नि० जे (उर्दू मूल) ।
- [६३] दा० १२-५९, नि० १६-४३, सा० ३०-८८, सावे० १९-८७, १९-१७१, सासी० १७-१०३—
 १. सा० सावे० (२) सासी० कोठे । २. सावे० (१) दिवसड़ा, दा० नि० बाँहड़े । ३. नि० आब
 [६४] दा० दा० १२-७, नि० १६-७, सा० ३०-७, सावे० १९-३४, सासी० १७-४२—
 १. सा० सासी० टेकरी (उर्दू मूल) । २. दा० नि० सासी० घड़ि घड़ि (राज० मूल) । ३. सासी०
 जैसा । ४. दा० सावे० गा० सरदार ।
- [६५] दा० १२-१२, नि० १७-१२, सा० ३१-१५, सावे० ७१-४५, सासी० २९-६२—
 १. सा० सासी० तौ अमरापुर जोय, सावे० अजर अमर सो होय । दा० तौ फिरि वालक होइ ।
- [६६] दा० १२-१६, नि० १६-१९, सा० ३०-३४, सावे० १९-३९, सासी० १७-३६—
 १. सावे० मरोगे । २. सावे० जाहुगे । ३. दा० नाम । ४. दा० लेसी (राज० मूल) ।
 ५. दा० दा० कोइ—लोइ । ६. सावे० बसाहुगे ।
- [६७] दा० १२-१८, नि० १६-१८, सा० ३०-३२, सावे० १९-२, सासी० १७-४३—
 १. सा० सावे० सासी० आज कालि के बीच में । २. सावे० सासी० हल फिरै । ३. सावे०
 सासी० चरंगे ।
- [६८] दा० १२-३६, नि० १६-३१, सा० ३०-४६, सावे० १९-४५, सासी० १७-४८—
 १. सावे० सत्तनाम (राज० मूल) । २. दा० बड़ा बड़ा ।

ज्यों कोरी^१ रेजा^२ बुनै, नेरा^३ आबे छोरि ।
 भ्रैसा लेखा^४ मोच का, दौरि सकै तौ दौरि ॥६६॥
 कबीर पगरा दूरि है, बीच पड़ी है राति^५ ।
 नां जानौ क्या होइगा, ऊगंतै^६ परभाति ॥७०॥
 में में बड़ी बलाइ है, सकै तौ नोकसि भागि^७ ।
 कब लगि राखौ^८ राम जी^९, रुई लपेटो^{१०} आगि^{११} ॥७१॥
 बैरागी बिरकत भला, गिरही चित्त^{१२} उदार ।
 दोऊ चूकि^{१३} खाली^{१४} पड़ै, ताकौ वार न पार ॥७२॥
 संसारी साकत^{१५} भला, कुंवरी कन्या भाइ^{१६} ।
 दुराचारी बैसनौ बुरा^{१७}, हरिजन तहां न जाइ ॥७३॥
 कबीर हरि के नांव सौं^{१८}, प्रीति रहै इकतार^{१९} ।
 तौ मुख तैं मोती भरै, हीरा अनंत अपार^{२०} ॥७४॥
 भ्रैसी बांनों बोलिए, मन का आपा खोइ ।
 अपनां तन सीतल करै, औरां कौ सुख होइ^{२१} ॥७५॥

[६९] दार दार दा५ १२-६७, नि० ४४-४३, सा० ३०-८७, सावे० १९-१७०, सासी० १७-१०२—
 १. नि० कोली । २. दा० बेजा (नागरी मूल), नि० कुलहट । ३. दार बुगता । ४. नि०
 इसा भरोसा ।

[७०] दार ४४-७, नि० ४४-४३, सा० ७८-६०, सावे० १९-१५२, सासी० १७-५५ तथा ३२-३६—
 १. नि० अजुं बीचि है राति । २. सावे० उगे तैं ।

[७१] दा० १२-६०, नि० १६-४३, सा० ३०-९०, सावे० १९-६७, सासी० १७-१०५—
 १. दा० निकसी भागि, नि० नोसरि भागि, सावे० सासी० निकसी भागि । २. दा० नि० क्यूं
 करि ऊबरू । ३. दा० कब लगि राखौ है सखी, सावे० कहै कबीर कब लगि रहै । ४. दा० नि०
 पलेटी (पंजाबी मूल) । ५. तुल० दा० १६-३२, नि० १९-४२, सा० ३७-३७, सावे० ७२-५५ :
 कहू धौं केहि बिधि राखिए, रुई पलेटी आगि ।

[७२] दा० ३४-६, नि० २०-३२, सा० ७१-२७, सावे० ५२-५ सासी० ७-७८—
 १. नि० चिता । २. नि० दोइ बातों, सावे० दो बातों, दा० दुहुं चूक । ३. दा० रीता ।

[७३] दा० ४२-२, नि० ४७-३, सा० ८१-१०, सावे० १७-८, सासी० ७-४५—
 १. सा० सावे० सासी० साकट । २. दा० कंवारा कै भाइ । ३. नि० वैशनों अर विमचारिनों,
 सा० सावे० सासी० साधु दुराचारी बुरा ।

[७४] दा० ३४-८, नि० ३-१७, सा० ११-५६, सावे० ३३-२८, सासी० १३-३१—
 १. सावे० कबीर सतगुर नाम में । २. सा० सासी० सुरति रहै करताइ, सावे० सुरति रहै सरसार ।
 ३. दा० हरि अंत न पार ।

[७५] दा० ३४-९, नि० ५-१०, सा० १०-२०, सावे० ३७-७, सासी० १८-२६—
 १. नि० सा० सावे० सासी० औरन कौ सातल करै, आपहु सीतल होइ । सासी० में पुनरा-
 चृत्ति; तुल० सासी० १९-६९ : सन्द जु ऐसा बोलिइ, तन को आपा खोय । औरन कौ सीतल
 करै, आपन को सुख होय ।

कबीर नवै सो आपकों, पर कौ नवै न कोइ ।
 घालि तराजू तौलिए, नवै सो भारी^१ होइ ॥७६॥
 कबीर हृद के जीव सौं^१, हित करि मुखां न बोलि ।
 जे राचे बेहृद सौं^१, तिन सौं अंतर खोलि ॥७७॥
 कबीर केवल राम^१ कहि, सुद्ध गरीबी भालि^२ ।
 कूरु बड़ाई बूझसो (बूझई?), भारी पड़सो (परई?) कालि^३ ॥७८॥
 सील गहै कोइ सावधान^१, चेतन पहुरै जागि ।
 बस्तु न^२ बासन सौं^३ खिसै, चोर न सकई लागि ॥७९॥
 कबीर अपनै जीवतैं, ए दोइ बातैं^१ धोइ ।
 मान^२ बड़ाई कारनैं, अछता^३ मूल न खोइ ॥८०॥
 खंभा एक गयंद दोइ, क्यों करि बंधसि बारि ।
 मानि करै^२ तौ पिउ नहीं, पीउ तौ मानि निवारि ॥८१॥
 बेरियां बीती बल गया^१, अरु^२ बुरा कमाया^३ ।
 हरि जिनि छांडै हाथ तैं, दिन नेरा आया^३ ॥८२॥

[७६] दा० ३९-९, नि० ५१-६१, सावे० ६५-६, सासी० ८३-८, गुण० ३३-१०—
 १. नि० गरवा । तुल० नानक : सभ को निवइ आप कउ, पर कउ निवै न कोइ । घालि तराजू
 तौलिए, निवै स गउरा होइ ॥ (गु० पृ० ४७० पंक्ति १०, ११ नीचे से)

[७७] दा० १२-५०, नि० ६४-१५, सा० १०८-१४, सासी० ४४-१३, स० ११-४, गुण० १०६-२५—
 १. नि० दा१ दा२ स्यू । याज्ञिक संग्रह (ना० प्र० स०) के ३४६-५५ संख्यक गुटके में यह साखी
 लालदास के नाम से मिलती है, वहां इसका पाठ है : लालजिया हृद के लीग सूं, हित कर मुष
 नां बोल । जे राचे हर नांव सूं, जासूं अंतर खोल ॥४१॥ अन्य साखियों की भाँति संभवतः इसे भी
 किसी संत ने भूल से लालदास की रचनाओं में सम्मिलित कर लिया है । इस साखी में लालदास
 की व्याप ठीक बैठती भी नहीं ।

• [७८] दा० १२-५२, नि० १६-५६, सा० ३०-७६, सासी० १७-३४, स० १२७-७, गुण० १२०-९—
 १. सासी० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । २. सासी० चाल (उर्दू मूल) । ३. सासी० भाल ।
 (कदाचित् स्थानांतरित) ।

[७९] दा० ३४-१०, सा० ४३-३, सावे० ६१-६, सासी० ७९-२, गुण० १५-१०—
 १. दा० गुण० कोई एक राखै सावधान (दा२ साध धन) । २. सा० सावे० सासी० बासन
 (हिन्दी मूल) । ३. सा० सावे० सासी० कै ।

[८०] दा० १२-४१, सा० ३८-१०, सावे० ५७-११, सासी० ६७-११, गुण० १२०-८—
 १. सा० सासी० वाता । २. गुण० लाभ । ३. सावे० आकृत ।

[८१] दा० १२-४२, सा० ३८-९, सासी० ६७-१२, गुण० ४०-१६—
 १. सा० सासी० बंधू । २. सा० सासी० करू ।

[८२] दा० ४६-२६, सा० ७८-१९, सासी० ३२-१६, गुण० ३५-४—
 १. सा० सासी० घटा । २. सा० सासी० औरी । ३. सा० सासी० कमाय—आय । ४. सा०
 सासी० हरिजन (उर्दू मूल) काँड़ी ।

ऊंचा दीसै^१ धौलहर^२, मांडी चितरो^३ पोलि^४ ।
 एकै हरि के^५ नांउं बिनु, जम पाड़ैगा^६ रोलि^७ ॥८३॥
 कहा^८ चुनावै^९ मैड़िया, चूनां माटी लाइ ।
 मोच सुनैगो पापिनो, ऊदारेगो आइ^{१०} ॥८४॥
 असी ठाटनि^{११} ठाटिए^{१२}, बहुरि न ठाटनि होइ^{१३} ।
 पहिरि ग्यांन गलि गूदरी^{१४}, काढ़ि^{१५} न सकई कोइ ॥८५॥
 भै बिनु भाव न ऊपजै, भाव बिनां नहि प्रीति^{१६} ।
 जब हिरदै सौं भैया, तब मिटी सकल रस रीति ॥८६॥
 बस्तु कहों खोजै^{१७} कहों, क्योंकरि^{१८} आवै हाथि ।
 कहै कबीर तब पाइए, जब भेदी लीजै साथि^{१९} ॥८७॥
 सबद सबद बहु अंतरा, सार सबद चित देहु^{२०} ।
 जा सबदै साहिब मिलै, सोइ सबद गहि लेहु^{२१} ॥८८॥
 बहते को बहि जान दे^{२२}, मति पकड़ावो ठौर^{२३} ।
 समुझाए^{२४} समुझै नहीं, तौ देहु धका दुइ और ॥८९॥

[८३] दा० ४६-१८. सा० ३०-८, सासी० १७-५६, गुण० १७७-१४९—

१. दा० गुण० मंदिर (आगे 'धौलहर' होने के कारण पुनः) । २. सा० धौलहरा, सासी० धौहरा ।
 ३. दा० माटी चित्री । ४. सा० सासी० पोल । ५. दा० संम, सासी० गुरु । ६. सा० सासी०
 मारेंगे । ७. सा० सासी० रोल ।

[८४] दा० दा० ४४-२३, सा० ३०-१४, सासी० १७-६१, गुण० १७७-१५०—

१. गुण० काय । २. गुण० चिन्तावि (उर्दू मूल) । ३. सा० सासी० दौरि के लेगी आय ।

[८५] नि० २३-२७, सा० ५५-३०, सासी० ७-२७, स० ९८-१—

१. नि० सोई थाटणि । २. नि० थाटिए । ३. सा० सासी० बहुरि न यह तन होइ । ४. नि०
 सासी० हान गूदरी ओटिए (नि० पहिर करि) । ५. नि० स० काटि (नागरी मूल) ।

[८६] दा० ४४-३० नि० ३-२६, सावे० १९-९१, सासी० १७-१२४, स० ६६-२,

१. सावे० सासी० भै बिनु होइ न मीति ।

[८७] सा० ५-३२, सावे० १-५९, सासी० ३-५८, बी० २४६—

१. सा० सावे० सासी० दुई । २. सा० सावे० सासी० केहि बिधि । ३. बी० ग्यानी सोइ
 सराहिए, पारख राखै साथ ।

[८८] सा० ७४-४९, सावे० ३५-४, सासी० १९-२, बी० ५—

१. बी० मत लीजै । २. बी० कहहि कबीर जहं सार सबद नहि, धिग जीवन सो जीजै ।

[८९] सा० १०-५७, सावे० ३७-३०, सासी० १८-५७, बी० विम० दोहा १—

१. बी० बहा है वहि जात है । २. बी० कर गहि ऐंचहु और, बीम० कर गहे चहुं और (उर्दू मूल) ।
 ३. सा० सावे० समझाया । [विशेष : बीजक में यह साखी 'विममतीसी' के अंत में मिलती है,
 जिसकी रचना रमैनी छंद में हुई है और जिसमें लममग तीस पंक्तियाँ हैं। अन्यत्र यह
 पंक्तियाँ परशुराम नामक संत के नाम से भी मिलती हैं। पाठ के लिए दे० ना० प्र० पत्रिका,
 वर्ष ४५, अंक ४ में डॉ० बहुधवाल का लेख तथा खोज रिपोर्ट सन् १९५५-३७ (अप्रकाशित) में
 ७४ संख्याक भक्ति का विवरण किन्तु परशुराम की 'विममतीसी' में उक्त साखी नहीं मिलती ।]

(१६) काल कौ अंग

कबीर जंत्र न बाजई^१, टूटि गए^२ सब तार ।
 जंत्र^३ बिंचारा क्या करै, चले^४ बजावनहार ॥१॥
 धौं की^५ दाघी^६ लाकरी, ठाढ़ी^७ करै पुकार ।
 मति बसि परौ लुहार कै^८, जारै^९ दूजी बार ॥२॥
 कबीर^{१०} हरितीं दूबरी^{११}, इस^{१२} हरियारै^{१३} तालि^{१४} ।
 लाख^{१५} अहेरी^{१६} एक जिउ^{१७}, केतिक टारै भालि^{१८} ॥३॥
 बिल के बन मै^{१९} घर किया, सरप रहे लपटाइ^{२०} ।
 तातै जियरै डर गहा^{२१}, जागत रैन बिहाइ ॥४॥
 चाकी चलती^{२२} देखि कै, दिया कबीरा रोइ^{२३} ।
 दोइ पट भीतर आइकै^{२४}, सालिम^{२५} गया न कोइ ॥५॥
 सुर नर मुनि औ देवता, सात दीप नौ खंड^{२६} ।
 कहै कबीर सब भोगिया^{२७}, देह धरे का डंड ॥६॥
 मंछ होइ नहि बांचिहौ^{२८}, भीवर^{२९} तेरी^{३०} काल ।
 जिहिं जिहिं डाबर तुम फिरौ^{३१}, तहं तहं मेले^{३२} जाल ॥७॥

[१] दा० ४६-२०, सा० ७८-२५, सावे० १९-१८८, सासी० १७-३०, गु० १०३, बी० २९७, गुण० १७७-१८५—

१. बी० जंत्र बजावत हौं सुना, गु० जो हम जंतु बजावते । २. गु० गुण० गई (उर्दू मूल) ।
 ३. गु० जंतु । ४. सावे० सासी० चला, बी० गया ।

[२] दा० ४६-१०, नि० ४४-५०, सा० ७८-३४, सावे० १९-१५७, बी० ७१, गु० ९०—

१. दा० नि० दी की, गु० बन की । २. बी० हाही, सावे० दाही । ३. बी० ऊसी (पाठांतर : वो भी) । ४. बी० सावे० अब जो जाय लुहार घर । ५. सावे० बी० हाही ।

[३] दा३ ४४-३३ (दा१, दा२ में यह नहीं है), नि० ४४-३४, सा० ७८-५७, गु० ५३, बी० १८—

१. बी० काहै । २. गु० हरना दूबला । ३. गु० इह, बी० यही, सा० ये । ४. गु० हरियारा बी० हरियारे, सा० हरियाली । ५. नि० माल (उर्दू मूल) । ६. बी० लख, दा० नि० लख । ७. दा० नि० अहेड़ी (राज० प्रभाव) । ८. बी० भ्रिग । ९. दा० किती चुकाऊं माल, नि० किती एक टालू माल, गु० केता बंचउ कालु ।

[४] दा० ४६-२८, नि० ४४-५७, सा० ७८-६६, बी० ११३—

१. बी० बिरवै । २. बी० रहा सर्प लपटाइ । ३. सा० तिनका डर जिव गहि रखा ।

[५] सा० ७८-१६, सावे० १९-१२३, सासी० ३२-६७, बी० १२९ (बीम० १६५)—

१. सा० सावे० सासी० चलती चाकी । २. बी० मेरे नयनन आया रोय । ३. सा० सासी० दो पाटन बिच आय कै, बीम० दुइ पटन के अंतरे । ४. सा० सावे० सासी० साबुत, बी० साबित (बीम० सालिम) ।

[६] सा० ७२-२६, सावे० ८४-३३, सासी० ७०-११, बी० २९५—

१. सा० सावे० सासी० सात दीप नौ खंड में, तीन लोक ब्रह्मंड । २. सा० सावे० सासी० कहै कबीर सब को लगै ।

[७] दा३ ४४-२७, नि० ४४-२६, सा० ७८-४६, सावे० १९-१४६, सासी० १७-१४१, बी० २३१—

१. दा० मंछी हुआ न टूटि ए, नि० सावे० सासी० मछरी दह छोड़ी नहीं । २. बी० सावे० सासी० धीमर (सा० मछली) दह टूटै नहीं । ३. सा० मेरा । ४. दा० नि० जिह जिहि डाबर हूँ फिद, सा० सावे० सासी० जेहि जेहि डाबर घर करो । ५. दा० माहै, नि० गोपै ।

मंछ विकंता देखिया^१, भीवर^२ के दरवारि^३ ।
 आंखड़ियां रतनालियां^४ क्यौंकरि बंधे जालि^५ ॥६॥
 पांतीं मांहीं^६ घर किया, सेजा^७ किया पतालि ।
 पांसा परा^८ करीम^९ का, तातें पहिरा जाल^{१०} ॥६॥^१
 हे मतिहीनों साछरी^{११}, भीवर मेला जाल^{१२} ।
 डावरियां छूटे नहीं, सकै त समुंद सम्हालि^{१३} ॥१०॥
 कबीर टुक टुक चोधतां^{१४}, पल पल गई बिहाइ ।
 जिउ जंजाल न छांडई^{१५}, जम^{१६} दिया दमांमां आइ^{१७} ॥११॥
 कहा^{१८} चुनावै मैड़ियां, लंबी भीति उसारि^{१९} ।
 घर तौ^{२०} साढ़े तीन हथ, घनां^{२१} त पौनैं चारि ॥१२॥
 राम कहा तिन कहि लिया^{२२}, जरा पहुंची^{२३} आइ ।
 लागी^{२४} मंदिर^{२५} द्वार तैं, अब क्या काड़ा जाइ^{२६} ॥१३॥

[८] दा३ ४४-२९, नि० ४४-३०, सा० ७८-४२, सासी० १०-१४७, बी० २२९—

१. बी० मंछ विकाने सब चले (?), सा० सासी० आंखड़ियां रतनालियां (तुल० द्वि० पंक्ति) ।
 २. बी० भीमर । ३. सा० सासी० चेजा करै पताल । ४. बी० अंखिया रतनारी तेरी । ५. दा० नि० सा० सासी० तुम क्यौं बंधे जाल, नि० क्यौं करि बंधे जाल ।

[९] दा० ४४-३०, नि० ४४-३१ बी० २३०—

१. बी० भीतर (समानार्थीकरण) । २. दा० नि० चेजा (?) । ३. नि० डक्या । ४. दा२ नि० करम । ५. बी० तामहं पेन्हैं जाल, दा० नि० यूं हम बंधे जाल । ६. दा१ में यह साखी नहीं है ।

[१०] दा३ ४४-२६ नि० ४४-२९, सा० ७८-४०, सासी० १०-१४५, गु० ४९—

१. गु० कबीर धोरै जलि माछुली, दा० नि० इसी अभंगा साछली । २. दा० छापि मांड़ी आलि, नि० सा० सासी० छोलरि मांड़ी आल । ३. गु० इह टोचनै न छुटसिहि, फिरि करि समुद सम्हालि ।

[११] दा० ४६-७, नि० ४४-७, सा० ७८-११, सावे० १९-१३६, सासी० ३२-८, गु० २२७, गुण० १७७-६०—

१. नि० कबीर टम टम चोधतां (हिन्दी मूल), दा३ कबीर टग टग चोधतां, सावे० टक्क टक्क गया जोवता, गु० आखां केरे मांढुके । २. सा० सावे० सासी० जीव जंजाले पड़ि रहा । ३. सा० में 'जम' शब्द नहीं दिया गया (केवल मात्रा ठीक करने के लिए) । ४. सावे० जमहि दमाम बजाइ ।

[१२] दा३ नि० ४४-२४, सा० ३०-१४, सावे० १९-२६, सासी० १०-६२, गुण० १७७-९४१, गु० २१८—

१. दा० नि० गु० कांड (राज० मूल) । २. गु० कोठे मंडप हेतु करि काई मरहु सवारि । ३. गु० कारजु । ४. गु० घनी ।

[१३] दा० ४६-२४, नि० ४४-३४, सा० ७८-१७, सासी० ३२-१४, गु० १३२, गुण० १७७-३१—

१. गु० कबीर राम न चेत्यो । २. दा० नि० गुण० पहुंची । ३. दा० नि० लागै, गुण० लागी ।
 ४. सासी० सुंदरि कही न जाइ । ५. दा० नि० गुण० तेव कछु कांड़ो न जाइ, सा० सासी० अब कछु कही न जाइ ।

पांच तत्व का पूतरा^१, मानुस धरिया^२ नाउं ।
 चारि दिवस के पाहुने^३, बड़ बड़ रुंधहि ठाउं^४ ॥१४॥
 ठाले ठूले^५ दिन गया, ब्याज बढ़ता^६ जाइ ।
 नां हरि^७ भजा न खत फटा, काल पहुंचा आइ ॥१५॥
 भूठे सुख कौं सुख कहै, मानत है मन मोद ।
 खलक^८ चबैनां^९ काल का, कछु मुख में^{१०} कछु गोद ॥१६॥
 निधड़क बैठा राम बिनु^{११}, चेत न करै पुकार ।
 यहु तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥१७॥
 बारी बारी आपनीं, चले पियारे सीत ।
 तेरी बारी जीयरा^{१२}, तेरी^{१३} आवै नीत ॥१८॥
 जो ऊगै^{१४} सो आथवे^{१५}, फूलै सो कुम्हिलाइ ।
 जो चुनिया^{१६} सो ढहि पड़े, जांमैं सो मरि जाइ^{१७} ॥१९॥
 जो दीसै सो बिनसिहै^{१८}, नाम धरा सो जाइ ।
 कबीर सोई तत्त गहि^{१९}, जो सतगुर दिया बताइ ॥२०॥
 पांनों केरा बुदबुदा, अस मानुस की जाति^{२०} ।
 देखत ही^{२१} छिपि^{२२} जाईगे, ज्यों तारे परभाति ॥२१॥

[१४] नि० ४४-२५, सा० ३०-१६, सावे० १९-२७, सासी० १७-६३, गु० ६४—

१. गु० माटी के हम पूतरे । २. गु० राखिउ (?) । ३. नि० दिन दहूं चहुं कै कारनैं, सा० सावे० सासी० दिना चारि के कारने । ४. नि० सा० सावे० सासी० फिरि फिरि रोकै ठांम ।

[१५] नि० ४४-४२, सा० ७८-६, सावे० १९-१४१, सासी० ३२-७, गु० २०८—

१. सासी० ढाले ठूले (हिन्दी मूल) । २. नि० वधंती । ३. सावे० गुरु (सांप्रदायिक प्रभाव) ।

[१६] दा० ४६-१, नि० ४४-२, सा० ७८-१, सावे० १९-४, सासी० ३२-४, स० ६७-१६, गुणा० १७७-१४७—

१. सावे० सासी० गुणा० जगत । २. दा० नि० गुणा० चवीनां । ३. सा० सासी० कछु मूठी ।

[१७] दा० ४६-१३, नि० ४४-१९, सा० ७८-३९, सावे० १९-७, १९-१८६, सासी० १७-४८, स० ६७-२०, गुणा० १७७-८१—

१. सावे० सासी० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) ।

[१८] दा० ४६-९, नि० ४४-१४, सा० ७८-२५, सावे० १९-११४३, सासी० १७-१३८, गुणा० १७७-१८७—

१. नि० जीवड़ा, दा१ रे जिया ।

[१९] दा० ४६-११, नि० ४४-६०, सा० ७८-३७, सावे० १९-१८५, सासी० ३२-३२, गुणा० १७७-१६८—

१. गुणा० ऊग्या । २. सा० सासी० आथमै । ३. दा१ चिथिया (उर्दू मूल) । ४. दा० गुणा० जो आया (दा३ जाया) सो जाइ ।

[२०] दा० ४६-१२, नि० १-३६, सा० १-६५, सावे० १-९५, सासी० २-७२, गुणा० १७७-१६९—

१. सावे० दीसै है सो बिनसिहै, नि० जो दीसै सो बिनसिसी (राज० मूल), दा० गुणा० जो पहरा सो फाटिसी । २. सा० सासी० गह्यी ।

[२१] दा० ४६-१४, नि० १४-२०, सा० ७८-४०, सावे० १९-६, सासी० १७-४५, गुणा० १७७-१८२—

१. दा० नि० गुणा० इसी हमारी जाति । २. दा० गुणा० एक दिनां । ३. दा२ निदि, गुणा० नीद । CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मंदिर मांहीं भलकती^१, दीवा^२ की सी जोति ।
 हंस बटाऊ चलि गया, अब काढ़ी^३ घर की छोति ॥२२॥
 रोवनहारे भी सुए, सुए जलावनहार^४ ।
 हा हा करते ते सुए^५, कासों करों पुकार ॥२३॥^६
 आजु कहै हरि काल्हि भजौगा^७, काल्हि कहै फिरि काल्हि ।
 आजुहि काल्हि करंत रे^८, औसर जासी (ई ?) चालि ॥२४॥^९
 कांची काया मन अथिर, थिर थिर काम^{१०} करंत ।
 ज्यों ज्यों^{११} नर निधड़क फिरै, त्यों त्यों^{१२} काल हसंत ॥२५॥
 मैं अकेल ए^{१३} दोइ^{१४} जनां, छेती^{१५} नांहीं काइ^{१६} ।
 जौ जम आगैं ऊबरौं, तौ जुरा पहंचै आइ^{१७} ॥२६॥
 आजि कि काल्हि कि निसहिं मैं^{१८}, मारगि माल्हंतांह^{१९} ।
 काल सचानां नर चिड़ा, औभड़ औचिंतांह^{२०} ॥२७॥
 सब जग सूता नींद भरि^{२१}, सोहिं न आवै नींद ।
 काल खड़ा सिर ऊपरै^{२२}, ज्यों तोरण आया बींद ॥२८॥

[२२] दा० ४६-१७, नि० ४४-२२, सा० ७८-४२, सावे० १९-१४२, सासी० १७-१३७, गुण० १७७-१९८—
 १ दा० नि० गुण० भलकती (उर्दू मूल ?) । २. दा० दीपक । ३. सासी० काढ़ी ।

[२३] दा० ४६-३१, नि० ४४-४१, सा० ७८-३६, सावे० १९-१५९, सासी० ३२-३१, गुण० १७७-१६७—
 १. गुण० जलावनहार (उर्दू मूल) । २. नि० जलावनहारे भी सुए सुए ज रोवनहार, सा०
 सावे० सासी० जलनहारा भी सुआ, सुआ जलावनहार (पुन०) । ३. सा० सावे० सासी० है
 हे करते भी सुए । ४. सा० ३०-३५ तथा सासी १७-६५ तुलनीय है, जिनका पाठ है : हाड़ जलै
 लकड़ी जलै, जलै जलावनहार । कौतिगहारा भी जलै, कासों कल पुकार ॥ दूसरी पंक्ति के लिए
 सा० ७९-१३ भी तुलनीय है जिसका पाठ है : वैद सुवा रोगी सुवा, सुवा सकल संसार । हा हा
 करता सब सुवा, कासन करों पुकार ॥

[२४] दा० ४६-५, सा० ७८-५, सावे० १९-६३, सासी० १७-५१, गुण० १७७-५४—
 १. सावे० सासी० आज कहै मैं काल भजु । २. दा० गुण० आज ही काल्हि करंतड़ा, सा० आज
 काल्हि करता रहे । ३. तुल० नि० ४४-४० य५, काल्हि करतां आजि करि, आज करता
 अबालि । आज ही काल्हि करंतड़ा, आइ पहुँता काल ॥

[२५] दा० ४६-३०, नि० ४४-३८, सा० ७८-६५, सावे० १९-१५०, सासी० ३२-४३, स० ६७-१८—
 १. दा० सावे० काज, सा० सासी० करम । २. नि० जिमि जिमि । ३. नि० तिमि तिमि ।

[२६] दा० ४६-८, नि० ४४-१०, सा० ७८-१२, सावे० १९-१३७, सासी० ३२-९—
 १. नि० वै, सासी० वह । २. सावे० सासी० दो । ३. सा० सावे० सेरी, सासी० साथी ।
 ४. सा० सासी० कोय । ५. सा० ती जरा वैरी होय, सासी० ती जग (हिन्दी मूल) वैरी होय ।

[२७] दा० ४६-२, नि० ४४-३, सा० ७८-२, सासी० ३२-५, स० ६७-५, गुण० १७७-१९८—
 १. नि० नसह मैं, सा० सासी० छिनक मैं, दा० गुण० पंच दिन । २. दा० माल्हंता, सा० सासी०
 मेला हित । ३. नि० औभड़ औच्यंता, सा० सासी० औभड़ औ अवचित ।

[२८] दा० ४६-४, नि० ४४-५, सा० ७८-४, सासी० ३२-६, गुण० १७७-१२०—
 १. दा० नसह मुहि । In Public Domain. Digitized by eGangotri Collection, Haridwar

कबीर मंदिर आपनै, नित उठि करतो^१ आलि ।
 मरहट देखें डरपती, चौड़े दीया जालि^२ ॥२६॥
 पंथो ऊभा पंथ सिरि, बगुचा बंधा पूठि ।
 मरनां मुंह आगें खड़ा, जीवन का सब भूठि ॥३०॥
 कबीर सब सुख रांम है, और दुखां की^१ रासि ।
 सुर नर मुनिअर असुर सब^२, पड़े^३ काल की पासि ॥३१॥
 जिनि हंम जाए ते सुए^१, हंम भी चालनहार ।
 हमरै^२ पाखें पूंगरा^३, तिनभी बांधा भार ॥३२॥
 सूखन लागे केवड़ा, टूटी अरहट माल^१ ।
 पांनों की कल जानता, गया^२ सो सींचनहार ॥३३॥
 माली आवत देखि कै, कलियां करें पुकार ।
 फूली फूली चुनि गई,^१ काल्हि हमारी बार ॥३४॥
 मेरा बीर लुहारिया, तूं जिनि^१ जारै मोहि ।
 इक दिन ऐसा होइगा, हौं जारौंगी तोहि ॥३५॥
 पात भरंता यों कहै, सुनि तरवर बनराइ ।
 अब के बिछुड़े नां मिलैं, कहूं दूर पड़ैगे जाइ ॥३६॥
 कबीर पांच पखेरुवा, राखे पोख लगाइ ।
 एक जु आयौ पारधी, लै गयौ सभै उड़ाइ ॥३७॥

[२९] दा० ४६-१६, नि० ४४-४९, सा० ७८-४४, सासी० ३२-३५, गुण० १७७-१९७—

१. नि० गुण० बैठा करता । २. गुण० वालि । (उर्दू मूल) ।

[३०] दा० ४६-२२, नि० ४४-१४, सा० ७८-४८, सासी० ३२-४१, गुण० १७७-१९५—

[३१] दा० ४६-२९, नि० ४४-३९, सा० ७८-६७, सासी० ३२-३९, गुण० १७७-१४६—

१. सासी० दुखहिं की । २. नि० सा० सासी० सुर नर मुनि जन (सा० सासी० मुनि अर) असुर सुर । ३. नि० सबै ।

[३२] दा० ४६-३२, नि० १६-२१, सा० ७८-७९, सासी० २७-६६, गुण० १७७-११६—

१. नि० हंम जाए थे ते सुए, सा० सासी० हम जाए ते भी मुआ । २. नि० हंम भी । ३. दा० गुण० जो हमकां आगें मिलैं ।

[३३] दा० ४६-३३, दा० ४४-३०, नि० ४४-३२, सा० ७८-४४, सासी० १७-१४८, गुण० १७७-१८३—

१. सा० सासी० टूटन लागें डार । २. सा० सासी० चला ।

[३४] दा० ४४-९, नि० ४४-१६, सा० ७८-२६, सावे० १९-१४४, सासी० ३२-३२—

१. सा० सावे० सासी० लई ।

[३५] दा० ४४-३३, नि० ४४-४१, सा० ७८-३५, सावे० १९-१५८, सासी० ३२-३७—

१. सा० सासी० मति । २. तुल० सासी० १७-१७७ : लकड़ी कहै लोहार सों, तू मति जारै मोहि । एक दिन ऐसा होइगा, मैं जारौंगी तोहि ॥

[३६] दा० ४६-१४, नि० १६-४०, सा० ७८-३१, सावे० १९-१८४, सासी० ३२-२७

[३७] दा० ४४-६, नि० ४४-१६, सा० ७८-२६, सावे० १९-१४४, सासी० ३२-३२—

पांतीं में की माछरी^१, सकै तौ पाकड़ि तीर^२ ।
 कड़िया खड़की^३ जाल की, आइ पहुँचा^४ कीर ॥३८॥
 कबीर यहु जग कछु नहीं, खिन खारा खिन मोठ ।
 काल्हि अलहजा सैडियां^५, आजु मसानां दीठ ॥३९॥
 बेटा जाए क्या हुआ, कहा बजावै थाल ।
 आवन जावन है रहा, ज्यों कीड़ी का नाल ॥४०॥

(१७) सजेवनि कौ अंग

कबीर मन सीतल भया^१, जब पाया ब्रह्म गिआन ।
 जिहि बैसंदर जग जरै, सो मेरै उदिक समान ॥१॥
 सीतलता तब जानिए, जौ समता रहै समाइ ।
 पख छाड़ै निरपख रहै^२, सबद न^३ दूखा जाइ^४ ॥२॥
 तरवर तासु बिलंबिए^५, जो वारह मास फलंत ।
 सीतल छाया गहिर^६ फल, पंखी केलि करंत ॥३॥
 जहां जुरा मोच^७ व्यापै नहीं, सुवा न सुनिए कोइ ।
 चलि कबीर तिहि देस कौ^८, जहं बेद बिधाता होइ^९ ॥४॥

[३८] दार ४४-२८, नि० ४४-२७, सा० ७८-४७, सावे० १९-१४७, सासी० १७-१४२—
 १. नि० पांतीं महली (उर्दू मूल) माछली । २. नि० सा० सावे० सासी० क्यौं तुम । ३. नि०
 कड़ी खट्टकी । ४. दा० नि० पहुँची ।

[३९] दा० ४६-१५, सा० ७८-४३, सासी० ३२-३४, गुण० १७७-१९६—
 १. सा० सासी० कबीर जीवन कछु नहीं । २. दा० गुण० काल्हि जु वैठा माड़ियां (समानार्थी-
 करण) ।

[४०] दार ४४-४३, सा० ७८-७७, सासी० ३२-४१, गुण० १७७-१६५
 [१] दा० ३९-४, नि० ४१-५, सा० ७३-५, गु० १७५, बी० ३४३, गुण० १५२-७—
 १. दा० नि० सा० गुण० कबीर सीतलता भई, बी० यह मन तो सीतल भया । २. बी० जब
 उपजा, सा० उपज्यौ । ३. गु० जिन जुआला जग जाखिया (समानार्थीकरण) । ४. गु० स०
 जन के, बी० सो पुनि ।

[२] दा० ३९-३, नि० ४१-६, सा० ७३-४, सासी० १९-४२, गुण० १५२-६—
 १. सा० सासी० बिख (उर्दू मूल) छाड़ै निरबिख (उर्दू मूल) रहै । २. गुण० शब्दि न, नि०
 सा० सासी० सब दिन (उर्दू मूल) । ३. नि० सुख में जाइ ।

[३] दा० ४०-६, सा० ७९-२३, सावे० ८४-६, सासी० ४३-१४, गु० २२९—
 १. गु० कबीर औसा बीजु बोइ । २. दा० गहर । ३. सा० सावे० सासी० पंखी ।

[४] दा० ४०-१, नि० ४५-१, सा० ७९-१, सावे० १-७३ ४५-१, सासी० ४३-१, गुण० १७८-१—
 १. दार ४२ मरण । २. नि० गुण० देस है (राज० मूल) । ३. सावे० (१-७३) जहं वेदा
 सतगुरु होय, (७५-१) जहं वेद सांइयां होइ (सांप्रदायिक प्रभाव), नि० सा० सासी० वेद
 सैया होइ । CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कबीर जोगी बनि बसा, खनि खाया कंद मूल ।
 नां जानौ किस जड़ी तैं^१, अमर भया अस्थूल ॥५॥
 कबीर तौ हरि पै चला^१, अहं गई सब छूटि^२ ।
 गगन मंडल आसन किया^३, काल रहा सिर कूटि ॥६॥^४
 यह मन फटक पछोरि लै, सब आपा मिटि जाइ ।
 पंगुला^१ होइ पिउ पिउ करै, पोछै^२ काल न खाइ ॥७॥
 कबीर मन तोखा किया, लाइ बिरह खरसान^३ ।
 चित चरनां सौं चिहुटिया^२, तहां नहीं काल का पांन^३ ॥८॥

(१८) पारिख अपारिख का अंग

हरि होरा जन जौहरी, लै लै मांडी हाटि^१ ।
 जब रे मिलैगा पारिख^२, तब हीरा^३ की सांठि ॥९॥
 एक अचंभौ देखिया, हीरा हाटि बिकाइ ।
 परखनहारे^१ बाहिरा^२, कौड़ी बदलै जाइ ॥१०॥
 पैड़ें^१ मोती बीखरे^२, अंधा निकसा^३ आइ ।
 जोति बिनां जगदीस की, जगत उलंघै^४ जाइ ॥११॥

[५] दा० ४०-२, नि० ४५-३, सा० ७८-३, सावे० ४५-३, सासी० ४३-३, गुण० १७८-४—

१. सा० सौं, सावे० सासी० से ।

[६] दा० ४०-३, नि० ४५-४, सा० ७९-४, सावे० ४५-४, ४६-१९, सासी० ४२-१६, गुण० १७८-३—

१. दा० नि० गुण० कबीर हरि चरणों चल्या, सावे० सासी० मन की मनसा मिटि गई, ।
 २. गुण० माया मोह तैं टूटि । ३. सा० सावे० सासी० गगन मंडल में घर किया । ४. सासी० में यह साखी अन्यत्र दो स्थलों पर आयी है; तुल० २९-११८ : यह मन हरि चरने चला, माया मोह से छूट । बेहद मांहीं घर किया, काल रहा सिर कूट ॥ तथा ४३-४ : कबीर तो पिव पै चला, माया मोह सौं तोरि । गगन मंडल आसन किया, काल रहा मुख मोरि ॥

[७] दा० ४०-४, नि० १७-२२, सा० ३१-२६, सावे० ७१-५, सासी० २९-४७—

१. दा० नि० पंगुल, सावे० पिंगल, सा० पिंगला, सासी० पिंगला 'उक्त प्रसंग में 'पिंगला' या 'पिंगुला' ('सारंगी' अर्थ में) पाठ भी सार्थक हो सकता है । २. सा० सावे०-सासी० ताको ।

[८] दा० ४०-५, नि० ४५-६, सा० ७९-५, सावे० ४५-५, सासी० ४३-५—

१. सा० खरसान । २. सा० चुभि रह्या, सा० चिपटिया, सावे० सासी० चपटिआ । ३. सा० नहीं काल का बान (उर्दू मूल), सावे० सासी० का करै काल का बान (उर्दू मूल) ।

[९] दा० ४१-३, नि० ४४-२, सा० ९३-२, सावे० ३१-२, सासी० ४९-६, गु० १६२, बी० १६९, गुण० १४३-३—

१. गु० लै के माड़े (उर्दू मूल) हाट, बी० सबन पसारी हाट । २. गु० जबहि पाइअहि पारख, बी० जब आये जन जौहरी । ३. बी० हीरो, सा० सावे० सासी० हीरा ।

[१०] दा० ४८-२, नि० ५३-३, सा० ९२-८, सावे० ३२-२, सासी० ४९-३७, गु० १५४, गुण० १४२-२४—

१. गु० बनजनहारे । २. सा० सावे० सासी० बाहिरा (राज० हिन्दी मूल) ।

[११] दा० ४८-४, नि० ५३-९, सा० ९२-२२, सासी० ४९-४९, स० ८९-५, गु० ११४—

१. गु० मारगि । २. गु० बांधरे (हिन्दी मूल) । ३. सा० निकरा । ४. दा० दा३ उलंघ्या, दा२ उलंघ्या, सा० सासी० उलंघा ।

राम पदारथु^२ पाइ करि, कविरा गांठि न खोलि^३ ।
 नहि पट्टन नहि पारिख^४, नहि गाहक नहि मोल ॥४॥
 कबीर लहरि समंद की, मोली बिखरे आइ^५ ।
 बगुला परख^६ न जानई, हंसा चुनि चुनि खाइ ॥५॥
 कबीर यह^७ जग आंधरा, जैसी अंधी गाइ ।
 बछरा था सो मरि गया, ऊभी चांम चटाइ ॥६॥
 जब गुन कौं गाहक मिलै, तब गुन लाख विकाइ ।
 जब गुन कौं गाहक नहीं, तब कौड़ी बदलै जाइ ॥७॥
 चंदन रुख बिदेस गयो^८, जन जन^९ कहै पलास ।
 ज्यों ज्यों चूल्है भोंकिया, त्यों त्यों दूनीं बास^{१०} ॥८॥
 पाइ पदारथु पेलि करि^{११}, कांकर लीन्हा हाथि ।
 जोरी बिछुरी हंस की, पड़े^{१२} बगा^{१३} कै साथि ॥९॥
 जहं गाहक तहं मैं^{१४} नहीं, मैं^{१५} तहां गाहक नाहि ।
 परचा बिन फूला फिरै^{१६}, पकड़ि सब्द की छाहि ॥१०॥
 बोली हमरी पूरबी^{१७}, ताहि न चीन्है कोइ^{१८} ।
 हमरी बोली सो लखै^{१९}, जो पूरब का^{२०} होइ ॥११॥

[४] नि० ५३-१०, सा० १२-१७, सावे० ३२-५, सासी० १३-१, गु० २३—
 १. सावे० सासी० नाम (यह पाठ भी समानरूप से ग्राह्य माना जा सकता है)। २. सा० सावे०
 सासी० स्तन घन। ३. नि० सा० सावे० सासी० गांठी बांधि न खोल। ४. सा० सावे० सासी०
 पारखी।

[५] दा० ४९-२, नि० ६०-१२, सा० ३१-७९, सावे० १६-१७, सासी० ५-२१, १-१९, गुण० १४३-१४—
 १. सावे० निरुफल कर्मा न जाइ। २. दा० गुण० संक, नि० सार। सासी० ९-१९ का पाठ है :
 कबीर लहरि समुद्र की, कर्मा न निरुफल जाय। बगुला परखि न जानई, हंसा चुनि चुनि जाय ॥
 (सासी० का यह पाठ सावे० के अधिक निकट है)।

[६] दा० ४८-५, नि० ५३-९, सा० १२-१३, सावे० २-८, सासी० ४९-४७—
 १. नि० सब।

[७] दा० ४९-१, नि० ५४-१, सा० १३-१, सावे० ३१ १, सासी० ४९-१४

[८] दा३ ४६-१, नि० ५३-१, सा० १२-१, सावे० ३२-१, सासी० ४९-३०—

१. सा० सावे० सासी० चंदन गया बिदेसई। २. सा० सावे० सासी० सब कोय।

[९] दा० ४६-१, नि० ५३-२, सा० १२-५, सासी० ४९-३३, गुण० १४२-२१—

१. सा० सासी० पेलिया। २. दा० बिछुरी। ३. गुण० घरबा, सासी० चला। ४. सासी० बुना।

[१०] नि० ५३-१३, बी० २८९, सा० १२-१९, सावे० ३२-६—

१. बी० हां। २. बी० बिना बिबेक भटकत फिरै। तुल० बा० सा० ३२० : गृह तजि के जोनी
 भय, जोगी के गृह नाहि। बिनु बिबेक भटकत फिरै, पकरि शब्द की छाहि ॥ ३. सा० बाहि।

[११] दा३ ४७-४, नि० ५४-४, सा० ६५-१४, बी० १९४—

१. बी० पुरुब कै। २. बी० हम लखै नहि कोइ। ३. बी० हमको तो सोई लखै, नि० मेरी
 बोली चान्दसी। ४. नि० जो उस पूरब का, दा३ दा३ जो धुर पूरब का।

हीरा तहां न खोलिए, जहं कुंजड़न की हाटि^१ ।
सहजै गांठी बांधि कै, लगिए अपनी बाटि^२ ॥१२॥

(१६) जीवत मृत कौ अंग

मरतां मरतां जग^१ मुवा, सुवै न जानां कोइ^२ ।
दास कबीरा यौं मुवा^३, ज्यों बहुरि न मरतां होइ ॥१॥
बैद मुवा रोगी मुवा, मुवा^४ सकल संसार^५ ।
एक कबीरा नां मुवा^६, जाकै राम अधार^७ ॥२॥
संत सुएं क्या रोइए^८, जो अपने घरि^९ जाइ ।
रोवहु साकत बापुरै^{१०}, जु हाटे हाटि बिकाइ ॥३॥^{११}
खरी^{१२} कसौटी राम^{१३} की, खोटा^{१४} टिकै न कोइ ।
राम^{१५} कसौटी सो टिकै^{१६}, जो जीवत मिरतक होइ^{१७} ॥४॥
मोहि^{१८} मरनै का^{१९} चाउ है, मरौ त राम दुआरि^{२०} ।
मति हारि^{२१} पूछै कौन है^{२२}, परा हमारै बारि^{२३} ॥५॥

[१२] सा० १३-१, सावे० ३१-४, सासी० ४१-४, बी० १००—

१. सा० सावे० सासी० जहं खोटी है हाट । २. सा० सावे० सासी० कसिकरि बांधो गाठरी, उठि करि चाली बाट ।

[१] दा० ४१-५, नि० ५१-३, सा० ५५-२०, सावे० ४६-१६, सासी० ४२-३, स० १२६-५, गु० २९, बी० ३२-४—

१. दा३ जुग (उर्दू मूल) । २. दा० नि० सा० सावे० औसर मुवा न कोइ, गु० मरि मी न जानिआ कोइ । ३. दा० कबीर औसे मरि (दा३ करि) मुवा, गु० औसे मरने जो मरै, बी० औसा होइ के ना मुवा ।

[२] दा० ४१-६, नि० ५१-५, सा० ५५-२१, सावे० ४६-१७, सासी० ४२-४, गु० ६९—

१. गु० समु । २. नि० कहै कबीर सो नां मुवा । ३. सावे० सासी० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । ४. गु० जिह नाही रोवनहार । ५. उक्त साखी की प्रथम पंक्ति सा० ७९-१३ से तुलनीय है जिसका पाठ है : बैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार । हा हा करता सब मुवा, कासो कलं पुकार ।

[३] दा३ ४१-६, नि० ५१-२७, सा० ५५-२५, सावे० ४६-२२, सासी० ४२-२५, गु० १६—

१. सावे० सासी० भक्त मरै क्या रोइए, दा० नि० सा० मुवा कूं क्या रोइए । २. गु० ग्रिह । ३. दा० नि० सा० रोइए बंदावान को । ४. सासी० में इस साखी की पुनरावृत्ति; तुल० सासी० ४२-२४ : मूए को क्या रोइए, जो अपने घर जाइ । रोइए बंदावान को, हाटे हाट बिकाइ ॥ (इसका पाठ दा० नि० सा० से मिलता है) ।

[४] दा० ४१-३, नि० ५१-२, सा० ५५-१३, सावे० ४६-१०, सासी० ४२-२२ तथा ५२, गु० ३३—
१. गु० सा० कबीर । २. सावे० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । ३. गु० भूटा । ४. गु० सहै । ५. गु० जो मरि जीवा होइ ।

[५] नि० ५१-२५, सा० ५५-२४, सावे० ४६-२०, सासी० ४२-१७, गु० ६१—

१. गु० मुहि । २. नि० सासी० की । ३. सावे० मरौ तो गुरू दुवार (राधास्वामी प्रभाव) । ४. सावे० गुरू । ५. नि० सा० सावे० सासी० बात री । ६. नि० सा० सावे० सासी० कोई दास मुवा दरवार ।

रोड़ा होइ रहु बाट का, तजि पाखंड अभिमान^१ ।
 अइसा जे जन होइ रहै^२, ताहि मिलै भगवान^३ ॥६॥
 रोड़ा भया^४ त क्या भया, पंथी कौं दुख देइ ।
 हरिजन अइसा चाहिए^५, ज्यों धरनों की खेह^६ ॥७॥
 खेह भई^७ तौ क्या भया, उड़ि^८ उड़ि लागै अंग ।
 हरिजन^९ अइसा चाहिए, ज्यों पांनों सरबंग^{१०} ॥८॥
 पांनों^{११} भया^{१२} तौ क्या भया, ताता सीरा^{१३} होइ ।
 हरिजन^{१४} अइसा चाहिए, जैसा हरि ही होइ ॥९॥
 कबीर मन निरमल^{१५} भया, जैसा गंगा नीर^{१६} ।
 तब पादैं लागा हरि फिरै, कहत कबीर कबीर ॥१०॥^{१७}
 जीवत मिरतक होइ रहै, तजै जगत^{१८} की आस ।
 तब हरि सेवा आपै करै^{१९}, सति दुख पावै दास ॥११॥
 घर जारैं घर ऊबरै, घर राखैं घर जाइ ।
 एक अचंभौ देखिया, सुआ^{२०} काल कौं खाइ ॥१२॥

[६] दा० ४१-१४, नि० ५१-१८, सा० ८८-३३, सावे० ४६-३१, सासी० ४२-३२, स० १२६-८, गु० १४६—

१. गु० मन का अभिमान, दा० मन का अङ्कार, सा० सावे० सासी० आपा अभिमान । २. गु० अइसा कोई दास होइ, नि० सा० सावे० सासी० लोभ मोह त्रिसन्ना तजै । ३. दा० करता, सावे० निज नाम (तुकहीन) । दा० स्वामी मत से प्रभावित होने के कारण ही सावे० में 'भगवान' के स्थान पर यह तुकहीन संशोधन किया हुआ बात होता है ।

[७] दा० ३१-१२, नि० ५१-१९, सा० ८८-३४, सावे० ४६-३२, सासी० ४२-३३, गु० १४७—

१. गु० सा० सासी० हुआ । २. गु० अइसा तेरा दासु है, सा० सावे० सासी० साधू अइसा चाहिए । ३. दा० नि० जिसी जिमी की खेह, सा० ज्यों राह की खेह, सावे० सासी० जस पैंड़ की खेह ।

[८] दा० ४१-१६, नि० ५१-२०, सा० ८८-३५, सावे० ४६-३३, सासी० ४२-३४, गु० १४८—

१. गु० हुई । २. गु० जउ । ३. सावे० सासी० साधू । ४. दा० पांनों जैसा अंग, नि० जैसा जल का रंग, सा० पानी का सा रंग, सावे० सासी० जैसा नीर निपंग ।

[९] दा० ४१-१७, नि० ५१-२१, सा० ८८-३६, सावे० ४६-३४, सासी० ४२-३५, गु० १४९—

१. सावे० सासी० नीर । २. गु० हुआ । ३. दा० ताता सीला, गु० सीरा ताता । ४. सावे० सासी० साधू । ५. नि० हरि भजि निर्मल होइ ।

[१०] दा० ४१-२, सा० ८८-१५, सावे० ४६-१३, सासी० ४२-५, गु० ५५—

१. दा० सा० सावे० सासी० मिरतक । २. दा० सा० सावे० सासी० दुरबल भया सरर । ३. तुल० सासी० २९ १०१ भा० : कवार मन निरमल भया, दुल्लभ भया सरर । पीछे लागा इरि फिरै, यू कहि दास कवार ॥

[११] दा० ४१-१, नि० ५१-१, सा० ८८-१४, सावे० ४६-१, सासी० ४२-१, स० १२६-१—

१. सा० सावे० सासी० खलक । २. नि० संगि लियां साईं मिलै, सा० आगे पीछे हरि फिरै, सावे० सासी० रच्छक समर्थ सतगुर ।

[१२] दा० ४१-४, नि० ७-१३, सा० ८८-४१, सावे० ४६-२९, सासी० २७-५, स० १२६-३—

१. दा० नि० मड़ा ।

जीवन तैं^१ मरिबी^२ भली, जौ मरि जानें कोइ ।
 मरनै पहिलै^३ जो मरै, तौ कलि अजरावर होइ^४ ॥१३॥
 कबीर चेरा संत का, दासनि का परदास^५ ।
 कबीर अैसा होइ रहा, ज्यों पांवां तलि घास^६ ॥१४॥^३
 कबीर मरि मरहट^७ गया^८, किनहुं न बूभी^९ सार ।
 हरि आदर आगें लिया, ज्यों गऊ बच्छ की लार ॥१५॥
 आपा मेटें^{१०} हरि मिलै, हरि मेटें^{११} सब जाइ ।
 अकथ कहांनों प्रेम की, कहें न कोइ पतियाइ^{१२} ॥१६॥
 अब तौ अैसी ह्वै परी, नां तूंबरी^{१३} न बेलि ।
 जारन आनीं^{१४} लाकरी, ऊठी कौपल मेलि ॥१७॥

(२०) निरपख मधि कौ अंग

सुरग नरक तैं^१ मैं रहा^२, सतगुर के परसादि ।
 चरन कंवल^३ की मौज मैं, रहौं^४ अंति अरु आदि ॥१॥
 आगे सीढ़ी सांकरी,^५ पाछैं^६ चकनांचूर^७ ।
 परदा तर की सुंदरी^८, रही धका तैं दूर ॥२॥

[१३] दा० ४१-८, नि० ४१-१०, सा० ८८-२३, साबे० ४६-१८, सासी० ४२-२, स० १२६-६—
 १. नि० सासी० जीवत में । २. सा० साबे० सासी० मरना । ३. दा० नि० पहली । ४. साबे०
 सासी० अजर अमर सो होय ।

[१४] दा० ४१-१३, नि० ४१-१४, सा० ८८-३२, साबे० ४६-३०, सासी० ४२-३१, स० १२६-९—
 १. सा० साबे० सासी० दासन हू का दास । २. सा० साबे० सासी० अब तौ अैसा ह्वै रहू, ज्यों
 पांव तले की घास । ३. तुल० सासी० ११-२१ : दास कहावन है, मैं दासन का दास । अब तौ
 ऐसा ह्वै रहू, पांव तले की घास ॥

[१५] दा० ४१-३, नि० ४१-२९, सा० ८८-२९, साबे० ४६-२४, सासी० ४२-२८—
 १. सा० साबे० सासी० मरघट । २. नि० मरि मरहट बासा किया । ३. दा० कोइ न बूझै ।

[१६] दा० ४१-१०, नि० ४१-१२, सा० ८८-४०, साबे० ४६-२८, सासी० २७-४—
 १. दा० नि० आपा मेठ्यां । २. सासी० कोई ना पतियाइ । साबे० तथा सासी० में यह साखी
 अन्यत्र भी आती है; तुल० साबे० ६५-७ तथा सासी० ८३-९ : आपा मेटे पिव मिलै, पिव में रहा
 समाय । अकथ कहानी प्रेम की, कहै तो को पतियाय ॥

[१७] दा० ५८-१, नि० ६३-१, सा० १०६-६, सासी० २७-४२, स० १२६-४—
 १. नि० तीबड़ी । २. सास० कानी (हिन्दी मूल) ।

[१] दा० ३१-६, नि० ३३-६, सा० ६३-१३, सासी० ३७-७, गु० १२०, गुण० १२९-४०—
 १. दा३ अग ब्रक थै, नि० नरक सुरक सू, सा० सासी० नरक स्वर्ग तैं । २. दा० नि० गुण०
 रहया, सा० सासी० रहा । ३. गु० कमल । ४. दा० नि० रहिखू (राज०) गुण० रहिहू सा०
 सासी० रहसी० (राज० मूल) ।

[२] बी० ८६, नि० ५१-७, सा० १०१-८—
 १. नि० कबीर सेरी सांकड़ी । २. सा० माही, नि० माती (हिन्दी मूल) । ३. नि० सा०
 चूरमचूर । ४. नि० सा० कारणवती सुंदरी ।

कबीर हरदी पीयरी^१, चूनां ऊजल भाइ ।^२
 राम सनेही यूं मिलै^३, दोनउं^४ बरन गंवाइ^५ ॥३॥
 जेहि मारगि पंडित गए^६, तेई गई^७ बहीर ।
 औघट घाटी^८ राम की^९, तिहि चढ़ि रहा^{१०} कबीर ॥४॥
 सुरग पताल के बीच मै^{११}, दोइ तूमरिया^{१२} बद्ध^{१३} ।
 खट दरसन घोखै^{१४} पड़े, अरु^{१५} चौरासी सिद्ध ॥५॥
 हृद चलै सो मानवा^{१६}, बेहद चलै^{१७} सो साध ।
 हृद बेहद दोऊ^{१८} तजै, ताकर^{१९} मता अगाध ॥६॥
 पखा पखी^{२०} के कारनै^{२१}, सब जग रहा भुलानै^{२२} ।
 निरपख^{२३} होइकै हरि भजै, सोई संत सुजान ॥७॥
 अनल अकासां^{२४} घर किया, मद्धि निरंतर बास ।
 बसुधा बास^{२५} विगता^{२६} रहै, दिन ठाहर^{२७} बिसवास ॥८॥

[३] दा० ३१-९, नि० ३३-९, सा० ७४-५, गु० ५६, गुण० १२१-४३—

१. नि० पीली । २. दार में इस पंक्ति के लिए स्थान रिक्त छोड़ दिया गया है । ३. गु० तउ मिले । ४. नि० स० दोन्यूं, दा० दून्यूं । ५. नि० हरिजन हरि सूं यूं मिल्या दोन्यूं बरन नसाइ । ६. तुल० गु० ५७ : हरदी पीरातनु हरे चून चिहनु न रहाइ । बलिहारी इह प्रीति कउ जाति बरन कुलु जाइ ॥

[४] दा० ३१-५, नि० ३३-५, सा० ३४-२१, सावे० १८-२६, गु० १६५, बी० ३१—

१. दा३ सा० गया, बी० गए पंडिता । २. दा१ दार दुनिया परी, दा३, दुनिया दिया, दा५ दुनिया भई, गु० पाछे परी, सावे० नि० सा० तिमही गही । ३. बी० ऊँची घाटी । ४. दा३ दा४ दा५ नीपणी सा० सावे० नाम की । ५. बी० तहं चढ़ि रहे, नि० तहि चढ़ि गया ।

[५] दा० ३१-११, नि० ३३-१२, सासी० ३७-१०, गु० ६१-२५, बी० २५५—

१. दा० नि० गुण० धरती अरु असमान विचि । २. दा० नि० गुण० सासी० तुंबरी । ३. दा१ १ अबघ, दा३ अबघि, दा५ अबघ, बी० बिद्ध । ४. दा० नि० गुण० सांसे । ५. बी० लख ।

[६] सा० १०८-१६, सावे० ४९-७, सासी० ४४-१०, बी० १८९—

१. सा० सावे० सासी० हृद में रहे सो मानवी । २. सा० सावे० सासी० रहे । ३. सा० सासी० दोनों । ४. सा० सावे० तिनका, सासी० ताका ।

[७] बी० १३८, दा० रामकली २९-१, २, नि० बिलावल १३-१, २—

१. बी० पछापछी । २. दा० नि० पेखणें । ३. दा० नि० सब जगत सुलानां । ४. बी० निरपख । ५. दा० साध । दा० तथा नि० में, जैसा ऊपर संकेत किया गया है, उक्त दोनों पंक्तियाँ एक पद के आरम्भ में आती हैं । शेष पद इस प्रकार हैं—ज्यूं खर सूं खर बंधिया यूं बंधे सब लोई । जाके आत्म द्रिष्टि है सांघा जन सोई ॥ एक एक जिनि जानिया तिनही सच प्राया । प्रेम पीति ली लीन मन ते बहुरि न आया ॥ पूरे को पूरी द्रिष्टि (नि० दसा) पूरा करि पेलै । कहे कबीर कासी कहीं या बात अलेखे । [यह पंक्तियाँ अन्य किसी शाखा की प्रतियों में न मिलने के कारण प्रसिद्ध शांत होती हैं] ।

[८] दा० ३१-३ (दा१ में नहीं), नि० ३३-३, सा० ६३-८, सासी० ३७-३, स० १२२-२—

१. सा० सासी० अकासै । २. दा० नि० स० न्योस । ३. सा० सासी० बिरकत । ४. सासी० बिना ठौर ।

हिंदू भूआ रांम कहि, मूसलमान खुदाइ ।
 कहै कबीर सो जीवता^१, जो दुहुं कै निकटि न जाइ^२ ॥६॥
 कावा^३ फिरि कासी^४ भया, रांमहि^५ भया रहीम ।
 मोट^६ चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम ॥१०॥
 कबीर मरनां तहं भला, जहं आपनां न कोइ^७ ।
 आनिख भखै जनावरा^८, ताउं न लेवै कोइ^९ ॥११॥

(२१) सांच चाणक कौ अंग

औरां कौ^१ मरमोधाता^२, सुहड़ै^३ पड़िया^४ रेत ।
 रासि विरांती^५ राखता^६, खाया^७ घर का खेत ॥१॥^८
 लेखा देनां सोहरा^९, जो दिल सूची^{१०} होइ ।
 उस सांचे दीवानं मै^{११}, पला न पकड़ै कोइ ॥२॥
 खूब खान है खीचरी^{१२}, जे टुक बाहै लौन^{१३} ।
 हेरा रोटी कारनै^{१४}, गला कटावै कौन ॥३॥

[१] दा० ३१-३, नि० ३२-२, सा० ३३-२२, सासी० ३७-२२, गुण० १२९-१४—

१. नि० कबीर सोई जीवता । २. दा१ गुण० दुहुं में कदे न जाइ, नि० सा० सासी० दुहुं के संगि न जाइ । तुल० गोरखवानी (हि० सा० स० प्रयाग) सबदी ६९ : हिंदू ध्यावै राम कीं, मूसल-मानं खुदाइ । जोगी ध्यावै अलख कीं, तहां रांम अकै न पुदाइ ॥ किंतु गोरखनाथ की रचना में यह प्रसिद्ध ज्ञात होती है ।

[१०] दा० ३१-१०, नि० ३३-११, सा० ३३-१४, सासी० ३७-२, गुण० १२९-१३—

१. नि० तांवा (उर्दू मूल) । २. नि० कासी (हिन्दो मूल ?) । ३. नि० रांम जी । ४. गुण० मोट । सा० तथा सासी० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है, तुल० सा० ७६-४ तथा सासी ४०-४ : कासी कावा एक है, एकै राम रहीम । मैदा इक पकवान बहु, बैठि कबीरा जीम ॥ दोनों में पुनरावृत्ति मिलने से दोनों का संकोर्ण-संबंध सिद्ध होता है ।

[११] सा० ८८-२८, सावे० ४६-२३, सासि० ४२-३०, स० ७४-६, गुण० १३०-२३—

१. १० सावे० सासी० मरना भला विदस का । २. सा० सावे० सासी० जीव जंतु भोजन करै । ३. गुण० सुवा न रोवै कोइ, सा० सावे० सासी० सहज महोछा होइ ।

[१४] दा० १७-१४, नि० २०-२, सा० १४-३, सावे० २-१७, स० ८६-३, गु० ९८, बा० ३११, गुण० १४८-११—

१. गु० अवरह कउ, नि० औरानि नै, सावे० औरनि को । २. गु० उपदेसते, बा० सिखलावते । ३. दा१ गु० मुख में, नि० मुहै । ४. गु० परिहै, बा० परिगो, नि० सा० सावे० परि गई । ५. दा० नि० सा० सावे० स० पराई । ६. सा० सावे० राखते । ७. बा० खाइ । ८. दा० नि० सा० सावे० तथा स० में इस साखी के दोनों चरण परस्पर स्थानांतरित ।

[२] दा० २२-२, नि० २३-६, सा० ३०-११, सावे० ६७-२३, सासी० १७-३७, स० १२७-२—

१. दा३ सा० सोरहा, गु० सुहैला । २. दा० नि० सांचा । ३. दा० स० उस चंगे (पंजाबी मूल) दीवानं में, नि० साहिब का दरबार में, सा० सावे० सासी० साईं के दरबार में ।

[३] दा० २२-१२, नि० ४२-७, सा० १०-३७, सावे० ७७-१४, सासी० ७३-४०, स० ७६-१, गु० १८८—

१. नि० खिचड़ी खानां खूब है, गु० खूब खाना खीचड़ी, सावे० सासी० खुश खाना है खीचड़ी । २. गु० जामहि अंत्रित लोन, सा० सावे० सासी० माहि पड़ा टुक लोन । ३. दा१ पेड़ा (उर्दू मूल) रोटी खाइ करि, दा२ हेरा रोटी खाइ करि ।

बांम्ह^१ गुरु है जगत का, भगतां का गुर नांहि^२ ।
 उरभि पुरभि^३ कै मरि गया^४, चारिउ बेदा^५ मांहि ॥४॥
 जोत्र जु मारहि जोर करि^६, कहते हैं जु हलाल^७ ।
 जब दफतरि लेखा मांगिहै^८, तब होइगा^९ कौन हवाल ॥५॥
 जोर किया सो^{१०} जुलुम है, लेइ^{११} जवाब खुदाइ ।
 दफतरि लेखा नीकसै^{१२}, मारि मुहँसुहि^{१३} खाइ ॥६॥
 सेख सवूरी बाहिरा^{१४}, क्या हज कावै जाइ^{१५} ।
 जाकी^{१६} दिल साबित^{१७} नहीं, ताको^{१८} कहाँ खुदाइ ॥७॥
 कासी काठे^{१९} घर करे, पीवै निरमल नीर ।
 मुकुति नहीं हरि नाउं बिनु^{२०}, यों कहै दास कबीर^{२१} ॥८॥
 सिख साखा बहुते किए, केसो^{२२} किया न मीत^{२३} ।
 चाले थे हरि मिलन को^{२४}, बीचहि अटका चीत^{२५} ॥९॥

[४] दा० १७-१०, नि० २०-२४, सा० ४०-४१, सावे० ८२-१८, सासी० ४८-१५, गु० २३०—

१. गु० वामनु । २. दा१ नि० साधू का गुर नांहि, दा२ भरम करम का खाहि, दा३ दा४ करम भरम का खाहि, सा० सावे० करम धरम का खाहि । ३. गु० अरभि उरभि, सा० सावे० सासा० अरभि पुरभि । ४. गु० पांचि मुखा । ५. सा० सावे० सासी० वेदा ।

[५] दा० २२-८, नि० २३-१६ तथा २३-१९, सा० १०-२८ तथा १०-३०, गु० १८७ तथा १९९, सासी० ७३-३१ तथा ३३—

१. दा० नि० (२३-१६) सा० (१०-२८) सासी० (७३-३१) जोरी करि जिवहै करै, गु० (१८७) जोरी कीए जुलुम है (पुन० तुल० गु० २००-१ : जोर किआ सो जुलुम है) । २. नि० (१६) सा० (२८) सासी० (३१) मुखसी कहै हलाल, नि० (१९) सा० (३०) सासी० (३३) कीया कहै हलाल, गु० (१८७) कहता नाउ हलाल । ३. दा० जब दफतरि देखैगा दई, नि० सा० सासी० साहिब लेखा सागिसी । ४. नि० सा० सासी० होसी (राज० मूल) । नि० सा० गु० सासी० में इस साखी के दो-दो बार मिलने से चारों में संकीर्ण-संबंध सिद्ध होता है ।

[६] दा० २२-९, नि० २३-१७, सा० १०-२७, सासी० ७३-३२, गु० २००—

१. सा० सासी० जोर किए तें, दा० नि० जोरी कीयां (राज०) । २. दा० नि० सा० सासी० मांगे । ३. दा० नि० सा० सासी० खालिक दरि खूनी खड़ा । ४. सा० सासी० मुहँसुह (उट्ट मूल) ।

[७] दा० २२-११, नि० २०-३६, सा० १०-३५, सासी० ७३-३८, गुण० ४६-६३, गु० १८५—

१. गु० बाहरा । २. नि० सा० कहा जु मक्कै जाइ, सासी० हाका जस कै जाइ । ३. दा० जिनकी, नि० जिसकी, सा० सासी० जिनका । ४. दा० स्यावति (राज०), गु० सावति । ५. दा० नि० सा० सासी० तिन कीं । सासी० में यह साखी दो स्थलों पर मिलती है: तुल० सासी० ४६-६३ : सिदक सवूरी बाहिरा, कहा हज्ज को जाय । जिनका दिल साबित नहीं, तिनको कहाँ खुदाइ ॥

[८] दा० १७-१९, नि० २४-१७, सा० ५४-७, सासी० ४६-३०, गु० ५४—

१. नि० सा० सासी० तीरथ काठे, गु० गंगा तीर जु । २. गु० बिनु हरि भगति न मुक्ति होइ । ३. सा० सासी० यों कथि कहै कबीर, गु० इउ कहि रमे कबीर ।

[९] सा० ४०-१७, सावे० २-२३, सासी० ३-६२, गु० १६, गुण० १२०-२१—

१. सा० गुण० माधो, सावे० सासी० सतगुर । २. १० भित्त । ३. सावे० सास० चाले थे सतलोक को (मां प्रदायिक प्रभाव) । ४. सा० चित्त ।

बैस्नों की कूकरि भली^१, साकत की बुरी साइ ।
 वह बैठी हरि जस सुनै^२, वह पाप बिसाहन जाइ^३ ॥१०॥
 कबीर कोठी काठ की^४, वह दिसि^५ लागी^६ आगि ।
 पंडित पंडित जलि मुए^७, झुरख^८ ऊबरे^९ भागि ॥११॥
 साकत^{१०} ते सूकर भला, राखै सूचा^{११} गांउं ।
 साकत बपुरा मरि गया, कोइ न लेइहै तांउं^{१२} ॥१२॥
 गहगचि परा कुटुंब कै^{१३}, काठै रहि गया रांस ।
 आइ परे धरमराइ के, बीचाहैं धूमधाम ॥१३॥
 में रोऊं संसार कौ^{१४}, मोकौं रोवै न कोइ^{१५} ।
 मोकौं^{१६} रोवै सो जनां^{१७}, जो सबद बिबेकी^{१८} होइ ॥१४॥
 सांइ^{१९} सेती चोरियां^{२०}, चोरां सेती गुज्झ^{२१} ।
 तब जानैगा जीयरां^{२२}, जब मारि परैगो तुज्झ^{२३} ॥१५॥
 तीरथ करि करि^{२४} जुग मुआ^{२५}, जूड़ै^{२६} पानीं न्हाइ ।
 रांस तांस जाने बिनां^{२७}, काल गरासा जाइ^{२८} ॥१६॥

[१०] सा० ६१-२६, सावे० ४७-२, सासी० ६-६७, गु० ४२—

१. सा० सावे० सासी० साधुन की कुतिया भली । २. गु० ओह नि सुनै हरि नाम जसु ।
 ३. सा० सावे० सासी० वह निंदा करने जाइ ।

[११] सा० ४७-२, सावे० १९-१५ तथा ५४-९, सासी० ६२-५, गु० १७३, बी० ७६—

१. बी० कोठी तो है काठ की, सा० सावे० सासी० यह जग कोठी काठ की । २. बी० ढिंग ढिंग,
 सा० सावे० सासी० चहुं दिसि । ३. बी० दीन्हैं । ४. बी० पंडित जरि भोली मए, सा०
 सासी० भीतर रहे सो जलि मुए । ५. बी० साकत, सा० सावे० सासी० साधू तुल० सासी०
 २७-५७ : कबीर कोठी काठ की, चहुं दिसि लागी लार । मांहीं पहुँ सो ऊबरे, दामैं देखनहार ।

[१२] दा३ १७-१२, सा० ९६-११, सासी० ५-३६, गु० २४३—

१. दा० साखत, सा० सासी० साकत । २. गु० अच्छा । ३. दा० बूढ़ी साखत बापरा, बैसि
 भभरणी नांव, सा० सासी० बूढ़ी साकत बापुरा, बाइस भभरमी नांव ।

[१३] गु० १४२, स० ८७-५—

१. स० कुल की डगर जुहारता ।

[१४] दा३ ४१-५, नि० ५६-५, सा० ९७-१०, सावे० ६६-६, सासी० ७०-७, बी० १८०—

१. बी० मैं रोवौं एहि जगत को । २. सा० सावे० रोय न हमको कोय, सासी० नि० मुकै न रोवै
 कोइ । ३. दा३ नि० सासी० मुझको, सा० सावे० हमको तो । ४. सा० सावे० सो रोइहैं, दा३
 नि० सोइ रोइसो (राज० मूल) । ५. सा० सावे० सबद सनेही, दा३ नि० रांस सनेही, सासी०
 नाम सनेही ।

[१५] दा० २२-१०, नि० २३-१७, सा० ३०-१०१, सावे० १९-१२७, बी० १५१—

१. बी० सावे० साहू । २. सावे० से भा चोरवा । ३. बी० चोरन सेती सूख (तुकहीन), सा० चोरां
 सेती जुझ (हिंदी मूल), सावे० चोरन से भयो जुझ (हिन्दी मूल) । ४. दा० नि० जानैगा
 रे जीयरा । ५. बी० तूझ ।

[१६] दा० १०-१, नि० २४-१३, सा० ५४-३, सावे० ७२-३, सासी० ४६-२६, बी० २१५—

१. सा० सावे० सासी० तीरथ व्रत करि । २. बी० तीरथ गए ते वहि मुए । ३. दा३ हुँवै, दा३
 नि० ऊँहै (उटूँ मूल), दा३ बूड़ै (उटूँ मूल) । ४. सावे० सासी० सत्तनाम जाने बिना, दा०
 रांमहि रांम जपतड़ा (राज०), नि० करता पुरस न घ्यावहो, बी० कहहि कबीर संतो सुनो ।
 ६. दा० काल घसंठ्या जाइ बी० घसंठ्या है पकिताय

स्वामीं हूवा सेंट का^१, पैकाकार पचास ।
 राम नाम काठें रहा^२, करै सिखां की आस ॥१७॥
 कलि का स्वामीं लोभिया, पीतल धरी खटाइ^३ ।
 राजदुवारे यों फिरै, ज्यों हरहाई^२ गाइ^२ ॥१८॥
 कलि का स्वामीं लोभिया, मनसा धरी^१ बंधाइ^२ ।
 देइ पईसा व्याज कौं,^३ लेखा करता जाइ^४ ॥१९॥
 कलि का बांम्हन ससखरा, ताहि न दीजै दांन ।
 सौं कुटुंब^१ नरकै चला, साथि लिएं जजमान ॥२०॥
 बांम्हन बूड़ा बापुरा^१, जनेऊ करै जोरि ।
 लख चौरासी मांगि लई, पारब्रह्म सौं तोरि^२ ॥२१॥
 कबीर पूंजी साहु की, तू जनि खोवै ख्वार^१ ।
 खरी बिगुरचनि^२ होइगी, लेखा देती बार ॥२२॥
 काइय कागद^१ काड़िया, लेखा वार न पारि ।
 जब लग सांस सरीर में, तब लग नांव संभारि ॥२३॥
 इहीं उदर^१ कै कारनै, जग जांचा निसि जांम ।
 स्वामीपनां जु सिरि चढ़ा, सरा न एको काम ॥२४॥

- [१७] दा० १७-४, नि० २०-३, सा० २-२३, सावे० २-१६, सासी० ३४-१४ तथा ३-४६, स० ८६-९-
 १. दा० नि० स्वामीं हूवा सीत का (उर्दू मूल), सा० सावे० सासी० (३-४६) गुरवा ती सस्ता
 भया । २. सा० सावे० सासी० पैसा करे । ३. सा० सावे० सासी० राम नाम घन बेचि करि ।
- [१८] दा० १७-१६, नि० २०-५, सा० ४०-६, सावे० ८४-५८, सासी० ३४-७, स० ८६-१३-
 १. नि० खटाइ (उर्दू मूल) । २. सा० सावे० सासी० हरियाई (उर्दू मूल) ।
- [१९] दा० १७-७, नि० २०-४३, सा० ४०-५, सावे० ८४-५७, सासी० ३४-६, स० ८६-१२-
 १. सा० सावे० सासी० रहै । २. नि० अघाइ । ३. सावे० रुपया देवै व्याज पर, सा० सासी०
 देवै पैसा व्याज को । ४. सा० सावे० सासी० लेख करत दिन जाइ ।
- [२०] दा० १७-७, नि० २०-२५, सा० ४०-४५, सावे० ८३-२३, सासी० ५८-१८ स० ८६-१६,—
 १. सा० सावे० सासी० कुटुंब सहित ।
- [२१] दा० २३-२५, नि० २०-२६, सा० ४०-३५, सावे० ८३-२२, सासी० ५८-१४, स० ८६-१७
 तथा ८५-१५ (दो बार)—
 १. दा० नि० बांम्हन बूड़ा बापुरा । २. सावे० सासी० सतगुरु सेती तोर ।
- [२२] दा० २२-१, नि० २३-५, सा० ३०-१७, सावे० १७-२१, सासी० १७-३५ तथा ८१-१६—
 १. सा० सासी० करै ख्वार । २. दा० नि० बिगुरचनि । सासी० ८१-१६ का पाठ है : कबीर पूंजी
 साहु की, तू मति खोवै ख्वार । खरी बिगुरचनि होइगी, लेखा देती बार ।
- [२३] दा० २२-४, नि० २३-९, सा० ३०-१०, सावे० १९-१७५, सासी० १७-३०—
 १. सासी० कागज ।
- [२४] दा० १७-२, नि० २०-१, सा० ४०-२, सावे० ८४-५५, सासी० ३४-५—
 १. सासी० इसी उदर, दा० इही उदर, दा० इहि उदर, सावे० याहि उदर ।

कबीर तस्टा टोकनी^१, लीया फिरै^२ सुभाइ^३ ।
 रांम नांम^४ चीन्है^५ नहीं, पीतल हो कै चाइ^६ ॥२५॥
 कबीर कलियुग आइया^१, सुनियर मिलै न कोइ^२ ।
 कामी^३ क्रोधी मसखरा, तिनका आदर होइ ॥२६॥
 देखन कौं सब कोइ भले, जैसे^१ सीत के कोट ।
 रवि के उदै न दोसही^२, बंधै न जल की पोठ^३ ॥२७॥
 कबीर या संसार कौं, समझायौ सौ बार ।
 पूछ जु पकड़ै भेड़ की, उतरा चाहै पार ॥२८॥
 कबीर मन फूला फिरै^१, करता हूँ ज धरंम^२ ।
 कोटि करम सिर परि चढ़ै^३, चेति न देखै भरंम^४ ॥२९॥
 कबीर लज्जा लोक की, बोलै^१ नाहीं सांच ।
 जानि बूझि कंचन तजै, क्यों तू^२ पकरै कांच ॥३०॥
 कबीर जिन जिन जानिया^१, करता केवल सार ।
 सो प्राणी काहे चलै, भूठे कुल की लार ॥३१॥
 मोर तोर की जेवरी, गलि^१ बंधा संसार ।
 कांसि कुडुवा सुत कलित, दाभनि बारंवार^२ ॥३२॥

[२५] दा० १७-५, नि० २०-४, सा० ४०-४, सावे० ८४-५६, सासी० ३४-१—

१. सा० सासी० कबीर तूष्णा टोकना, सावे० परतिष्ठा का टोकरा । २. सा० सावे० सासी० होलै । ३. सा० सावे० सासी० सवाद । ४. सावे० सत्तनाम । ५. सा० सावे० सासी० जानै । ६. सा० सावे० सासी० जनम गंवायो वादि । ७. तुल० सासी० ३४-२१ : कबीर बंटा टोकनी, लीया फिरै सुभाय । राम नाम चीन्है नहीं, पीतल ही के चाइ । यह पाठ दा० से मिलता है ।

[२६] दा० १७-५, नि० २०-७, सा० ४०-५, सावे० ८४-६०, सासी० ३४-२—

१. दा० कबीर कलि खोर्टा भई, सा० सावे० सासी० कबीर कलियुग कठिन है । २. सा० सावे० सासी० साधु न मानै कोय । ३. दा० नि० लालच ।

[२७] दा० १७-१७, नि० २०-११, सा० ४०-११, सावे० ८४-६२, सासी० ३४-११—

१. दा० नि० जिसे । २. सावे० देखत ही मिटि (सावे० ढहि) जाइगा । ३. सावे० बांधि सकै नहि पोठ ।

[२८] दा० १७-२०, नि० २०-१२, सा० ४०-४९, सावे० ८४-१७, सासी० ४६-२४—

[२९] दा० १७-२१, नि० २०-३०, सा० ३१-२४ तथा ५४-९ (दो बार), सावे० ८२-८, सासी० २९-३५ तथा ४६-३२ (दो बार) —

१. सावे० मन में तो फूला फिरै, सा० सासी० मनवा तो फूला फिरै । २. सा० सासी० कहै जो करुं धरम । ३. दा० सिरि लै चल्थो । ४. सा० सावे० सासी० भरम (हिंदी मूल) ।

[३०] दा० २२-१५, नि० २३-२४, सा० ५२-११, सावे० ६७-१५, सासी० ८१-१३—

१. दा० नि० सुमिरै । २. दा० नि० काठौं ।

[३१] दा० २२-१६, नि० २३-२५, सा० ५२-१२, सावे० ६७-१४, सासी० ८१-१२—

१. नि० कबीर जिन हरि जाणियां, सा० सावे० सासी० जिन नर सांच पिछानिया ।

[३२] दा० १७-२२, नि० १६-३२, सा० ३०-३१, सावे० १९-५६, सासी० १०-१०७—

१. दा० नि० बलि (G. D. S. P. U. B. L. Collection, Haridwar) २. दा० कांसि कुडुवा (दा० ३२)

पंडित^१ सेती कहि रहा^२, भीतरि भेदा नांहि ।
 औरां कौ परमोधतां, गया मुहरका मांहि^३ ॥३३॥
 कबीर पढ़िवा^४ दूरि करि, आथि^५ पढ़ा संसार ।
 पीर न उपजै जीव मै^६, तौ क्यूं पावै करतार^७ ॥३४॥

(२२) निगुणां नर कौ अंग

जालौं इहै बड़ापनां^१, ज्युं सरलै पेड़ खजूरि^२ ।
 पंथी छांह न बीसवै^३, फल न लागै^४ ते दूरि ॥१॥
 कबीर मूढ़^५ करमियां^६, नख सिख पाखर आहि^७ ।
 बाहनहारा क्या करै, बांन न लागै ताहि^८ ॥२॥
 मूरख कौं सिखलावते^९, ग्यांन गांठि का जाइ ।
 कोयला होइ न ऊजरा, सौ मन सावुन लाइ ॥३॥
 तकत तकावत रहि गया, सका न बेम्हा^{१०} मारि ।
 सबै तीर खाली परे, चला कमानांहि डारि ॥४॥

कहा स कुंशबा) सुत कलित दाम्भनि बारंवार, नि० कहसि कड़ीबा सुत कलित, दाम्भनि बारंवार
 सा० काय कुटुंब सुत सकल है, दाम्भनि बारंवार, साबे० सासी० दास कबीरा कथी बंधे, जाके
 नाम अघार (पुन० तुल० प्रस्तुत पुस्तक की साखी १९-२ : वैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल
 संसार । एक कबीरा नां मुवा, जाके रांम अघार ॥)

[३३] दा० १७-१३, नि० २०-२८, सा० १४-४, सासी० ४६-४८, स० ८६-८८, गुण० १४८-१०—
 १. दा२ स० व्यासां । २. दा३ कबीर मिसर कथा करै, नि० कबीर व्यास कथा कहै ।
 ३. नि० फिरि परमोधे और कूं, आपण समझै नांहि (तुल० दा० १७-१४-२) । सासी० में इस
 साखी की पुनरावृत्ति तुल० सासी० ३४-२२ : कबीर व्यास कथा कहै, भीतर भेदे नांहि । औरी कूं
 परमोधतां, गए मुहरका मांहि ।

[३४] दा० १९-३, नि० २४-१९, सा० ४०-३६, सासी० ४८-९, स० ८६-३—
 १. सा० सासी० पढ़ना । २. दा२ आखिर, सा० सासी० अति । ३. दा० प्रीति सू । ४. सासी०
 तौ क्यूं करि करै पुकार ।

[१] दा० ४४-१०, नि० ६०-८, सा० ३८-१२, साबे० ४७-१०, सासी० ६७-१६, स० ८६-१८, बी० ३७—
 १. बी० सुरहुर पेड़ अगाध फल, सा० साबे० सासी० बड़ा हुआ तो क्या हुआ । २. नि०
 लांवे पेड़ खजूर, सा० साबे० सासी० जैसे पेड़ खजूर, बी० पंछी मरिया मूर (तुल० ऊपर
 पंक्ति २-१) । ३. दा० नि० स० पंथी (हिन्दी मूल) छांह न बीसवै (स० बसवै), सा० साबे०
 सासी० पंथी को छाया नहीं, बी० बहुत जतन के खोजिया । ४. बी० मीठा । सासी० में इस
 साखी की पुनः तुल० सासी० ६७-२६ : ऊंचा देखि न राचिप, ऊंचा पेड़ खजूर । पंखि न बैठे
 छांयडे, फल लागा पै दूर ॥

[२] दा० ४४-४, नि० ६०-४, सा० १०४-७, साबे० १६-२७, स० ८९-१, बी० १६३—
 १. दा१ मूढ़ठ (राज० मूल) । २. बी० मूढ़ करमिया मानवा, सा० साबे० कबीर मूढ़क
 मानिया । ३. दा० नि० स० ज्यांहि (राज० मूल) । ४. दा० नि० स० त्यांहि (राज० मूल) ।

[३] सा० ४६-६, साबे० १७-६ तथा ७०-९ (दो बार), सासी० ९-४३, बी० १६१—
 १. सा० साबे० सासी० समुझावते ।

[४] बी० ३-३, सा० ७४-७ साबे० २३-७, सासी० ४६-४४—
 १. बी० तकि रही । २. सा० साबे० सासी० तकि रही । ३. बी० तकि रही ।

कबीर सौ मन दूध का^१, टिपके किया बिनास ।
 दूध फाटि कांजी भया^२, हूवा^३ घृत का नास ॥५॥
 सुनत सुनावत दिन गए, उरभि न सुरभा मन ।
 कह कबीर चेतै^२ नहीं, अजहूं पहिला दिन ॥६॥
 पसुवा सौ पांनों^१ परी^२, रहु रे^३ हिया म^४ खीजि ।
 ऊसर बोयो न नीजै^५, डारौ^६ केतक^७ बीजि ॥७॥^८
 कबीर चंदन कै बिड़ै^१, नीब भी चंदन होइ ।
 बूड़ा बांस बड़ाइयां^२, यौं जनि^३ बूड़ै कोइ ॥८॥
 भिरमिर भिरमिर बरखिया, पाहन ऊपरि मेह ।
 माटी गलि सैजल^१ भई, पाहन वोही तेह^२ ॥९॥
 पारब्रह्म बड़^१ मोतियां, झड़ि^२ बांधी सिखरांहं^३ ।
 सगुरा सगुरा^४ चुनि लिए, चूक परी निगुरांहं^५ ॥१०॥
 कबीर हरि रस बरखिया, गिरि डूंगर^१ सिखरांहं^२ ।
 नीर निवानै^३ ठाहरै, नां कछु^४ छपरडंहं^५ ॥११॥

[५] नि० २८-१०, सा० ५८-५, बी० १९०-

१. बी० नी मन दूध घटोरि के। २. नि० हुआ। ३. नि० भया।

[६] दा० ५५-६, नि० १७-४२, सा० ३१-३७, सावे० ७१-७०, सासी० २९-२२ तथा ३४-२४, स० ८९-८, गुण० १७१-२-

१. दा० गुण० कह सुनत सब दिन गए। २. नि० समझै। सासी० ३४-२४ का पाठ है : कबीर सुनावत दिन गए, उलझिन सुलभा मन। कहै कबीर चेतानहीं, अजहूं पहला दिन ॥

[७] दा३ ५३-७, नि० ६०-७, सा० १०४-२, सावे० १६-२८, सासी० ५-१८, स० ८९-४-

१. सावे० पाला। २. नि० कुसंगां सेती संग किया। ३. दा० सा० सावे० सासी० रहु रहु। ४. सा० सावे० सासी० न। ५. सा० दा०३ कालरि बहौ न नीपजै, सावे० सासी० ऊसर बीज न उगसी। ६. सावे० बालै, सासी० बोवै। ७. नि० तेता, सा० सावे० सासी० दूना, दा३ उमड़ी। ८. नि० तथा सावे० में यह साखी अन्य स्थलों पर भी मिलता है; तुल० नि० २६-१० : कुसंगां सेती संग किया, रहौ रही हिया न खीजि। ऊसर बाह न नीपजै, भावै दू नै बीजि ॥ तथा सावे० ७०-१२ : पसुवा सो पाला परयो, रहु, रहु हीया में खीझ। ऊसर परा न नीपजै, डारी केतक बीज ॥ इससे नि० तथा सावे० में संकीर्ण-संबंध सिद्ध होता है।

[८] दा० ५५-१२, नि० ६०-१०, सा० ५७-२०, सावे० १६-३१, सासी० ५-२०, तथा ९-३६ स० ८६-२०-

१. दा३ निड़ै, सावे० निकट, सा० सासी० भिरै। २. नि० बड़ाइती। ३. नि० मति।

[९] दा० ५५-२, नि० ६०-२, सा० १०४-३, सासी० ५-१५, स० ८९-२, गुण० ९०-८-

१. सा० सासी० पानी। २. सा० सासी० नेह (हिन्दी मूल)।

[१०] दा० ५५-३, नि० ६०-३, सा० १०४-५, सासी० ५-२६, सा० ८९-६, गुण० ९०-९-

१. दा० नि० स० गुण० बूठा। २. दा० नि० स० गुण० बड़ि (= गढ़कर; यहाँ अप्रासंगिक)।

३. सासी० सिखर। ४. सा० सासी० सुगरां (उर्दू मूल)। ५. सासी० निगुर।

[११] दा० ५५-४, नि० ६०-४, सा० १०४-३, सासी० ५-१७, स० ३४-१ ८९-४, गुण० ९०-१०-

१. नि० सा० सासी० परबत। २. सा० सासी० सिखराय। ३. दा३ नि० निवाड़ा (हिन्दी मूल), सा० सासी० निवानू। ४. दा३ नि० नां ऊं, सा० सासी० ना वह। ५. सा० सासी० छपरडाय।

संगति भई तौ क्या भया^१, जो हिरदा^२ भया कठोर^३ ।
 नौ नेजा पांनों चढ़ै, तऊ^४ न भीजै कोर ॥१२॥
 ऊंचा कुल कै कारनै, वांस^५ बड़ा असरार^६ ।
 चंदन बास भेदै नहीं, जारा सब परिवार ॥१३॥
 जानै^७ हरिअर रूखड़ा, उस^८ पांनों का नेह ।
 सूखा^९ काठ न जानई, कबहुं बूठा^{१०} मेह ॥१४॥
 कबीर हृदय कठोर कै^१, सब न लागै सार ।
 सुधि बुधि के हिरदै भिदै, उपज बिबेक बिचार ॥१५॥
 स्पैतलता के कारनै, नाग बिलंबे आई^१ ।
 रोम रोम बिख भरि रहा^२, अंचित कहां समाइ ॥१६॥

(२३) निंदा कौ अंग

लोग बिचारा निंदई, जिनहुं न पाया ग्यान^१ ।
 राम अमलि माता रहै^२, तिनहुं न भावै आन ॥१॥
 दोख पराए देखि करि, चला हसंत हसंत ।
 अपनै चोति^१ न आवई, जिनकी^२ आदि न अंत ॥२॥

[१२] दा० ५४-१२, नि० ६०-६, सा० १०४-१ सावे० १६-२५, सासी० ३-३५, गुण० १०२-२—
 १. गुण० साध संगति का कौन गुण, दा० कबीर संगति क्या करे । २. नि० गुण० मन । ३. दा०
 वज्र कठोर । ४. सासी० पथर । ५. सासी० भीजी ।

[१३] दा० ५४-११, नि० ६०-९, सा० १०४-११, सासी० ५-१९, स० ८५-२—
 १. दा० बंस । २. दा० स० अधिकार, सा० सासी० हंकार । ३. दा२ नि० राम नाम जांययां
 नहीं, सासी० राम भजन हिरदै नहीं ।

[१४] दा० ५४-१, नि० ६०-१, सा० १०४-३, सावे० १६-२६, सासी० ५-१६—
 १. नि० दाँसे । २. सावे० जो । ३. दा० नि० सूका । ४. सा० सावे० सासी० बूड़ा ।

[१५] दा० ५४-७, सा० १०४-२, सासी० ५-१४, गुण० १०२-३१—
 १. दा० गुण० कहे कबीर कठोर कै । २. सा० सासी० बिधै । ३. सा० सासी० उपजे ज्ञान
 बिचार ।

[१६] दा० ५४-८ (दा२ में नहीं मिलता), सा० ५५-२३, सासी० ९-८, गुण० १०२-१०—
 १. सा० सासी० मलयागिरि के पेड़ सों, सरप रहे लपटाय । २. सा० सासी० मीनिया ।

[१] दा० ५४-१, नि० ५४-१, सा० ९४-१, सासी० ५९-२१, स० ९०-३, गु० ४६—
 १. गु० लोगु कि निंदे बापुड़ा जिहि मनि नांही गिआनु । २. दा१, दा२ राम नांव राता रहे,
 नि० सा० राम नाम जानै नहीं, सासी० सत्तनाम जानै नहीं (कबीरपंथी प्रभाव), गु० राम कबीरा
 रवि रहे । ३. नि० सा० गु० सेवै आनहि आन, सासी० बकै आन ही आन ।

[२] दा० ५४-२, नि० ५४-२, सा० ९४-३, सावे० ७४-८, सासी० ५९-१०, स० ९०-७—
 १. नि० जिजि In Public Domain. Digitized by eGangotri Collection, Haridwar

कबीर घास न निदिए^१, जो पावां तलि होइ^२ ।
 ऊड़ि पड़े जब आंखि में^३, तौ खरा दुहेला होइ^४ ॥३॥
 निदक नेरै राखिए, आंगनि कुटी बंधाइ^५ ।
 बिन साबुन पांनों बिनां, निरमल करै सुभाइ ॥४॥
 निदक दूरि न कोजिए, दीजै^६ आदर मान ।
 निरमल तन मन सब करै, बकै आन ही आन ॥५॥
 जो कोई निंदै साधु कौं, संकटि आवै सोइ ।
 नरक मांहि^७ जामैं^८ मरै, मुकुति न कबहूँ होइ ॥६॥
 आपनपौ न सराहिए, पर निदिए न कोइ ।
 अजहूँ लंबे घौहड़े^९, नां जानौं क्या होइ ॥७॥
 आपनपौ न सराहिए, और न कहिए रंक ।
 नां जानौं किस बिरिख^{१०} तलि, कूड़ा होइ करंक ॥८॥

(२४) संगति कौ अंग

निरमल^१ बूंद अकास को, परि गई भोमि^२ बिकार ।
 मूल बिनंठा मानई^३, बिनु संगति मठछार^४ ॥१॥
 सारी मरौं कुसंग की, केरा काठें बेरि^५ ।
 वा^६ हालै^७ वा^८ चीरिअ^९, साकत^{१०} संग निबेरि^{११} ॥२॥

[३] दा० ५४-६, नि० ५४-३, सा० ९४-४, सावे० ७५-३, सासी० ५९-११, गुण० ९५-२२—

१. सा० सावे० सासी० तिनका कबहूँ न निदिए । २. सा० सासी० पांव तले जो होय ।

३. सा० सावे० सासी० कबहूँ उड़ि आंखीं पड़े । ४. सा० सावे० सासी० पीर घनेरी होइ ।

[४] दा० ५४-३, सा० ९४-६, सावे० ७५-१, सासी० ५९-५, गुण० ९५-७—

१. सा० सावे० सासी० कुवाइ ।

[५] दा० ५४-४, सा० ९४-७, सावे० ७५-२, सासी० ५९-६, गुण० ९५-८—

१. सा० सासी० कोजिए । २. दा० गुण० बकि बकि ।

[६] दा० ५४-५, सा० ९४-१०, सावे० ७५-५, सासी० ५९-१४, गुण० ९५-२१—

१. सा० सावे० सासी० जाय । २. सावे० सासी० जनमै ।

[७] दा० ५४-७, नि० ५५-४, सा० ९५-५, सासी० ५९-१९, स० ९०-३—

१. सा० अजहूँ लंबा बौहरा, सासी० चढ़ना लंबा बौहरा ।

[८] दा० ५४-७, नि० ५५-५, सा० ९५-६, सासी० ५९-२०, स० ९०-४—

१. सा० सासी० क्या । २. दा० नि० सा० सासी० रुख ।

[९] दा० २५-१, नि० २६-३, सा० ५६-३, सावे० १७-११, सासी० ९४-७, गु० १९५, गुण० १६५-११—

१. सा० सावे० सासी० ऊजल । २. सावे० सासी० गु० भूमि । ३. सा० मूल बिनटया मानई,

सावे० मूल बिना ठामा नहीं, सासी० माटी मिलि भई कीच सौं, गु० बिनु संगति हउ मानई ।

४. सावे० सासी० बिनु संगति भौछार, गु० होई गंदे मठछार ।

[१०] दा० २५-४, नि० २६-५, सा० ५६-८, सावे० १७-१४, गु० ८८, बी० २४२—

१. बी० सा० सावे० मरै । २. बी० केरा साथे बेरि, गु० कैले निकटि (समानार्थीकरण) जु बेरि,

सा० सावे० ज्यू केला डिग बेरि । ३. गु० उह, सा० वह, बी० वै । ४. गु० भूले । ५. बी०

चीरै, नि० चीरै सा० सावे० चीरई । ६. बी० बिधिने, नि० कुसंगति । ७. गु० संगु

न हेरि (उर्दू मूल ० नि० संगति) ८. दा० मूल Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कबीर मनु^१ पंखी भया, उड़ि उड़ि दह दिसि जाइ^२ ।

जो जैसी संगति करै^३, सो तैसा फल खाइ^४ ॥३॥

एक घरी आधी घरी, आधी हूं तैं^१ आध^२ ।

कबीर संगति साधु की, कटै कोटि अपराध^३ ॥४॥

कबीर तासों^१ प्रीति करि^२, जाकौ ठाकुर राम^३ ।

राजा रांनां छत्रपति^४, आवाह कौनै काम^५ ॥५॥

साधु की संगति रहौ^१, जौ की भूसी खाउ^२ ।

खीर खांड भोजन मिलै^३, साकत^४ संगि न जाउ^५ ॥६॥

काजर केरी ओबरी^१, औसा^२ यहु संसार ।

बलिहारी ता दास की^३, पैसि कै निकसनहार ॥७॥

काजर केरी^१ ओबरी^२, काजर ही का कोट ।

बलिहारी वा दास की, रहै राम की ओट^३ ॥८॥

[३] दा० २६-७, सा० ५७-३५, सावे० १६-२०, सासी० १-२०, गु० ८६, गुण० ११५-५—

१. दा० गुण० तन (उर्दू मूल) । २. दा० गुण० जहां मन तहां उड़ि जाइ, सा० मन मानै तहं जाइ, सावे० सासी० भावै तहवां जाइ । ३. गु० मिलै । ४. सासी० पाय (हिन्दी मूल) । ५. सासी० में इस साखी की पुनरावृत्ति, तुल० सासी० २९-१०४ : मनुवा तो पंखी भया, जहां तहां उड़ि जाय । जहं जैसी संगति करै, तहं तैसा फल खाय ॥

[४] नि० २७-१२, सा० ५७-३, सावे० १६-२३, सासी० १-२, गु० २३२, गुण० ७०-१—

१. सावे० से, सासी० सों । २. नि० भी आधी का आध । ३. गु० भगवन सेती गोसटे जो कं ने सो लाभ, नि० साधां सेती प्रीतड़ी, जो कीने सो लाभ, गुण० साधौ सेती गोठड़ी, को सुकित का फल लद्ध । ४. यह साखी तुलसी के नाम से भी प्रचलित है (यद्यपि किसी प्रामाणिक रचना में बूढ़ने से नहीं मिलती) । लोक-प्रचलित दोहे में दूसरी पंक्ति का पाठ इस प्रकार हो जाता है : तुलसी संगति साधु की, कटै कोटि अपराध । यह दोहा प्रायः मानस-कथा के अनंतर विसर्जन के समय गाया जाता है ।

[५] नि० २७-१९, सा० ५७-३२, सावे० १६-१९, सासी० १-१८, गु० २४—

१. गु० तासिउ । २. सा० सावे० सासी० संग कर । ३. नि० सा० सावे० सासी० जो रे मजे हैं राम । ४. गु० पंडित राजे भूपती (पुन०) । ५. नि० सा० सावे० सासी० नाम (नि० राम) बिनां बेकाम ।

[६] सा० ५७-५, सावे० १६-४, सासी० १-३, गु० ९९—

१. सा० सावे० सासी० कबीर संगति साधु की । २. सा० सावे० सासी० खाय । ३. गु० होनहार सो होईहे । ४. सा० सावे० सासी० साकट । ५. सा० सावे० सासी० जाय ।

[७] दा० २६-८, नि० ३१-१, सा० ६०-१, सावे० ७-१९, सासी० ११-८, बी० २२६—

१. बी० सा० कोठरी (किन्तु बी० २२७ में 'ओबरी' का ही प्रयोग हुआ है) । २. बी० बूझत । ३. बी० पुरुष की । ४. दा० नि० पैसि र । तुल० गु० २६ : जगु काजल की कोठरी अंच परे तिस माहि । हउ बलिहारी तिन्ह कउ पैसि जु नीकसि जाहि ॥

[८] सा० ६०-२, सावे० ७-२०, सासी० ११-९, बी० २२७—

१. बी० ही की (बीम० की) । २. बी० कोठरी (बीम० ओबरी) । ३. बी० तौदी कारी ना, मई, रहा सो ओटहि ओट ।

जौ तोहि साध पिरेम की^१, तौ पाका सेती^२ खेलि ।
 कांची^३ सरसों पेलि कै^४, नां खलि भई न तेल^५ ॥६॥
 संगति कीजै साधु की^१, हरै और की व्याधि ।
 ओछी संगति कूर की^२, आठों पहर उपाधि ॥१०॥
 मूरिख संग न कीजिए^१, लोहा जल न तिराइ ।
 कदली सोप भुवंग^२ मुख, एक बूंद तिहुं भाइ^३ ॥११॥
 देखादेखी पकड़िया^१, जाइ अपरचै छूटि^२ ।
 बिरला कोई ठाहरै^३, सतगुर साम्हीं मूठि ॥१२॥
 यह मन दोजे तासुको^१, जो सुठि सेवग होइ^२ ।
 सिर ऊपरि आरा^३ सहै^४, तऊ न दूजा होइ ॥१३॥
 कबीर तासों प्रीति करि, जो निरबाहै ओरि^१ ।
 बनित^२ बिबिधि न राचिए^३, देखत लागै खोरि ॥१४॥
 हरिजन सेती रूसना^१, संसारी सौं हेत ।
 ते नर कदे^२ न नीपजै, ज्यों कालर का खेत ॥१५॥
 देखादेखी भगति का^१, कदे न चढ़ई रंग ।
 बिपति पड़े यों छांडिहै, ज्यों केंचुली भुवंग^२ ॥१६॥

[१] सा० ५६-१५, सावे० १७-३, सासी० ९-५०, गु० २४०, बी० २८०, गुण० ५९-१७—

१. सा० सावे० सासी० तोहि पीर जो प्रेम की, बी० साधू होना चाहिए । २. बी० पाका होय के ।

३. बी० कच्चा । ४. गुण० पीलतां । ५. सा० सासी० खरी भया नहि तेल ।

[१०] बी० २०७, सा० ५७-४, सावे० १६-३, गुण० १६६-१३—

१. सा० सावे० कबिरा संगति साधु की, गुण० संगति भली जु साधु की । २. सा० सावे० संगति छुरी कुसाधु की (सावे० असाधु की), गुण० नीचे कै संगि वैसतां ।

[११] दा० २५-२, नि० २६-२, सा० ५६-२, सावे० १७-१०, सासी० ९-३६, गुण० १६६-१४—

१. नि० कुसंगति नां कीजिए । २. सावे० सासी० भुजंग । ३. सा० सासी० तिरभाय, सावे० त्रिप्ताय ।

[१२] दा० २६-१, नि० ३०-६, सा० ६२-३, सावे० १२-१९, सासी० १२-४४, गुण० १६५-४—

१. सावे० पकड़सी (राज०) । २. सा० सावे० सासी० गई छिनक मैं छूटि । ३. सा० सावे० सासी० कोई बिरला जन बाहरै । ४. सावे० सतगुर स्वामी मूठ, सा० सासी० जाकी गहरी मूठि ।

[१३] दा० २६-४, नि० ३०-३, सा० ६२-५, सावे० ७-१६, सासी० १०-२२, गुण० १६५-२—

१. सा० सावे० सासी० यह मन ताको दीजिए । २. दा० गुण० सुठि सेवग भल सोइ, नि० जो सुय सेवग होइ । ३. नि० वीरा । ४. सा० सावे० सासी० सांचा सेवक होइ । ५. दा३ नि० कदे ।

[१४] दा० २६-६, नि० ३०-५, सा० ८३-४, सावे० १५-६२, सासी० १५-३८, गुण० १६५-३—

१. दा० नि० ओढ़ि । २. सा० सावे० सासी० बनै तो ।

[१५] दा० २५-३, नि० २६-४, सा० ५६-४, सावे० १७-१२, सासी० ९-४१—

१. सा० सासी० रूठना । २. सासी० कबहुं, सावे० कधी (राज०) ।

[१६] दा० २६-२, नि० ८६-१३, सा० ६२-१, सावे० १२-१७ तथा ५०-११, सासी० १२-४३—

१. दा० भगति है । २. सा० सासी० केंचुलि तजत भुजंग ।

करिए तौ करि जानिए, सारीखा सौं संग ।
लीर लीर लोई भई^२, तऊ न छाड़ै रंग ॥१७॥
कबीर कहते^१ क्यों बनें, अनमिलता^२ कौं संग ।
दीपक कौं भावै नहीं, जरि जरि मरै पतंग ॥१८॥

(२५) भेख आडंबर कौ अंग

सांई सेती सांच चलि^१, औरां सौं सुध भाइ^२ ।
भावै लांबे केस करि^३, भावै घुरड़ि मुड़ाइ ॥१॥
साधु^४ भया तौ क्या भया, माला मेली चारि^५ ।
बाहरि ढोला हौंगला^६, भीतर भरी भंगारि ॥२॥
मन मैवासी मूड़ि ले^१, केसों मूड़े कांड^२ ।
जो किछु किया सु मन किया, केसों कोया नांहि^३ ॥३॥
केसों^४ कहा बिगारिया, जे मूड़े सौ बार^५ ।
मन कौं काहे न मूड़िए, जामैं बिखै^६ बिकार ॥४॥

[१७] दा० २६-३, नि० ३९-२, सा० ६२-६, सासी० ७-४४ तथा ९-२५, स० ५४-१, गुण० १६५-१—
१. सा० सासी० सरिखा सेती । २. सा० सासी० फिर फिर जिमि लोई भई । सासी० ९-५५ का
पाठ है : संगति ऐसी कीजिए, सरसा नर सों संग । लर लर लोई होत है, तऊ न छाड़ै रंग ॥

[१८] नि० २६-६, सा० ५६-१०, सावे० १७-१६, सासी० ९०-३९, गुण० १६६-१५—

१. नि० गुण० कहिनै (उर्दू मूल) । २. सा० सावे० सासी० अनबनता ।

[१] दा० २४-११, नि० २३-४, सा० ५२-२, सावे० ६७-२, सासी० ८१-१०, स० ९६-२, गु० २५,
गुण० १२६-१३—

१. सा० सावे० सासी० साईं सों सांचा रहो, गु० सबीर प्राति इक सिउ कीए । २. नि० सा० सावे०
सासी० सांई सांच सुहाइ, गु० आन दुविधा जाइ । ३. सा० सावे० सासी० रखु । ४. गु० घररि
सा० सावे० सासी० घाँट ।

[२] दा० २४-७, नि० २५-५, सा० ५५-१५, सावे० १७-९, सासी० ७-३१, स० ९४-१९, गु० १४५—
१. गु० वैसनौ । २. दा० नि० सा० सासी० स० माला फेरे (दा० सा० पहरयां) कछु नहीं, कल्या
(सासी० डारि) मुवा गल भारि । ३. गु० बाहरि कंचनु बारहा, सावे० ऊपर कला लपेटि के ।
४. सा० सावे० सासी० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है, तुल० सावे० ५०-५ तथा सासी० ७-१५ :
साधु भया तौ क्या हुआ, माला पहरी चारि । बाहर भेख बनाइया, भीतर भरी भंगारि ॥ और
सा० ८१-११ : वैष्णव भया तौ क्या भया, नाला पहरी चारि । ऊपर कली लपेटि के, भीतर
भरी भंगारि ॥ सा० का यह पाठ सावे० से मिलता है ।

[३] दा० २४-१३, नि० २५-१२, सा० ५५-२६, सावे० ५०-१०, सासी० ७-२२, गु० १०१—
१. गु० कबीर मन मूड़िया नहीं । २. गु० केउ मुड़ाए कांइ । ३. सा० सावे० सासी० केस किया
कछु नाहि, गु० मूड़ा मुंडु अजांइ ।

[४] दा० २४-१२, नि० ३०-११, सा० ५५-२५, सावे० ५०-९, सासी० ७-२१, स० ९४-९,
गुण० १२६-१५—

१. नि० केसां, सा० सावे० सासी० केस न । २. सावे० जो मूड़ी सौ बार, सा० सासी० मूड़ा सौ
सौ बार । ३. नि० मनकूँ क्यूँ मूड़े नहीं, सा० सावे० सासी० मन को क्यों नहि मूड़िए ।
४. दा३ वसै (उर्दू मूल) ।

तन कौं जोगी सब करै, मन कौं बिरला कोइ^१ ।
 सब सिधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ ॥५॥
 माला फेरै^२ मनमुखी^३, तातें कछु न होइ ।
 मन माला कौं फेरतां, घट उजियारा होइ^४ ॥६॥
 कर पकरें अंगुरी गिनैं, मन धावै चहुं ओर ।
 जाहि फिरायां^५ हरि मिलै, सो भया काठ की ठौर^६ ॥७॥
 मरम न भागा जीव का^७, अनंतहि^८ धरिया भेख ।
 सतगुर परचै बाहिरा, अंतरि रहि गई रेख ॥८॥
 कबीर साखत की सभा, तूं मति बैठै जाइ ।
 एक गुवाड़ै^९ क्युं बनै, रोम गदहरा गाइ ॥९॥
 कबीर माला मन की^{१०}, और संसारी भेख ।
 माला पहिरे^{११} हरि मिलै, तौ अरहत कै गलि देखि^{१२} ॥१०॥
 माला फेरें^{१३} कछु नही^{१४}, गांठि हिरदै की खोइ^{१५} ।
 हरि चरनों^{१६} चित राखिए, तौ अमरापुर^{१७} जोइ^{१८} ॥११॥

[५] दा० २४-१७, नि० २५-१६, सा० ५५-३२, सावे० ४८-५, सासी० ७-३७, स० १४-९, गुण० १२६-६५—

१. सा० सावे० सासी० मन को करै न कोय । २. नि० सुख ।

[६] दा० २४-३, नि० २५-३, सा० ५५-१३, सावे० ३४-१५, सासी० १३-१४२, स० १४-१२, गुण० १२६-१०—

१. दा० पहरे । २. दा३ मन सुखी, नि० सा० सावे० मन खुसी (नागरी मूल) । ३. दा० नि० गुण० जग उजियारा सोइ ।

[७] दा० २४-२, नि० २५-२ सा० ५५-१२, सावे० ३४-२१, सासी० १३-१५०, स० १४-१५, गुण० १२६-९—

१. सा० सावे० सासी० क्रिया करै (उर्दू मूल) । २. नि० जिस फेर्यां, सा० सावे० सासी० जेहि फेरै । ३. नि० सा० सावे० सासी० सांई । ४. सा० सावे० सासी० कठोर ।

[८] दा० २४-१९, नि० २५-१७, सा० ५५-३४, सावे० ४८-७, सासी० ७-३६, बी० ४६—

१. बी० कबीर मरम न भाजिया । २. बी० बहु विधि, नि० अनंतक, सावे० सासी० बहुतक ।

३. बी० सांई के परिचै बिना (सरलीकरण), सा० सावे० सासी० सतगुर मिलिया बाहरी ।

४. दा० नि० सासी० अंतरि (दा० भीतर) रह्या अलेख, सा० अंतर रहिया लेख ।

[९] दा० १२-५५, नि० १६-५६, सा० १६-६, सावे० सासी० ५-४२, बी० १५५—

१. बी० में इस साखी का पाठ है : लोगन केर अथाइया, मति कोई पैठो घाइ । एकहि खेत चरत है, बाघ गदहरा गाइ । २. दा० एकै बाहै ।

[१०] दा० २४-६, नि० २५-८, सा० ५५-१८, सावे० ३४-१८, सासी० ७-६६, स० १४-११—

१. सा० सासी० माला तो मन की मली । २. सा० सावे० सासी० फेरै (उर्दू मूल) । ३. सा० सासी० हरहत । ४. सावे० गले रहत के देख ।

[११] दा० २४-९, नि० २५-९, सा० ५५-२०, सावे० ३४-३२, सासी० ७-३२, स० १४-१८—

१. दा० पहरेखा । २. सा० सावे० सासी० क्या भया । ३. सा० सावे० सासी० गांठ न हिए की खोइ । ४. सावे० गुरु चरनन । ५. नि० अजरावर । ६. दा० नि० होइ । सासी० में इस साखी की पुनः दे० सा० १२-१४८ : माला फेरै कह भयो, हिप्दा गांठि न खोइ । गुरु चरनन चित राखिए, तौ अमरापुर जोइ ॥

स्वांग पहिरि सोरहा^१ भया, खाया पीया खूदि^२ ।
 जिहि सेरी साधू गया^३, सो तो भेलही^४ मूदि ॥१२॥
 नौसत^५ साजै सुंदरी^६, तन मन रही संजोइ ।
 पिय के मन भावै^७ नहीं, तो पटम^८ किए क्या होइ ॥१३॥
 माला फेरें क्या भया^९, जो भगति न आई हाथि ।
 दाढ़ी^{१०} मूछ मुड़ाइ कै, चला दुनी^{११} कै साथि ॥१४॥
 जगत जहंदम^{१२} राचिया, भूठै कुल की लाज ।
 तन बिनसैं कुल बिनसिहै, गहै^{१३} न राम^{१४} जहाज^{१५} ॥१५॥
 पख ले^{१६} दूड़ी पिरथिमी^{१७}, भूठै कुल की लार ।
 अलख^{१८} बिसारयो भेख में, बूड़े काली धार^{१९} ॥१६॥
 चतुराई हरि नां मिलै, यह बातों की बात ।
 निसप्रेही निरधार का, गाहक दीनांताथ^{२०} ॥१७॥
 कबीर हरि की भगति का, मन में बहुत^{२१} हुलास ।
 मन मनसा माजै नहीं^{२२}, होन चहत है दास^{२३} ॥१८॥

[१२] दा० २४-१५, नि० २५-१४, सा० ५५-२८, सावे० ५०-१७, सासी० ५-२५, गुण० १२६-४७—
 १. सा० सावे० सोहदा, नि० सासी० सोहरा । २. सा० सावे० सासी० दुनिया खाई खूदि ।
 ३. दा२ गुण० नीसखा, सा० सावे० सासी० गुण० राखी ।

[१३] दा० २४-२३, नि० १५-२९, सा० १०१-५, तथा ५५-२८, सावे० ११-४, सासी० २३-१३,
 गुण० ५३-१३—
 १. नि० नीतन । २. दा० गुण० कांमिनी । ३. सा० सावे० सासी० गुण० मनिं । ४. नि०
 कपट, सावे० सासी० विहम ।

[१४] दा० २४-१०, नि० २५-१०, सा० ५५-२१, सावे० ५०-३, सासी० ७-२९—
 १. दा० माला पहखां कुछ नहीं, सा० सावे० सासी० माला तिलक लगाय के । २. दा० माथी ।
 ३. दा० जगत ।

[१५] दा० २४-२०, नि० १६-३९, सा० ३०-५९, सावे० ११-५१, सासी० १७-७९—
 १. दा२ जहैं हृद में राचिया, सा० सासी० जग जहदा में राचिया, सावे० भगतहि में हम
 राचिया । २. सा० सावे० सासी० छीजै । ३. नि० बिनसिही (राज० मूल) ४. नि० सा०
 सावे० सासी० रटै । ५. सावे० सासी० नाम । ६. नि० सा० जिहाज ।

[१६] दा० २४-२१, नि० २५-११, सा० ५५-३६, सावे० ५०-२१, सासी० ७-३९—
 १. सा० सावे० सासी० पहिले । २. सा० सावे० सासी० पिरथिवी । ३. दा० अलेख ।
 ४. सासी० बूडि काल की धार ।

[१७] दा० २४-२२, नि० २५-२०, सा० ५५-३७, सावे० ५०-२२, सासी० ७-४०—
 १. सा० सावे० सासी० बातों । २. दा० गोपीनाथ, दा३ नि० त्रिभुवननाथ ।

[१८] दा० २४-२५, नि० ३०-२१, सा० १५-३१, सावे० १२-६, सासी० १२-२४,
 १. दा१ दा२ खरा, दा३ घणां । २. दा० नि० मैवासा भाजै नहीं । ३. दा० नि० हूंख मते
 निज दास ।

मूंड मुड़ावत दिन गए, अजहुं न मिलिया राम ।
 राम नाम कहु क्या करै, जे मन के औरै काम^१ ॥१६॥
 माला फेरै^१ कछु नहीं, काती मन कै साथि^२ ।
 जब लग हरि प्रगटे^३ नहीं, तब लग पतड़ा हाथि^४ ॥२०॥
 कबीर माला काठ की, मेली^१ मुगध फुलाइ^२ ।
 सुमिरन की सोधी नहीं^३, ज्यों डोंगरि घाली^४ गाइ ॥२१॥
 माला फेरै^१ मनमुखी^२, बहुतक फिरै अचेत ।
 गांगीरोलै^३ बहि गया, हरि सौं किया न हेत ॥२२॥
 बाहरि क्या दिखलाइए, भीतरि कहिए राम^१ ।
 नहीं^२ महौला जगत^३ सौं, परा धनीं सौं काम ॥२३॥
 कर सेती माला जपै^१, हिरदै बहै डंडूल^२ ।
 पग तौ पाला मैं गिला^३, भाजन लागी मूल ॥२४॥

(२६) भरम बिधूसन कौ अंग

पाहन केरा पूतरा^१, करि पूजै करतार^२ ।
 इही^३ भरोसै^४ जे रहे^५, ते^६ बूड़े^७ काली धार ॥१॥

[१९] दा० २४-१४, नि० २४-१३, सा० ४५-२७, सासी० ७-२३, स० ९४-५—
 १. नि० स० जे मन करै और ही काम ।

[२०] दा० २४-८, नि० २४-२७, सा० ४५-१५, सासी० ७-३३, स० ९४-१५—
 १. दा० पहखा । २. सा० सासी० हाथ । ३. नि० सा० सासी० परचै । ४. नि० पोथी हाथ,
 सा० सासी० थोथी बात ।

[२१] दा२ दा३ २२-६, नि० २४-६, सा० ४५-१७, सासी० १३-१५, स० ९४-१६—
 १. सा० सासी० पहरी । २. सा० सासी० डुलाय (राजस्थानी हिंदी मूल) । ३. सा० सासी०
 सुमिरन का सुधि है नहीं । ४. ता० सासी० बांधी ।

[२२] दा० २४-४, नि० २४-२४, सा० ४५-१४, सासी० ७-३०, गुण० १२६-११—
 १. दा० गुण० पहरी । २. दा३ मन सुखी, नि० मन खुसी ।

[२३] नि० ३-७, सा० ११-६८, सावे० ३४ २३, सासी० १३-२२, स० ९४-६—
 १. सावे० सासी० जपिए नाम । २. सा० सावे० सासी० कहा । ३. नि० सा० सासी० खलक ।

[२४] दा० २४-१, नि० २४-१, सासी० १३-१७, स० ९४-१४—
 १. सासी० हाथों में माला फिरे । २. सासी० हिरदै-डामाहल । ३. सासी० पड़ा ।

[१] दा० २३-१, नि० २४-१, सा० ४३-१, सावे० ८१-१, सासी० ४६-१, स० १००-१, गु० १२६—
 १. सा० सावे० सासी० पाहन केरी पूतरी, गु० पाहन परमेसुर की आ । २. गु० पूजै समु संसार ।
 ३. सा० सावे० बाहि, सासी० याहि, गु० इस । ४. गु० भरवासे । ५. सा० सावे० सासी० मति
 रहो । ६. गु० सा० सावे० सासी० में 'ते' नहीं है । ७. सा० सावे० सासी० बूड़ो ।

कागद केरी ओबरी^१, मसि के^२ किए^३ कपाट ।
 पाहनि बोरी^४ पिरथिमीं, पंडित पाड़ी बाट ॥२॥
 मुला मुनारै क्या चढ़हि^५, अलह^६ न बहिरा होइ ।
 जेहि^७ कारनि तूं वांग दे^८, सो दिल ही भीतरि^९ जोइ ॥३॥
 तीरथि चाले दुइ जनां^{१०}, चित चंचल मन चोर^{११} ।
 एकौ पाप न काटिया^{१२}, लावा मन दस और ॥४॥
 तीरथ व्रत^{१३} बिख^{१४} बेलड़ो, सब जग मेल्हा^{१५} छाड़^{१६} ।
 कबीर^{१७} मूल निकंदिया, कौन^{१८} हलाहल खाइ ॥५॥
 जप तप दोसैं^{१९} थोथरा, तीरथ व्रत बेसास^{२०} ।
 सूवै सैबल सेइया, यों जग^{२१} चला निरास ॥६॥
 कबीर दुनिया देहुरै, सीस नवावन जाइ ।
 हिरदै भीतरि^{२२} हरि बसै, तूं ताही सों^{२३} ल्यौ^{२४} लाइ ॥७॥
 पाहन कौ क्या पूजिए, जो जनमि न देई ज्वाब^{२५} ।
 अंधा नर आसामुखी, यौही खोवै आब^{२६} ॥८॥

- [२] दा० २३-२, नि० २४-२, सा० ५३-२, सावे० ८१-२, सासी० ४६-१४, स० १००-३, गु० १३७-
 १. दा० नि० स० काजर केरी ओबरी, सा० सावे० सासी० काजर केरी कोठरी ('काजर' यहाँ
 अप्रासंगिक), गु० कबीर कागद की ओबरी । २. गु० मसु के । ३. दा० गु० करम ।
 ४. दा० नि० स० बोई (उर्दू मूल), सावे० सासी० मूली ।
 [३] नि० २३-२०, सा० ५३-२१, सावे० ८१-१४, सासं० ४६-२१, गु० १८४-
 १. नि० मुला चढ़ि न मुलारसैं, सा० सावे० सासी० मुल्ला चढ़ि किलकारिया । २. गु० सांई,
 नि० सावे० अलख । ३. गु० जा । ४. गु० देहि । ५. नि० सा० सावे० सासी० अंदर ।
 [४] नि० २४-१४, सा० ५४-४, सावे० ८२-४, सासी० ४६-२७, बी० १२५-
 १. नि० तीरथ चाल्या हांणि कूं, बी० तीरथ गए तीनि (?) जन । २. नि० मन मैला चित चोर ।
 ३. सासी० काटिया (हिन्दी मूल), नि० सा० सावे० उतरिया ।
 [५] दा० २३-९, नि० २४-१५, सा० ५४-२, सावे० ८२-२, बी० २१६-
 १. बी० भई । २. दा० नि० सब । ३. सा० सावे० राखा । ४. बी० रही जुगन जुग छाव ।
 ५. नि० सा० सावे० कबीर, बी० कविरन । ६. बी० क्यों न ।
 [६] दा० २३-८, नि० २४-१६, सा० ५४-१, सावे० ८२-१, सासी० ४६-२५, स० १००-९,
 गुल० १३७-१९-
 १. सासी० दीखै । २. सा० सावे० सासी० बिस्वास । ३. दा३ यूं जुग (उर्दू मूल), सावे०
 फिर उठि ।
 [७] दा० २३-११, नि० २४-२१, सा० ५३-१८, सावे० ८१-११, सासी० ४६-९, स० १००-७,
 गुल० १३७-१२-
 १. सा० सावे० सासी० मांहीं । २. सावे० सासी० ताही । ३. दा३ चित, सावे० सासी० ली ।
 [८] दा० २३-३, नि० २४-३, सा० ५३-३, सावे० ८१-३, सासी० ४६-२, स० १००-४-
 १. सा० सावे० सासी० जो नहि देइ ज्वाब । २. सावे० यौही होय खराब ।

हंम भी पाहन पूजते, होते बन के^१ रोम^२ ।
 सतगुर की किरपा भई, डारा^३ सिरतें बोम^४ ॥६॥
 सेवै^५ सालिगरांम कौं, मन की आंति न जाइ ।
 सीतलता सुपिनैं नहीं, दिन दिन अधि की लाइ ॥१०॥
 मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जानि ।
 दसवां द्वारा देहुरा^६, तामैं जोति पिछानि ॥११॥

(२७) सारग्राही कौ अंग

खीर^१ रूप हरि नाउं^२ है, नीर आंन^३ व्यौहार ।
 हंस रूप कोइ साधु है, तत का छाननहार^४ ॥१॥
 कबीर औगुन नां गहै^५, गुन ही कौं लै बोनि ।
 घट घट महुं कै मधुप ज्यों, परमात्म लै चीरिह ॥२॥
 पापी भगति^६ न भावई, हरि पूजा न सुहाइ^७ ।
 माखी चंदन^८ परिहरै, जहं बिगंध^९ तहं जाइ ॥३॥
 कबीर साकत कोइ नहीं, सबै बैस्तौं जानि^{१०} ।
 जिहि मुखि रांम न ऊचरै, ताही तन की हांनि^{११} ॥४॥

[१] दा० २३-४, नि० २४-४, सा० ५३-४, सावे० ८१-४, सासी० ४६-१५, स० १००-५—

१. कबीर के (हिन्दी मूल) । २. सा० सासी० रोज-रोज । ३. नि० रात्ता ।

[१०] दा० २३-६, नि० २४-११, सा० ५३-१२, सासी० ४६-१२, स० १००-५, गुण० १३७-२—

१. सासी० पूजे ।

[११] दा० २३-१०, नि० २३-२४, सा० ५३-१९, सावे० ८१-१२, सासी० ४६-१९, गुण० १३५-२३—

१. नि० देही मांहीं देहरा, सा० सावे० सासी० दस द्वारे का देहरा (=काया, जो प्रथम पंक्ति में ही आ चुका है, अतः भाव की पुनरावृत्ति) ।

[१] दा० २२-१, सा० ६७-७, सावे० २९-३, सासी० ४७-३, गुण० १४५-२१—

१. सा० सावे० सासी० छीर । २. सावे० सासी० सतनाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । ३. सा० सावे० सासी० रूप । ४. दा० सा० गुण० जाननहार ।

[२] दा० ३२-३ (दार में नहीं है) सा० ६७-५, सावे० २९-४, सासी० ४७-४, गुण० १४५-७—

१. सा० सावे० सासी० औगुन को तो ना गहै ।

[३] सा० ६६-५, सावे० ४०-४, सासी० ४८-९, गु० ६८—

१. सा० सावे० सासी० पुनिन । २. सा० सावे० सासी० पापहि बहुत सुहाय । ३. सा० सावे० सासी० सुगंधी । ४. सा० सावे० सासी० दुरगंध ।

[४] दा० ३२-२, नि० ३५-१, सा० ९६-१२, सासी० ६७-६, स० २२-२, गुण० १४५-२८—

१. सासी० अनवैरनव कोई नहीं, सा० साकट हमरें कोइ नहीं । २. सा० आरि । ३. सासी० जेता हरि को ना भजे, तेता ताको हानि, सा० संसय ते साकट भया, कहे कबीर विचारि ।

४. सासी० में यह साखी ५-३७ पर भी आती है जहाँ इसका पाठ सा० के समान है ।

बसुधा बन बहु भांति है, फूलै फलै अग्राध ।

मिष्ट सुवास कबीर गहि^१, बिषम गहै^२ नहि^३ साध ॥५॥

(२८) विचार कौ अंग

राम राम सब कोइ कहै, कहिबे बहुत विचार^१ ।

सोई राम सती कहै^२, सोई कौतिगहार^३ ॥१॥

आगि कछ्छां^४ दाभै नहीं, जे नहि चंपै पाइ^५ ।

जौ पै^६ भेद न जानिए, राम^७ कहा तौ काइ^८ ॥२॥

कबीर सोचि विचारिया, दूजा कोई नाहि ।

आपा पर जब चीन्हियां, तब उलटि समानां माहि ॥३॥

पानां केरा पूतरा, राखा पवन संचारि^९ ।

मानां बांनों बोलिया^{१०}, जोति धरी करतारि ॥४॥

हरि^{११} मोतिन^{१२} की माल है, पोई कांचै धागि^{१३} ।

जतन करौ भटका घनां^{१४}, टूटैगी कहुं लागि^{१५} ॥५॥

आधो साखी सिरि खंडै^{१६}, जौ रे बिचारी जाइ^{१७} ।

मन^{१८} परतीति न ऊपजै^{१९}, तौ राति दिवस मिलि^{२०} गाइ ॥६॥

[५] दा० ३२-४ (दा२ में नहीं है), सा० ६७-४, साखी० ४७-१०, गुण० १४५-२७—

१. सा० साखी० मिष्ट बास कबिरा गहै । २. दा० गुण० कहै (उर्दू मूल) । ३. दा० किहि, सा० साखी० कोइ ।

[१] दा० ३२-१, नि० ३४-२, सा० ६५-१, साखी० ७६-२, स० १५१, गु० १९०—

१. सा० साखी० राम राम सब कोइ कहै, कहने माहि विचार, गु० राम कहन महि भेदु है तामहि एक विचार । २. गु० सोई राम समै कहहि । ३. गु० कउतकहार (उर्दू मूल) ।

[२] दा० ३२-२, नि० ३४-३, सा० ६५-२, साखी० ७६-१, साखी० ७६-२—

१. नि० सा० साखी० साखी० कहै । २. नि० सा० साखी० साखी० जे पांव न दीजै माहि । ३. दा० जब लागि । ४. साखी० नाम (राधा० प्रभाव) । ५. नि० सा० साखी० साखी० काहि ।

[३] दा० ३२-३, नि० ३४-४, सा० ६५-३, साखी० ७६-२, साखी० ७६-१—

[४] दा० ३२-४, नि० ३४-५, सा० ६५-४, साखी० ७६-३, साखी० ७६-४, —
१. दा० १ संवारी (नागरी मूल) । २. सा० साखी० साखी० बोलता ।

[५] दा० ३२-५, नि० ३४-६, सा० ९३-१४, साखी० ३१-३, साखी० ४९-३—

१. साखी० चित । २. दा० मोत्यां (राज० मूल) । ३. दा० तागि । ४. दा० भंडा वलां, नि० कीर्त्तनी वलां । ५. साखी० नहि टूटै कहुं लागि ।

[६] दा० ३२-६, नि० ३४-६, सा० ६५-५, साखी० ७६-४, साखी० ७६-५, बी० २१—

१. बी० खड़ी (बी० खंडै), दा० नि० सा० साखी० साखी० कटै (समानार्थिकरण) । २. बी० जो निरुवारी जाइ । ३. सा० साखी० साखी० मनहि । ४. बी० का पंडित की पोथियां । ५. सा० साखी० साखी० साखी०

सोई आखर सोइ बैन^१, जन जू जू बाचवंत^२ ।
 कोई एक मेलै लवनि, अमीं रसाइन हंत^३ ॥७॥
 एक सबद में सब कहा^४, सब ही अरथ^५ बिचार ।
 भजिए निरगुन ब्रह्म कौं^६, तजिए बिखै विकार ॥८॥

(२६) मन कौ अंग

भगति^१ दुवारा सांकरा^२, राई दसएं भाइ ।
 मन तौ मैंगल^३ होइ रहा, क्यूंकरि सकै समाइ^४ ॥१॥
 काया कजरी बन अहै, मन कुंजर^५ मैमंत^६ ।
 अंकुस^७ ग्यान रतन है, खेवट बिरला संत^८ ॥२॥^५
 पांनों हू तैं^९ पातरा, धूवां हू तैं^{१०} भीन ।
 पवनां बेगि उतावलां, सो दोस्त कबीरै^{११} कीन ॥३॥
 तीन लोक चोरी भई, सब का सरबस लीन्ह^{१२} ।
 बिना मूंड^{१३} का चोरवा, परा न काहू चीन्ह ॥४॥

[७] दा० ३३-७, नि० ३४-८, सा० ६५-२२, सासी० ७६-२०, स० ६-१ तथा २२-१, गुण० १४७-८—
 १. सासी० भनै । २. दा२ जन जू जुवा चुवंत, नि० जण जू जवा चवोत, सा० जन जो वैजोवंत
 (उर्दू मूल), सासी० सोई जन जीवंत (दा० स० तथा गुण० में 'बाचवंत' पाठ है जो 'बाचंत'
 (= पढ़ना) का परिवर्तित रूप ज्ञात होता है ।) । ३. दा२ दा३ गुण० स० कोई एक मेल्ले
 केलवणि, अमीं रसाइन हंत; नि० कोई एक मेल्ले केवणी, अमीं रसाइण होत; सा० कोई एक मिले
 कवलनी, अमी महारस हंत, सासी० अकिलमंद कोइ कोइ मिले, अमि महारसहि पिवंत ।

[८] नि० ३४-७, सा० ६५-७, सावे० ६८-५, सासी० ७६-३, गुण० ८-३६—
 १. गुण० ताकाँ एकै सबद में । २. नि० अरघ । ३. गुण० भजिए पूरन ब्रह्म कौं, सासी० भजिए
 निस दिन नाम को ।

[१] दा० १३-२६, नि० १७-३४, सा० १५-२३, सावे० १२-२७, सासी० १२-१६, गु० ५८,
 गुण० १००-३—
 १. गु० मुकति । २. गु० संकुरा, दा० नि० गु० संकड़ा । ३. नि० मन ऐरापति, सा० मन
 अहरापति, सावे० मन ऐरावत । ४. गु० निकसी किउ कै जाइ, सा० सावे० कैसे होय समाय,
 सासी० कैसे आवै जाइ ।

[२] नि० १७-३३ तथा ५०-१०३, सा० ३१-४२, सावे० ७१-५२, सासी० २९-७३, गु० २२४—
 १. गु० कुंवर । २. सा० सावे० सासी० महमंत । ३. गु० अंकुस (उर्दू मूल), नि० (१७-३३)
 खेवट । ४. नि० कोई समझै (५०-१०३ में 'देसी') साधू संत, सा० सावे० फेरै बिरला संत, सासी०
 फेरै साधू संत । ५. याज्ञिक-संग्रह की पोथी में यह साखी लालदास की रचना के रूप में मिलती
 है, तुल० राग दीपगः लाल जी काया कजली बन है, यामें मन हसती मैमंत । अंकुस गुरु का
 सबद है, मोड़ग कोई संत । किन्तु प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह कबीर की रचना सिद्ध होती
 है । अन्य साखियों की भाँति यह साखी भी लालदास के नाम भूल से चल पड़ी है ।

[३] दा० १३-१२, नि० १७-१६, सा० ३२-७, सावे० ७१-४६, सासी० २७-४७, बी० २१९—
 १. बी० पानी ते अति । २. बी० धूवा ते अति । ३. बी० कबीर न ।

[४] बी० १२८, सा० ३१-५१, सावे० ७१-१०, सासी० २९-७७—
 १. सा० सावे० सासी० सब को येन हरि जानै । २. सा० सावे० सासी० सोस ।

मनां मनोरथ छांड़ि दे, तेरा किया न होइ ।
 पांनों में घी नीकसै, तौ । खाँखाइ न कोइ ॥५॥
 मन गोरख मन गोविंद^१, मन ही औघड़ होइ^२ ।
 जो मन राखै जतन करि, तौ आपैं करता सोइ^३ ॥६॥
 काया देवल मन धजा, बिखै लहरि फहराइ ।
 मन चाले^४ देवल चलै, ताका सरबस जाइ ॥७॥
 मन जानैं सब बात, जानि बूझि^५ औगुन करै ।
 काहे की कुसलात, कर दीपक^६ कूँवै परै ॥८॥
 मन के हारे हार है, मन के जीते जीति^७ ।
 कहै कबीर हरि^८ पाइए^९, मन ही की परतीति ॥९॥
 कबीर सेरो^{१०} सांकरो^{११}, चंचल मनुवां चोर ।
 गुन गावै लैलीन होइ, कछु इक मन में और ॥१०॥
 कबीर माहं मन कौं^{१२}, टूक टूक होइ जाइ ।
 बिख की क्यारी बोइ करि,^{१३} लुनत कहा पछताइ ॥११॥
 मनुवां तौ अंतरि^{१४} बसा, बहुतक भीनां होइ ।
 अमरलोक^{१५} सनु^{१६} पाइया, कबहुं न न्यारा होइ ॥१२॥

- [५] दा० १३-२९, नि० १७-३६, सा० ३१-६२, सावे० ७१-६९, सासी० २९-३९, स० ४६-२—
 १. सा० सासी० हूखा, सावे० सूखा ।
 [६] दा० १३-१०, नि० १७-१३, सा० ३१-१६, सावे० ७१-२५, सासी० २९-२३, गुण० १००-१७—
 १. नि० मन गोरख गोविंदह । २. नि० जोइ, सा० सासी० सोय । ३. नि० सा० सावे०
 सासी० होइ ।
 [७] दा० १३-२८, नि० १७-३५, सा० ३१-५८, सावे० ७१-५४, सासी० ३९-७४, गुण० ११०-३३—
 १. दा० १ गुण० चाल्यां, दा३ चलतां ।
 [८] दा० १३-७, नि० १७-६, सा० ३१-१०, सावे० ७३-६३, सासी० २९-४२, गु० २१६—
 १. गु० जानत ही । २. गु० हाथ दीप ।
 [९] सा० ३१-४७, सावे० ७१-६५, सासी० २९-३०, गुण० १००-२२—
 १. गुण० मन हारे मन हारिए, मन जीते मन जीति । २. सावे० पिउ, सासी० गुरु । ३. गुण०
 परम तत्त हू पाइए ।
 [१०] दा० १३-४, नि० १७-३, सा० ३१-१, सावे० ७१-२१, सासी० २९-८—
 १. सावे० सीढ़ी । २. दा३ संकड़ी ।
 [११] दा० १३-५, नि० १७-४, सा० ३१-७, सावे० ७१-३, सासी० २९-२०—
 १. सा० सावे० सासी० मन की माहं पटक के । २. नि० बाहि करि । ३. सा० सावे० सासी०
 लुनता क्यों ।
 [१२] दा० १३-१४, नि० १७-१७, सा० ३२-१०, सावे० ७१-४४, सासी० २९-४०—
 १. दा० अवि० १० । २. दा० नि० अमरलोक । ३. दा० सावे० सासी० सकि (सुदं सुख) ।

पावक रूपी राम^१ है, घटि घटि रहा समाइ ।

चित चकमक लागै^२ नहीं, धूवां होइ होइ जाइ ॥१३॥

कबीर मन गाफिल भया, सुमिरन लागै नाहिं ।

घनों सहैगा^३ सासनां, जम की दरगह माहिं ॥१४॥

कोटि करम पल में करै^४, यहु मन बिलिया स्वादि ।

सतगुर सबद न मानही, जनम गंवाया बादि ॥१५॥

भैमंता मन मारि रे^५, घटही माहिं घेरि ।

जबहों चालै पोठि दै, आंकुस दै दै केरि ॥१६॥

भैमंता मन मारि रे^६, नन्हा करि करि पीसि ।

तब सुख पावै सुंदरी, पदुम^७ भलकै सीसि ॥१७॥

कागद केरी नाव री, पांतीं केरी^८ गंग ।

कहै कबीर कैसै तिरुं, पंच कुसंगी संग ॥१८॥

[१३] दा० २९-१९, नि० ७-२०, सा० ६०-१५, सावे० १४-५२ तथा ३३-४४, सासी० १६-६३—

१. सावे० सासी० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । २. नि० सावे० सासी० चहुँटै । यह साखी सा० में ८७-७ पर, सावे० में ४०-११ पर और सासी० में ४१-८ पर पुनः मिलती है जिनका पाठ है : पावक रूपी राम है (सावे० सासी० सांझ्यां), सब घट रहा समाइ । चित चकमक लागै नहीं ताते बुझि बुझि जाइ ॥ इस पुनरावृत्ति से उक्त तीनों प्रतियों के संकीर्ण-संबंध पर प्रकाश पड़ता है (दे० भूमिका) ।

[१४] दा० १३-१७, नि० १७-२०, सा० ३१-२५, सावे० ७१-३३, सासी० २९-४—

१. नि० सहैलौ (राज० मूल) ।

[१५] दा० १३-१८, नि० १७-२१, सा० ३१-२३, सावे० ७१-३१, सासी० २९-६५—

१. नि० सा० सावे० सासी० करै पलक में ।

[१६] दा० १३-१९, नि० १७-२३, सा० ३१-२७ तथा १०१-४. सावे० ७१-४९, सासी० २९-४३ तथा ४४—

१. सा० (३१-२७) सावे० सासी० (२९-४३) महमंत । २. सा० (१०१-४) सासी० (२९-४४) मन मनसा को मारि ले । सा० तथा सासी० में एक ही प्रकार की पुनरावृत्ति मिलने से दोनों में संकीर्ण-संबंध सिद्ध होता है ।

[१७] दा० १३-२० तथा ५२-४ (दो बार), नि० ५७-७, सा० १०१-४, सावे० ७१-५०, सासी० २९-४५—

१. दा० (५२-४) नि० इस मन को मैदा करौ, सा० सावे० सासी० मन मनसा को मारि करि । २. दा० ब्रह्म । याज्ञिक-संग्रह की ३४६-५५ संल्यक पोथी में यह साखी लालदास के नाम से मिलती है, वहाँ इसका पाठ है : लाल जी भैमंता मन मारिण, और नहनां करिके पीस । जब सुख पावै सुंदरी, पदम भलकै सीस ॥ किन्तु दा० नि० सा० सावे० सासी० में समान रूप से मिलने के कारण यह साखी कबीर की ही सिद्ध होती है, लालदास के नाम पर यह संभवतः ग़लती से लिख गयी है ।

[१८] दा० १३-२१, नि० १७-२४, सा० ३१-२८, सावे० ७१-३३, सासी० २९-६६—

१. नि० ही की । CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कबीर मन पंखी भया^१, उड़ि के चढ़ा अकासि^२ ।

ऊंहां तें फुनि^३ गिरि पड़ा, मन माया के पासि ॥१६॥

काया कसौ^४ कमान ज्यों, पंच तत्त करि बान^५ ।

मारौ तौ मन मिरिग कौ^६, नहिंतर^७ मिथ्या जान^८ ॥२०॥

मेरे मन में परि गई, ग्रैसी एक दरार ।

फाटा फटिक पलान ज्यों, मिला न दूजी बार ॥२१॥

मन फाटा बाइक बुरै, मिटी सगाई साक ।

जैसे^९ दूध तियास का, ऊकटि^{१०} हवा आक ॥२२॥

मनकै मत न चालिए, छांड़ि जीव की बानि^{११} ।

ताकूं केरा तार ज्यों^{१२}, उलटि अपूठा आनि ॥२३॥

(३०) बिखै विकार कौ अंग

परनारी कौ राचनी^१, जस^२ लहसुन^३ की खानि ।

कोनै^४ बैठे खाइए^५, परगट होइ निदानि^६ ॥१॥

[११] दा० १३-२५, नि० १७-३१, सा० ३१-३९ तथा ६१-७७, सावे० ७१-३५ तथा ४०-३६, सासी० २९-२७ तथा ६-७६—

१. सा० सावे० सासी० सनुवा तो पंछी भया । २. दा० बहुतक चढ़यो अकास, नि० चारि चढ़या आकास । ३. नि० सा० सावे० सासी० ऊपर ही ते । तुल० सा० ६१-७७, सावे० ४०-३६ तथा सासी० ६-७६ : मेरा मन पंछी भया, उड़ि के चढ़ा अकास । वैकुंठहि खाली पड़ा, साहिब संतो पास ॥ तीनों में एकही साखी की पुनरावृत्ति तथा पाठ-साम्य से तीनों का संकीर्ण-संबंध ज्ञात होता है ।

[२०] दा० १३-३०, नि० १७-३७, सा० ३१-५२, सावे० ७१-५५, सासी० २९-७५—

१. दा० नि० कसू । २. नि० तांणि (उर्दू मूल) । ३. नि० सा० सासी० मिरगला । ४. दा० नहिं ती, सावे० नातक ।

[२१] दा० ३७-३१, नि० ३९-१०, सा० ७१-१६, सासी० २९-१६, स० ११-२, गुण० १०६-२४—

[२२] दा० ३७-२, नि० ३९-१०, सा० ७१-१७, सासी० २९-१७, स० ११-२—

१. दा० नि० जी परि । २. सा० सासी० उ ।

[२३] दा० १२-२, नि० १७-१, सा० ३१-१, सासी० २९-१६, गुण० १००-५—

१. नि० छांड़ीजे या बानि । २. दा० ताकूं केरा सूत ज्यु, नि० सा० सासी० कतवारी के तार (सासी० सूत) ज्यों । तुल० गोरखवानी (सम्मेलन, प्रयाग) सबदी २३४ : अवधू यो मन जात है, याही ते सब जांणि । मन मकड़ी का तार ज्यु, उलटि अपूठे आणि ॥ स्पष्ट है कि कबीर की साखी के पाठ की तुलना में इस सबदी का पाठ परवर्ती है ।

[१] दा० २०-६, नि० २१-५०, सा० ४३-१२, सावे० ७३-१०, सासी० ३१-३६, गु० १७, स० ११२-२१, गुण० ११०-१८—

१. दा० नारी केरै राचनी, नि० परनारी प्रतखि बुरी, गु० कबीर साकतु ब्रैसा है । २. दा० बार नि० स० गुण० जिसे । ३. गु० लसन, दा० नि० स० गुण० लहसुन । ४. दा० नि० स० गुण० खूणें (राज० प्रभाव) । ५. दा० नि० स० गुण० बैसि खाइए, सा० सावे० बैठे खाइए, सा० सावे० बैठे के खाइए । ६. दा० नि० दिवानि (उर्दू मूल) ।

कांमिनि काली नागिनी^१, तीनिउं लोक मंभारि ।
 रांम^२ सनेही ऊबरै, बिखई खाए भारि ॥२॥
 परनारी परतखि छुरी,^३ बिरला बांचै कोइ ।
 नां ऊ पेट संचारिए, जो सोभे की होइ^४ ॥३॥
 नारी केरै राचनै^५, ओगुन है^६ गुन नाहि ।
 खार समुंद में माछली^७, केतो^८ वहि वहि जाहि ॥४॥
 नर नारी सब नरक हैं, जब लगि देह सकांम ।
 कहै कबीर ते रांम के^९, जे सुमिरैं तिहुकांम ॥५॥
 नारी सेती नेह, बुधि बिबेक^{१०} सब ही हरै^{११} ।
 काइ^{१२} गंवावै देह, कारिज कोई नां सरै ॥६॥
 नारि नसावै तीनि गुन^{१३}, जो नर पास होइ ।
 भगति सुकुति निज ग्यान में^{१४}, पैसि^{१५} न सकई कोइ ॥७॥
 पासि बिनंठा कापड़ा^{१६}, कदे^{१७} सुरंग न होइ ।
 कबीर त्यागा ग्यान करि, कनक कांमिनीं दोइ ॥८॥

[२] दा० २०-१, नि० २१-५, सा० ४४३-३, सावे० ७३-३, सासी० ३१-२८, स० ११२-१३, गुण० ११०-—

१. स० कांमिनि सीनीं खाणि की । २. सावे० सासी० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) ।

[३] दा० २०-४, नि० २१-५१, सा० ४२-१०, सावे० ७३-९, सासी० ३१-३४, स० ११२-२०, गुण० ११२-१५—

१. दा० स० गुण० परनारी पर सुंदरी । सा० सावे० सासी० परनारी पैनी छुरी । २. दा० नि० गु० खातां मीठी खोड सी, अंतकालि बिख होइ; सावे० ना वह पेट संचारिए, सर्व सोन की होय ।

[४] दा० २०-५, नि० २१-१४, सा० ४३-१८, सावे० ७२-११, सासी० ३२-२४, स० ११२-२१, गुण० ११०-१७—

१. दा१ दा२ सावे० गुण० परनारी के राचनै । २. नि० छै (राजस्थानी मूल) । ३. दा० नि० स० गुण० मंछला । ४. दा० नि० स० गुण० केता ।

[५] दा० २०-७, नि० २१-१५, सा० ४३-२०, सावे० ३४-३, सासी० १३-१२१, स० ११२-२, गुण० ११०-३६—

१. सावे० सासी० कहै कबीर सो पीव को (सांप्रदायिक प्रभाव) ।

[६] दा० २०-८, नि० २१-१६, सा० ४३-२३, सावे० ७३-४८, सासी० ३१-२७, स० ११२-१०, गुण० ११०-१०—

१. दा१ बमेक । ३. दा३ हडै (उर्दू मूल) । ३. सा० सावे० सासी० कहा ।

[७] दा० २०-१०, नि० २१-१७, सा० ४३-२४, सावे० ७३-२१, सासी० ३१-१४, स० ११२-१२, गुण० ११०-१२—

१. दा१ दा२ सुख । २. सा० सावे० सासी० ध्यान में । ३. सा० सावे० सासी० पैठ ।

[८] दा० ३०-४, नि० ३९-१, सा० ७१-२, सावे० ४२-३, सासी० ३१-५७, स० ११२-३, गुण० १०६-३—

१. स० कपास अन्ठ कापड़ा, सावे० पास न जाके कापड़ा, सासी० कपास बिन्ठ कापड़ा ।

२. सावे० कधी ।

एक कनक अरु कांमिनी, बिख फल किया^१ उपाइ ।
 देखें^२ ही तैं बिख चढ़ै, खाए तैं^३ मरि जाइ ॥६॥
 एक कनक अरु कांमिनी, दोइ अगिन की भाल ।
 देखें^१ ही तैं^२ परजरै, परसां^३ ह्वै पैमाल ॥१०॥
 नारि पराई आपनीं, भुगतैं नरकहि जाइ ।
 आगि आगि सब एक है^२, तामैं हाथ न बाहि^३ ॥११॥^३
 नारी केरी प्रीति सौं^१, केते गए गडंत ।
 केते अजहूं^२ जात हैं^३, नरकि हसंत हसंत ॥१२॥
 अंधा नर चेतै नहीं^१, कटै^२ न संसै मूल ।
 और^३ गुनह (= गुनाह ?) हरि^४ बकसिहैं^५, कांमीं डाल न मूल ॥१३॥
 भगति बिगाड़ी कांमियां, इंद्री केरै स्वादि ।
 हीरा खोया हाथ तैं, जनम गंवाया बादि ॥१४॥
 कबीर कहता जात हूं^१, चेतै^२ नहीं गंवार ।
 बैरागी गिरही कहा, कांमीं वार न पार ॥१५॥
 नारी कुंड नरक का^१, बिरला थामैं वागि ।
 कोइ साधू जन ऊबरै, सब जग भूवा लागि ॥१६॥

[१] दा० २०-११, नि० २१-३३, सा० ४३-४६, सावे० ७२-२६, सासी० ३१-४, स० ११२-६, गुण० १०८-१—

१. सावे० सासी० लिया (उद्धू मूल) । २. दा० नि० देख्यां, सा० सावे० सासी० देखत ।
 ३. सा० सावे० सासी० खाखत ही ।

[१०] दा० २०-१२, सा० ४३-४५, सावे० ७२-३५, सासी० ३१-३, गुण० १०८-२—

१. दा० देख्यां (राज०) । २. दा० तन । ३. (गुण० परसत,) सा० सावे० सासी० परसि ।

[११] दा० २०-२४, नि० २१-३१, सा० ४३-६३, सावे० ७३-१४, सासी० ३१-९, स० ११२-१३, गुण० ११२-१६—

१. दा० नि० गुण० भुगत्यां । २. सा० सावे० सासी० एक सी । ३. सा० सावे० सासी० हाथ दिए जरि जाय (समानार्थीकरण) । ४. नि० में उक्त साखी की दोनों पंक्तियां परस्पर स्थानांतरित ।

[१२] दा० २०-१३ नि० २१-२०, सा० ४३-२८, सावे० ७३-२९, सासी० ३१-४८, स० १२-६—

१. दा० नि० सा० स० कबीर भग की प्रीतड़ी । २. सा० सावे० सासी० औरों । ३. दा० नि० जाइसी (राज०) ।

[१३] दा० २०-१७, नि० २१-४०, सा० ४३-५३, सावे० ५३-७, सासी० ६२-२, स० ११२-१४—

१. सा० सावे० सासी० कामी कवहुं न हरि (सावे० सासी० गुरु) भजे । २. सा० सावे० सासी० मिटै । ३. सा० गुनन । ४. सा० सावे० सासी० सब । ५. दा० नि० स० बकसि (राज० मूल), सावे० बकसिहीं ।

[१४] दा० २०-१८, नि० २१-४१, सा० ४३-५५, सावे० ५३-५, सासी० ६२-११, स० ११२-१६—

[१५] दा० २०-२५, नि० २१-४५, सा० ४३-५९, सावे० ५३-१५, सासी० ६२-१५, स० ११२-१५—

१. सा० सावे० सासी० कहता हूं कहि जात हूं । २. नि० सावे० समझै, सासी० सानै ।

[१६] दा० २०-१५, नि० २१-२३, सा० ४३-३६, सासी० ३१-२३, स० ११२-३—

१. सा० सासी० नारी कुंडी नरक की ।

सुंदरि तैं सुली भली, बिरला बांचे कोइ ।
 लोह निहाला आगि ज्यूं^१, जरि बरि कोइला होइ ॥१७॥
 कामिनि सुंदर सर्पिनीं^२, जो छेड़ै^३ तिहि^३ खाइ ।
 जे हरि^४ चरनां राखिया, तिनकै निकटि न जाइ ॥१८॥
 पर नारी रातां फिरै, चोरी बिड़ता^१ खाहि ।
 दिवस चारि सरसा रहै^२, अंति ससूला जाहि ॥१९॥
 जोहू जूठनि^१ जगत की, भले बुरे का बीच ।
 उत्तिम ते अलगा रहै, मिलि खेलै^२ ते नीच ॥२०॥
 कामीं अमीं न भावई^१, बिख ही कौं ले सोधि^२ ।
 कुबुधि न जाई^३ जीव की, भावै ज्यों परमोधि^४ ॥२१॥
 काम^१ करम की केंचुली, पहिरि हुआ नर नाग ।
 सिर फोरै सूभै नहीं, कोइ आगिला अभाग^२ ॥२२॥
 कामीं लज्जा नां करै, मन मांहीं अह्लाद ।
 नौद न मांगै सांथरा, भूख न मांगै स्वाद ॥२३॥
 ग्यानों तौ नीडर^१ भया, मांनैं नांहीं संक ।
 इंद्रि केरै बसि पड़ा, भूजै^२ बिलै^३ निसंक ॥२४॥

[१७] दा० २०-१६, नि० २१-२४, सा० ४३-३७, सासी० ३१-४०, स० ११२-१९—

१. सा० सासी० लोह लुहालै अगिनि में ।

[२८] दा० २०-२, नि० २१-६, सा० ४३-५, सावे० ७३-४, सासी० ३१-२९, गुण० ११०-९—

१. दा० नि० कामिनि सीनीं खांणि की, सा० कामिनि सीठी खांड सो, गुण० कामिनि सीनीं खांनि की । २. दा० नि० जे छेड़ै । ३. दा० नि० ती । ४. सासी० गुरु (सांप्रदायिक प्रभाव) ।

[१९] दा० २०-३, नि० २१-१०, सा० ४३-९, सासी० ३१-३७, स० ११२-१८, गुण० ११०-१६—

१. सासी० बैठत (उर्दू मूल) । २. स० संसार है ।

[२०] दा० २०-१४, नि० २१-२२, सा० ४३-३५, सासी० ३१-४९, स० ११२-२, गुण० ११०-१३—

१. नि० जूठ । २. दा० गुण० निकटि रहै ।

[२१] दा० २०-१९, नि० २१-४७, सा० ४२-५८, सावे० ५३-१४, सासी० ६२-७—

१. नि० कामीं कूं ईश्वर नहीं भावै । २. सा० सावे० सासी० बिल को लेवै सोध । ३. सा० सावे० सासी० भाजै । ४. दा० भावै स्वयं रही प्रमोधि ।

[२२] दा० २०-२१, नि० २१-४७, सा० ६३-६०, सावे० ५३-१६, सासी० ६२-५—

१. दा० बिषै, सासी० कामी । २. नि० सा० सावे० सासी० पूरवला भाग ।

[२३] दा० २०-२३, नि० २१-४३, सा० ४३-५६, सावे० ५३-६, सासी० ६२-५—

[२४] दा० २०-२६, नि० २८-५, सा० ४३-५१, सावे० २७-४ तथा ५३-१२, सासी० ३५-२८ तथा २६-६—

१. सावे० सासी० निरभय । २. दा० भूजै (उर्दू मूल), नि० सा० सावे० सासी० सुगतै । ३. सा० सावे० सासी० नरक । सावे० तथा सासी० में पुनरावृत्ति मिलने से दोनों में संकीर्ण-संबंध सिद्ध होता है ।

माया मोठी जगत मैं, जैसी मोठी खांड ।
 सतगुर की किरपा भई, नहिंतर करती^२ भांड ॥७॥
 कबीर माया डाकिनीं, सब काहूँ कौं खाइ ।
 दांत उपाहूँ पापिनीं, जे संतां नेड़ी^२ जाइ ॥-॥
 सांकर^१ हूँ तैं सबल है, माया इहिं संसार ।
 ते क्यूँ छूटे बांपुरे, जिनि बांधे सिरजनहार^२ ॥६॥
 बाड़ चढ़ती बेलरी^१, उरभी आसा फंध ।
 टूटे पर छूटे^२ नहीं, भई जो वाचाबंध ॥१०॥
 कबीर माया पापिनीं, हरि सौं करै हरांस ।
 मुख कड़ियाली कुमति^१ की, कहन न देई रांस ॥११॥
 आसा जीवै जग मरै, लोग मरे मरि^१ जाहिं ।
 धन संचै तेई सुए^२, सो उबरे जे खाहिं^३ ॥१२॥
 त्रिस्तां सींचीं नां बुझै^१, दिन दिन बढ़ती जाइ ।
 जाबासा का रूख ज्यों, घन मेहां कुम्हिलाइ ॥१३॥
 कबीर जग^१ की को कहै^२, भोजलि^३ बूड़ै दास ।
 पारब्रह्म^४ पति छाड़ि करि, करै मान^५ की आस ॥१४॥

[७] दा० १६-७, नि० ११-९, सा० ३७-१२, साबे० ७२-१६, सासी० ३०-७, स० ११६-१२-

१. दा० सा० साबे० सासी० कबीर माया मोहिनीं (पुनरावृत्ति; तुल० पीछे पाँचवीं साखी का प्रथम चरण जिसका पाठ है : कबीर साया मोहनी, मोहै जान सुजान) । २. नि० होते ।

[८] दा० १६-२१, नि० १९-१२, सा० ३७-१४, साबे० ७२-२०, सासी० ३०-१० सासी० ११६-१३-

१. दा० किसही । २. सा० संती नियरे, साबे० संतनि बिगि ।

[९] दा० १६-२४, नि० १९-२४, सा० ३७-२८, सासी० ३०-४०, स० ११६-१०-

१. दा० दा० संकल, दा० नि० सांकुल । २. नि० सा० सासी० अपने बल छूटे नहीं, छोड़ै सिरजनहार ।

[१०] दा० १६-२६, नि० ११-२८, सा० ३६-१८, सासी० ६८-१७, स० ११६-११-

२. दा० बेलि ज्यू । २. सा० सासी० जुटै ।

[११] दा० १६-४, नि० १९-४, सा० ३७-४, सासी० ३०-४, स० ११६-८-

१. सा० सासी० कुबुधि ।

[१२] दा० १६-१२, नि० १९-१४, सा० ३६-३, साबे० ४१-१, सासी० ६८-४, गुण० ८३-४-

१. साबे० मन (कैथी मूल) । २. सा० सासी० धन संचै ते भी मरै, दा० गुण० सोइ सुए धन संचते । ३. सा० सासी० उबरे जो धन (पुन०) खाहिं ।

[१३] दा० १६-२४, नि० १९-१७, सा० ४४-६, साबे० ४४-३, सासी० ६८-२४, गुण० ८३-६-

१. नि० चटै ।

[१४] दा० १६-१६, नि० १९-२०, सा० ३७-२४, साबे० ४१-८, सासी० ६८-१८, गुण० १२०-२०-

१. दा० जुरा (उर्दू मूल) । २. दा० सा० सासी० कह कह । ३. सा० जो भल । ४. साबे० सासी० सतगुरु सग (समिदाधिक मूल) । ५. दा० नि० सिख, सा० साबे० सासी० मनुष ।

रज बीरज की कोथली^१, तापर साजा रूप ।

एक नाम^२ बिनु बूड़िहै^३, कनक कामिनी कूप ॥१५॥

जानों जे हरि कौ भजों^४, सो मति मोटी आस ।

हरि बिचि घालै^५ अंतरा, माया बड़ी बिसास^६ ॥१६॥

कबीर माया मोहिनी^७, जब जगु वाला धानि ।

कोई एक^८ जन ऊबरै, जिनि तोड़ी^९ कुल की कांनि ॥१७॥

कबीर माया पापिनी^{१०}, मांगी मिलै न हाथि ।

मनहि^{११} उतारी झूठ करि^{१२}, तब^{१३} लागी डोलै साथि ॥१८॥

कबीर माया मोह की^{१४}, भइ अधियारी^{१५} लोइ ।

जे सूते^{१६} ते सुसि लिए^{१७}, रहे बस्तु कौ रोइ ॥१९॥

कबीर सो धन संचिए, जो आगां कौ^{१८} होइ ।

झूड़^{१९} चढ़ाए पोठली^{२०}, लै जात न देखा कोइ ॥२०॥

माया^{२१} तरवर त्रिविध का, साखा^{२२} बिखै^{२३} संताप ।

सीतलता सुपिनै नहीं^{२४}, फल फीका तन ताप ॥२१॥

रामहि^{२५} थोरा^{२६} जानि करि, दुनिया आगै दीन ।

जीवां^{२७} कौ राजा कहै, माया^{२८} के आधीन ॥२२॥

[१५] दा० १६-१९, नि० २१-२६, सा० ४२-४८, सावे० ७२-७८, सासी० २१-२६, गुण० १००-२२-
१. दा० दा० गुण० कली, सा० सावे० सासी० कोठरी । २. गुण० राम । ३. सा० सासी०
बूड़सी (राज० मूल) ।

[१६] दा० १६-२४, नि० १९-२६, सा० ३०-३८, सावे० ७२-७८, सासी० ३०-३२-
१. नि० सा० सावे० सासी० में जातुं हरि सु मिलूं । २. नि० पाहै, सा० सावे० सासी० डारै ।
३. सावे० सासी० पिचास, नि० जपास ।

[१७] दा० १६-२८, नि० १९-२८, सा० ३०-३८, सावे० ७२-७८, सासी० ३०-३८-
१. नि० साधू । २. सा० सावे० सासी० में 'जिनि' शब्द नहीं है ।

[१८] दा० १६-२८, नि० १९-२८, सा० ३०-३८, सावे० ७२-७८, सासी० ३०-३८-
१. दा० सासी० मोहिनी । २. सा० सासी० मना । ३. नि० मनहि उतारी कट है । ४. सा०
सावे० सासी० में 'तब' शब्द नहीं है ।

[१९] दा० १६-२४, नि० १९-२८, सा० ३०-३८, सावे० ७२-७८, सासी० २०-२८-
१. नि० सा० सावे० सासी० मोहिनी । २. दा० दा० अंधारी । ३. सावे० सासी० सोए ।
४. सावे० सासी० सुसि लिए ।

[२०] दा० १६-२८, नि० १९-२८, सा० ३०-३८, सावे० ६०-६८, तथा ७२-७८, सासी० ६०-२१-
१. सा० सावे० सासी० आगे कौ । २. सा० सावे० सीख । ३. सा० सावे० सासी० गाठरी ।

[२१] दा० १६-२०, नि० १९-२३, सा० ३०-३४, सावे० ७२-७८, सासी० ३०-३१-
१. दा० कबीर । २. सावे० सासी० लोक । ३. दा० नि० सा० सासी० दुख । ४. नि० सीतल
काया गहर फल ।

[२२] दा० १६-२८, नि० १९-२४, सा० ३०-३४, सावे० ६०-६८, सासी० ३०-३१ तथा ६०-२२-
१. सावे० नामहि (राज० प्रभाव) । २. सावे० सासी० (२) छोटा । ३. सावे० सासी० जावन ।
४. सासी० (२) कृष्ण ।

मानं महातम प्रेम रस, गरवातन गुण नेहु^१ ।
 ए सबही अहला गए^२, जबहि कहा कछु देहु ॥२३॥
 पूत पियारो पिता कौ^३, गौहनि^२ लागस धाइ ।
 लोभ मिठाई हाथि दै, आपुन गया मुलाइ ॥२४॥
 बगुली नीर बिठारिया, सायर^१ चढ़ा कलंक ।
 और पंखेरु पी गए^२, हंस न बोरै^३ चंच ॥२५॥
 माया हमसौं यौं कहै^१, तू मति^२ देखि पूठि^३ ।
 और हमारे बसि पड़े^४, गया कबीरा छुठि ॥२६॥
 माया मुई न मन मुआ, मरि मरि गया सरीर ।
 आसा तृस्तां नां मुई, यौं कहै दास कबीर^१ ॥२७॥
 आसा का ईधन करौं, मनसा करौं भभूत ।
 जोगी फेरी फिल करौं, यौं बिन नाऊं सूत^२ ॥२८॥

(३२) बेसास कौ अंग

कबीर का तूं चितवै, का तेरे चितें होइ ।^१
 आपन चिता^२ हरि करै, जो तोहि चिति न होइ^३ ॥१॥

[२३] दा० ३५-१४, नि० ३७-२८, सा० ४५-३, सावे० ५५-५, सासी० ८-११—

१. सा० सावे० सासी० आव गया आदर गया, नैनन गया सनेह (सा० गया नैन का नेह) ।

२. नि० कहे कबीर ए सत्र गया, सा० सावे० सासी० यह तीनों भवहीं गए । तुल० लोकमचलित दोहा : मान बढ़ाई प्रेम रस, गुरुवाई अरु नेह । ए पांवीं तबही गए, जबहि कहा कछु देहु॥

[२४] दा० ३-३१, नि० १७-३७, सा० ३७-३३, सावे० ५५-९, सासी० ३०-४२—

१. सा० सासी० बाप को । २. सावे० संग रे ।

[२५] दा० १६-३०, नि० १९-३९, सा० ३७-२०, सासी० २७-२२, सा० ५६-३, गुण० १०५-३५—

१. नि० सरवर । २. सासी० पीविइया । ३. दा१ दा२ बोवै, दा३ बोले (उद्गू मूल), गुण० बोवै (नागरी मूल) ।

[२६] दा० १६-२९, नि० १९-३०, सा० ३७-२९, सासी० ३०-१५, गुण० १०५-३४—

१. नि० सा० सासी० कबीर माया यूं कहे । २. दा३ जिन । ३. सा० सासी० पीठि ।

४. दा१ दा२ गुण० और हमारे हंस बलू (दा३ नि० हम वसु) ।

[२७] दा० १६-११, नि० १९-१३, सा० ३७-१७, सासी० ३०-२८, गुण० ८३-४—

१. दा० गुण० यूं कहे गया कबीर, सासी० यूं कधि कहे (पुन०) कबीर ।

[२८] दा० १३-३, सा० ३६-१०, सावे० ५९-१३, सासी० ६८-११, गुण० ८३-२८—

१. सा० सावे० सासी० जोगी फिरि फेरी करूं । २. सा० सावे० सासी० यूं बनि आवै सूत ।

[१] दा० ३५-६, नि० ३७-१६, सा० ६९-८, सावे० २२-१, सासी० २०-९, सा० ४६-१, गु० २१९, गुण० ८४-३५—

१. दा३ नि० सा० सावे० सासी० कबीर का मैं चितऊं, का मेरे चितए होइ, सासी० कबीर चिता क्या करूं, चितां सो क्या होइ, गु० जो मैं चितवउ ना करै (?) किया मेरे चितवे होइ । २. दा१ दा२, सा० गुण० आमन चिता (नागरी मूल), गु० अपना चितविआ, दा३ जे अमचिती । ३. गु० जो मेरे चिति न होइ, दा३ नि० सो मुझे च्यंत न होइ, सा० सावे० सामी० चिता मोहि न कोइ ।

कबीर भली मधूकरी^१, भांति भांति^२ कौं नाज ।
 दावा किसही^३ का नहीं, बिन बिल्लाइट बड़ राज^४ ॥२॥
 पद गाएं लैलीन है, कटो न संसै पास^५ ।
 सबै पछोड़े थोथरे, एक बिनां बेसास^६ ॥३॥
 रचनहार कौं चीन्हि लै, खावे कौं^७ क्या रोइ ।
 दिल^८ मंदिर में पैठि कै, तांनि पछेवरा^९ सोइ ॥४॥
 चिंता छाड़ि^{१०} अचित रह, साईं है^{११} समरत्य ।
 पसु पंखेरु जीव जंतु, तिनकी गांठी किंसा मरत्य^{१२} ॥५॥
 संत न बांधै गाठरां^{१३}, पेट समाता^{१४} लेइ ।
 आगै पाटै हार खड़ा^{१५}, जब^{१६} मांगै तब देइ ॥६॥
 रांन नांम सौं^{१७} दिल मिली^{१८}, जम हंम परी विराइ^{१९} ।^{२०}
 मोहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरकि न जाइ ॥७॥

[२] दा० ३५-१३, नि० ३०-२७, सा० ६१-२४, सावे० ५४-४४, सासी० २०-२१, स० १२३-१, गु० १६५, गुण० ११५-१२—

१. स० खूब खान है मधूकरी (तुल० २१-३ : खूब खान है खीचरी), दा० गुण० मीठा खाण मधूकरी, नि० सा० सावे० सासी० सय ते मली मधूकरी । २. गु० नाना विधि । ३. गु० काह, नि० सा० सावे० सासी० किंसा । ४. गु० बड़ा देखु बड़ राज, नि० गुण० बिन बिलात बड़ राज, सा० सावे० सासी० बिना बिलाइत राज ।

[३] दा० ३५-१९, नि० ३०-३५, सा० ६१-१९, सावे० २२-१२, सासी० २०-१६, स० १२१-१—
 १. सा० सावे० सासी० फांस । २. सा० सावे० सासी० विश्वास ।

[४] दा० ३५-३, नि० ३०-४, सा० ६१-२, सावे० ५४-४५, सासी० २०-४, गुण० ५४-२१—
 १. दा३ नि० करि । २. सा० सावे० सासी० खाने को । ३. नि० सा० सासी० मन । ४. सा० सासी० पिछौरी, सावे० पिछौरा ।

[५] दा० ३५-९, नि० ३०-२२, सा० ६१-१०, सावे० २२-३, सासी० २०-११, गुण० ५४-३६—
 १. दा० सावे० गुण० चिंता न करि । २. सा० सावे० सासी० देनहार । ३. दा३ सा० सावे० सासी० तिनकी गांठी किंसा मरत्य (नागरी मूल) । सासी० में यह साजी अन्यत्र भी मिलती है, तुल०, सासी० ५०-११ : चिंता मत कर निचित रह, पूरनहार समर्थ । जला थल में जो जीव है, उनकी गांठि न अर्थ ॥

[६] दा० ३५-१०, नि० ३०-२३, सा० ६१-१२, सावे० २२-२, सासी० २०-५, गुण० ५४-३०—
 १. सावे० साधु गांठि न बांधै, सा० सासी० हरिजन गांठि न बांधी । २. नि० सा० सावे० सासी० उदर समानां । ३. दा० साईं सुं सनमुख रहे । ४. दा० गुण० जहाँ, सासी० जो । ५. दा० गुण० तहाँ, सावे० सा० सासी० सो ।

[७] दा० ३५-११, नि० ३०-२६, सा० २०-७१ तथा ६१-१५, सावे० २२-६ तथा ५४-७० सासी० २०-३, गुण० १४-१५—

१. सावे० सासी० संतनाम से (संप्रदायिक प्रभाव) । २. सा० सावे० सासी० मन मिला । ३. नि० जम बिच परी विराइ, सा० सावे० सासी० जम से परा दुराव । ४. सा० (१) सावे० (२) जब दिल मिला दयाल सौं, फांसी परी बिलाय । सा० तथा सावे० में पाठ की पुनरावृत्ति दोनों में एक ही है।
 Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भूखा भूखा क्या करै, कहाँ सुनावै लोग ।
 भाड़ा गढ़ि जिन मुख दिया^२, सोई पुरवन जोग ॥८॥
 चिंतामनि चित^१ मैं बसै, सोई चित मैं आनि ।
 बिन चिता^२ चिता करै, इहै प्रभू की वांनि^३ ॥९॥
 पांडल पंजर^१ मन भंवर, अरथ अनूपम नास ।
 राम^२ नाम सींचा अमीं, फल लागा बेसास^३ ॥१०॥
 मेरि मिटी सुकला भूया, पाया अगम^१ निवास^२ ।
 अब मेरै दूजा कोई नहीं, एक तुम्हारी आस ॥११॥
 जाके हिरदै^१ हरि बसै, सो जन^२ कल्पै काइ ।
 एकै लहरि समुंद की, दुख दालिद सब जाइ^३ ॥१२॥
 गावन ही मैं रोज है^१, रोवन ही मैं राग ।
 इक बैरागी ग्रिह करै^२, एक ग्रिही बैराग^३ ॥१३॥
 गाया तिन^१ पाया नहीं, अनगाया तैं दूरि^२ ।
 जिन^३ गाया बिसवास गहि^४, तिनसों राम हजूरि^५ ॥१४॥

[८] दा० ३५-२, नि० ३७-३, सा० ६९-१, सासी० २०-५, गुण० ८४-२०—

१. नि० क्या रे । २. सा० सामी० भाड़ा बड़िया मुख दिया । 'गुणभोजनामा' में यह सासी नानक की छाप के साथ भी मिलती है, तुल० ८४-३० : नानक चिंता न करि, चिंता उपजै रोग । जिनि ए भाड़े साजिए, सोई पुरान जोग ॥

[९] दा० ३५-५, नि० ३७-६, सा० ६९-७, सासी० २०-१०, गुण० ८४-३४—

१. दा१ बा२ मन । २. सा० बिना प्रेम, सासी० बिना प्रभू । ३. सा० सासी० यह मूरख की मानि ॥

[१०] दा० ३५-१० (दा२ में नहीं है), नि० ३७-३७, सा० ६९-१८, सावे० २२-११०, सासी० २०-१५—

१. सावे० सासी० पिजर (उर्दू मूल) । २. सावे० सासी० एक । ३. सा० सावे० सासी, बिस्वास ।

[११] दा० ३५-१७, नि० ६४-३३, सा० २०-२५, सावे० ४३-१०, सासी० १४-२७—

१. दा० नि० ग्रह । २. दा० नि० बिसास (नागरी मूल) ।

[१२] दा० ३५-१८, नि० ३७-३१, सा० ६९-२५, सावे० ८४-१५, सासी० २०-२२—

१. दा० दिल में । २. दा० नर । ३. सा० सासी० बहि जाहि ।

[१३] दा० ३५-२०, नि० ३७-३३, सा० ६९-२१, सावे० २२-१४, सासी० २०-१८—

१. सा० सावे० सासी रोवना । २. सा० सावे० सासी० एक बनही में घर करे । ३. सा० सावे० सासी० एक घर ही बैराग ।

[१४] दा० ३५-२१, नि० ३७-३४, सा० ६९-२०, सावे० २२-१३, सासी० २०-१७—

१. सा० सावे० सासी० नि० Public Domain. Digitized by eGangotri Collection. Digitized by eGangotri Collection. दा० सा०

जाको जेता निरमया, ताको तेता होइ^१ ।
 राई घटे न तिल बढै, जो सिर कूटे कोइ ॥१५॥
 मांगन मरन समान है, बिरला बंचै कोइ^१ ।
 कहै कबीरा राम सो^१, नति रे संगवै मोहि ॥१६॥

(३३) करनीं कथनीं कौ अंग

कबीर पढ़िवा^१ दूरि करि, पुसतग^२ देहु^३ बहाइ^४ ।
 बावन अक्खर^५ सोधि कै, ररै मरै चित लाइ^६ ॥१॥
 मैं जानौं पढ़िबौ^७ भलो, पढ़िवा तैं^८ भल जोग ।
 भगति न छांडौं राम की^९, भावै^{१०} निदउ लोग ॥२॥
 पोथी^१ पढ़ि पढ़ि जग सुवा, पंडित भया^२ न कोइ ।
 एकै आखर प्रेम^३ का, पढ़ै सो पंडित होइ ॥३॥
 कथनीं कथी^४ तौ क्या भया^५, जो करनीं नां ठहराइ ।
 कालवृत्त^६ के कोट ज्यों, देखत ही दहि^७ जाइ ॥४॥

[१५] दा० ३५-२, नि० ३७-११, सा० ६१-३, सासी० ७१-१५, स० ८८-१, गुण० ८५-५-
 १. सासी० जाको जितना निर्मान किय, ताको तितना होय, सा० करम करीमा लिखि रहा, अब
 कछु लिखा न होय । तुल० दा० ३५-७ : करम करीमा लिखि रहवा, अब कछु लिखा न जाइ ।
 मासा घटे न तिल बचै, जे कोटिक करे उपाइ ॥

[१६] दा० ३५-१५, नि० ३७-२१, सा० १०-३७, सासी० ८-२, स० १११-१, गुण० ११५-१३-
 १. सा० सासी० सीख दई मैं तोहि । २. दा१ नि० कहै कबीर रघुनाथ सू० (दा२ गोविंद
 सो), सा० सासी० कहै कबीर सतगुरु सुनो ।

[१] दा० १९-२, नि० २४-२०, सा० ४०-३७, सावे० ८३-१२, सासी० ५८-८, स० ८६-३,
 गु० १७-२, गुण० १५७-२-

१. सा० सावे० सासी० पढ़ना, गु० संसा । २. सा० सावे० सासी० पोथी । ३. नि० गु० देह ।
 ४. गु० विहाइ (उर्दू मूल) । ५. गु० अखर, सा० सावे० सासी० अक्खर । ६. गु० हरि चरनी
 चितु लाइ, सा० राम नाम लौ लाइ, सावे० सासी० सत्तनाम लौ लाइ (सांमदायिक प्रभाव) ।

[२] दा० १९-१, नि० २४-१८, सा० ४०-३५, सासी० ५८-१०, गु० ४५, गुण० १५७-१-
 १. दा० जान्यू (उर्दू मूल) । २. गु० पढ़िबौ (पंजाबी उच्चारण), सा० सासी० पढ़ना
 (आधुनिक प्रभाव) । ३. गु० पढ़िबे सिउ, सा० सासी० पढ़ने ते । ४. दा० सा० गुण० राम नाम
 सू० प्रीति करि, नि० राम नाम गावै गही, सासी० सत्तनाम सौ प्रीति करि (कबीरपंथी प्रभाव) ।
 ५. दा० नि० गुण० भल भल ।

[३] दा० ३३-४, नि० २४-२२, सा० ४०-३७, सावे० ८३-७, सासी० ५८-७, स० ८६-७,
 गुण० १५७-४-

१. दा० पोथा । २. नि० सा० सावे० सासी० हुआ । ३. दा१ दा२ गुण० पीव ।
 [४] दा० १८-१, नि० २०-१४, सा० ४१-१, सावे० २८-१९, सासी० ५१-१, स० ८६-३,
 गुण० १५६-११-

१. सावे० क्या, सासी० कयै । २. सा० सावे० सासी० हुआ । ३. सा० सासी० कलावृत्त, सावे०
 कलावत् । ४. दा३ पंथि ।

पद गाएं मन हरखिया^१, साखी कहैं अनंद ।
 जो तत नाउं न जानिया^२ गल में परिया फंद^३ ॥५॥
 रामहिं राम पुकारतैं^१, जिभ्या परिया रौस^२ ।
 सूधा जल^३ पीवै नहीं, खोदि^४ पियन की हौंस ॥६॥
 ऊंचे कुल क्या^१ जनमिया, जे करनीं ऊंचि न होइ ।
 सोवन कलस सुरै भरा^२, साधुन निदा सोइ ॥७॥
 करता दीसै कोरतन, ऊंचा करि करि तूंड^३ ।
 जानैं बूझै कछु नहीं, यौ ही अंधा हंड^४ ॥८॥
 जैसी मुख तैं नोकसै, तैसी चालै नाहि ।
 मानुख नहीं ते^१ स्वान गति, बांधे जमपुर जाहि ॥९॥

(३४) सहज कौ अंग

सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्हैं कोइ ।
 जिहि^१ सहजैं बिखया तजै, सहज कहावै^२ सोइ ॥१॥
 सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्हैं कोइ ।
 जिहि^१ सहजैं साहिव^२ मिलै, सहज कहावै सोइ ॥२॥
 सहजैं सहजैं सब गए, सुत बित कांमनि कांम^३ ।
 एकमेक होइ मिलि रहा, दास कबीरा राम^४ ॥३॥

[५] दा० १८-३, नि० २०-१३, सा० ४०-१२, सावे० ८४-३३, सासी० ३४-१२, स० ८६-१०, गुण० १५६-८—

१. सा० राम नाम नहि जानिया । २. सासी० सतनाम (सांप्रदायिक प्रभाव) नहि जानिया ।
 ३. नि० तब लग गल में फंद ।

[६] सा० ४१-१०, सावे० २८-१३, सासी० ५१-१४, वी० २० सा० ३३—

१. सा० सावे० सासी० पद जोरै साखी कहै । २. सा० सावे० सासी० साधन परि गई रोस ।
 ३. सा० सावे० सासी० काढ़ा । ४. सा० सावे० सासी० काढ़ि ।

[७] दा० २५-७, नि० २६-८, सा० ४६-१२, सावे० ३७-१७, सासी० १-४७, स० २१-१—

१. सावे० कहा, सासी० कह । २. दा० सोवन कलस सुरै भरया, नि० कनक कलस जे बिख भरया,
 सा० सावे० सासी० कनक कलस मद सौ भरा ।

[८] दा० १८-५, नि० २०-२०, सा० ४०-१३, सावे० ८४-४६, सासी० ३४ १३, स० ८६-१४—

१. सा० सासी० दंभ । २. सा० सासी० रंभ ।

[९] दा० १८-३, नि० २०-१८, सा० ४२-३, सावे० २८-१५, सासी० ५२-९—

१. सा० सावे० सासी० वे ।

[१] दा० २१-१, नि० २२-१, सा० ५१-३ सावे० २५-२, सासी० ३६-३, स० १२५-१

१. दा३ नि० ज्याह, दा३ दा३ जिन्हि । २. दा३ दा३ कहीजे ।

[२] दा० २१-४. नि० २२-५, सा० ५१-१, सावे० २५-१, सासी० ३६-१—

१. दा३ दा३ जिन्ह, दा३ नि० ज्याह । २. दा० हरि जी, नि० साई । ३. दा० कहीजे ।

[३] दा० २१-३, नि० २२-४, सा० ५१-५, सावे० २५-४, सासी० ३६-५—

१. सा० सावे० सासी० काम निकल (उद प्रस) । २. सावे० सासी० (सांप्रदायिक प्रभाव) ।

परिशिष्ट

(क) अनुक्रमणिका

पद

क्र० सं०	प्रथम पंक्ति	पद सं०	पृ० सं०
१.	अजहूँ मिलै कैसे दरसन तोरा	... ४७	२७
२.	अपनै विचारि असवारी कीजै	... ८१	४७
३.	अब कहूँ राम कवन गति मोरी	... ४६	२७
४.	अब क्या कीजै ग्यान विचारा	... ११८	६६
५.	अब तोहि जान न देहूँ राम पियारे	... ७	६
६.	अब मन जागत रहूँ रे भाई	... ८०	४७
७.	अब मेरी राम कहइ रे बलइया	... १४०	८२
८.	अब मोहि नाचिबौ न आवै	... ५०	२६
९.	अब मोहि राम भरोसा तोरा	... ३८	२३
१०.	अब हम सकल कुसल करि मानां	... १०७	६२
११.	अबिनासी दुलहा कब मिलिहौ	... १५	१०
१२.	अल्लह राम जिऊं तेरे नाई	... १७७	१०३
१३.	अबधूँ असा ग्यान विचारी	... १६०	६३
१४.	अबधूँ कुदरत की गति न्यारी	... १५७	६१
१५.	अबधूँ जानि राखि मन ठाहरि	... १४२	८३
१६.	अबधूँ जागत नींद न कीजै	... १२२	७२
१७.	अबधूँ मेरा मनु मतिवारा	... ५६	३२
१८.	अबधूँ सो जोगी गुर मेरा	... १०८	६३
१९.	आऊंगा न जाऊंगा मछंगा न जोऊंगा	... १६३	११२
२०.	आसन पवन दूरि करि रखरा	... १७२	१००
२१.	आहि मेरै ठाकुर तुम्हरा जोर	... २३	१४
२२.	इह जिउ राम नाम लिउ लागै	... १३०	७६
२३.	इहि तनु राम जपहु रे प्रांनीं	... १३८	८१
२४.	इहु धन मेरी हरि कै नाउं	... २२	१४
२५.	एक अचंभी देखा रे भाई	... ११६	६८
२६.	एक सुहागिनि जगत पियारी	... १६२	६५

क्र० सं०	प्रथम पंक्ति	पद सं०	पृ० सं०
२७.	एहि बिधि सेइए स्त्री नरहरी	१२३	७३
२८.	असा ग्यांन बिचारि लै लै लाइ लै ध्यानां	११७	६६
२९.	असा ग्यांन बिचार मनानां	७१	४२
३०.	असा भेद विगूचनि भारी	१८१	१०५
३१.	असी नगरिया मैं केहि बिधि रहनां	६५	५५
३२.	असे लोगन सों का कहिए	१६७	६७
३३.	कबीरा बिगरचौ राम दोहाई	१६६	६७
३४.	कहा करउं कैसें तरउं भव जल निधि भारी	३६	२३
३५.	कहा नर गरबसि थोरी बात	७३	४३
३६.	कहु पंडित सूचा कवन ठाउं	१६२	१११
३७.	कहु रे मुल्ला बांग निवाजा	१२६	७६
३८.	कही भइया अंबर कासों लागी	१२५	७४
३९.	काजी तैं कवन कतेव वखानों	१७८	१०४
४०.	का नांगे का बांधे चांम	१७४	१०१
४१.	काया बौरी चलत प्रांन काहे रोई	१०४	६०
४२.	काया मांजसि कौन गुनां	१७१	६६
४३.	काहे मेरे वाम्हन हरि न कही	१६६	११४
४४.	कुसल खेम अरु सही सलांमति	१०२	५६
४५.	कैसें नगर करों कुटवारी	१२०	७१
४६.	को न मुवा कहु पंडित जनां	१०३	६०
४७.	कोरी कौ काहू मरमु न जानां	१५०	८८
४८.	कौन मरे कौन जनमैं आई	१६४	११२
४९.	क्या मांगों किछु धिर न रहाई	६६	५८
५०.	क्यों लीजै गढ़ बंका रे भाई	२५	१५
५१.	गुणां का भेद न्यारौ न्यारौ	१७६	१०२
५२.	गुरु बिन दाता कोइ नहीं	३	४
५३.	गोकुल नाइक बीठला	१०	७
५४.	गोविंद हंम असे अपराधी	४०	२४
५५.	गोविंदे तुम्हारै बनि कंदलि	१२१	७१
५६.	चतुराई न चतुरभुज पइए	७७	४५

क्र० सं०	प्रथम पंक्ति	पद सं०	पृ० सं०
५७.	चञ्चल कत ठेढ़े ठेढ़े ठेढ़े	६६	४०
५८.	चलन चलन सब कोइ कहत है	२६	१८
५९.	चलहु विचारि रहहु संभारी	१७७	६६
६०.	चलि चलि रे भंवरा कंवल पास	७५	४४
६१.	चारि दिन अपनीं नीवति चले बजाइ	१००	५८
६२.	जउ मैं बउरा तउ रांम तोरा	१८६	११०
६३.	जतन बिनु मिरगनि खेत उजारे	६१	५३
६४.	जहं सतगुरु खेलत रिनु वसंत	१४६	८७
६५.	जाइ पुछी गोविंद पढ़िया पंडिता	११६	७०
६६.	जाइ रे दिन ही दिन देहा	६८	५७
६७.	जानीं जानीं रे राजा रांम की कहानीं	११२	६६
६८.	जारौं मैं या जग की चतुराई	१६४	६६
६९.	जिअ रे जाहिगा मैं जानां	१८६	१०८
७०.	जिअत न मारि मुवा मति लावै	१२४	७३
७१.	जियरा जाहुगे हम जानीं	६२	५४
७२.	जिहि नर रांम भगति नहि साधी	६४	३७
७३.	जोगिया फिरि गयो नगर मंझारी	१५१	८८
७४.	जौ जांचउं तौ केवल रांम	१५५	६०
७५.	जौ पै करता बरन बिचारै	१८२	१०६
७६.	जौ पै बीजरूप भगवान	१८०	१०५
७७.	जौ पै रसनां रांमु न कहिबौ	७८	४६
७८.	झगरा एक निवेरहु रांम	२७	१७
७९.	झूठा लोग कहैं घर मेरा	८६	५२
८०.	झूठे तनकौं क्या गरबावै	६२	३६
८१.	डगमग छांड़ि दे मन बौरा	५८	३३
८२.	तन घरि सुखिया कोइ न देखा	६०	५२
८३.	तननां बुतनां तज्यौ कबीर	१२	६
८४.	तहां मों गरीब की को गुदरावै	४२	३५
८५.	तातैं सेइए नाराइनां	१०१	५६
८६.	ता मन कौं खोजहु रे भाई	४८	३२

क्र० सं०	प्रथम पंक्ति	पद सं०	पृ० सं०
८७.	तेरा जनु एक आध है कोई	३२	१६
८८.	दरमांदा ठाढ़ो दरबारि	४५	२६
८९.	दुलहिनीं गावहु मंगलचार	५	५
९०.	देव करहु दशा मोहि मारगि लावहु	१३२	७८
९१.	नहीं छांडउं रे बाबा राम नाम	२६	१६
९२.	नाचु रे मन मेरो नट होइ	१४	१०
९३.	नाथ जो हंम तव के बैरागी	१४३	८४
९४.	नाम (राम ?) भजा सोइ जीता	६४	५५
९५.	नाम (राम ?) सुमिरि नर बावरे	६६	५६
९६.	नारद साध सौं अंतर नाहीं	३५	२१
९७.	निरगुन राम जपहु रे भाई	१५३	८६
९८.	निरमल निरमल हरिगुन गावै	३०	१८
९९.	पंडिआ कवन कुमति तुम लागे	१६१	१११
१००.	पंडित बाद वदै सो झूठा	१७६	१०५
१०१.	पवनपति उनमनि रहनु खरा	११५	६८
१०२.	पिया मोरा मिलिया सत्त गियांनो	१७	११
१०३.	पूजहु राम एक ही देवा	८४	४६
१०४.	प्रांतीं काहे कै लोभ लागे	६०	३५
१०५.	फल मीठा पै तरवर ऊंचा	१४६	८६
१०६.	फिरहु का फूले फूले फूले	६८	४०
१०७.	बंदे खोज दिल हर रोज	८७	५१
१०८.	बनमाली जानैं बन की आदि	१४१	८३
१०९.	बहुत दिनन मैं प्रातम आए	६	६
११०.	बहुरि हंम काहे को आवाहिगे	५७	३२
१११.	बाबा अब न बसउं एहि गांउं	४१	२४
११२.	बाबा माया मोह मो हितु कीन्ह	६७	३६
११३.	बालम आउ हमारे ग्रेह रे	१३	६
११४.	बावरे तै ग्यान बिचार न पाया	८८	५१
११५.	बिखिया अजहूं सुरति सुख आसा	१५६	६३
११६.	बिखै बांचु हरि रांचु समुक्ति मन बौरा रे	६७	५७

अनुक्रमिका

२४६

क्र० सं०	प्रथम पंक्ति	पद सं०	पृ० सं०
११७.	बोलनां का कहिए रे भाई	६१	३५
११८.	भजि गोविंद भूलि जनि जाहु	६३	३६
११९.	भाई रे अनीं लड़े सोई सुरा	५९	३४
१२०.	भाई रे विरले दोस्त कबीर के	६६	३६
१२१.	भाग जाकै संत पाहुनां आवै	३३	२०
१२२.	भूली मालिनीं है एउ	१८७	१०९
१२३.	मन न डिगै तनु काहे कउ डेराइ	२४	१५
१२४.	मन बांनिशां बांनि न छोड़े	९३	५४
१२५.	मन मोरा रहटा रसनां पिउरिया	१३६	८०
१२६.	मन रे अहरखि (आहर कहं) बाद न कीजै	६५	३७
१२७.	मन रे मनहीं उलटि समांनां	१३४	७९
१२८.	मन रे संसार अंध कुहेरा	८५	५०
१२९.	मन रे सरचौ न एको काजा	८६	५०
१३०.	माघौ कब करिहौ दायी	३६	२२
१३१.	माघौ दाखन दुख सख्यौ न जाइ	४३	२५
१३२.	मानुस तन पायौ बड़े भाग	१४८	८७
१३३.	माया महा ठगिनि हंम जानीं	१६३	९५
१३४.	मोयां तुम्हसों बोल्यां बनि नहि आवै	१८४	१०७
१३५.	मुल्ला कहहु निम्राउ खुदाई	१८३	१०६
१३६.	मेरी जिम्मा बिस्तु	१८८	१०९
१३७.	मेरी मति बउरी मैं रांम बिसारचौ	१३५	८०
१३८.	मेरी मेरी करतां जनम गयी	८३	४८
१३९.	मैं कातीं हजारी क सूत	११०	६४
१४०.	मैं सबहिन महि	५३	३०
१४१.	मैं सासुरे पिय गौंहनि	१०९	६३
१४२.	मोहि अैसें बनिज सौं	१२६	७४
१४३.	मोहि तोहि लागी कैसे छूटै	१८	१२
१४४.	मोहि बैराग भयो	१५६	९१
१४५.	यहु ठग ठगत सकल जग डोलै	१३९	८२
१४६.	यहु माया रघुनाथ की बोरी	१६१	९४

क्र० सं०	प्रथम पंक्ति	पद सं०	पृ० सं०
१४७.	रमइआ गुन गाइअ रे	...	८२ ४८
१४८.	रस गगन गुफा में अजर भरै	...	१४५ ८५
१४९.	राखि लेहु हमतैं बिगरी	...	४४ २६
१५०.	राजा राम अनहद किंगरी बाजै	...	१३३ ७९
१५१.	राम चरन जाके ह्रिदै बसत है	...	३१ १९
१५२.	राम चरन मन भाए रे	...	१३१ ७७
१५३.	राम जपत तनु जरि किन जाइ	...	२१ १३
१५४.	राम न रमसि कौन डंड लागा	...	१९७ ११४
१५५.	राम बिनु तनकी तपनि न जाइ	...	९ ७
१५६.	राम भगति अनियालैं तीर	...	८ ७
१५७.	राम मोहि तारि कहां लै जइहौ	...	५४ ३१
१५८.	राम रसु पीआ रे	...	५५ ३१
१५९.	राम राम राम रमि रहिए	...	१६८ ९८
१६०.	राम सुमिरि पछिताइगा	...	७४ ४४
१६१.	राम सुमिरि राम सुमिरि	...	२० १२
१६२.	रामराय चली बिनावन माहो	...	१११ ६५
१६३.	रैन गई मत दिन भी जाइ	...	७० ४१
१६४.	लाज न मरहु कहहु घर मेरा	...	७९ ४६
१६५.	लोका जानि न भूलहु भाई	...	१८५ १०८
१६६.	लोका तुम जो कहत हो	...	१५४ ९०
१६७.	लोका तुम्ह हो मति के भोरा	...	२०० ११६
१६८.	वा घर की सुधि कोइ न बतावै	...	१४७ ८६
१६९.	संतो ई मुरदन कै गांउं	...	१०५ ६१
१७०.	संतो घागा टूटा, गगन बिनसि गया	...	११३ ६६
१७१.	संतो भाई आई ग्यांन की आंधी	...	५२ ३०
१७२.	सतगुरु संग होरी खेलिए	...	१४४ ८४
१७३.	सतगुरु साह संत सौदागर	...	४ ५
१७४.	सभ खलक सयांजीं मैं बीरा	...	१९० ११०
१७५.	सभै मदि माते कोउ न जाग	...	१९८ ११५
१७६.	साधो करता करम सौं न्यारा	...	१५८ ९२

क्र० सं०	प्रथम पंक्ति	पद सं०	पृ० सं०
१७७.	साधो बाधिनि खाई गई लोई	१६५	६६
१७८.	साधो भगति भेख तैं न्यारी	१७५	१०१
१७९.	साधो सो जन उतरे पारा	१८५	११३
१८०.	सार सबद गहि बांचिहौ	१५२	८८
१८१.	सार सुख पाइअरे रे	१७३	१००
१८२.	हंम तौ एक एक करि जानां	७६	४५
१८३.	हंम न मरै मरिहै संसारा	१०६	६२
१८४.	हमारे गुरु दोन्हीं अजब जरी	२	४
१८५.	हमारे गुरु बड़े भ्रिगी	१	३
१८६.	हरि का विलोचनां विलोइ मोरी माई	१२७	७५
१८७.	हरि के खारे बरे पकाए	११४	६७
१८८.	हरि जन्नीं मैं बालक तेरा	३७	२२
१८९.	हरिजन हंस दसा लिए डोलै	२८	१७
१९०.	हरि ठग जगत ठगौरी लाई	४९	३३
१९१.	हरि नांव न जपसि गंवारा	७२	४२
१९२.	हरि बिनु भरमि बिगूने गंदा	१९९	११५
१९३.	हरि मोरा पिउ मैं हरि की	११	८
१९४.	हरि रंग लागा हरि रंग लागा	१६	११
१९५.	है कोई गुर ग्यानीं जगत महि	१३७	८१
१९६.	है कोई संत सहज सुख अंतरि	५१	२९
१९७.	है साधू संसार मैं	३४	२०
१९८.	है हरिजन सौं जगत लरत है	१६९	९८
१९९.	है हजूरि कत दूरि बतावहु	१२८	७५
२००.	हौं वारी मुख फेर पियारे	१९	१२

रमैनी

१.	अब गहि राम नाम अविनासी	२०	१२९
२.	अरु भूले खट दरसन भाई	९	१२१
३.	अलख निरंजन लखै न कोई	१४	१२५
४.	अलपै सुख दुख आहि अनंता	१५	१२६

क्र० सं०	प्रथम पंक्ति		२० सं०	पृ० सं०
५.	आदम आदि सुचि नहि पाई	...	५	११६
६.	आपुहि करता भए कुलाला	...	१०	१२२
७.	ओं ओंकार आदि है मूला	...	१	११७
८.	काल अहेरी सांभ सकारा	...	१२	१२३
९.	खत्री करै खत्रिया घरमां	...	८	१२१
१०.	चलत चलत अति चरन पिरांनां	...	१३	१२४
११.	जिनि कलमां कलि मांहि पढ़ावा	...	६	१२०
१२.	जियरा आपन दुखहि संभारू	...	१७	१२७
१३.	तब नहि होते पवन न पांतीं	...	४	११६
१४.	तेहि बियोग तैं भए अनाथा	...	१६	१२६
१५.	तेहि साहिब कै लागौ साथी	...	३	११८
१६.	पंडित भूले पढ़ि गुनि बेदा	...	७	१२०
१७.	पहिले मन मैं सुमिरी सोई	...	२	११८
१८.	बज्रहु तैं त्रिन खिन मांहि होई	...	१८	१२८
१९.	बावन अक्खर लोक त्रै (चौतीसी रमैनी)	...	१	१२६
२०.	राम नाम निज पाया सारा	...	१६	१२८
२१.	सुख कै विरिखि यहु जगत उपाया	...	११	१२२

साखी

अंग-सा० पृ० सं०

१.	अंक भरे भरि भेटिया	...	६-२६	१७०
२.	अंखियां प्रेम कसाइयां	...	२-२३	१४४
३.	अंखियन तो भाई परी	...	२-३६	१४६
४.	अंतरि कंवल प्रकासिया	...	६-१७	१६६
५.	अंदेसी नहि भाजिसी	...	२-१६	१४३
६.	अंधा नर चेतै नहीं	...	३०-३	२३३
७.	अंबरि कुंजां कुरलियां	...	२-३	१४०
८.	अमृत केरी पूरिया	...	१२-१०	१७८
९.	अगम अगोचर गमि नहीं	...	६-५	१६७
१०.	अनल अकासां घर किया	...	२०-८	२०६
११.	अब तौ असेी होइ परी, मन का भावनु कीन	...	१४-१	१७६

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
१२.	अब तौ अैसी ह्वै पड़ी, नां तूंबरी न बेलि ...	१६-१७	२०८
१३.	अब तौ जूभां ही बनें ...	१४-२५	१८२
१४.	अब तौ मैं अैसा भया ...	६-३६	१७२
१५.	अबरन कौं क्या बरनिए ...	८-५	१६५
१६.	आंगन बेलि अकास पल ...	१३-३	१७६
१७.	आइ न सक्कौं तुज्भ पै ...	२-३२	१४५
१८.	आकासै मुखि आँधा कूवां ...	६-३८	१७१
१९.	आगि कह्यां दाभै नहीं ...	२८-२	२२७
२०.	आगि जु लागी नीर मंहि ...	२-१३	१४२
२१.	आगे सीढ़ी सांकरी ...	२०-२	२०८
२२.	आगै आगै दौं जरै ...	१३-१	१७८
२३.	आजि कि काल्हि कि निसहि मैं ...	१६-२७	२०१
२४.	आजि कि काल्हि कि पचे दिन ...	१५-६७	१६४
२५.	आजु कहै हरि काल्हि भजौंगा ...	१६-२४	२०१
२६.	आदि मध्य अरु अंतर्लीं ...	८-१६	१६६
२७.	आघो साखी सिर खडै ...	२८-६	२२७
२८.	आपनपी न सराहिए, पर निदिए न कोइ ...	२३-७	२१८
२९.	आपनपी न सराहिए, और न कहिए रंक ...	२३-८	२१८
३०.	आप सुवारथि भेदिनीं ...	१४-३६	१८४
३१.	आपा भेटें हरि मिलै ...	१६-१६	२०८
३२.	आया अनआया भया ...	१५-५७	१६३
३३.	आया था संसार मैं ...	६-२५	१७०
३४.	आसा एक जु रांमकी ...	११-१	१७४
३५.	आसा का ईंधन करौं ...	३१-२८	२३८
३६.	आसा जीवै जग मरै ...	३१-१३	२३६
३७.	एक दिन अैसा होइगा ...	१५-५२	१६२
३८.	इस तनका दीवा करौं ...	२-२२	१४४
३९.	इहीं उदर कै कारनै ...	२१-२४	२१३
४०.	उतर्तै कोई न आइया ...	१०-३	१७२
४१.	उस संअथ का दास हूं ...	११-८	१७६

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
४२.	ऊंचा दीसै धौलहर	... १५-८३	१६७
४३.	ऊंचा बिरख अकासि फल	... १४-३०	१८३
४४.	ऊंचा कुल कै कारनै	... २२-१३	२१७
४५.	ऊंचे कुल क्या जनमियां	... ३३-७	२४२
४६.	ऊजड़ खेड़े ठीकरी	... १५-६४	१६४
४७.	ऊजल देखि न धोजिए	... ४-३१	१५७
४८.	ऊजल पहिरहि कापरे	... १५-२६	१८६
४९.	ऊनइ आई बादरी	... २-५३	१४८
५०.	एक अचंभौ देखिया	... १८-२	२०४
५१.	एक कनक अरु कामिनी, दोइ अग्नि की भाल	३०-१०	२३३
५२.	एक कनक अरु कामिनी, बिखफल किया उपाइ	३०-६	२३३
५३.	एक खड़ा ही नां लहै	... ८१३	१६६
५४.	एक घरी आधी घरी	... २४-४	२१६
५५.	एक सबद में सब कहा	... २८-८	२२८
५६.	एकै साथें सब सधै	... १५-१४	१८७
५७.	अैसा कोई नां मिला, समझै सैन सुजांन	... ५-४	१५६
५८.	अैसा कोई नां मिलै, अपनां घर देइ जराइ...	... ५-१	१५६
५९.	अैसा कोई नां मिलै, जासीं रहिए लागि	... ५-२	१५६
६०.	अैसा कोई नां मिलै, राम भगति का मीत	... ५-६	१६०
६१.	अैसा कोई नां मिलै, सब बिधि देइ बताइ...	... ५-७	१६०
६२.	अैसा कोई नां मिलै, हमकों दे उपदेस	... ५-३	१५६
६३.	अैसा कोई नां मिलै, हमकों लेइ पिछांन	... ५-५	१५६
६४.	अैसा यहु संसार है	... १५-४६	१६२
६५.	अैसी अदबुद मति कथौ	... ७-८	१६३
६६.	अैसी ठाटनि ठाटिए	... १५-८५	१६७
६७.	अैसी वांनों बोलिए	... १५-७५	१६५
६८.	अैरां कौं परमोघतां	... २१-१	२१०
६९.	अैसर बीता अलप तन	... ६-७	१६१
७०.	कथनीं कथो तौ क्या भया	... ३३१४	२४१
७१.	कबीर अपनै जीवतै	... १५-८०	१६६

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
७२.	कबीर आरनि पेसि करि	१४-८	१८०
७३.	कबीर एक न जानिया	११-११	१७१
७४.	कबीर एकै जानिया	११-१०	१७६
७५.	कबीर औगुन नां गहै	२७-२	२२६
७६.	कबीर कंवल प्रकाशिया	८-३६	१७१
७७.	कबीर कठिनाई खरी	३-५	१४६
७८.	कबीर करनी क्या करै	८-३	१६४
७९.	कबीर कलियुग आइया	२१-२६	२१४
८०.	कबीर कहता जात हूँ	३०-१५	२३३
८१.	कबीर कहता जात हूँ	३-२५	१५२
८२.	कबीर कहते क्यों बने	२४-१८	२२१
८३.	कबीर का घर सिखर पर	१०-२	१७२
८४.	कबीर का तू चिंतवै	३२-१	२३८
८५.	कबीर कुल सोई भला	४-६	१५४
८६.	कबीर कूता राम का	६-१	१६१
८७.	कबीर केवल राम कहि	१५-७८	१६६
८८.	कबीर कोठी काठकी	२१-१०	२१२
८९.	कबीर खाई कोट की	४-२६	१५७
९०.	कबीर खालिक जागिया	४-३६	१५७
९१.	कबीर गरब न कीजियै, इस जोवन की आस...	१५-४५	१६१
९२.	कबीर गरबु न कीजियै, ऊंचा देखि अवास ...	१५-२३	१८८
९३.	कबीर गरबु न कीजियै, काल गहे कर केस ...	१५-४४	१६१
९४.	कबीर गरबु न कीजियै, चांम लपेटे हाड़ ...	१५-२४	१८८
९५.	कबीर गरबु न कीजियै, देही देखि सुरंग ...	१५-२३	१८८
९६.	कबीर गुर गरवा मिला	१-२४	१३६
९७.	कबीर घास न निंदिए	२३-३	२१८
९८.	कबीर घोड़ा प्रेम का	१४-३५	१८४
९९.	कबीर चंदन के बिड़ै, बेधे ढाक फ्लास ...	४-१	१५२
१००.	कबीर चंदन कै बिड़ै, नींव भी चंदन होइ ...	२२-८	२१६
१०१.	कबीर चाला जाइया	४-१४	१५५

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
१०२.	कबीर चित्त चमंकिया	३-२३	१५२
१०३.	कबीर चेरा संत का	१६-१४	२०८
१०४.	कबीर जंत्र न बाजई	१६-१	१६८
१०५.	कबीर जग की को कहै	३१-१४	२३६
१०६.	कबीर जांचन जाइथा	८-१५	१६६
१०७.	कबीर जिनि जिनि जानिया	२१-३१	२१४
१०८.	कबीर जे कोइ सुंदरी	११-१५	१७७
१०९.	कबीर जोगी बनि बसा	१७-५	२०४
११०.	कबीर टुक टुक चोघतां	१६-११	२६६
१११.	कबीर तन मन यौ जला	२-४२	१४७
११२.	कबीर तस्टा टोकनीं	२१-२५	२१४
११३.	कबीर तहां न जाइअ	१५-५०	१६२
११४.	कबीर तासों प्रीति करि, जाकौ ठाकुर राम ...	२४-५	२१६
११५.	कबीर तासों प्रीति करि, जो निरवाहै ओरि...	२४-१४	२२०
११६.	कबीर तुरी पलानियां	१५-३८	१६०
११७.	कबीर तेज अमंत का	६-१५	१६८
११८.	कबीर तौ हरि पै चला	१७-६	२०४
११९.	कबीर थोड़ा जीवनां	१५-४३	१६१
१२०.	कबीर दरिया परजला	२-५२	१४८
१२१.	कबीर दिल साबित भया	६-३२	१७१
१२२.	कबीर दुनियां देहुरै	२६-७	२२५
१२३.	कबीर देखत दिन गया	२-३६	१४३
१२४.	कबीर देखा इक अगम	६-१२	१६८
१२५.	कबीर धनि सो सुंदरी	४-३८	१५८
१२६.	कबीर धूरि सकेलि कै	१५-४	१८५
१२७.	कबीर नवै सो आपकों	१५-७६	१६६
१२८.	कबीर निज घर प्रेम का	१४-१५	१८१
१२९.	कबीर निरभै राम जपि	३-१६	१५१
१३०.	कबीर नौबति आपनीं	१५-३	१८५
१३१.	कबीर पगरा दूरि है, आइ पहुंची सांभ.	११-४	१७५

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
१३२.	कबीर पगरा दूरि है, बीच पड़ी है राति ...	१५-७०	१६५
१३३.	कबीर पढ़िवा दूरि करि, आथि पढ़ा संसार ...	२१-३४	२१५
१३४.	कबीर पढ़िवा दूरि करि, पुसतग देहु बहाइ ...	३३-१	२४१
१३५.	कबीर पांच पखेखवा ...	१६-३७	२०२
१३६.	कबीर पीर पिरावनीं ...	२-२३	१४५
१३७.	कबीर पूछै राम सों ...	८-१४	१६६
१३८.	कबीर पूंजी साहु की ...	२१-२२	२१३
१३९.	कबीर प्रेम न चाखिया ...	२-४६	१४७
१४०.	कबीर बन बन मैं फिरा ...	४-४३	१५६
१४१.	कबीर बिचारा करै बीनती ...	६-१२	१६२
१४२.	कबीर बेड़ा जरजरा ...	१५-२७	१८६
१४३.	कबीर भया है केतकी ...	४-८	१५४
१४४.	कबीर भली मधुकारी ...	३२-२	२३६
१४५.	कबीर भाठी प्रेम की ...	१४-३४	१८३
१४६.	कबीर भूल बिगाड़िया ...	६-१०	१६२
१४७.	कबीर मंदिर आपनै ...	१६-२६	२०२
१४८.	कबीर मंदिर लाखका ...	१५-५५	१६३
१४९.	कबीर मन गाफिल भया ...	२६-१४	२३०
१५०.	कबीर मन तीखा किया ...	१७-८	२०४
१५१.	कबीर मन निरमल भया ...	१६-१०	२०७
१५२.	कबीर मन पंखी भया, उड़ि कै चढ़ा अकासि ...	२६-१६	२३१
१५३.	कबीर मन मधुकर भया ...	६-१६	१६६
१५४.	कबीर मनि फूला फिरै ...	२१-२६	२१४
१५५.	कबीर मनु पंखी भया, उड़ि उड़ि दह दिसि जाइ... ..	२४-३	२१६
१५६.	कबीर मनु सीतल भया ...	१७-१	२०३
१५७.	कबीर मरनीं तहं भला ...	२०-११	२१०
१५८.	कबीर मरि मरहुट गया ...	१६-१५	२०८
१५९.	कबीर माया डाकिनीं ...	३१-६	२३६
१६०.	कबीर माया पापिनीं, फंध ले बैठी हाटि ...	३१-१	२३५
१६१.	कबीर माया पापिनीं, मांगी मिलै न हाथि ...	३१-१८	२३७

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
१६२.	कबीर माया पापिनीं, लाले लाया लोग ...	३१-६	२३५
१६३.	कबीर माया पापिनीं, हरि सौं करै हराम ...	३१-११	२३६
१६४.	कबीर माया मोह की ...	३१-१६	२३७
१६५.	कबीर माया मोहिनीं, मोहै जान सुजान ...	३१-४	२३५
१६६.	कबीर माया मोहिनीं, सब जग घाला घानि ...	३१-१७	२३७
१६७.	कबीर मारग कठिन है, कोइ न सकई जाइ ...	१०-१	१७२
१६८.	कबीर मारग कठिन है, मुनि जन बैठे थाकि ...	१०-६	१७३
१६९.	कबीर भाऊं मन कौं ...	२६-११	२२६
१७०.	कबीर माला काठ की ...	२५-२१	२२४
१७१.	कबीर माला मन की ...	२५-१०	२२२
१७२.	कबीर मूढ करमियां ...	२२-२	२१५
१७३.	कबीर यहु घर प्रेम का ...	१४-३१	१८३
१७४.	कबीर यहु चेताबनीं ...	१५-३१	१८६
१७५.	कबीर यहु जग आंधरा ...	१८-६	२०५
१७६.	कबीर यहु जग कछु नहीं ...	१६-३६	२०३
१७७.	कबीर यहु तन जात है, सकहु त लेहु बहीरि ...	१५-२१	१८८
१७८.	कबीर यहु तन जाइगा, सकै ती ठाहर लाइ ...	१५-२०	१८८
१७९.	कबीर यहु तन बन भया ...	१५-६०	१८३
१८०.	कबीर या संसार कौं ...	२१-२८	२१४
१८१.	कबीर रेख सिंदूर की ...	११-१३	१७६
१८२.	कबीर लज्जा लोक की ...	२१-३०	२१४
१८३.	कबीर लहरि समंद की, केती आवैं जाहि ...	४-३२	१५७
१८४.	कबीर लहरि समंद की, मोती बिखरे आइ ...	१८-५	२०५
१८५.	कबीर संगति साधु की, कदे न निरफल होइ ...	४-१६	१५५
१८६.	कबीर संगति साधु की, नित प्रति कीजै जाइ ...	४-२२	१५६
१८७.	कबीर सतगुरु नां मिला ...	१-२६	१३६
१८८.	कबीर सब जग दूढ़िया ...	६-४	१६१
१८९.	कबीर सखद सरीर मैं ...	६-३७	१७१
१९०.	कबीर सब सुख राम है ...	१६-३१	२०२
१९१.	कबीर सब सुख हंदिआ ...	१५-३१	१८६

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
१६२.	कबीर सभतें हंम बुरे	... १५-३२	१६०
१६३.	कबीर साकत की सभा	... २५-६	२२२
१६४.	कबीर साकत कोइ नहीं	... २७-४	२२६
१६५.	कबीर साथी सोइ किया	... ७-४	१६३
१६६.	कबीर सिरजनहार बिनु	... ८-१७	१६६
१६७.	कबीर सीप समंद की	... ११-६	१७६
१६८.	कबीर सुंदरि यों कहै	... २-४५	१४७
१६९.	कबीर सुपिनैं रैनि कै, ऊपरि आए नैन	... १५-६	१८६
२००.	कबीर सुपिनैं रैनि के, पड़ा कलेजे छेक	... १५-४७	१६२
२०१.	कबीर सुपिनैं हरि मिला	... २-४३	१४७
२०२.	कबीर सुमिरन सार है	... ३-१४	१५०
२०३.	कबीर सूख न एहि जुग	... ११-२	१७५
२०४.	कबीर सुखिम सुरति का	... १०-१६	१७४
२०५.	कबीर सूता क्या करै, उठि किन रोवे दुख	... ३-१	१४६
२०६.	कबीर सूता क्या करै, काहे न देखै जागि	... ३-१७	१५१
२०७.	कबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि	... ३-२	१४६
२०८.	कबीर सूता क्या करै, सूतां होइ अकाज	... ३-१८	१५१
२०९.	कबीर सेरी सांकरी	... २६-१०	२२६
२१०.	कबीर सोई दिन भला	... ४-२०	१५६
२११.	कबीर सोई मारिअै	... १५-३५	१६०
२१२.	कबीर सोई सूरिवां	... १४-१०	१८०
२१३.	कबीर सोचि विचारिया	... २८-३	२२७
२१४.	कबीर सो धन संचिए	... ३१-२०	२३७
२१५.	कबीर सो मन दूध का	... २२-५	२१६
२१६.	कबीर हृद के जीव सौं	... १५-७७	१६६
२१७.	कबीर हरदी पीयरी	... २०-३	२०६
२१८.	कबीर हरि का भावता	... ४१२६	१५६
२१९.	कबीर हरि की भक्ति करि	... १५-४८	१६२
२२०.	कबीर हरि की भगति का	... २५-१८	२२३
२२१.	कबीर हरि की भगति बिनु	... १५-४०	१६१

क्र० सं०	प्रथम धरण	अंग-साखी	पृ० सं०
२२२.	कबीर हरि के नांव सौं	१५-७४	१६५
२२३.	कबीर हरिनीं द्वारी	१६-३	१६८
२२४.	कबीर हरि रस बरखिया	२२-११	२१६
२२५.	कबीर हरि रस यों पिया	१२-१	१७७
२२६.	कबीर हरि सब को भजै	१४-३८	१८४
२२७.	कबीर हरिसौं हेत करि	१५-३६	१८१
२२८.	कबीर हीरा बनजिया	१४-२०	१८१
२२९.	कबीर हृदय कठोर कै	२२-१५	२१७
२३०.	कमोदिनीं जलहरि बसै	२-२६	१४४
२३१.	करता की गति अगम है	१०-१२	१७४
२३२.	करता केरे बहुत गुन	६-५	१६१
२३३.	करता दोसै कीरतन	३३-८	२४२
२३४.	कर पकरें अंगुरी गिनैं	२५-७	२२२
२३५.	कर सेती माला जपै	२५-२४	२२४
२३६.	करिए तौ करि जानिए	२४-१७	२२१
२३७.	कलि का बांहानु मसखरा	२१-२०	२१३
२३८.	कलिका स्वामी लोभिया, पीतलि धरी खटाइ...	२१-१८	२१३
२३९.	कस्तूरी कुंडलि बसै	७-१	१६२
२४०.	कलि का स्वामी लोभिया, मनसा धरी बधाइ...	२१-१९	२१३
२४१.	कहा किया हंम आइ करि	१५-५६	१६३
२४२.	कहा चुनावै मैड़ियां, चूनां मोटी लाई	१५-८४	२६७
२४३.	कहा चुनावै मैड़िया, लंबी भीति उसारि	१६-१२	१६६
२४४.	कहै कबीर मैं कथि गया	३-२६	१५२
२४५.	कांची काया मन अथिर	१६-२५	२०१
२४६.	कांम करम की केंचुली	३०-२२	२३४
२४७.	कांम मिलावे रांम काँ	४-४०	१५८
२४८.	कांमिनि अंग अरत भए	४-४१	१५८
२४९.	कांमिनि काली नागिनी	३०-२	२३२
२५०.	कांमिनि सुंदर सपिनी	३०-१८	२३४
२५१.	कांमीं अभीं न भावई	३०-२१	२३४

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
२५२.	कांमीं लज्जा नां करे	३०-२३	२३४
२५३.	काइय कागद काद्विया	२१-२३	२१३
२५४.	कागद केरी ओवरी	२६-२	२२५
२५५.	कागद केरी नात्र री	२६-१८	२३०
२५६.	काजर केरी ओवरी, औसा यहु संसार	२४-७	२१६
२५७.	काजर केरी ओवरी, काजर ही का कोट	२४-८	२१६
२५८.	कावा फिर कासी भया	२०-१०	२१०
२५९.	कायर बहुत पमावही	१४-१४	१८१
२६०.	कायर हुआं न छूटिहै	१४-७	१८०
२६१.	काया कजरी वन अहै	२६-२	२२८
२६२.	काया कमंडल भरि लिया	१२-३	१७७
२६३.	काया कसौ कमान ज्यों	२६-२०	२३१
२६४.	काया देवल मन धजा	२६-७	२२६
२६५.	काया मंजन कया करै	१५-६१	१६४
२६६.	काल सिरहानै है खड़ा	१५-१	१८५
२६७.	कासी काठै घर करै	२१-८	२११
२६८.	कीयां कछु न होत है	८-४	१६४
२६९.	कुल खोए कुल ऊब्रै	१५-३७	१६०
२७०.	केसां कहा बिगारिया	२५-४	२२१
२७१.	केसौ कहि कहि कूकिए	३-४	१४६
२७२.	कै बिरहिन कौं मीच दे	२-४०	१४६
२७३.	कोटि करम पल में करै	२६-१५	२३०
२७४.	कोटि करम फिल पलक में	३-११	१५०
२७५.	कोनै परां न छूटिहै	१४-६	१७६
२७६.	कोन देस कहां आइया	१०-१३	१७४
२७७.	क्यों त्रिपनारी निदिग	४-११	१५४
२७८.	खंभा एक गयंद दोइ	१५-८१	१६६
२७९.	खरी कसौटी रांम की	१६-४	२०६
२८०.	खीर रूप हरि नाउं है	२७-१	२२६
२८१.	खूब खान है खीचरी	२१-३	२१०

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
२८२.	खेत न छाड़ै सूरिवां	... १४-१३	१८०
२८३.	खेह भई तौ क्या भया	... १६-८	२०७
२८४.	खोद खाद घरती सहै	... ४-२५	१५६
२८५.	गंग जमुन के अंतरै	... १०-८	१७३
२८६.	गगन गरजि अमृत चुवै	... ६-३५	१७१
२८७.	गगन दमांमां वाजिया	... १४-२६	१८२
२८८.	गहगचि परा कुटुंब कै	... २१-१३	२१२
२८९.	गाया तिन पाया नहीं	... ३२-१४	२४०
२९०.	गावन ही मैं रोज है	... ३२-१३	२४०
२९१.	गुर गोविंद तौ एक हैं	... १-२८	१३६
२९२.	गुर जौ बसै बनारसी	... २-२७	१४५
२९३.	गुर दाभा चेला जला	... २-५०	१४८
२९४.	गुर सिकलीगर कीजिए	... १-८	१३६
२९५.	गूंगा हूवा बावरा	... १-१२	१३७
२९६.	ग्यांन प्रकासी गुर मिला	... १-१६	१३८
२९७.	ग्यांनीं तौ नीडर भया	... ३०-२४	२३४
२९८.	ग्यांनीं मूल गंवाइया	... ३०-२५	२३५
२९९.	घट मैं औघट पाइया	... ६-१६	१६६
३००.	घर जारे घर ऊबरे	... १६-१२	२०७
३०१.	घाइल धूमै गहभरा	... १४-२६	१८३
३०२.	चंदन की कुटकी भली	... ४-३७	१५८
३०३.	चंदन रूख विदेस गयी	... १८-८	२०५
३०४.	चकई बिछुरी रैनिकी	... २-४	१४१
३०५.	चतुराई हरि नां मिलै	... २५-१७	२२३
३०६.	चलन चलन सब कोइ कहै	... १०-५	१७३
३०७.	चाकी चलती देखि कै	... १६-५	१६८
३०८.	चिंता छाड़ि अचिंत रहू	... ३२-५	२३६
३०९.	चिंता तौ हरि नांउ की	... ३-८	१५०
३१०.	चिंतामनि चित मैं बसै	... ३२-६	२४०
३११.	चेतन चाकी बैसि करि	... १८-३७	१३६

अनुक्रमिका

२६३

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
३१२.	चोट संतानीं विरह की	२-३४	१४६
३१३.	चोट मुहेली सेल की	१४-५	१७६
३१४.	चौंसठि दीवा जोड़ करि	१-३	१३६
३१५.	चौपड़ि माड़ी चौहटै	१-३२	१४०
३१६.	जगत जहंदम राचिया	२५-१५	२२३
३१७.	जद का माई जनमिया	६-६	१६१
३१८.	जप तप दीसैं थोथरा	२६-६	२२५
३१९.	जब गुनकौं गाहक मिले	१८-७	२०५
३२०.	जब मैं था तब हरि नहीं	६-१	१६६
३२१.	जब लगि भगति सकांम है	१५-४६	१६२
३२२.	जबहीं मारा खैंचि करि	२-३५	१४६
३२३.	जहं गाहक तहं मैं नहीं	१८-१०	२०५
३२४.	जहां जुरा मोच व्यापै नहीं	१७-४	२०३
३२५.	जहां दया तहं धर्म है	१५-३३	१६०
३२६.	जहां न चिउंटी चढ़ि सकै	१०-६	१७३
३२७.	जानंता बूझा नहीं	३-२४	१५२
३२८.	जान भगत का नित मरन	४-२७	१५७
३२९.	जानि बूझि जड़ होइ रहै	४-१७	१५५
३३०.	जानि बूझि सांची तजै	४-२८	१५७
३३१.	जानैं हरियर लूखड़ा	२२-१४	२१७
३३२.	जानों जे हरि कौं भजौं	३१-१६	२३७
३३३.	जामन मरन विचारि कै	१५-५३	१६२
३३४.	जाका गुरु है आंधरा	१-६	१३६
३३५.	जा कारनि मैं जाइथा, सनमुख मिलिया आइ	६-३०	१७०
३३६.	जा कारनि मैं जाइथा, सोई पाया ठौर	६-४	१६७
३३७.	जाके मुंह माथा नहीं	७-७	१६३
३३८.	जाके हिरदै हरि वसै	३२-१६	२४०
३३९.	जाकौं जेता निरमया	३२-१५	२४१
३४०.	जा दिन किरतम नां हुता	६-२७	१७०
३४१.	जाय पूछी उस घायलै	१४-२८	१८२

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
३४२.	जाली यहै बड़ापनां	... २२-१	२१५
३४३.	जाहु बैद घर आपनै	... २-१४	१४२
३४४.	जिनके नौबति बाजती	... १५-४२	१६१
३४५.	जिन हरि की चोरी करी	... १५-५८	१६३
३४६.	जिन हरि जैसा जानिया	... ३-१६	१५१
३४७.	जिनहुं किछु जानां नहीं	... ४-१२	१५४
३४८.	जनि हंम जाए तेमुए	... १६-३२	२०२
३४९.	जिसहि न कोई तिसहि तू	... ८-८	१६५
३५०.	जिसु मरनैं तैं जग डरै	... १४-२	१७६
३५१.	जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस	... ३-६	१५०
३५२.	जिहि घरि साधु न पूजिए	... ४-६	१५३
३५३.	जिहि जेवरी जग बंधिया	... १५-२५	१८६
३५४.	जिहि बन सिंह न संचरै	... १०-४	१७२
३५५.	जिहि सरि घड़ा न बूढ़ता	... १२-७	१७८
३५६.	जिहि सरि मारा काल्हि	... २-५५	१४८
३५७.	जीअ जु मारहि जोर करि	... २१-५	२११
३५८.	जीवत मिरतक होइ रहै	... १६-११	२०७
३५९.	जीवन तैं मरिबौ भलौ	... १६-१३	२०८
३६०.	जीव बिलंबा जोव सौं	... २-३७	१४६
३६१.	जेता मीठा बोलनां	... ४-२१	१५६
३६२.	जेते तारे रैनिके	... १४-३६	१८४
३६३.	जे सुंदरि साइं भजै	... ११-१४	१७६
३६४.	जेहि मारगि पंडित गए	... २०-४	२०६
३६५.	जैसी उपजै पेड़ तैं	... १५-८	१८६
३६६.	जैसी मुखतैं नीकसै	... ३३-६	२४२
३६७.	जैसैं माया मन रमैं	... ३-२१	१५१
३६८.	जो ऊगै सो आथवै	... १६-१६	२००
३६९.	जो कोइ निदै साधु काँ	... २३-६	२१८
३७०.	जो दीसै सो बिनसिहै	... १६-२०	२००
३७१.	जोर किया सो जुलम है	... २१-६	२११

अनुक्रमणिका

२६५

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
३७२.	जोरू जूठनि जगत की	...	३०-२०
३७३.	जो है जाका भावता	...	२-२८
३७४.	जो काटों तो डहडही	...	१३-३
३७५.	जौ ग्रिह करहि त धरम करु	...	१५-३४
३७६.	जौ तोहि साध पिरेम की	...	२४-६
३७७.	जौ मन लागै एक सौं	...	११-३
३७८.	जौ हारों तो हरि सवां	...	१४-२१
३७९.	ज्यों कोरी रेजा बुनै	...	१५-६६
३८०.	ज्यों ज्यों हरि गुन सांभजों	...	१४-२२
३८१.	ज्यों नैननि में पूतरी	...	७-२
३८२.	ज्यों मेरा मन तुझ सौं	...	६-८
३८३.	भल ऊठी भोली जली	...	२-५
३८४.	भिरमिर भिरमिर बरखिया	...	२२-६
३८५.	भूठे सुख कौं सुख कहै	...	१६-१६
३८६.	टालै हलै दिन गया	...	१६-१५
३८७.	डागल ऊपरि दौरनां	...	१५-६३
३८८.	ढोल दमांमां गड़गड़ी	...	१५-५१
३८९.	तकत तकावत रहि गया	...	२२-४
३९०.	तत पाया तन बीसरा	...	६-३१
३९१.	तत तिलक तिहुं लोक में	...	३-१३
३९२.	तन कौं जोगी सब करै	...	२५-५
३९३.	तन भीतरि मन मानिया	...	६-२६
३९४.	तन मांहीं जौ मन धरै	...	१५-३५
३९५.	तरवर तामु बिलंबिए	...	१७-३
३९६.	तिनकै ओलहै राम है	...	७-१२
३९७.	तीन लोक चोरी भई	...	२६-४
३९८.	तीन सनेही बहु मिलै	...	५-११
३९९.	तीरथ करि करि जग मुवा	...	२१-१६
४००.	तीरथ ब्रत बिख बेलड़ी	...	२६-५
४०१.	तीरथि चाले दुइ जनां	...	२६-४

कबीर-ग्रंथावली

२६६

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
४०२.	तूं तूं करता तूं भया	...	३-६ १४६
४०३.	तेरा संगी कोई नहीं	...	१५-६२ १६४
४०४.	त्रिस्तां सींची नां बुझै	...	३१-१३ २३६
४०५.	थांपनि पाई थिति भई	...	१-११ १३७
४०६.	दावै दाभनि होतु है	...	४-७ १५४
४०७.	दीठा है तौ कस कहूं	...	७-१० १६४
४०८.	दीन गंवाया दुनी सौं	...	१५-२६ १८६
४०९.	दीन गरीबी दीन कौं	...	६-११ १६२
४१०.	दीपक दीया तेल भरि	...	१-१५ १३७
४११.	दीपक पावक आनिया	...	२-३० १४५
४१२.	दुनिया कै धोखें मुवा	...	१५-२८ १८६
४१३.	देखन कौं सब कोई भले	...	२१-२७ २१४
४१४.	देखादेखी पकड़िया	...	२४-१२ २२०
४१५.	देखादेखी भगति का	...	२४-१६ २२०
४१६.	देखौ करम कबीर का	...	६-२२ १६६
४१७.	देवल मांहों देहुरी	...	६-१४ १६८
४१८.	दोख बराए देखि करि	...	२३-२ २१७
४१९.	दोजग तौ हूं अंगिया	...	११-१६ १७७
४२०.	धों की दाधी लाकरी	...	१६-२ १६८
४२१.	नर नारी सब नरक हैं	...	३०-५ २३२
४२२.	नाउं न जानौं गांव का	...	१०-६ १७३
४२३.	नां कछु किया न करहिने	...	८-१ १६४
४२४.	नां गुर मिला न सिख भया	...	१-१७ १३८
४२५.	नां परतीति न प्रेम रस	...	६-६ १६२
४२६.	नांव न जानै गांउं का	...	१५-१० १८६
४२७.	नारि कहावै पीवकी	...	११-५ १७५
४२८.	नारि नसावै तीनि गुन	...	३०-७ २३२
४२९.	नारि पाई आपनीं	...	३०-११ २३३
४३०.	नारी कुंड नरक का	...	३०-१६ २३३
४३१.	नारी केरी प्रीति सौं	...	३०-१२ २३३

अनुक्रमिका

२६७

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
४३२.	नारी केरै राचनै	...	३०-४ २३२
४३३.	नारी सेती नेह	...	३०-६ २३२
४३४.	निदक दूरि न कोजिए	...	२३-५ २१८
४३५.	निदक नेरै राखिए	...	२३-४ २१८
४३६.	निगुसांवां बहि जाइगा	...	६-३ १६१
४३७.	निघड़क बैठै रांम त्रिनु	...	१६-१७ २००
४३८.	निरवैरी निहकामता	...	४-२४ १५६
४३९.	निरमल बूंद अकासकी	...	२४-१ २१८
४४०.	निसि अधियारी कारनै	...	१-४ १३६
४४१.	निहचल निधि मिलाइ तत	...	१-३१ १४०
४४२.	नींव बिहूनां देहुरा	...	६-१३ १६८
४४३.	नीर पियावत का फिरै	...	१५-१२ १८६
४४४.	नैन हमारे बावरे	...	२-२५ १४४
४४५.	नैनां अंतरि आव तूं, ज्यों हों नैन भूपेउं	...	११-१२ १७६
४४६.	नैनां अंतरि आव तूं, निसदिन निरखू तोहि...	...	२-४७ १४७
४४७.	नैनां नीभर लाइया	...	२-४८ १४७
४४८.	नौ सत साजै सुंदरो	...	२५-१३ २२३
४४९.	पंखि उड़ानीं गगन कीं	...	६-६ १६७
४५०.	पंच बलधिया फिरकिड़ी	...	४-३३ १५७
४५१.	पंजरि प्रेम प्रकासिया, जागी जोति अनंत	...	६-७ १६७
४५२.	पंजरि प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास	...	६-२३ १७०
४५३.	पंडित सेती कहि रहा	...	२१-३३ २१५
४५४.	पंथी ऊभा पंथ सिरि	...	१६-३० २०२
४५५.	पख लै बूझी पिरथिमीं	...	२५-१६ २२३
४५६.	पखा पखी के कारनै	...	२०-७ २०६
४५७.	पद गाएं मन हरखिया	...	३३-५ २४२
४५८.	पद गाएं लैलीन ह्वै	...	३२-३ २३६
४५९.	पर नारी की राचनौ	...	३०-१ २३१
४६०.	पर नारी परतखि छुरी	...	३०-३ २३२
४६१.	पर नारी राता फिरै	...	३०-१६ २३४

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
४६२.	परवति परवति मैं फिरा	२-२४	१४४
४६३.	पमुवा सों पानों परी	२२-७	२१६
४६४.	पहिलै बुरा कमाइ करि	३-१०	१५०
४६५.	पांच तत्त का पूतरा	१६-१४	२००
४६६.	पांच संगि पिउ पिउ करै	३-१५	१५१
४६७.	पांडल पंजर मन भंवर	३२-१०	२४०
४६८.	पांनीं केरा पूतरा	२८-४	२२७
४६९.	पांनीं केरा बुदबुदा	१६-२१	२००
४७०.	पांनीं भया त क्या मया	१६-६	२०७
४७१.	पांनीं मांहीं परजली	२-५१	१४८
४७२.	पांनीं मांहीं घर किया	१६-६	१६६
४७३.	पांनीं में की माछरी	१६-३८	२०३
४७४.	पांसा पकड़ा प्रेम का	१-३३	१४०
४७५.	पाछै लाग़ा जाइथा	१-१४	१३७
४७६.	पात भरंता यों कहे	१६-३६	२०२
४७७.	पांनीं ही तैं हिम भया	६-६	१६८
४७८.	पांनीं हू तैं पातरा	२६-३	२२८
४७९.	पाइं पदारथु पेलिकरि	१८-६	२०५
४८०.	पापी भगति न भावई	२७-३	२२६
४८१.	पारब्रह्म के तेज का	६-२	१६७
४८२.	पारब्रह्म बड़ मोतियां	२२-१०	२१६
४८३.	पारस रूपी नाम है	६-४१	१७२
४८४.	पावक रूपी राम है	२६-१३	२३०
४८५.	पाव पलक की गमि नहीं	१५-२	१८५
४८६.	पासि बिनंठा कापड़ा	३०-८	२३२
४८७.	पाहन केरा पूतरा	२६-१	२२४
४८८.	पाहन कौं क्या पूजिए	२६-८	२२५
४८९.	पुर पट्टन सूबस बसै	४-४	१५३
४९०.	पूत पियारो पिता कौं	३१-५४	२३८
४९१.	पैड़ै मोती बीखरे	१८-३	२०४

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
४६२.	पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा	३३-३	२४१
४६३.	प्रांन पिंड कौं तजि चला	१०-११	१७४
४६४.	प्रीति रीति तौ तुझसौं	११-७	१७६
४६५.	प्रेम न बाड़ी ऊपजै	१४-३२	१८३
४६६.	प्रेमीं दूंदत मैं फिरूँ	५-१०	१६०
४६७.	बगुली नीर बिटारिया	३१-२५	२३८
४६८.	बलिहारी गुर आपकी	१-१६	१३८
४६९.	बसुधा बन बहु भांति है	२७-५	२२७
५००.	बस्तु कहीं खोजे कहीं	१५-८७	१६७
५०१.	बहते कौं बहि जान दे	१५-८६	१६७
५०२.	बहुत दिनन की जोवती	२-१८	१४३
५०३.	वांम्हन गुरु है जगत का	२१-४	२११
५०४.	वांम्हन बूड़ा धापुरा	२१-२१	२१३
५०५.	बाजन दे बाजंतरी	१५-१३	१८७
५०६.	बाड़ चढ़ती बेलरी	३१-१०	२३६
५०७.	बारी बारी आपनीं	१६-१८	२००
५०८.	बासुरि सुख न रैन सुख	२-१५	१४३
५०९.	बाहरि क्या दिखलाइए	२५-२३	२२४
५१०.	बिख के वन मैं घर किया	१६-४	१६८
५११.	बिखै पियारी प्रीति सौं	४-३०	१५७
५१२.	बिरह की ओदी लाकड़ी	२-८	१४१
५१३.	बिरह भुवंगम तन बसै	२-१	१४०
५१४.	बिरह भुवंगम पैठि कै	२-२	१४०
५१५.	बिरहा बिरहा मति कहौ	२-१६	१४३
५१६.	बिरहिनि उठि उठि भुइं परै	२-६	१४२
५१७.	बिरहिन ऊभी पंधसिरि	२-३१	१४५
५१८.	बिरहिनि थी तौ क्यों रही	२-४१	१४६
५१९.	बूड़ा था पै ऊबरा	१-१०	१३७
५२०.	बेटा जाए क्या हुआ	१६-४०	२०३
५२१.	बेरियां बीती बल गया, अरु बुरा कमाया	१५-८२	१६६

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
५२२.	वेरियां बीती बल गया, बरन पलटि भया श्रीर	१५-३६	१६०
५२३.	वैद मुवा रोगी मुवा	१६-२	२०६
५२४.	बैरागी बिरकत भला	१५-७२	१६५
५२५.	बैस्नों की कूकरि भली	२१-१०	२१२
५२६.	बोलत ही पहिचानिए	१५-१७	१८७
५२७.	बोली हमरी पूरबी	१८-११	२०५
५२८.	भगत हजारी कापड़ा	४-३४	१५७
५२९.	भगति दुवारा सांकरा	२६-१	२२८
५३०.	भगति दुहेली रांमकी, जस खांडे की धार	१४-१६	१८१
५३१.	भगति दुहेली रांम की, नहि कायर का काम	१४-१८	१८१
५३२.	भगति बिगाड़ी कामियां	३०-१४	२३३
५३३.	भगति भजन हरि नांव है	३-७	१५०
५३४.	भरम न भागा जीवका	२५-८	२२२
५३५.	भली भई जो गुर मिले	१-२५	१३६
५३६.	भली भई जो भैं परा	६-३	१६७
५३७.	भारी कहूं तो बहु डरूं	७-६	१६३
५३८.	भूखा भूखा क्या करै	३२-८	२४०
५३९.	भेरा पाया सरप का	२-११	१४२
५४०.	भै बिन भाव न ऊपजै	१५-८६	१६७
५४१.	भोरै भूली खसम कै	७-५	१६३
५४२.	भौ सागर जल बिख भरा	८-६	१६५
५४३.	मंछ बिकंता देखिया	१६-८	१६६
५४४.	मंछ होइ नहि बांचिहौ	१६-७	१६८
५४५.	मंदिर मांहीं भलकती	१६-२२	२०१
५४६.	मथुरा जाउ भावै द्वारिका	४-२३	१५६
५४७.	मन कै मतै न चालिए	२६-२३	२३१
५४८.	मन उलटी दरिया मिला	६-३३	१७१
५४९.	मन के हारे हार है	२६-६	२२६
५५०.	मन गोरख मन गोबिंद	२६-६	२२६
५५१.	मन जानै सब बात	२६-८	२२६

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
५५२.	मन फाटा वाइक बुरै	२६-२२	२३१
५५३.	मन मथुरा दिल द्वारिका	२६-११	२२६
५५४.	मन मैवासी मूडिले	२५-३	२२१
५५५.	मन लागा उनमन्न सों, उनतुनि मनहि बिलंगि	६-४०	१७२
५५६.	मन लागा उनमन्न सों, गगन पहुँचा जाइ	६-८	१६७
५५७.	मनां मनोरथ छाड़ि दे	२६-५	२२६
५५८.	मनुवां तौ अंतरि वसा	२६-१२	२२६
५५९.	मरतां मरतां जग मुवा	१६-१	२०६
५६०.	मरैगे मारि जाहिंगे	१५-६६	१६४
५६१.	मांगन मरन समान है	३२-१६	२४१
५६२.	मानं महातम प्रेम रस	३१-२३	२३८
५६३.	मानं सरोवर सुभग जल	६-३४	१७१
५६४.	मानुख जनम दुलभु है	१५-५	१८५
५६५.	मानुख जनमहिं पाइकै	१५-६	१८५
५६६.	माया की भलि जग जरै	३१-२	२३५
५६७.	माया तजी त क्या भया	३१-३	२३५
५६८.	माया तरवर त्रिविधि का	३१-२१	२३७
५६९.	माया दासी संत की	३१-५	२३५
५७०.	माया दीपक नर पतंग	१-२६	१३६
५७१.	माया मोठी जगत में	३१-७	२३६
५७२.	माया मुई न मन मुवा	३१-२७	२३८
५७३.	माया हमसों यों कहै	३१-२६	२३८
५७४.	मारा है मरि जायगा	२-१२	१४२
५७५.	मारी मरौं कुसंग की	२४-२	२१८
५७६.	माला फेरें कछु नहीं, काती मन कै साथि	२५-२०	२२४
५७७.	माला फेरें कछु नहीं, गांठि हिरदै की खोइ	२५-११	२२२
५७८.	माला फेरें क्या भया	२५-१४	२२३
५७९.	माला फेरै मनमुखी, तातैं कछु न होइ	२५-६	२२२
५८०.	माला फेरै मनमुखी, बहुतक फिरै अचेत	२५-२२	२२४
५८१.	माली आवत देखि कै	१६-३४	२०२

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
५८२.	मुला मुनारे क्या चढ़हि	२६-३	२२५
५८३.	मूंड मुड़ावत दिन गए	२५-१६	२२४
५८४.	मूएं पीछें मति मिलौ	२-१०	१४२
५८५.	मूरख कौं सिखलावते	२२-३	२१५
५८६.	मूरख संग न कीजिए	२४-११	२२०
५८७.	मेरा वीर लुहारिया	१६-३५	२०२
५८८.	मेरा मुझ मैं किछु नहीं	६-२	१६१
५८९.	मेरि मिटी मुकता भया	३२-११	२४०
५९०.	मेरे मन मैं परि गई	२६-२१	२३१
५९१.	मेरै संगी दोइ जनां	४-५	१५३
५९२.	मेरै संसै कोइ नहीं	१४-११	१८०
५९३.	मैं अकेल ए दोइ जनां	१६-२६	२०१
५९४.	मैं जान्यों पढ़िबौ भलो	३३-२	२४१
५९५.	मैंमंता आबिगत रता	१२-८	१७८
५९६.	मैंमंता त्रिन नां चरै	१२-६	१७८
५९७.	मैंमंता मन मारि रे, घट ही मांहीं घेरि	२६-१६	२३०
५९८.	मैंमंता मन मारि रे, नन्हा करि करि पीसि	२६-१७	२३०
५९९.	मैं मैं बड़ी बलाइ है	१५-७१	१६५
६००.	मैं रोकूं संसार कौं	२१-१४	२१२
६०१.	मोर तोर की जेदरी	२१-३२	२१४
६०२.	मोहिं मरनें का चाउ है	१६-५	२०६
६०३.	यहु तन कांचा कुंभ है	१५-५६	१६३
६०४.	यहु तन जारौं मसि करौं, ज्यूं धूवां जाइ सरगि	२-२०	१४३
६०५.	यहु तनु जारौं मसि करौं, लिखौं राम का तांउं	२-२१	१४४
६०६.	यहु मन दीजै तासु कौं	२४-१३	२२०
६०७.	यहु मन फटक पछोरिलै	१७-७	२०४
६०८.	रचनहार कौं चीन्हलै	३२-४	२३६
६०९.	रज बीरज की कोयली	३१-१५	२३७
६१०.	रहै निराला मांडतैं	७-११	१६४
६११.	राम कहा तिन कहि लिया	१६-१३	१६६

कनुक्मरिका

२७३

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
६१२.	राम नाम करि बौहड़ा	१५-४१	१६१
६१३.	राम नाम कै पटंतरै	१-१	१३५
६१४.	राम नाम जानां नहीं, पाला कटक कुटुंब	१५-१६	१८७
६१५.	राम नाम जानां नहीं, लागी मोटी खोरि	१५-१८	१८७
६१६.	राम नाम जानां नहीं, हूवा बहुत अकाज	१५-६८	१६४
६१७.	राम नाम जिन चीन्हिया	४-१५	१५५
६१८.	राम नाम तौ दिन मिली	३२-७	२३६
६१९.	राम पदारथु पाइ करि	१८-४	२०५
६२०.	राम पियारा छाड़ि करि	३-२०	१५१
६२१.	राम बियोगी बिकल तन	४-१६	१५५
६२२.	राम रसाइन प्रेम रस	१४-३३	१८३
६२३.	राम राम सब कोइ कहै	२८-१	२२७
६२४.	रामहि थोरा जानिकरि	३१-२२	२३७
६२५.	रामहि राम पुकारतैं	३३-६	२४२
६२६.	राखनहारै बाहिरा	१५-५४	१६३
६२७.	रेनाईर बिछोहिया	२-६	१४१
६२८.	रोड़ा भया त क्या भया	१६-७	२०७
६२९.	रोड़ा होइ रहु वाट का	१६-६	२०७
६३०.	रोवनहारै भी मुए	१६-२३	२०१
६३१.	लंबा मरिग हरि घर	३-१२	१५०
६३२.	लालन की ओवरो नहीं	४-१८	१५५
६३३.	लूटि सकै तो लूटि लै, राम नाम है लूटि	३-३	१४६
६३४.	लूटि सकै तो लूटि लै, राम नाम भंडार	३-२२	१५२
६३५.	लेखा देनां सोहरा	२१-२	२१०
६३६.	लोग बिचारा निदई	२३-१	२१७
६३७.	संगति कीजै साधु को	२४-१०	२२०
६३८.	संगति भई तो क्या भया	२२-१२	२१७
६३९.	संत न छांडै संतई	४-२	१५३
६४०.	संत न बांधै गाठरी	३२-६	२३६
६४१.	संत मुएं क्या रोइए	१६-३	२०६

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
६४२.	संपुट मांहि समाइया	... ७-३	१६३
६४३.	संसारी साकत भला	... १५-७३	१६५
६४४.	संसै खाया सकल जग	... १-७	१३६
६४५.	सन्नु पाया सुख ऊपनां	... ६-११	१६८
६४६.	सतगंठी कोपीन दै	... १२-४	१७७
६४७.	सतगुरु की महिमां अनंत	... १-१३	१३७
६४८.	सतगुरु कै सदकै किया	... १-२०	१३८
६४९.	सतगुरु बपुरा क्या करे	... १-५	१३६
६५०.	सतगुरु मारा बांन भरि	... १-२३	१३९
६५१.	सतगुरु मिला त का भया	... १-१८	१३८
६५२.	सतगुरु मेरा सूरिवां	... १-३०	१३९
६५३.	सतगुरु लई कमान करि	... १-२१	१३८
६५४.	सतगुरु सवां न को सगा	... १-२	१३५
६५५.	सतगुरु सांचा सूरिवां	... १-६	१३७
६५६.	सतगुरु हमसों रीझि करि	... १-३४	१४०
६५७.	सती जरन कौं नीकसै, चित धरि एक बिबेक ...	१४-२३	१८२
६५८.	सती जरन कौं नीकसो, पिव का सुमिरि सनेह	१४-२४	२८२
६५९.	सती पुकारै सलि चढ़ी	... १४-३	१७६
६६०.	सती सूरतन साहिकरि	... १४-४१	१८४
६६१.	सबकौं ब्रह्मत मैं फिळ	... १०-१५	१७४
६६२.	सब घटि मेरा सांइयां	... ४-३५	१३७
६६३.	सब जग सूता नींद भरि	... १६-२८	२०१
६६४.	सबद सबद बहु अंतरा	... १५-८८	१६७
६६५.	सब रग तांति रबाब तन	... २-१७	१४३
६६६.	सबै रसाइन मैं किया	... १२-२	१७७
६६७.	समुंदर लागी आगि	... २-५४	१४८
६६८.	सरपाहि दूध पियाइए	... ५-१२	१६०
६६९.	सहज सहज सब कोइ कहै	... ३४-१	२४२
६७०.	सहज सहज सब कोइ कहै	... ३४-२	२४२
६७१.	सहज सहज सब गए	... ३४-३	२४२

अनुक्रमसिका

२७५

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
६७२.	साईं केरै बहुत गुन	२-४४	१४७
६७३.	साईं मेरा बांनिया	८-१०	१६५
६७४.	साईं मैं तुझ बाहिरां	८-१२	१६६
६७५.	साईं सेती चोरिया	२१-१५	२१२
६७६.	साईं सेती सांच चलि	२५-१	२२१
६७७.	साईं सौं सब होत है	८-११	१६५
६७८.	सांकर हूँ सबल है	३१-६	२३६
६७९.	सांच बरोबरि तप नहीं	१५-१७	१८७
६८०.	साइर नाहीं सीप नहि	६-१८	१६६
६८१.	साकत ते सूकर भला	२१-१२	२१२
६८२.	साकत बांम्हन मति मिलै	४-३६	१५८
६८३.	सात समुंद की मसि करौ	८-२	१६४
६८४.	साधु भया तौ क्या भया, बोलै नाहि बिचारि	१५-१५	१८७
६८५.	साधु भया तौ क्या भया, माला मेली चारि	२५-२	२२१
६८६.	साधु की संगति रही	२४-६	२१६
६८७.	सारा बहुत पुकारिया	१४-४	१७६
६८८.	सारा सारा बहु मिलै	५-६	१६०
६८९.	सिख साखा बहुतै किए	२१-६	२११
६९०.	सिर दीन्हें जो पाइअ	१४-४०	१८४
६९१.	सीतलता के कारन	२२-१६	२१७
६९२.	सीतलता तब जानिए	१७-२	२०३
६९३.	सील गहै कोई सावधान	१५-७६	१६६
६९४.	सीस काटि पासंग किया	१४-१६	१८१
६९५.	सुंदरि तैं सुली भली	३०-१७	२३४
६९६.	सुनत सुनावत दिन गए	२२-६	२१६
६९७.	सुपिनैं हू बरराइ कै	४-१३	१५४
६९८.	सुरग नरक तैं मैं रहा	२०-१	२०८
६९९.	सुरग पताल तैं मैं रहा	२०-५	२०९
७००.	सुरति हँकुली लेज ली	१२-६	१७८
७०१.	सुरति समांहीं निरति मैं, अजपा मांहीं जाप...	६-१०	१६८

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ० सं०
७०२.	सुरति समानीं निरति मैं, निरति रही निरधार	६-२४	१७०
७०३.	सुरनर धाके मुनि जनां	१०-११	१७३
७०४.	सुर नर मुनि औ देवता	१६-६	१६८
७०५.	सूखन लागे केवड़ा	१६-३३	२०२
७०६.	सूर समानां चांद मैं	६-२०	१६६
७०७.	सूरा जूझै गिरदसौं	१४-६	१८०
७०८.	सूरा सीस उतारिया	१४-१७	१८१
७०९.	सूरा सोइ सराहिए	१४-१२	१८०
७१०.	सूरै सार संबाहिया	१४-२७	१८२
७११.	सेख सबूरी बाहिरा	२१-७	२११
७१२.	सेवै-सालिगरांम कौं	२६-१०	२२६
७१३.	सोई आंसू साजनां	२-४६	१४८
७१४.	सोई आखर सोई बैन	२८-७	२२८
७१५.	सो साईं तन मैं बसै	७-६	१६३
७१६.	स्वांग पहिरि सोरहा भया	२५-१२	२२३
७१७.	स्वांमीं सेवक एक मत	२-२६	१४५
७१८.	स्वांमीं हुवा सेंट का	२१-१७	२१३
७१९.	स्वारथ कौं सब कोइ सगा	४-४२	१५६
७२०.	हंम घर जारा आपनां	५-१३	१६०
७२१.	हंम देखत जग जातहै	५-८	१६०
७२२.	हंम बासी उस देस के	१०-१४	१७४
७२३.	हंम भी पाहन पूजते	२६-६	२२६
७२४.	हंसि हंसि कंत न पाइए	२-३८	१४६
७२५.	हंसै न बोलै उनमनीं	१-२२	१३८
७२६.	हृद चलै सो मानवा	२०-६	२०६
७२७.	हृद छाड़ि बेहद गया	६-२१	१६६
७२८.	हरिजन सेती रूसनां	२४-१५	२२०
७२९.	हरि मोतिन की माल है	२८-५	२२७
७३०.	हरि रस पीया जानिए	१७-५	१७८
७३१.	हरि रस पीया जानिए	६-२८	१७०

क्र० सं०	प्रथम चरण	अंग-साखी	पृ०सं०
७३२.	हरि हीरा जन जौहरी	... १८-१	२०४
७३३.	हाड़ जरे ज्यों लाकरी	... १५-७	१८६
७३४.	हिंदू मूढा राम कहि	... २०-६	२१०
७३५.	हिरदा भीतर आरसी	... १५-११	१८६
७३६.	हिरदै भीतरि दौं बलै	... २-७	१४१
७३७.	हीरा तहां न खोलिए	... १८-१२	२०६
७३८.	हे मतिहीनीं माछरी	... १६-१०	१६६
७३९.	हेरत हेरत हे सखी	... ८-६	१६५
७४०.	हेरत हेरत हे सखी	... ८-७	१६५
७४१.	है गै बाहन सघन घन, छत्र धुजा फहराइ	... ४-३	१५३
७४२.	है गै बाहन सघन घन, छत्रपती की नारि	... ४-१०	१५४
७४३.	हौं चितवत हौं तोहि कीं	... ११-६	१७५
७४४.	हौं तोहि पूछीं हे सखी	... १४-३७	१८४

(ख) विकृति सूची

[अर्थात् विभिन्न प्रतियों की ऐसी पाठ-विकृतियों की अनुक्रमणिका जिनपर भूमिका में विचार हुआ है। अंत में दी हुई संख्याएँ भूमिका के पृष्ठों का निर्देश करती हैं। संक्षिप्त संकेतों के स्पष्टीकरण के लिए देखिए इस सूची के अंत में दी हुई संकेत-विकृति]

अंदेशड़ी-गुण० में राज० प्र० १४५,
दा० नि० गुण० में राज० प्र० सा०
१६२

अंधकार-(मू० कंधि काल) गु० में
उ० वि० ७६

अदल-(मू० अटल) शबे० में ना०
वि० ११७

अनुबानि-(मू० अगुवानि) सा० में
ना० वि० १०५

अह-(मू० करि) गु० में उ० वि०
७६

अर्थावै-(मू० विचारै) बी० में तुक-
हीनता २५४

अस-(मू० इस) साबे० में उ० वि०
१२६

असार-(मू० असराल) गु० में उ०
वि० ७४, २२८

अहमुख-(मू० अहमक) नि० में उ०
वि० ६६

आंचि-(मू० पांचि) सा० साबे०
सासी० में उ० वि० सा० १८१

आन-(मू० अन्न) दा० में उ० वि०
६३, दा० नि० में उ० वि० २२६

आखै-दा० नि० में पं० प्र० सा० १५३

आग-(मू० लाइ) सा० साबे० में स०
वि० २४२

आगु-(मू० आघु) सा० सासी० में
उ० वि० २२८

आगे-(मू० आघु) साबे० में उ० वि०
२२८

आनंद-(मू० अनंग) बी० में उ० वि०
१०१

आनंद तलब-(मू० अनहद तबल)
शबे० में वर्ण-विपर्यय २२६

आपणी-(मू० आपकी) दा० में पं०
प्र० ६२

आमन-(मू० आपन) गुण० में ना०
वि० १४६, दा० स० गुण० में ना०

वि० सा० १६४

आवसी-सा० में राज० प्र० १२३

आसन पवन कि ए दिद रहु रे-(मू०
आसन पवन दूरि करि रौरा) दा०
नि० की वि० २३६

इंडा-(मू० अंडा) नि० में उ० वि०
अथवा राज० उ० प्र० ६६

इकीस-(मू० उगनीस) गु० में उ०
वि० ७६

विकृति-सूची

२७६

- इकेला—(मू० अकेला) गु० में उ० वि०
अथवा पं० उ० प्र० ७६
- इतनाकु—गु० में पं० प्र० ८२
- इतु संगति—गु० में पं० प्र० ८२
- इसरार—(मू० असरार) सावे० में उ०
वि० १३०, २२८
- उआ का सहज न जाई—गु० की वि०
२४६
- उपदेसते—(मू० परमोधता) गु० में स०
वि० २४३.
- उरलाइया—(मू० कुरलियां) सा० में
ना० वि० १२५
- उसता—(मू० तिसका) स० की वि०
२४६
- उसदा—दा० नि० स० में पं० प्र० सा०
१६१, २४६, दा० में पं० प्र० ६२
- एआराणा—गु० में पं० प्र० ८१
- एक रूप—(मू० एक भाइ) दा० नि०
स० में स० वि० २४१
- एस नो—गु० में पं० प्र० ८१
- ऐसे हाल—दा० नि० की वि० २४८
- ओहि गया—शवे० में पं० प्र० ११७
- ओकर—(मू० आखर) नि० की उ०
वि० ६६
- कछुअक—(मू० कछु इक) गु० में उ०
वि० ७६
- कटै—(मू० फिल) सा० सावे० सासी०
में स० वि० २४२
- कपास अनूठा—(मू० पासि बिनंठा)
सा० में स० वि० २४३
- कपास बिनूठा—(मू० पासि बिनंठा)
सासी० में स० वि० २४३
- करतंडा—गुण० में राज० प्र० १४५
- कर गहे चहुं ओर—(मू० कर गहि ऐंचहु
ओर) बीभ० में उ० वि० १०३
- करम—(मू० करंक) सावे० में ना०
वि० १३२
- करनि—(मू० किरिम) बीभ० में ना०
वि० १०५
- करि लिया—(मू० कुरलियां) सावे० में
उ० वि० १२६
- कसतूरी—(मू० केतकी) गु० की वि०
२५०
- कहिबेरी—सा० में राज० प्र० १२४
- कांसी—(मू० कासी) नि० की वि०
६८, २२८
- काछिवी—(मू० काछुवी) नि० सा० में
उ० वि० सा० १६६
- काजर—(मू० कागद) दा० नि० स०
की वि० २४०
- काठौ—(मू० का तु) दा० नि० में उ०
वि० सा० १४६
- कानी—(मू० आंती) सासी० में ना०
वि० १३६
- काम निकाम—(मू० कामिनि काम)
सा० सावे० सासी० में उ० वि०
सा० १८०
- कारे ने—शवे० की वि० २४७
- काल—(मू० कमल) गु० की वि०

२८०

कवीर-ग्रंथावली

का हार-(मू० आहार) सासी० की
ना० वि० १३६

किनै ब्रम्हनहारै-उ० में पं० वि० ७६
किला-(मू० कला) नि० में उ० वि०
७६

किसीदा-शवे० में पं० प्र० ११७

कीता-दा० में पं० प्र० ६२, शक० में
पं० प्र० ११०, शवे० में पं० प्र०
११७, दा० नि० स० में पं० प्र०
सा० १६१, २४६

कीता लब्धो-गु० में पं० प्र० ८२

कुं चर-(मू० कुंजर) गु० में उ० वि०
या पं० उ० प्र० ७८

कुञ्जा-(मू० कुंजा) सावे० में ना०
वि० १३१

कुबाण-(मू० कमान) सा० में उ० वि०
१५२

कूबट-(मू० ऊबट) सा० सासी० में
ना० वि० सा० ११७

कैसू-(मू० टेसू) दा० नि० में उ०
वि० सा० अथवा भाषा-भेद की
वि० १५०

कोइला-(मू० काजर) शवे० की
वि० २३६

कोठरी-(मू० कोथली) सा० सावे०
सासी० में उ० वि० सा० १८१

कोठे-(मू० डागल) सा० सावे० सासी०
में स० वि० २४३

कोरै-(मू० कूड़ै) सा० सासी० उ० में
वि० सा० ००७०

कोराल-(मू० कलाल) बीभ० उ० वि०

खंड-(मू० गंड) गु० में उ० वि० ७६
खड़ा-(मू० बड़ा) नि० में उ० वि०

६६

खपे-(मू० खये) सा० सावे० सासी०
में ना० वि० सा० १८४, सा० सावे०
में ना० वि० २२८

खाब-(मू० खाव) सासी० में ना०
वि० १३८

खुश खाना-(मू० खूब खान) सा०
सावे० सासी० में उ० वि० सा०
१८२

खूं रौं-(मू० कोर्ने) दा० नि० स०
गुण० में उ० वि० सा० अथवा प०
उ० प्र० सा० १६३, २४७

खेड़ा-(मू० खेदा) बीभ० में ना० वि०
१०४, बी० में ना० वि० २२७

गड़िओ-(मू० गढ़िओ) गु० में पं०
प्र० ८१

गड़ु-(मू० गढ़) गु० में पं० प्र० ८१

गवन-(मू० गगन) सावे० में ना०
वि० १३२

गरै-(मू० गरी) दा० नि० में उ०
वि० सा० १४८

गलका-(मू० गटका) दा० में उ०
वि० ६३

गहेरा-(मू० कुहेरा) गु० में उ० वि०
७६

गारी-(मू० गाढ़ी) शवे० में तुक-
हीनता २५४

गुंजर-(मू० गुजरी) शक० में उ०
वि० ११०

विकृति-सूची

२८१

गुन-(मू० गुर) गु० में ना० वि० ८०	चड़ि-(मू० चड़ि) गु० में पं० प्र० ८१
गुरु-(मू० रांम) सावे० में सां प्र० प्र० २५२	चवीणां-(मू० चवेनां) दा० नि० गुण० में उ० वि० सा० ग्रथवा प० उ० प्र० सा० १६२
गुरु रंग-(मू० हरि रंग) शवे० में सांप्र० प्र० २५१	चरहै-(मू० चढै) गु० में उ० वि० ७८, २२८
गुरु के बेमुख-(मू० एक रांम भजे विनु) शवे० में सांप्र० प्र० २५२	चलतु-(मू० चित्र०) गु० में उ० वि०
ग्यांनै-(मू० म्यांनै) नि० में उ० वि० ७०	चलवनहार-(मू० जलावनहार) गुण० में उ० वि० १४५
ग्रसी-(मू० ग्रसै) गु० में उ० वि० ७७	चलि जाइ-(मू० जलि जाइ) सा० सासी० में उ० वि० सा० १७०
ग्रह-(मू० ग्रह) दा० नि० स० में उ० वि० २२७	चहुँ ओरा-(मू० चभोरा) शक० में उ० वि० १०६
घड़ि-दा० नि० सा० ससी० में राज० प्र० सा० १६७, १६८, दा० नि० स० की वि० २४०, सासी० में राज० प्र० १४१	चितमित-(मू० चित्रगुप्त) शक० में उ० वि० ११०
घड़िया-सा० में राज० प्र० १२४	चित्र-(मू० चतुर) नि० में उ० वि० ६६
घड़ी सिउ-गु० में पं० प्र० ८१	चिरगट-(मू० चिरकुट) गु० में उ० वि० ७५
घर-(मू० घट) शवे० में ना० वि० ११७	चीनत-गु० में पं० प्र० ८२
घररि-(मू० घुरड़ि) गु० में उ० वि० ७६	चेतवनहारा-(मू० चित्रनहारा) गु० में उ० वि० १००
घरिन्हि-(मू० घरिन्हि) बीभ० में ना० वि० १०५	चोल-(मू० भोल) सावे० में उ० वि० १३१
घाटे बाढ़े-(मू० घाटे बाटे) शवे० में ना० वि० ११६	चोले-(मू० चोली) सावे० में उ० वि० १३०
घोर-(मू० गोर) नि० सा० में उ० वि० सा० १६६, २२८	छत्र तट-(मू० छत्र तर) सासी० में ना० वि० १३६
चड़सी-सावे० में राज० प्र० १३३	छिवैगा-(मू० छिवैला) नि० की वि० २४६

छै-दा० में राज० प्र० ६१, नि० में
 राज० प्र० ६७, गु० में राज० प्र०
 ८०
 जम घर-(मू० जंबुक केहरि) बी०
 में उ० वि० १००
 जलती-(मू० बलंती) सासी० में स०
 वि० २४२
 जसम-(मू० चसम) दा० नि० में उ०
 वि० सा० १४८
 जां-गु० में पं० प्र० ८२
 जाननहार-(मू० छाननहार) दा०
 स० गुण० की वि० २४०
 जानै-(मू० पावल) बी० की वि०
 २४६
 जानौ-(मू० जालू) सा० साबे०
 सासी० में उ० वि० सा० १८२
 जारे-(मू० जाने ?) दा० नि० सा०
 में ना० वि० सा० १६०
 जासी-नि० में राज० प्र० ६७
 जिन्हा-गु० में पं० प्र० ८२
 जीवतड़ा-नि० में राज० प्र० ६७
 जीव घरम हता-(मू० जिउघर
 महती) दा० नि० में छेद-भ्रांति
 २२६
 जुआला-(मू० बैसंदर) गु० में स०
 वि० २४३
 जुग-(मू० जग) दा० नि० में उ०
 वि० सा० १५१
 जुझ-(मू० गुझ) सा० साबे० में
 ना० वि० २२६

जुनाना-(मू० जनानां) सा० सासी०
 में उ० वि० सा० १७१
 जूठी-(मू० जूठै) नि० गु० में उ०
 वि० सा० १५७
 जूनि-(मू० जोनि) नि० में उ० वि०
 ७०
 जे नर जोग जुगति करि जानै इत्यादि-
 दा० नि० की वि० २५०
 जोति-(मू० बूंद) दा० नि० स० की
 वि० २३६
 जो बैठा-(मू० अलहजा) दा० गुण०
 में स० वि० २४३
 ज्यों कामिनि कौं काम पियारा-(मू०
 ज्यों कामीं कौं कामिनि प्यारी)
 दा० नि० की वि० २३६
 झक-(मू० झल) बी० सा० साबे०
 में उ० वि० सा० ११२
 झकती-(मू० झलकती) दा० नि०
 गुण० में ना० वि० सा० १६२
 झल-(मू० झल) सा० साबे० सासी०
 की वि० २४६
 झीठ-(मू० झूठ) सासी० में तुक-
 हीनता २५४
 ठाढ़ी-(मू० मुसि मुसि) दा० नि० में
 स० वि० २४१
 डडीआ-गु० में पं० प्र० ८१
 डुलाय-(मू० झुलाय) सा० सासी०
 में ना० वि० सा० १७१
 तरा-नि० में राज० प्र० ६७, सा० में
 राज० प्र० १२४, दा० नि० सा०
 सासी० में राज० प्र० सा० १६८

- तन मन- (मू० तन मंहि) दा० नि०
स० की वि० २३५
- तनु रैनी मनु पुनरपि करिहउ- (मू०
तन रत करि मैं मन रत करिहीं)
गु० में उ० वि० ७३
- तरवरि- (मू० सरवरि) दा० नि० में
उ० वि० सा० १४८
- तरी- (मू० तरै) बीभ० में उ० नि०
१०३
- तर्क सवादियां- (मू० तरकस वाविया)
सा० में ना० वि० १२५
- तहंदा-दा० में पं० प्र० ६२, २४७
- तांवा- (मू० कावा) नि० में उ० वि०
६८, २२८
- तिन भी तन- (मू० तन भीतर) गु०
में उ० तथा ना० वि० २२६
- तिवार्वाहगे- (मू० तवार्वाहगे) नि० में
उ० वि० ६६
- तीर- (मू० काठें) गु० में स० वि०
२४३
- तीरथ गये तोनि जन-बी० की वि०
२४०
- तुरतह- (मू० तुरंगहि) गु० में उ०
वि० ७४
- तेरा, तेरो-शक० शवे० की वि० २४८
- तोरो- (मू० फेरो) दा० में नुकहीनता
२५४
- तोहि- (मू० तुज्झ) सा० सावे०
सासी० में स० वि० २४२
- त्री- (मू० त्रै) दा० नि० में उ० वि०
सा० १५०
- वाकि- (मू० छाकि (दा० नि० सा०
स० गुण० में ना० वि० १६३,
२२८
- थारउ-गु० में राज० प्र० ८०
- थारौ-दा० में राज० प्र० ६१
- दयार- (मू० मुरारि) सावे० में सांप्र०
प्र० २५२
- दरर- (मू० दरन) बीभ० में ना०
वि० १०४
- दरसन देहु भाग बड़ मोरा-दा० नि०
की वि० २३५
- दस- (मू० दुइ) गु० की वि० २३७
- दसहं द्वार- (मू० नऊं दुवार) बी०
की वि० २५०
- दिवांनि- (मू० निदांनि) दा० नि०
में उ० वि० सा० १५१
- दिसावरी- (मू० दिसावरै) गु० में
उ० वि० ७७
- दिसि- (मू० दखिन) सा० सासी० में
उ० वि० सा० १६६
- दिहाड़ै-नि० में राज० प्र० ६७
- दीता-शक० में पं० प्र० ११०
- दीन- (मू० घनी) गु० में उ० वि०
७८
- दुंद मचावै-मू० (दोदि बजावै) बी०
में उ० वि० १०२
- दुवा- (मू० दवा) सा० में उ० वि०
२२८
- बुष्ट- (मू० दिष्ट) शवे० में उ० वि०
११७

दुसणि-(मू० दसन) नि० में उ० वि०

७०

दूझ-(मू० दूज) सा० सावे० सासी०

में तुकहीनता २२५

दूरि-(मू० दुई) नि० में उ० वि०

६६

देखिया-(मू० हंडिया) नि० में स०

वि० २४२

देसो-नि० सा० सावे० सासी० में

राज० प्र० सा० १६५

देह बिहाइ-(मू० देहु बहाइ) गु० में

उ० वि० ७६

दोखे-(मू० घोखे) गु० में उ० वि०

७८

दोर-(मू० डोर) सा० सावे० सासी०

में उ० वि० सा० १८२

द्वार-(मू० हार) सावे० में ना० वि०

१३२

धनक-(मू० धनुख) दा० नि० स० में

उ० वि० सा० अथवा प० उ० प्र०

सा० १५६

धोरै-(मू० घोरे) सासी० की ना०

वि० १३६

धुनहीं-(मू० धनुहीं) दा० नि० में उ०

वि० सा० अथवा प० उ० प्र०

सा० १५१

नबेड़ै-(मू० निबेरै) नि० में उ० वि०

या राज० उ० प्र० ७०

नरतरु-(मू० निरंतर) सावे० में

उ० वि० १३०

नहिं-(मू० रहि) दा० गुण० में ना०

वि० २२७

न हेरि-(मू० नवेरि) गु० में उ०

वि० ७७

नां जानूं काकूं देइ सुहाग-दा० नि०

स० की वि० २४८

नाचै-शवे० की वि० २४८

नाम-(मू० राम) सासी० में सांप्र०

प्र० २५२

निज नाम-(मू० भगवानं) सावे० में

सांप्र० प्र० २५३

निधाना-(मू० नियानां) गु० में स०

वि० २४१

नैन-(मू० चसम) शवे० में स० वि०

२४१

नैनी-(मू० नैन) गु० में उ० वि०

७४

नौ-(मू० सौ) बी० में उ० वि०

१०२

नौतम-(मू० नौतन) दा० नि० में

ना० वि० २२६

न्यारे-(मू० बाहज) दा० नि० स०

में स० वि० २४१

पंणि-दा० में राज० प्र० ६१

पड़िए चढ़िए आखंडै-(मू० पैड़ी चढ़ि

पाछां पड़ै) सासी० में उ० वि०

१४०

पतिआ भरि लीना-(मू० पतियारा

लीनां) गु० की वि० २४४

- पतिताई—(मू० पतियाई) दा० नि०
स० में उ० वि० सा० १५८
- पतियांनां—(मू० पतियारा) दा० में
ना० वि० ६४
- पधारिणी—नि० में राज० प्र० ६७
- परच—(मू० पनुच) शवे० में ना०
वि० ११६
- परती निदा—गु० की वि० २३७
- परम पुरुष—(मू० राजा राम) शवे०
में सांप्र० प्र० २५१
- पलेटी पलेटे—दा० में पं० प्र० ६१, दा०
नि० में पं० प्र० सा० १५३
- पलेटी, पलेटे—दा० नि० में पं० प्र०
सा० १५३
- पहले—(मू० पख लै) सा० सावे०
सासी० में उ० वि० सा० १८२
- पाँचाहिं—(मू० बाँचाहिं) सावे० में उ०
वि० १३१
- पांडे—(मू० पंडिआ) दा० नि० में
स० वि० २४२
- पांव—(मू० गोड़) दा० नि० सासी०
में स० वि० २४२
- पारचाहिं—(मू० पारधी) बी० में ना०
वि० २२७
- पावक—(मू० पावस) नि० सा०
सासी० में उ० वि० सा० अथवा
ना० वि० सा० १६७
- पास न जाके—(मू० पासि विनंठा)
सावे० में स० वि० २४३
- पाहिं—(मू० माहि) सासी० में ना०
वि० १३६
- पिंगल—(मू० पंगुल) नि० गु० सा०
में उ० वि० सा० १६५
- पिंगो—(मू० पंगा) नि० में उ० वि०
७०
- पियासा—(मू० तिसाई) सासी० में
स० वि० २४२
- पुनरावृत्तियाँ—दा० में ६४, नि० में
७०, ७१, गु० में ८२, ८३, बी०
में १०५, शक० में १११, शवे० में
११८-१२०, सा० में १२६, सावे०,
में १२७, १२८, सासी० में १३५-
३८, स० में १४४, गुण० में १४६
- पुनरावृत्ति-साम्य—दा० नि० १५३-५४,
दा० गु० १५६, नि० गु० सा०
सासी० १६४, १६५, नि० सा०
१६६-६७, नि० सा० सासी०
१६८, सा० सासी० १७३-७४,
सावे० सासी० १७५-७६, सा०
सावे० १७७-७८, नि० सावे०
१७६, सा० सावे० सासी० १८४-
८५, सावे० सासी० गुण० १८६,
बी० सावे० १८८-८९, नि० सा०
सावे० सासी० १९५, १९६ दा०
नि० सा० सासी०, १९७ शक०
शवे०, २०२, २०३
- पुनरुक्ति-दोष—२२६-२३४
- पेड़—(मू० पींड ?) दा० नि० स० में
उ० वि० सा० १५६
- पेड़ा—(मू० हेड़ा) दा० में स० वि०
२४३
- पेवकड़े—गु० में पं० प्र० ८१

- पैर-(मू० गोड़) सा० सावे० में स०
वि० २४२
- प्रक्षेप साम्य-दा० सा० सावे० सासी०
१८६-८७, बी० सावे० १८७-८८,
दा० नि० सा० सासी० १८८, बी०
सावे० २००-२०२, शक० शवे०
२०३-७, नि० शक०-२०७-२०८
- प्रेम-(मू० परम) दा० में उ० वि०
६२
- फांसी-(मू० हांसी) बी० में उ० वि०
१०२
- फिरिओ-(मू० हंडिया) गु० में स०
वि० २४२
- फूलै-(मू० फूटै) नि० में उ० वि०
६६
- बकुला-(मू० बकला) दा० स० में
उ० वि० २२७
- बचाइ-(मू० नचाइ) दा० में ना०
वि० ६३
- बचिआ-(मू० बांफ) गु० में उ० वि०
७८
- बड़ी-(मू० बड़े) सा० में उ० वि०
१२४
- बणाहंवे-गु० में पं० प्र० ८२
- बनोहै-(मू० बनांती) शवे० की वि०
२४५
- बमेक-(मू० बिबेक) दा० में पं० प्र०
६२, नि० में पं० प्र० ६८
- बरतौ-(मू० राखल) बी० की वि०
२४६
- बांचिहै-(मू० बुड़िहौ) सावे० की
वि० २३६
- बांछि-(मू० बांफ) सासी० में उ०
वि० १४०
- बांणीं-(मू० बाड़ी) दा० नि० स० में
उ० वि० सा० १५६, २४५
- बाहरी-(मू० बाहिरे) सा० में उ०
वि० १२५ (मू० बाहिरा) सा०
सावे० सासी० में ना० वि० सा० १८२
- बाहिरे-(मू० बाहुरौ) सावे० में उ०
वि० १३१
- बिकुला-(मू० बकला) नि० में उ०
वि० २२७
- बिषु छाड़ै निरबिख रहै-(मू० पख
छाड़ै निरपख रहै) सा० सासी०
में उ० वि० सा० १६६
- बिगसि-(मू० बिनसि) सा० सावे०
सासी० में ना० वि० सा० १८३
- बिगूता-(मू० सूवा) गु० में तुकहीमता
२५२
- बिनससी-नि० में राज० प्र० ६७
- बिनां-(मू० बाहिरा) बी० में स०
वि० २४३
- बिषयी-(मू० बिषमी) बी० में ना०
वि० १०४
- बिषै-(मू० बिड़ै) स० में ना० वि०
२२८
- बिसद-(मू० सवद) शवे० में उ०
वि० ११७
- बी-सासी० में राज० प्र० १४१, दा०
नि० में राज० प्र० सा० १५३
- बुधि-(मू० बुड़िया) बी० में उ० वि०
१०१

- वे-शक० में पं० प्र० ११०
वेड़ा-(मू० मेरा) शवे० में तुकहीनता
२५४
वेड़ै-(मू० विहड़ै) सा० सासी० में
उ० वि० सा० १६६
वेधिया, वेधियों-(मू० वेढ़िया, वेढ़ियों)
नि० सा० सावे० सासी० में उ०
वि० सा० १६४
बेनां-(मू० बीना) दा० में उ० वि०
६२
बैरागी झड़े-गु० में पं० प्र० ८२
बैसवै-(मू० बीसवै) स० में उ० वि०
२२६
बोरै-(मू० खोवहिं) दा० नि० स० में
तुकहीनता २२५
बोल गले-(मू० बोलग लै) सासी०
में ना० वि० १३६
बोल्या बे-(मू० बोलै) नि० की वि०
२४५
भए-(मू० गए) दा० नि० में ना०
वि० २२७
भक्त जनन अस साहिब मिलनो-(मू०
हरि जन हरि सौं ऐसे मिलिया)
शवे० में सांप्र० प्र० २५१
भगति-(मू० भगत) दा० में उ०
वि० ६३
भरमि-(मू० मरम) दा० नि० में ना०
वि० सा० १५२
भांमिनीं-(मू० भयावनि) दा० नि०
में उ० वि० सा० १५०
भाई-(मू० माई) बी० सावे० में ना०
वि० सा० १६८
भाजिसी-गुण० में राज० प्र० १४५,
दा० नि० में राज० प्र० सा० १५२,
दा० नि० गुण० में राज० प्र० सा०
१६२
भी-(मू० भुइ) दा० नि० में उ०
वि० सा० १४६, २२८
भीतर-(मू० भीतर) गु० में उ०
वि० ७६
भुईं पड़ाव-(मू० मधुपराइ) शवे० की
वि० २२७
भुजं बलइओ-(मू० भुजंग लइओ ?)
गु० में उ० वि० ७४
भैना-शवे० में पं० प्र० ११७
भंगल-(मू० भैंगल) नि० सावे० में
उ० वि० सा० १७६
भंदिल-(मू० मादलु) दा० में उ०
वि० ६३,
भट्ट-(मू० मठ) गु० में ना० वि० ८०
भति-(मू० जन) दा० नि० की वि०
२४४
भद-शवे० की वि० २३५
भधुकराय-(मू० मधुपराय) शक० में
उ० वि० १०६, २२७
भन खुशी-(मू० मनमुखी) नि० सा०
सावे० सासी० में ना० वि० सा०
१६३
भरघट-(मू० मरहट) गु० सा०
सासी० में स० वि० २४२

२८८

मरै मन-(मू० मरे मरि) सावे० में
ना० वि० १३१

मसनंद-(मू० मतंग) बीभ० में उ०
वि- १०३

मसि-(मू० बसि) दा० नि० स० की
वि० २३७

मसु-(मू० मसि) गु० में उ० वि०
या पं० उ० प्र० ७७

महल माल अजीज औरति-(मू० यहू जु
दुनिया सिहर मेला) दा० की वि०
२४५

मानि-(मू० मान या मानु) दा० नि०
में उ० वि० सा० १५१

माइया महि-गु० की वि० २३७

माटी तणां-सासी० में राज० प्र० १४१

माटी माटी रही समाइ इत्यादि-दा०
नि० की वि० २३८

मारे-(मू० सारा) गु० में ना० वि०
८०

मिटा-(मू० परा) नि० सा० की वि०
१६६

मिनख-(मू० मनुख) नि० में उ०
वि० या राज० उ० प्र० ६६

मिलत घालि-(मू० मिले तो घाले)
गु० में उ० वि० २२७

मिलसी-नि० सा० सावे० सासी० में
राज० प्र० सा० १६५

मिलि-बी० की वि० २४८

मिसमिल-(मू० विसमिल) गु० में
उ० वि० ७८

मिहरमुदानां-(मू० महरम जाना)
नि० में उ० वि० ७६

सुंदर-(मू० मंदरि) सासी० में उ० वि०
१४०

सुकलाऊ-गु० में पं० प्र० ८१

सुखी-(मू० मुखै) सावे० में उ० वि०

सुसु सुसु-(मू० मुचि मुचि) गु० में
उ० वि० ७६

सुरीकत-(मू० तरीकत) दा० में उ०
वि० ६२

सुष्टि-(मू० सस्टि) दा० नि० स०
में उ० वि० सा० १५८, दा० नि०
में उ० वि० २२६

सुसरी-(मू० उंदरी) गु० में स० वि०
२४१

सुहीं सुंह-(मू० सुहैं सुंह) सा० में
उ० वि० १२४

सूरख पचिहारे-शवे० की वि० २३५

में की लाकड़ी-(मू० में कीला करी)
सा० सासी० में छेद-भ्रांति-साम्य
१७१

में माती-(मू० मैमाती) शवे० में ना०
वि० ११६

मेल्यौ-(मू० मदला, मादलु) सा०
सासी० में वि० सा० १७२

मैसंती-(मू० लगांभी) दा० में तुक-
हीनता २५४

मोरी-(मू० मोहड़ी) दा० नि० स०
में उ० वि० सा० १६०

मोहिं पाई है-गु० की वि० २४८

रघुराई-गु० की वि० २३६

- रतन—(मू० रसनां) वी० की वि०
२३८
- रहति—(मू० रहनि) नि० में उ० वि०
अथवा ना० वि० २२७
- रहनु—(मू० रहनि) गु० में उ० वि०
२२७
- रांनि—(मू० गूनि) नि० में उ० वि०
७०
- राखन है—गु० की वि० २४८
- रूठड़ा—दा० नि० में राज० प्र० सा०
१५२, दा० नि० गुण० में राज०
प्र० प्रा० १६२
- लकूरु—(मू० लंगूर) गु० में उ० वि०
७६
- लरिका—(मू० वारिक) दा० नि० में
स० वि० २४१
- लभावै—(मू० लगावै ?) वी० में ना०
वि० (?) १०४
- लहरी—(मू० लहरइं ?) दा० नि०
स० में उ० वि० सा० १५६
- लागसी—नि० सा० सावे० सासी० में
में राज० प्र० सा० १६५
- लाजसी—दा० गु० में राज० प्र० सा० (?)
१५७
- लात—(मू० सांट) सासी० में उ०
वि० १४०
- लुंजित—(मू० लुंचित) गु० में उ०
वि० ७८
- लोग हरफ ना—(मू० लौंगहि फर ना)
वी० में उ० वि० १०२
- विश्वास—(मू० वेसासे) सा० सावे०
सासी० की वि० २४५
- वृद्ध—(मू० विरद) सा० में उ० वि०
१२५
- बोरा—(मू० आरा) नि० की वि०
२४०
- संकुट—(मू० संकटि) दा० में उ० वि०
६२
- संत जाइगा—(मू० भक्त न जैहैं) नि०
की वि० २३७
- संपट—(मू० संपुट) गुण० की उ०
वि० १४६, दा० नि० गुण० में उ०
वि० सा० १६२
- संपति—(मू० संपै) दा० नि० में स०
वि० २४१
- संशय—(मू० संचै) शक० में उ० वि०
१०८
- सकारे—(मू० निनारे) वी० की वि०
२३८
- सजन—(मू० संजम) वी० में ना०
वि० १०४
- सतगुन—(मू० कंगन) शवे० की वि०
२३६
- सतगुर—(मू० गोविंद) शवे० में सांप्र०
प्र० २५२
- सतगुर चेरो—(मू० होइगी चेरी)
शवे० में सांप्र० प्र० २५१
- सत नाम—(मू० हरि नाम) शवे० में
सांप्र० प्र० २५२
- सत रंग—(मू० हरि रंग) शवे० में
सांप्र० प्र० २५१

२६०

- सत्यनाम-(मू० ररै ममैं अथवा रांम
नांम) सावे० सासी० में सांप्र० प्र०
२५३
- सत्य व्रत साधो-(मू० राजा रांम भजन
सौं) शक० में सांप्र० प्र० २५१
- सन-(मू० मसि) बीभ० में उ० वि०
१०३
- सनकादिक नारद मुनि सेखा इत्यादि-
गु० की वि० २३८
- सबदिन-(मू० सबद न) नि० सा०
सासी० में उ० वि० सा० १६८
- सबसे न्यारा-(मू० सबकी जानैं)
शवे० की वि० २३६
- सभा-(मू० कुंभ) बीभ० में उ० वि०
१०३
- सभ-(मू० सभ) बीभ० में ना० वि०
१०४
- समदसा-(मू० समंद सा) सा०
सासी० में ना० वि० सा० १७१
- समांतां-(मू० नियांतां) द० नि० स०
में स० वि० २४१
- सर ताल-(मू० सब ताल) गु० में
उ० वि० ७८
- सहज अमल अजीज है-(मू० यहु जु
दुनियां सिहरमेला) दा० नि० की
वि० २४५
- सहर-(मू० मु हार) दा० में उ०
वि० ६३
- साईं तनो-सासी० में राज० प्र०
१४१
- सांवल-(मू० सांकल) दा० नि० में
उ० वि० ७५
- सांव-(मू० सच) शवे० की वि०
२४४
- सांप्रदायिक प्रभाव-शक० १११, ११२
शवे० ११३-१६, सावे० १३३
सासी० १४१
- साक-(मू० साखि) सा० सावे० सासी०
में उ० वि० सा० १८२, सा० सावे०
सासी० में तुकहीगता २५५
- साठ-(मू० सात) गु० की वि०
२४६
- साथ-(मू० नालि) सा० सावे०
सासी० में स० वि० २४२
- सासने-(मू० सासरे) दा० में ना०
वि० ६४
- साहिब-(मू० हरि) सावे० सासी०
में सांप्र० प्र० २५२
- साहुरडै-गु० में पं० प्र० ८१
- सिधु-(मू० सिभु) सा० में ना० वि०
१२५
- सिखलावते-(मू० परमोधतां) बी०
में स० वि० २४३
- सिमरनी-(मू० सुमिरनी) गु० में
उ० वि० या पं० उ० प्र० ७७
- सिमरै-(मू० सुमिरै) गु० में उ०
वि० ७७
- सिलता-(मू० सलिता) नि० में उ०
७०
- सीतका-(मू० सैंत का) दा० नि० में
उ० वि० सा० १४६
- सील-(मू० सेल) सावे० में उ० वि०

विकृति-सूची

२६१

सोस्ति-(मू० सिस्ति) बीभ० में उ०
वि० १०३

सुख करि सूती महल में-(मू० मुखि
कसतूरी महसही) सा० सावे०
सासी० में ना० वि० सा० १८३,
२३६

सुगरां-(मू० सगुरां) सा० सासी० में
उ० वि० सा० १७०

सुनि मुनि-(मू० सुर मुनि) दा० में
ना० वि० ६३

सूकरि-(मू० वुडभुज) दा० नि० में
स० वि० २४१

सूखसी-नि० सा० सावे० सासी० में
राज० प्र० सा० १६५

सूना-(मू० सोना) सा० में उ० वि०
१२४, सा० सावे० सासी० में
उ० वि० सा०, १८० सा० में
उ० वि० २२८

सूनें-(मू० सोनें) दा१ दा२ में उ०
वि० २२७

सूल-(मू० मूल) गु० में ना० वि०
२२७

सेवक कुत्ता गुरु का-(मू० कबीर कूता
रांम का) सावे० में सांप्र० प्र०
२५२

सेवक कुत्ता रांम का-(मू० कबीर
कूता रांम का) सासी० में सांप्र०
प्र० २५२

सों प्यार है-(मू० सोंप्या रहे) सावे०
में पदच्छेद की वि० १३२

सो तांवा कंचन द्वै निब्ररिओ-गु० की
वि० २५०

सोनि-(मू० सोन) गु० में उ० वि०
७७ २२८

सौतुक-(मू० कौतुक) बीभ० में उ०
वि० १८२

स्वान-(मू० खान) सावे० में ना०
वि० १३१

हंदा-दा० नि० में पं० प्र० सा० १५३
हयवारि-(मू० हठि वाड़ि) गु० की
उ० वि० ७४

हरियाई-(मू० हरहाई) सा० सावे०
सासी० में उ० वि० सा० १८१

हल जोतिए-(मू० करि बौहड़ा) सा०
सावे० में स० वि० २४३

हाजिरां सूर-(मू० हाजिर हुजूर)
दा० में उ० वि० ६३

हाथ दिये जरि जाय-(मू० तामें हाथ
न बाहि) सा० सावे० सासी० में
स० वि० २४३

हासनी-(मू० हस्तिनी) बीभ० में ना०
वि० १०५

हूणां-दा० नि० में पं० प्र० सा०
१५३

होनहार सो होइहै-गु० की वि० २४०

ह्वैगा-(मू० ह्वैला) नि० की वि०
२४६

संकेत-विवृति

- उ० वि०—उर्दू (फ़ारसी) लिपिजनित विकृति
 उ० वि० सा०—उर्दू विकृति-साम्य
 ना० वि०—नागरी लिपिजनित विकृति
 ना० वि० सा०—नागरी विकृति-साम्य
 पं० उ० प्र०—पंजाबी उच्चारण-प्रभाव
 पं० प्र०—पंजाबी प्रभाव
 पं० प्र० सा०—पंजाबी-प्रभाव-साम्य
 प० उ० प्र०—पश्चिमी उच्चारण-प्रभाव
 प० उ० प्र० सा०—पश्चिमी उच्चारण-प्रभाव-साम्य
 पू० प्र०—पूर्वी प्रभाव
 मू०—मूल
 राज० उ० प्र० सा०—राजस्थानी उच्चारण-प्रभाव-साम्य
 राज० प्र०—राजस्थानी प्रभाव
 राज० प्र० सा०—राजस्थानी प्रभाव-साम्य
 वि०—(पाठ) विकृति
 स० वि०—सरलीकरण की विकृति
 सांप्र० प्र०—सांप्रदायिक प्रभाव
 सांप्र० प्र० सा०—सांप्रदायिक प्रभाव-साम्य

शेष का निर्देश पीछे विषय-सूची के पश्चात् हो चुका है ।

(ग) सहायक साहित्य

६१ : पाठ-निर्धारण के सिद्धांतों से संबद्ध ग्रंथ—

(क) सिद्धांत-संबंधी :

१. इंट्रोडक्शन टु इंडियन टेक्स्टुअल क्रिटिसिज्म—डॉ० एस० एम्० कर्वे, कर्नाटक पब्लिशिंग हाउस, बंबई, १९४१ ई० ।
२. 'इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' में 'टेक्स्टुअल, क्रिटिसिज्म' पर जे० पी० पोस्टगेट का लेख (जिल्द २२ पृ० ६-११) ।
३. दि टेक्स्ट अन्ड शकुन्तला—वी० के० ठकोरे : पूना की प्रथम ओरिएण्टल कान्फरेंस (सन् १९१९ ई०) में पढ़ा गया एक निबंध, बंबई, सन् १९२२ ई० ।
४. प्रोलोगोमेना टु दि क्रिटिकल एडिजन् अन्ड दि आदिपर्वन् अन्ड दि महा-भारत—डॉ० वी० एस० सुकथाकर : भंडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टी-ट्यूट, पूना, सन् १९३३ ई० ।

(ख) वैज्ञानिक शैली पर संपादित ग्रंथ :

५. जायसी-ग्रंथावली—संपादक डॉ० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, सन् १९५२ ई० ।
६. पंचतंत्र—हर्टेल, लीप्जिग, जर्मनी ।
७. पंचतंत्र रीकंस्ट्रक्टेड (दो भाग)—एफ्० एजर्टन, अमेरिकन ओरिएण्टल सीरीज, नं० ३-४, सन् १९३४ ई० ।
८. परमात्म प्रकाश—योगीन्दु विरचित तथा डॉ० ए० एन्० उपाध्ये संपादित, बंबई, सन् १९३७ ई० ।
९. पाहुड दोहा—मुनि रामसिंह विरचित तथा डॉ० हीरालाल जैन संपादित, कारंजा, सं० १९६० वि० ।
१०. बीसलदेवरास (नरपति नाल्हकृत)—डॉ० माता प्रसाद गुप्त तथा श्री अग्ररचंद नाहटा, हिंदुस्तानी एकेडमी, १९५५ ई० ।
११. मालतीमाधव अन्ड भवभूति—आर० जी० भंडारकर, बंबई, द्वि० संस्क० सन् १९०५ ई० ।

१२. रामचरितमानस का पाठ (दो भाग)—डॉ० माता प्रसाद गुप्त,
साहित्यकुटीर, प्रयाग, १९४६ ई० ।

§२ : कोशग्रंथ

१. तुलसी-शब्द-सागर—संपादक श्री भोलानाथ तिवारी, हिंदुस्तानी एकेडेमी,
प्रयाग ।
२. पशिअन-इंगलिश डिक्शनरी—एफ० स्टाइनगास ।
३. प्रमाणिक हिंदी कोश—संपादक रामचंद्र वर्मा, बनारस ।
४. संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी—मोनियर विलियम्स ।
५. संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी—वी० एस्० आष्टे ।
६. हिंदी-शब्द-सागर—नागरी-प्रचारिणी-सभा, बनारस ।

[उक्त कोशों का उपयोग आवश्यकतानुसार ही किया गया है । इनके अतिरिक्त गोरखवानी (डॉ० वड़वाल संपादित), संतकबीर (डॉ० रामकुमार वर्मा संपादित), संतकाव्य (श्री परशुराम चतुर्वेदी संपादित) तथा बीजक (श्री महावीर प्रसाद व हंसदास शास्त्री संपादित) के शब्द-कोशों से भी पर्याप्त सहायता मिली है । साधना-परक शब्दावली का अर्थ समझने में गरीबदासकृत 'अनभैप्रभोध', (श्री लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर से प्रकाशित 'श्री गरीबदास जी की वाणी' में संकलित) किसी अन्य संत द्वारा रचित 'नाममाला' (अप्रकाशित, लि० का० सं० १८६१ वि०) तथा पदों की एक प्राचीनतम टीका (हिंदी अनुशीलन, वर्ष ११ तथा १३ अंक ३-४) से अधिक सहायता प्राप्त हुई है ।]

§३ : कबीर की ऐतिहासिक, धार्मिक पृष्ठभूमि तथा साधना व संप्रदाय की मान्यताओं से संबद्ध ग्रंथ—

१. ग्रन्सक्योर रिलीजस कल्ट्स—डॉ० एस० दासगुप्ता, कलकत्ता विश्व-
विद्यालय, १९४० ई० ।
२. उत्तरा भारत की संत-परंपरा—श्री परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार,
प्रयाग, सं० २००८ वि० ।
३. ऐन् आउटलाइन अफ् दि रिलीजस् लिटेरेचर अफ् इंडिया—डॉ० जे० एन्०
फर्कुहर, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९२० ई० ।
४. कबीर—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय, हीरा-
वाग, बंबई, ई० सं० १९४७ ई० ।

५. कबीर एंड दि कबीरपंथ—२० जी० एच० वेस्टकट, द्वि० सं०, मुशील-गुप्ता (इंडिया) लि० कलकत्ता, १९५३ ई० ।
६. कबीर एंड हिज फॉलवर्स—डॉ० एफ्० ई० के, असोसिएशन प्रेस, कलकत्ता, १९३१ ई० ।
७. कबीर का रहस्यवाद—डॉ० रामकुमार वर्मा, प्रयाग, सं० १९८८ वि० ।
८. कबीर की विचारधारा—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन, कानपुर, सं० २००६ वि० ।
९. कबीरदास—नरोत्तमदास स्वामी, हिदी-भवन, लाहौर, सं० १९६७ वि० ।
१०. कबीर साहब (उर्दू)—पं० मनोहर लाल जुत्सी, हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९३० ई० ।
११. कबीर-साहित्य का अध्ययन—श्री पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव, बनारस, २००८ वि० ।
१२. कबीर-साहित्य की परख—श्री परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भंडार, प्रयाग, सं० २०११ वि० ।
१३. कबीर-साहित्य की भूमिका—डॉ० रामरतन भटनागर, प्रयाग, २००७ वि० ।
१४. कबीर : हिज बाँयोफ्री—डॉ० मोहन सिंह, लाहौर ।
१५. गोरखनाथ एंड दि मेडिईवल हिन्दू मिस्टिसिज़्म—डॉ० मोहनसिंह, लाहौर, १९३७ ई० ।
१६. गोरखबानी—डॉ० पीताम्बर दत्त बड़वाल संपादित, हिदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, सं० १९६६ वि० ।
१७. दि निगुन स्कूल अन् हिदी पोइट्री—डॉ० पीताम्बर दत्त बड़वाल, दि इंडियन बुकशॉप, बनारस, १९३६ ई० ।
१८. दि सपेन्ट पावर—आर्थर एवलन, लंदन, १९१६ ई० ।
१९. नाथसंप्रदाय—डॉ० हजारि प्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९५० ई० ।
२०. भक्तमाल नाभादासकृत—श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद, लखनऊ, १९१३ ई० ।
२१. भक्तमाल राघोदासकृत—चतुरदासकृत टीकासहित (हस्तलिखित प्रति, लि० का० सं० १८८० वि०, स्थान—श्री दादू महाविद्यालय, जयपुर) ।
२२. भारतीय दर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय, काशी, द्वि० सं० १९४५ ई० ।

२३. महात्मा कबीर—श्री हरिहर निवास द्विवेदी, सूरी ब्रदर्स, लाहौर, सं० १९६३ वि० ।
२४. मेडिईवल मिस्टिसिज्म अर्वा इंडिया—आचार्य क्षिति मोहन सेन, लंदन, १९३५ ई० ।
२५. योग-प्रवाह—डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थवाल, काशी विद्यापीठ, बनारस, सं० २००३ वि० ।
२६. रिलीजस् सेक्ट्स अर्वा दि हिन्दूज्—डॉ० एच० एच० विल्सन, १८४६ ई० ।
२७. विचार विमर्श—श्री चंद्रबली पांडेय, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, सं० २००२ वि० ।
२८. वैष्णवविज्म, शैविज्म एंड माइनर रिलीजस् सिस्टम्स—डॉ० आर० जी० भंडारकर, भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, १९२८ ई० ।
२९. संत कबीर—डॉ० रामकुमार वर्मा, साहित्य-भवन लि०, प्रयाग, १९४२ ई० ।
३०. संतमाल—महर्षि शिवव्रत लाल, मिशन प्रेस, इलाहाबाद ।
३१. सिद्ध-साहित्य—डॉ० धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, १९५५ ई० ।
३२. स्टडीज इन् दि तंत्राज् (भाग १)—डॉ० प्रबोधचंद्र बागची, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९३९ ई० ।
३३. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा, इलाहाबाद, १९२८ ई० ।
३४. हिंदी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचंद्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, सं० १९८६ वि० ।
३५. हिन्दुत्व—श्री रामदास गोड़, ज्ञानमंडल कार्यालय, काशी, १९६७ वि० ।
- सांप्रदायिक—**
३६. कबीर-कसौटी—भाई लहनासिंह, वैकटेश्वर प्रेस, बंबई, सं० १९७१ वि० ।
३७. कबीरपंथ—महर्षि शिवव्रत लाल, मिशन प्रेस, इलाहाबाद ।
३८. कबीरपंथी बालोषदेश—श्री वैकटेश्वर प्रेस, बंबई ।
३९. कबीर मंथूर—स्वामी परमानंद कृत, भान जी कुबेर जी पेंटर, बंबई, हिंदी संस्करण सं० १९६० वि०, महंत मुधादास जी कृत हिंदी अनुवाद, स्वसंवेद कल्याण प्रकाशन, कल्याण, १९८१ ई० ।

४०. कबीर साहिब का जीवन-चरित्र—सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर, म० प्र०, १९०५ ई० ।
४१. कबीरोपासना-पद्धति—मकनजी कुबेर, वैकटेश्वर प्रेस, बंबई, सं० २००५ वि० ।
४२. चौकाचंद्रिका अर्थात् कंडिहारी भेद—सुकुतदास बरारीकृत, कबीर-धर्म-स्थान, खरसिया, विलासपुर, सन् १९४८ ई० ।
४३. चौकाविधान—बंसूदासकृत, कबीरप्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा, १९४८ ई० ।
४४. पंचग्रंथी—रामरहस दास, वैकटेश्वर प्रेस, बंबई ।
४५. मिथ्याप्रलाप-मर्दन अर्थात् रैदास-रामायण का मुहतोड़ उत्तर—बंसूदास कबीरपंथोरचित, कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा, १९४७ ई० ।
४६. सद्गुरु कबीर साहेब (जन्मचरित्र)—पं० मोतीदास 'चैतन्य', स्व-संवेद कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा, १९४३ ई० ।
४७. सद्गुरु कबीर साहेब और उनका सिद्धांत—महंत विचारदास शास्त्री (वर्तमान हुजूर प्रकाशमणिनाम साहेब), स्वसंवेद कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा, १९४३ ई० ।
- ४४ : कृतियाँ तथा टीकाएं**
१. अबु सागर—सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर (तुल० वैकटेश्वर प्रेस, कबीर सागर ३) ।
२. अखरावती—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, १९४६ ई० ।
- ३—अनुराग सागर—(१) स्वामी युगलानंद-संपादित, वैकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९४८ ई० ।
- (२) कबीर-प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा, सं० २००३ वि० ।
- (३) सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर (म० प्र०) द्वि० आ० १९३० ई० ।
४. उपदेश-रत्नावली—श्री तोताराम वर्मा द्वारा संकलित तथा भारतबंधु-यंत्रालय, अलीगढ़ से प्रकाशित लीथो संस्करण, १८८० ई० ।
५. कबीर (४ भाग)—आचार्य क्षिति मोहन सेन संपादित, विश्वभारती, शांतिनिकेतन ।
६. कबीर कृष्ण गीता—सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर (म० प्र०) ।
७. कबीर-गोरख गुष्टि—साधु लखनदास संपादित, कबीर चौरा, काशी, सं० १९८३ वि० ।

८. कबीर-ग्रंथावली—डॉ० श्यामसुंदर दास संपादित, का० ना० प्र० सभा, १९२८ ई० ।
९. कबीर-निरंजन-गोष्ठी—धर्मदास कृत (?), सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर, चतुर्थावृत्ति, १९२८ ई० ।
१०. कबीर-पद-संग्रह—बाबा किशनदास उदासी निरंजनी द्वारा संपादित, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १८७६ ई० ।
११. कबीर-पदावली—डॉ० रामकुमार वर्मा, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ।
१२. कबीर-भजनावली—बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, बनारस सिटी, तथा सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर ।
१३. कबीर-वचनावली—अयोध्यासिंह उपाध्याय, का० ना० प्र० सभा, बनारस, नवां संस्करण, सं० २००४ वि० ।
१४. कबीर-वाणी की एक प्राचीन (-तम ?) टीका—कबीर के १२१ पदों की टीका, हिंदी अनुशीलन, प्रयाग, वर्ष ११ तथा १३ अंक ३-४ ।
१५. कबीर संगीत रत्नमाला—मल्ला साहब, वरदा प्रेस, बंबई, १९६३ वि० ।
१६. कबीर-साखी-सुधा—प्र० रामचंद्र श्रीवास्तवकृत टीका-सहित, श्रीराम मेहरा एंड कंपनी, आगरा, २०१० वि० ।
१७. कबीर-सागर तथा बोधसागर (११ जिल्दों में)—स्वामी युगलानंद संपादित, श्री वेंकटेश्वर प्रेस तथा लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई द्वारा प्रकाशित, जिसके अंतर्गत ४० रचनाएं आती हैं—दे० भूमिका पृ० ३४ ।
१८. कबीर साहब और सर्वाजीत की गोष्ठी—साधु लखनदास संपादित, कबीर चौरा, काशी, सं० १९८७ वि० ।
१९. कबीर साहेब की शब्दावली—बड़े विशुनदास साहब द्वारा संपादित, कबीर चौरा, काशी ।
२०. कबीर साहब की बड़ी और छोटी शब्दावली—साधु लखनदास, कबीर चौरा, काशी ।
२१. कबीर साहब का साखी-संग्रह (दो भाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९२६ ई० ।
२२. कबीर साहेब की शब्दावली (४ भाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद नवां सं०, १९४६ ई० ।
२३. कायापांजी (गुरु-महिमा-माहात्म्य नामक ग्रंथ में)—कबीर प्रेस, सीयावाग, बड़ौदा, छद्म आवृत्ति १९४८ ई० ।

२४. ग्रंथ अनन्तानन्द की गोष्ठी—सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर, सं० १९१० वि० ।
२५. ग्रंथ अनुराग सागर—धर्मदासकृत (?), सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर, १९३० ई० ।
२६. ग्रंथ अमरमूल—धर्मदासकृत, प्रकाशक वही, सन् १९२६ ई० ।
२७. ग्रंथ वीरसिंह बोध—प्रकाशक वही, सन् १९०७ ई० (तुल० वेंकटेश्वर, बोधसागर, जि० ४) ।
२८. ग्रंथ भवतारण—धर्मदास कृत (?), सरस्वती विलास प्रेस, तृतीयावृत्ति, सन् १९०८ ई० ।
२९. ग्रंथ भोपालबोध—धर्मदास संग्रहीत (?), प्रकाशक वही, प्र० सं १९०० ई० (तुल० वेंकटेश्वर, बोधसागर जि० ५) ।
३०. ग्रंथ मुक्तिमाला—धर्मदास कृत (?) प्रकाशक वही, द्वितीयावृत्ति, सन् १९०८ ई० ।
३१. ग्रंथ शब्दावली—रा० रा० श्री गोविन्द राम दुर्लभ राम, ज्ञान-सागर प्रेस, बंबई ।
३२. ग्रंथ ज्ञान उपदेश—जनकलाल फ़ॉरेस्टगार्ड संग्रहीत, सरस्वती विलास प्रेस, १९२७ ई० ।
३३. तीसा-जंत्र—कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा ।
३४. दि सिख रिलाजन (६ भाग)—एम० ए० मैकॉलिफ़, १९०६ ई० ।
३५. धर्मदासबोध या ज्ञानप्रकाश—धर्मदासकृत (?); सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर, प्रकाशकाल अज्ञात, प्रति का लि० का० सं० १८७६ वि० (तुल० वेंकटेश्वर प्रेस, बोधसागर जि० ४) ।
३६. निर्णयसार—साधु पूरणदासकृत, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सं० १९६५ वि०, बंसूदास कृत टीका सहित, कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा, सन् १९४८ ई० ।
३७. निर्भयज्ञान—सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर तथा कबीर-चौरा, काशी से प्रकाशित ।
३८. बड़ा संतोष-बोध—ज्ञानसागर प्रेस, बंबई, तथा सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर ।
३९. बीजक के निम्नलिखित संस्करण :
- (१) विश्वनाथ सिंह जू देव कृत 'पाखंडखंडिनी' टीकासहित, बनारस लाइट प्रेस द्वारा प्रकाशित लीथो संस्करण, सन् १८६८ ई० ।

- (२) पाखंडखंडिनी टीकासहित, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा प्रकाशित, सन् १८७२ ई० ।
- (३) उसी टीका के साथ, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सं० १९६१ वि० ।
- (४) पूर्णदासकृत त्रिज्या (टीका) सहित, गंगा प्रसाद वर्मा ब्रदर्स प्रेस, लखनऊ १८९२ ई० ।
- (५) पूर्णदास की त्रिज्यासहित, मिस्त्री बालगोविंद, कटरा, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित, सन् १९०५ ई० ।
- (६) पूर्णदास की त्रिज्या सहित, बंबई सन् १९२१ ई० ।
- (७) पादरी अहमदशाह द्वारा संपादित, बेप्टिस्ट मिशन, कानपुर, सन् १९११ ई० ।
- (८) उक्त पाठ का अंग्रेजी अनुवाद—पादरी अहमदशाह कृत, हमीरपुर, यू० पी०, सन् १९१७ ई० ।
- (९) महर्षि शिवव्रत लाल की टीका सहित (३ भागों में)—नंदू सिंह, सेक्रेटरी, राधास्वामी धाम, गोपीगंज, १९१४ ई० ।
- (१०) वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित संस्करण, सन् १९२६ ई० ।
- (११) विचारदास की टीका सहित—नागेश्वरबख्श सिंह द्वारा अमूल्य वितरित, सन् १९८३ वि० ।
- (१२) विचारदास की टीका सहित—रामनारायन लाल, कटरा, इलाहाबाद, सन् १९२८ ई० ।
- (१३) साधु लखनदास (कबीरचौरा) संपादित—महावीर प्रसाद, नेशनल प्रेस, बनारस कैंट ।
- (१४) शब्दशतकसहित—जितलाल मुंश, दरजी टोला, मुरादपुर, पटना ।
- (१५) स्वामी हनुमानदासकृत शिशुबोधिनी टीका-सहित (३ भाग), १९२६ ई० ।
- (१६) स्वामी हनुमानदासकृत संस्कृत टीका सहित—कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा, सन् १९३९ ई० । इसके द्वितीय-परिवर्धित संस्करण का प्रथम भाग 'बीजक सुरहस्य' शीर्षक भूमिका सहित सन् १९५० ई० में प्रकाशित ।
- (१७) स्वामी हनुमानदास द्वारा संपादित केवल मूल—महंत हरिनंदन जी, फतुहा, पटना १९५० ई० ।

- (१८) गुजराती संस्करण : (२ भाग)—प्राणलाल प्रभाशंकर बरूही, हनुमानपोल, बैजवाड़ा, बड़ौदा १९३३ ई० ।
- (१९) पूरनदास की त्रिज्या के गुजराती अनुवाद सहित—मणिलाल तुलसी-दास मेहता, रावपुरा कोठी, बड़ौदा, १९३७ ई० ।
- (२०) गोसांई भगवान साहब वाला पाठ—महंत मेथी गोसांई साहब, आचार्य मानसर गद्दी, पो० दाऊदपुर, जि० छपरा, सन् १९३७ ई० ।
- (२१) भगवान गोसांई साहब का पाठ—भगताही शाखा की गुरुप्रणाली सहित—पं० राम खिलावन गोस्वामी, धनौती बड़ामठ, पो० भाटा-पोखर, जिला सारन, १९३८ ई० ।
- (२२) राघवदासकृत टीका सहित—वैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, बनारस, १९३६ ई० ।
- (२३) राघवदास द्वारा संपादित केवल मूल भाग—प्रकाशक वही, १९४६ ई० ।
- (२४) राघवदासकृत सर्वांगपदप्रकाशिका टीका-सहित—प्रकाशक वही, १९४८ ।
- (२५) गुटकाकार—स्वसंवेद कार्यालय, सीयावाग बड़ौदा, सन् १९४१ ई० ।
- (२६) केवल मूल—भागवत पुस्तकालय, गायघाट, बनारस ।
- (२७) शब्दकोश तथा अन्य टिप्पणियों सहित—हंसदास शास्त्री तथा महावीर प्रसाद द्वारा संपादित तथा कबीर-ग्रंथ-प्रकाशन-समिति, हरक, बाराबंकी द्वारा प्रकाशित, सन् २००७ वि० ।
- (२८) आगरा से प्रकाशित साधारण संस्करण ।
- (२९) सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर द्वारा प्रकाशित, सन् १९०७ ई० ।
४०. बीजक सुखनिधान—धर्मदासकृत (?) सरस्वती-विलास प्रेस, नरसिंहपुर, प्रकाशन-काल अज्ञात, प्रति का लि० का० सं० १८६३ वि० ।
४१. मीनगीता—लक्ष्मी वेंकटेश्वर, बंबई ।
४२. रतन जोग अष्टांग—डॉ० मोहनसिंह, ओरिएंटल कालेज, लाहौर की पत्रिका में, मई सन् १९३५ ई० ।
४३. वन् हंड्रेड पोएम्स अन् कबीर—रवीन्द्रनाथ टैगोर, मैकमिलन, १९२३ ई० ।

४४. विचारमाल—अनाथदास कृत, लीथो प्रति, याज्ञिक संग्रह, क्र० सं० ६२६।५३ पर, प्रकाशन का समय तथा स्थल अज्ञात ।
४५. शब्द-विलास—महंत गुरुशरणपति साहब, आचार्य, बड़ैयागढ़ी, जिला जोनपुर, सं० १९६५ वि० ।
४६. संत काव्य (संग्रह)—श्री परगुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद, सं० २००६ वि० ।
४७. संत कबीर की साखी—श्री हुजूर साहब राधास्वामी द्वारा संपादित, आगरा ।
४८. संत कबीर की शब्दावली—मणिलाल तुलसीदास मेहता संकलित तथा विठ्ठलदास खेमचंद दास पटेल, सारंगपुर दरवाजा, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित, १९५८ ई० ।
४९. सत्य कबीर की शब्दावली (दो भाग)—महर्षि शिवब्रत लाल संपादित, 'संत' पत्रिका, जिल्द १ नं० ५-६ ।
५०. सत्य कबीर की साखी—स्वामी युगलानंद संपादित, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९०८ ई० ।
५१. सत्यकबीर शब्दावली अर्थात् कबीर भजनावली—साधु अमृतदास संपादित, कबीर चौरा स्थान, बनारस, सन् १९५० ई० ।
५२. सद्गुरु कबीर साहब का सटीक साखी-ग्रंथ—राघवदासकृत टीकासहित, वैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, राजादरवाजा, बनारस, १९५० ई० ।
५३. सद्गुरु कबीर साहब का साखी-ग्रंथ—महंत विचारदास शास्त्री कृत विरल टीका-टिप्पणी सहित, प्रकाशक महंत श्री बालकदास जी, कबीर धर्म-वर्धक कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा, दूसरी आवृत्ति, १९५० ई० ।
५४. मुरति-शब्द संवाद—प्रकाशक गुरुशरणपति साहब, बड़ैयागढ़ी, जिला जोनपुर, सं० १९६४ वि० ।
५५. स्वरपांजी—'गुरु महिमा पूनो माहात्म्य' नामक ग्रंथ के अंतर्गत, कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा, छठी आवृत्ति, १९४८ ई० ।
५६. स्वासाभेद टकसार—गुरु महिमापूनी माहात्म्य नामक ग्रंथ में, कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा, छठी आवृत्ति, १९४८ ई० ।
५७. हनुमान बोध (त्रेता में मुनींद्र अर्थात् कबीरदास जी और हनुमान की वातचीत)—धर्मदास कृत (?), सरस्वती विलास प्रेस, सन् १९१२ ई० ।
५८. ज्ञान गुदड़ी, रखते और झूलने—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, १९४४ ई० ।

५६. ज्ञान-सागर, सरस्वती विलास प्रेस, (तुल० वेंकटेश्वर प्रेस, कवीर सागर, जिल्द १) ।

५५ : कवीर की वाणियों की खोज के लिए अन्य संप्रदायों के ग्रंथ

१. छुड़ानी (जि० रोहतक) के गरीबदासी संप्रदाय का 'ग्रंथ साहिब अर्थात् सदगुरु श्री गरीबदास जी महाराज की बानी'—प्रकाशक श्री स्वामी अजरानंद गरीबदासी रमताराम; मुद्रक, आर्य सुधारक प्रेस, बड़ौदा, १९२४ ई० ।
२. (क) राजस्थान के दादूपंथ की अनेक हस्तलिखित पोथियाँ जो दादूविद्यालय, जयपुर तथा आर्याभाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस में हैं और जिनमें दादू, रज्जव, बखना, सुंदरदास, खेमदास, आदि की रचनाएँ हैं ।
(ख) श्री दादूदयाल जी की वाणी—संपादक श्री मंगलदास स्वामी, प्रकाशक वैद्य जयरामदास स्वामी, लक्ष्मीराम चिकित्सालय, जयपुर सं० २००८ ।
(ग) श्री बखना जी की वाणी : संपादक वही, प्रकाशक स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर, सं० १९६३ वि० ।
(घ) महाराज श्री गरीबदास जी (दादूपंथी) की वाणी—संपादक वही, प्रकाशक वही, सं० २००४ वि० ।
३. (क) राजस्थान के निरंजनी संप्रदाय की हस्तलिखित पोथी (लि० का० सं० १८६१) जिसमें हरिपुरुष, तुरसी, अमरदास, सेवादास आदि की वाणियाँ हैं, स्थान, दादू महाविद्यालय, जयपुर ।
(ख) श्री हरिपुरुष जी की वाणी—संपादक श्री देवादास जी वैष्णव, कुंज-बिहारी जी का मंदिर, कटला बाजार, जोधपुर, सं० १९८८ वि० ।
(ग) श्री हरियशमणिमंजूषा—प्रकाशक साधु वैद्य श्री रामनारायण जी, सिंहथल, बीकानेर, सं० २०१६ वि० ।
४. (क) राजस्थान के रामस्नेही संप्रदायाचार्य 'स्वामी जी श्री रामचरण जी महाराज की अणभै वाणी', प्रकाशक साधु नैतुराम जी दोन्यू रामस्नेही (आज्ञानुसार आचार्य धर्मधुरीण स्वामी श्री निर्भयराम जी

महाराज रामस्नेही, श्रीरामनिवास धाम, शाहपुरा (राजस्थान),
सन् १९२५ ई० ।

(ख) रामस्नेही धर्म-प्रकाश—महंत भगवतदास, बड़ा रामद्वारा, सिंहथल,
बीकानेर, सन् १९५० ई० ।

(ग) रामस्नेही धर्मदपण—मनोहरदास रामस्नेही, रामद्वारा, सुनेल, मध्य-
भारत, सं० २००३ वि० ।

५. सिक्ख सम्प्रदाय का 'श्रो गुरु ग्रंथ साहिब'—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन,
अमृतसर, १९३७ ई० ।

६. निम्बार्क संप्रदायाचार्य (?) परशुराम कृत परशुराम सागर—हस्तलिखित,
लि० का० अज्ञात, स्थान : आर्यभाषा पुस्तकालय, ना० प्र० सं०
बनारस ।

७. अलवर के लालदासोपथ के प्रवर्तक लालदास जी की वाणियाँ—हस्त-
लिखित पोथी, लि० का० अज्ञात, स्थान : याज्ञिक संग्रह, ना० प्र० सं०,
बनारस ।

अन्य ग्रंथ :

८. चर्यापद (बंगला में)—श्री मणीन्द्र मोहन वसु संपादित, कमला बुक
डिपो, कलकत्ता ।

९. ढोला मारुरा दूहा—श्री रामसिंह, श्री सूर्यकरण पारीक तथा श्री नरोत्तम-
दास स्वामी द्वारा संपादित, काशीनागरी प्रचारिणी सभा, बनारस ।

१०. दोहाकोष (सरहपा, काण्हपा तथा तेलोपा)—कलकत्ता संस्कृत सीरीज
नं० २५ सी, १९३८ ई० ।

११. पाहुडोहा (मुनिरामसिंह विरचित)—डॉ० हीरालाल जैन संपादित,
कारंजा, सं० १९६० वि० ।

१२. बौद्ध गान ओ दोहा (बंगला)—महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री
संपादित, बंगोय साहित्य परिषद्, कलकत्ता, द्वि० मु०, सं० १३५८
(वंगान्द) ।

१३. सरहपादकृत दोहा कोश (हिंदी छायानुवाद सहित)—संपा० राहुल
सांकृत्यायन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५७ ई० ।

१४. सूरसागर—काशी नागरी प्रचारिण सभा, बनारस ।

(इनके अतिरिक्त अनेक हस्तलिखित ग्रंथों का उपयोग भी किया गया है
जिनका विवरण निबंध के भूमिका-खंड में मिलेगा ।)

§६ : पत्र-पत्रिकाएं

(क) कल्याण—गीता प्रेस, गोरखपुर, विशेषतया—

१. संत अंक—सं० १९६४ का विशेषांक ।

(ख) नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका—ना० प्र० सं०, बनारस, विशेषतया—

१. कबीर : जीवन खंड—ले० श्री शिवमंगल पांडेय, पृ० २७३-२६३ ।

२. वर्ष ४५, अंक ४ (माघ १९६७ वि०) में परशुराम कृत 'विप्रम-तीसी' पर डॉ० पीतांबर दत्त बड़थवाल की टिप्पणी ।

३. कबीर का जीवनवृत्त—ले० श्री चंद्रबली पांडेय, भाग १४ (पृ० ५३६-४०) ।

(ग) त्रिवेणी भारती पत्रिका—शांति निकेतन, बंगाल, विशेषतया—

१. खंड ५ अंक ३ (जुलाई-सितम्बर, १९४६) में 'कबीरपंथ और उसके सिद्धांत'—ले० हजारी प्रसाद द्विवेदी ।

२. खंड ६ अंक २ (अप्रैल-जून १९४७ पृ० ४४७-६५) ।

३. शिवभारती क्वार्टर्ली (अंग्रेजी) जिल्द १९ भाग २ (अगस्त-अक्टूबर १९४६) में डॉ० प्रबोधचंद्र बागची का 'कास्ट्स अन्व इंडिगन मिस्टिक्स' शीर्षक लेख (पृ० १३८-१४३) ।

घ. संतवाणी—मंगल प्रेस, जयपुर, विशेषतया—

१. वर्ष १ अंक १, २, ४, ६ में पुरोहित हरिनारायण क्षमा का 'महात्मा रज्जब जी' शीर्षक निबंध अंक १, २ तथा ४ में संत-साहित्य के अनेक हस्तलिखित ग्रंथों का निर्देश तथा अंक ६ में 'सबंगी' ग्रंथ का विवरण

२. वर्ष २ अंक ११ में श्री अग्रचंद नाहुटा का 'राजस्थान में संतसाहित्य के खोज की आवश्यकता' शीर्षक लेख (पृ० ४३२-४३७) जिसमें श्री नरोत्तम दास स्वामी, बीकानेर के एक बड़े गुटके का परिचयात्मक विवरण है ।

३. वर्ष ३ अंक २ (सन् १९५० ई०) में उसी लेखक का 'संतवाणी-संग्रह का दूसरा गुटका' शीर्षक लेख जिसमें नरोत्तमदास स्वामी के संग्रह के दूसरे गुटके का परिचय दिया गया है (पृ० २२-२६) ।

४. वर्ष ३ अंक २ (सन् १९५० ई०) में उक्त नाहुटा जी का 'संत कबीर और जैन कवि आनंदघन' शीर्षक लेख (पृ० २४-२७) ।

क० अ०—फा० २०

ड. स्वसंवेद पत्रिका—स्वसंवेद कार्यालय, कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा,
संपादक—मोतीदास 'चैतन्य' ।

च. हिंदुस्तानी—हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, विशेषतया—

१. भाग १ अंक १, अक्टूबर १९३१—श्री परशुराम चतुर्वेदी लिखित 'संत साहित्य' (पृ० ४३३-६४) ।
२. भाग २ अंक , अप्रैल १९३२—डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी लिखित 'कबीर जी का समय' पृ० २०४-१५ ।
३. भाग २ अंक ४, अक्टूबर १९३२—श्री परशुराम चतुर्वेदी लि० 'कबीर साहब की रमैनी', पृ० ३६६-६६
४. भाग ३ अंक १, जनवरी १९३३—ले० वही, 'कबीर साहब की साखी' पृ० ३-३८ ।
५. भाग ३ अंक ३, जुलाई १९३३—ले० वही । 'कबीर साहब की पदावली' पृ० २११-५३ ।

§७ : हस्तलिखित ग्रंथों के सूचीपत्र तथा कैटलॉग

विशेषतया—ना० प्र० स० की प्रकाशित तथा अप्रकाशित खोज रिपोर्टें (सन्

१९०१ से १९४६ ई० तक) का LIBRARY

इंडिया ऑफिस कैटलॉग, ब्रिटिश म्यूजियम कैटलॉग, सरस्वती महल

जाधपुर के हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीपत्र, इत्यादि

Accession	Sanjeev	21/10/94
Author	Sanjeev	21/10/94
Title	Sanjeev	
Subject	RC	21/10/94
F.A.R.		21/10/94
Any other		
Checked		

Recommended By Sanjeev 21/10/94

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

